अनुक्रम

ॐ

।। श्रीमद्भगवद्गीता ।।

आचार्य सुधांशु जी महाराज

विराट रूप
रूपाणि शतशोऽथ
नानाविधानि दिव्यानि

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ योग

सार

गीता के १३वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के बारे में बताया है। क्षेत्र शरीर है और क्षेत्रज्ञ जीवात्मा है। शरीर रथ है, दस इंद्रियां घोड़े हैं, तुम आत्मा हो और बुद्धि सारथी है। भगवान श्रीकृष्ण ने समझाया है कि ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है ? जो छल, कपट, कुटिलता, दम्भ से रहित हो वह ज्ञानी है। जो अहिंसा, धैर्य, सरलता से युक्त हो वह ज्ञानी है। सद्गुरु का सान्निध्य, आंतरिक पवित्रता, भौतिक स्वच्छता, जीवन. में स्थिरता, मन पर नियंत्रण ज्ञानियों के गुण हैं। भगवान ने बताया कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों, आँख(रूप), कान(ध्वनि), नाक (गन्ध), जीभ(स्वाद), त्वचा(स्पर्श) और पाँच कर्मेन्द्रियों हाथ, पांव, गुदा, जननेन्द्रियों और जीभ(वाणी) से कार्य लेने वाला वही ज्ञानी है जो उनके लिये निर्धारित किये गये हैं। इन दस इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने के लिए परमात्मा ने मनुष्य को चार उपकरण मन, बुद्धि, चित्त और अहम् (मैं) भाव दिया है जिनपर नियंत्रण रखने वाला ज्ञानी है। कर्त्तव्य करो, आसक्त न हो। प्यार करो, मोह नहीं। संग्रह करो, अपरिग्रह नहीं। ज्ञान का अर्थ है जीवन में शांति, सरलता, सौम्यता और शिष्टता का समावेश। भगवान में अनन्य भक्ति रखने वाला ज्ञानी है। ज्ञानी के समस्त गुणों में सर्वोत्तम गुण समभाव है। ज्ञानी को प्राणी मात्र के लिए समभाव, समदृष्टि, समदृष्टिकोण, समविचार रखने चाहिएं। भगवान कहते हैं कि जो अनादि, अनन्ता, सदा रहने वाला है वही ज्ञेय है। जानने योग्य तत्व केवल एक है, परमात्मा।

भगवान श्रीकृष्ण ने विषाद से प्रसाद की ओर चलने के लिये, मृत्यु से अमृत की प्राप्ति के लिये, अज्ञान से ज्ञान का आरोहण करने के लिये और भुक्ति से मुक्ति की ओर ले चलने के लिये जो अमृतमय ज्ञान दिया, उस संजीवनी को हम गीता के नाम से जानते हैं। पाँच हज़ार वर्ष के अन्तराल के बावजूद गीता की महत्ता और विशेषता में कमी नहीं आई है। किसी मरते हुए आदमी को गीता सुनाई जाये या अदालत में गीता पर हाथ रखकर कसम खाई जाये, हर स्थिति में गीता को महत्त्वपूर्ण माना गया है। गीता जीने का सन्देश है। प्रश्नकर्ता अर्जुन है और उत्तर देने का काम किया है भगवान कृष्ण ने। गीता का १३ वां अध्याय वहां से आरम्भ होता है जहाँ अर्जुन यह जानना चाहता है कि यह संसार, यह आत्मा और यह शरीर सब क्या हैं?

अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा कि प्रकृति और पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ज्ञान और ज्ञेय ये सब क्या हैं ? ये जो प्रश्न अर्जुन द्वारा किये गये हैं इनका हमारे जीवन में एक विशेष महत्त्व है। जब तक हम यह न जान लें कि हम हैं कौन, हम इस दुनिया में आये क्यों हैं, हमारा कार्यक्षेत्र क्या है, हमारा कर्त्तव्य क्या है, क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं किया जाना चाहिए, तब तक हमारी कोई भी गति, कोई भी यात्रा सफल नहीं हो पायेगी। जीवन को जानना भी ज़रूरी है कि हम कहाँ से आये हैं और कहाँ जायेंगे?

विचित्र बात तो यह है कि इन्सान संसार में न अपनी खुशी से आया है और न अपनी खुशी से जायेगा। दुनिया में लाने वाली शक्ति भी कोई और है और संसार से वापिस भेजने वाली शक्ति भी कोई और है। उस परमसत्ता के हाथ में हम सब लोग हैं। बहुत बार मन में यह प्रश्न उठता है कि यह संसार क्यों है ? किसलिये है और संसार में इतनी विविधता क्यों है ? एक ही बाप की सन्तान, सबको बराबर बराबर सम्पत्ति बाँट कर दी गई, लेकिन सब की एक जैसी बुद्धि नहीं, सबकी एक जैसी शक्ति नहीं और सबका एक जैसा स्वभाव भी नहीं। सब अलग अलग हैं। शक्लें थोड़ी मिलती हों तो क्या? भाग्य तो नहीं मिलते, बुद्धि तो नहीं मिलती, विचार तो नहीं मिलते, वाणी तो नहीं मिलती। आहार, व्यवहार, रुचियाँ सब अलग अलग

दिखाई देती हैं, गतिविधियाँ भी पृथक दिखाई देती हैं और यह भी कि एक जैसी सम्पत्ति पाने के बाद भी उनमें से कोई अमीर तो कोई गरीब हो जाता है। एक जैसी परिस्थितियाँ मिलने के बाद भी, एक जैसा धन मिलने के बाद भी, एक सुखी व एक दुःखी है, एक वैभववान और दूसरा हर किसी के आगे हाथ फैलाने वाला है। प्रयास हर किसी का रहता है कि मैं किसी से पीछे न रह जाऊँ, आगे बढ़ जाऊँ लेकिन हर कोई बढ़ नहीं पाता। यहाँ आकर मनुष्य की समझ में यह बात अवश्य आती है कि हम किसी परमसत्ता के वश में हैं। व्यवस्था किसी और के हाथ में है। सुख दुःख आते हैं तो किसी और की तरफ से। लेकिन साथ में यह भी सत्य है कि कहीं बीच में हमारा कर्म भी कारण बना हुआ है।

अर्जुन ने जानना चाहा कि प्रकृति क्या है? पुरुष क्या है? क्षेत्र किसे कहते हैं और क्षेत्रज्ञ किसे कहते हैं? ज्ञान क्या है? ज्ञेय क्या है? हे कृष्ण! मुझे इसके बारे में बताइये।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।१।।

भगवान ने कहा : "हे अर्जुन! हमारा शरीर क्षेत्र है और जो इसको जानने वाला है, वह क्षेत्रज्ञ है। बात थोड़ी दार्शनिक है इसलिए इसे समझने के लिए थोड़ा गहराई में जाना होगा। दर्शनशास्त्र के अनुसार पिता और पुत्र, दोनों का जन्म एक ही साथ होता है। सुनने वाले को दार्शनिक लोगों की यह भाषा बड़ी अजीब लगती है। लेकिन उत्तर सुनकर एकदम समझ में आ जायेगा। अभी यह सुनकर हँसी आती है कि पिता और पुत्र का जन्म एक साथ होता है। इसका मतलब यह है कि जब तक पुत्र का जन्म नहीं होता तब तक पिता, पिता नहीं कहलाता। जब पुत्र पैदा हुआ तब पति पिता बन गया और पत्नी माँ। उन्हें माता पिता की संज्ञा मिल गई। तो यह है कहने का अन्दाज़। यह अन्दाज़ इसलिये रखा गया है कि ज्ञान का आनन्द लिया जा सके।

हमारा शरीर क्षेत्र है, हम इसके जानने वाले बनें। कर्मभूमि में हम खड़े हुए हैं और कर्मभूमि में आत्मा का क्षेत्र यह शरीर है। कई स्थानों पर

उपनिषदों में कहा गया है कि तुम अपने आपको रथी समझो और जो इसमें बैठा हुआ है वह महारथी है। तुम्हारा शरीर रथ है और इन्द्रियाँ इस रथ में जोते हुए घोड़े हैं। इस रथ में तुम मालिक बन कर बैठे हुए हो। तुम आत्मा हो और तुम्हारा चालक (सारथी) है तुम्हारी बुद्धि। सारथी के हाथ में मन रूपी लगाम है। जो घोड़े जुते हुए हैं वे हैं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ। इन दस घोड़ों की मन रूपी लगाम, बुद्धि रूपी सारथी ने पकड़ी हुई है। लेकिन यह सारथी पीछे बैठे महारथी अर्थात् आत्मा, जो मालिक है, उसके हुक्म का पालन करता है।

अगर हमारा सारथी हमारा कहना मानता है तो हम सुखी हैं, परन्तु यदि सारथी अपनी मनमर्जी से जहाँ चाहे वहाँ रथ ले चलता है तो इस रथ में हम बन्धक हैं, दुःखी हैं। जब तक हम अपने स्वामी हैं तब तक तो आनन्द है, पर जब हम गुलाम हो गये तब मुसीबत है। देखा जाये तो हमारे सभी घोड़ों की लगामें ढीली हैं। सारथी भी नासमझ है। हालात ऐसे हैं कि जैसे कोई ऊँट हाँकने वाला व्यक्ति ऊँट को बड़ी तेज़ी से दौड़ाए ले जा रहा था। लोगों ने पूछा, "बात क्या है? इतनी तेज़ी से क्यों जा रहे हो?" वह बोला, "सांझ होने वाली है। गाँव जल्दी पहुँचना है।" लेकिन थोड़ी देर आगे जाकर ऊँट की नकेल उसके हाथ से छूट गई। अब ऊँट को तो पसन्द हैं काँटों वाले बबूल। सड़क के दोनों तरफ खड़े थे बबूल के पेड़। ऊँट ने उनको देखा और खुश होकर भागा। अब वह तो हरी हरी पत्तियाँ और काँटे खाने के लिये दौड़ रहा था और जो ऊँट पर सवार था उसे कांटे चुभ रहे थे। अब जब लोगों ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो ?" तब सवार ने कहा, "पहले तो मुझे पता था कि कहाँ जाना है। पर अब तो यह ऊँट जहाँ ले जायेगा, वहीं जाऊँगा, क्योंकि नकेल मेरे हाथ से छूट गई है, अब तो यह काँटों में भी घसीटेगा तो जाना ही पड़ेगा। अब नियंत्रण मेरे हाथों में नहीं है।" जब तक नियंत्रण आपके हाथ में है, आप सुखी हैं और जब नियंत्रण हाथ से छूट गया तो बस वहीं से मुसीबत शुरू हो जायेगी।

भगवान ने यह जो बहुत सुन्दर शरीर रूपी क्षेत्र हमें दिया है इसकी महिमा उपनिषदों ने गाई है। जब भगवान ने संसार बना लिया, सब शरीरों

की रचना कर ली तब आत्मा को आमंत्रित किया और कहा, "आओ और बताओ कि तुम्हें कौन सा शरीर पसन्द है?" आत्मा को गऊ, घोड़े, सिंह और हाथी आदि के शरीर दिखाये गये। सब शरीरों को देखने के बाद आत्मा लौट आई और बोली, "इन सब शरीरों के अन्दर ताकत तो है। संसार के पदार्थों का भोग करने का सामर्थ्य भी है। पर मुझे तो ऐसा शरीर चाहिए जिसमें बन्धन न हों और मैं आज़ादी से कुछ कर सकूँ।" घर परिवारों में आपने देखा होगा कि पत्नी कहती है, "घर ठीक है, मकान बहुत अच्छा है, पैसा भी है पर आज़ादी नहीं है। इससे तो किराये का मकान अच्छा जहाँ आज़ादी से रह सकें।" आजकल की सभ्यता (कल्चर) ही ऐसी है कि बहू घर में आते ही पति के कान में फूंक मारती है, "देखिये जी, मैं अपने माँ बाप को छोड़ कर आई हूँ; आप भी पहला काम यही करिए कि माँ बाप को छोड़िये। यहाँ आज़ादी है ही नहीं केवल बन्धन ही बन्धन हैं।"

जेल और घर में थोड़ा सा अन्तर होता है। जेल की कुंडी बाहर से लगाई जाती है और घर की कुंडी अन्दर से। अन्तर यह है कि जेल वाली कुंडी में ताला लगा कर चाबी कोई और अपने हाथ में रखता है, जब कि घर में हम खुद को स्वयं बन्द करके चाबी अपनी जेब में रखते हैं। जेल में बाहर से कुंडी लगा दी गई है तो हम बड़े दुःखी हैं पर घर में अन्दर से कुंडी लगाकर हम बड़े निश्चिन्त हैं। घर का बन्धन हमारे हाथ में है, हम जब चाहें खोल कर चले जायें। जब बन्धन दूसरे के हाथ में हो, चाहने पर जब हम खोल कर जा न सकें तो वह जेल है, वह दुःखदायी है, उसमें हम रहना नहीं चाहते। जब हम दूसरे के वश में हैं तो स्थिति दुःखद है और जब हम अपने वश में हैं तो स्थिति सुखद है। इसलिए यह क्षेत्र, यह शरीर जो परमात्मा ने दिया है इसको आप जानें भी और इसके स्वामी भी बनें, तभी आप सुखी होंगे। अगर आप इसको जानने वाले न बन पाये, इसके स्वामी भी न बन पाये तो स्थिति दुःखद होगी। कारण, जहाँ बन्धन आ गया वहाँ दुःख आ गया। जहाँ बन्धन है वहाँ प्रतिकूलता है।

जैसे जैसे आपको अनुकूलता मिलती है तो सुख मिलता है, प्रतिकूलता मिलती है तो दुःख मिलता है। जो चीज़ आपकी पसन्द की हो उसमें बड़ा

सुख मिलता है और जो चीज़ आपकी पसन्द की न हो उसमें बड़ा दुःख मिलता है। जहाँ हम बन्धन में आए वहीं से कष्ट आना शुरू हो जाता है। मज़े की बात यह है कि हम परिस्थितियों के अनुसार अपनी रुचियाँ भी बदल लेते हैं। रुचि बदल लेने पर वही बन्धन हमें सुखदायी लगने लगता है। अगर किसी आदमी को आप ज़ंजीर से बांधना चाहें तो वह आदमी एतराज़ करेगा, कहेगा कि ज़ंजीर से मत बांधो। लेकिन अगर उससे कहें कि ज़ंजीर सोने की होगी तो वह विचार बदल देगा। कहेगा ज़ंजीर जितनी ज़्यादा मोटी हो उतना ही अच्छा। परन्तु बन्धन तो बन्धन है। पिंजरा चाहे सोने का हो या लोहे का, तोता तो पिंजरे में बंद है। बन्धन चाहे आकर्षक हो तो भी वह बन्धन ही है, जिसमें इन्सान जब बंध जाता है तो निकल नहीं पाता और छटपटाता रह जाता है।

हमारे अज्ञान के कारण बन्धन हमेशा हमें दुःख देगा, पर हम इसे समझ नहीं पाते। शक्तिवान भंवरा बाँस को काट कर निकल जाता है। लकड़ी को काटने की क्षमता उसमें है लेकिन अगर कमल की पत्तियों में छुपकर बैठ जाय और सांझ होते ही कमल की पत्तियाँ बन्द हो जायें तो वह उन कोमल पत्तियों के अन्दर बन्द होकर रह जाता है, बाहर नहीं निकल पाता। उसमें क्षमता इतनी है कि वह कोमल पत्तियों को आसानी से काट ले; लकड़ी को काट सकता है पर पत्तियों को नहीं काट पाता। आदमी का हाल भी यही होता है। उसके अन्दर इतनी शक्ति है कि वह बड़े से बड़ा युद्ध लड़कर विजय प्राप्त कर सकता है। परन्तु घर की मोह ममता में आकर, घर वालों के दस दस जूते खाक़र भी उनके बीच पड़ा रहता है, बाहर नहीं निकल पाता क्योंकि वह मोह में फंसा हुआ है, उसमें बाहर निकलने की हिम्मत ही नहीं होती। जो बड़ी से बड़ी ज़ंजीर को तोड़ सकता है वह मोह के कच्चे धागों में ऐसे फंसा है कि उनको तोड़कर बाहर नहीं निकलता। कई बार तो इतना बंध जाता है कि बुढ़ापा सामने आ जाये, घर के लोग दुःख देते रहें फिर भी मन में वैराग्य नहीं आता। अपनों से शिकायत भी है लेकिन कहेगा कि कुछ भी हो, मार भी डालेंगे तो घर के भीतर ही न। मोह की स्थिति बड़ी विचित्र है।

परमात्मा ने हमें यह शरीर एक क्षेत्र के रूप में दिया है, हम क्षेत्रज्ञ हैं इसलिए हमें इसको जानना चाहिए। हम संसार में कर्म करने के लिये आये हैं। हमें अपने कर्त्तव्य, कर्मों को करने के लिये शरीर मिला है। शास्त्रों में इसे दूसरे ढंग से कहा है, "तुम्हें यह शरीर सौ वर्षों के लिये दिया गया है। इस शरीर में बैठ कर तुम इसका रथ के रूप में प्रयोग करो।" इन सौ वर्षों की अवधि में मृत्यु, अनेक दुःखों का रूप लेकर तुम्हारे सामने आयेगी। लेकिन तुम उसको पछाड़ते चले जाना। मृत्यु तुम्हारे सामने कभी अपमान, कभी हानि, कभी निराशा बनकर आयेगी, कभी चिन्ता तो कभी भय बनकर खड़ी होगी। जब वह भय बनकर आयेगी तो तुम्हें अपनी शक्ति का पता ही नहीं चलेगा कि वह कहाँ चली गई? बलशाली इन्सान के सामने भी जब भय आता है तो वह टूट कर बिखर जाता है। एक कथानक है कि किसी नगर में एक बार एक फकीर ने मौत को एक गाँव की ओर जाते हुए देख लिया। फकीर ने उससे पूछा, "मौत तुम गाँव में क्या करने जा रही हो?" उसने कहा, "प्लेग का बहाना लेकर जा रही हूँ और पाँच हज़ार आदमियों को मारकर वापिस आऊँगी।" एक हफ़्ते के बाद उस फकीर ने मौत को फिर आते देखा तो उससे फिर पूछा, "तुमने तो वादा किया था पाँच हज़ार व्यक्तियों को मारने का लेकिन तुमने तो पन्द्रह हज़ार मार दिये।" मौत ने कहा, "फकीर बादशाह! मैंने तो पाँच हज़ार ही मारे हैं, बाकी के दस हज़ार तो डर कर खुद ही मर गये। मैं क्या करूँ?" मौत से ज्यादा मौत के भय से आदमी मर जाया करता है।

सच तो यह है कि आदमी माया के फेर में पड़ा है। उसे निराशा और भय सताता रहता है। पर जब वह परमात्मा की तरफ चलने लग जाता है तब उसे मौत का भय भी नहीं दबा पाता। मौत भी उसके चरणों के पास हाथ बांधे खड़ी रहती है। ऐसा व्यक्ति मौत के सामने भी मुस्कुराया करता है। मौत की अनेक छायाएँ हैं जो अनेक रूपों में डराने के लिये सामने आती है। सौ साल की यात्रा में न जाने कितनी बीमारियाँ, कितने कलह, क्लेश भोगने पड़ते हैं। दर्शनकारों ने लिखा है कि पाँच क्लेश हैं जो मानव जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। हम सबका जीवन इन क्लेशों से बंधा हुआ है। सबसे पहला

क्लेश है अविद्या का, अज्ञानता का। बीमारी, पीड़ा या सिर दर्द इलाज से दूर हो सकता है लेकिन अज्ञान के कारण आप दुःखी हो रहे हैं, पर दवा नहीं ला रहे। कई बार ऐसा भी होता है कि घर में दवा है पर कौन सी दवा कितनी मात्रा में लेनी है इसका ज्ञान न होने के कारण दुखी हो रहे हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि घर में दवाई भी है, नाम भी पता है, बीमार भी हैं लेकिन दिमाग काम नहीं कर रहा, संतुलन बिगड़ गया है। कई बार इन्सान जब मुसीबत में होता है तो कहता है कि मुझे कुछ नहीं सूझ रहा, आप ही कुछ उपाय बताइये। अज्ञान होना या अज्ञान के कारण संतुलन बिगड़ जाना इन सबसे आदमी दुखी होता है।

शास्त्रकार यह समझाते हैं कि अपने आप को सुखी करने और संतुलन बनाये रखने का सबसे अच्छा तरीका साधना का रास्ता है जिसे इन्सान को अपनाना चाहिए। जो लोग साधना में बैठते हैं वे इस बात से बड़े आनन्दित रहते हैं कि उन्हें अपने आपको संतुलन में रखने का रास्ता मिल गया है। आज के समय में सबसे आवश्यक है ध्यान साधना। इसमें तरह तरह के प्रयोग किये जाते हैं। एक प्रयोग में इन्सान के अन्दर के गुबारों को निकाला जाता है। कभी हँसाया, कभी रुलाया जाता है। कभी साक्षी भाव में बिठाया जाता है। कभी स्वामित्व के प्रयोग किये जाते हैं जिनमें आपको अपना मालिक बनकर चलने का अभ्यास सिखाते हैं।

एक प्रयोग है कि जो प्रक्रिया करता है वह उसे "रुक जा" कहकर अचानक रोक देता है। आपने बच्चों का खेल देखा होगा, खेलते खेलते एकदम बोलते हैं, "स्टेचू" और सब खिलाड़ी अपने को मूर्ति की तरह कर लेते हैं। हाथ पाँव जहाँ के तहाँ रुक गये। बच्चों का यह खेल साधना में बहुत काम आता है। साधना के दौरान गुरु ऐसे प्रयोग कराते हैं। कोई काम चल रहा है कि वहीं रुक जाने के लिए अचानक आवाज़ आयेगी। उस समय आँखें स्थिर हो जाएँगी और मुँह खुला रह जायेगा। लेकिन एक काम और भी करना होगा आपको, मन को भी वहीं का वहीं रोक देना होगा, सोचना कुछ नहीं। जहाँ खड़े हो वहीं शान्त होकर मूर्तिवत खड़े रहो। अब

क्या काम छूट गया है? गुरु आगे क्या कहने वाले हैं? कुछ भी नहीं सोचना। कितनी देर मूर्ति (स्टेचू) बना कर रखेंगे, इसका भी कुछ पता नहीं। दस मिनट या आधा घण्टा कुछ भी हो सकता है। अथवा दो मिनट के बाद ही कहें कि काम शुरू करो। इस प्रयोग का प्रयोजन है कि आप अपने को रोकने या चलाने वाले मालिक स्वयं बन जायें। ध्यान के माध्यम से आदमी को समर्थ बनाया जाता है जिससे वह अपने आप को ढंग से चलाने वाला बन जाए।

वास्तव में आदतें इतनी बलवान होती हैं कि हम उनसे बाहर निकल ही नहीं पाते। इन्सान कसम खायेगा कि आज के बाद गुस्सा नहीं करूंगा परन्तु कुछ ही देर बाद जब किसी पर गुस्सा आ गया तो कहेगा "हमें तो पता ही नहीं चला और कसम टूट गई।" किसी आदत को डाल लेना आसान हो सकता है पर छोड़ पाना आसान नहीं होता। आदतों का पेड़ लगाना बहुत आसान है और शुरुआत में उसे उखाड़ कर फेंक देना भी आसान है। लेकिन जब उसने जड़ पकड़ ली और जड़ मज़बूत हो गई क्योंकि आप उसको पानी और खाद देते रहे, तो फिर इस पेड़ को उखाड़ना कठिन होगा। आरी और कुल्हाड़ी की मदद से कई आदमी मिलकर, जब विभिन्न कोशिशें करते हैं तो कई दिनों बाद ही ऐसा पेड़ गिरा पाते हैं। ऐसे ही अगर आदतों ने मजबूती पकड़ ली है तो फिर उनको छुड़ाना आसान नहीं होता।

नदी जहाँ से निकलती है वहाँ बहुत छोटी होती है। अग्नि जब शुरू होती है तो चिंगारी का रूप होती है लेकिन अगर फैल जाय तो भयंकर। ऐसे ही मनुष्य के अन्दर आदतें जब विशाल रूप धारण कर लेती हैं तो इन्सान को पूरी तरह बांध लेती हैं। अगर आपसे कह दिया जाये कि आज से क्रोध छोड़ देना और आप भी कसम खा लें कि आज से गुस्सा नहीं करूंगा, क्रोध नहीं करूंगा तो इसी बात पर क्रोध आना शुरू हो जायेगा कि कसम क्यों खाई। क्रोध छूटेगा नहीं। शास्त्रकार क्रोध का निषेध करते हुए इसको छोड़ने की भी एक विधि बताते हैं। एक विधायक तत्त्व है जो नकारात्मक है उसे छोड़ देना। दूसरा पक्ष है सोचना, अर्थात् क्रोध को दूर

करने के चक्कर में पड़ने की बजाय पहले क्षमा के गुण को अपनाने की कोशिश करना। सोचना कि मैं क्षमाशील हो गया हूँ, मैं सबको क्षमा करने वाला बन गया हूँ। इस तरह जिसके प्रति क्रोध आया है उसे क्षमा करने को आप तैयार हो गये। अब क्रोध कैसे टिकेगा? झंझट यहीं खतम हो गया। कई बार छोटे बच्चे अपनी माँ से अपनी बात मनवाने के लिये गुस्सा करते हैं, माँ को थप्पड़ तक लगा देते हैं। तब माँ क्या करती है? क्या उसके थप्पड़ का जवाब थप्पड़ से देती है? हँसकर टाल देती है न? प्यार से पुचकार कर बैठा देती है न? एक वायदा भी कर देती है कि अच्छा तुम्हें कल दिलवा देंगे।

क्षमाभाव जब अन्दर पैदा हो जाता है, तभी क्रोध खतम होने लगता है। इसलिये क्रोध दूर करने की बात बाद में सोचना, पहले क्षमा के गुण को अपनाने की कोशिश करना। अन्यथा बात वही हो जायेगी कि किसी को कह दिया कि जब तुम साधना करने बैठो तो ध्यान टिकाने के लिए, ध्यान करते समय बन्दर का ख्याल नहीं करना। अब आदमी जब आँख बन्द करके बैठ गया तो बन्दर सबसे पहले याद आया। जिससे रोकोगे वही मुसीबत पहले सामने आती है। किसी आदमी को बात बताने से पहले कहो कि यह बात तुम्हें बता रहा हूँ पर किसी को बताना नहीं, तो क्या होगा? वह सबसे पहले अपने एक विश्वस्त आदमी को कहेगा कि एक बात तुम्हें बताऊँगा लेकिन शर्त यह है कि किसी को बताना नहीं। वह कहेगा कि नहीं बिल्कुल नहीं बताऊँगा। सारी बात सुनने के बाद वह भी अपने विश्वस्त आदमी को बतायेगा और कहेगा कि किसी को बताना नहीं। पहले जो कह दिया कि बताना नहीं तो उसी पर ध्यान टिक जायेगा कि खास खास आदमियों को बताना ज़रूर है।

क्रोध न आये इसके लिए हमने कई बार बहुत सारे प्रयोग आपको बताये हैं। ज़िनको बहुत ज़्यादा गुस्सा आता है उन्हें सोचना चाहिए कि गुस्सा कहीं आदत तो नहीं बन गया है। अगर आदत बन गया है तो फिर यह बहुत बड़ा दोष है। खूब पानी पीजिये, प्रकृति के बीच रहिये, भोजन चबा कर कीजिये। जिन लोगों को बहुत गुस्सा आता है उनके लिए प्रकृति के

बीच रहना अच्छा है। सुबह शाम खुली हवा में जाकर गहरे सांस लेने चाहिए। दिन में दो चार बार खुल कर हँसने की आदत बनानी चाहिए। अगर आप चाहते हैं कि गुस्सा आपका शान्त रहे, आपको गुस्सा नहीं आये तो सबसे बढ़िया प्रयोग है कि दिन में कम से कम चार बार खुल कर हँसने की आदत बनाइए। आप कहेंगे कि हम तो हँसते ही रहते हैं। यह हँसना नहीं है। कई बार लोग एक दूसरे को देखकर थोड़ी देर के लिये बत्तीसी निपोरते हैं, खुश होने का उपक्रम करते हैं लेकिन खुश होते नहीं हैं। कई लोगों को देखा है कि उन्हें हँसे हुए छः छः महीने तक हो जाते हैं। जब फिर हँसते हैं तो बड़े खतरनाक नज़र आते हैं। बहुत दिनों के बाद हँसते हैं न? एक महात्मा कहा करते थे कि समस्त प्राणायाम से बढ़कर हँसने का प्राणायाम महत्वपूर्ण है। प्राणायाम नई ज़िन्दगी देता है। कहते थे कि सभा सोसाइटी में बैठकर हँसना शिष्टाचार के खिलाफ़ है तो आप सभा सोसाइटी में नहीं हँसना। घर में जाकर हँसना। दरवाज़ा बन्द करके हँसना। वहाँ भी मौका न मिले तो रजाई ओढ़ कर हँस लेना। पर हँसना ज़रूर।

अब कहने के अन्दाज़ अलग अलग हो सकते हैं पर बात इतनी सी है कि जो आदमी प्रसन्न रहता है, हँसता रहता है उसे क्रोध कम आता है। क्रोधित आदमी को यदि कोई हँसा दे तो उसका क्रोध ही भाग जाता है। आप करके देखना; अगर एक आदमी को गुस्सा आया हुआ है और आप उसे हँसा दें तो उसका क्रोध भाग जायेगा। सब से बड़ी बात यह याद रखो कि **"मेरा परमात्मा क्षमाशील है, मैं उसका पुत्र हूँ, मुझे भी क्षमाशील होना चाहिए। मैं सबको माफ करने वाला बनूं, सबको अभयदान देने वाला बनूं।"** महापुरुषों की 'हाथ उठी हुई मुद्रा' इस बात का संकेत है कि वह अभय मुद्रा में बैठे सबको वरदान दे रहे हैं। हमें किसी को भयभीत नहीं करना चाहिए। जैसे महावीर स्वामी ने कहा, "जीयो और जीने दो।" स्वयं आनन्द में रहो और दूसरों को आनन्द बांटते चले जाओ। न खुद कष्ट में रहो न दूसरों को कष्ट दो। क्षमा को अपने जीवन का आभूषण बना लेना। क्षमा करना आया तो फिर क्रोध आपके जीवन में असर नहीं करेगा। जब बच्चों को मना करते हैं कि ऐसा नहीं क़रना, वैसा नहीं करना तो उनकी पूरी

शक्ति यह जानने में लगी रहती है कि ऐसा न करने का मतलब क्या है? ऐसा न करने को क्यों कहते हैं? तो यह जानने के लिए कि वैसा करने से क्या होगा एक बार तो बच्चा वैसा ज़रूर करेगा।

अज्ञान जब तक रहेगा तब तक दुःख देगा और अज्ञान जैसे ही जाने लगेगा व्यक्ति का दुःख दूर होना शुरू हो जायेगा। इसलिये जो पाँच क्लेश माने गये हैं उनमें से पहला है अज्ञानता। इसे हम अविद्या भी कहते हैं; अर्थात् अनित्य पदार्थों को नित्य मान लेना और नित्य को अनित्य मान लेना; जो चीज़ें दुनिया में मिटने वाली हैं उनके साथ ऐसे व्यवहार करना जैसे वह सदा रहेंगी और जो चीज़ें मिटेंगी नहीं, सदा रहेंगी उनकी उपेक्षा करना। शरीर ज़्यादा देर टिकेगा नहीं। सम्पत्ति ज़्यादा देर नहीं टिकेगी, सत्ता ज़्यादा देर नहीं रहेगी। हर सम्बन्ध के साथ संयोग वियोग जुड़ा हुआ है क्योंकि संसार को भगवान ने ऐसा ही बनाया है। यह द्वन्द्वमय संसार है। दिन के साथ रात, सुख के साथ दुख, लाभ के साथ हानि, मान के साथ अपमान जुड़ा हुआ है। इसी के कारण संसार अच्छा भी लगता है।

यह बात आपको विचित्र लगेगी। इसे ऐसे समझिये। आप भोजन करने बैठे हैं, आपको मीठा पसन्द है इसलिए खाने के लिए यदि मीठा ही मीठा दिया जाए तो आप कितना खायेंगे? यदि रसगुल्ले खाने को दिये जायें तो दो या चार तक तो अच्छे लगेंगे, पाँचवा दिया जाये तो कहेंगे बस और छठा दिया जाये तो कहेंगे कि और नहीं खा सकते। सातवां दिया जाय तो मुसीबत लगेगी। उसके बाद खिलाने वाला यदि प्रश्न करे कि क्या पेट में जगह नहीं है तो आप कहेंगे कि पेट में जगह तो है लेकिन मन में अब मीठे की जगह नहीं रही। मीठा खाया है इसलिए नमकीन लेकर आओ। मीठा खाते खाते जब मन भर जाये तो नमकीन खाते हैं। फिर नमकीन खाते खाते स्वाद बदलने के लिए कोई चटपटी चीज़ चाहिए। उसको खाते खाते फिर ठण्डी चीज़ लाने को कहेंगे। हर बार आप पहले से अलग चीज़ चाहते हैं। पहले से विपरीत के कारण ही आपका स्वाद बनता है। भगवान द्वारा बनाई विपरीत वाली व्यवस्था के कारण ही संसार का सौन्दर्य बना हुआ है। अगर ऐसा न हो तो आपको यह संसार अच्छा नहीं लगेगा। थोड़ा सुख

उठाने के लिये न जाने आपको कितने दुःख उठाने पड़ते हैं। थोड़ा मान पाने के लिये न जाने आपको कितने अपमान सहने पड़ते हैं। थोड़ी सम्पत्ति कमानी हो तो न जाने कितनी विपत्तियां मोल लेनी पड़ती हैं। हर चीज़ के साथ कुछ विपरीत जुड़ा हुआ है। हां, एक चीज़ ऐसी है जिसके विपरीत कुछ नहीं है, वह है आनन्द।

आनन्द के विपरीत कुछ नहीं है। सुख का विपरीत दुःख है और दुःख का विपरीत सुख। अब आप प्रश्न करेंगे कि आनन्द है क्या चीज़? जहाँ सारे गुण शान्ति हो, स्फूर्ति हो, मुस्कान हो, सन्तोष हो, तृप्ति हो, एक जगह आकर जुड़ जाएँ तो हृदय आह्लादित हो जायेगा, आनन्दित हो जाएगा। जैसे माँ अपने बच्चे को खिला रही है। मिठाई लेकर आई है। बच्चे को इतनी पसन्द आ गई कि खाता चला गया, माँ को उसने दी ही नहीं। खाने के बाद कहता है, "माँ, तुम्हारे लिये तो बची ही नहीं।" माँ कहती है, "कोई बात नहीं बेटा, तू खा ले।" बच्चे को खुश देखकर माँ के हृदय में जो अनुभूति हो रही है वह आनन्द की अनुभूति है। पानी में डूबते को आप बचा लें, किसी घायल आदमी को आप खून दें और वह बच जाये, फिर वह आदमी आपके आगे हाथ जोड़ कर कहे कि आप तो मेरे लिए देवता हैं और आप कहें कि नहीं भाई मैं तो एक साधारण इन्सान हूँ, बस इतनी खुशी है कि तू बच गया। उस वक्त आपके हृदय में जो हिलोर उठती है वह आनन्द की अनुभूति है। और यह आनन्द जिस समय समाधि में बैठकर व्यक्ति को मिलता है तो अद्‌भुत होता है।

सेवा और सिमरन, इन दोनों स्थितियों में आनन्द मिलता है। अगर सेवा में आनन्द नहीं मिलता तो इसका अर्थ है कि सेवा में कहीं कमी है, स्वार्थ जुड़ा हुआ है। आप सेवा के बदले मान चाहते हैं। **आनन्द परमात्मा का प्रसाद है जो दिखाई नहीं देता।** सेवा करके आओ, किसी को दिखाओ नहीं। आनन्द के रूप में परमात्मा का प्रसाद तुम्हें मिल जाएगा। जैसे जैसे आपको ज्ञान होता जायेगा, संसार में आपका जीना आनन्दपूर्ण होता जायेगा। प्रसन्नताएं बढ़ती जायेंगी। द्वन्द्व मिटना शुरू हो जायेगा। कष्ट क्लेश अपने आप भाग जायेंगे। जो नित्य पदार्थ हैं उनको आप जानेंगे और

जो अनित्य हैं उनसे आप ऊपर उठना शुरू हो जायेंगे। आत्मा नित्य है, शरीर अनित्य है। शरीर मिटेगा, आत्मा नहीं मिटेगी। हम लोगों की सारी कोशिश शरीर को सजाने और पदार्थों को इकट्ठा करने की होती है, लेकिन जब हमारे अन्दर आत्मा को भोजन देने के लिए तत्परता आ जाएगी तो ऐसा लगेगा कि अब कुछ पाना बाकी नहीं है। अन्यथा चाहे कितना भी कमा लीजिए यही महसूस करेंगे कि अभी वह नहीं मिला जिसकी ज़रूरत है। बहुत धन कमा कर भी आदमी की प्यास बाकी रहती है, ऊँची कुर्सी पर पहुंचने के बाद और ऊँची कुर्सी पाने की लालसा बाकी रहती है।

पुराने समय में एक ऋषि थे। उनका नाम इनुविन था। साधना के लिये बैठे थे। साधना सिद्ध हो गई। परमात्मा की दोनों शक्तियां 'ऋद्धि और सिद्धि' हाथ बाँध कर सामने खड़ी हो गईं। उन दोनों ने ऋषि से कहा, "तुम जो भी मांगना चाहो हम देने के लिए तैयार हैं। सम्पत्ति चाहिए तो वह मिल जायेगी, सत्ता चाहिए तो सत्ता मिल जायेगी, संसार के भोग पदार्थ चाहिए तो वह मिल जायेंगे।" ऋषि ने कहा, "नहीं अब कुछ नहीं चाहिए। परमात्मा क़ा ध्यान करते करते, आनन्द लेते लेते अब इच्छायें ही खत्म हो गई हैं।" उन दोनों देवियों ने हाथ जोड़ कर कहा, "हमें आदेश हुआ है कि कुछ न कुछ इस ऋषि को देकर आओ। हम कुछ देने आईं हैं इसलिए आप कुछ न कुछ हमसे ज़रूर मांगिये।" ऋषि ने कहा, "अब बहुत देर हो गई। जब तक मुझे इच्छा थी तुम देने नहीं आईं और अब इच्छा नहीं तो तुम देने आई हो।"

ऋद्धि और सिद्धि दोनों ने कहा, "जब तक तुम भिखारी थे सब तुमसे दूर थे। अब क्योंकि तुम दाता हो गये हो, तुम्हारे अन्दर स्वयं की शक्ति आ गई है तो हमें आदेश हुआ है कि ऋषि को कुछ देकर आओ। हम कुछ देना चाहती हैं इसलिए तुम कुछ न कुछ ज़रूर लो। तुम अन्दर से परमात्मा की कृपा से भरे हो। तुम्हारे अन्दर से अज्ञान हटा। अज्ञान हटा तो अभिमान भी गया। पूर्ण विनम्रता आने से तुम्हारे अन्दर की स्थिति ऐसी हो गई कि परमात्मा का तत्त्व, उसकी कृपा तुम्हारे अन्दर भर गई है। अब तुम जो भी मांगना चाहो हम तुम्हें दे सकती हैं। तुम हाथ लगाओगे तो मुर्दा जिन्दा और

रोगी ठीक हो सकता है।" ऋषि ने कहा, "अच्छा अगर आप देना ही चाहती हैं तो मेरे शरीर की छाया में ऐसी शक्ति दें कि यह छाया जिसके ऊपर पड़ जाये उसके रोग शोक, कष्ट क्लेश, पीड़ा दुःख सब दूर हो जायें। लेकिन जिसका भला हो उसे पता न चले कि किसके कारण ऐसा हुआ, और मुझे भी पता न चले कि किसका भला हो गया। इस स्थिति में चलना चाहता हूँ।" तब ऋद्धि और सिद्धि ने कहा, "हम तो इसलिये देना चाहतीं हैं कि लोगों को पता चले कि कोई साधु जा रहा है, कोई तपस्वी जा रहा है।" साधु ने हाथ जोड़ कर कहा, "अगर ऐसी बात है तो अपनी ऋद्धि सिद्धि की शक्तियाँ वापिस ले लीजिए। क्योंकि अगर दुनिया को पता लगने लग गया कि मैं भला कर रहा हूं तो मेरे अन्दर अहंकार आ जायेगा। अहंकार आ गया तो मेरे से मेरा परमात्मा छिन जायेगा। मैं भगवान से दूर हो जाऊंगा। इसलिए आप मुझे यह शक्ति न ही दें" और कहते हैं कि उसी समय एक शक्ति प्रकट हुई। उस शक्ति ने कहा "तुम स्वीकार कर लिये गये हो।"

जब भी किसी तपस्वी की तपस्या सफल होती है उसे ऋद्धि सिद्धि मिल जाती है, नाम भी मिल जाता है, धन भी मिल जाता है। लेकिन जो इनको भी ठोकर मार कर कहे कि किसी का भला हो, मैं माध्यम बन जाऊँ परन्तु मुझे अहसास न हो कि मेरे कारण किसी का भला हुआ है; मैं सोचूं कि मैं तो तेरा यन्त्र हूँ, तेरा खिलौना हूँ। तू जो चाहे मुझ से करा। जब यह स्थिति आ जाती है तब सच्चा ज्ञान जागता है। उस समय इन्सान केवल भगवान को देखता है। इसलिये ध्यान रखना कि पाँच क्लेशों में से पहला हैः अज्ञान, अविद्या। ज्ञान आते ही पीड़ा मिटती है, क्लेश मिटता है। मनुष्य अपना क्लेश तो मिटाता ही है वह दूसरों का भी क्लेश मिटायेगा। अज्ञान के हटते ही एक दूसरा क्लेश भी अपने आप हटने लग जाता है। यह दूसरा क्लेश है, 'मैं' की भावना। इन्सान आखिर तक अपने 'मैं' को बचाने में लगा रहता है, 'मैं' यह और 'मैं' वह।

इस 'मैं' को ही माया कहा गया है। आपने देखा होगा कपड़ों को जब माया डाली जाती है (जिसे कुछ लोग मान्डी देना, कलफ देना कहते हैं, कुछ माया देना भी कहते हैं) तो कपड़ा अकड़ जाता है। उस माया को

निकालने के लिये कपड़ा पानी में भिगोना पड़ता है और डन्डे मारने पड़ते हैं, तब जाकर निकलती है अकड़। अपने अन्दर माया आ जाये तो वहाँ भी उसका ऐसा ही प्रभाव होता है, इन्सान अकड़ कर चलने लग जाता है। इसीलिए दौलत को माया कहा है। दौलत दो लातें लेकर आती है; पहली लात कमर में मारती है तो आदमी अकड़ कर चलता है। ऊपर ही देखता है, नीचे देखता ही नहीं। वह जब जाने लगती है तो दूसरी लात छाती पर मार कर जाती है, फिर आदमी नीचे ही देखता है, ऊपर देखता ही नहीं।

माया को देखकर सब प्रणाम करते हैं। मायापति का ध्यान नहीं, माया का ध्यान है। माया के तीन रूप हैं। वैसे तो धन कमाओ तो मुसीबतें ज़्यादा हैं। मुसीबतें हैं भी अलग अलग तरह की। पहले तो धन कमाने की चिन्ता। फिर धन बचता नहीं इसकी चिन्ता। आदमी बार बार कहता है कमाते तो हैं लेकिन बचता नहीं। बचने लग जाये तो फिर उसकी सुरक्षा की चिन्ता। अगर सुरक्षा हो भी जाये तो भी कहीं चोर डाकुओं का भय, तो कहीं सरकार का भय। काली गोरी दो तरह की लक्ष्मी है न? तो सुरक्षा की चिन्ता। और अगर सम्पत्ति सुरक्षित हो भी गई तो वारिस की चिन्ता। आगे वाला कोई सम्भाल पायेगा या नहीं? आगे वाले लोग कहीं मेरी सम्पत्ति को खाक न कर दें। अविद्या, अस्मिता के अतिरिक्त किसी के प्रति राग द्वेष या फिर किसी के प्रति मोह या वैर भाव, यह सब क्लेश माने गये हैं। आखिरी और पाँचवा क्लेश माना गया है, अभिनिवेश अर्थात् मौत का भय, हर समय कायरता में भयभीत रहना। इन पाँच तरह के क्लेशों के कारण इस शरीर में रहता हुआ मनुष्य अर्थात् क्षेत्रज्ञ दुःखी होता रहता है। अगर इस क्षेत्र में रहता हुआ व्यक्ति आत्मज्ञान से अपने आपको पका ले तो कोई चीज़ उसको कष्ट नहीं दे सकती।

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि, "यह शरीर क्षेत्र है तथा जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, अहंकार, बुद्धि, पन्चमहाभूत तथा तन्मात्र इस शरीर के अवयव हैं। अवयव, अंग-प्रत्यंग, करण और उपकरण के माध्यम से यह जीवात्मा संसार के भोग भोगता है। जीवात्मा की कुछ आकांक्षाएं, जैसे योग की इच्छा, जानने की इच्छा, अतृप्ति वाली भावना

आदि, जो अधूरी रह जाती हैं, उनको पूरा करने के लिए विधाता उसे शरीर देता है। जीव संसार में आकर अपने शरीर के माध्यम से तरह तरह के कर्म करता है एवं तरह तरह के भोग भोगता है; और ज्यों ज्यों यह जीवात्मा नित्य नये कर्म करता जाता है त्यों त्यों वह और नए बन्धनों में बंधता जाता है। इस प्रकार आवागमन के चक्र से उसका पीछा नहीं छूटता।

जब तक आपने कर्म नहीं किया था तब तक आप मुक्त थे। एक कर्म किया और बन्धन में आ गये। और जिस पर प्रावधान यह है कि कर्म करने की आज़ादी तो सबको है, पर फल भोगने की आज़ादी किसी को नहीं है। फल भोगने में सब गुलाम हैं, परतन्त्र हैं। कर्मफल को भोगने के लिए सब भगवान की व्यवस्था में बन्धे हैं। कोई नहीं चाहता कि वह दुःख भोगे लेकिन जब दुःख आता है तो भोगना ही पड़ता है। सब मान चाहते हैं परन्तु जब अपमान मिलता है तो वह भी सहना पड़ता है। सब उन्नति चाहते हैं परन्तु अवनति की पीड़ा भी भोगनी पड़ती है। सब चाहते हैं कि हमारा घर एक रहे, एकता बनी रहे, लेकिन फिर भी विघटन होता है, समस्याएं आती हैं। व्यक्ति चाहता है कि लाभ ही लाभ हो, हानि न हो; लेकिन हानि आती है। यह कर्म का भोग-चक्र है। इसमें हम सब बंधे हुए हैं। बच्चा हो, जवान हो या बूढ़ा, सबको भोगना है।

देह धरि का दण्ड है, सब कोऊ को होय।
ज्ञानी भुगते हँस-हँस कर, मूरख भुगते रोय।।

बात बस इतनी सी ही है। शरीर धारण किया है तो, दुःख सुख दोनों होंगे। ज्ञानी हंस कर भुगतेगा, अज्ञानी रोकर भोगेगा। इसीलिये तो चाणक्य ने कहा था, "दुनिया में दो ही आदमी सुखी हैं, पहला परले दर्जे का मूर्ख तथा दूसरा परले दर्जे का ज्ञानी। बीच वाले दुःखी ही रहेंगे।" यह दिमाग जब तक सोचता रहेगा तब तक आदमी दुःखी रहेगा। दिमाग हटा दो, दुःख का अहसास मिट जाएगा। इसीलिए जिन चीज़ों के प्रयोग से दिमाग सुप्त हो जाता है, उनका प्रयोग कर के आदमी सोचता है कि शान्ति मिल गई। इन्सान जब नशा करता है तो बुद्धि काम करना बन्द कर देती है। अन्दर की स्मृति लुप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह जानवरों की दुनिया में पहुँच

जाता है, जहाँ कोई स्मृति, कोई मान अपमान, कोई लेना देना, कोई झगड़ा फसाद नहीं है, दिमाग एकदम कुन्द हो जाता है। परन्तु जितनी देर नशा रहता है आदमी कहता है कि शान्ति है। नशा टूटते ही फिर सब याद आने लगता है। वही लड़ते झगड़ते परिवार के लोग, वही साझीदार जिसने धोखा दिया, वही घाटा, कर्जा जो सिर पर चढ़ा है, वही शरीर के रोग जो परेशान करते हैं, सभी विपदाएं दोबारा घेर लेती हैं।

इसके विपरीत यदि व्यक्ति ज्ञानी हो जाए तो मानसिकता दूसरी हो जाती है। वह जान लेता है कि वह कहाँ उलझा हुआ है। धागे उलझे हुए हों तो बुद्धिमान व्यक्ति आरम्भ से ही उनको कसना या खींचना शुरू नहीं करता, बल्कि देखता है कि अटक कहाँ है, उलझन कहाँ है; जैसे ही समझ में आता है कि किस जगह उलझा हुआ है वैसे ही उस जगह से थोड़ा थोड़ा ढीला करना शुरू कर देता है। जितने धैर्य से धागों को खींचता है, सम्भालता है उतनी ही सरलता से धागे सुलझते जाते हैं। यदि ज़ोर लगायेगा, गुस्सा करेगा, आक्रोश में आयेगा या किसी भी तरह परेशान होगा तो धागा और उलझता जायेगा। इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति संसार के कर्म बन्धन को भी धैर्यपूर्वक सुलझा कर बाहर निकल आता है, जब कि अज्ञानी अधीर होकर उसमें और भी उलझता चला जाता है।

भगवान ने कहा है कि, "यह शरीर, जो मैंने जीवात्मा को दिया है, यह उसका कार्यक्षेत्र है। कार्य करने के लिए शरीर को उपकरण दिये हैं, जैसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, आँख, नाक, कान, जीभ (जो स्वाद चखती है)व त्वचा, जिनसे ज्ञान का संचार होता हैं; पाँच कर्मेन्द्रियाँ हाथ, पाँव, गुदा, मूत्रेन्द्रिय तथा जिह्वा (जो बोलती है) हैं जिनसे कर्म किया जाता है"। हम ज्ञानेन्द्रियों से सूचनाएं प्राप्त करते हैं और कर्मेन्द्रियों से कर्म करते हैं अर्थात् आँखों से देखेंगे, हाथों से करेंगे, पावों से चलेंगे। भगवान द्वारा दी गई इन दस इन्द्रियों के साथ यदि मन जुड़ जाये तो वह ग्यारह हो जाती हैं। हमारे चार उपकरण हैं मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इन चारों को अंतःकरण भी कहा गया है। मन का काम मनन करने का, बुद्धि का काम निश्चय एवं धारणा करने का और चित्त का काम स्मृति को रखने का है। अहम् तत्व वह है जो

निर्धारित करता है कि मैं क्या हूँ? मेरी शक्ति क्या है? पाँच महाभूत ज्ञानेन्द्रियों के पाँच तन्मात्र हैं अर्थात् इन्द्रियों के विषय। कान को ध्वनि, आंखों को रूप, जिह्वा को स्वाद, नाक को घ्राण व गन्ध और त्वचा को स्पर्श चाहिये। इन्द्रियाँ इनके पीछे भागती हैं। सांख्य तथा न्याय दर्शन का यही विषय है।

कणाद्ऋषि ने लिखा है कि जीवात्मा के लक्षण प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मनोगति आदि होते हैं। गौतम ऋषि ने भी समझाया है कि **इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञानानि आत्मनोलिङ्गम्**। ये सब आत्मा के चिन्ह हैं। संसार में प्रत्येक व्यक्ति इन्हीं के आधार पर कुछ कर्म करता दिखाई देता है। कर्म के साथ उसकी इच्छा जुड़ी होती है: जैसे किसी चीज से वह द्वेष करेगा तो उससे दूर हटना चाहेगा। जो चीज़ दुःख दे रही हो उसके प्रति वितृष्णा होती है और उससे दूर हटने की इच्छा होती है। अतः इच्छा, द्वेष, प्रयत्न ये सब आत्मा के लक्षण माने गये हैं। परन्तु ये लक्षण तब दिखाई देते हैं जब जीव शरीर के अन्दर प्रवेश करता है। इन लक्षणों के प्रभाव में वह फिर कर्म करता है और बंध जाता है। मिथ्या ज्ञान के कारण गलत कर्म किये और बंध गया। दिशा गलत हो गई तो दशा भी गलत हो जायेगी। इसका एक ही इलाज है, ज्ञान का होना। सही ज्ञान हो तो कष्टों से निजात हो और मुक्ति मिले।

लेकिन ज्ञान है क्या? ज्ञान किसे कहा गया? भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञानी व्यक्ति के लक्षण व गुण इस प्रकार बताए हैं :

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।७।।
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।८।।

अमानित्वम् अर्थात् जब मनुष्य के मन में मान पाने का भाव शेष न रहे। ज्यों ज्यों उसमें अमानत्व भाव आयेगा त्यों त्यों ज्ञान की वृद्धि होगी। कोई अच्छा कहे या बुरा, सुनकर व्यक्ति मुस्कुराये और आगे बढ़ जाये। ऐसी मनःस्थिति हो जाए कि कोई प्रतिक्रिया ही न हो। जब डाक्टर की

दवाई का मरीज़ पर कोई असर न हो तो डाक्टर कहता है कि गोली बेकार गई; वैसे ही किसी व्यक्ति की गाली का यदि आप पर कोई असर नहीं होगा तो उसकी गाली बेकार जाएगी। जो दूसरे की गोली और गाली को बेकार कर दे, कोई फर्क ही न पड़े तो समझो कि उसे ज्ञान आ गया है। जब कोई आदमी किसी को परेशान करने की कोशिश में थक कर चूर हो जाए लेकिन दूसरा व्यक्ति परेशान न हो तो समझ लेना कि वह ज्ञानी है। दुनिया आपको खिलौना बनाना चाहती है, भड़का कर, हँसाकर, रुलाकर, आपके अन्दर द्वेष व ईर्ष्या जगाकर। लेकिन अगर आप खिलौना नहीं बनें, शान्त व एकरस होकर, प्रतिक्रिया रहित होकर बैठे रहे तो समझ लेना कि आपको ज्ञान हो गया है।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा था कि ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है? क्षेत्र क्या है और क्षेत्रज्ञ क्या है? अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने गीता के अन्दर इस विज्ञान को सुन्दरता से समझाया : ज्ञान है मान और अपमान से ऊपर उठ जाना **अमानित्वम्**। दंभ का न होना, छल, कपट, कुटिलता आदि का भी न होना। पूर्ण ईमानदारी जिसके अन्दर आ जाये, समझना उसे ज्ञान आ गया। अगर आप ईमानदार हो गये तो दूसरे आदमी को भी आप पर भरोसा आयेगा। अगर आपने कपट करना शुरू कर दिया अर्थात् अगर आप बेईमान हो गये तो फिर कोई आपका विश्वास नहीं करेगा। बेईमान का मतलब है–'ब' से बदकर, 'ई' से ईर्ष्या, 'म' से मक्कार और 'न' से नमकहराम। बेईमानी आदमी की आंखों से झलकती है। बेईमान व्यक्ति की आंखों में ईर्ष्या दिखाई देगी, मक्कारी दिखाई देगी और दूसरों को सताने की भावना दिखाई देगी। दूसरे के अहसान जानते हुए भी वह उसके सिर पर कूड़ा डालने की कोशिश करेगा क्योंकि वह बेईमान हो गया है और यदि किसी व्यक्ति के अन्दर ईमानदारी आ जाये तो उसके मन में परमात्मा के प्रति सच्ची निष्ठा जाग जाती है, अन्दर एक शुद्धता भर जाती है। अन्दर से सन्तुष्टि, बाहर से चेहरे पर शान्ति, प्रसन्नता, माधुर्य और उत्साह नज़र आएगा। ऐसे व्यक्ति के मुख से सबके लिये मंगलकामना निकलेगी। भगवान समझाते हैं कि दम्भ से रहित व्यक्ति ज्ञानी है। वह भगवान को परम प्रिय होता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि संसार में चार तरह के लोग हैं जो भगवान का भजन करते हैं। एक जो दुःख पड़ने पर भगवान का नाम लेते हैं, दूसरे जो कामनायें पूरी करने के लिये भगवान से प्रार्थना करते हैं। तीसरे वे जिनके अन्दर जिज्ञासा और भक्ति जागी है और चौथी तरह के वे लोग हैं जिनकी जिज्ञासायें शान्त हो गई हैं और वे तत्वज्ञानी हो गये हैं। जो तत्वज्ञानी भक्ति में डूबने लगते हैं वे सर्वोत्कृष्ट भक्त होते हैं और मैं उनको बहुत प्यार करता हूँ।

अष्टावक्र महागीता में अष्टावक्र और राजा जनक के संवादों में यह संदर्भ आता है कि बहुत प्रयास करने की अपेक्षा ज्ञान का दीपक जला लेना ही पर्याप्त है। **ज्ञान का दीपक जल गया तो कष्ट-क्लेश अपने आप दूर हो जायेंगे, अन्धेरा भाग जाएगा। अन्धेरे से लड़ाई मत मोल लो, केवल दीपक जलाओ। ज्ञान को बढ़ाओगे तो अज्ञान अपने आप मिटना शुरू हो जायेगा।** अन्धेरा कोई कूड़ा कचरा नहीं है कि उठाकर बाहर फेंक दिया जाये। डेविड ह्यूम की कविताओं में अंधेरे के बारे में एक बड़ा सुन्दर संदर्भ है। भगवान के पास जाकर सूर्य ने स्तुति गाई, "मुझमें जो कुछ भी है वह तेरा ही प्रकाश है, तेरी अनुभूतियाँ व तेरी कृपायें हैं।" सूर्य ने फिर भगवान से पूछा, "आपको मेरे कार्यों से सन्तुष्टि है या कोई शिकायत है?" भगवान ने कहा, "आज एक व्यक्ति ने आपकी शिकायत की है।" सूरज ने पूछा "किसने।" भगवान ने तब बताया कि एक 'अंधेरा' नाम का जीव आया था। उसने शिकायत की कि वह जहाँ भी जाता है सूर्य नाम का जीव उसके पीछे उसे मारने के लिये आता है। वह सूर्य से छिपता फिरता है और बहुत परेशान है। उसने मुझसे शिकायत की है कि तुम अन्धेरे को मिटाना चाहते हो। सूरज ने हाथ जोड़कर भगवान से कहा, "भगवन्! मैं तो ऐसे किसी जीव को जानता ही नहीं। मैं तो आपसे प्रकाश लेकर बांटता रहता हूँ। मुझे तो पता भी नहीं कि संसार में अन्धेरा नाम का कोई जीव है। अगर उसे मुझसे शिकायत है तो कृपा करके उसे मेरे सामने ले आइये। उस अन्धेरे को आप मेरे सामने बुलाइये।" भला अन्धेरा सूर्य के सम्मुख कैसे आता? आता तो मिट जाता।

ह्यूम की कविता का भाव यही है कि **अन्धेरा अपने आप में कुछ नहीं है। प्रकाश का अभाव ही अन्धेरा है। प्रकाश हो गया तो फिर अन्धेरा है ही नहीं। अज्ञान भी कुछ नहीं है। ज्ञान का अभाव अज्ञान है; ज्ञान जगा लोगे तो अज्ञान मिट जायेगा।** तब वैर, कष्ट, क्लेश, दु:ख, पीड़ा सभी मिट जायेंगे। इसीलिये कहा गया है कि ज्ञानियों का संग करो। ज्ञानियों का संग करने से अज्ञान मिटता है। अज्ञान मिटेगा तो भक्ति अपने आप जागेगी और जीवन ऊँचाई की ओर चलेगा। सबसे पहले अज्ञान को मिटाने का प्रयास करो। अज्ञान जब मिटता है तो सबसे पहला लक्षण जो दिखाई देता है वह है मान पाने की कामना का हट जाना, दम्भ का न होना तथा पूरी ईमानदारी का आ जाना।

ज्ञानियों का तीसरा लक्षण यह है कि वे अहिंसक होते हैं। किसी को कष्ट नहीं पहुँचाते। हथियारों से, वाणी व अंग प्रत्यंगों से इन्सान जितनी हिंसा करता है उनसे अधिक घातक हिंसा वह अक्ल व दिमाग से करता है। दिमाग का मारा हुआ ऐसा खत्म हो जाता है कि वह कहीं का नहीं रहता। ऊँचे पद पर बैठा व्यक्ति किसी ईर्ष्या में या बदले की भावना से कलम चला देता है। काग़ज़ से या कलम से किसी को दी गई चोट बहुत बड़ी चोट होती है। **"लमहों ने खता की, सदियों ने सज़ा पाई।"** एक लमहे में हुई गलती की सदियों तक सजा भुगतते रहे। गलती होगी तो वह एक लमहे में ही होगी। वह एक लमहा सम्भालना आसान नहीं होता। जब अन्दर वैर आयेगा, प्रतिशोध और जलन होगी और क्रोध चढ़ेगा तब अपने आपको संभाल पाना आसान नहीं होगा। क्रोध दूर करने की ज़्यादा चिन्ता करने से तो क्रोध दूर नहीं होगा। क्रोध दूर करने के लिए क्षमा का गुण अपनाओ। यदि सोच लो कि कोई कुछ भी करे या कहे मैंने सबको क्षमा करते जाना है, माफ़ करते जाना है तो अन्दर से क्रोध हटता चला जायेगा। **द्वेष को हटाना है तो प्रेम को जन्म दो; शत्रुता हटानी है तो मित्रता करो; लोभ को दूर करना है तो सन्तोष करना सीखो; अभिमान को मिटाना है तो नम्रता को अपनाओ।** सिर झुका रहे, हाथ जुड़े रहें। कठोरता और घृणा को मिटाना है तो भक्ति और प्रेम में डूबो, ज़िन्दगी बदलनी शुरू हो जायेगी।

एक संपूर्ण परिवर्तन, एक क्रान्ति आपके जीवन में घटेगी। जिस आदमी के अन्दर भक्ति प्रवेश कर जाती है वह आदमी धार्मिक हो जाता है। अन्दर का आचार विचार बाहर दीखने लगता है। महसूस होने लगता है कि उसमें मान की कामना, वासना, दम्भ और हिंसा शेष नहीं है।

भगवान ने अपने उपदेश में 'क्षान्ति' शब्द कहा है- **'क्षान्ति आर्जवम्'**। क्षान्ति का अर्थ है सहनशीलता। ज्ञानी व्यक्ति में सहनशीलता दिखाई देगी। दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ेगा। बिच्छू डंक मारना नहीं छोड़ेगा। सर्प ने भी विष नहीं छोड़ना। जिस प्रकार ये सब अपने स्वाभाविक दोष को अपने साथ जोड़े हुए हैं उसी प्रकार भला आदमी अपनी भलाई को अपने जीवन के साथ जोड़कर उसे अपना स्वभाव बना लेता है और फिर वह अपनी भलाई छोड़ नहीं सकता। ज्ञानी अपने अन्दर की शान्ति को भंग नहीं होने देता। वह हमेशा सबके कल्याण की कामना करता है, ठीक वैसे ही जैसे चन्दन को काटो या जलाओ वह अपनी सुगन्ध नहीं छोड़ता। कई बार भले लोग बुरे लोगों से प्रभावित हो जाते हैं। बुरा तो बुराई छोड़ नहीं रहा, भला भलाई छोड़ने को तैयार हो जाता है। बुरा तो बुरी संगति से बाहर निकल नहीं रहा परन्तु भला आदमी उसकी संगति में जाकर भलाई छोड़ बैठता है। कोशिश करो कि बुरे के साथ बुरा नहीं होना बल्कि अपनी भलाई का रंग उस पर चढ़ाना। भले आदमी के नज़दीक जो आये उस पर भलाई का रंग चढ़ जाये। इसके लिये अभ्यास करना पड़ेगा। अच्छे लोगों के साथ बैठने का अभ्यास, बुरों से दूर रहने का अभ्यास। वाणी में नियंत्रण का अभ्यास, मिर्च मसाले वाली चीज़ें खाकर अपने अन्दर के विकार को न जगने देने का अभ्यास। अगर भोजन सात्विक हो, वातावरण सात्विक हो, संगति सात्विक हो और वस्त्र सात्विक हों तो अन्दर शान्ति आयेगी।

एक बार एक राजा की सवारी निकल रही थी। आगे आगे उद्घोषक घोषणा करता जा रहा था कि महाराजाधिराज, प्रजापालक, दयालुदेव, कल्याण करने वाले दाता, दीनदयाल पधार रहे हैं; वंशावली का नाम भी बोला जा रहा था। आगे घोड़ों पर बैठे सिपाही रास्ता साफ कराते दौड़ते जा रहे थे। रास्ते में एक अन्धा साधु बैठा हुआ था। एक सिपाही उसके पास

गया और गुस्से में चिल्लाकर बोला, "बाबा आवाज सुनाई नहीं देती? राजा साहब की सवारी आ रही है। चोट लग जायेगी, दूर हट जाओ।" बाबा ने कहा, "समझ लिया मैंने। कारण क्या है यह भी जान लिया।" सिपाही ने सोचा आदमी पागल है। थोड़ी देर बाद इंस्पैक्टर आया। उसने कहा, "बाबाजी, आप यहाँ क्यों बैठे हैं? सिपाही ने आपको मना नहीं किया? इतनी भीड़ में आपको चोट लग सकती है।" साधु ने कहा, "समझ लिया, इसी कारण।" इंस्पैक्टर को भी लगा कि यह अनर्गल बोल रहा है। थोड़ी देर बाद मन्त्री आया। वह हाथ जोड़ कर बोला, "बाबा प्रणाम करता हूँ। आपको शायद पता नहीं चला कि आज राजा की सवारी इधर आ रही है। किसी ने आपको प्यार से सहारा देकर किनारे पर नहीं बैठाया? आइए, मैं आपको सहारा देता हूँ, आप किनारे पर बैठिये; आपको बीच में नहीं बैठना चाहिये, इससे आपको चोट लग सकती है।" अन्धे बाबा ने कहा, "समझ लिया, इसी कारण।" मन्त्री को भी समझ नहीं आया कि बाबा क्या बोल रहा था।

इतनी देर में राजा की सवारी आ गई। राजा ने देखा कि गेरुए वस्त्रों में, आंखों से हीन, हाथ में माला लिए एक साधु रास्ते में बैठा है। राजा रथ से उतर कर नीचे आया और बोला, "बाबा मैं आप लोगों का एक सेवादार हूँ। आपको प्रणाम करने आया हूँ। आशीर्वाद का आकांक्षी हूँ। मेरे आदमियों से आपको कोई कष्ट तो नहीं पहुँचा? यदि कोई कष्ट पहुँचा हो तो मैं माफ़ी मांगना चाहता हूं।" बाबा ने कहा, "समझ गया, इसी कारण।" तब तक मन्त्री, इंस्पैक्टर और सिपाही भी आ गये। सब सोच रहे थे कि आखिर बाबा कहना क्या चाहते हैं। उसने सबसे एक जैसी अनर्थक बात कही थी। तब राजा ने कहा, "कृपया ज़रा विस्तार से समझाइये। हम साधारण लोग हैं, आप जैसे ज्ञानियों की भाषा नहीं समझते।" बड़े प्यार से बाबा ने उत्तर दिया, बोले, "मैं सब की भाषा सुन सुन कर सोच रहा था कि कोई सिपाही है तो क्यों है? कोई इंस्पैक्टर है तो क्यों हैं? मन्त्री या राजा है तो क्यों है? अब समझ में आ गया कारण। जिस आदमी का जैसा व्यवहार है भगवान ने उसे वैसी गद्दी दे रखी है। सिपाही का व्यवहार सिपाही जैसा है इसलिये वह सिपाही है, वह राजा नहीं बन सकता।"

मालिक के दरबार में कृपाएं हमेशा बरसती हैं। वह सबको बाँट रहा है। ऊँचा उठने के लिए वह सबको बहुत कुछ दे रहा है। लेकिन हर आदमी अपने व्यवहार के कारण नीचे गिरा हुआ है, ऊपर नहीं उठ पा रहा। व्यक्ति कोशिश करके अपने अन्दर विनम्रता ले आये, तो वह बड़ा हो जायेगा; अकड़ेगा तो छोटा हो जायेगा। सिपाही ज़्यादा अकड़ वाला था, इंस्पैक्टर थोड़ा कम, मन्त्री और भी कम। राजा आया तो पूर्ण विनम्र, उससे पता लग गया कि यह राजा है।

भगवान ने कहा, "ज्ञानी होने की सीढ़ियाँ बता रहा हूँ। तुम अभिमान को छोड़ दो, मान की कामना छोड़ दो, सहनशील व अहिंसक होते हुये आगे बढ़ने लगो तो ज्ञान की सीढ़ियाँ चढ़ने लग जाओगे।" भगवान के धाम तक पहुँचना कठिन भी है और बहुत आसान भी है। ज़रूरत अपने अन्दर थोड़ा परिवर्तन लाने की है। भगवान ने अपने को छुपा नहीं रखा है। पर्दा तो हमारी आँखों पर पड़ा है, हमारी बुद्धि और हमारे अन्तःकरण पर पड़ा है।

बादल बरस रहा है पर चातक के मुख में बूंद नहीं गिर रही तो इसमें बादल का क्या दोष? सूर्य उगा हुआ है लेकिन उल्लू को दिखाई नहीं देता तो सूर्य का क्या दोष? बसन्त ऋतु ने आकर सब पेड़ों को पत्ते दिये, सबको फूल दिये लेकिन करील के पेड़ पर फिर भी फूल न आये तो बसन्त ऋतु का क्या दोष? परमात्मा अपनी कृपा दिन रात बरसा रहा है लेकिन हमारे अन्दर ही कमी है तो परमात्मा का क्या दोष? उसकी कृपा में कहीं कोई कमी नहीं है, कमी तो हमारी पात्रता में है। हम अपने आपको सही नहीं कर पाये। सारी साधना, सारी भक्ति इसी बात की है कि पात्र सीधा हो जाये। हमने पात्र को उल्टा करके रखा हुआ है तो भगवान का जो जल बरस रहा है वह पात्र में कैसे आ जाए? जब सहनशक्ति आती है तो व्यक्ति के अन्दर ज्ञान उतरता है।

साक्षर होने के बाद भी जो दूसरों को सता रहा है वह ज्ञानी नहीं है। उसने केवल अक्षर पढ़ रखे हैं। साक्षर शब्द को उलट दिया जाये तो राक्षस बनता है। जिस आदमी की बुद्धि उलटी है उसने यदि बहुत से अक्षर पढ़ रखे हैं तो भी उसका जीवन तो राक्षस वाला ही है, देवता वाला नहीं। कई

बार शब्दों को उलट देने से बड़ा आनन्द आता है। लाभ अगर लेना चाहते हो तो लाभ को उलटो, बनेगा भला। भला करो तो लाभ हो। जैसे जैसे आदमी का जीवन क्षान्ति से जुड़ेगा, (क्षान्ति का मतलब सहनशीलता) वैसे वैसे उसमें ज्ञान आता जायेगा।

अगला शब्द है, **'आर्जवम्'**, आर्जवम् का अर्थ है, सरलता। भगवान कहते हैं कि जो ज्ञानी है वह अन्दर बाहर से सरल होगा। बाहर से देखो तो भी सरल और अन्दर भी कहीं कपट नहीं, कुटिलता नहीं। भाषा उसकी सीधी साधी और बच्चों जैसा निश्छल मन। ज्ञानी में कभी क्रोध आ गया तो वह एक सैकेण्ड में निकल भी जायेगा और कल्याण करके जायेगा। संत का क्रोध भी कल्याणकारी होता है जब कि दुष्ट का प्यार भी दुःख देने वाला होता है। गुरु अगर गुस्सा करके डांट दे तो समझ लेना चाहिये कि इसमें भला है। दुष्ट आदमी अगर प्यार की बात भी करे तो उसके प्यार में कुछ न कुछ मुसीबत छुपी होगी।

दुष्टता देखनी हो तो मच्छर में देखें। आते ही पहले पैरों में पड़ेगा, फिर कान में 'मधुरम ध्वनि करोति।' कान में बहुत मीठी ध्वनि करेगा। ऐसी वायलिन बजाकर कान के पास आता है मानो ऐसी मीठी ध्वनि किसी और की होगी ही नहीं। दुष्ट आदमी भी ऐसा ही करता है। पहले पांव पकड़ता है फिर कान के पास मीठी मीठी आवाज़ करता है। मान्यता है कि महान पुरुषों की परिक्रमा करनी चाहिये, उनके चारों ओर चक्कर लगाना चाहिये। मच्छर भी आपको महान पुरुष समझता है और आपके चारों तरफ चक्कर लगाता है। दुष्ट भी पीछा करता रहेगा, गोल गोल चक्कर काटता रहेगा। चक्कर इसलिए नहीं काटेगा कि आपकी पूजा कर रहा है, बल्कि वह देखता है कि आपकी कमज़ोरी कहां पर है, कहाँ पर डंक लगाया जाये ? और फिर डंक लगाने का काम शुरू कर देगा। दुष्ट बाहर से सरल, अन्दर से कठोर, सज्जन बाहर से भी सरल, अन्दर से भी सरल और सरलता भी इतनी कि अपने साथ बुरा करने वाले के साथ भी वह बुरा नहीं करता, कठोर व्यवहार करने वाले के साथ भी कठोर नहीं होता। भगवान कहते हैं कि जो कठोरता का व्यवहार करने वाले के साथ भी सरल रह जाये वह मेरा अपना प्यारा है, वह ज्ञानी है।

हमारे अन्दर छल और कपट इतना बड़ा स्थान ले चुका है कि हम सरलता और निश्छलता भूल गये हैं। सर्प का मुख कहीं होता है तो पूंछ कहीं और। वह सदा टेढ़ा होकर चलता है। कुटिल स्वभाव वालों को सर्प जैसा माना गया है, न जाने कब डंक मार दें? परन्तु साँप अपने बिल में टेढ़ा होकर नहीं, सीधा होकर जाता है। आदमी इससे एकदम उलटा है। दुनिया में सीधा बनने की कोशिश करता है पर जब घर में घुसता है तो टेढ़े का टेढ़ा। वहां अपना क्रोध, आक्रोश, कर्कश ध्वनि सब प्रकट करनी शुरू कर देता है। अन्दर बाहर से सरलता अपनाकर देखिये। मन में बड़ी शान्ति आयेगी। जीवन को अन्दर बाहर से धोने का यही एक तरीका है। बनावटी और दिखावे वाले व्यवहार से जीवन अशान्त होता जायेगा। इसलिये यदि शान्ति चाहते हो तो जीवन को सरल बनाओ।

जंगलों में रहने वाले लोग कितने शान्त व सरल हैं। वे तनावग्रस्त नहीं हैं। जो कुटिल हैं उनका भेड़िये वाला हिसाब है। वेदों में भेड़िये को कुटिलता का परिचायक कहा गया है। दुष्टता देखनी हो तो भेड़िये के लक्षण देखें। पानी का झरना है, पानी बह रहा है ऊपर से नीचे। भेड़िया ऊपर बैठा था। उसने नीचे देखा। नीचे एक मेमना बैठा पानी पी रहा था। उसे देख कर भेड़िये ने कुटिलता शुरू की। वह मेमने को खाना चाहता था। वहीं ऊपर बैठे बैठे बोला, "ओ बकरी के बच्चे! तू मेरा पानी क्यों जूठा कर रहा है ?" मेमना बोला, "साहिब, जूठा पानी तो हम पी रहे हैं। पानी ऊपर से आ रहा है और आपका जूठा पानी हम पी रहे हैं।" भेड़िये की बात बनी नहीं। मेमना झुककर बात बचा गया। उसने फिर कहा, "तूने मुझे छः महीने पहले गाली भी दी थी।" मेमना बोला, "साहिब, छः महीने पहले तो हम पैदा भी नहीं हुए थे। चार महीने की हमारी उम्र है। हम छः महीने पहले आपको गाली कैसे दे सकते हैं ?" जब भेड़िये का यह वार भी खाली गया; तो उसने दुष्टता दिखानी शुरू की। उसने कहा, "तूने नहीं तो तेरे बाप ने गाली दी होगी। शक्ल तो तेरे जैसी थी।" इसी का नाम दुष्टता है। कुछ भी बहाना करके दूसरों को सताओ।

गीता के पावन संदेश में भगवान श्रीकृष्ण ज्ञान के संदर्भ में कहते हैं कि "नैतिक गुणों को अपने जीवन में अपनाना ज्ञान है।" 'सत्य' कहा जा सकता है, 'धर्म' कहा नहीं जा सकता। धर्म बोलने की चीज नहीं है, जिह्वा की चीज़ नहीं है, वह आचरण की चीज़ है, जीवन की चीज़ है। धर्म को बोलना या सुनना नहीं, अपनाना है। भगवान कृष्ण समझाते हैं कि जब जीवन में सद्‌गुण आते हैं तो सद्ज्ञान बनता है। यदि शब्द केवल ध्वनियां बनकर आपकी जिह्वा से उच्चारित होते रहें तो फिर वह ज्ञान, ज्ञान नहीं होगा। इसलिये भगवान ने ज्ञान के कुछ लक्षण दिये हैं।

यदि मनुष्य मान से, अपमान से, मान पाने की इच्छा से ऊपर उठ जाये तो संकेत है कि ज्ञान और विवेक उस व्यक्ति के जीवन का आधार बन गये हैं। इसी प्रकार मूर्ख आदमी की पहचान है बिना बुलाये आना, बिना पूछे बोलना, दम्भ करना, वैर मन में आ जाए तो फिर उसे छोड़ना नहीं, जिस व्यक्ति के प्रति मन में क्रोध आ गया उसे अपनी जान का दुश्मन मान लेना आदि। ज्ञानी व्यक्ति जीवन में विनम्र, शालीन, शिष्ट और सहज बन कर रहता है। यदि हम सच में ज्ञानी हैं या परमात्मा के भक्त हैं तो हमारे जीवन में ये विशेषताएँ दिखाई देनी चाहिए। जीवन में बहुत सी स्थितियां आयेंगी; मान देने वाले लोग भी होंगे, अपमान करने वाले भी। आप के साथ अकारण वैर पैदा करने वाले भी होंगे। अकारण ईर्ष्या रखने वाले लोग भी मिलेंगे। दुनिया में ऐसा कोई नहीं है जिसको केवल मान ही मिला हो, अपमान न मिला हो, लेकिन जो अपमान के कड़वे घूंट को पचा जाये और फिर भी जिसकी गति में, मस्ती में कोई कमी न आये, व्यवहार और आचरण में ईमानदारी कायम रहे, जो मन, वचन और कर्म से किसी को दुःख न पहुँचाये और जिसने धैर्य को जीवन का आधार बनाया हो, वह समुद्र की तरह धीर गम्भीर बना रहता है।

बाल्मीकि ऋषि ने भी भगवान राम के लिए कहा, **'सामुद्रं एव गाम्भीर्यम्'** भगवान राम समुद्र की तरह गम्भीर हैं। बरसाती नदियों में थोड़े से नाले आकर मिल जाएं तो उफनने लगती हैं और गर्मी आते ही सूख जाती हैं। लेकिन सारी की सारी नदियाँ जब आकर समुद्र में मिलती हैं, तो

भी समुद्र में कोई अन्तर नहीं आता। सम्पत्ति आए या जाए, मान मिले या अपमान, दुःख मिले या सुख, हर हाल में जो अपनी गम्भीरता, अपनी शालीनता और अपनी मस्त चाल को न छोड़े, वह आदमी तपस्वी है। कई लोग बड़े दुबले पतले व कमजोर होते हैं पर उनकी आत्मा बलवान होती है, जबकि कई अन्य देखने में मोटे तगड़े हैं लेकिन उनकी आत्मा कमजोर है। जिसकी आत्मा बलवान है, उसके शरीर पर कोई घाव लग भी गया तो देखने वाले रोयेंगे लेकिन वह खुद नहीं घबराएगा। सोचेगा, जो होना था सो हो गया, ठीक हो जायेगा। परन्तु जिसका शरीर देखने में तगड़ा है पर अन्दर से कमजोर है, उसे हल्की सी सुई भी चुभ जाए तो इतना चिल्लायेगा कि देखने वाले हंसेंगे और वह कहेगा, "तुम्हें पता नहीं कितना दर्द हो रहा है?" सुख दुःख की अनुभूतियाँ इसी आधार पर पता चलती हैं। एक जैसी परिस्थिति में विभिन्न तरह के इन्सानों को रखा जाए तो कुछ घबरा जायेंगे और कुछ उस समय भी हंसते रहेंगे। इसलिये अपनी आत्मिक शक्ति को बलवान बनाना चाहिये। **भगवान कहते हैं कि धैर्यवान ज्ञानी है। ज्ञानी होने की स्थिति में सहनशीलता दिखाई देती है। आदमी हर स्थिति में शांत और गम्भीरतापूर्ण जीवन जीने लगता है।**

आप अपने घर को तपोभूमि मानिये। अपने घर में तप करने में कठिनाई नहीं होगी परंतु अगर जीवन को मजबूरी मानकर जीएंगे तो आपको हर चीज़ और हर घटना रुलायेगी। अगर आप हर घटना को एक तप समझेंगे तो आपको सब अच्छा और सरल लगेगा। एक समय एक चिन्तक ने अलग अलग समय में हुए सन्तों को एक साथ एकत्र कर, उनसे काल्पनिक बात की। एक मन्दिर में सन्त पधारे। वे सब गृहस्थ सन्त थे। गृहस्थी में रहते हुए जिन्होंने आत्मा को पवित्र करके ऊँचा उठा लिया था। बिट्ठलनाथ के मन्दिर में पहुँचकर वे प्रार्थना करने लगे। पहले पहुँचे सन्त एकनाथ भगवान से प्रार्थना करते हैं, "हे बिट्ठलनाथ, हे कृष्ण, धन्यवाद देने आया हूँ कि इस संसार में आपने मुझे अपनी भक्ति प्रदान की। संगिनी के रूप में ऐसी पत्नी दी जो रात दिन मेरी सेवा करती है और कहती है कि संसार के पदार्थों की चिन्ता नहीं करना, परमात्मा का चिन्तन करना।

इसलिए घरबार की मुझे चिन्ता नहीं है, रातदिन भजन में बैठता हूँ। यहाँ आया हूँ तो कुछ मांगने नहीं आया बल्कि धन्यवाद देने आया हूँ कि पत्नी दी तो ऐसी दी जो सहयोगिनी है इसलिए तेरा धन्यवाद करता हूँ।"

पीछे पीछे सन्त तुकाराम पहुँच गये; उनकी पत्नी बहुत लड़ाकू थी। रात दिन कलह क्लेश करती थी। एक बार सन्त तुकाराम गन्ने लेकर खेत से आ रहे थे। रास्ते में कुछ भक्त मिल गये। उन्होंने एक एक करके सब गन्ने भक्तों में बांट दिये। अंत में एक ही गन्ना बचा जिसे लेकर सन्त जी घर की ओर चले। सन्त जी की पत्नी को किसी ने पहले ही सारी घटना की सूचना दे दी थी। संत तुकाराम जब घर पहुँचे तो पत्नी गुस्से में भरी बैठी थी। पति को देखते ही उसने बड़बड़ाना शुरू कर दिया। गन्ना छीनकर इतनी जोर से घुमाया कि तुकाराम के शरीर पर लगा और टूटकर उसके दो टुकड़े हो गये। तुकाराम ने टुकड़े हाथ में पकड़ कर कहा, "भागवान, मैं तो सोचता था कि अपने हाथ से तोड़ के आधा तुझे दूँ, पर तूने तो स्वयं ही यह काम कर लिया। अब एक तू रख ले और एक मैं रख लेता हूँ।" वे भी भगवान को धन्यवाद देने मंदिर आये थे। तुकाराम ने भगवान से कहा, "भगवान बहुत बहुत धन्यवाद, तुमने मुझे अपनी भक्ति प्रदान की। वैराग्य दिया, मेरा मन अपने चरणों में लगाया। सांसारिक मोह ममता हटाई। जीवन संगिनी ऐसी दी कि जब भी मेरा मन घर संसार के प्रति, पत्नी के प्रति थोड़ा लगने लगता है तभी वह भाग्यवान ऐसा कुछ कर देती है कि वैराग्य जाग जाता है, तेरे चरणों के प्रति प्यार जाग जाता है। तूने बहुत अच्छी पत्नी दी है भगवान। अपने चरणों में लगाने के लिये घर को तपोवन बना दिया है। मैं घर में ही साधना और तपस्या करता हूँ। पत्नी को धन्यवाद देता हूँ। परंतु उससे ज्यादा धन्यवाद प्रभु आपको देता हूँ। आपने ऐसे कारण पैदा कर दिये हैं कि आपके चरणों के साथ मेरा प्यार जुड़ा रहे।"

संत तुकाराम धन्यवाद करके लौट रहे थे कि गोस्वामी तुलसीदास जी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कहा, "भगवन्! आपने अपने चरणों का प्यार दिया और अविरल भक्ति प्रदान की। तेरे गीत गाते गाते मन थकता नहीं, वाणी

रुकती नहीं। जन्म जन्मान्तरों तक भक्ति मिले तो ऐसी। जब तक मोक्ष न हो जाये तब तक चरणों में लगाये रखना। हे भगवान ! मुझे तो संसार से मोह हो गया था, पत्नी के साथ बड़ा भारी मोह हो गया था। जब उसे लिवाने के लिये उसके मायके गया तो उसने कहा, "जितना ध्यान, जितना मोह इस चाम में है उतना ही ध्यान राम में करते तो तुम्हारी मुक्ति हो जाती।" उसके कहने से प्रभु मेरा मन तेरे चरणों में लग गया। उसने जो शब्द मुझे कहे, वह उसके मुख से निकले जरूर थे लेकिन निकलवाने वाले तो आप ही थे। इसलिये प्रभु धन्यवाद देने आया हूँ कि ऐसी पत्नी दी जिसके कारण मैं तेरे चरणों में लगा।"

इतने में भक्त नरसी मेहता भी वहाँ पहुँच गये। उनके साथ हुआ यह था कि उनकी पत्नी नहीं रहीं थी। नरसी मेहता कहने लगे, "भगवन्! मैं आपका धन्यवाद करता हूँ कि पत्नी दी और अपने चरणों का प्यार भी दिया। मैं तेरे चरणों की ओर लगा, थोड़ा घर परिवार की ओर भी ध्यान देता था लेकिन तूने ऐसा मोड़ मोड़ दिया कि वह तो स्वर्गधाम चली गई और मैं अकेला खड़ा सोच रहा हूँ कि तेरा प्यार ही सच्चा है। बाकी लोग तो मेले में मिलने वाले लोग हैं। धीरे धीरे सब छूटते चले जायेंगे, परंतु इतनी कृपा ज़रूर करना कि और चाहे जो छूट जाए पर तेरी कृपा कभी न छूटे; तेरा ध्यान सदा बना रहे। इसलिये धन्यवाद करने आया हूँ।"

सब तरह की सहनशक्ति आत्मा को बलवान बनाती है। जिस आदमी के अन्दर चंचलता होती है उसमें स्थिरता का अभाव होने के कारण सहनशक्ति की कमी रहती है। जो आदमी सहनशील नहीं है वह थोड़े से दुःख से भी घबरा जाता है क्योंकि सहनशील व्यक्ति के साथ ही धैर्य रहता है। आप जितने सहनशील होंगे उतना ही धैर्यवान होंगे। आपमें जितना धैर्य होगा, उतना ही टिककर आप परिस्थितियों का सामना करेंगे और अगर धैर्य नहीं है तो थोड़ी सी कठिनाई में भी आप डावांडोल हो जाएंगे। थोड़ी सी हवा में सूखा पत्ता कांपने लगता है। कमजोर मन का आदमी हर गर्म व ठंडी हवा और हर परिस्थिति में घबरा जायेगा। इसलिये अपनी आत्मा को बलवान करने के लिये सहनशक्ति बढ़ाइये। सहनशक्ति को तप समझ कर

तपस्वी होना सीखिए। महापुरुषों ने तप पर बड़ा बल दिया है। घर परिवार की कठिनाईयों के बीच आप सहनशील, शान्त और सहज बन कर चलें। सहनशीलता को अपनाना कायरता नहीं वरन् ऐसी तपस्या है जो आपकी आत्मा को बलवान बनाने का सबसे प्रबल साधन है। अपनी आत्मा को निर्बल न होने दो, कमज़ोर मत बनाओ।

अपनी आत्मा को बलवान बनाओ, सशक्त बनाओ। सशक्त आत्मा अपने तरीके से संसार को चलाने वाली बन जाती है, जब कि निर्बल आत्मा संसार के पीछे चलने वाली होती है। सारा संसार विरोध में आकर खड़ा हो जाये तो भी बलवान आत्मा संसार की धारा को मोड़ देगी और जो कमजोर आदमी है वह कभी किसी के पीछे भागेगा, कभी किसी के पीछे। सशक्त आत्मा सहारे की कामना नहीं करती। वह सहारा देने में खुशी महसूस करती है और इसके लिये बाजार से कोई टॉनिक नहीं मिलता; इसके लिये क़ोई खास खुराक खा लेने से कुछ नहीं बनता। **आत्मा को बलवान बनाने के लिये केवल तपश्चर्या की जरूरत है।** जीवन की कठिनाईयाँ, कड़वे बोल और अपमान के कड़वे घूंट शान्ति से पीना, मुस्कुराते हुए चलना और सहज बने रहना ही एकमात्र रास्ता है। जैसे समुद्र में अनेक नदियां आती हैं, जीवन में उसी तरह अनेक परिस्थितियां आती हैं।

एक संत कहते हैं कि पत्नी बहुत अच्छी मिली क्योंकि सहयोगी है, दूसरे कहते हैं बहुत अच्छी है क्योंकि विरोध करती है। तीसरे ने कहा यह भी बहुत अच्छा हुआ कि उसने दुर्वचन बोलकर आपके चरणों में लगा दिया और चौथे ने कहा कि पत्नी आई, घर परिवार जुड़ा, फिर तुम्हारे चरणों में चली गयी और मुझे भी तेरी भक्ति में लगा दिया। हर रूप में परमात्मा को धन्यवाद दे रहे हैं। जो व्यक्ति ज्ञान से युक्त होने लगता है उसे हर परिस्थिति में आनन्द मिलने लगता है लेकिन व्यक्ति शिक़ायत करने की नीयत से आएगा तो रोता ही जायेगा। भगवान ऐसा नहीं हुआ या वैसा नहीं हुआ; तुम यह दे देते तो मैं सुखी हो जाता या वह चीज दे देते तो मैं खुश होता। यह सब हमारे मन का अधूरापन है। हर स्थिति और परिस्थिति में हमें चाहिए कि मन को परमात्मा के साथ जोड़ें। इसीलिये अपने घर को

तपोवन बनाओ, जीवन को तपस्वी बनाओ। जीवन में सहनशक्ति को ऐसे अपनाओ कि सहनशक्ति आपका गुण ही नहीं; आभूषण बन जाए, शक्ति बन जाये।

जीवन में सरलता अपनाओ। सरलता का अर्थ है कपट और कुटिलता का न होना। हम ज्ञानी हैं तो इस बात का पता हमारे जीवन से लगना चाहिये। कितने ही बड़े हो जाएँ फिर भी हम सरल और सहज रहें। एडीसन, जिसने हजारों आविष्कार किये, जिसने बिजली और बिजली के उपकरणों का आविष्कार किया, अत्यन्त सरल जीवन जीने वाला व्यक्ति था। एक बार एक स्कूल की प्रदर्शनी में विद्युत की झांकिया लगी हुई थीं। वहां जाकर एडीसन ने बच्चों से पूछा, "बच्चों, बताओ यह विद्युत है क्या?" उसकी सरलता देखिये। जो सब जानता है, वह बच्चों के बीच विनोदी स्वभाव बनाकर गया। बच्चों ने कहा, "देखो, बिजली से बल्ब जलता है; बिजली के द्वारा सारे उपकरण काम करने लग जाते हैं।" एडीसन ने कहा, "मैं यह नहीं जानना चाहता। मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह है क्या चीज़?" तब बच्चे अपने टीचर को बुला लाए। टीचर ने कहा, "विद्युत से बहुत लाभ हैं। यह इस युग की बहुत भारी क्रान्ति है।" एडीसन ने फिर कहा, "मैं यह जानना चाहता हूं कि यह चीज़ क्या है?" इस बार प्रिंसीपल को बुलाया गया। प्रिंसीपल ने कहा, "सर, आपके सवाल का जवाब तो एडीसन ही आकर दे सकते हैं और कोई नहीं दे सकता।" इतनी बात सुनने के बाद एडीसन बोले, "मेरा ही नाम एडीसन है और मैं भी नहीं जानता कि यह है क्या चीज। बन गई अपने आप, जुड़ गई शक्ति।"

विचारणीय सिर्फ यही नहीं है कि एक आदमी जो इतना बड़ा वैज्ञानिक है उसने विनोद किया। अनुसरणीय यह भी है कि उनके आविष्कारों के साथ उनकी महानता तो जुड़ी ही है, उससे भी बढ़कर उनके साथ जुड़ी है उनकी सरलता। भगवान कहते हैं जो सरल है, मैं उसके हृदय में बसता हूँ। सीधा, सरल जीवन जियो। भाषा भी सरल हो, व्यवहार भी सरल। जो तानाकशी करते हैं, आड़े तिरछे शब्द बोलते हैं, बात को घुमा फिरा कर बोलते हैं वे बहुत गहरी चोट मारते हैं। कुटिलता जिसके अन्दर नहीं है, जो

छल–छद्म नहीं करता, सरल सहज जीवन जीता है, प्रभु उसको ज्ञानी मानते हैं और भगवान सरलता को अपनी ओर आने की सीढ़ी बताते हैं।

अगला शब्द है **'आचार्योपासनम्'** भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अनेक स्थानों पर गुरु के प्रति सम्मान प्रकट किया है। गीता में जहां तप का वर्णन है वहाँ कहा है कि जो ज्ञानी–ध्यानी हैं, उनका पूजन करना तप है। ज्ञानी होने के लिए आप अपने आचार्य की उपासना करें, अपने गुरु की सेवा तथा मान करें। सच बात तो यह है कि जीवन को ऊँचा उठाने के लिये व्यक्ति को बार बार मार्ग निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि हमें अपनी गलती का पता स्वयं नहीं चलता। इसलिये तो थामसन ने कहा है कि, "जो आचार को, आचरण को, व्यवहार को ग्रहण कराता है, जीवन को नया अर्थ देता है, गुणवत्ता देता है, जिसके सान्निध्य में आने से जीवन में विशेषताएं आ जाती हैं, वही गुरु है, आचार्य है"। जब गुरु अपने शिष्य के हृदय में उतरता है तो शिष्य की भाव भंगिमायें बदलने लगती हैं। कान फूंकने वाला गुरु नहीं है, प्राण फूंकने वाला गुरु है जो नई जिन्दगी दे दे। गुरु वह है जो साधारण सी वस्तु को ऐसी गुणवत्ता प्रदान कर दे कि वह गरिमामयी हो जाये। लोहा खान से निकलता है तो इतना महत्वपूर्ण नहीं होता, परन्तु तपा कर जब उससे कोई यंत्र बना लें, कोई पुर्जा बना लें तो उसकी कीमत कई गुना बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए एक मिलीग्राम लोहे से बना घड़ी का कोई पुर्जा ले लीजिये। एक मिलीग्राम लोहे की कीमत अधिक नहीं होती, लेकिन पुर्जा बनने के बाद वही एक मिलीग्राम लोहा २०० से ४०० रु. तक में बिक जाता है। कीमत बढ़ गई है क्योंकि उसे गुणवत्ता दे दी गई। लकड़ी पड़ी है, उस लकड़ी की कीमत एक या दो रुपये है। अगर कोई शिल्पी उसे छील कर सुन्दर आकृति दे दे, मूर्ति बना दे, तो बाजार में उसे खरीदने वाला १००० रु. देकर भी कहेगा, "मैं इसकी कीमत नहीं दे रहा। इसकी कीमत तो लगाई ही नहीं जा सकती। मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार शिल्पकार का सम्मान कर रहा हूँ।" दो रुपये की चीज एक हजार रुपये में बिक गई। यह लकड़ी की कीमत नहीं, गुणवत्ता की कीमत है। ऐसे ही **सब व्यक्ति बराबर हैं, पर गुरु जिसके अन्दर गुण भर देता है वह साधारण से असाधारण**

हो जाता है। गुरु जलता हुआ दीपक है और शिष्य बुझा हुआ दीया। करोड़ों बुझे हुए दीपक रखे हुए हैं, उन सबकी इतनी कीमत नहीं है जितनी जलते हुए एक दीपक की क्योंकि वह करोड़ों दीयों में प्रकाश पैदा कर सकता है। गुरु ज्ञान रूपी प्रकाश देता है, इसलिये गुरु साधारण व्यक्ति नहीं होता; उसका मिलना भी साधारण घटना नहीं है। कभी कभी ऐसा होता है कि वर्षों ढूंढने के बाद भी गुरु नहीं मिलता और कभी अचानक मिल जाता है। ऐसा भी होता है कि गुरु किसी लायक शिष्य को ढूंढता फिरता है और शिष्य गुरु को। अन्ततः कहीं न कहीं, कोई न कोई, मेल मिल ही जाता है और तसल्ली तब होती है जब हृदय उन्हें स्वीकार कर ले। हृदय कहे कि हां मेरे सामने मेरे सद्गुरु हैं जिनके द्वारा मैंने अपना हृदय रूपान्तरित करना है।

अष्टावक्र जब जनक के दरबार में पहुंचे थे तो सब लोग उन्हें देखकर हंसे थे क्योंकि उनका शरीर आठ जगह से टेढ़ा मेढ़ा था और जब अष्टावक्र ने कहा, "मैंने तो सुना था यहां सब गुणों के पारखी हैं, लेकिन मैं देख रहा हूँ कि यहां तो सब चमड़ी के पारखी हैं, विद्वान कोई भी नहीं" तो सभा में सन्नाटा छा गया। राजा जनक ने कहा, "आप विद्वानों का अपमान कर रहे हैं।" अष्टावक्र ने उस वक्त एक सत्य कहा, "राजन् नदी टेढ़ी मेढ़ी हो सकती है पर उसका जल टेढ़ा मेढ़ा नहीं हो सकता। यह मेरा शरीर टेढ़ा मेढ़ा है, लेकिन आत्मा टेढ़ी मेढ़ी नहीं है, इसके अन्दर जो ज्ञान है वह टेढ़ा मेढ़ा नहीं है। शरीर को देखकर बात न करें, अगर करनी है तो ज्ञान की बात करें। अगर आप मुझसे चर्चा करना चाहते हैं तो ज्ञान की चर्चा करें। शरीर को देखकर क्यों हंसते हैं ?" अष्टावक्र के इन वचनों को सुनने के बाद राजा जनक ने अपनी पत्नी को बुलाया और कहा, "भागवान, जिसे हम वनों, जंगलों और तीर्थों में ढूंढते फिरे पर नहीं मिला, आज वह स्वयं ही हमारे यहाँ आ गया है। उनके चरण धोओ और हाथ जोड़ कर विनती करो। कहो कि हमें स्वीकार कर लें और हमारे जीवन को रूपान्तरित कर दें।" ऐसा कहकर राजा जनक अष्टावक्र के चरणों में झुककर बैठ गये। बोले, "सद्गुरु शरण दो।" छोटा सा बालक, काला कुरूप शरीर, आठ जगह से टेढ़ा मेढ़ा जिसके चरणों में राजा जनक बैठे हैं। सभा में बैठे सब विद्वान

सोचने लगे कि उनके राजा को क्या हो गया है? राजा जनक ने कहा, "आज तक मैंने आदमी ही परखे हैं और सही परखे हैं। आज अगर मेरे गुरु मुझे परख लें तो मेरा कल्याण हो जायेगा।" एक दिन घोड़े पर बैठते समय जब राजा जनक ने रकाब पर पाँव रखा ही था, अष्टावक्र ने उनका ध्यान ऐसा खींचा कि वहीं उनकी समाधि लग गई। राजा जनक तीन दिन तक उसी दशा में रहे। अष्टावक्र ने बाद में उन्हें घोड़े से उतार कर कहा, "जाओ, जो देना था मैंने दे दिया। किस बहाने से मैंने देना था वह बहाना तो मुझे भी नहीं पता, लेकिन जब मौज आ गई तो दे दिया।" पता नहीं कब सद्गुरु की मौज आ जाय, कब अनुभूति करा दें। इसलिए कहा जाता है कि सद्गुरु का सान्निध्य ढूंढो और अगर मिल जाये तो अपनी सेवा से उन्हें प्रसन्न करो। पुराने चिन्तक लोग यहां तक कह गए हैं कि भाग्य का मारा, और भगवान की सजा पाया हुआ इन्सान भी जब गुरु की शरण में आये तो उसके भाग्य का निस्तारा हो सकता है, लेकिन गुरु की सज़ा पाया हुआ इन्सान भगवान के दर पर भी मुक्त नहीं होता। यदि गुरु दुःखी होकर अपने मुख से कोई अपशब्द निकालें तो इसे अपना दुर्भाग्य समझ लेना। इसलिये यदि गुरु के मुख से तुम्हें कठोर शब्द भी मिल रहे हों तो उसे भी उनकी कृपा मानकर उनकी शरण में रहने में ही अपना कल्याण समझना।

भगवान कृष्ण ने गुरु को बड़ा महत्त्व दिया है। यद्यपि भगवान कृष्ण चौंसठ दिन ही गुरु संदीपनी के आश्रम में रहे थे तो भी इन चौंसठ दिनों को असाधारण माना, बड़ा महत्त्वपूर्ण माना कि किसी के सान्निध्य में रहकर उन्हें अपने स्वरूप को जानने का मौका मिला। **अगर भगवान भी धरती पर आयें तो उन्हें भी संसार में चलने के लिये गुरु की जरूरत पड़ेगी।** उनका भी कोई न कोई गुरु जरूर बनेगा, तभी संसार से निस्तारा होगा। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि ज्ञानी के लिऐ अपना जीवन सही दिशा में चलाने का एक यही रास्ता है कि वह अपने गुरु का, आचार्य का सान्निध्य हमेशा प्राप्त करता रहे, उनसे निर्देश प्राप्त करता रहे, न जाने कैसे, कब और कौन से शब्द के माध्यम से शिष्य का कल्याण हो जाय। गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा, अटूट निष्ठा, लगातार भक्तिपूर्ण समर्पण करता रहे और गुरु के साथ

बैठ कर ज्ञान लेता जाए तो चमत्कार घटने शुरू होते हैं। ऐसे चमत्कार होते हैं कि लोग आश्चर्य करते रह जाते हैं। परन्तु यह सब तब सम्भव है जब गुरु को ही अपना रास्ता मान कर चलें। अगर अपने 'मैं' को लेकर यह सोचें कि हम 'ऐसे' नहीं 'वैसे' कर लेंगे तो 'वैसे' करने में लोगों को भटकते ही देखा गया है कोई उपलब्धि प्राप्त करते नहीं। ज्ञान की दिशा में चलने का रास्ता गुरु के सान्निध्य में चलना ही है।

भगवान अगला शब्द कहते हैं **'शौचम्'** अर्थात् पवित्रता को अपनाना। अन्दर और बाहर की पवित्रता। बाहर की पवित्रता अर्थात् शरीर को शुद्ध रखना, अच्छे वस्त्रों को धारण करना। लेकिन उससे भी अधिक आवश्यक है अपनी आत्मा को सजाना, अन्तःकरण को पवित्र करना। मनुष्य के लिये समाज एक अदालत है। समाज की नज़र से अगर कोई गिर जाए तो वह एक मौत है और अगर अपनी नज़रों से गिर जाए तो वह उससे भी भयंकर मौत है। बाहर वाली अदालत अगर आपको छोड़ भी दे तो भी अन्दर वाली अदालत काम करती रहेगी। आदमी जब अपनी गलती सचमुच मान लेगा, सुधरने की बात करेगा, तब उसके जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन आयेगा। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से साफ़ साफ़ कह दिया, "मैं धर्म को जानता हूँ लेकिन धर्म में मेरी कोई रुचि नहीं है :

जानामि धर्मं न च मे प्रवृतिः जानामि अधर्मं न च में निवृतिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

जिसे तुम अधर्म कह रहे हो मेरा मन उससे हटने को तैयार नहीं है। मेरे अन्दर संस्कार में बैठा कोई मुझे उधर जाने के लिये कह रहा है, जिधर मैं जा रहा हूँ, तो मैं क्या करूं।" दुर्योधन के अन्दर की अदालत उसे पाप करने के लिये कह रही है; इसका मतलब है कि अन्दर का अन्तःकरण अशुद्ध है।

अगर कोई चोरों के समाज में जाकर कहे कि चोरी करना पाप है तो वे एकदम कहेंगे कि चोरी करना पाप नहीं है। किसी समय हमारे देश में चोरों ने भी एक ग्रन्थ लिखा जिसे उन्होंने 'चौर्य शास्त्र' नाम दिया। इसमें चोरी करने के नियम बताये गए हैं। जैसे चने के दाने ले जाकर किसी के घर के पास फेंकना, किसी के खांसने की आवाज आने पर क्या करना इत्यादि। तरह तरह की आवाजों के अर्थ बताए गए हैं। चोरी करने की बेला भी बताई गई है। कहा गया है कि दो बजे से लेकर चार बजे का समय

बड़ा ही शुभ मुर्हूत होता है इत्यादि। सो ऐसा नहीं है कि हमारे यहाँ केवल भक्ति वाले ग्रन्थ ही लिखे गये हैं; बड़े अजीब अजीब ग्रन्थ भी हैं।

जिन लोगों को ग़लत समाज में रहने की आदत पड़ जाती है तो फिर उनकी अन्दर की अदालत काम नहीं करती। उन्हें वही अच्छा लगने लगता है। जिस वातावरण में आप रहने लगते हैं, आप उसी को सही सिद्ध करने में लग जाते हैं। एक बार मछली बेचने वाली कुछ महिलाओं का किसी ऐसे स्थान पर जाना हो गया जहाँ इत्र का बाजार था। सब तरफ से सुगन्ध उठ रही थी। मछली बेचने वाली महिलाएँ जैसे ही सुगन्ध वाले बाजार से गुजरीं, उन्हें बदबू आने लगी। जो मछली की गन्ध की आदी थीं उनको तो इत्र के बाज़ार में बदबू आनी ही थी। मछली बाजार से निकलते वक्त आपकी जो हालत होती है वही हालत उनकी इत्र बाज़ार में हो गई। आप मछली बाज़ार में नाक पर चार तह करके रुमाल रखेंगे, पर उसके बाद भी वह बदबू बर्दाश्त नहीं होगी। बीस साल से मछली बाजार में जिन्दगी गुजारने वाली महिलाओं ने इत्र बाज़ार में यही किया। नाक पर रुमाल रखकर एक दूसरे से कहने लगीं कि बहन बड़ी अजीब सी गन्ध आ रही है, कैसी बदबू है बर्दाश्त नहीं हो रही। उन्हें सुगन्ध बर्दाश्त नहीं हो पा रही थी। भीड़ बहुत थी। किसी ने पीछे से धक्का दिया। धक्का जो लगा तो सामने की दुकान में रखी हुई शीशी का इत्र बिखर गया। एक औरत को तो इत्र की तेज गंध के कारण बेहोशी आ गई और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। लोगों ने कहा कि पानी के छींटें दो तो ठीक हो जाएगी। पीछे एक बूढ़ी महिला थी; वह भी मछली बेचने वाली थी। वह बोली, यह पानी के छींटों से ठीक होने वाली नहीं है। फिर उसने एक गन्दे सड़े हुए कपड़े को जिसमें वह मछली लपेट कर लायी थी पानी में भिगोया, ताकि मछली की बदबू और तेज़ हो जाए, उसकी नाक पर लगाकर हवा की तो महिला उठ गई और उठ कर बोली कि अब जान में जान आई। मतलब यह है कि जैसे वातावरण में रहने लगो वही पसन्द आने लग जाता है।

अगर अन्तःकरण अन्दर से गन्दा हो गया है तो फिर बुरी से बुरी संगति में बैठकर आप कहेंगे कि हम यहाँ ज्यादा अच्छे हैं। ऐसे अन्तःकरण वालों

को यदि आप सत्संग में लेकर आयेंगे तो उन्हें सत्संग पसन्द नहीं आयेगा। अकबर इलाहाबादी ने एक शेर लिखा था: **रकीबों ने रपट लिखाई है जाकर थाने में, कि अकबर नाम लेता है खुदा का इस ज़माने में।** वातावरण ऐसा हो गया है कि भक्ति करने वाले के खिलाफ़ ही इन्सान शिकायत करने लगा है। जिनका अन्तःकरण दोषयुक्त है उनको अच्छाई अच्छी नहीं लगती, भलाई भली नहीं लगती और जब अन्तःकरण पवित्र होने लग जाए, अन्दर से आवाज़ आने लग जाए तब आत्मा को शुद्ध होने में, पवित्र होने में देर नहीं लगती। भगवान कृष्ण कहते हैं कि **"इन्सान अपने अन्तःकरण को पवित्र रखना सीख जाये, अपने को ऊँचा उठाना सीख जाये यही ज्ञान है।"**

जीवन छुरे की धार है। स्थिर होकर चलोगे तो कुछ बिगड़ेगा नहीं। हिल डुल गये तो कट कर गिर जाओगे; इसलिये जीवन में स्थिरता लानी चाहिये। व्यक्ति का ज्ञान इसी बात से पता लगेगा कि उसमें स्थिरता है कि नहीं। डांवाडोल तो नहीं है, जल्दी घबरा तो नहीं जाता। जिस समय ग्रीक दार्शनिक सुकरात को एथेन्स के ५४ जजों ने मिलकर फांसी की सजा सुनाई तो उनसे कहा गया कि माफी मांग कर अपने घर जा सकते हो। सुकरात ने कहा, "जिस ज्ञान को मैं बांट रहा हूँ वह मुझे इस बात के लिये प्रेरणा देता है कि डांवाडोल मत हो। तेरे बलिदान से ही नया सूर्य उगेगा; तेरे बलिदान से ही इन लोगों के अन्दर नई जागृति आयेगी। फांसी तुम्हारे लिये डरावनी है मेरे लिये नहीं। डर तुम्हें लगता होगा मुझे नहीं।" लोग उसे नहीं समझ पाये। जिसको दबाने और मारने की कोशिश की गई वह मर कर और उभर गया। अमर हो गया उसका यश, उसका नाम। हर युग में दुनिया के ज्ञानियों को सताया गया है। जिस ज्ञानी ने भी संसार को कुछ देने की कोशिश की, उसे अनेकों प्रकार के मूढ़ और जाहिल लोगों का सामना करना पड़ा, पर ज्ञानी अपना प्यार बांटता ही रहा। अज्ञानियों ने उसको दबाने की, उस लपट को मिटाने की बहुत कोशिश की पर वह निरन्तर दृढ़ता पूर्वक चलता रहा। **ज्ञान स्थिरता देता है और उलटी मति को सीधा करने की कोशिश करता है।** उलटे को उलट देने का मतलब

होता है सीधा कर देना। ज्ञानी यही करता है। एक वे लोग हैं जो फैशन की अन्धी दौड़ में शामिल हैं। एक वे हैं जिनका चलना, उठना, बैठना एक स्टाइल बनता है, एक अलग तरह की शैली बनता है, विधा बनती है। लोग उन्हें देखकर कहते हैं कि ऐसे रहना चाहिये। एक वे हैं जो किसी आसन के कारण शोभायमान होते हैं, किसी कुर्सी के कारण उनकी शोभा बढ़ी। एक वे हैं ज़िनके बैठने से कुर्सी सुशोभित होती है। वही असली ज्ञानी हैं। वही ऊँचे हैं। उनकी कदर करनी चाहिये। **पद की शोभा हमसे होनी चाहिये, न कि हमारी शोभा पद से।** गद्दी पर बैठा है इसलिये उसकी शोभा है ऐसा नहीं होना चाहिये। इसीलिये सन्त, ज्ञानी व ध्यानी लोग बेताजं बादशाह कहलाते हैं। वे जहाँ बैठ जायेंगे वहीं उनकी गद्दी होगी, वहीं उनकी एक प्रजा होगी, वहीं उन पर मर मिटने वाले लोग होंगे। जीवन में जब ज्ञान की ऊँचाई आयेगी तो स्थिरता आयेगी। व्यक्ति कहीं भी, किसी रूप में भी डांवांडोल नहीं होगा। जीवन में स्थिरता पैदा कीजिये। हर समय घबराये रहना, हर समय निराशा में रहना, हर समय चिन्ता में रहना, बुझी बुझी जिन्दगी जीना, खोखली जिन्दगी जीना, साँस तो ले रहे हैं लेकिन लगता है जैसे मुर्दा शरीर में साँस चल रही है, अधूरे इन्सान के लक्षण हैं। जीवन को ऊँचा उठाने के लिए अपने अन्दर स्थिरता लाओ।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि अपने अन्तःकरण का प्रयोग करो। अपने में स्थिरता लाने के लिए विचारों को अटल बनाओ। विचारों में स्थिरता लाओ, चलने में स्थिरता लाओ। जहां रहते हो वहां अपनी एक विशेषता बनाओ। दूसरों के पीछे नहीं चलो। इंजन बनने की कोशिश करो, डिब्बे नहीं। **लोग नकलची बन्दर होते हैं पर आपको किसी की नकल नहीं करनी है। दूसरे आपकी नकल करें, ऐसी कुछ असलीयत, ऐसी कुछ काबलियत जीवन में आ जाए तो वह ज्ञान है।** महापुरुष जहां भी रहे, उन्होंने अपने कपड़े को किधर से भी ओढ़ लिया तो लोगों ने उनकी नकल करनी शुरू कर दी। शरीर पर कपड़ा पहना या गले में लटकाया, दाढ़ी रखी या नहीं रखी लोगों ने वही नकल की। लोगों ने आपको देखकर सोच लिया कि दाढ़ी रखने या न रखने से आदमी ज्ञानी दिखाई देगा। कुछ लोग

सोचने लगे कि सिर मुंडवा लेने से लाभ होगा और कहावत बन गई कि 'सिर मुंडा होना' ज्ञानी की पहचान है। इस पर किसी ने बड़ा अजीब सा व्यंग्य किया :

सिर मुंडाये तीन गुण सिर की मिट जाय खाज,
खाने को हलवा मिले, लोग कहें महाराज।

सिर मुंडा कर नया भेष तो बन गया पर बात नहीं बनी। अगर भेष बनाकर सम्मान लेना है तो कोई बात नहीं बनेगी; यह थोड़ी देर का सम्मान है और अगर अन्दर से कोई बात उमड़ आई तो सम्मान सदा का है। सदियां बीत जायेंगी, युग बीत जायेंगे, पर याद नहीं बीतेगी, वह ज़माने में सदा रहेगी। लबों पर सदा तराने रहते हैं; उसकी चर्चाएं होती हैं और चर्चाएं ही नहीं, उनके विचारों के द्वारा लोगों की जिन्दगी बदला करती है। अन्दर एक आग जलने लगती है क्योंकि उनकी चिन्गारियों से जीवन जीने का एक मकसद मिल जाता है। इसलिए भगवान ने कहा कि जीवन को स्थिरता प्रदान करो।

अगर ज्ञानी बनना चाहते हो तो स्वयं पर नियंत्रण करने वाले बन जाओ। वह ज्ञान किस काम का जिसे पाकर भी व्यक्ति अपने आपको वश में न रख पाये, होश में न रख पाये। जब जोश होता है उन दिनों होश नहीं होता। जैसे जैसे होश आना शुरू हो जाता है, जोश जाना शुरू होता है। होश आया जोश गया। लेकिन अगर दोनों का मेल हो जाये तो फिर यह ऊर्जा शक्ति बहुत बड़ा कमाल करती है। अगर आप ज्ञानी हैं तो आप अपने अन्दर नियंत्रण रखने की शक्ति पैदा करेंगे। अपने ब्रेक का इस्तेमाल करेंगे। जैसे हर गाड़ी में ब्रेक चाहिये, उसके बिना गाड़ी खतरनाक हो सकती है। वैसे ही आपके जीवन में सारी उपलब्धियों के साथ साथ नियंत्रण भी होना चाहिये। नियंत्रण ऐसा कि जब आपको कहा जाय रुक जाओ, बहुत हो गया तो वहीं पर रुक गए। जब कहा जाए अब बढ़ना है, रुकना नहीं तब सामने कैसी भी स्थिति हो, बढ़ना ही है। अपने ऊपर नियंत्रण लगाने की स्थिति जरूर आनी चाहिये। इसलिये महापुरुष अपने पर नियन्त्रण लाने के लिए बहुत प्रयोग करवाते थे।

पहले समय में जब शिष्य गुरु के सान्निध्य में जाकर बैठता था तो गुरु कहता था, "जाओ, १२ साल के लिये गऊँए चराओ, फिर आना ज्ञान लेने।"

लोग भी ऐसे अनोखे थे कि आदेश माना और चल पड़े; इसीलिये इतना रूपान्तरण हो जाता था। अब कोई भी व्यक्ति किसी बात को मानने को तैयार नहीं है। किन्तु परन्तु लेकिन आदि कहना शुरू कर देंगे। कहेंगे, आपकी बात मान तो लें लेकिन अभी मानें, या कल मानें? आप ही कुछ और बता दीजिये; कोई और रास्ता हो सकता हो तो बता दीजिये। इसीलिये आज व्यक्ति आनन्दित होता हुआ दिखाई नहीं देता। आजकल शिष्य गुरु की परीक्षा करने में लग जाते हैं, अपनी पात्रता को नहीं देखते। अग्नि तो अपना काम करेगी; लेकिन ईंधन अगर गीला है या बहुत पुराना व गला हुआ है तो उसमें चिंगारी डालने पर काम नहीं करेगी। ईंधन को ठीक होना ही चाहिये। इसलिये नियम था कि गुरु के पास जब शिष्य जाते थे तो तीन समिधाएं लेकर जाते थे। उसका मतलब होता था कि मन से, वचन से, कर्म से मैं सुलगने के लिये, जलने के लिये कटिबद्ध होकर आया हूँ। आप अपने ज्ञान की चिंगारी मेरे अन्दर फूँक दें। प्रकाशित कर दें मुझे। मुझे भी अपने जैसा बना दें।

कोयला धो धो कर उसकी कालिख मिटाने की कोशिश की पर कालिख नहीं गई। तब कोयला अग्नि देव के पास गया और बोला, "पानी तो मेरी कालिख दूर नहीं कर पाया है; अब आपके पास आया हूँ, आप ही कुछ करें।" अग्नि ने कहा, "अपने जैसा कर सकता हूँ। जो मेरे अन्दर है वह तेरे अन्दर भी आ सकता है" और फिर थोड़ी देर बाद ऐसा ही हुआ। अग्नि के अन्दर कोयला पड़ा तो जैसे अग्नि प्रकाशित थी, कोयला भी प्रकाशित हो गया। उसमें अब किसी तरह की कोई कालिख दिखाई नहीं दे रही थी। बिल्कुल यही स्थिति उस शिष्य की होती है जो कालिख से भरा हुआ है। गुरु के नज़दीक गया, गुरु को अपना आप अर्पित कर दिया, गुरु का ज्ञान अपने जीवन में धारण किया, तो प्रकाश उसके अन्दर भी आना शुरू हो गया, जैसा चुम्बक और लोहे में होता है। लोहा है शिष्य और चुम्बक है गुरु। चुम्बक ने लोहे को अपनी तरफ आकर्षित किया। लोहा चुम्बक से जुड़ गया। कुछ समय बाद देखने में आया कि अब लोहे में भी चुम्बकीय शक्ति आ गई है। अब यह लोहा भी लोहे के छोटे छोटे टुकड़ों को अपनी

तरफ खींचने लगा है। ऐसे ही गुरु का प्रताप शिष्य के जीवन में आना शुरू होता है। जैसे ही गुरु ने सान्निध्य दिया उनका प्रकाश शिष्य में भी आने लगा। गुरु के नज़दीक रहने से सबसे पहले जो चीज़ मिलती है वह अनुशासन होता है । गुरु पहले अनुशासन देता है; अनुशासन में ढालता है। कैसे अनुशासन में बंधकर चलना है, कैसे नियम अपनाने हैं। बोलने का नियम, खाने का नियम, चलने का नियम, सब नियम बताता है गुरु। नियम अपनाने से अन्दर रूपान्तरण होता है। जब गुरु के कारण थोड़ा सा भी ज्ञान अन्दर आता है तब अनुशासन द्वारा ऐसा चमत्कार होता है, ऐसी ऐसी अनुभूतियाँ होती हैं जो इससे पहले कभी नहीं हुई थीं।

श्रद्धा, अनुशासन तथा पूर्ण व्यवस्थित हो जाना, ये गुण अपना लेने से और गुरु की कृपा से चमत्कार घटता है। इसलिये ज्ञान जब चरम सीमा पर पहुंचेगा उस समय आपके अन्दर विवेक शक्ति काम करना शुरू कर देगी। तब आप संयम शक्ति से अपने को नियंत्रित करना। ऐसा नियंत्रित कर लेना कि आप किसी लालच में, क्रोध में या ईर्ष्या में फिसलें नहीं। अर्थात् आपके अन्दर अपने ऊपर विजय पाने की शक्ति पैदा हो जाए। **भगवान कहते हैं कि जो अपने ऊपर नियंत्रण नहीं कर पाता वह ज्ञानी नहीं है, अज्ञानी है।**

भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञानी होने और मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये, नैतिक गुणों की एक सीढ़ी, एक आचरण संहिता बताई है। भगवान को ज्ञानी भक्त पसन्द हैं। ज्ञानी भक्त वह है जिसमें अभिमान, दंभ व हिंसा न हो, जो सहनशीलता से युक्त हो, सरलता जिसका आभूषण हो, सद्गुरु की सेवा से जो ज्ञानार्जन करता हो, जो मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर की शुद्धि का ध्यान रखता हो, जिसमें स्थिरता हो और जो स्वयं पर नियन्त्रण रखता हो। भगवान कहते हैं कि इन गुणों को अपनाने से जिसके जीवन में ज्ञान प्रकट होने लगता है वह ज्ञानी भक्त होता है और वह भगवान को प्यारा है।

भगवान ने आगे फिर कहा,

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।।८।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं : इन्द्रियों के विषय व्यक्ति को फँसाते हैं, पर ज्ञानी व्यक्ति उनके प्रति अपने अन्तस्थ में वैराग्य को जन्म देता है, अपने अहंकार, अपने 'मैं' का विस्तार नहीं होने देता, अपने 'मैं' को खो देता है। प्रायः मनुष्य जब भी अपना परिचय देता है तो अपने 'मैं' का परिचय देता है कि मैं यह हूँ, मैं वह हूँ। ज्ञानी व्यक्ति वह है, जो अपने 'मैं' को खो दे, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग और आने वाले दुःख इन सभी को गहराई से देखे और विचार करे कि ये परिवर्तन क्यों हैं ? यहीं से जीवन में ज्ञान प्रकट होगा जो ऊँचाई की ओर ले चलेगा।

इन्द्रियों के विषयों में व्यक्ति को वैराग्य लाना चाहिये। त्वचा की जिस सुन्दरता के साथ मनुष्य शरीर का सौन्दर्य देखता है, वह कुछ भी नहीं है। शरीर चमड़ी, खून, थूक, मलमूत्र इन्हीं से भरा हुआ है। शरीर में कोई बीमारी लग जाये और शरीर का मल तेजी से विसर्जित होने लगे तो शरीर की आभा और चमक खत्म होने लगती है क्योंकि वह चमक मैल थी वही बाहर आ गई। इसलिए ज्ञानी लोग कहते हैं कि थूक और मलमूत्र पर, इस खून और चमड़ी पर, इस मांस के लोथड़े के प्रति इतना आकर्षण क्यों? अपने मन में वैराग्य लाओ। अगर आकर्षण में बंधे रह गये तो इतनी देर बाद आँख खुलेगी कि तब तक शरीर की ऊर्जा जा चुकी होगी, शरीर शिथिल हो चुका होगा। मन वासनाओं से भरा रह जायेगा, इच्छायें पीछा नहीं छोड़ेंगी, अतः कहीं न कहीं नियन्त्रण लगाना आवश्यक है। संसार के विषय भोग बहुत विचित्र हैं। **अगर कोई सोचे कि संसार के विषय भोगों को भोग कर वह अपने मन को शान्त कर लेगा, उसकी वासनाएं शान्त हो जायेंगी तो यह उसकी भूल है। जैसे आग में ईंधन डालने से आग कभी बुझा नहीं करती, वैसे ही इन्द्रियों को उनका भोग देकर, उनका ईंधन उनमें डालकर उनकी आग को ठंडा नहीं किया जा सकता।** मन को अगर समझाया जाये, मन के अन्दर यदि ज्ञान आ जाये तभी मन इन विकारों से बच सकता है।

भगवान कहते हैं कि संसार की चमक के पीछे की वास्तविकता को जानना ही ज्ञान है। श्मशान में जलती चिता को देखकर व्यक्ति के मन में जो वैराग्य आता है, उस समय मन में जो ज्ञान जागता है वह यदि व्यक्ति

के अन्दर स्थापित हो जाये, तो सदा के लिये कल्याण हो जाए। लेकिन व्यक्ति संसार की चमक के पीछे भागता है। शुकदेव मुनि ने बड़ी कोशिश की कि राजा परीक्षित को ज्ञान हो जाये, लेकिन उनका मन शरीर के मोह और संसार के भोगों के प्रति बहुत आसक्त था। उन्होंने कहा, "इस संसार में अभी मैंने कुछ देखा भी नहीं, अभी कुछ भोगा भी नहीं और अभी ही जाना पड़ रहा है।" जब शरीर छूटने वाला होता है तब मनुष्य बहुत बार ऐसा सोचता है कि अभी तो हमने कमा कर इकट्ठा किया है। संसार भोगने का समय तो यही है, पर शरीर में बीमारियाँ लग गयीं हैं, समस्याएँ आ गयी हैं। भगवान अगर और मौका देते तो हम अच्छे ढंग से जी लेते। परंतु परिणाम वही निकलेगा जैसा ययाति ने भी कहा था कि, "मैंने तीन सौ साल की उम्र जी कर देख ली, मेरा शरीर शिथिल हो गया है, लेकिन मन शिथिल नहीं हुआ।" इन्सान की वासनाएं हमेशा जवान रहती हैं, भले ही शरीर बूढ़ा हो जाये, उम्र जितनी बढ़ती जायेगी, वासनाएं उतना ही वीभत्स रूप धारण करती जायेंगी और इसके फलस्वरूप इन्सान भयंकर रूप धारण कर लेगा। इसलिए उचित यही है कि पहले ही नियन्त्रण लगा लिया जाये।

शुकदेव मुनि ने परीक्षित को समझाने के लिये एक वैराग्य पूर्ण कथा सुनाई जिससे जिन चीजों के प्रति उसे आकर्षण था, उनके प्रति उसके मन में घृणा पैदा हो जाये और मन वहां से हटकर सन्मार्ग पर लग जाये। कथा बड़ी मार्मिक है : एक राजा था। आंधी तूफ़ान के कारण वन में रास्ता भटक गया, सांझ अंधेरी थी और वर्षा भी हो रही थी। उसने दूर कहीं किसी झोंपड़ी में जलता हुआ चिराग देखा। सुरक्षा के लिये वहां पहुँचने की भावना जागी। सारे अंगरक्षक इधर उधर खो गये थे। तूफान से बचते बचाते जैसे ही वह भीगता हुआ कुटिया के नज़दीक पहुंचा, तो वहां दुर्गन्ध महसूस हुई। नज़दीक जाकर देखा कि आस पास मलमूत्र, थूक आदि गंदगी पड़ी हुई है। उस मकान के ऊपर खालें लटकी हुई हैं और चारों तरफ हड्डियां बिखरी पड़ी हैं। यह सब देखने के बाद उसके मन में आया कि यहाँ नहीं जाना चाहिये। उसने इधर उधर देखा पर शरण के लिये कोई और स्थल नज़र नहीं आया। तब अन्दर रहने वाले शिकारी को उसने आवाज दी और कहा,

“व्याध, तेरे घर में रहने की इच्छा जरूर है, लेकिन यहाँ दुर्गन्ध बहुत है। इच्छा नहीं हो रही, फिर भी यहाँ रहना पड़ेगा। अगर तुम कहो तो अन्दर आ जाऊँ। क्या तुम इससे अधिक सुरक्षित स्थान मुझे दे सकते हो?” तब वह व्याध हंसा और बोला, “हे राजन्! एक बार मेरे मकान में आ जाओ, फिर तो यहाँ ऐसे रमोगे कि यहाँ से निकलोगे ही नहीं। एक रात रह जाओ यहां, फिर तुम कहोगे कि यहाँ तो कोई दुर्गन्ध नहीं आती, यह तो बहुत अच्छी जगह है। राजा, तुम अपनी नगरी भूल जाओगे, फिर जाना नहीं चाहोगे।” राजा हँसकर बोला, “मूर्ख, स्वर्ग में रहने वाला नरक में नहीं रहा करता, मजबूरी में, यहाँ आना पड़ गया।” व्याध बोला,“यहाँ रहने के बाद आप यहाँ से जाने की इच्छा नहीं करेंगे। आपको ज्ञान तब होगा, जब आपके यहाँ रहते मैं कहूँ कि निकलो बाहर और मोह से ग्रस्त होने के बावजूद अचानक आपके मन में जागृति आ जाये और आप इस जगह को छोड़ कर बाहर निकल जाएं। लेकिन आप ऐसा ज्ञान जगा नहीं पाएंगे, मूर्खता में आ जाएंगे। इस तरह आपके ज्ञान की परीक्षा भी हो जायेगी।”

राजा उस कुटिया में चला गया, पर बड़ा बेचैन रहा। चारों तरफ बदबू ही बदबू, ऐसा दृश्य उसने जीवन में कभी देखा नहीं था। किसी तरह रात में उसे नींद आ गयी। अगले दिन उठते ही राजा ने कहा, “मैं अपनी नगरी भूल गया हूँ। यही नगरी ज्यादा ठीक है।” परीक्षित ने यह घटना सुनी। सुनने के बाद कहा, “महाराज, आपने ज्ञान की बात तो सुनाई, लेकिन दुनिया में ऐसा मूर्ख राजा कहाँ होगा, जो अपने सुन्दर भव्य महलों को छोड़कर गन्दगी से भरे जंगल में किसी टूटे फूटे मकान में जाकर रहने लगे और वहां से बाहर जाये ही नहीं। ऐसा तो हो ही नहीं सकता।” शुकदेव मुनि हँसकर बोले, “तू ही है ऐसा मूर्ख राजा, कोई और नहीं। मलमूत्र का मकान यह शरीर ही तो है। जिस स्वर्ग नगरी से आया है, वहाँ तू जाना नहीं चाहता। नरक में बसना चाहता है। शुरू में तो कहता था कि इस नरक में नहीं आना चाहता, लेकिन यहाँ आकर ऐसा रम गया कि अब तुझे वैराग्य हो ही नहीं रहा।” इतना सुनने के बाद परीक्षित को एक झटका लगा। उसने कहा, “यह मृत्यु नहीं अपने धाम को वापस लौटना है। यह मृत्यु नहीं एक

विश्राम है। अब मृत्यु से डर नहीं लग रहा।" इसीलिये **'ज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यं'** ज्ञान जब अपनी चरम सीमा पर पहुंचता है तो वैराग्य को जन्म देता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मन में वैराग्य आना चाहिये। यह तो शरीर छोड़ने के समय वैराग्य की बात हुई। अब सम्बन्धों की बात देखिये। जिन सम्बन्धों को हम बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं, अपने बेटे, अपने भाई, अपनी पत्नी, अपने मित्रों आदि को, तो सब अपने अपने स्वार्थ के हिसाब से प्रेम करते हैं। किसी का स्वार्थ पूरा न हो तो वह लड़ने को तैयार हो जाता है। अगर इन्सान किसी के लिये रोयेगा भी तो अपने स्वार्थों को ध्यान में रखकर ही रोयेगा कि वह हमारे लिये यह करता था, वह करता था। वह चला गया तो हम कैसे गुजारा करेंगे? किसी शायर की पंक्तियाँ हैं, **"रह गयों पर है मुसीबत, जो गये अच्छे गये।"** जो चला गया, वह तो अच्छे ढंग से चला गया, लेकिन जो रह गया, उस पर मुसीबत आ पड़ी है। कैसे गुजारा करेगा? कैसे चलायेगा काम? उसकी सारी आवश्यकतायें तो उस जाने वाले से ही पूरी हो रही थीं। अगर व्यक्ति का शरीर किसी काम के लायक न हो, तो घर के लोग भी कहते हैं, "अच्छा हुआ कष्ट से मुक्ति मिल गयी।" किसके कष्ट से किसको मुक्ति मिल गयी ? जिस दिन आपका शरीर खाट पर लेट गया, आप अपने और सारी दुनिया के लिये बोझ हो गये। आपको आश्चर्य होगा कि बहुत से लोग हमारे पास आकर ऐसा आशीर्वाद मांगते हैं और कहते हैं कि घर में पिताजी की हालत बहुत खराब चल रही है। कुछ ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि बस वे और कष्ट न भोगें। भई, हम ऐसा आशीर्वाद क्यों दें ? असल में तो सारा कष्ट उनको उठाना पड़ रहा है, जो सेवा में हैं।

जब तक पिता बेटे को देता रहा, बेटे का नजरिया पिता की तरफ कुछ और था। जिस दिन पिता ने कमाना बन्द कर दिया और बेटे से कहा कि बेटा अब तू मेरी सहायता कर, उस दिन से बेटे की आँखें बदल जाती हैं, बात करने का ढंग बदल जाता है। शब्दों में कड़वाहट आ जाती है, वह पिता को डांटना और समझाना शुरू कर देता है। जब तक आपके हाथ पाँव चल रहे हैं, जब तक आप कमा रहे हैं, आपकी दुनिया अलग है। पर जब कमाना

बंद, हाथ पांव का चलना बंद, तो लोग भी बदल जाते हैं। तांगे में जुता हुआ घोड़ा जब तक तांगे को खींच रहा है, मालिक उसे घास भी डालेगा, उसकी सेवा भी करेगा, पर जिस दिन वह बूढ़ा हो जायेगा, कोने में खड़ा कर दिया जायेगा। कोई घास डाले, पानी दे, तो यह दया है बस। यही हालत होती है इन्सान की। शरीर छूटने लगे तो परिवार वालों का ध्यान चाबी पर ही होता है। एक महिला ने कहा कि उसका मन वैरागी हो गया है, अब घर परिवार में जाना नहीं चाहती। पूछने पर कहा कि वह बीमार पडी तो एक बार बेहोश हो गयी। सभी उसे अस्पताल लेकर गये। जैसे ही वह बेहोश हुई थी, एक बहू ने उसके हाथ में से कड़े उतार लिये और बेटे ने पर्स सम्भाल लिया। अभी वह मरी भी नहीं कि जीते जी इन लोगों ने ऐसा किया। आँखें बन्द होते ही सारा संसार आपके लिये पराया हो जायेगा। यदि यह बात अभी नहीं समझोगे तो फिर भोगना पड़ेगा।

एक बार हम लोग साधना में लीन थे। उत्तरकाशी में सांझ के समय एक अलग तरह की साधना हुआ करती थी। वैराग्यपूर्ण भजन चलते थे। उन वैराग्यपूर्ण भजनों में बैठकर आँखें बन्द कर लीन होना पड़ता था। उसी दौरान एक अन्धे बाबा ने एक कथा सुनाई थी, जिसका सार बता रहा हूँ। एक महिला भूखी प्यासी रहकर अपने बीमार पति की सेवा करती रो रही थी। एक रात दो बजे पति की मौत हो गयी। घर में कोई और था ही नहीं। महिला ने सोचा कि तीन दिन से मैंने कुछ खाया पिया नहीं है। अब यह मर गये हैं तो कल सारे दिन लोग, रिश्तेदार आयेंगे, शव को लेकर जायेंगे। इस तरह कल का दिन भी भूखा रहना पड़ेगा, साथ ही रो रोकर बुरा हाल हो जायेगा। इसलिए वह सोचती है कि अभी कुछ खा लूं पर खाना बनाने के लिये रात में चूल्हा जलाया तो आसपास के लोग देखेंगे। उस के मन में आया कि ऊपर भुने हुए चने के दाने रखे हुए हैं, वही निकाल कर खा लूँ। तब वह एक कुर्सी लेकर आती है, पति के शव के पास कुर्सी रखकर, उसके ऊपर चढ़ कर चने निकालती है। वह लाश को देख रोती भी जा रही है और चने भी खाती जा रही है। उस अंधे बाबा ने बड़े मार्मिक शब्दों में गाकर कहा, ओ जाने वाले इन्सान! तू तो सोचता था कि तेरे साथ सारी

दुनिया चली जायेगी, रोने वाले भी यही कहते थे कि जा रहे हो तो मुझे भी साथ लेकर जाना। अब यह क्या हो गया, जो तेरे सामने ही बैठकर चने खा रही है!

यह स्पष्ट है कि मन में वैराग्य जब जागेगा तभी कल्याण होगा, चाहे सम्बन्धों की दुनिया हो या धन की बात हो। धन जिसके कब्जे में है, उसका है। जो आपके हाथ में है , जो आपने प्रयोग कर लिया, जो आपने दे दिया, उतना आपका, बाकी दूसरे अपने अपने ढंग से प्रयोग करें। तो फिर किसके लिये इतने गुनाह मोल ले रहे हो। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जब वैराग्य जागेगा तो ज्ञान होगा, वैराग्य के बिना ज्ञान अधूरा है। वैराग्य मन को जगाने लगता है, वास्तविकता दिखाई देने लगती है। जीवन क्या है, संसार क्या है, संसार के सम्बन्ध क्या हैं यह सब और शरीर की कहानी समझ में आने लगती है। शरीर मिट जाए तो नया जन्म होता ही है, लेकिन मिटने की कहानी यह भी तो है कि शरीर रोज़ ही तो थोड़ा थोड़ा मिट रहा है। धीरे धीरे करके शरीर में परिवर्तन आ रहे हैं। सारी उम्र शरीर को सजाते रहे फिर भी शरीर कुरूप हो जाता है। चेहरा ऐसा कुरूप हो जाता है कि देखने का मन न करे। जवानी में जिसने अपना चेहरा सुन्दर देखा हो बुढ़ापे में उस पर झुर्रियाँ पड़ जायें, मुख में दाँत न रहें, आँखों में मैल आने लग जाये, हाथ कांपने लगें, तो उसे कैसा लगेगा। भोजन करने बैठे तो कपड़ों पर सब्जी गिर जाये। तब घर के छोटे छोटे बच्चे भी आकर बोलते हैं कि दादाजी, आपको खाना नहीं आता। तब वह सोचता है कि बच्चों को अब कौन समझाये कि उनके बाप को भी मैंने ही खाना सिखाया था। अब तू मुझे समझा रहा है कि खाना कैसे खाना चाहिए। ये शरीर की परिवर्तित स्थितियाँ हैं। सब कुछ बदलेगा, लेकिन एक चीज़ नहीं बदलेगी, वह है आत्मा। शक्ल बदल जायेगी, शरीर बदल जायेगा, परिस्थितियाँ बदल जायेंगी, लोग बदल जायेंगे, मौसम भी बदलेंगे, अमीरी गरीबी भी बदलेगी लेकिन तुम नहीं बदलोगे। तुम्हारी आत्मा वही की वही रहेगी। इसलिये इस आत्मा को अपने परमात्मा से जोड़ने की कोशिश करो। यदि संसार से जोड़ोगे, तो दुःखी होते रहोगे।

भगवान ने आगे कहा कि वैराग्य का होना ज्ञान है। जीवन को अहंकार से रहित कर लेना वैराग्य है। ज्ञान जीवन की उच्चता है। वैराग्य में आकर अहंकार को मिटा देना, अपने 'मैं' का ध्यान न रहना, यह ज्ञान है। अपने 'मैं' का विस्तार करते करते हम तरह तरह के कार्य करते हैं। आज मैं यह हो गया हूँ, वह हो गया हूँ। लोग भी कहते हैं कि आपने बड़ी तरक्की कर ली। तरक्की अगर अन्दर की है, तब तो बहुत अच्छी बात है। पर यदि तरक्की संसार के ठीकरे जोड़ने की की है तो वह तरक्की नहीं है। आपने सिर्फ अपना मोह बढ़ा लिया है। जितना पकड़ना सीखा है, हिम्मत करके एक झटके में सब कुछ छोड़कर यदि आप बाहर निकल सकें, तब आप ज्ञानी हैं, नहीं तो आपने जो भी विस्तार किया है वह दुःख देने वाला है। **हर संयोग का वियोग है, हर संग्रह का विग्रह है। जो जोड़ा है, वह छोड़ना जरूर पड़ेगा। जो पाया है, उसे खोना जरूर पड़ेगा, जो आया है, उसे जाना जरूर पड़ेगा।** जिन्दगी भी तो भगवान की दी हुई विरासत है, उसकी सौगात है, वह तो वापस लौटानी ही पड़ेगी। यह वस्तु तो उसी की है, इसलिए जब उसे वापस करना पड़े तो प्रसन्नता से वापस करो। न देना चाहोगे तो वह ताकत वाला है, छीन लेगा। इसलिये अहंकार न करो, किसी भी वस्तु के प्रति ममत्व का भाव न रखना सीखो, क्योंकि संसार के सब पदार्थ जो आपने प्राप्त किये हैं, यहीं छोड़ने हैं।

इस संसार पर अधिकार जमाने के लिए तरह तरह के लोग आये। उन्होंने जमीन को नापा, पानी को नापा, आसमान नापा और कहा इतना स्थान उनका हो गया। पर कोई भी जमीन कभी भी किसी की नहीं हुई। धन किसी का अपना नहीं हुआ, हीरे जवाहरात कभी किसी के नहीं हुए। सब यहीं छूट गए। ज़रा सोचिये कि कोहिनूर हीरे को कितने ही लोगों ने अपनी पगड़ी में सजाया। जितने भी प्रसिद्ध हीरे हैं, रत्न हैं, जवाहरात हैं, उनकी कहानी आप पढ़िये। एक हीरे का इतिहास चार सौ साल का है और इसके कारण हजारों लोगों का खून बहा। फिर भी इस पर अधिकार जमाने वाले पागल लोग आते रहे, खून बहाते रहे, थोड़े समय के लिए इस पर अधिकार करते रहे, लेकिन वह किसी के अधिकार में नहीं आया। जमीन आज भी

वही है, इसे नापने वाले आते रहे, कब्जा करने वाले आते रहे। नाप नाप कर कागज पर लिखते रहे कि इतनी जमीन मेरी हो गयी, पर जमीन यहीं की यहीं पड़ी हुई है और वे सब के सब खुद चले गए। यह ज़मीन किसी की नहीं हुई।

एक कहानी है कि किसी आदमी को राजा ने यह कहा कि जितनी ज़मीन तुम नाप लोगे, उतनी तुम्हारी हो जायेगी। वह आदमी घोड़े पर बैठकर दौड़ पड़ा। सवेरे से शाम तक दौड़ता रहा। उसको यही लगता रहा कि जितनी ज़मीन तक मैं पहुँच गया, वहाँ तक का मैं मालिक हो गया। वह सोचता रहा कि लोग देख कर कहेंगे कि देखो एक ही दिन में कितना बड़ा आदमी हो गया है, रातोंरात इस आदमी ने कितनी तरक्की की। उसके मन में यह भी आया कि थोड़ा आराम कर लूँ पर मन ने उसे समझाया कि नहीं, सारी ज़िन्दगी तो आराम ही करना है, इसीलिए और दौड़। वह दौड़ता रहा, दौड़ता रहा। सांझ हो गयी। थक कर गिर पड़ा और अचानक जब उसके प्राण निकलने लगे, तब बादशाह ने नज़दीक आकर उससे पूछा, "ज़मीन नाप ली ?" उसने कहा, "कोशिश तो बहुत की, सारा दिन नापने की कोशिश करता रहा।" राजा ने कहा, "लेकिन मेरे भाई असली ज़मीन तो तुमने अब नापी है। जितने में तुम्हारा शव पड़ा हुआ है, उतनी ही ज़मीन नाप पाये हो। बाकी तो सिर्फ चक्कर काटते रहे।" इस तरह की अन्धी दौड़ में, अन्तहीन यात्रा में हर आदमी शामिल है। भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति इससे बाहर निकल जाये, ' मैं ' और ' मेरे ' के विस्तार को तोड़ दे तो उसे ज्ञान हो गया, जो न तोड़ पाये, वह अज्ञानी रह गया। वह अहंकार का खिलौना बनकर सारा जीवन संसार में नाचता रहेगा।

भगवान ने आगे कहा, **जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।** ज्ञान यह भी है कि जीवन में होते हुए परिवर्तनों पर ध्यान दो। जन्म किस रूप में होता है? मां की कोख में पांव ऊपर, सिर नीचे रखकर शिशु नौ मास व्यतीत करता है तब संसार में आता है। संसार में मन नहीं रमता है, खूब रोता है, लेकिन संसार के लोग अपने अपने रिश्ते बताने शुरू कर देते हैं। सब उसको अपनी गोद में लेते हैं। कोई कहता है मैं तेरा मामा हूँ।

कोई कहता है, मैं तेरा चाचा लगता हूँ, कोई कहता कि मैं तेरा पिता हूँ, कोई कहता है कि मैं माँ हूँ तेरी, माँ बोल। लेकिन उसका मन कहीं भी नहीं रमता। वह किसी का नाम नहीं बोलना चाहता, लेकिन सब उसे खिलाते हैं, पिलाते हैं, दुलार करते हैं और फिर रिश्तों को याद कराते हैं। जैसे ही पहली बार उसने माँ कहा, पिता कहा या पापा बोल दिया तो लोग खुश हो जाते हैं कि आज इसने पापा बोल दिया, आज इसने माँ कह दिया।

जब बुढ़ापा आता है, आँखें देख नहीं पातीं, कान सुन नहीं पाते, कोई मिलने वाला आ जाता है तो बूढ़ा आदमी सवाल करता है, "कौन हो?" आने वाला प्रणाम करके कहता है, "बाबा प्रणाम करता हूँ। फलाने का बेटा हूँ।" "अच्छा अच्छा" कहते हुए बूढ़ा आदमी बहुत देर तक समझने की कोशिश करता है। जब तुमने संसार में जन्म लिया तो कितना भोलापन लेकर संसार में आये थे। कितनी निश्छलता लेकर आये थे। कितने मीठे और मोहक बनकर आये थे। कोई भी जीव जो भी योनि लेकर संसार में आया, बड़ा मोहक, बड़ा सुन्दर लगा। जैसे जैसे संसार की मैल चढ़ने लगती है व्यक्ति कुटिल होता जाता है। उसके अन्दर की पवित्रता भंग होने लगती है। व्यक्ति छल से और दंभ से युक्त हो जाता है। बच्चे के अन्दर तो भगवान का रूप होता है, लेकिन बड़ा होने पर सिखाने वालों ने उसमें शैतान का रूप भी भर दिया। बच्चा था तो भगवान के करीब था, बड़ा हो गया तो दुनिया के करीब और भगवान से दूर होता गया। भगवान के करीब होने के लिए अपने में पवित्रता लाओ।

भगवान कहते हैं कि कुछ बातों पर ध्यान दो। जन्म क्या है? मृत्यु क्या है? कहाँ से आए हो? कहाँ जाना है? तुम्हें कौन लाया है? तुम्हें वापस कौन भेजेगा? किसकी व्यवस्था से तुम दुनिया में आये? किसकी व्यवस्था से दुनिया से जाना है? तुम कितने समय के लिये दुनिया में आये हो? एक व्यक्ति ने बताया कि कैसे उसके पिताजी की अचानक मृत्यु हो गई। वह स्वयं गाड़ी चला कर अपने मित्र से मिलने गये थे। मित्र की कोठी पर पहुंच कर गाड़ी रोकी। गाड़ी का दरवाजा खोलने लगे, पर खोल नहीं पाये। एक हाथ दरवाजे पर था, एक हाथ स्टेयरिंग पर रखा था और प्राण निकल गये।

जिस मित्र के घर गये थे वह उन्हीं को टेलिफोन कर रहा था कि अभी तक पहुंचे नहीं। उसने बाहर झांक कर देखा कि गाड़ी तो बाहर खड़ी है, लेकिन वह उतर नहीं रहे। तब मित्र कार के पास गये तो देखते क्या हैं कि एक हाथ स्टेयरिंग पर और दूसरे हाथ से दरवाजा खोला हुआ है। गाड़ी से वह उतरने लगे थे, उतर नहीं पाये। आगे यात्रा पर जाना था, लेकिन यात्रा दूसरी ही हो गयी। इतना भी मौका नहीं मिला कि दरवाजा खोलकर बाहर आ सकें। हुक्म हो गया कि बस, इतनी ही सांस थी। इस खिलौने में चाबी खत्म हो गयी है, इसे छोड़ो और आ जाओ वापस। शरीर वहीं रह गया, पंछी उड़कर चला गया। डाक्टर चैकअप करेगा, हार्ट को मशीन लगा कर उसे देखेगा, बाहर से ऑक्सीजन देगा, लेकिन यदि अन्दर श्वास लेने वाला ही नहीं है, तो हमारी सारी मशीनें बेकार हो जाती हैं। यहीं इन्सान अपने आपको बौना महसूस करता है। मृत्यु का इलाज नहीं है।

जब मौत आती है तो कोई बहाना लेकर आती है, सीधी सीधी कभी भी नहीं आती। गरीब आदमी कहेगा कि इलाज नहीं करा पाया, इसलिये मेरा बेटा चला गया। अमीर कहेगा कि मैंने तो इलाज बहुत कराया, पर क्या करूँ? कोई कहेगा कि अगर विदेश का डाक्टर मिल जाता तो शायद बच जाते। विदेश वाला कहेगा कि मेरे बेटे के आस पास सारे डाक्टर खड़े थे, लेकिन उसे बचा नहीं पाये। ये सब संसार के बहाने हैं। आदमी एक बीमारी का इलाज ढूंढेगा, तब तक भगवान एक नई बीमारी और भेज देगा और कहेगा कि तू इसका नाम भी नहीं रख पायेगा, तब तक मैं एक और भेज दूँगा। नई नई बीमारियाँ, नये नये कष्ट, नये नये क्लेश, ये सब चीजें उसने अपने हाथ में रखी हुई हैं। वहाँ हम बेबस हैं। इसलिये जन्म के सम्बन्ध में विचार करना, मृत्यु के सम्बन्ध में विचार करना, यह सोचना कि बुढ़ापा क्यों आता है? अगर इन्सान इन चीजों पर विचार करने लगे तो सच में उसका मन वैरागी हो जायेगा। वह सही ढंग से जीना सीख जायेगा।

महात्मा बुद्ध को वैराग्य हुआ था तो इसी रूप में तो हुआ था। एक बूढ़े आदमी को कमर झुकाकर जाते हुए देखा तो राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने सारथी से पूछा, "ऐसा क्यों होता है?" उसने समझाया, "राजकुमार एक उम्र

आने के बाद शरीर में ये लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन्सान की सारी शक्ति खत्म हो जाती है, शरीर की ताकत और पाचन शक्ति खत्म हो जाती है, आँखें ठीक से नहीं देख पातीं"। आदमी जब बच्चा होता है तो ऊबड़ खाबड़ जगह को देखकर बड़ा खुश होता है। ऊँचाई पर दौड़ कर चढ़ जाता है और ऊँचाई से नीचे की तरफ छलांग लगाकर खुश होता है, पर बूढ़े आदमी को थोड़ा ऊँचा नीचा दिखाई दे जाये तो उसे घबराहट हो जाती है कि पांव रखूं या न रखूं, बुढ़ापे में फिसल गया और हड्डी टूट गयी तो फिर ठीक होने वाली नहीं है। बच्चा दौड़ कर चलता है, बूढ़े की जिन्दगी चलते चलते गुज़र गयी, लेकिन अब चलने में घबराहट होती है। सारथी ने राजकुमार को समझाया कि यह शरीर की एक अवस्था है। बुद्ध के पूछने पर कि ऐसा क्यों है ? उत्तर दिया गया कि कुदरत का नियम है, परिवर्तन का सिद्धान्त है। शरीर बनता है, बिगड़ता भी है, बाद में छूट भी जाता है। उन्होंने कहा छूटता कैसे है? श्वास निकल जाती हैं, आत्मा चली जाती है। अब राजकुमार विचार करते हैं कि मैं भी बूढ़ा होऊँगा, मैं भी हाथ में लाठी टेकता हुआ इसी तरह से चलूँगा। कोई मेरा साथ नहीं देगा, मैं अकेला रह ज़ाऊँगा, बीमार होकर जिऊँगा। बीमारियों का घर बन जायेगा मेरा यह शरीर।

एक दिन सिद्धार्थ ने किसी की अर्थी जाते देखी। उन्होंने पूछा, "इस आदमी को क्या हो गया है?" सारथी कहने लगा– "इसका शरीर छूट गया है, आत्मा निकल गयी है। शरीर को लेकर लोग जा रहे हैं। इसको ज्यादा देर तक घर में नहीं टिका सकते। इसमें से बदबू आने लगती है।" इस शरीर को जला दिया जाएगा। मुर्दे के शरीर से प्राण आंखों से निकल गया हो और आंखें खुली रह गईं हों तो दूसरा आदमी उसकी आंखें तुरंत बन्द करता है क्योंकि उसकी तरफ देखने की हिम्मत किसी की नहीं होती, डर लगता है। लेकिन कितनी हैरानी की बात है कि **डर अगर हो सकता है तो जिन्दा आदमी से तो हो सकता है, मुर्दा किसी का क्या बिगाड़ लेगा, लेकिन लोग मुर्दे से ही डरते हैं।**

सारथी ने आगे कहा कि यह शरीर मिट गया है। इसकी अब एक ही कहानी है। अब इसे आग पर चढ़ाया जायेगा, थोड़ी देर के बाद चिता की

लपटें उठेंगी और शरीर राख हो जायेगा। जो राख बचेगी उसको ले जाकर नदी में बहा दिया जायेगा। इस शरीर की यही कहानी है। जो हड्डियां हैं, लोग बड़े प्यार से इसका नाम फूल रखते हैं, अब आप फूल कहिये, पुष्प कहिये, चाहे कुछ भी नाम दे दीजिये, लेकिन वह कोई चमेली या गुलाब के फूल तो हैं नहीं, आदमी की हड्डियां हैं, भई। अगर किसी पौधे के फूल होते, किसी पेड़ के फूल होते तो प्यार से संजो कर रख लेते, पर आदमी की हड्डियां हैं तो कौन सम्भाल कर रखेगा? बल्कि घर में भी कोई लेकर नहीं आता। वहीं घाट पर जमा करा देते हैं। जब जायेंगे गंगाजी, वहीं से ले जायेंगे। कोई घर भी नहीं लाना चाहता। एक बार अर्थी बाहर निकल गयी, तब वापस आने का मतलब ही नहीं। उसकी कोई निशानी लोग घर के अन्दर नहीं लाना चाहते। हाँ, सोने, चाँदी की चीज हो तो आराम से निकाल लेंगे क्योंकि वह काम की चीज़ है।

हड्डियों को लेकर जो हरिद्वार जाता है, उसकी हालत क्या होती है। थैले में लटका कर ऐसे पकड़ कर चलता है कि राखवाख, धूलवूल कहीं उसके कपड़ों पर न गिर जाये। ट्रेन में भी अगर आदमी बैठेगा तो थैले को संभाल कर एक तरफ रखेगा। ट्रेन में साथ बैठने के लिये कोई आदमी आ जाये और कहे "थोड़ा सरक कर बैठना मैं आपके साथ बैठना चाहता हूँ", तो जैसे ही आपने एक आदमी को अपने पास बैठा लिया और उसने पूछा "कहाँ जा रहे हो? हरिद्वार जा रहे हो? क्या स्नान करने जा रहे हो?" "नहीं, पिताजी के फूल लेकर जा रहा हूँ।" फिर वह घूर कर इधर उधर देखता है कि फूल रखे कहाँ हैं और अगर उसको पता लग जाये कि पास में ही हैं तो दो फुट दूर सरक कर बैठ जाता है। आदमी के फूल से ऐसी घबराहट क्यों? अगर कोई कहे बड़ा भारी आफिसर था। इसको बड़े बड़े लोग सलाम किया करते थे, मिलने के लिये लोग पर्चियाँ लेकर बैठे रहते थे। साहब जी घन्टों बाद बाहर निकलते थे, तब जाकर थोड़ी देर के लिये बात होती थी। जिसके लिये कह दिया कि तेरा यह काम हो जायेगा उसका काम हो जाता था। अब उसके 'फूल' को देखकर व्यक्ति घबड़ा रहा है। दो फुट पीछे हटकर बैठता है। मरने के बाद सब एक जैसे हैं। सबकी चिता एक जैसी

जलती है। शरीर की कहानी सबकी एक जैसी है। कमाल तो यह है कि यह सब देखकर भी वैराग्य नहीं जागता। इन्सान का मन समझता ही नहीं। श्मशान घाट में थोड़ी देर के लिये वैराग्य जागता है। लेकिन थोड़ी देर के बाद वहीं पर लोग बातचीत करने लग जाते हैं। संसार की बातचीत, शेयर मार्किट के भाव, सब वही चर्चायें शुरू हो जाती हैं।

भगवान ने कहा है कि, "जन्म के सम्बन्ध में विचार करना, मृत्यु के सम्बन्ध में विचार करना, बुढ़ापे के सम्बन्ध में विचार करना।" भगवान कहते हैं कि जो बीमारियाँ शरीर में आती हैं उनके सम्बन्ध में विचार करो। बीमारी लग जाये तो क्या हालत हो जाती है। थोड़े दिन पहले तक बड़ा सुन्दर हट्टा कट्टा नौजवान दिखाई देता था। बीमारी लग गयी, हालत खराब हो गयी, मुँह टेढ़ा हो गया, लंगड़ा के चलता है, बात तक नहीं कर पाता, बड़ा लाट साहब भी हो, लेकिन बीमारी इन्सान की हालत खराब कर देती है। ये परिवर्तन किसके कहने से हो रहे हैं, कौन है जो इन परिवर्तनों को करता है, सत्ता किसके हाथ में है। इन बातों की तरफ ध्यान देने की कोशिश करो। भगवान आगे फिर कहते हैं, **'दुःख दोष अनुदर्शनम्'** जीवन में जो दुःख आते हैं, इनके सम्बन्ध में भी विचार करना कि कैसे कैसे दुःख संसार में हैं। परंतु होता यह है कि दूसरों के दुःख देखने के बाद अपने मन को बड़ा धैर्य मिलता है कि हमसे भी ज्यादा दुःखी दुनिया में पड़े हुए हैं। भगवान की बहुत कृपा है कि हम लोग उनसे अच्छी स्थिति में हैं, अच्छी हालत में हैं। भगवान, तेरा लाख लाख शुक्र है कि तूने इतनी अच्छी स्थिति में रखा है। भगवान का धन्यवाद ज़रूर करना चाहिये। संसार में लोग न जाने किस किस तरह का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कैसा कैसा शरीर, कैसी कैसी परिस्थितियाँ, और कैसे कैसे परिवर्तन हैं।

इन परिवर्तनों को देखकर विचार करना चाहिये कि संसार में अगर सच्चा सम्बन्ध कोई है तो परमात्मा का ही है। अगर कोई हमारा प्यारा है तो परमात्मा ही है। अगर कोई हमारा है तो हमारा भगवान ही है। हमें उससे सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। जब यह ज्ञान आने लगता है तो जानो कि यही सच्चा ज्ञान है। इस ज्ञान के साथ अपने आपको जोड़ो और जीवन में इस

तरह से चलो कि हर स्थिति में अपना कर्त्तव्य पूरा कर सको। दूसरों के लिये जो अच्छे से अच्छा हो सकता है, सन्तान के प्रति, परिवार के प्रति, सबके प्रति कर्त्तव्य पूरा कर दो। लेकिन उनके लिये इतना ज्यादा मोहग्रस्त न हों कि यह सोचने लगें कि उनका भाग्य हम अपने हिसाब से बना देंगे। ऐसा कुछ होने वाला नहीं है। हर आदमी अपना अपना भाग्य लेकर दुनिया में आया है और अपने अपने भाग्य के अनुसार संसार में जीता है।

टालस्टाय ने एक कहानी लिखी थी जिसका मतलब उन्होंने यूं बताया था कि किसी यमदूत को स्वर्ग के अधिकारी ने कहा कि जाओ धरती पर जहां एक महिला अपनी दो बेटियों को जन्म दे रही है। जन्म के बाद माँ जैसे ही अपने बच्चों को देखे उसी समय उसकी मौत कर देना। यम का आदेश पाकर यमदूत धरती पर आ गया। जैसे ही उसने फूल सी दो छोटी छोटी बच्चियों को देखा, जिन्होंने अभी अभी जन्म लिया था, माँ जिन्हें दूध भी नहीं पिला पायी थी, तो उसे दया आ गयी पर आदेश तो यही है कि माँ को तुरन्त मार देना। यमदूत ने सोचा कि मैं नहीं मारूँगा। भगवान हमसे यह क्या करवाते हैं? कोई जीना चाहता है, उसके मन में सुनहरे सपने हैं। जुड़वां बच्चियां पैदा हुई हैं, अभी तो उन बच्चियों को माँ का प्यार चाहिये। वह यमदूत वापस यमलोक आ गया। उसने धर्मराज से कहा, "धर्मराज! हमसे यह काम नहीं होगा। हम उसे नहीं मार सकते। हमें दया आ गयी। दोनों बेटियाँ बहुत प्यारी हैं। उनको माँ का प्यार मिलना चाहिये।" यमराज ने कहा, "हमारे आदेश का तुमने पालन नहीं किया, तुम्हें इसकी सज़ा दी जायेगी, और उसकी तो मौत अभी हो ही जायेगी।" दूसरा दूत भेजा गया और उस महिला की मौत हो गयी। पहले यमदूत को कहा गया कि तू धरती पर जा, सज़ा भोग और अपनी मूर्खता पर पछता। तीन बार हँसना, तब तुझे इस स्वर्ग में आने का दोबारा मौका दिया जाएगा। हम तुम्हें नहीं समझायेंगे। तुम संसार में जाकर अपने आप समझो।

उस यमदूत को धरती पर गिरा दिया गया। यमदूत जब धरती पर जाकर गिरा तब सर्दियों के दिन थे। ठण्डी हवा चल रही थी। यमदूत धरती पर फटेहाल जाकर गिरा। ज़मीन पर पड़े पड़े उसने एक मोची को

जाते देखा। उसका कम्बल फटा हुआ था। वह मन में सोचता हुआ जा रहा था कि भगवान ने हमको बहुत गरीब बनाया है। इस गरीबी से हम बड़े परेशान हैं। अब नया कम्बल लेना पड़ेगा। जो पैसे इसमें खर्च करने पड़ेंगे, वे कहीं और भी काम आ सकते थे। ऐसा सोचता जा रहा था कि अचानक देखा कि एक आदमी (यम का दूत) नंगा पड़ा हुआ है। वह मन ही मन कहने लगा, हे भगवान! हम तो सोचते थे कि हम ही बड़े गरीब हैं पर हमसे भी ज्यादा गरीब दुनिया में हैं। अपना कम्बल नंगे आदमी को देते हुए बोला कि लो भाई, संभालो यह कम्बल और आराम से ओढ़कर लेट जाओ। कभी ज़रूरत पड़े तो हमारे पास आ जाना। मोची सोच रहा था कि हम तो खुद काम ढूढंते फिरते हैं हम भी दूसरों को क़ाम देने वाले बन गये, हम भी नौकर रखने वाले बन गये, अजीब संसार है। उस आदमी ने कम्बल ओढ़ा और ओढ़ने के बाद जोर से हँसा, हँसकर मन ही मन सोचने लगा यह आदमी मुझे गरीब समझ रहा है, पर कोई बात नहीं अभी तो दो बार और हँसना है। वह अब मोची के साथ साथ चल पड़ा और उसके घर जूते बनाने का काम करने लगा। उसने काम इतने बढ़िया ढंग से किया कि थोड़े दिनों में मोची की दुकान बड़ी प्रसिद्ध हो गयी, बहुत अच्छे अच्छे जूते बनने लगे, राजा भी अपने जूते वहीं से बनवाने लगे।

एक दिन राजा का एक आदमी आया और कहा कि राजा साहब के लिये जूते बना दो लेकिन स्लीपर नहीं बना देना। टालस्टाय ने सोवियत संघ के हिसाब से कहानी लिखी थी। वहाँ ऐसा नियम रहा होगा कि जब राजा मरता था तो उसको स्लीपर पहनाते थे, जूते नहीं। राजा के जूते बनाने का काम यमदूत को दिया गया। उसको कहा गया कि जूते बनाना, स्लीपर मत बनाना। पर उस भले आदमी ने स्लीपर बनाकर रख दिये, जूते नहीं बनाये। राजा के आदमी के आने का समय हो गया था। मोची ने सोचा कि इसने जूते नहीं बनाये, स्लीपर बना दिये। अब राजा का आदमी आने ही वाला है। राजा कहेगा कि यह तो मुझे जीते जी मारना चाहता है। मुझे जेल में डाल दिया जायेगा और फांसी की सज़ा दे दी जायेगी। गुस्से में आकर उसने हंटर पकड़ा और यमदूत को पीटने लगा। अब यमदूत को

बहुत जोर से हँसी आयी। तब मोची ने पूछा कि हँस क्यों रहा है तो उसने कहा कि तेरा राजा मर गया है, इसीलिये तो स्लीपर बने हैं। वह बैठा बैठा हँस रहा था और सोच रहा था कि इन लोगों को ज्ञान नहीं है। ये लोग गुस्से में आकर ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। मन ही मन विचार आया कि चलो दो बार तो हम इनकी मूर्खता पर हँस पड़े हैं, अब एक बार और हँसने की बारी हो जाये तो वापस यमलोक जा सकेंगे।

कई साल बीत गए। फिर एक दिन ऐसा हुआ कि एक बूढ़ी महिला दो लड़कियों को लेकर जूते बनवाने आयी। यमदूत ने उसका नाम, पता पूछा। जब वह पता लिखवाने लगी तो यमदूत ने कहा, "यह जो पता आप लिखवा रही हैं, यह तो उस घर का पता है जिसमें एक महिला ने अपनी दो बेटियों को जन्म दिया था और जन्म देते ही वह मर गयी थी।" बूढ़ी महिला कहने लगी आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। लगता है आप भी वहीं रहते होंगे। तब यमदूत ने कहा, "हाँ हम एक बार किसी काम से वहाँ गये थे"। तब वह महिला कहने लगी, "क्या बतायें, वे बच्चियाँ बहुत प्यारी और भाग्यवान हैं। माँ तो जरूर मर गयी पर हमको दया आ गयी, हम पड़ोस में ही रहते थे हमने उन बच्चियों को पाल लिया, अब वह दोनों बेटियाँ कोई और नहीं ये ही हैं जो सामने खड़ी हुई हैं। इनका विवाह राज घराने में हो रहा है। इसीलिये जूते बनवाने के लिये हम लोग यहाँ आये हैं।" यमदूत ने यह बात सुनी और सुनते ही बड़े ज़ोर से हँसा और कहने लगा, "अरे विधाता! तेरी महिमा को तो तू ही जानता है, पता नहीं किस के भाग्य में क्या लिख रखा है। किसको कहाँ पलना है, वह कैसे अपना भविष्य बनायेगा और कैसे वह ज़िन्दगी जियेगा। यह तो हम लोगों की मूर्खता है कि हम न जाने क्या क्या सोचते हैं। हममें से कौन किसी का भाग्य बना सकता है, कौन किसी को कुछ दे सकता है? भगवान! तू सबका भाग्य लिखता है, सबका हिसाब बनाता है। हम पाप करके अपनी आत्मा को कलुषित करते हैं।" यमदूत की कथा तो यहां समाप्त हो गई पर हमें कितनी बड़ी बात बता गई। अतः मैं आपसे यही कहना चाहता हूं कि इन सब चीजों को देखना, विचार करना, और विचार करते करते आपके अन्दर ज्ञान का जो अंकुर पैदा हो,

उसे टिकने देना, मरने मत देना। भगवान कहते हैं कि जब ऐसी मनःस्थिति बनती है तो तुम ज्ञानी हो जाते हो, तुम जागृत पुरुष हो जाते हो और तब तुम मेरी शरण लेने लायक बन जाते हो।

भगवान श्रीकृष्ण ने जीवन की यह सच्चाई बताई है कि अगर तुम अपने आपको बहुत बड़ा ज्ञानी या समझदार कहते हो, तो वह ज्ञान जब तक वैराग्य से पूर्ण नहीं होता तब तक अधूरा है। ज्ञान तो यही है कि जीवन को कैसे जीना चाहिए और संसार में कैसे व्यवहार करना चाहिए, कैसे कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। लेकिन कर्त्तव्य करते करते पाप न कमा लेना, आत्मा को कलुषित न होने देना। अगर अपनी आत्मा कलुषित कर ली तो तुम्हारा यह जीवन भी बिगड़ गया और तुम परलोक को भी बिगाड़ लोगे।

ज्ञान के बारे में बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कुछ दिव्य नैतिक गुणों को जीवन में अपनाने के लिए एक आचार संहिता हमारे सामने रखी। उन्होंने कहा कि इन सब गुणों को जब कोई अपना ले और उसके जीवन में जब ये गुण चमकने लगें, तब उस व्यक्ति के समस्त गुण धर्मों को ज्ञान कहते हैं। जब व्यक्ति मान की कामना से ऊपर उठ जाए, ईमानदारी को जीवन का अंग बनाए, हिंसक प्रवृत्ति का त्याग करे और सहनशक्ति को बढ़ाये जिससे आत्मा बलवान हो, सरलता अपनाये जिससे मन पवित्र बने, आचार्य अर्थात् गुरु का सान्निध्य प्राप्त करे जिससे अंग प्रत्यंग उज्ज्वल हों, तन और मन की पवित्रता अपनाये जिससे अन्दर और बाहर स्वच्छता आ जाये, शरीर और मन की स्थिरता लाए क्योंकि चंचलता भगवान की भक्ति में बाधक है, और अपने आप को नियंत्रित करे तो उसे ज्ञानी कहेंगे। यदि आप नियन्त्रण से बाहर हो जायेंगे तो बिखर जायेंगे। जहाँ पहुँचना है फिर वहाँ नहीं पहुँच पायेंगे। आगे भगवान ने कहा कि इन्द्रियों की वासनाओं को नियंत्रित करते हुए अपने में उनके प्रति वैराग्य उत्पन्न करें। अहंकार पूर्णरूप से छोड़ें। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, बुढ़ापा और रोग इन दुःखों का कारण क्या है, यह जानने की कोशिश करें। जो व्यक्ति इस प्रकार से मन को बनाता है उसके जीवन में ज्ञान प्रविष्ट होता है और उसके जीवन की धारा पवित्र होने लगती है।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।६।।

भगवान कहते हैं कि आसक्ति से दूर हो जाना। **'पुत्रदारगृहादिषु'** पुत्र, सन्तान, पत्नी व घर आदि इन सबका मोह मनुष्य को संसार में बाँधता है। विवेक पूर्वक कर्त्तव्य का पालन करें लेकिन संसार में बंधें नहीं और फंसे नहीं। भगवान कृष्ण ने कर्त्तव्य करने के लिए कहा **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्'** अर्थात् कर्म करें, फल की तरफ नहीं देखें। यह भी कहा कि संसार से भागना नहीं है, संसार को समझना है। भगवान कृष्ण ने पलायनवादी दृष्टिकोण नहीं दिया। यह कहा है कि घर परिवार, रिश्ते नातों से ऊपर उठना शुरू करो क्योंकि जब तक व्यक्ति मोह ममता में पड़ा रहेगा तब तक वैराग्य और ज्ञान जागृत नहीं होगा। प्रेम जीवन का आवश्यक भाग है। व्यक्ति का परिवार में प्रेम भी हो और सरोकार भी हो। अगर परिवार में ध्यान या प्रेम नहीं है तो जीवन अधूरा रहेगा। लेकिन उम्र के साथ वैराग्य जागना चाहिए। ज्ञान से तपकर अपने आप मोह पाश से छूटने की कोशिश करो अन्यथा यह संसार बहुत रुलाता है। घर गृहस्थी में जब बच्चों को पालने की कोशिश इन्सान करता है तब कई बार मन में वैराग्य जागता है, व्यक्ति सोचने लगता है कि न जाने किस पचड़े में फँस गये। परन्तु जब देखता है कि बच्चे बड़े हो गये हैं उस समय मोह सताने लगता है। जिस समय वैराग्य होना चाहिए उस समय व्यक्ति परिवार वालों को छोड़कर अलग होना नहीं चाहता।

हमारे देश में ऐसी परम्परा थी कि उम्र का तीसरा भाग तप करने के लिए होता था, उस समय इन्सान जंगल में तप करने के लिए जाता था। वह जब तीर्थों को जाता था तो अपनी सबसे प्रिय वस्तु का वहाँ त्याग करके आता था। लोग ऐसा भी करते थे कि अगर जो वस्तु सबसे अच्छी लगती थी उसे तीर्थ में छोड़ आते थे। मन को अपनी प्यारी लगने वाली वस्तुओं से ऊपर उठाते थे, जिससे संसार से ऊपर उठने की शक्ति अन्दर आए। साधना में नियम है कि जब व्यक्ति अपने को ऊपर उठाना चाहता है तो सबसे पहले स्वाद जीतना होता है। भारत में जितने भी व्रत हैं ज्यादातर सब

में स्वाद जीतने की ही भावनाएँ रखी गयी हैं। सभी व्रतों में स्वादिष्ट भोजन करने का नहीं बल्कि स्वाद को तोड़ने का नियम है; जब हम अपना स्वाद छोड़ने तथा स्वाद तोड़ने लगते हैं तो हम अपने मन को वश में रखना भी सीखने की कोशिश करते हैं, ताकि हर व्यक्ति घर गृहस्थी के कार्यों से ऊपर उठे, बच्चों के कार्यों में ज्यादा दखलअंदाजी नहीं करे। परिवार में जब आप देखें कि बेटे का बेटा हो गया, दादा जी, या दादी जी वाली या नाना जी और नानी जी वाली उम्र आ गयी, तब एक पग सेवा के क्षेत्र में और दूसरा साधना के क्षेत्र में रहना चाहिए।

पुराणों में इस संबंध में एक बड़ी ही विचित्र कथा कही गई है। जब भगवान ने दुनिया बनाई तो सबको उम्र बाँट दी, लेकिन मनुष्य रह गया। भगवान के पास केवल २५ साल ही और बचे थे। इन्सान पीछे बैठा हुआ था। वह देख रहा था कि बैल, ऊँट, कुत्ता, घोड़ा, पंछी आदि सभी अपनी अपनी उम्र लेकर चले गये। मनुष्य सोच रहा था कि मुझे मेरा हिस्सा नहीं मिला। वह भगवान के पास गया और बोला, "भगवन्! बताइए मुझे संसार में क्या क्या करना है और मेरे हिस्से की उम्र कितनी है?" भगवान ने कहा, "तुम्हें विद्या अर्जन करनी है, घर गृहस्थी चलानी है, अपने बच्चों का काम देखना है और उसके बाद मन में वैराग्य लेकर तपस्या भी करनी है। समाज सेवा भी करनी है। अंत में तुम्हें चाहिए कि जब यह शरीर भजन करते करते शिथिल हो जाए, संसार से मोह हटाओ और तब अपने को मेरे चरणों में अर्पित कर दो।" इन्सान ने कहा, "भगवन्! जितने कार्य आपने बताये हैं इसके लिए तो आपको मुझे बहुत उम्र देनी होगी।" भगवान बोले, "मेरे पास तो २५ साल ही बचे हैं, इन्हें तुम ले जाओ।" इन्सान ने कहा, "लेकिन मेरे लिए तो सौ वर्ष होने चाहिएं।" तब भगवान ने कहा, "अगर कोई जीव अपनी उम्र लौटाने के लिए आयेगा तो वह उम्र जोड़कर तुम्हें दे देंगे।" थोड़ी देर के बाद बैल आया; उसने आकर कहा, "भगवन्! आपने मुझे ५० साल की उम्र दी, मैं उसमें बहुत परेशान हो जाऊँगा। कृपा करके आधी उम्र वापिस ले लीजिए, किसी और को दे दीजिए।" भगवान ने आधी उम्र ले ली और इन्सान को दे दी। इन्सान की २५ साल उम्र थी, २५ बैल वाली मिल गयी

तो पचास हो गयी। उस आदमी ने कहा, "भगवन्! मैं अभी भी संतुष्ट नहीं हूँ। मुझे और उम्र मिलनी चाहिए।" उसके बाद कुत्ता भगवान के पास आया। उसने कहा, "भगवन्! आपने मुझे भी पचास साल की उम्र दी है। मैं इसे नहीं रखना चाहता, आप इसमें से २५ साल कम करिए।" भगवान ने उससे भी २५ वर्ष ले लिए और इन्सान को दे दिए परन्तु इन्सान अभी भी सन्तुष्ट नहीं हुआ; वह पूरे सौ साल चाहता था।

कथा में आगे आया है कि उसके बाद भगवान के पास उल्लू आया। उसने भी अपने २५ साल कम कराये जो इन्सान को दे दिये गये और इन्सान की सौ साल की उम्र पूरी हो गयी।

कथा में कहने के ढंग से समझाया यह गया है कि मनुष्य ने उम्र तो अपनी पूरी कर ली लेकिन देखा जाये तो अज्ञानी इन्सान उन जानवरों की ही तरह से जीता है जिनसे उसे अतिरिक्त उम्र मिली। अर्थात् शुरू के जो २५ साल हैं वे तो उसके अपने थे, सो बड़े ही सुन्दर यादगार के दिन होते हैं, बड़े ही अच्छे ढंग से बीतते हैं। लेकिन २५ साल जैसे ही पूरे हो जाते हैं फिर बैल वाली जिन्दगी शुरू हो जाती है, बोझा ढोने वाली ज़िन्दगी। बैल को गाड़ी में जोतकर व बोझ भर कर जैसे कोई चलाता है वैसे ही इन्सान सुबह से शाम तक घर गृहस्थी की जिम्मेदारियों की गाड़ी खींचता है। जैसे बैल के लिए उसका भूसा गाड़ी में साथ रखा होता है ऐसे ही जब व्यक्ति घर से बाहर निकलता है तो टिफिन साथ में लेकर जाता है। यूं ही २५ साल तक रात दिन दौड़ते हुए चक्कर काटता रहता है न खाने का ध्यान न सोने की चिंता। जैसे ही बैल वाले २५ साल पूरे हो जाते हैं और संतान काम संभालने लग जाती है तब उसका अवकाश प्राप्ति का वक्त आ जाता है। लेकिन वह अपनी घर गृहस्थी से छूटना नहीं चाहता। घर के लोग कहने लग जाते हैं, "पिताजी अब दुकान पर आने की जरूरत नहीं है, हम संभाल लेंगे। अब आप आराम किया करें, हाँ थोड़ी देखभाल जरूर कर लिया करें।" अब वह कभी जाकर बिल जमा करा आता है, कभी मित्रों, रिश्तेदारों के हाल चाल पूछ आता है, कभी घर की सब्जी, दूध वगैरह ले आता है। मतलब कि चक्कर काटता रहता है, कभी घर की रखवाली तो कभी दुकान

की रखवाली। अब रक्षा करने वाला काम, रखवाली वाला काम करता है। अब सच पूछो तो कुत्ते वाली उम्र काट रहा होता है। उसकी सारी लालसा जीभ में समाती है। उसमें बोलने की शक्ति भी तेज हो जाती है। हर हलकी सी आहट पाकर वह जाग जाता है और बोलने लगता है। नींद भी कम हो जाती है, मानों सारी रात जगा ही रहता हो। दूसरों को देख देखकर बोलता रहता है कि पता नहीं ये सब के सब क्यों सोते रहते हैं। और जब यह उम्र भी खत्म होने लगती है तब वह उम्र आ जाती है जब व्यक्ति न ज्यादा देख सकता है, न ज्यादा सुन सकता है। एक तरफ कोने में बैठा रहता है। लेकिन जैसे ही घर के लोग आते हैं उनसे बातचीत करने की कोशिश करता है। घर के लोग जब कहते हैं पिताजी चुप रहा करो ज्यादा न बोला करो, तब फिर कोने में दुबक जाता है। यह उलूक जीवन है।

जीवन जीने का अच्छा ढंग यह है कि अपने जीवन को चार भागों में बाँट दो। पहला भाग विद्या अर्जन करने का होना चाहिए। अगर कोई

प्रथमेवयसि ना धीतं द्वितीय नार्जितं धनम्।
तृतीये तपस्न तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति।।

जीवन के प्रथम भाग में विद्या अर्जन न करे, और दूसरी उम्र में धन न कमाये, तीसरी उम्र में उस आदमी के अन्दर सहनशक्ति और तपस्या की शक्ति न आये, सेवा और साधना न करे, उसके जीवन का अंतिम चतुर्थ भाग सुख से नहीं बीत सकता। संसार से उसके प्राण कष्टपूर्वक छूटेंगे, इसलिए उम्र के साथ साथ मनुष्य को अपने मन में वैराग्य लाना चाहिए। बच्चे बड़े हो जायें तो उनका काम उनको दे दो। उनके काम की तारीफ करो तथा उनके लिए मंगलकामना करो लेकिन उनके काम में दखलअंदाजी नहीं करो। इस उम्र में अपनी सेहत का ध्यान रखने के लिए नियम होता है कि स्वाद पर नियन्त्रण रखा जाए। जब हजम करने की शक्ति कमजोर हो जाये तो उस समय जीभ के स्वाद को ध्यान में रखकर नहीं खाना चाहिए। कहते हैं कि उस समय बहुत देखभाल कर चलना चाहिए। कानों से ऊँचा सुन्नने की स्थिति आती है तो भी लोग कान लगा लगाकर घर की बातें सुनते हैं। ऐसे नहीं सुनना चाहिए; घर के लोग जैसे कर रहे हैं उन्हें वैसा करने देना चाहिए। उस समय यह देखने की जरूरत

भी नहीं है कि घर के लोग अच्छा कर रहे हैं या बुरा। बिना पूछे कोई उपदेश भी नहीं देना चाहिए, नसीहत नहीं देनी चाहिए। ताजी हवा में जाना, सैर करना, लंबे गहरे श्वास लेना, हंसते और मुस्कुराते रहना और मन को तनाव रहित रखना जरूरी है। मन को शांत रखना, भगवान के भजन में मन लगाना और हाथ में माला पकड़े रहना यह चौथी उम्र के समय का जीवन होना चाहिए। मिलने आने वाला कोई भी हो सबको उनके काम के लिए शाबाशी दें और आशीर्वाद दें। किसी ने अच्छा काम किया तो शाबाशी दो, पास आ गया तो आशीर्वाद दो, "भगवान तुम्हारा भला करे, अच्छे रहो, सुखी रहो, आनन्द करते रहो, अच्छे कामों में मन लगाओ, अच्छे बच्चे हों, अच्छे बेटे हों।" अच्छे शब्दों का उच्चारण करते रहने से व्यक्ति का बुढ़ापा ठीक गुजरता है।

परमात्मा की तरफ ध्यान जाये और संसार से मोह हटता जाये तो बुढ़ापे का जीवन और आखिर में संसार से शरीर छोड़ना दोनों सार्थक होते हैं; अगर बुढ़ापे में भी घर परिवार की बातों में ज्यादा मन लगाया तो व्यक्ति का समय अच्छा नहीं बीत सकता। जिन घरों में त्याग है, प्रेम की भावनाएँ हैं उन घरों में खुशहाली रहती है। समय के साथ त्याग जरूर करना चाहिए, स्वार्थों से ऊपर उठना चाहिए। कहानी है कि एक बूढ़ी माँ, जिसने अपने इकलौते बेटे को न जाने कितनी सिलाई कढ़ाई कर कर के पाला पोसा तथा पढ़ाया लिखाया था क्योंकि उसके पति चल बसे थे; बेटे की शादी करके बहू घर में लाई। अब कभी माँ बेटा बैठकर बात करते हैं तो बहू कान लगाकर सुनती है कि दोनों क्या चर्चा कर रहे हैं। खिड़की से झाँक झाँककर देखती है कि दोनों क्या बात कर रहे हैं। माँ बेटे से कहती है, "देख बेटा हमारे घर में साधनों की तो कमी है। लेकिन अपनी पत्नी के लिए मन में सदा उदारता रखना। उसे हमेशा अच्छे शब्द कहना, कड़वे शब्द कभी न बोलना। बेटा तेरी गृहस्थी अभी अभी बसी है, थोड़े दिन घूमकर आओ। कल तेरी पत्नी जब तुझसे कह रही थी कि हमारे घूमने के दिन हैं हमें घूमकर आना चाहिए, तब बेटा तू उसे बार बार मना कर रहा था कि हम गरीब हैं हम नहीं जा सकते। मैंने तुम्हारी बात सुनी तो मुझे अच्छा नहीं

लगा। मेरे पास कंगन रखे हुए हैं। मैंने सोचा था कि कभी आड़े वक्त में काम आयेंगे। पर भगवान ने कृपा की कि ऐसा कोई बुरा वक्त नहीं आया कि ये कंगन बिकते। लेकिन अगर आज तुम्हारी खुशी के लिए ये बिक जायें तो इससे अच्छी कोई बात नहीं हो सकती। ये कंगन ले जाओ और इन्हें बेचकर दोनों पति पत्नी बाहर घूम कर आओ। देखो बाहर जब घूमने जाओगे तो अच्छे दृश्यों से मन अच्छा होगा। अच्छे ढंग से गृहस्थी को सजाने के लिए अपनी पत्नी को अपने पूर्वजों के संस्कार बताना कि हमारे घर में ऐसी परम्परा रही है कि हम लोगों ने अपने घर में पाप की कमाई नहीं आने दी। अपना घर बिगड़ने नहीं दिया, हमारे विचार हमेशा ही ऊँचे रहे। यह सब उसको समझाना। इससे आने वाले समय में तेरी संतान भी लायक होगी।"

बहू ने कान लगाकर दोनों की बातें सुनी। वह सोच रही थी कि सासूजी मेरे पति को, (अपने बेटे को) मेरे खिलाफ भड़कायेंगी, लेकिन जब उसने सुना कि वह तो अपने कंगन जो दुःख के समय भी नहीं बेचे, आज हमारी खुशी के लिए बेचना चाहती हैं तो हाथ जोड़ती हुई आई और बोली "माँ, हम बाहर पिकनिक मनाने के लिए जायें या घूमने के लिए जायें या कहीं और किसी तरह का मनोरंजन करने के लिए जायें, तो वह झूठा और दिखावे का मनोरंजन होगा। अगर हम अपने घर की चीज बेचकर बाहर घूमते फिरें तो यह अच्छी बात नहीं होगी। माँ यहीं तेरे चरणों की छाया में हम रहेंगे, यही हमारा मनोरंजन है। यही हमारी खुशियां हैं। हमें बाहर कहीं नहीं जाना है। जहाँ तेरे जैसी, इतना त्याग करने वाली माँ है वहाँ तो स्वर्ग बसता है।"

माँ सारा दिन भजन करती है और कोशिश करती है कि बच्चों के साथ काम में हाथ भी बटाये, लेकिन कोई दखलअंदाजी नहीं करती। घर की कोई चीज टूट जाये तो वह शोर नहीं मचाती। कोई पड़ोसन आ जाये तो बहू की प्रशंसा करती है। किसी ने अगर शिकायत करके कह भी दिया कि अब तो तेरे सुख भोगने के दिन हैं, तू काम क्यों करती है तो वह यह कहकर टाल देती, "भगवान कृपा रखे, हाथ पाँव चलते रहें। अपने बच्चों के साथ

मिलकर काम करने में बड़ा आनन्द आता है। यह मेरी बहू नहीं मेरी बेटी है। इसके साथ मिलकर जब काम करती हूँ तो मुझे बहुत अच्छा लगता है और मेरा शरीर ठीक रहता है। नहीं तो खाट पर पड़े पड़े बीमार होकर रहना तो अच्छी बात नहीं है।" सबने देखा कि उस घर की बातें तो बाहर जाती ही नहीं। घर में अगर कोई ऊँच नीच हो भी जाती होगी तो बाहर किसी को कुछ पता नहीं चलता। घर खुशहाली से भरपूर है।

एक दिन बहू अपने पति से बोली, "देख रहे हो माँ के घुटने में दर्द रहने लगा है, अब माँ ज्यादा काम नहीं कर पाती, और धूप में बैठकर अपने घुटने को सहलाती रहती है और अपने पोते को खिलाती रहती है। अब हमारा फर्ज़ है कि माँ को तीर्थ कराया जाये।" माँ आंगन में बैठी हैं। अन्दर कमरे में पति पत्नी बातें कर रहे थे। थोड़ा ऊँचा बोलने लगे तो माँ ने ध्यान दिया कि आज इनकी बातचीत में तेजी आ गयी है। सोचा कहीं बेटा मेरी बहू को डांट न रहा हो। अब कान लगाकर सुनने लगी। बहू कह रही थी कि माँ को तीर्थ के लिए भेजेंगे और पति कह रहा था कि हमारे पास इतने पैसे नहीं है कि माँ को तीर्थ करा पायें। समस्या बड़ी भारी है। इतनी बात सुनने के बाद बहू अन्दर गयी और कड़े लेकर आयी। कहने लगी, "माँ जब हमारे लिए अपने कड़े बेच सकती हैं तो मैं भी तो अपने कंगन बेचकर माँ को तीर्थ करा सकती हूँ। आप मेरे कंगन गिरवी रखकर पैसे ले आएं। बाद में जब हमारे एफ.डी.आर. से पैसे निकलेंगे तब अपने कंगन छुड़वा लूंगी।" सासु–माँ ने सुना तो आवाज देकर दोनों को बाहर बुलाया। दोनों बाहर आए तो माँ ने अपनी बहू से कहा, "बेटा, देखो यह जो मेरे सामने बैठा हुआ है न तुम्हारा बेटा, यह तुम्हारे लिए बेटा होगा लेकिन मेरा तो कृष्ण कन्हैया है, यही मेरा तीर्थ है। इसी को खिलाती हूँ मैं और इसी के साथ बैठकर भगवान का नाम जपती हूँ। मुझे तो यह महसूस होता है कि मेरा तीर्थ मेरे घर में ही है। भगवान का नाम जपते जपते मैं अपना तीर्थ कर रही हूँ। कंगन मेरे लिए गिरवी रखने की जरूरत नहीं है। भगवान करे तुम खुशहाल रहो। तुम मेरे लिए इतना करने के लिए तैयार हो तो मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूं कि भगवान तुम्हें इतना दे कि कभी तुम्हारे जीवन में कोई कमी न आये,

कभी कोई गरीबी न आये, कभी कोई दुःख न आये।"

ऐसा घर तो पूरा स्वर्ग हुआ; क्योंकि सबके अन्दर त्याग है, प्रेम है। सब एक दूसरे के लिए त्याग करने के लिए तैयार हैं। इसके विपरीत जहाँ सब एक दूसरे की कमियाँ निकाल रहे हों, दोष दे रहे हों और अपना स्वार्थ पूरा करने में लगे हुए हों तो उस घर में खुशहाली कभी नहीं हो सकती। इसलिए घर परिवार के प्रति प्रेम जरूर रखिए। उम्र बढ़ती जाए तो वैराग्य भी रखिए। मन इतना वैरागी बनाओ कि जब शरीर छोड़ने की बारी आये तो फिर किसी बेटा, बेटी का नाम मुँह से नहीं निकले। सिर्फ भगवान का नाम ही मुँह से उच्चारित हो। उसी का ध्यान करते करते शरीर छूट जाये। यह ज्ञान आ जाये तो ज्ञान कल्याण करेगा। यदि अंत समय भी ध्यान घर में, मकान में, परिवार में, दुकान में है, प्राण संसार की वस्तुओं में बसे हुए हैं तो शरीर छूटते समय भी कष्ट होगा। भगवान कहते हैं कि आसक्ति से ऊपर उठ जाओ। पुत्र, पत्नी और घर आदि में अपना लगाव न रखकर वैराग्य की भावना पैदा करो।

नित्यं च समचित्तत्वम् इष्ट अनिष्ट उपपत्तिषु। जीवन में नित्य इष्ट और अनिष्ट दोनों होते हैं, अच्छा और बुरा दोनों ही सामने आते हैं किन्तु जो व्यक्ति दोनों अवस्थाओं में अपने मन को सम्भाल कर रखे, सन्तुलन को बिगड़ने न दे वह आदमी ज्ञानी है। संसार में चाही हुई वस्तु मिले या न मिले, अनचाही दोनों स्थितियों में जो मन को संतुलित रखे वही आदमी सच में ज्ञानी है। जो आदमी छोटे छोटे कारणों से अपने मन को तरंगित करता है, कभी बहुत ज्यादा उत्साहित तो कभी बहुत ज्यादा निराश दिखता है उसको जीना नहीं आया। ज्ञान की सबसे बड़ी पहचान है संतुलन बनाकर चलना। निन्दा हो या मान मिले, चाहे कोई स्तुति करे या आलोचना, उन्नति की घड़ियां आएं या अवनति की, कोई धन दे, लाभ हो या हानि हो, जीवन में चाहे धूप हो या छाँव, सुख हो या दुःख, कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो ज्ञानी अपने संतुलन को बिगड़ने नहीं देता। जो मन की एक जैसी स्थिति बनाकर चलता है वह आदमी ज्ञानी है। परिस्थितियां हमारे मन की परीक्षा लेती हैं और मन की स्थिति बिल्कुल तराजू जैसी होती है। जैसे तराजू का पलड़ा

कभी ऊपर हो जाता है और कभी नीचे, वैसे ही हमारा मन भी उठता गिरता रहता है। कभी दबाव में आ जायेगा, तो कभी उल्लास में। मन को एक स्थिति में लगातार रखो, अन्दर सदा प्रसन्नता बनी रहे। दुःख आ जाये तो घबराना नहीं, सोचना बुरा वक्त है टल जायेगा। भगवान पर भरोसा रखना चाहिए। हर कष्ट की घड़ी जरूर कटती है। हर अंधेरे के बाद उजाला होता है। इसलिए मन में धीरज रखें कि बुरा वक्त बीत जायेगा, अच्छा वक्त आएगा, खुशियाँ आयेंगी और सब ठीक हो जायेगा।

जो लोग बहुत ज़्यादा कष्ट में हैं अगर वे अपना मन संभाले रखें तो उनका कष्ट अन्ततः दूर हो जायेगा। घबरा जाने से समस्याएँ बढ़ जाया करती हैं। इसलिए कहते हैं कि **"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।"** जो मन से हार जाता है तो वह सच में हार जाता है। जो मन से प्रबल है वह जीत जाता है। एक बार मैं एक चिन्तक का संस्मरण पढ़ रहा था; उसने विदेश की धरती का एक प्रसंग लिखा है। उसने लिखा है कि जहाँ वह रहता है वहाँ उसके पड़ोस में कल तक एक बुजुर्ग इन्सान रहता था, जिसे कभी निराश होते नहीं देखा। वह बुझे हुए दिलों के अन्दर उत्साह जगा देता था। आगे लिखा है कि आज जब यह आदमी नहीं रहा तो उसके घर के सामने मैंने बारह तेरह साल की एक नन्हीं बेटी को फूल लिए खड़ा देखा। मैंने जब उससे पूछा कि वह बुजुर्ग उसके कौन थे तो बेटी बोली, "मैं बाबा से मिलने आयी हूँ। बाबा ने मुझे नई जिन्दगी दी है।" नई जिन्दगी देने की बात पूछने पर पता चला कि वह लड़की एक ऐसी बीमारी से ग्रस्त हो गयी थी कि उसका बचना संभव नहीं था। अस्पताल में मरीज़ बन कर लेटे लेटे उसे लगता था कि हर दिन बीतने के साथ उसकी उम्र कम हो रही है, हर सांस के साथ वह मौत के करीब ज़ा रही है और अब वह जीएगी नहीं। उस लड़की के मन में यह बात घर कर गई कि अस्पताल के बाहर जो पेड़ खड़ा है जिसके पत्ते टूट टूट कर बिखर रहे थे, जब उसके ऊपर बर्फ़ पड़ेगी और उसका एक भी पत्ता नहीं रहेगा, उस समय उसकी भी मौत हो जायेगी।

ऐसे में एक बूढ़ा आदमी आया और लड़की के पास बैठकर बोला, "देख बेटी, हर साल नया मौसम आता है, नये फूल खिलते हैं, नदियाँ नया जल

लेकर बहने लगती हैं। ऐसे ही तेरे शरीर के रोग हटेंगे। तेरे लिए बसन्त ऋतु शुरू होगी।" चिन्तक ने आगे लिखा है कि उस लड़की ने बताया कि उसने एक दिन सपना देखा कि पेड़ के सारे पत्ते झड़ गये हैं पर एक पत्ता अटका हुआ था जिस के साथ मेरे श्वास अटके हुए थे। इतने में वह पत्ता गिर पड़ा और मैं मर गयी।" यह सपना उसने बूढ़े बाबा को भी बताया था। बूढ़े बाबा ने सपने के बारे में सुनकर कहा, "देख बेटी, इस पेड़ के सारे पत्ते टूट जायेंगे लेकिन फिर भी कुछ पत्ते बाकी रहेंगे। तेरे शरीर में कितना भी रोग आये तेरा जीवन बाकी रहेगा। मैं तुझे आशीर्वाद भी देता हूँ और गारन्टी भी देता हूँ कि तुझे कुछ होने वाला नहीं है। मैं यहीं हूँ और रोज आऊँगा, तुझसे मिलूँगा, तुझसे बात करूँगा।" उसके बाद बाबा रोज़ लड़की को गीत सुनाते, हँसने की बातें सुनाते जिससे उसका मन मजबूत होता जाये।

एक दिन उस लड़की की तबीयत ज़्यादा खराब हो गयी और सवेरे से ही बर्फ़ पड़नी शुरू हो गयी। पेड़ के भी सारे पत्ते झड़ गये और पेड़ बर्फ़ से ढक गया। तभी बूढ़ा बाबा, जो उस दिन बीमार था, खाँसता हुआ आया और आकर बेटी के पास खड़े होकर बोला, "बेटी आज बर्फ़ गिर रही है। कल जैसे ही नया सवेरा होगा तेरा रोग एकदम दूर भाग जायेगा।" परन्तु वह लड़की कहने लगी, "बाबा आज आखिरी दिन है। तबीयत बहुत खराब हो गयी है। डाक्टर कहता है कि हम अच्छे से अच्छा इलाज कर रहे हैं लेकिन हमें तुम्हारी बीमारी का पता नहीं चल रहा है। बाबा तुम मेरे लिये प्रार्थना करते रहो लेकिन अब मैं बचूँगी नहीं। देखो बर्फ़ से पेड़ ढक गया है, इसके पत्ते भी दिखायी नहीं दे रहें हैं।" बूढ़े बाबा ने कहा, "बेटी अभी भी कुछ पत्तियाँ बाकी हैं। जैसे ही बर्फ़ हटेगी वह दिखने लगेंगी। बेटी, तेरा सपना झूठा है, मेरा सपना सच्चा है। मेरा सपना यह है कि इस पेड़ पर भी नये फूल खिलेंगे, तेरा भी रोग भागेगा और तेरे चेहरे पर मुस्कुराहट आयेगी। तू अपना मन छोटा मत कर, निराश मत हो, ठीक हो जायेगी।" लड़की को डाक्टर ने इन्जेक्शन दिया और सुला दिया। वह बड़बड़ाती हुई सो रही थी, "सारे पत्ते टूट गये, बचना कुछ नहीं है।"

इधर बूढ़ा आदमी गया और एक पेन्टर से दो तीन पत्तियां पेंट करा

कर ले आया। इन पत्तियों को उसने उस पेड़ पर कील द्वारा ऐसे लगा दिया कि बर्फ़ के अन्दर से वह पत्तियां हरी भरी दिखायी देने लगीं। उधर जब लड़की की आँख खुली तो वह चिल्लाकर डाक्टरों से कहने लगी, "मैं जा रही हूँ बचूँगी नहीं।" डाक्टर ने कहा, "वह देखो, सामने पेड़ पर हरी हरी दो तीन पत्तियाँ एक साथ चमक रही हैं।" अब दूर से देखने पर पता नहीं लग रहा था कि पत्तियाँ नकली हैं। पेड़ पर हरी भरी पत्तियाँ देखकर बच्ची उठ बैठी और बोली, "हां बाबा ने कहा था, बाबा की बात सच हो गयी। बाबा ने कहा था कि बर्फ़ गिरेगी तो हरी पत्तियां बाहर निकलेंगी। अब पत्तियां निकल आयी हैं। इसका मतलब है कि मैं मरूंगी नहीं, मैं ठीक हो जाऊँगी, डाक्टर मैं ठीक हो जाऊँगी, मैं ठीक हो जाऊँगी।" सात दिन में वह काफी ठीक हो गयी। अस्पताल से छुट्टी मिली तो फूल लेकर बाबा से मिलने आई। पर वह बूढ़ा बाबा जो बर्फ़ में जाकर पत्तियां लगाकर आया था उसी रात बीमार हो गया था और मर गया था। वह बेटी आठ दस दिन बाद जब फूल लेकर बाबा से मिलने के लिए गयी तो उसे पता चला कि वह उसे नयी जिन्दगी देने के लिए अपनी जिन्दगी देकर चला गया है और उसके लिए यह संदेश छोड़ गया है, "देख हरी पत्तियाँ अभी भी हैं, मन को छोटा मत कर।" डायरी में आगे लिखा हुआ था, "देख बेटी, मेरी तो उम्र ढल चुकी थी, मुझे तो किसी बहाने से जाना ही था, लेकिन तेरे लिए एक बात कहता हूँ कि बीमारी से लड़ने के लिए दुनिया में सबसे बड़ी दवा मनोबल है। मैंने तेरा मनोबल बढ़ाया, तू मेरे लिए इतना करना कि बड़ी होकर अपने चारों तरफ देखना जहाँ भी कोई टूटे हुए मनोबल वाला इन्सान दिखायी दे, उसके पास जाकर उत्साह के गीत गाना, उसके मन को धीरज दिलाना जिससे उसे जीना आ जाये। यही जिन्दगी का संदेश है। बेटी एक काम और करना, इन्सान के मन को तोड़ने के लिए जगह जगह लोग बैठे हुए हैं जो उसे निराश और दुःखी करते हैं। तू ऐसे इन्सानों जैसी नहीं बनना। तू ऐसी बनना कि हर किसी के मन में नयी स्फूर्ति भर दे, नयी तरंग दे दे, नयी जीवनी शक्ति दे दे। यही मेरा आशीर्वाद है तेरे लिए और यही मेरा संदेश है"। चिन्तक ने लिखा है कि जब मैंने यह सब उस लड़की को पढ़कर सुनाया

जो बाबा उसके लिए लिखकर गये थे तो वह आँखों में आँसू भर कर बोली, "मुझे जिन्दगी देने वाले मुझे जीना भी सिखा गये हैं। अब मैं ऐसा ही जीवन जीऊँगी जैसा मेरे बाबा ने मुझे कहा है।"

यह जीवन क्या है? अगर निराशा से भर जाये तो जीवन में कुछ भी नहीं रहता लेकिन यदि उसको आशाएँ दी जायें तो इन्सान का जीवन बड़ा ऊँचा उठ जाता है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि सबसे बड़ा ज्ञान है कि तुम अपना संतुलन बिगड़ने नहीं दो। परिस्थितियां तुम्हारा संतुलन बिगाड़ेंगी लेकिन तुम अपना संतुलन बिगड़ने मत दो। मनोबल ऊँचा उठाये रखो। जीवन की हर स्थिति का सामना करो। सुख की घड़ी हो तो बहुत ज्यादा उछलना नहीं, अहंकार और अभिमान नहीं आने देना और अगर दुःख की घड़ी है तो भी मन को छोटा नहीं करना क्योंकि वक्त को बदलने में देर नहीं लगती। भगवान कहते हैं - **समचित्तत्वम् इष्ट अनिष्ट उपपत्तिषु।** अपने चित्त को, मन को सदैव सम स्थिति में बनाये रखो। मन में निराशा नहीं आने दो। घबराओ नहीं, चिन्ता नहीं करो। बुरे दिन जो आए हैं तो अच्छे दिन भी आयेंगे, इसलिए अगर कष्ट की घड़ी है तो धीरज रखकर आगे बढ़ो।

भगवान आगे फिर एक श्लोक में कहते हैं कि, "ज्ञानी होने का एक और मार्ग मैं तुम्हें बताता हूँ। तुमने चाहे कितनी भी पुस्तकें पढ़ी हों लेकिन वे सब तुम्हारे जीवन को ऊँचा नहीं उठा सकतीं। अपनी जीवन शैली बदलो तो तुम ऊँचे उठ सकोगे।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।१०।।

भगवान ने कहा, **'अनन्ययोगेन भक्ति'** अर्थात् निरन्तर योग से मेरी भक्ति करने वाले बनो। जब कभी कठिनाईयाँ आती हैं तो आदमी हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करता है और अगर किसी ने कह दिया कि तेरा वक्त ठीक नहीं चल रहा, थोड़ा दान–पुण्य भी करना पड़ेगा, सोलह सोमवार या शुक्रवार भी करने पड़ेंगे तो वह सब करता है। ज्यादातर वह मंदिर के इर्दगिर्द घूमने लगता है। बाद में यदि वक्त थोड़ा ठीक चलने लगे तब उसे मंदिर जाने की फुरसत नहीं होती। बिजनेस के सिलसिले में बाहर जाना

पड़ता है आदि आदि। यानि बुरा वक्त हो, कठिनाई का दौर हो तो मन्दिर में ज्यादा आते हैं, कष्ट ही आपको भगवान की तरफ ले जाये यह अच्छी बात नहीं है।

गुरु की शरण में भी उसी समय ही मत जाना जब कठिनाई आ पड़े। आजकल लोग ज्यादातर उसी समय पहुँचते हैं और कहते हैं, "महाराज जी, जरा देखना, बहुत कोशिश करके भी बात नहीं बन रही। घर में कोई क्लेश है, बच्चा रोगी रहता है, एक बेटा सफल नहीं हो पा रहा है कई बार प्रतियोगिता (कम्पीटीशन) में बैठ चुका है, ऐसे ही अपने अपने स्वार्थों को लेकर लोग आते हैं। थोड़ा सा कष्ट सामने दिखायी देने लग जाये तो भगवान याद आता है, गुरु भी याद आता है। जब सुख दिखायी देने लग जाये तो गुरु क्या, भगवान क्या, फिर धर्म कर्म भी क्या, सब भूल जाता है।

भगवान कहते हैं कि जो अनन्य भाव से मेरी भक्ति करता है वही व्यक्ति ज्ञानी है और वही मेरा प्यार पाने के काबिल है। दिन कैसे भी चल रहे हों, अपनी भक्ति को न छोड़ना। मौसम आँधी और तूफान का ही क्यों न हो अपना नियम बनाकर बैठो और नियत समय में ही भक्ति किया करो। शरीर ठीक हो या नहीं हो साधना में बैठने की आदत बना लो। जैसे बीमारी में भी कुछ भोजन तो करना ही पड़ता है। जब तबीयत खराब होती है तो थोड़ा कम खाते हो। उसी प्रकार जब तबीयत ठीक नहीं है तब भले ही तकिए का सहारा लेकर बैठ जाओ लेकिन अपनी माला जपना छोड़ो नहीं। भक्ति करते करते मन की ऐसी स्थिति बना लेनी चाहिए कि परमात्मा का लगातार एहसास होता रहे और अनुभव करो कि तुम्हारे प्रत्येक कर्म को भगवान देख रहा है। अनुभव करो कि भगवान तुम्हारे संग है। मेरा कलह क्लेश काटने का कार्य भी प्रभु करता है। बस यही कहना, **"हे प्रभु! संसार का वैभव, संसार की दौलत, संसार की सम्पत्ति, संसार के साधन जो भी आपने दिये हैं आपकी कृपा का ही फल है। मैं धन्यवाद करता हूँ। अगर आपकी इच्छा इसमें से कुछ कम करने की हो तो कर लेना, लेकिन भगवान अपने चरणों के प्रति मेरी भक्ति और श्रद्धा की दौलत को कभी कम न करना बल्कि हो सके तो और बढ़ा देना।"** भगवान मनुष्य की

भक्ति और श्रद्धा की परीक्षा लेता है। भगवान सुख देकर सुलाता है और उस समय कहता है कि अगर इस समय भी तुम मेरी भक्ति कर सकते हो तो पता लग जायेगा कि असली हो या नकली। लोग अकसर मन में तब तक श्रद्धा रखते है जब तक स्वार्थ पूरे होते रहते हैं। लेकिन यदि किसी भी प्रकार से व्यक्ति के मन को ठेस लग जाए तो वे भक्ति का मार्ग छोड़ बैठते हैं।

भक्तों को बहकाने वाले भी बहुत लोग हैं। किसी पुरुष का नाम संसार में बहुत अधिक फैलने लग जाये तो बहुत लोगों को ईर्ष्या होने लग जाती है। ऐसे लोग अपने तरह तरह के मत, पंथ, दल या सम्प्रदाय बनाकर उस महापुरुष के विरुद्ध षड्यन्त्र की योजना बनाते हैं और उस को ऊँचाई से नीचे गिराने में अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं। लेकिन जो शिष्य श्रद्धा भावना में लगातार लगा रहता है, निश्चित बात है कि परमात्मा की कृपा उसके ऊपर अनन्त गुणा हुआ करती है। उसको कभी कोई कमी नहीं रहा करती। जो सेवा भक्त है उसकी भक्ति हमेशा परवान चढ़ती है। लेकिन जो मेवा भक्त होते हैं वह बरसाती मेंढकों की तरह थोड़ी देर तक इर्दगिर्द दिखायी देंगे। सौभाग्यशाली वह होता है जिसके मन को ठेस लगी, फिर भी वह गुरु के दर से और गुरु के घर से दूर नहीं हुआ; मन को लगातार श्रद्धा से भरपूर रखा और गुरु से जुड़ा रहा। गुरु की कृपा और आशीर्वाद सदैव फला करता है। इस संसार में जितने भी संत, ज्ञानी व ध्यानी हुए, संत कबीर से लेकर दादू दयाल, रैदास, मीरा, गोरखनाथ, बुल्लेशाह, शेख फरीद सबके जीवन में विरोध की स्थितियाँ आई हैं। संतों का वैभव, सम्मान व ज्ञान जब फैला तो ऐसे लोग भी उनके करीब आ गये जो चोट लगाने के लिए आये। लेकिन वे सब मिट गये। इष्ट हो या अनिष्ट सद्गुरु अपने मन को सम बनाकर चलता रहेगा, उसका जीवन ऊँचा उठता रहेगा। अपने जीवन को ऊँचा उठाने के लिए आप भी अपने चित्त को सम बनाना और अनन्य भाव से भक्ति करना।

भक्ति के लिए भजन करने बैठें तो पहला कार्य है भगवान का नाम जपना। भगवान का नाम जपने के लिए एक तरीका है, माला लेकर भगवान का नाम बोलना। चाहे आप ऊँचे स्वर में बोलें, चाहे होठ हिलाकर बोलें, या

चाहे मन ही मन बोलें। जाप चाहे माला से करें या बिना माला के करें लेकिन करना ज़रूर चाहिए। शुरुआत में एक माला से नियम बनाना चाहिए और अगर नियम पूरा कर सकते हैं तो रोज़ एक ही समय पर जाप करें। भगवान की भक्ति का दूसरा तरीका है भगवान के नाम का संकीर्तन करना। भगवान के नाम का संकीर्तन करते समय इतना झूमना कि शरीर में रोमांच पैदा हो जाए। चाहे कीर्तन की कैसेट लगायें या गाकर बोलें। कैसेट लगाएं तो उसके साथ आप खुद भी बोलें। आप कोई भी उपाय अपनाइए लेकिन जिस कक्ष में आप भगवान की भक्ति करने के लिए बैठें वहां आप अकेले हों। ऐसे झूम झूमकर भगवान का नाम गायें कि अपनी सुधबुध न रहे। अपने हाथ हिलायें, रोम रोम को पुलकित करें, अन्दर उल्लास भरें, और भक्ति रस में डूब जाएं। **कीर्तन का मतलब आत्मा को नर्तकी बनाना होता है। 'कीर्तन' को आप उलटेंगे तो शब्द बनता है नर्तकी।** कीर्तन करते समय अपनी आत्मा को नर्तकी की भाँति झूमने दें।

तीसरा उपाय है सिमरन। सिमरन की स्थिति वह है जब आप भगवान का स्मरण कर रहे हैं। उसकी मीठी याद में बैठे हैं, मन ही मन उससे कह रहे हैं, "तू कितना अच्छा है प्रभु, मैं तो तेरी कृपा का पात्र भी नहीं हूँ। सब कुछ छोड़कर आया था तूने फिर सब कुछ दे दिया। तेरे रंग ढंग बड़े निराले हैं प्रभु। तेरे देते हुए हाथ भी दिखायी नहीं देते, तेरे लेते हुए हाथ भी दिखायी नहीं देते। कब तू राजा बना दे, कब तू रंक बना दे, कब तू ऊँची गद्‌दी पर बैठा दे, कब तू नीचे उतारकर खड़ा कर दे। परमात्मा तेरी महिमा विचित्र है। पर प्रभु, मैं तेरे हर रूप को प्रणाम करता हूँ।" ऐसा कहते हुए, भगवान को स्मरण करें, यह सिमरन होगा। प्रभु की विस्मृति किसी वक्त नहीं होनी चाहिए। चलते फिरते, उठते बैठते प्रभु की याद बनी रहे।

आदिवासी लोग बहुत सीधे व सरल होते हैं। उनकी भक्ति भी बड़ी सीधी व सरल है। अपने घर में खुशी होगी तो वे भोजन का थाल सजायेंगे, पत्तल में भोजन रखेंगे और आसमान की तरफ मुँह करके भोजन दिखाकर कहेंगे, "आसमान वाले, मेरे घर में खुशी आयी है। पहले तू भोग लगा, पहले तू खा, मैं बाद में खाऊँगा" और ऐसा कहकर भोजन वहां रखते हैं, फिर हाथ

जोड़कर वापिस चले जाते हैं। किसी दिन अगर दुःख हो तो बहुत चिल्लायेंगे आकर, कहेंगे, "मेरी खुशी बर्दाश्त नहीं हुई न? बहुत अकड़ रहा है तू ऊपर बैठकर।" बिलकुल भोले भाव से ऐसे बोलेंगे जैसे वह सामने है और उससे लड़ झगड़ रहे हैं। लड़ते झगड़ते, रोते रोते जब पूरी तरह थक जाते हैं तब अपने घर वापिस जाते हैं। अगर कोई उनको समझाये कि ऐसा मत किया करो; लड़ने झगड़ने से अगर भगवान नाराज हो गया तो? तब वह आदिवासी डांटते हुए कहता है, "अपने सगे वाले को जाकर नहीं सुनाऊँगा अपना दुःख दर्द तो और किसको सुनाऊँगा। वह तो मेरा सगे वाला है, उसीके सामने रोऊँगा, उसीके सामने हंसूँगा, उसीके साथ अपनी खुशियाँ बाँटूंगा।" सिमरन करते समय इन्सान को भगवान से ऐसा ही आत्मनिवेदन करना चाहिए। अपना दिल खोलकर रख देना चाहिए उसके सामने "हे प्रभु! हे भगवान! हे दीनदयाल! अच्छा, बुरा, खोटा, खरा जैसा भी हूँ तेरे सामने आकर बैठ गया हूँ। स्वीकार करता है तो कर। मैंने तो किसी और दर पर जाना नहीं, किसी और दरवाजे पर जाकर झोली फैलानी नहीं। आ गया हूँ, तेरे सामने बैठ गया हूँ, तुझे मनाने आया हूँ। नहीं मानेगा, रूठा रहेगा तो भी कोई बात नहीं, मैंने तो दर छोड़ना नहीं।" सीधे सरल भाव से की गई प्रार्थना की बात ही और होती है। यह सिमरन है।

भगवान की भक्ति की एक और स्थिति, 'उपासना' होती है। अर्थात् भगवान के निकट होना, भगवान की महिमा को कहना। तय करना कि प्रभु मेरा पिता है और मैं उसका बच्चा। जो गुण पिता में हैं वे बेटे में भी आ जायें। वह दयालु है, मैं भी दयालु बन जाऊँ। मेरे भगवान शुद्ध हैं, मैं भी शुद्ध बन जाऊँ। उसमें विकार नहीं है, मैं भी विकारों को छोड़ दूँ। मेरा भगवान अन्तर्यामी है, सबकी बात जानता है लेकिन फिर भी शान्त रहता है; मुझे भी किसी का अच्छा बुरा कुछ भी हो, कुछ भी पता लगे लेकिन मैं किसी को बुरा न कहूं। अपने आपको पवित्र बनाकर चलूँ। मेरा प्रभु दाता है, मैं भी दाता बनूँ। बाँटने की कोशिश करूँ। किसी से माँगने के लिए हाथ न फैलाऊँ। इस तरह से चिन्तन करते हुए अपने आपको भगवान के निकट पहुँचाओ, यह उपासना है। एक और उपाय है, 'प्रार्थना'। प्रार्थना में बैठकर

व्यक्ति भगवान से माँगता है। लेकिन इसमें भी दो तरीके हैं; एक तो है अपनी खुशियों के लिए धन्यवाद देना और यह कहना कि ये खुशियाँ बनी रहें और दूसरा यह कि अपना दुःख और अपने पापों के बारे में सोचकर प्रार्थना करना कि माना कि मेरे में गुनाह बहुत हैं, लेकिन अपने कर्मों का हिसाब न करके भगवान से यह कहने आया हूँ कि तू बहुत दयालु है, बक्शनहार है, मेरा गुनाह बक्श। नई जिन्दगी दे। अब एक एक श्वास तेरे चरणों में बीते ऐसी कुछ कृपा कर। जो इन्सान इस तरह दर्दीले स्वर में भगवान से प्रार्थना करता है वह प्रार्थना उसकी शक्ति बन जाती है।

भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञान और ज्ञेय के बारे में बताते हुए कहा है कि **जिस व्यक्ति के जीवन में सांसारिक चर्या ऐसी हो जाए कि वह मान अपमान दोनों स्थितियों में जीवन को संतुलन में रखकर चले, दंभ न करे, हिंसा को छोड़े, सहनशीलता और सरलता उसके गुण बन जाएं, सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर वह अपनी आत्मा को ऊँचा उठाए, अन्दर और बाहर से पवित्र हो, जीवन को स्थिरता से जोड़े और अपने आप को नियंत्रित रखकर चले वह ज्ञानी कहलाता है।** इंद्रियों को आकर्षित करने वाले विषयों के प्रति वह वैराग्य पैदा करे, किसी भी प्रकार के अहंकार को न आने दे, घर परिवार के प्रति कर्त्तव्यों का पालन करते समय आसक्ति और मोह में अन्धा न हो जाए, नित्य प्रति इष्ट और अनिष्ट कुछ भी घटे, सबमें समभाव बनाकर रहे, ऐसा व्यक्ति ज्ञानी कहलाता है। इसके विपरीत अगर इन्सान तरह तरह के ग्रन्थों एवं शब्दों को याद करके बड़ी बड़ी बातें करे, अपने साथ बहुत सारे प्रमाणपत्र रखे, तो ऐसा व्यक्ति भले ही संसार की नज़र में ज्ञानी कहलाए, भगवान ने उसे ज्ञानी नहीं कहा है। **ज्ञान का अर्थ तो जीवन में शांति, सरलता, सौम्यता और शिष्टता का होना है।** अगर व्यक्ति के जीवन में यह गुण नहीं दीखते तो फिर वह ज्ञानी नहीं हो सकता। जो ज्ञान जीवन में बदलाव नहीं लाए, क्रांति घटित नहीं हो तो फिर जानना या पोथी का ज्ञान निरर्थक है। भगवान कहते हैं कि जो अनन्य भाव से जो मेरी अविचल भक्ति करता हो, जिस की भक्ति में दिखावा न हो, जिसकी भक्ति कभी भंग न होती हो, जिसकी श्रद्धा में कभी कोई कंपन पैदा

नहीं होता हो, जिसका आसन नहीं डोलता हो, जिसके मनोभाव सदैव परमात्मा की ओर दृढ़ता से लगे हुए हों, परमात्मा के प्रति जो कभी शिकायत नहीं करता हो, परमात्मा को उसकी हर कृपा के लिए धन्यवाद करता हो, वही मुझे प्रिय है। अगर कभी आपने भगवान से कुछ माँगा और नहीं मिला तो शिकायती लहज़े में जाकर यह न कहें कि आपको उससे शिकायत है। बल्कि फिर भी परमात्मा के सान्निध्य में बैठने के लिये उत्सुक रहें।

जहाँ की मिट्टी पर बैठकर परमात्मा की याद आये उन स्थानों को जीवन में महत्त्वपूर्ण मानिए। जिन लोगों के बीच बैठने से भक्ति में बाधा पड़ती हो, वे चाहे परिवार के लोग हैं या बाहर के लोग हैं, उन सब को छोड़कर भक्ति में लगे रहें। संसार के संबंधों को महत्त्वपूर्ण न मानें। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि अगर भक्ति के लिये, कर्त्तव्य के लिये, धर्म के लिये संसार के रिश्ते भी छोड़ने पड़ें तो छोड़ दो। प्रह्लाद ने अपने पिता को छोड़ दिया क्योंकि वह भक्ति के मार्ग में बाधक बन गया था। विभीषण ने भाई को छोड़ दिया। इसी प्रकार संसार के बड़े से बड़े, गहरे से गहरे रिश्ते जो आपकी भक्ति में बाधक बन जायें, आत्मोत्थान में बाधक बन जायें उनसे आप बेशक अलग हो जायें, लेकिन अपनी भक्ति न छोड़ें क्योंकि मनुष्य देह मिलना भी सौभाग्य है, अगर इसका लाभ नहीं उठा पाये तो पता नहीं फिर दोबारा अवसर आये न आये। फिर मौका मिले न मिले। मनुष्य योनि का शरीर फिर मिल भी गया पर भक्ति नहीं मिल पाई तो? अगर भक्ति की भावना जाग भी गई, दृढ़ भी रह गई, पर सद्गुरु नहीं मिल पाये तो? सद्गुरु भी अगर मिल गए परंतु परिस्थितियाँ ऐसी नहीं मिल पाईं तो? **'मुमुक्षत्व'** मोक्ष की कामना नहीं जाग पाई तो? इसलिए अगर अब भावनाएँ जागी हैं तो पीछे नहीं हटना।

जिस प्रकार बुराई बड़े वेग से मन में प्रवेश करती है और भव की सारी भावनाओं और मन के सारे स्वरूपों को हिलाकर अपनी तरफ खीच ले जाती है, उसी प्रकार अगर किसी व्यक्ति की भक्ति उतने ही वेग से उठे और उसकी सारी ऊर्जा शक्ति को खींच कर उसे भगवान की तरफ लगा दे तो उसकी भक्ति परवान चढ़ जायेगी। परन्तु जो व्यक्ति आलस्य में रहता है

उसकी भक्ति कभी सफल नहीं हुआ करती। क्रोध जब आता है तो आप आधा अधूरा क्रोध कभी नहीं करते, क्रोध करने में पूरी शक्ति लगा देते हैं। वासनाएँ जब जागती हैं तो वे भी आधी अधूरी नहीं होतीं, मन को, शरीर और अन्तःस्थ को पूरी तरह अपनी तरफ खींचती हैं। लालच जब जागेगा तो पूरी शक्ति के साथ आँधी की तरह आयेगा। कलह क्लेश मन में आये, बैर आये या प्रतिशोध आये, ये सब आपके मन को जलाने का पूरा काम करते हैं। फिर अगर भगवान के प्रति भक्ति जागी हो तो वह आधी अधूरी क्यों होनी चाहिये?

संपूर्णता से, समग्रता से अपने आपको जगाइये, आधा अधूरा मन लेकर कभी नहीं बैठना। जब भी बैठो भगवान के चरणों में तो सम्पूर्णता लेकर बैठो, समग्रता लेकर बैठो। प्राणों से पुकारना, रोम रोम से कहना, "ओ मेरे प्रभु ! तुझसे बिछुड़े हुए न जाने कितने जन्म बीत गये। कब कृपा होगी, कब शरण में लोगे, कब हाथ पकड़ोगे। इस दुनिया में भटकते भटकते कहीं जिन्दगी की सांझ न हो जाए। पहले ही हाथ पकड़ लेना, सहारा देना। कैसी भी ठोकर लगाकर के मुझे जगाना पड़े, पर जगाना ज़रूर। अपने चरणों से दूर न करना। अगर संसार के पदार्थ भी लूँगा तो इस शर्त पर कि खिलौने देकर तू बहला नहीं देगा। खिलौने देकर माँ अपने बच्चे को अपने से दूर बैठा देती है। जगदम्बा, जगजननी माँ परमेश्वरी, दुर्गा दुर्गतिनाशिनी माँ ! तेरी शरण में हूँ। अपनी गोद में रखना। प्यार की शीतल छाँव में रखना। संसार के खिलौने देना तो अपने पास बैठाकर के खेलाना। मुझे अपने से दूर मत करना।" अगर मन में ऐसा भाव बनाओगे तो आपकी भक्ति सुदृढ़ होगी। और अगर संसार के पदार्थ ही माँगोगे तो उसी में उलझकर रह जाओगे। इसलिए मानव शरीर एक अवसर मिला है, इसे मत गंवाना।

मनुष्य का चोला साधारण चोला नहीं है। मनुष्य, जो शेर, चीते, हाथी, कीट–पतंग सबको अपने वश में कर सकता है, पहाड़ों की ऊँचाई तक पहुँच सकता है, सागर की गहराई तक पैठ सकता है, चाँद सितारों तक उड़ान भर सकता है, जिसे पंछियों की तरह हवा में उड़ना आता है, ऐसे मनुष्य के पास क्षमता की कमी नहीं है। इसके सामर्थ्य की सीमा नहीं है। अगर यह

अपना सारा सामर्थ्य अपने प्रभु की ओर लगा दे तो एक ही जन्म में इसका कल्याण हो जायेगा। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने कीर्तिमान स्थापित किये हैं। कोई एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ गया तो एक कीर्तिमान हो गया, एक रिकार्ड कायम हो गया। कीर्तिमान इस बात की सम्भावना बताता है कि अगर हम भी कोशिश करें तो यहाँ तक तो जा ही सकते हैं, बल्कि इससे भी आगे जा सकते हैं। इसलिये हमें रुककर बैठना नहीं है, अपने को आगे बढ़ाना है।

अपने अन्दर वही गीत छेड़ें जो गुरु नानक देव ने बाला और मर्दाना के साथ (शब्द) छेड़े थे। जैसे कबीर ने तानाबाना बुनते हुए भगवान के गीत गाये थे। जैसे सूरदास ने अपनी खरताल पर गाकर अपने भगवान को रिझा लिया था। जैसे रेत के टीलों पर खड़े होकर मीरा ने भगवान का नाम गाया और महलों को ठोकर मारकर अपने गोविन्द में समा गई। जैसे ऋषि मुनियों ने अपने प्रभु को रिझाया। जितनी समग्रता और जितनी तीव्रता से उन्होंने भगवान के प्रति अपने को अर्पित किया, वैसी भावना लेकर कभी आप भी बैठकर देखिये तो सही। परमात्मा की कृपा होने में देर नहीं लगेगी। हमारे अन्दर की भावनाएँ जागने में ही देर लगती है, वहाँ देर नहीं होती। इसलिये **भगवान ने कहा है कि जो मेरे लिये अनन्य भाव से भक्ति करता है वह वास्तव में ज्ञानी है और उसने संसार में अपना आना सार्थक कर लिया।** मनुष्य का शरीर धारण करना सार्थक कर लिया। लेकिन भक्ति में विघ्न व बाधा नहीं पड़नी चाहिये। आसन डोलना नहीं चाहिये।

आदत बनाईये कि अपने आसन पर दस मिनट से बीस मिनट तक स्थिरता से बैठें। शुरू में कोशिश कीजिये कि दस मिनट तक एक आसन में स्थिरता से बैठ सकें। हिलना–डुलना नहीं है। जिस आसन पर आप आसानी से बैठ सकें और रीढ़ को सीधा रख सकें वह आसन आपके लिये उपयोगी है। आसन में बैठे बैठे आप आज्ञा चक्र में ध्यान लगाएं। जहाँ माथे पर तिलक लगाया जाता है और महिलाएँ बिंदी लगाती हैं वहां आज्ञा चक्र स्थित है। माथे के इस अग्र भाग पर ध्यान टिकाकर अपने अन्दर खो जाना चाहिये। अगर ध्यान के लिये बैठने का आपका मन बने तो एक अभ्यास करें। आप मन और मस्तिष्क को विचारों से खाली रखें। जैसे ही आप मन

को खाली करेंगे वैसे ही परमात्मा की अनुभूतियाँ अन्दर उतरनी शुरू हो जायेंगी। आपने सिर्फ इतना ही करना है कि अपने को अन्य विचारों और तनावों से खाली करना है। एक तरफ से प्रभु के आने का द्वार बना दें, दूसरी तरफ से अन्दर के विचारों और विकारों के लिए बाहर जाने की राह बना दें।

आपके कमरे में खिड़कियाँ हैं। अगर आपने एक खिड़की खोली है तो हवा न आयेगी न जायेगी। कमरे में वायुप्रवाह के लिए एक ओर प्रवेश तथा दूसरी ओर निकास का मार्ग (क्रास वेन्टीलेशन) होना चाहिये। हवा एक तरफ से अन्दर आये और दूसरी तरफ से बाहर जाए। अब आप कमरे की दूसरी खिड़की भी खोल दीजिए। जैसे ही दूसरी खिड़की खुलेगी, ताजी हवा अन्दर प्रवेश करेगी और प्रवेश करते ही गंदी हवा को दूसरी ओर से बाहर निकाल देगी। आपको भी ऐसा ही करना है। विचारों और विकारों को बाहर निकाल दीजिए, जैसे ही आपके अन्दर खालीपन आयेगा उस खालीपन को भरने के लिये परमात्मा की कृपाएँ आपके अन्दर प्रवेश कर जायेंगी और उसकी कृपा हो जायेगी। इसलिये पहले अपने आपको खाली करना जरूरी है। जब एकांत में बैठें तो एकदम शांत होकर बैठें।

सोने के लिए आप अपने आपको खाली करते हैं, कुछ भी नहीं सोचते, विचार शून्य होकर जब आप लेटते हैं तो नींद आ जाती है। ध्यान भी एक प्रकार की नींद है जिसमें होश रहता है लेकिन मन सो जाता है। जब मन सो जाता है तो नींद आती है। सपने तब आते हैं जब मन के सो जाने से उसकी सारी शक्तियाँ खो जाएँ, लेकिन चित्त का आत्मा के साथ संबंध जुड़ जाए। आपके चित्त में जो याद्दाश्त है उसके साथ जब आत्मा का संबंध जुड़ता है तब स्वप्न आते हैं। ज़ो कुछ भी अन्दर चित्त में रिकार्ड हैं, यादें हैं, वे आत्मा के साथ संबंधित हो जाती हैं। आत्मा उस समय सूक्ष्म नाड़ी में प्रवेश करती है। चित्त के साथ जैसे ही उसका जुड़ाव होता है तो सपने दिखाई देते हैं। परन्तु उस समय कोशिश यही होती है कि स्वप्नावस्था से वापिस नींद में आ जाया जाये। अगर आप ११ बजे रात में नींद लेते हैं तो २ बजे के बाद फिर आप वहाँ से वापिस चलते हैं। जैसे किसी पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ने के बाद कोई आदमी वापिस चलता है तो उतरने में आसानी

होती है कठिनाई नहीं होती, वैसे ही नींद की गहराई में जाने के बाद जब वापिस आ रहे होते हैं तो उस समय ऐसी स्थिति बनती है कि नींद बीच बीच में उखड़ती रहती है। नींद उखड़ती है तो स्वप्न आ जाता है। स्वप्न जैसे ही आया वह आपको फिर दोबारा नींद में पहुंचा कर गुम हो जाएगा। दोबारा आपकी नींद टूटेगी तो फिर बीच में स्वप्न आयेगा।

ज्यादातर सपने दो बजे के बाद ही आते हैं, उससे पहले नहीं। ऐसा इसलिए होता है कि जब आप नींद की पहाड़ी पर चढ़ रहे होते हैं तो उस समय पूरी ऊर्जा शक्ति लगा कर आप वहाँ पहुँच रहे होते हैं। जब आप वापिस उतरने लगते हैं तब सपने आने शुरू हो जाते हैं। ज्यादातर नींद के यही दो हिस्से होते हैं। आत्मा ने स्वप्न भी देखा, आप सोये भी रहे परन्तु फिर भी स्वप्न की याद बची रह गयी। परन्तु जिस समय आप ध्यान में होते हैं, उस समय बस आपको इतनी याद रहती है कि हम शांति में थे, आनन्द की अनुभूति में थे। बाकी कुछ भी याद नहीं रहेगा। जैसे ही आप खो जाएगें, आपका ध्यान टिक जाएगा। अन्दर केवल शांति की अनुभूति रहेगी, आनन्द की अनुभूति रहेगी। जैसे ही आप ध्यान की गहराई में उतर जाते हैं वैसे ही अन्दर की अतृप्त इच्छाएँ जो कुछ चाह करती हैं उनकी तृप्ति हो जाती है।

उदाहरण के लिये अगर किसी आदमी को कुछ सुन्दर देखने की इच्छा है तो भगवान का सौन्दर्य, संसार के किसी पदार्थ के सौन्दर्य के रूप में सामने आता है। ऐसा महसूस होता है कि बहुत सुन्दर फूल खिले हुए हैं। सौन्दर्य से भरपूर फूल, इन्द्रधनुषी रंग, चमकता हुआ चाँद और सूरज बहुत सारे सितारे, तरह तरह की रंग बिरंगी तितलियाँ सुन्दर दृश्य, एकदम सामने आयेंगें। दृश्य ऐसा मोहक लगेगा जैसा संसार में आपने पहले कहीं नहीं देखा होगा और मन यही कहेगा कि परमात्मा तेरी महिमा, तेरी लीला देख रहा हूँ। तू कितना सुन्दर है, तेरा संसार कितना सुन्दर है। किसी को यदि सुगन्ध की भावना है तो उसे तरह तरह की सुगन्ध महसूस होने लगेगी। किसी को लगता है कि अब मैं चिंता मुक्त हो गया हूँ उसे वैसी ही अनुभूतियां भी होंगी। जैसे आसमान में पंख लगाकर उड़ने लगना आदि। किसी को यह महसूस होगा कि उसे संसार के सारे स्वादिष्ट पदार्थ जो

आज तक नहीं खा पाये थे उपलब्ध हो गए हैं। वहाँ जिव्हा को स्वाद की अनुभूति होगी। किसी को भोग वासनाओं की तृप्ति महसूस होती है। लेकिन ध्यान का यह लक्ष्य नहीं है। यह तो गंधर्व लोक है। इसके बाद की अनुभूतियों में यह सारी चीज़ें खो जाती हैं। अन्दर एक ऐसी असीम शांति महसूस होती है जिसके आनन्द में डूबा हुआ इन्सान हिलना भी नहीं चाहता।

जिस प्रकार कोई बहुत स्वादिष्ट चीज़ मुख में आ जाए तो आदमी मुख बंद कर लेता है, बहुत सुन्दर मन पसंद चीज मिल जाये तो आदमी आँखें बंद करके उसे अन्दर ही अन्दर महसूस करता है, मानों परम सुख की उपलब्धि मिल गयी। वह सुख के उस स्वरूप को आँख बंद कर अन्दर ही अन्दर पी रहा है। इन्सान उस असीम आनन्द में डूब जाता है। वह उससे ध्यान नहीं हटाना चाहता। इसलिये जिसकी ऐसी निर्विकल्प समाधि सिद्ध हो जाए फिर वह उस स्थिति में पहुँचकर ऐसा खो जाएगा कि अगर समाधि टूट जाये तो उसे संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। वह रोयेगा, चिल्लायेगा और बार बार कहेगा कि मुझे वहीं ले चलो। इसलिये जिन लोगों ने कभी वह स्वाद ले लिया वे लोग फिर संसार के किसी पदार्थ के आकर्षण में नहीं बंध पाये। उन्हें कुछ अच्छा ही नहीं लगा। परमात्मा की भक्ति करने के लिये व्यक्ति को ऐसा उपयुक्त स्थान ढूंढना चाहिये जहाँ बैठ कर मन भगवान में तल्लीन हो जाए। अपने घर में ऐसा स्थान बना सकें तो बहुत अच्छी बात है नहीं तो किसी आश्रम में या वन में वह स्थान ढूंढना चाहिये। परमात्मा का प्यारा इन्सान घर में सारे लोगों के सो जाने के बाद रात को समाधि में बैठता है, ठीक उसी प्रकार जैसे विद्यार्थी रात को सब के सो जाने के बाद पढ़ाई करने बैठते हैं।

परमात्मा की भक्ति में डूबे हुए आदमी की हालत अलग ही होती है। वह बड़ा नपा तुला भोजन लेता है। शरीर को हल्का करता जाता है। जीवन चले बस उतना ही खाना चाहिये। ज्यादा भोजन से शिथिलता आती है। भक्त ऐसे लोगों से बात नहीं करता जिनकी बात सुनने के बाद मन में विचलन हो। वह रात में जब लोग सो जाते हैं तो उठ कर ध्यान करने बैठता

है। इसलिये भगवान कृष्ण ने कहा, **'माँ भूतानाम तस्म'** अर्थात् प्राणी मात्र के लिये तो रात सोने के लिये है पर साधक के लिये रात जागने के लिये होती है और जैसे ही वह ध्यान में बैठता है, भगवान की भक्ति में खो जाता है।

जहाँ पहाड़ हैं, वहाँ खाईयां भी हैं। प्रकृति ने संतुलन बनाने के लिये ऐसा किया है। कुदरत ने ऐसी व्यवस्था भी रखी है कि जितना ज्यादा तुम हँसते हो, बाद में उतनी ही उदासियाँ आती हैं। लेकिन अगर आप समभाव में रहेंगे तो समानता बनी रहेगी। जितना ज्यादा आप किसी के साथ लगाव बनाऐंगे उतना ही ज्यादा झगड़ा भी हो जाएगा, बैर भी बना लेंगे। किसी के साथ रहकर जितना लाभ उठाया तो अगर कोई विरोध पैदा हो गया तो उतनी ही हानि भी उठानी पड़ेगी। दोनों स्थितियां साथ साथ चलती हैं। इसीलिए तुम जो संसार में ज्यादा उलझे हो तो कुछ दिन खाली बैठने के लिये भी समय निकालो। अगर ऐसा समय नहीं निकालोगे तो समस्याएँ खड़ी होनी शुरू हो जायेंगी। जो आदमी बहुत तनावग्रस्त रहता है, उस आदमी को एक काम करना चाहिये। उसे कुछ दिन के लिए काम धंधा छोड़कर किसी ऐसी जगह चले जाना चाहिये जहाँ न टेलीफोन हो, न टेलीविजन हो और न सम्पर्क के साधन हों। थोड़े दिन मस्ती के साथ बिताकर जब वह वापस आएगा तब वह सब ठीक पायेगा। अगर प्राकृतिक स्थल में गए और ऐसा टेलीफोन लेकर गए कि सीधा घर से या फैक्ट्री से सम्पर्क जुड़ जाए, वहाँ बैठे बैठे बाजार के भाव में उलझे रहे, तो ऐसे लोग सुन्दर सुहावने वातावरण में रहकर भी उसका आनन्द नहीं ले पाते, सारा प्रयास पूर्णतः विफल हो जाता है।

अमरीकी पूंजीपति रॉक फैलर का गार्डनर नामक एक मित्र था। गार्डनर ने अपने मित्र से कहा, "देखो मित्र तुमने पैसा कमाया और कमाने का तनाव भी तुमने पा लिया। खुशी तुम्हारे पास एक ही है कि मेरे पास इतना पैसा हो गया है। लेकिन यह सब किसलिये है? धन तो इसलिये कमाया कि इसका सुख लिया जाए। लेकिन इसका सुख लेने के लिये तुम्हारे पास वक्त नहीं है। तुम लगातार कमाने में ही लगे रहते हो। थाली में भोजन तो बहुत भर लिया लेकिन खा नहीं रहे हो तो क्या लाभ?

भोजन इकट्ठा करते जाना ही बड़ी चीज़ नहीं है, उसका स्वाद भी तो लो"। रॉक फैलर ने कहा, "तुम्हारा मतलब क्या है? अधिक पैसे की वजह से क्या मैं ज्यादा भोजन करने लग जाऊँ? तुम्हारा मतलब है कि अपने पैसे को मैं वस्त्र के रूप में पहनने लग जाऊँ? या चाहते हो कि मैं कुछ गलत काम करने लग जाऊँ। क्या चाहते हो?" मित्र ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि थोड़े समय के लिये तुम मेरे साथ चलो। हम कहीं एकांत में जाकर बैठें। वहाँ आप कोई सेक्रेटरी भी साथ नहीं ले चलना। आपके सहयोगी भी वहाँ नहीं होने चाहिये। बस मैं और आप, दो ही हों।" मित्र ने और आगे कहा "मेरे मित्र, हम ऐसी जगह बैठ भी गये तो भी पीछे यहाँ लाखों करोड़ों का जो मुनाफा हो रहा है, वह तो होता ही रहेगा और कहीं कोई नुकसान हो भी गया तो भी तुम चिंता न करो, क्योंकि अपनी ज़िन्दगी का जो नुकसान तुम लगातार कर रहे हो वह लाखों करोड़ों से कहीं ज्यादा कीमती है। इसलिये थोड़े समय के लिये ऐसी जगह चलते हैं जहाँ जिन्दगी को संभाला जा सके, इसे संवारा जा सके।"

तब मित्र की सलाह मानकर रॉक फैलर अपने मित्र के साथ शहर से १००–१५० कि.मी. दूर जाकर समुद्र के किनारे बैठ गया। अचानक रॉक फैलर कहने लगा, "देखो भाई, आज मेरे बिजनेस का बहुत बड़ा टैण्डर खुलना था। मुझे ध्यान आ रहा है कि बहुत सारे लोगों को मैंने आज काम देना था। हम बेकार यहाँ आकर बैठ गये। यहाँ समुद्र है, लहरें हैं, अकेले बैठे हुए हैं। बेकार समय बरबाद करने से क्या फायदा। वापिस घर चलते हैं, कुछ बिजनेस, काम धंधा करेंगे। यहाँ क्या लाभ होगा।" तब मित्र ने कहा, "देखो मित्र, धन कमाने का स्वाद ले चुके हो, अब जिन्दगी जीने का स्वाद लो। थोड़ी देर के लिए ऐसा सोच लो कि तीन दिन के अवकाश पर यहाँ आये हो। तीन दिन से पहले मैं तुम्हें यहां से जाने नहीं दूंगा। अब तीन दिन तुमने यहीं रहना है मेरे साथ। यहीं खायेंगे, यही रहेंगे। मैंने कभी तुमसे कुछ नहीं माँगा। अपनी दोस्ती की खातिर तीन दिन तुमसे मांगता हूँ। तुम यहीं रहोगे।" रॉकफैलर ने कहा, "ठीक है भई, तुम कहते हो तो जो नुकसान होता है हो, मैं उस की तरफ ध्यान नहीं दूंगा। अब बता क्या करना है, तू बोल।"

मित्र बोला, "यह पैंट थोड़ी ऊपर चढ़ा। समुद्र के किनारे हम दोनों रेत पर, पानी की लहरों पर नंगे पाँव चलेंगे।" दोनों दोस्त एक दूसरे के कंधे पर हाथ रख कर चल पड़े। मित्र ने रॉक फैलर से कहा,"देखो ऐसा करो। बचपन का कोई गीत तुम्हें याद हो, जो हम कभी गाते थे, या तुम कभी गाते थे, आज वह जरा गाकर सुनाओ।" इस पर रॉक फैलर बोला, "कोई देखेगा, फोटो वोटो खींचेगा तो क्या कहेगा कि यह लोग पागल हो गये हैं।" मित्र ने कहा, "यह सब भी भूल जाओ कि कोई देखकर क्या कहेगा। थोड़ी देर के लिये अपने उसी बचपन में लौट जाओ जहाँ मस्ती थी, कोई चिंता नहीं होती थी, किसी तरह की जिम्मेवारियाँ नहीं होती थीं। आज हम उसी स्थिति में पहुंच कर आनन्द लें।"

तब सचमुच वे दोनों एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर चल पड़े। बचपन की कोई बात याद आई जिसे एक दूसरे को सुना कर बहुत हंसे। हँसने के बाद गीत गाने लगे। इसी तरह गाते झूमते और एक दूसरे से मजाक करते घूमते रहे। पता भी नहीं चला कि कब सांझ हो गई। सांझ को जब सूरज ढलने लगा तो समुद्र की लहरों पर ऐसा लग रहा था मानो समुद्र में सोना बिखरा हुआ है।

रॉक फैलर पूछने लगा, "दोस्त एक बात बताओ। समुद्र को तो मैंने हज़ार बार देखा होगा लेकिन इतना सुन्दर कभी नहीं देखा जैसा आज देखा है। दिन तो मैंने बहुत बिताये लेकिन ऐसा सुन्दर दिन तो मैंने कोई नहीं बिताया। आज मुझे पता चला है कि बिना पैसे के भी कुछ काम ऐसे हो सकते हैं जो ज्यादा आनन्द देने वाले होते हैं। हमें मशीन बन कर अपनी जिन्दगी को खराब नहीं करना चाहिये। कभी एकांत में बैठकर आनन्द भी लेना चाहिये। कुदरत धन से भी ज्यादा कीमती चीज़ें हम पर लुटा रही है। पर हम आदमियों के जंगल (भीड़) में खो गये हैं। मशीन के युग में हम भी एक मशीन बन कर रह गये। आज असली आनन्द का पता चला है।"

तीन दिन दोनों मित्रों ने वहाँ बिताये। अंत में रॉक फैलर कहने लगा, "ये तीन दिन जीवन के अविस्मरणीय हैं, यादगार दिन हैं। काश कि मैं सब कुछ भूलकर ऐसे ही रहने लग जाऊँ। बीते हुए दिन लौट आयें, बचपन की

उमंग व बचपन के उल्लास के साथ। अब तो बड़े होने के बाद ऐसा लगता है कि जैसे हमारे अन्दर की मस्ती कहीं चली गई है, प्रसन्नता खो गई है। कहने के लिये हम बड़े आदमी हो गये हैं लेकिन अन्दर से हम जैसा खोखला व छोटा इन्सान कोई नहीं है।"

प्रकृति में इस आनन्द का कारण क्या है? प्रकृति ने अपना संतुलन कायम रखा है। प्रकृति में हर जगह शांति दिखाई देती है, सन्तुलन दिखाई देता है। अगर कहीं पहाड़ हैं तो नीचे खाई है जो पहाड़ की ऊँचाई को संतुलित रखने के लिये आवश्यक है। अगर आप एक तरफ बहुत झुके हैं तो दूसरी तरफ अपने को उतना ही ढीला छोड़िए। अगर एक तरफ आप उदासी में हैं तो दूसरी तरफ गीत गाइए। तरंग पैदा करिए अपने अन्दर। अगर एक तरफ आप बहुत क्रोध में हैं तो दूसरी तरफ एक काम अवश्य करिएगा। **छोटे छोटे बच्चों के साथ जाकर खेलियेगा। उनके साथ बैठकर प्यारी प्यारी बातें करने से आपके अन्दर भोलापन एवं प्रफुल्लता जागेगी।** अगर आप बहुत चालाक लोगों के बीच में हो कर आये हैं तो भोले पंछियों के बीच में जाइए, भोले जानवरों के बीच में जाकर बैठिए। आपके अन्दर भोलापन जागेगा। इससे आप इन्सान बने रह सकेंगे। सम अवस्था में बने रह पाएंगे। अन्यथा मशीन जैसी आपकी इस जिन्दगी से आपका जीना बोझिल हो जाएगा।

इसीलिये भगवान कहते हैं **'विविक्तदेशसेवित्वम्'** साधना के लिए, भक्ति के लिए एकांत स्थान चुनो। जहाँ तुम्हें केवल अपना और मेरा (भगवान का) ध्यान आये। वहाँ बैठकर तुम भगवान की आवाज को सुनो, जो तुम्हारे अन्दर बोल रही है। संसार से थोड़ी देर के लिये उपराम होने की कोशिश करो। भगवान यह भी कहते हैं कि **जब भक्ति जागेगी, ज्ञान आयेगा तो जीवन ऊँचा उठेगा। फिर संसार की भीड़ भाड़ में मन नहीं लगेगा। मन कहेगा इस भीड़ को छोड़ो।** वास्तव में ऐसा होता है। शुरू शुरू में इन्सान को भीड़ अच्छी लगती है। बाद में आदमी भीड़ से भागने लगता है। तब अगर भीड़ में रहना पड़ जाए तो बड़ा खराब लगता है। हम लोगों को भी कभी भीड़ देखकर बहुत अच्छा लगता था। अब हम लोग ऐसा

स्थान ढूंढते हैं जहाँ कोई पहचाने नहीं। एकांत स्थान। दो चार लोग ही होने चाहिये। ऐसी स्थिति भी आयेगी जब न प्रसिद्धि का ध्यान रहेगा और न अप्रसिद्धि का। मन यही करेगा कि वहां चले जाएं जहाँ शांति के साथ अपने आपको भगवान के ध्यान में लगा दिया जा सके। इसीलिये ज्यादातर महापुरुषों ने भक्ति के लिए ऐसे ही एकांत स्थान ढूंढे। संत एकनाथ ने गोदावरी का किनारा ढूंढा। सिखों के दशम गुरु का, भक्ति और तपस्या का संबल है, हेमकुण्ड साहेब। भगवान श्रीकृष्ण ने बद्रीनाथ धाम को चुना, जहाँ बैठकर उन्होंने बारह साल तप किया। हमें भी कोशिश करनी चाहिये कि कोई ऐसा स्थान ढूंढे जहाँ प्रकृति अपने सौन्दर्य से शांति बरसा रही हो। वहाँ हम ध्यान, साधना व भगवान का भजन पूजन करने के लिये जाएं। अगर माह में बीस पच्चीस दिन संसार में उलझ रहे हैं तो पाँच दिन साधना के लिये निकालिए। अपने लिये व्यतीत करिए। **२५ दिन दुनिया को देना तो ५ दिन अपने भगवान को देना।** अगर आप ऐसा करके चलें तो आपका जीवन धन्य हो जायेगा।

लेकिन हम अपने लिए, अपने भगवान के लिए समय निकाल ही नहीं पाते। ज्यादातर लोग जिन्दगी में उलझते जा रहे हैं, कभी सुलझते ही नहीं। जितना हम कमाने में लगे हुए हैं इतने की जरूरत है भी नहीं। जीवन में आवश्यकताएं जितनी बढ़ाते जाओगे उतनी बढ़ती जायेंगी। उनका कहीं अंत नहीं है। आदमी सारी दुनिया की दौलत इकट्ठी करके रख ले तो भी उसे कम लगेगी। लेकिन अगर आप नियंत्रित होकर चलना शुरू कर दें तो बहुत थोड़े में ही आपका गुजारा चल सकता है। इसके लिए तरीका यह है कि किसी एकांत स्थान में साधना करके आत्मा का निखार करना।

मन की आदत है कि वह बार बार भागता है। कभी वह चाहता है कि काम धंधा खूब ज्यादा होना चाहिये। कभी वह अपने रिश्तेदारों में, परिचितों में खूब मान सम्मान चाहता है। बहुत दान कर उनकी नज़रों में धर्मात्मा कहलाना चाहता है। इन्सान की एक इच्छा यह भी होती है कि वह कुछ ऐसा करना चाहता है कि उसके मरने के बाद भी संसार में उसकी याद रह जाए। कुछ लोग संतान के माध्यम से ही अपनी याद बनाए रखना चाहते हैं।

बच्चे कारोबार बढ़ाते जाएंगे तो स्मृति पीछे रहेगी। लेकिन यदि बच्चे ठीक नहीं रहे तो याद भी ठीक नहीं रहेगी। इसलिए स्वयं कुछ ऐसे कार्य किये जाएं जिससे स्मृति भी बने और संसार से जाते समय तसल्ली भी हो कि मैं दुनिया को कुछ देकर जा रहा हूँ, दुनिया से कर्ज़ लेकर नहीं जा रहा हूँ।

अगर ऐसा विचार मन में आये तो फिर सेवा के कार्य करने चाहिये। किसी महापुरुष के साथ अपने को सम्बन्धित कर लेना चाहिये। महात्मा गांधी बहुत सी योजनाएं लेकर चले थे। राष्ट्र की आज़ादी और इस देश को ऊँचा उठाने के लिए मानवीय सेवा के बहुत सारे कार्य महात्मा गांधी ने अपने हाथ में लिये। इतने बड़े आयोजन के लिये पैसे की भी बड़ी जरूरत थी। अब उनके पास शक्ति है, संकल्प है, दृढ़ भावनाएं हैं। सेवा करने के लिये निकल भी पड़े। लेकिन एक व्यक्ति जिसने सोचा कि इस महान पुरुष की योजना में अगर मैं अपना पैसा लगा दूँ तो सेवा बहुत अच्छी हो जाएगी। पैसा कमा लेना बड़ी चीज़ नहीं होती, इससे भी बड़ी बात होती है पैसे को सही जगह इस्तेमाल करना। उस व्यक्ति के लिए महात्मा गांधी सही जगह थे। पैसा लगाने वाले उस व्यक्ति का नाम था जमनालाल बजाज। जमनालाल बजाज के मन में जब यह आया कि मैं अपना सारा धन इस व्यक्ति के काम में लगाऊँ तो वे सोचने लगे कि गांधी का सान्निध्य कैसे पाया जाये। वे उनकी सेवा में रहने लगे। मौका पाकर गांधी जी से कहा कि कहीं पर पैसे की जरूरत पड़ रही हो तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति लगा देना चाहता हूँ। आपकी योजना सफल होनी चाहिये। बरसों में कोई ऐसा आदमी आता है जो कुछ महान कार्य करता है। जमनालाल बजाज अपनी पूरी शक्ति और धन लगाकर महात्मा गांधी के साथ लग गये। महात्मा गांधी यह कहते रहे कि एक सेठ का पैसा लगा देने से यह जन आन्दोलन नहीं बन पायेगा। मैं चाहता हूँ कि इसमें एक एक व्यक्ति का हाथ लगे। अगर मैं पच्चीस पच्चीस पैसे, चार चार आने सब आदमियों से लेकर इस आजादी के आन्दोलन में लगा दूं तो हर एक को लगेगा कि मेरा भी हाथ इस कार्य में लगा है। बजाज साहब ने कहा, "सब अपना अपना योगदान देंगे लेकिन मैंने तो अपना सब अर्पण कर दिया।" गांधी जी जितने प्रसिद्ध हुए, उनकी प्रसिद्धि में जमुनालाल बजाज भी प्रसिद्ध हो गये।

इसी तरह महात्मा बुद्ध की शिक्षा और उनके संदेश को प्राप्त करके सम्राट अशोक ने यह समझा कि इस आदमी ने मुझे नई ज़िन्दगी और शांति दी है इसलिए अब इसके विचार दुनिया में फैलने चाहिये। सो महात्मा बुद्ध के विचारों को संसार में फैलाने के लिये सम्राट अशोक और उसके बाद राजा हर्षवर्धन ने प्रयास किये। परिणामस्वरूप महात्मा बुद्ध की शिक्षाएँ भारत से लेकर चीन, जापान, कोरिया, बर्मा, थाईलैंड, लंका और तिब्बत जैसे दूर दूर देशों तक पहुंचीं। महात्मा बुद्ध की बहुत सुन्दर और बड़ी मूर्तियां अफगानिस्तान में भी हैं। राजा तो न जाने कितने हुए लेकिन महात्मा बुद्ध के संदेश के प्रसार के साथ साथ सम्राट अशोक व सम्राट हर्षवर्धन दोनों की ख्यातियां बढ़ती गईं। इन लोगों से किसी ने पूछा कि इससे आपको क्या प्राप्ति हुई तो वे बोले, "कमाने में और संग्रह करने में इतना आनन्द नहीं आया जितना इस माध्यम से जीवन में शांति और आनन्द आया।" जहाँ जहाँ स्तम्भ बने, लाटें बनीं वहाँ वहाँ अशोक महात्मा बुद्ध की शिक्षाएं लिखवाते गए। उन्होंने न जाने कितने लोगों को इन शिक्षाओं के माध्यम से शांति दी। सेवा के किसी कार्य में अपने तन, मन, धन को लगाने के लिए किसी महान पुरुष का सान्निध्य प्राप्त कर लिया जाये तो जीवन में चमत्कार घटना शुरू हो जाता है।

इसलिए सिमरन करो और सेवा करो। **सेवा में भी कहीं एक जगह मन को जोड़ कर शुरू हो जाओ। थोड़ा सा भी समय या थोड़ा सा भी धन सही दिशा में लगना शुरू होता है तो प्रसिद्धि, शांति, आनन्द एवं उल्लास जीवन में आना शुरू हो जाता है।** भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब भक्ति जीवन में आये, ज्ञान उतर आये तो व्यक्ति सुन्दर स्थान चुनकर अपनी आत्मा को परब्रह्म से जोड़ता है और संसार से ऊपर उठने की कोशिश करता है। तब या तो वह सारे संसार का हो जायेगा या फिर सबसे अलग हट करके बैठेगा। भगवान कहते हैं :

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।११।।

अध्यात्मज्ञान नित्यत्वम्, आध्यात्मिक ज्ञान में नित्यता लानी चाहिये।

उन विचारों को जीवन में ज्यादा लाना चाहिये, जिन विचारों से आत्मा ऊँची उठे। इन्सान को संसार की मोह ममता से, संसार की आसक्ति से अरुचि हो जाए, वह उलझनों से बचे तथा सुलझने की कोशिश करे। **जिन विचारों से मन में जागृति आये, उन को अपने आप अन्दर लाने की कोशिश करें। आत्मचिन्तन के द्वारा, उत्तम ग्रन्थों के द्वारा तथा उत्तम सत्संग के द्वारा आध्यात्मिक होने की कोशिश करें।** गुरु की सेवा करते हुए, गुरु के द्वार के नज़दीक बैठकर अपनी जिज्ञासा को शांत करें। प्रश्न पूछें और मन को शांत करें। गुरु के नज़दीक रहकर अगर उनके उपदेश सुनते रहो तो बहुत सारे सवालों का जवाब तो अपने आप ही मिलता जाता है और ज्यादातर तो होता यह है कि आप मन में सवाल लेकर आये, आपने बोला भी नहीं, पूछा भी नहीं, पहले ही उत्तर मिलना शुरू हो जाता है। कई बार ऐसा होगा कि प्रश्न करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी, उत्तर मिलना शुरू हो जायेगा। बस इतनी कोशिश करो कि सद्गुरु का सान्निध्य मिल जाये, भगवान के दर से संबंध बना रहे, छूटे नहीं क्योंकि न जाने कितनी तरह के लोग, न जाने कैसे कैसे लोग आकर आपको बहकायेंगे, आपके मन को तोड़ेंगे, चोट लगायेंगे। कोशिश करेंगे कि वहाँ से आपका ध्यान हट जाए। अगर आपका ध्यान हट गया, अरुचि हो गई तो गुरु को फर्क नहीं पड़ेगा, फर्क पड़ेगा तो शिष्य को ही पड़ेगा। उनको तो केवल इतना पता है कि जब किसी पेड़ पर सुन्दर फूल आ जाते हैं तो चाहे दिन हो या रात, पेड़ अपने फूलों को धरती पर रात दिन बरसाता रहता है, धरती का अभिषेक करता रहता है। महापुरुष के पास जो कुछ होता है वह उसे बाँटता रहता है। परमात्मा ने जो दिया है उसे वह बांट कर, देकर आनन्दित होना चाहता है।

जब तक कुएँ में से पानी नहीं निकले, कुआँ निर्मल नहीं होगा। यह नियम है कि कुएँ से हमेशा पानी निकालते जाओगे तो निर्मलता बनी रहेगी। पानी नहीं निकालोगे तो कुएँ का पानी सड़ जायेगा, पानी खराब होने लग जायेगा। महान पुरुष तो अपने कुएँ को निर्मल करने के लिये रात दिन अपने अन्दर से ज्ञान बिखेरते रहते हैं, बांटते रहते हैं, देते रहते हैं। उनका स्रोत भगवान से जुड़ा होता है। जिस नदी को जल से भरा रहना हो, उसमें

पानी सदा बहता रहे, तो उस नदी को हिमालय से जुड़ना चाहिये। अगर नदी हिमालय से जुड़ी हुई है तो उसमें पानी सदा रहेगा। इसी तरह जो आदमी जीवन में सदैव प्रसन्नता, उल्लास और शांति की कामना करता है उसे परमात्मा की भक्ति रूपी हिमालय से जुड़ना चाहिये। फिर सदैव शांति रहेगी, आनन्द रहेगा। नदी या कुंए में सदा निर्मल पानी रहे इसके लिए उन्हें किसी स्त्रोत से जुड़ा हुआ होना चाहिए। स्त्रोत से जुड़े हुए कुएँ से कितना भी पानी निकालो वह खाली नहीं होता। क्या गुरु नानक देव किसी विश्वविद्यालय में पढ़ने गये थे? कबीर साहब कौन से विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये गये थे? परंतु ऐसा भी मत समझ लेना कि वे पढ़े नहीं थे। वे भगवान के दरबार से पढ़ कर आये थे। जिनको ज्ञान परमात्मा ने दिया हो उनके ज्ञान में कभी कमी नहीं आया करती। उनका ज्ञान इतना विशाल होता है कि आज उन सद्‌गुरुओं की वाणी पर हजारों लोग शोधकार्य (पी.एच.डी.) कर रहे हैं। लेकिन लोगों को एक बात का पता नहीं है कि दुनिया के महापुरुषों का चित्त एक ओर भगवान से जुड़ा हुआ होता है तथा दूसरी ओर संसार से। भगवान से जुड़ा हुआ चित्त होने के कारण वहां से जो ज्ञान धारा बहती रही उसे वे संसार में बाँटते रहे। लोग यह देखकर हैरान होते रहे कि इतना ज्ञान आया कहाँ से। किताब पढ़ करके कहने वाले तो बहुत मिलेंगे लेकिन जिसके अन्दर की किताब भगवान ने खोल दी हो वह अनन्त ज्ञान का भंडार बन जाता है।

गुरु गोरखनाथ ने साधना में बैठकर जब आनन्द पाया तो लोगों ने पूछना शुरू किया कि बताओ भक्ति के कितने साधन हो सकते हैं। दुनिया का भला करने के लिये उन्होंने हजारों साधन बताने शुरू किये। इतने साधन बता दिये कि गिनने मुश्किल हो गये। उन्होंने कहा अभी कम बताये हैं। अभी और भी बताये जा सकते हैं और लोग सुनकर हैरान हो गये। बाद में एक अजीब मजाक प्रचलित हो गया। जब आदमी बहुत ज्यादा फैलाव में आ जाए तो लोग कहते हैं कि किस गोरखधंधे में फँसे हुए हो? गुरु गोरखनाथ ने तो कृपापूर्वक इतने साधन बताए कि गिनने मुश्किल हो गये और लोगो को वह गोरख धंधा लगने लगा। उन्होंने बताया कि अगर भगवान

के पास ऐसे नहीं पहुँच सकते तो यह करो। यह नहीं तो यह करो। यह भी नहीं काम में आये तो यह करना। महापुरुष भी कोशिश करते हैं कि वे किसी भी तरह से मनुष्य को जगायें। इन्सान को जगाने के लिये दस तरीकें अपनायेंगे। जो आदमी सच्चा होगा वह दिखावे में नहीं आयेगा। वह साधारण बनकर रहेगा। वह भीड़ में चला जाए तो उसे पहचानना भी मुश्किल होगा। परन्तु जो खास तरह का भेष बना कर खड़ा हो तो समझ लेना चाहिये कि उसके मन में भेष के माध्यम से लोगों पर प्रभाव डालने की इच्छा है। जो साधारण बना रहे उसको पहचानने में मुश्किल अवश्य होती है लेकिन एक बार अगर पहचान लिया, संबंध जोड़ लिया तो फिर कल्याण होने में ज्यादा देर नहीं लगती।

दुनिया के महान पुरुषों के साथ ज़्यादातर यही समस्या आई कि लोगों ने उनको उनके जीवनकाल में नहीं पहचाना। बाद में लोग रोते रह गये। ऐसा भी हुआ कि जिस जिस महान पुरुष के जीवनकाल में लोग उनसे प्रभावित होने लगे, उनका प्रभाव दुनिया पर पड़ना शुरू हो गया तो विरोध में कई ऐसे लोग खड़े हो गये जिनकी दुकानें हिलनी शुरू हो गईं थीं। वे लोग घबराने लगे कि एक व्यक्ति का प्रभाव बढ़ने से हमारे धंधे में कमी आ रही है। परिणामस्वरूप वे चोट पहुँचाने के लिये आगे आये, तरह तरह के लांछन, षड्यन्त्र रचकर सामने आए। वे अपना काम करते रहे लेकिन महापुरुष शांति के साथ जन जन में अपना संदेश और आनन्द बांटते चले गये। विरोधी तो वहीं कीचड़ में खड़े रह गये और महापुरुष अपनी ऊंचाई को लेकर आसमान छूते चले गये।

भगवान कहते हैं **'तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्'** तत्व ज्ञान जिस प्रकार से भी मिल सकता हो, उसे पाने के लिये लगातार प्रयत्नशील रहो। भगवान आगे कहते हैं, **'ज्ञानम् इति प्रोक्तम्'** मैने जो कुछ बताया यह सब ज्ञान है। **'अज्ञानं मदतो अन्यथा'** और इससे जो विपरीत है वह सब अज्ञान है। इसलिये कोशिश करो कि अज्ञान दूर हट सके और ज्ञान प्राप्त हो सके। भगवान ने फिर कहा,:

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।१२।।

अर्थात् अब मैं तुम्हें यह भी बताना चाहता हूं कि जो ज्ञेय है, जो जानना चाहिये, वह क्या है? जो अनादि, अनन्त, सदा रहने वाला, जो तत्व सदा से था और सदा रहेगा, जिसका न कोई आदि और न कोई अंत है वही तत्व, परब्रह्म परमेश्वर है। उसी को जानना चाहिए। उसी में अपनी रुचि रखनी चाहिए। उसको जानने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिये। जन्म इसीलिये होता है कि मनुष्य परब्रह्म परमेश्वर को जान ले। इसी तत्व के प्रति रुचि पैदा करनी चाहिये। वह तत्व कैसा है?

केनोपनिषद् में कहा गया है कि इस संसार में आकर अगर तुमने परब्रह्म को जान लिया तो सब कुछ जान लिया। उस परम तत्व को जान लिया तो तुमने बहुत बड़ा लाभ प्राप्त किया और अगर उसे नहीं जाना तो अपनी बहुत बड़ी हानि कर ली। इस विषय में मुण्डकोपनिषद् में कहा, **द्वे विद्ये वेदितव्यइति परा चापरा** दुनिया में दो विद्याएं हैं, 'परा' और 'अपरा' जिनको जान लेना चाहिये। भर्तृहरि ने भी यही कहा था **"कोलाभो? गुणीसंगमः"** जीवन का लाभ यही है कि गुणी ज्ञानी जनों का संग करके उनसे लाभ ले लेना चाहिये और उनसे वह ज्ञान जो परमात्मा की ओर ले चलने वाला हो, प्राप्त करना चाहिए। अतः जानने योग्य तत्व है–परमात्मा।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि, "हे अर्जुन! जो जानना चाहिये, वह मैं तुम्हें बताता हूँ। **यत् ज्ञात्वा अमृतम्,** वह ज्ञेय है जिसको जानने के बाद व्यक्ति अमर हो जाता है। जो अनादि है, सदा रहने वाला तत्व है, उसे जानना चाहिये। जो था, है, और रहेगा। यदि जानने के लिये उस पर दृष्टि जम गई तो संसार में आना सार्थक हो गया। अगर उसे जानने के लिये हमारा मन उसकी तरफ प्रवृत्त नहीं होगा तो फिर यही हुआ कि हम अपने श्वासों की बहुत बड़ी पूंजी को, हीरे जवाहरात को, कीचड़ में फेंकते जा रहे हैं। अनेक संतों ने इसी बात को अपने अपने ढंग से कहा है : "ऐ इन्सान! तेरा एक एक श्वास कीमती है। हर साँस को परमात्मा को जानने में लगा। अगर परमात्मा की तरफ तेरी दृष्टि जाती है तो तेरा श्वास लेना सार्थक है"।

कबीर ने कहा :

कहता हूं कहे जात हूं, बजा बजा कर ढोल,
यह श्वासा खाली जात है तीन लोक का मोल।

तीन लोकों की सम्पदा उठाकर एक तरफ रख दी जाए तो भी वह तेरे श्वास से कीमती नहीं है। अगर तेरा श्वास परमात्मा के नाम को जपे बिना, सिमरे बिना खाली जा रहा है, तो यह समझ कि तीन लोकों की सम्पदा से भी कीमती, प्रत्येक श्वास को तू प्रतिपल कीचड़ में फेंकता जा रहा है। इसीलिये जाग और सम्भल। कबीर ने तो यहाँ तक कह दिया कि जो लोग साधारण थे, किन्तु परमात्मा का नाम जपते रहे, वे फिर साधारण नहीं रह गये, असाधारण बन गये। जिन्हें कोई नहीं जानता था, वे सारी दुनिया में जाने गये क्योंकि वे परमात्मा को जानने वाले बन गये। कबीर साहब ने गोस्वामी तुलसीदास के प्रति भी चुटकी लेते हुए कह दिया :

तुलसी तुलसी सब कहें, तुलसी बन की घास,
जब हो गई कृपा राम की, तो बन गये तुलसीदास।

राम जी ने कृपा कर दी तो साधारण से तुलसी भी तुलसीदास बन गये, प्रसिद्ध हो गये। इसीलिए तू भी उसे जान ले। तब तू भी साधारण से असाधारण बन जाएगा। तू कीमती बन जाएगा। नहीं तो इस शरीर की कोई कीमत नहीं, इन श्वासों की कोई कीमत नहीं। कीमत तभी बनेगी जब इसमें परमात्मा का नाम बसेगा। इसलिए जो अनादि है, जो सदा रहने वाला तत्व है, उस आदि अन्त से परे परब्रह्म परमेश्वर को जानने की कोशिश करो।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।१७।।

परमात्मा ऐसा प्रकाश है जो सब ज्योति का स्त्रोत और प्रकाश पुंज है। वह स्वयं प्रकाश है। संसार में बहुत सारी चीज़ें स्वयं प्रकाशित नहीं हैं। वे दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित होती हैं। चन्द्रमा में अपना प्रकाश नहीं है, वह सूरज के प्रकाश से प्रकाशित होता है। सूरज में परमात्मा की कृपा का प्रकाश है। जिस दिन परमात्मा चाहेगा, इस प्रकाश को तोड़ देगा। मनुष्य की आँखें भी तभी देख पाती हैं, जब बाहर का प्रकाश इनको मिलता है। अगर बाहर का प्रकाश न मिले तो इन आँखों की ज्योति भी बेकार है। अन्धेरे में आदमी देख नहीं सकता। इसलिए उसे प्रकाश के सहारे की

जरूरत पड़ती है। **बाहर के प्रकाश और अन्दर के प्रकाश दोनों का जब मेल हो जाता है तब दिखाई देता है। बाहर प्रकाश हो और आँखों में ज्योति न हो तो भी नहीं दिखाई देगा।** दोनों ही प्रकार के प्रकाश का समुच्च्य परमात्मा ही है। प्राणों का प्राण वही है। ज्योति में ज्योति वही है। अग्नि में अग्नि तत्व वही है।

यह परमात्मा का चमत्कार है कि उसने अपने अग्नि तत्व को संसार के समस्त पदार्थों में छिपा रखा है। लकड़ियों को जब घर्षण करते हैं तो उनके अन्दर से अग्नि प्रकट होती है। इसीलिए परमात्मा के लिए कहा गया है **सर्वतो मुख,** कि उसके मुख सब ओर हैं। वह सब ओर देख रहा है। परमात्मा सब ओर मुख किए खड़ा है। बादशाह अपने वजीर से प्रश्न करता है कि भगवान का मुख किस दिशा में है। मन्त्री ने एक मोमबत्ती जलाई, जला कर बीच में रखी और बादशाह से सवाल किया, "कृपा करके आप बताइए कि मोमबत्ती का मुख किधर है।" बादशाह ने कहा कि इसका मुख तो चारों तरफ़ है, क्योंकि इसका प्रकाश चारों तरफ़ है। मंत्री ने कहा कि भगवान का मुख भी चारों तरफ़ है, क्योंकि उसका प्रकाश चारों तरफ फैल रहा है। वह सर्वत्र देखता है। सर्वत्र उसकी ज्योति है। वह सबके हृदय में बसा हुआ है और सबके कर्मों को देखता और उनका आकलन करता है। उसी के अनुसार वह कर्मों का फल देता है। परमात्मा की ज्योति से ही यह संसार प्रकाशित होता है। फूलों में रंगत वही है। नदियों में बहाव है। सितारों में चमक है। पक्षियों के मधुर कंठों का माधुर्य है। वह सर्वत्र है, उससे अलग कुछ भी नहीं। जैसे ही वह अपनी ज्योति छीनता है, केवल अन्धेरा रह जाता है।

शरीर से जब आत्मा निकल जाए तो फिर शरीर में कुछ नहीं रह जाता। कितनी भी आवाज दो कि एक बार बोलिए, लेकिन वह नहीं बोलता। आँखें वैसी ही हैं, कान भी वैसे ही हैं, अंग-प्रत्यंग वैसे ही हैं, परन्तु उनमें कोई हरकत नहीं रही। देखने वाला, बोलने वाला, चलने वाला जो तत्व था, वह आत्मा चली गई थी। वह निकल गई थी। आत्मा के निकल जाने के बाद शरीर में किसी प्रकार की गतिविधि नहीं थी। राजा नगरी छोड़कर चला गया तो नगरी सूनी हो गई। आत्मा को राजा कहा जाता है क्योंकि

राजृ दीपतो, वही शरीर की दीप्ति थी, तेज था। जैसे ही अपने कार्यों को समेट कर आत्मा शरीर से जाने की तैयारी करती है, शरीर बूढ़ा व शिथिल होने लगता है। हाथ पांव ठंडे होने लगते हैं, फिर सारा शरीर ठंडा होता जाता है और तब अचानक सब कुछ निर्जीव हो जाता है।

राजा भोज और कवि कालिदास दोनों ही एक बार रास्ता भटक गए। एक बूढ़ी माँ को देखकर उन लोगों ने पूछा, "माँ यह रास्ता किधर जाता है?" बूढ़ी माँ ने देखा कि हैं तो दोनों पढ़े लिखे और समझदार। एक राजा है, दूसरा विद्वान, लेकिन दोनों ही शिष्टाचार भूल गए हैं। परम्परा है कि अपरिचित को भी लोग प्रणाम करते हैं, राम राम जी बोलते हैं। यह लोग प्रणाम करना भी भूल गए हैं और सीधा सवाल कर रहे हैं कि रास्ता किधर जाता है।

बूढ़ी माँ मुस्कुराईं और कहने लगीं, "बेटा, रास्ता तो हमेशा यहीं रहता है? जाने वाले मुसाफिर आया जाया करते हैं। तू बता, तू किधर जाना चाहता है?" इतनीं बात सुनते ही वे सकपकाए। अब क्या कहें? दोनों के मुँह से निकला, "मुसाफिर हैं।" बूढ़ी माँ ने टोककर कहा, "बेटा, झूठ बोलते हो। मुसाफिर तो दुनिया में दो ही हैं एक चन्द्रमा और दूसरा सूरज। वे सदा के मुसाफिर हैं, सदा ही चलते रहते हैं। वे कभी रुकते नहीं हैं, पर तुम्हारी यात्रा तो रुक गई है। जिनकी यात्रा रुक गई हो तो वे मुसाफिर कैसे हुए? बताओ तुम कौन हो?"

भोज कहने लगे, "हम राजा हैं।" बूढ़ी माँ ने कहा, "गलत कहते हो। राजा तो दो ही हैं। एक राजा है आत्मा और दूसरा राजा है परमात्मा। परमात्मा राजा इसलिए है क्योंकि उसका राज सारे संसार में दिखाई देता है। आत्मा राजा इसलिए है क्योंकि उसका राज शरीर में दिखाई देता है। तुम लोगों का राज तो कहीं दिखाई नहीं देता। न तुम्हारे साथ कोई व्यक्ति है, न तुम्हारी कोई स्थिति है। तुम कौन हो? पहले यह बताओ।" अब दोनों ही घबरा गए कि क्या कहें। दोनों ही कहने लगे, "हम गरीब हैं।"

बूढ़ी माँ कहने लगीं, "गरीब भी दुनिया में दो ही होते हैं। एक बकरी जिसके सामने उसके बच्चे को कसाई छीन कर ले जाता है और काट देता है तो भी

वह बोल नहीं पाती, दूसरी गरीब विधवा होती है जिसका बच्चा बीमार हो और उसका साथ देने वाला कोई न हो। बच्चा तड़प रहा हो और माँ की आँख से आँसू बह रहे हों। दुनिया में ये दो ही गरीब माने गए हैं। तीसरा गरीब नहीं होता। बताओ तुम हो कौन ?"

अब तो दोनों सोचने लगे कि हम तो अपने आप को बड़ा ज्ञानी कहते हैं। यहाँ तो एक घास काटने वाली बुढ़िया ने ऐसे सवाल पूछे हैं कि उत्तर ही नहीं दिया जा रहा। दोनों ही हाथ जोड़कर बोले, "नहीं पता माँ कि हम कौन हैं। कैसे भटक कर यहाँ आ गए, यह भी नहीं पता।" बूढ़ी माँ कहने लगी, "देख बेटा, जब तक दुनिया में इन्सान जीवित रहता है, तब तक उसके ज्ञान की यात्रा चलती रहती है। मनुष्य को कभी अहंकार नहीं करना चाहिए। अपनी परम्परा और शिष्टाचार का तरीका नहीं भूलना चाहिए। मैं जानती हूँ कि तुम राजा भोज हो और यह कालिदास है। मुझे यह भी पता है कि तुम रास्ता भटक गए हो। इसी रास्ते से चले जाओ। धारा नगरी पहुँच जाओगे।"

हमारे अन्दर की ज्योति, अन्दर का प्रकाश, जिसे हम ज्ञान कहते हैं कई बार हमारा साथ छोड़ देता है। लेकिन जिसका सम्बन्ध परमात्मा से जुड़ा होता है, वह कभी भ्रमित नहीं हुआ करता। परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ कर चलो तो विनम्रता बनी रहेगी, भक्ति बनी रहेगी। जहाँ बैठोगे, वहीं यह महसूस होगा कि तुम परमात्मा के मन्दिर में बैठे हुए हो। भगवान से अलग कुछ नहीं है। सब पदार्थों में उसका अहसास करें। चाहे रेत के टीले ही क्यों न देखें, उन टीलों में भी कहीं न कहीं भगवान का सौंदर्य झलकता दिखाई देगा। बाँसों का झुरमुट हो या पेड़ों की सघन छाया, बहती हुई नदियाँ हों या फिर गरजता हुआ सागर, या फिर पहाड़ों की कोख को चीरता हुआ झरना, बच्चों की किलकारियाँ हों या फिर तरह तरह के कीट पतंग सबको देखकर परमात्मा का ध्यान करें और उसमें आनन्द लेना शुरू कर दें। इसलिए संसार में अगर कोई जानने योग्य चीज है तो वह एक ही तत्व है, परमपिता परमात्मा। उसको जानने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

भगवान कृष्ण कहते हैं, "हे अर्जुन! अनादि परब्रह्म परमेश्वर जानने योग्य है क्योंकि वह स्वयं ज्योति है, प्रकाश में प्रकाश है और कहा **तमसः परम उच्यते** कोई अन्धेरा इस परम ज्योति को छू नहीं सकता। साधक लोग साधना में जब अन्तर की गहराइयों में उतरने लगते हैं, उन्हें अपने अन्तर में प्रकाश की अनुभूति होती है। शुरुआत में अगर आप आँखें बन्द करके बैठेंगे तो आपको हल्का सा प्रकाश हिलता डुलता नज़र आएगा। त्राटक की विधि से अगर आप बैठेंगे तो उस से भी ऐसा होगा। आप किसी भी दीये को सामने रखकर थोड़ी देर उसे एकटक देखें, फिर आँखें बन्द करें। अन्दर दीपक की लौ दिखाई देगी। थोड़ी देर के बाद वह हिलनी शुरू हो जाएगी।

कभी कभी जब लोग साधना करते करते आँखें बन्द करके आज्ञा चक्र में ध्यान ढिकाते हैं तो प्रकाश के एक घेरे की झलक सी दिखाई देती है। कभी कभी हिलते हिलते प्रकाश बीच में से कट जाता है, दो टुकड़े हो जाता है। अचानक काला बिन्दु दिखाई देता है। उसमें से फिर एक सफेद बिन्दु उभरता है। फिर एकटक देखेंगे तो अलग अलग रंग दिखाई देंगे। उसके बाद अचानक एक भयंकर आकृति नजर आती है। लोग डर कर बैठ जाते हैं। उसके बाद आगे नहीं बढ़ते। कई लोग हिम्मत से आज्ञा चक्र में ध्यान टिकाते हैं तो उनके सिर में दर्द होने लगता है। वहाँ कोई दृश्य दिखाई नहीं देगा। केवल अपने को विचारों से शून्य करना और विचारों को खो देना होता है। अन्दर शांत होते जाना और शरीर को शिथिल करते जाना। शांत और एकाग्र होकर बैठे रहिए। एक स्तब्धता, एक गहरी खामोशी, एक गहरा मौन होगा जिसके अन्दर प्रवेश करते जाइए। जिस दिन कोई चमत्कार होना है, अपने आप होगा। आपके चाहने से कोई बात नहीं बनेगी। अचानक जिस दिन भगवान की कृपा होती है फिर वे दृश्य दिखाई देने लगते हैं। किसी को दृश्य दिखाई देंगे, कोई आनन्द में ऐसे ही खो जाएगा। कुछ भी नहीं सोचना, कुछ भी विचार नहीं करना, कोई भी कल्पना नहीं करना। अनेक अनुभूतियां होंगी। आनन्द और शान्ति का अहसास। एक स्थिति ऐसी आएगी जहाँ आप की वाणी, आप की जीभ, आपकी बुद्धि, आपका मन पहुँच नहीं पायेगा। कुछ कह नहीं पाओगे क्योंकि

संसार में आपने ऐसा कुछ भी अनुभव नहीं किया। इसे सन्त लोग कहते हैं **गूंगे केरे सर्करा।** गूंगे आदमी को जैसे किसी ने शक्कर खिला दी हो। वह अब शक्कर का स्वाद बताए तो कैसे बताए। मुस्कुराता है और इशारा करता है कि वह कुछ था, जिसे उसने महसूस किया और जिसका स्वाद लिया। लेकिन कुछ बता नहीं सकता। वैसा आनन्द आपने संसार में कभी भोगा नहीं होगा। कर्मेन्द्रियाँ या ज्ञानेन्द्रियाँ उस तरह की अनुभूतियाँ पाने में अक्षम हैं। उस आनन्द को तो आत्मा ही ग्रहण करती है।

यह अनुभूति कभी एक क्षण के लिए भी आ गई तो ऐसा आनन्द दे जाएगी, जैसे किसी को एकदम बहुत बड़ी खुशी मिल गई हो। गला रुंध जाएगा, खुशी में आँखों से आँसू आ जाएंगे। साधक खुश हो कर उछलने लगेगा। गाना गाने लगेगा, झूमना चाहेगा। सबको बता देना चाहेगा कि उसे आनन्द मिल गया। शरीर रोमांचित हो जाता है। इस अनुभूति के बाद कोई पदार्थ अच्छा नहीं लगेगा। लोग कभी कीर्तन में बैठ कर भक्ति में डूबने का आनन्द महसूस कर लेते हैं और सोचते हैं कि शायद ऐसा ही कुछ आनन्द साधना में डूबने पर होता होगा। यह थोड़ा सा ध्यान, जो टिका, एक हल्की सी अनुभूति दिखा गया। लेकिन यह परम तत्व का अनुभव नहीं है। वह अनुभूति तो बहुत गहराई में डूबने से प्राप्त होती है। इसलिए अगर मन में रुचि जागे तो फिर स्थिर मन से उधर चलते जाना, रुकना नहीं।

बहुत लोग यह सोचने लगते हैं कि इतने दिन हो गए ध्यान में बैठते बैठते, पर कुछ बात तो बनी नहीं है। कई तो सोचने लगते हैं कि शायद कोई बटन दबाने से ही कुछ हो जाए। वैसे आपको बताएं कि यह जो चक्र हैं शरीर में, यह बड़े चमत्कारी हैं। **व्यक्ति अपनी ऊर्जा शक्ति, अपना सारा ध्यान जैसे ही इन चक्रों में केन्द्रित करने लगता है, तो चक्र भेदन शुरू हो जाता है। ऊपर एक खज़ाना खुलता जाता है। आप कोई कविता नहीं करते थे, अचानक आपको कविता करनी आ जायेगी। संगीत फूटने लगेगा। शब्द जानने लगेंगे आप।** संसार में जितने भी ज्ञानी ध्यानी लोग हुए, उन्होंने कहीं संगीत नहीं सीखा, न ही किसी की संगीत में कोई रुचि थी पर जैसे ही भक्ति में डूबे, अन्दर से कोई चक्र भेदन हुआ, जागृति आ गई, मस्ती आ गई, और वे गाने लगे।

तुकाराम भजन गाने बैठ गए। बड़ी भारी भीड़ उनको सुनने के लिए आई। संगीत के एक बहुत अच्छे जानकार ने जाकर उनसे कहा कि मैं बहुत अच्छा संगीतज्ञ हूँ। आपको तो गाना आता नहीं। मैं आपको सुनाता हूँ कि गाना कैसे गाते है। तुकाराम ने कहा "ठीक है गाओ"। वह गाना गाने के लिए बैठ गया। संगीतज्ञ ने जैसे ही गाना शुरू किया, लोग उठकर जाने लगे। तब संगीतज्ञ ने पूछा, "महाराज ऐसी क्या बात है? हम तो बहुत अच्छा गा रहे थे। शास्त्रीय गीत गा रहे थे।" वैसे एक बात आपको बता दें कि जो सुन रहा हो और जो गा रहा हो दोनों ही शास्त्रीय संगीत के जानकार हों तभी एक एक बोल एक एक आरोह अवरोह तथा स्वर का थोड़ा सा भी उठान खूब आनन्द देता है। किन्तु अगर कोई शास्त्रीय संगीत को समझता न हो तो उसे ऐसा संगीत सुनकर सिरदर्द होने लगेगा।

किसी गाँव में जाकर शास्त्रीय संगीत ज्ञाता ने घोषणा की कि वह रेडियो पर गाता है। भीड़ इकठ्ठी हो गई। सच में वे गाते बहुत अच्छा थे। लेकिन अपनी वीणा लेकर उन्होंने जैसे ही आँखें बन्द कर स्वर छेड़ा, कुछ लोग उठकर चले गए। जब बहुत देर तक वह आ आ ही करते रहे, तो एक आदमी जो बिलकुल सामने बैठा हुआ था, उसने रोना शुरू कर दिया, बाकी लोग चले गये। गायक आलाप मारते जाएं, वह रोता जाए। बहुत देर तक ऐसे ही उनका रोना और गाना जारी रहा। आखिर गाने वाला ही थक गया। उसने अपना बाजा अलग रखा तो रोने वाले ने कहा कि उसकी भैंस को भी आ आ चिल्लाने की बीमारी लग गई थी। उसी की याद में वह रो रहा है। संगीत को जो जानने वाला है, वही उसका आनन्द ले सकता है।

तुकाराम भजन गा रहे थे तो बहुत लोग बैठे हुए थे। पर जब संगीतज्ञ आया और उसने गाना शुरू किया तो लोग उठकर चले गए। तुकाराम ने मुस्कुरा कर उससे कहा **"भाई, गले से गा रहे हो न, दिल से गाओ। दुनिया का मनोरंजन करने के लिए नहीं, दुनिया के मालिक के लिए गाओ। अपने परमात्मा को मनाने के लिए गाओ।"**

तुकाराम, रैदास, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, इनके अन्दर भक्ति जागृत हुई, इन लोगों ने गाना शुरू कर दिया। मीरा ने एकतारा हाथ में ले लिया।

राजस्थान से चली वृन्दावन होती हुई, द्वारिका तक पहुँच गई। भक्ति जागी, संगीत प्रकट हो गया। सूरदास भक्ति में बैठकर गाने लगे और क्या गाया उन्होंने। अपने कृष्ण को रिझाने के लिए प्यार से बोले :

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।

काम, क्रोध का पहर चोलना गल विषयन की माल।।

हे मेरे कृष्ण, मेरे गोपाल, मेरे गोविन्द, मैं संसार में काम, क्रोध का चोला पहनकर और गले में विषयों की माला पहनकर नाचा हूँ। मेरे कृष्ण अब मैं थक गया हूँ। कोई ऐसी कृपा करो कि तेरे प्यार में गाना आ जाए और तेरे प्यार में ही नाचना आ जाए। संत भक्ति में नाचते हैं, गाते हैं और झूमते हैं। उनको इसी में आनन्द मिलता है। संतों को ऐसे हुआ जैसे कंगले के हाथ हीरे जवाहरात लग गए हों। नाच उठे वह, गाने लगे, झूमने लगे।

जैसे ही अन्दर ज्योति जागृत होती है, ऊपर की तरफ चक्र खुलते जाते हैं। व्यक्ति की स्थिति विकसित होती जाती है। इसलिए चक्र भेदन की व्यवस्था बनाई गई है। जैसे बच्चे धूप में किसी शीशे का फोकस सैट करके कागज के ऊपर डालते हैं तो धूप की किरणें उसके अन्दर से केन्द्रित होकर काग़ज़ पर गिरती हैं और कागज जलने लगता है वैसे ही मनुष्य अपनी समस्त ऊर्जा को आज्ञा चक्र में केन्द्रित करके स्वाधिष्ठान चक्र में, मणिपुर चक्र में, अनाहत चक्र में केन्द्रित करता है, एक एक को सहलाता है तो ज्योतिं जागृत होती है। बस इतनी कोशिश करनी होगी कि लगातार ध्यान करके, गुरु की कृपा, गुरु सत्परामर्श व आज्ञा निर्देशन के अनुसार व्यक्ति चले। अचानक कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाएगी और फिर देखो कि इन्सान के अन्दर क्या जागृत हो जाता है। महापुरुष अपने अन्दर की बैठी हुई इस ज्योति से कैसे सम्बन्ध जोड़ते हैं ? कैसे इस ज्योति को जागृत करते हैं? इसमें गुरु बहुत बड़ा माध्यम बनता है।

इसीलिए कहते हैं कि भगवान मिलना मुश्किल नहीं, गुरु मिलना ज्यादा मुश्किल है। वह गुरु जो अपने शिष्य के अन्दर की ऊर्जा को जागृत कर दें। परन्तु शिष्यत्व स्वीकार करते ही हम यह न सोचें कि गुरु चमत्कार करेंगे। गुरु एकदम ऐसा नहीं कर सकते। गुरु भी पात्रता देखते हैं, योग्यता देखते हैं। जैसे ही देखेंगे कि शिष्य में स्थिरता आ गई है तो फिर झटका

देना शुरू कर देंगे। कब कहां से, कौन से प्वाइंट को दबा कर किस तरह स्थिर करना है और कब कहना है कि यहाँ से प्राण खींच कर ऊपर लेकर जा और कब बताएंगे कि कहाँ ऊर्जा केन्द्रित कर। जहाँ बाधा आती देखेंगे वहीं शक्तिपात करके कुण्डलिनी को ऊपर उठाना शुरू करते हैं। एक बार का शक्तिपात होते ही शिष्य को अमृतमय खज़ाना मिलना शुरू हो जाता है। यह चमत्कार गुरु की कृपा से होता है। लेकिन गुरु यह कृपा अचानक कभी नहीं करते। इसके लिए गुरु की प्रयोगशाला में आकर बैठना पड़ेगा। लगातार का भजन और लगातार का सिमरन अन्दर कुछ न कुछ चमत्कार करेगा ही।

अगर मनुष्य के नाभि केन्द्र में कुछ गड़बड़ हो तो अन्दर की बहुत सारी तंत्रिकाएं प्रभावित होने लगती हैं। व्यक्ति ज़्यादा चिन्ता करेगा। थोड़ी सी बात में घबराना शुरू कर देगा। इसलिए गुरु लोग ज़्यादातर इस बात का ध्यान करते हैं कि शिष्य का स्वभाव कैसा है। फॉर्म भरवाया जाता है जिसमें ध्यान साधना में आया इन्सान अपने बारे में लिखता है कि उसके सामने जब दुःखद स्थिति हो तो उस समय वह क्या निर्णय लेता है, क्या जल्दी घबरा जाता है? क्या उसको जल्दी गुस्सा आता है? चिड़चिड़ाहट ज़्यादा तो नहीं है? ज्यादातर तनाव में तो नहीं रहता ? रात को नींद ठीक तो आती है? चलते समय बड़बड़ाते हुए तो नहीं चलता, जैसे किसी से बात कर रहा हो। उसके सामने कोई वैभव सम्पन्न आदमी आ जाए तो उसे देखकर वह क्या महसूस करता है ? इस तरह के बहुत सारे प्रश्न किए जाते हैं। परिवार के लोग उसको किस तरह का समझते हैं? मित्र कैसा समझते हैं? स्वभाव किस तरह का है? इन प्रश्नों का मतलब यह जान लेना होता है कि शिष्य के मन की स्थिति क्या है। उससे कौन सा प्रयोग कराया जाए। उसे कौन सी साधना में बैठाया जाए। क्योंकि हर किसी को एक जैसी साधना में बैठाने से उसकी प्रगति नहीं हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अलग होता है। आदतें अलग होती हैं। स्वभाव और आदतों के अनुरूप उसको रास्ता दिखाया जाता है। तब अन्दर के द्वार खुलने लगते हैं। व्यक्ति अपनी ऊर्जा को ऊँचा उठाने लगता है। फिर चमत्कार घटने लगते हैं। साधारण आदमी असाधारण कार्य करने लगता है।

किसी आदमी का ५०–६० साल की उम्र में जाकर के कोई केन्द्र अपना काम करना शुरू कर देता है। उसके द्वारा अद्‌भुत कार्य हो जाते हैं। परन्तु अगर साधना के मार्ग में चलने की रुचि हो तो छोटी आयु से चलना चाहिए। छोटी आयु से चलने में लाभ ज़्यादा होता है। सत्‌गुरु की हमेशा यह कोशिश होगी कि वह शिष्यों को घर से, दुनिया से भागना न सिखाये। दुनिया में रहकर जागना सिखाये। अगर वह दुनिया से भागना सिखाता है तो फिर वह गुरु नहीं है। ऐसा सीखना भी नहीं चाहिए। भगोड़ों की दुनिया बनाकर आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? बहुत से लोग यह कहते हैं कि सब कुछ छोड़ कर आ जाओ, हमारे आश्रम में घर गृहस्थी में जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं। पर इसी संसार से होकर करतार के दरबार में जाया जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। हां, यह कहना उचित है कि जैसे अपने परिवार के साथ मोह करते हो, एक अलग दुनिया भी तुम्हारे अन्दर है, उसको भी अपने परिवार का अंग मानो। **'धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्ति चिरं गेहनी'** धैर्य को अपना पिता मानो। क्षमा को माता और शान्ति को जीवन संगिनी समझो और यह सोचो कि मैं और मेरा साथी दोनों साथ साथ चलें। जीवन की यात्रा में हर जगह साथ हों। जो साधक है, भक्त है वह जहाँ भी जाए, जहाँ भी बैठे, जैसा भी व्यवहार करे, अपने अन्दर की शान्ति को भंग न होने दे। बोलने में शान्ति भंग न हो। कमाने में शान्ति भंग न हो। घर में बैठने में शान्ति भंग न हो। **'धैर्यं यस्त पिता क्षमा च जननी'** क्षमा को माँ मानो। माँ को खोना नहीं है। क्षमा करने की शक्ति को बराबर बढ़ाना है। **अगर भक्त में धीरज न हो तो समझो वह अनाथ हो गया।** धैर्य बिल्कुल नहीं छोड़ना है।

"धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी
शान्तिचिरं गेहनी सत्यं सुनुरयम्"

सत्य को बेटा मानो। आदमी अपने बेटे से बहुत प्यार करता है। बेटे से हारने में भी उसे खुशी होती है। अतः सत्य के सामने हार भी जाओ तो भी सत्य को ही स्वीकार करना। **'भ्राता मनः संयम दया च भगिनी'** मन पर नियंत्रण, मन का संयम भाई है। अपने मन पर नियन्त्रण लगा कर

रखोगे तो यह समझो यह संयम तुम्हारा भाई है, जो तुम्हारा साथ दे रहा है। **'दया च भगिनी'**, दया तुम्हारी बहन है। उसको वचन दो कि मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। अर्थात् अपने दिल को दया से भरे रहना। अन्दर दया का जल सूखने नहीं देना। तभी तुम प्यारे भक्त हो पाओगे। अगर अन्दर से दया हट गई तो फिर तुम भक्त नहीं हो। तुम परमात्मा से दूर होते जा रहे हो। इस प्रकार परिवार को जोड़कर भक्ति में डूबो। जब सारी प्रवृत्तियाँ अन्दर जागृत होने लगें तो चमत्कार घटते हैं।

वर्णन आता है कि मनुष्य कैसे कैसे चमत्कार कर लेता है। अत्रि एक महान ऋषि हुए हैं। अपाला उनकी विदुषी बेटी थी। उसने वेद शास्त्र, छन्द, निरुक्त व्याकरण, समस्त उपनिषद्, समस्त दर्शन, प्रतिसाक्षम्, स्मृति ग्रन्थ, कल्प ग्रन्थ, सूत्र ग्रन्थ सब पढ़े और इतनी विद्वता को प्राप्त हो गई कि उस समय उस जैसी कोई विदुषी या विद्वान नहीं था। लेकिन उसके शरीर में सफेद दाग था। एक तो उसका साधारण रंग रूप, ऊपर से सफेद दाग। उसके सारे गुण धर्म सारी विद्वता सब कुछ दब गई। ऋषि ने बेटी की शादी के लिए बहुत कोशिश की पर विवाह करने के लिए कोई तैयार नहीं होता था। अत्रि ऋषि बहुत दुःखी रहते थे।

एक दिन उनका एक शिष्य उनसे मिलने आया। शिष्य का नाम था कृषाश्व। उसने कहा "गुरुदेव आप तो संसार की चिन्ताएँ हटाते हैं। आज आपको भी चिंतित देख रहा हूँ तो मन को दुःख हो रहा है। आपको कोई परेशानी हो तो मुझे बताइए।" अत्रि ऋषि बोले, "अपाला विदुषी तो है, पर रूप रंग साधारण है। उस पर सफेद दाग भी है। उसकी विद्वता को कोई नहीं समझता। विवाह करने के लिए कोई तैयार नहीं है। न जाने क्या हो गया है देश की बुद्धि को। यहाँ रूप और रंग को ही लोग सब कुछ समझते हैं। पुरुष के हज़ार दोष भी ढक जाते हैं; पर नारी के एक दोष के कारण उसे दुःख भोगना पड़ता है।" कृषाश्व ने कहा,"गुरुदेव मैं अपाला से शादी करूंगा।" विवाह हो गया।

बहुत दिनों तक दोनों खुश रहे, लेकिन एक दिन अपाला का पति उसे छोड़कर चला गया। पति जहाँ गया, अपाला भी वहाँ पहुँच गई। जाकर

उसने कहा, "भगवन्! अगर मुझसे कोई दोष हुआ है तो कृपया मेरा दोष बताएँ। आपके मधुर वचनों को सुनने के लिए मैं उत्सुक हूँ, पर आप कभी भी मेरे लिए अच्छे शब्द नहीं कह पाते। मेरे व्यवहार में कोई दोष देखा हो, कोई कमी देखी हो, तो बताएँ।" कृषाश्व ने कहा, "न जाने क्यों मेरा मन संसार से ऊब गया है। मेरा ध्यान हट गया है। अब मैं घर नहीं आऊँगा। तुम अपने लिए जो चाहो रास्ता ढूंढ सकती हो।"

अपाला के मन को बहुत चोट लगी। उसने अपने पिता से आकर कहा, "सारी दुनिया को तो आप भगवान का वरण करना सिखाते हैं और मुझे संसार के किसी आदमी का वरण करना ही सिखाया। इस संसार का सहारा लेकर मैं अपना क्या भला करूंगी? जो ब्रह्मज्ञान आप दूसरों को दिया करते हैं उसका थोड़ा सा अंश मुझे दे दीजिए। मैं इस जन्म में कम से कम अपने परमात्मा का वरण कर लूंगी। उसे प्राप्त कर लूंगी। इसलिये कृपया आप मुझे वह ज्ञान दें जिससे भक्ति जागती है और परमात्मा की प्राप्ति होती है।" अत्रि ऋषि ने कहा, "ठीक है, तुम बैठो।" ऋषि ने उसे साधना बताई। फिर थोड़े से फल, कंदमूल ग्रहण करके अपाला साधना में बैठने लगी। पूरा वर्ष साधना करते बीत गया। शरद पूर्णिमा आ गई। जैसे ही रात्रि में अपनी सम्पूर्णता लेकर चन्द्रमा उगा, उसी रात उसके अन्दर जागृति हुई, अपाला ने अनुभव किया कि जैसे एक चाँद उसके अन्दर प्रकट हो गया। अन्दर प्रकाश ही प्रकाश है और वह उसमें स्नान कर रही है। समाधि लग गई। आधी रात जैसे ही बीती, समाधि टूटी तो अपाला ने देखा है कि चन्द्रमा की चाँदनी में सारा भूमण्डल स्नान किए हुए है। उसे लग रहा था कि मैं भी अन्दर से प्रकाश में नहा रही हूँ। वह खड़ी होकर नाचने लगी, "कहां तुझे देखूं, कैसे तुझे मनाऊँ। सब तरफ तू ही तू है। मेरे अन्दर भी, मेरे बाहर भी। हे प्रजा पालक! हे पिता परमात्मा! आज मैंने तुझे मना लिया है। अब मुझे कोई शिकायत नहीं। तुझे पा लेने में जो आनन्द है, उससे बढ़कर कोई दूसरा आनन्द नहीं होता।" वह नृत्य करती गीत गाने लगी।

उसी समय भगवान इन्द्र प्रकट हुए। पुरानी गाथाओं में वर्णन आता है कि इन्द्र ने कहा, "अपाला, मैं आ गया हूँ। अब मैं तेरी चमड़ी का दोष दूर

कर दूँगा। तुझे इतना सुन्दर बना दूँगा कि तुझसे सुन्दर कोई भी नहीं होगा।" अपाला ने हाथ जोड़ कर कहा, **"शरीर सुन्दर होता तो संसार रीझता। मन सुन्दर हुआ, हृदय सुन्दर हुआ, आत्मा सुन्दर हुई तो मेरा भगवान रीझ गया। इसलिए मुझे अब संसार को रिझाने की जरूरत ही नहीं रही।** हाँ, एक आशीर्वाद दें कि इसी जन्म में मुक्ति हो जाए। ऐसी शक्ति दें कि कोई मेरी छाया में भी आकर बैठे तो मैं उसे परमात्मा का प्रसाद दूँ और वह परमात्मा की तरफ लग जाए।" इन्द्र ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, "बेटी, जिस ऊँचाई पर तू पहुँच गई है, वहाँ पहुँचने के बाद इन्सान संसार की चीज़ें नही मांगता। तूने भी नहीं माँगी। अब तुझे मांगने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। अब तेरा परमात्मा ही तुझे याद रखेगा।" अपाला के चेहरे से तेज प्रकट होने लगा। ऐसा आकर्षण कि ज्ञानी ध्यानी लोग भी आकर उसके पास बैठने लगे। अपाला से वे मांगने लगे कि उनकी साधना और गहरी हो जाए ऐसा आशीर्वाद दो।

इधर कृषाश्व को जब पता लगा कि उसकी पत्नी साधना करते करते इतनी ऊँची उठ गई है कि आज भारत के बड़े से बड़े ऋषि भी उसका आशीर्वाद लेने आते हैं तो वह अपाला के पास जाकर बोला, "देवी! मैं तुम्हें घर ले जाने के लिए आया हूँ।" अपाला मुस्कुरा कर बोली, "रथ तो भगवान ने भी भेज दिया है, लेकिन यह भी कहा कि संसार के भी कुछ काम पूरे करो। इसलिए मेरे लिए अब केवल परमात्मा है। किसी और छोटे मोटे घर की चाह मुझे नहीं है। आप अपने घर में सुखी रहिए। मैं साधारण घर में जाने की इच्छुक नहीं हूँ। अब तो मैं रोज़ परमात्मा के स्वर्ग धाम में बैठती हूँ। उसका आनन्द लेती हूँ।"

कृषाश्व चला गया। मन में शक्ति नहीं है। बेचैन है। ऋषियों के पास जाकर बोला "कृपा करके मेरे अन्दर कोई ऐसी भक्ति जगा दो कि मैं ऊँचा उठ जाऊँ।" सब ने कहा, "तेरा कल्याण देवी ही कर सकती है।" कृषाश्व अपनी पत्नी का शिष्य बनकर उसके चरणों में बैठा और बोला, "मुझे जगा दो। मैं साधारण इन्सान हूँ। संसार में ही उलझकर रह गया हूँ। अब तुम्हारा शिष्य बनने आया हूँ। तू दिव्य है, तू देवी है।" वह बरसों तक साधना करता

रहा। रोज़ आए, प्रणाम करे, सिर झुकाए। अपाला ने एक दिन कहा, "इस देह को प्रणाम मत कर। प्रणाम करना है तो उस परम तत्व को कर, जो देह से दूर, देह को बनाने वाला, इस समस्त ब्रह्मांड को बनाने वाला है। उसी को प्रणाम कर।"

जब भी कभी मनुष्य के अन्दर जागृति आती है, शक्तियाँ जागने लगती हैं तो अद्भुत चमत्कार घटने लगते हैं। एक साधारण इन्सान भी असाधारण हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि इसलिए जानने योग्य तत्व केवल भगवान है। अपनी शक्ति उसकी तरफ लगाओ। अपने समय को भगवान को जानने में लगाओ। जितना ध्यान संसार के पदार्थों को जानने में लगा रहे हो, उसमें से अगर थोड़ा सा भी समय निकाल कर भगवान को जानने में लगा दो, तो कल्याण हो जाए। इसलिए भगवान ने कहा है, **'ज्ञानम् शैयम् ज्ञान गमयम्, ह्रदी सर्वस्य वितिष्ठितम्'** जो सबके हृदय में बैठा हुआ है, सबके अन्दर प्रकाश बना हुआ है, वही जानने योग्य तत्व है और वही पाने योग्य तत्व है।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।१।।

श्रीभगवान् बोले : हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! 'यह' रूप से आँके जाने वाले शरीर को 'क्षेत्र' कहते हैं और इस क्षेत्र को जो जानता है, उसको ज्ञानी लोग 'क्षेत्रज्ञ' के नाम से कहते हैं।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।२।।

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! तू सम्पूर्ण क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मेरे को ही समझ, और क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है, वही मेरे मत में ज्ञान है।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु।।३।।

वह क्षेत्र जो है, जैसा है, जिन विकारों वाला है और जिससे जो पैदा हुआ है, तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाववाला है, वह सब संक्षेप में मेरे से सुन।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।४।।

(यह क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का तत्व) ऋषियों के द्वारा बहुत विस्तार से कहा गया है तथा वेदों की ऋचाओं द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है और युक्तियुक्त एवं निश्चित किये हुए ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी कहा गया है।

महाभूतन्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्चचेन्द्रियगोचराः।।५।।

मूल प्रकृति, समष्टि बुद्धि (महत्तत्व), समष्टि अहंकार, पाँच महाभूत और दस इन्द्रियाँ, एक मन तथा पाँचों इन्द्रियों के पाँच विषय- (यह चौबीस तत्वों वाला क्षेत्र है)।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।६।।

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, सङ्घात, चेतना (प्राणशक्ति) और धृति – इन विकारों सहित यह क्षेत्र संक्षेप से कहा गया है।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।७।।

मानित्व (अपने में श्रेष्ठता के भाव) का न होना, दम्भित्व (दिखावटीपन) का न होना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरु की सेवा, बाहर भीतर की शुद्धि, स्थिरता और मन का वश में होना।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।८।।

इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य का होना, अहंकार का भी न होना और जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियों में दुःखस्वरूप दोषों को बार बार देखना।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।६।।

आसक्ति रहित होना, पुत्र, स्त्री, घर आदि में एकात्मता (घनिष्ठ सम्बन्ध) न होना और अनुकूलता–प्रतिकूलता की प्राप्ति में चित्त का नित्य सम रहना।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।।१०।।

मेरे में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति का होना, एकान्त स्थान में रहने का स्वभाव होना और जन समुदाय में प्रीति का न होना।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।११।।

अध्यात्मज्ञान में नित्य निरन्तर रहना, तत्त्व ज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को सब जगह देखना, यह (पूर्वोक्त साधन–समुदाय) तो ज्ञान है, और जो इसके विपरीत है वह अज्ञान है।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।१२।।

जो ज्ञेय है, उस (परमात्मतत्त्व) को मैं अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर मनुष्य अमरता का अनुभव कर लेता है। वह (ज्ञेय तत्त्व) अनादि और परम ब्रह्म है। उसको न सत् कहा जा सकता है और न असत् ही कहा जा सकता है।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।१३।।

वे (परमात्मा) सब जगह हाथों और पैरों वाले, सब जगह नेत्रों, सिरों और मुखों वाले तथा सब जगह कानों वाले हैं। वे संसार में सबको व्याप्त करके स्थित हैं।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।१४।।

वे (परमात्मा) सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करने वाले हैं, आसक्ति रहित हैं और सम्पूर्ण संसार का भरण पोषण करने वाले हैं, तथा गुणों से रहित हैं और सम्पूर्ण गुणों के भोक्ता हैं।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।१५।।

वे परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियों के बाहर भीतर परिपूर्ण हैं और चर अचर प्राणियों के रूप में भी वे ही हैं एवं दूर से दूर तथा नज़दीक से नज़दीक भी वे ही हैं। वे अत्यन्त सूक्ष्म होने से जानने का विषय नहीं है।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।१६।।

वे परमात्मा स्वयं विभागरहित होते हुए भी सम्पूर्ण प्राणियों में विभक्त की तरह स्थित हैं। वे जानने योग्य परमात्मा ही सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, उनका भरण पोषण करने वाले और संहार करने वाले हैं।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।१७।।

वह परमात्मा सम्पूर्ण ज्योतियों का भी ज्योति और अज्ञान से अत्यंत परे कहा गया है। वह ज्ञान स्वरूप, जानने योग्य, ज्ञान (साधन समुदाय) से प्राप्त करने योग्य और सबके हृदय में विराजमान है।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।।१८।।

इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय को संक्षेप से कहा गया। मेरा भक्त इसको तत्त्व से जानकर मेरे भाव को प्राप्त हो जाता है।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।१९।।
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।२०।।

प्रकृति और पुरुष दोनों को ही तुम अनादि समझो और विकारों तथा गुणों को भी प्रकृति से उत्पन्न समझो। कार्य और करण के द्वारा होने वाली क्रियाओं को उत्पन्न करने में प्रकृति हेतु कही जाती है और सुख दुःखो के भोक्तापन में पुरुष हेतु कहा जाता है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।२१।।

प्रकृति में स्थित पुरुष ही प्रकृतिजन्य गुणों का भोक्ता बनता है और गुणों का सङ्ग ही उसके ऊँच नीच योनियों में जन्म लेने का कारण बनता है।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः।।२२।।

यह पुरुष प्रकृति (शरीर) के साथ सम्बन्ध रखने से 'उपद्रष्टा', उसके साथ मिलकर सम्मति, अनुमति देने से 'अनुमन्ता', अपने को उसका भरण पोषण करने वाला मानने से 'भर्ता', उसके सङ्ग से सुख दुःख भोगने से 'भोक्ता', और अपने को उसका स्वामी मानने से 'महेश्वर' बन जाता है। परन्तु स्वरूप से यह पुरुष 'परमात्मा' कहा जाता है। यह देह में रहता हुआ भी देह से पर (सम्बन्ध रहित) ही है।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।२३।।

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य अलग अलग जानता है, वह सब तरह का बर्ताव करता हुआ भी फिर जन्म नहीं लेता।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।२४।।

कई मनुष्य ध्यान योग के द्वारा, कई सांख्य योग के द्वारा और कई कर्मयोग के द्वारा अपने आप से अपने आप में परमात्मतत्त्व का अनुभव करते हैं।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।।२५।।

दूसरे मनुष्य इस प्रकार (ध्यानयोग, सांख्ययोग, कर्मयोग, आदि साधनों को) नहीं जानते, केवल (जीवन्मुक्त महापुरुषों से) सुनकर उपासना करते हैं, ऐसे वे सुनने के परायण मनुष्य भी मृत्यु को तर जाते हैं।

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ।।२६।।

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! स्थावर और जंगम जितने भी प्राणी पैदा होते हैं, उनको तुम क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न हुए समझो।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।२७।।

जो नष्ट होते हुए सम्पूर्ण प्राणियों में परमात्मा को नाशरहित और समरूप से स्थित देखता है, वही वास्तव में सही देखता है।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।२८।।

क्योंकि सब जगह समरूप से स्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला मनुष्य अपने आप से अपनी हिंसा नहीं करता, इसलिये वह परमगति को प्राप्त हो जाता है।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।।२६।।

जो सम्पूर्ण क्रियाओं को सब प्रकार से प्रकृति के द्वारा ही की जाती हुई देखता है और अपने आप को अकर्ता देखता (अनुभव करता) है, वही यथार्थ देखता है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।३०।।

जिस काल में साधक प्राणियों के अलग अलग भावों को एक प्रकृति में ही स्थित देखता है और उस प्रकृति से ही उन सबका विस्तार देखता है, उस काल में वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।। ३१।।

हे कुन्तीनन्दन! यह पुरुष स्वयं अनादि और गुणों से रहित होने से अविनाशी परमात्मस्वरूप ही है। यह शरीर में रहता हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।।३२।।

जैसे सब जगह व्याप्त आकाश अत्यन्त सूक्ष्म होने से कहीं भी लिप्त नहीं होता, ऐसे ही सब जगह परिपूर्ण आत्मा किसी भी देह में लिप्त नहीं होता।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।३३।।

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है, ऐसे ही क्षेत्री (क्षेत्रज्ञ, आत्मा) सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।। ३४।।

इस प्रकार जो ज्ञानरूपी नेत्र से क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के अन्तर (विभाग) को तथा कार्य–कारण सहित प्रकृति से स्वयं को अलग जानते हैं, वे परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

चौदहवां अध्याय

गुणत्रय विभाग योग

गुणत्रय विभाग योग

सार

भगवान श्रीकृष्ण गीता के माध्यम से अर्जुन को बताते हैं कि सृष्टि त्रिगुणी है। संसार में सर्वत्र तीन का रूप प्रभावी है। परमात्मा ने स्वयं भी तीन स्वरूपों में सृष्टि को संभाल रखा हैं। सृजनहार ब्रह्मा, पालनहार विष्णु और संहारकर्त्ता महेश्वर। प्रकृति में तीन ही गुण है, सत्, रज और तम। सृजन कार्य में ज्ञान की प्रधानता होती है, ज्ञान द्वारा नियमों एवं व्यवस्था में बाँधकर सृजन एवं निर्माण किया जाता है इसलिए सृजनहार ब्रह्मा सतोगुणी हैं। संसार के पोषण का काम विष्णु भगवान करते हैं इसलिए वे रजोगुणी प्रधान हैं। सृष्टि का नियम है संसार में प्राणियों को भेजना फिर वापिस बुलाना। इस नियम के अनुसार प्राणियों को संसार से समेटने का कार्य भगवान शिव शंकर करते हैं, इसलिए वे तमोगुण प्रधान देव हैं। परंतु संसार में कोई भी स्थिति और भाव सदा एक से नहीं रहते। ऊर्जाएँ, भाव, शक्तियाँ एवं गुण आपस में परिवर्तनशील हैं, एक दूसरे के साथ भी होती हैं या कभी एक की तो कभी दूसरे की प्रधानता। सृजन में कर्म प्रधान है इसलिए ब्रह्मा जी में रजोगुण भी हैं, पालन, पोषण करने में दया, ममता का पुट रहता है इसलिए विष्णु जी में सतोगुण भी है। इसी प्रकार भगवान शंकर भले ही सिर्फ समेटने का कार्य करते हों लेकिन चूंकि उसमें उनका कोई निजी स्वार्थ नहीं होता इसलिए श्रम(रजोगुण) के साथ उनमें सतोगुण भी है। यथार्थ में तीनों एक ही शक्ति (परमात्मा) के तीन भिन्न रूप हैं। इन्हीं तीन गुणों के कारण मनुष्य का जीवन चलता है। संसार में सर्वत्र तीन का रूप प्रभावी है, माता पिता और संतान, गुरु शिष्य और ज्ञान। सतोगुण सात्विक और शुद्ध है, शांति और सरलता देने वाला है। रजोगुण व्यक्ति को आवेश जोश और कर्म करने की शक्ति देने वाला है। भगवान श्रीकृष्ण यह भी बताते हैं कि सृष्टि में इंसान सबसे कमज़ोर और निरीह प्राणी है। उसे सब कुछ सिखाना पड़ता है। बाकी सब जीवधारी अपना काम और कार्यशैली सीख कर ही जन्म लेते हैं। मनुष्य जब सात्विकता, राजसिकता और तामसिकता की सभी स्थितियों को पार कर भक्ति की चरम सीमा के पार पहुँच जाता है तो वह गुणातीत होकर जीता है।

ता के चतुर्दश अध्याय **"गुणत्रय विभाग योग"** में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रकृति के तीन गुणों सत्व, रज और तम के बारे में समझाया है। मनुष्य प्रकृति के इन तीन गुणों के कारण ही विभिन्न स्वभाव गुणों से युक्त होता है और उसकी प्रवृत्तियां बनती हैं। जीवन ज्यों ही प्रकृति से सम्बद्ध होता है त्यों ही यह तीन गुण उसके अन्तस्थ में अपना प्रभाव फैलाना शुरू कर देते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा:

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।।१।।

हे अर्जुन! अब तुम्हें समस्त ज्ञानों में जो उत्तम ज्ञान है वह सुनाता हूँ। इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद अनेक मुनि सिद्धियों को प्राप्त हुए हैं। ज्ञान को शब्दों में जान लेना आसान है, लेकिन ज्ञान को हृदयंगम करके उसे अपने जीवन में रूपांतरित कर पाना कठिन है। जो ज्ञान हमारे जीवन का अंग बन जाए और जिससे हमें सफलता तथा सिद्धि मिल जाए वही ज्ञान, वास्तविक ज्ञान है। यही हमारे जीवन को कल्याण के मार्ग की ओर ले चलने वाला है। भगवान कहते हैं :

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।।२।।

इस दिव्य ज्ञान को जानने के बाद ज्ञानी व्यक्ति मेरे दिव्य स्वभाव को प्राप्त हो जाते हैं। वे परमधाम, परमलक्ष्य को प्राप्त कर जाते हैं। **'सधार्म्यम् आगताः'** वैशेषिक दर्शन में साधर्म्यम और वैधर्म्यम् का सुन्दर विवेचन है। अर्थात् उनमें मेरे समान गुण धर्म प्रकट होने लग जाते हैं। कहा भी गया है कि **"खुदा की इबादत में खुदा सा हो जाऊँ"** यानि भगवान की इबादत, प्रार्थना और भक्ति ऐसी हो कि भगवान जैसी दिव्यता हमारे अन्दर उत्पन्न होने लग जाए।

सबसे पहले आवश्यक है कि व्यक्ति के अन्दर ज्ञान उत्पन्न हो। ज्ञान उत्पन्न होने का ढंग क्या हो? किसी व्यक्ति को गाड़ी चलाने के नियमों की जानकारी दे दी जाए तो क्या वह गाड़ी चलाने लगेगा? तैरना सीखने

के लिए यही बताने से कि पानी में इस तरह से कूदना, पाँव ऐसे चलाना, हाथों से पानी ऐसे हटाना, क्या कोई व्यक्ति तैर करके एक किनारे से दूसरे किनारे तक जा सकता है? नहीं। नियम जान लेना एक बात है और अभ्यास होना दूसरी। सही मार्ग निर्देशन के साथ जब व्यक्ति अभ्यास द्वारा उन बातों को अपने अन्दर उतारने लगता है तब वह उसको सीख जाता है अर्थात् **जब ज्ञान, अभ्यास के द्वारा अनुभूति बनकर व्यक्ति के जीवन में आता है तब वह ज्ञान, ज्ञान कहलाता है। अभ्यास जब आपका तजुर्बा बनता है तो वह आपका ज्ञान कहलाता है।**

संसार में छः प्रकार के स्वाद होते हैं। उन्हीं छः स्वादों में ही सब फल बने हैं लेकिन तब भी किसी फल को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह कितना मीठा है। हो सकता है खटमिट्ठा हो। जब तक फल को चखा न जाए, उसका स्वाद न लिया जाए, उसका स्वाद नहीं बताया जा सकता। इसी प्रकार ज्ञान की बात जान लेना या सुन लेना एक बात है लेकिन उसको अपनी अनुभूति बना लेना दूसरी बात और अनुभूति बनाने के बाद, अपने तजुर्बे में लाने के बाद जब आप उसका निष्कर्ष निकालते हैं, तो वह आपके जीवन में उतर जाता है। अनेक लोगों का निष्कर्ष जब एक ही प्रकार का निकलता है तो वह सिद्धान्त बनता है। तब वह ज्ञान अपने आप में एक उपाय बनता है। जिसको अपना लेने से व्यक्ति के जीवन का कल्याण होता है। ज़्यादातर लोगों में भटकन इसलिए है कि चार किताबें पढ़ कर वे अपने को ज्ञानी समझने लगते हैं, ऊँचे पद पर पहुँचे व्यक्ति अपने को समझदार मान रहे हैं। समझ या ज्ञान इन पर निर्भर नहीं है। **किताबें और पद, सीढ़ी तो कही जा सकती हैं लेकिन मंजिल नहीं। सीढ़ी पर खड़ा होकर कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि वह मंजिल तक पहुँच गया।** भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मैं जो ज्ञान तुम्हें दे रहा हूँ उसे प्राप्त कर तुम्हारे अन्दर मेरी दिव्यता आनी शुरू हो जाएगी। यह उपासना वाला भाव है। उपासना में 'उप' कहते हैं निकट को और 'आसना' का मतलब है बैठना, यानि निकटता प्राप्त करना। **परमात्मा की निकटता प्राप्त कर लेना उपासना है।**

परमात्मा की निकटता प्राप्त कर व्यक्ति में वे दिव्य गुण, जो परमात्मा के गुण हैं दिखाई देने लगते हैं। परमात्मा की दयालुता व्यक्ति का गुण बन जाती है। परमात्मा निर्विकार है, सो वह भी विकारों से रहित होता दिखाई देने लगेगा। परमात्मा दाता है, देता जाता है, बदले में कुछ चाहता नहीं। सो उपासक के अन्दर भी यह गुण दिखाई देगा। ऐसा लगेगा कि वह भी दाता बनकर जी रहा है।

महापुरुषों ने संसार को केवल दिया है, लेने की इच्छा नहीं रखी। वह देकर, बांटकर खुश होते रहे। परमात्मा की सृष्टि में पेड़ पौधे, नदी पहाड़ सबके सब मनुष्य को कुछ न कुछ दे रहे हैं, अपना अंश बाँट रहे हैं। जो जितना उपयोगी होता है उतना ही पूजनीय भी होता है। जो व्यक्ति केवल अपने लिए जीता है, किसी और के उपयोग में नहीं आता उस व्यक्ति का जीवन गौण मांना जाता है। जिसका जीवन सबके लिए है वह महत्त्वपूर्ण हो गया। सूर्य को हम सबसे ज़्यादा पूज्य मानते हैं। उगते सूरज को प्रणाम करते हैं, उसकी ऊर्जा सबके काम में आ रही है। इंसान जब परमात्मा के दिव्य स्वरूप का ध्यान करता है और उसे सदा देते ही देखता है तो उसके ध्यान में आता है कि वह स्वयं केवल लेता ही है, देता कुछ नहीं, तो उसके अंदर देने, बांटने का गुण आने लगता है। अन्दर एक स्त्रोत खुल जाता है, जैसे कुआँ। कुएँ में से जितना पानी निकालिए उतना और आता जाता है। जिन्होंने देना सीख लिया, जीवन में बाँट रहे हैं, तो प्रक्रिया ऐसी बन जाती है कि दूसरे छोर से परमात्मा उनको अलग से देना शुरू कर देता है। महान पुरुषों ने कितना कुछ बाँटा लेकिन उनके प्रेम में, उनकी शक्ति में कमी नहीं आई। उनमें यह दिव्यता इसलिए आ जाती है क्योंकि वे परमात्मा के दाता वाले दिव्य गुण, अनुरूप खुद दाता बन जाते हैं।

परमात्मा सर्वशक्तिमान है। इतना शक्ति सम्पन्न है कि उसे किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मनुष्य ऐसा प्राणी है कि बिना सहयोग के उसका काम ही नहीं चलता। इसीलिए मनुष्य ऋणी है। परमात्मा के ऊपर किसी का ऋण नहीं है। संसार में हम सब लोग

कर्ज़दार हैं। हम समाज के ऋणी हैं क्योंकि हमारे पास जो वस्तु है वह केवल हमारी कमाई हुई नहीं है। उसे पाने के लिए हमें बहुत सारे लोगों का सहयोग लेना पड़ा है। प्रत्येक वस्तु के बनने में बहुत लोगों के हाथ लगे हुए हैं। भोजन कैसे उत्पन्न हुआ ? अन्न उगा और वहाँ से चलकर आप तक पहुँचा। इसको पैदा करने में कितने लोगों ने मेहनत की है। हम पर एक नहीं अनेक व्यक्तियों का ऋण है क्योंकि हम सबके सहयोग से जीवन जी रहे हैं। पशु पक्षी अकेले रह सकते हैं, उनको बस्तियाँ बसाने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन मनुष्य अकेला नहीं रह पाता। उसको हर कदम पर किसी दूसरे के सहारे की ज़रूरत पड़ती है। थोड़ी देर के लिए अकेला बैठ भी जाएगा तो भी ऐसी जगह जहाँ आस पास में कोई गाँव हो, मनुष्यों की बस्ती हो, ताकि सम्पर्क जुड़ा रहे।

ज्ञान में भी हम पूरे नहीं हैं। हम लोगों का ज्ञान भी अधिक विकसित नहीं है। हमें अपना विकास करना पड़ता है। लेकिन पशु और पक्षियों के लिए भगवान ने जो कुछ व्यवस्था बना दी है, जितना स्वाभाविक ज्ञान उनको दिया है उतना ज्ञान उनके जीवन के लिए पर्याप्त है। हम लोगों के पास स्वाभाविक ज्ञान नहीं है। हमें ज्ञान संसर्ग से मिलता है। इन्सान को मकान बनाना न सिखाया जाए तो वह मकान नहीं बना सकता। मनुष्य दूसरों को काम करता हुआ देखता है, अनुभव में लाता है तब सीखता है। लेकिन पक्षियों को घोंसला बनाना कोई सिखाता नहीं है। भगवान ने उनके दिमाग में एक खास तरह का नक्शा दिया हुआ है कि घोंसला ऐसा बनेगा। चूहे का बिल इस तरह से बनेगा। सब चूहे एक ही तरह से बिल खोदते हैं पर कोई चूहा दूसरे चूहे को सिखाता नहीं है। कौए घोंसला बनाएंगे तो एक जैसा बनाएंगे। चिड़िया अपना घोंसला अलग तरह का बनाएगी। एक जाति की सब चिड़ियाँ एक तरह से घोंसला बनाती हैं। हर जाति के लिए अपना भोजन खाने का एक तरीका नियत है जो उसे परमात्मा ने स्वाभाविक ज्ञान के रूप में सिखाकर दुनिया में भेजा है। लेकिन मनुष्य को सीखना पड़ता है खड़ा होना, चलना, बोलना, सब कुछ। इन्सान को जंगल में रख दिया जाए और उसको

सिखाने वाला कोई भी आस पास नहीं हो तो वह कुछ भी नहीं सीखेगा। यहाँ तक कि उसकी अपनी कोई भाषा भी नहीं होगी। जो बच्चे जंगल में ऐसी जगह मिले हैं जहाँ उनको मादा भेड़िये ने अपनी माँद में पाला था उन्होंने भेड़िये की आवाज में बोलना शुरू कर दिया था।

मनुष्य को यदि सिखाया न जाए तो वह कुछ भी नहीं कर सकता जबकि पशु पक्षियों को कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं होती। वे सिखाए बिना ही सीखे हुए हैं। मनुष्य बिना चखे किसी फल का स्वाद नहीं बता सकता परन्तु पक्षियों को पता चल जाता है कि कौन सा फल कितना मीठा है। कौन से पेड़ का कौन सा अमरूद या आम ज्यादा मीठा है, इसकी जानकारी मनुष्य को नहीं हो पाती। लेकिन तोता दूर से ही जान जाता है। वह उसी पर बैठेगा, उसी फल पर चोंच लगाएगा जो मीठा है। पक्षियों को बताने की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि परमात्मा ने उनको स्वाभाविक रूप से यह ज्ञान दे रखा है। मनुष्य और पशु में इतना अंतर ज़रूर है कि मनुष्य को अगर सिखाया गया तो वह आगे दूसरों को सिखा सकता है। पशु पक्षियों को अगर कुछ सिखाया जाये तो वे सीख तो सकते हैं, जैसे कबूतरों को सिखा दिया जाए तो वह उड़कर चिट्ठी दूसरी जगह पहुँचा आएंगे, परंतु वे अपनी बिरादरी वालों को चिट्ठियां पहुँचाना सिखा नहीं सकते। किसी जानवर को आप नाचना सिखा सकते है लेकिन वह आगे अपनी बिरादरी में किसी को नाचना नहीं सिखा सकता। पशुओं के पास विकास की सम्भावनाएँ नहीं हैं। लेकिन जितना स्वाभाविक ज्ञान उनको दिया गया है उतना उनके लिए काफी है। इतने सुन्दर ढंग से वे अपने घोंसले, अपने बिल बनाते हैं कि देखते ही बनता है। शायद मनुष्य ने पशु पक्षियों की नकल की है।

एक पक्षी होता है जिसे दर्ज़ी पक्षी (टेलर बर्ड) कहते हैं। पत्तों को वह इस तरह से सिलता है, इतनी अच्छी सिलाई करके पत्तों से अपना घोंसला बनाता है कि देखकर हैरानी होती है। एक और पक्षी है (वीवर बर्ड), जो घोंसला बनाता नहीं, बुनता है। जब वह अपना घोंसला बुनता है तो एक डिजाइन बन जाता है। उसको डिजाइन बनाना संसार में

किसी ने नहीं सिखाया लेकिन जो कुछ जानकारी लेकर वह पैदा होता है उसके आधार पर वह घोंसला बनाता है। एक और पक्षी जिसका नाम काला पक्षी (ब्लैक बर्ड) है वह जंगल के आस पास के घरों में आकर दीवार के साथ मिट्टी का घरौंदा बनाता है। लकड़ी के ऊपर छत के साथ वह घर बनाता है। जो गीली मिट्टी लेकर वह आता है, उसमें कितना पानी मिला होना चाहिए इस बात की उसको पूरी जानकारी है। पहले थोड़ी मिट्टी लगाकर सूखने का इंतज़ार करता है फिर और थोड़ी मिट्टी लगाता है। वह जानता है कि कब और कितनी गीली मिट्टी लगानी है। ठंडे प्रदेशों में नदियों के किनारों पर एक जन्तु पाया जाता है बीवर। यह लकड़ी कुतर कुतर कर पुल या बाँध बनाता है। अपने नुकीले दांतों से लकड़ी काट काट कर लट्ठा बनाता है फिर उसके ऊपर मिट्टी जमा कर पानी की तेज धार के अन्दर पुल जैसा बनाता है। इस पुल में अपने रहने के स्थान और अपने बच्चों को जन्म देने की व्यवस्था करता है। तेज धार में ऐसी जगह वह यह घर बनाता है जहां कोई इन्सान या जीव पहुंचकर उसे या उसके बच्चों को नुकसान न पहुँचा सके।

इन पशु पक्षियों को इतनी जानकारी है पर मनुष्य बिना सिखाए कुछ नहीं सीख सकता। अतः जिनसे भी वह ज्ञान हासिल करता है उन सबका वह ऋणी है। **हमारे ऊपर पूर्वजों का, ऋषियों का, आचार्यों का, गुरुओं का और माता पिता का ऋण है। हमको इन सब का ऋण चुकाना है इसलिए हमें उपयोगी बनना चाहिए।** परमात्मा का ध्यान करते हुए जब हम यह देखते हैं कि हमारा प्रभु कितना बड़ा दाता है तो हमें सोचना चाहिए कि हम कितने बड़े याचक हैं, कितने बड़े माँगने वाले हैं। अगर हम परमात्मा की उपासना करते हैं, उसका सान्निध्य उसकी निकटता प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, उसकी भक्ति में बैठते हैं तो यह दाता–गुण हमारे अन्दर आने लगता है। हमें महसूस होने लगता है कि हमें समाज के लिए उपयोगी होना है। इसलिए समाज के वे लोग सदैव पूजनीय बने रहे जिन्होंने अपना जीवन अपने लिए नहीं संसार के लिए जिया। अपने युग के ऐसे महानपुरुषों के चरणों में बैठकर उनकी उपासना करनी चाहिए।

उनकी निकटता प्राप्त कर उनके दिव्य गुणों से युक्त होना चाहिए। शिष्य गुरु की शरण में बैठा तो उसके अन्दर भी वही प्रकाश आने लग गया। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मेरे इस ज्ञान को प्राप्त करके मेरे दिव्य गुणों से युक्त होकर अनेक मुनिजन मुक्त हो गए; उनको फिर न जन्म लेना पड़ा और न मरना पड़ा। वे मोक्ष को प्राप्त हो गये। यह परमसिद्धि है।

ज्ञान आपको सिद्धि की ओर ले जाता है। ज्ञान आपके अन्दर दिव्यता लाता है। अन्तस्थ में ज्ञान के प्रभाव से आप साधारण इन्सान नहीं रह जाते। मनुष्य ज्ञान द्वारा ही विकसित होगा। संसार की वस्तुएँ इकट्ठी कर लेने से कोई व्यक्ति महान नहीं हो पाया। व्यक्ति महान हुआ है दिव्य गुणों से युक्त होने पर। इसलिए अन्य समस्त कार्यों को छोड़कर आप अपनी आत्मा को विकसित करने और उज्ज्वल बनाने के लिए, अपनी चेतना व स्वरूप को जागृत करने के लिए प्रयत्नशील हो जाइए। अगर आप अपने परिवार, रिश्ते नातों, पेट भरने वाली समस्याओं के घेरे में ही घूमते रह गये तो उसी में ही केन्द्रित होकर रह जाएंगे, वहीं भ्रमण करते रहेंगे। महापुरुषों ने यह सिद्ध किया है कि पेट भरना और परिवार की समस्याओं को दूर करने में लगे रहना तो साधारण बात है। महापुरुषों के सामने भी यह स्थितियाँ थीं लेकिन वे अपने साथ में न जाने कितने और लोगों का भी भला कर गए। इसलिए आप भी ज्ञान के माध्यम से अपना विकास करें। ब्रह्मज्ञान अर्थात् अपने आपको जानना, सबसे महत्त्वपूर्ण है। उसके बाद संसार को, फिर संसार के मालिक को, संसार के सम्बन्धों को और फिर संसार के पदार्थों को कि ये किसलिए हैं, क्यों हैं, किस तरह के हैं, उन्हें भी जानो।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मैं तुम्हें बताऊँगा कि उत्तम ज्ञान क्या है :

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।३।।

प्रकृति गर्भ धारण करती है, सृजन मैं करता हूँ। ब्रह्माण्ड गर्भ में रहकर पोषण पाता है। मुझसे ही संसार उत्पन्न होता है। मैं ही सब का कारण हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण ने आगे कहा कि **प्रकृति में तीन गुण हैं, सत्व, रज और तम।** जब जीव शरीर धारण करता है तब ये तीन गुण उसके साथ आकर जुड़ जाते हैं। ये व्यक्ति के स्वभाव में प्रकट होने लगते हैं। भगवान ने कहा है कि इन तीनों गुणों का स्वभाव अलग अलग है। जिस गुण की मात्रा शरीर और मन मस्तिष्क में बढ़ती है उसी गुण के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार दिखाई देने लगता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि इन तीन गुणों के प्रभाव के कारण ही कुछ लोग उग्र स्वभाव के होते हैं और कुछ बहुत ही विनम्र। यह तीन गुण व्यक्ति के जीवन को पूरी तरह से बदल देने वाले हैं। भगवान ने कहा कि "मैं यह ज्ञान तुम्हें यह बताने के लिए दे रहा हूँ कि प्रकृति मनुष्य का कितना साथ निभाती है और किस प्रकार उसके जीवन को ढालती चलती है।"

प्रकृति के इन तीन गुणों सत्व, रज और तम की जब साम्य अवस्था होती है तो इनके मेल से प्रकृति बनती है। इस प्रकार प्रकृति तथा मनुष्य का स्वभाव दोनों, इन्हीं तीन गुणों से युक्त हैं। निर्माण करने वाली शक्ति भी तीन स्वरूपों वाली है–ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ब्रह्मा का कार्य सृजन करने का है, विष्णु का कार्य पोषण करने का और महेश का कार्य ध्वंस करने का है। इसलिये ब्रह्मा की शक्ति को सत्व गुण प्रधान कहा गया है, विष्णु की शक्ति को रज प्रधान और महेश्वर शक्ति को तम प्रधान।

एक 'ओम्' अक्षर को बोल देने में ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश का ध्यान हो जाता है और सत्व, रज, तम तीनों की अनुभूतियाँ होती हैं। धरती, आकाश और देवलोक तीनों की अनुभूतियाँ होने लगती हैं। यह जो त्रिनीति है, त्रयत है, यह संसार के निर्माण के लिए भी है, संसार को चलाने के लिए भी है और संसार की समाप्ति के लिए भी।

सारे संसार में सर्वत्र तीन विभाग दिखाई देते हैं। जैसे एक दुकान है तो दुकान का मालिक, दुकान में बिकने वाला सामान तथा खरीदार तीनों जब होंगे तभी वह दुकान चलेगी। ग्राहक हो, दुकान का मालिक भी हो पर दुकान में सौदा न हो तो दुकान बेकार है। सामान हो और दुकान

का मालिक भी बैठा हो पर ग्राहक नहीं आए तो भी बेकार है। दुकान में माल है, ग्राहक भी है पर देने वाला नहीं है, ताला बन्द करके बाहर खड़ा है या इधर उधर चला गया है तो भी बेकार। माता है, पिता है लेकिन संतान नहीं है तो वह माता पिता हैं ही नहीं, संतान के बिना वे दोनों पति पत्नी हैं, माता पिता नहीं। सर्वत्र तीन का रूप दिखाई देगा क्योंकि सारा संसार इसी आधार पर चलता है। जब आप गायत्री मंत्र पढ़ते हैं तो उसमें **व्याहृति** लगाई जाती है। **भू, भुवः, स्वः त्रैत** वाले स्वरूप को दर्शाया गया है। ईसाई लोग ट्रिनिटी को मानते हैं। हमारे यहाँ ब्रह्मा, विष्णु महेश तीन शक्तियाँ हैं। यह समझाने के लिए कि वास्तव में तीनों में शक्ति एक ही है, एक ओम् अक्षर बोलने का विधान है। हर मंत्र के साथ मंत्र की शक्ति बढ़ाने के लिए, मंत्र को मांगलिक बनाने के लिए, मंत्र को कल्याणकारी बनाने के लिए पहले ओम् अक्षर लगाते हैं। ओम् का उच्चारण करते हैं।

ओम् के भी तीन भाग हैं। मनुष्य के अन्दर तीन प्रकार के गुण स्वभाव प्रकृति से आये हैं और जब प्रकृति के गुण व्यक्ति के अन्दर आते हैं तो तीन तरह के स्वभाव दिखाई देने लगते हैं। किसी के अन्दर सत्व है तो किसी के अन्दर रजोगुण। कई बार सत्व और रज दोनों मिल जाते हैं। कभी तमोगुण और रजोगुण मिल गए। कभी थोड़ा सत्व, थोड़ा रज तथा थोड़ा तमोगुण मिल गए। कभी किसी की प्रधानता आ गई तो कभी किसी की। इस प्रकार एक ही मनुष्य में विभिन्न स्थितियाँ दिखाई देने लगती हैं। प्रायः दिन की शुरुआत सत्वगुण से होती है और रजोगुण प्रधान होता है मध्याह्न, और दिन की समाप्ति तमोगुण से युक्त होती है। नींद आती है तमोगुण के कारण क्योंकि तमोगुण आलस्य देता है। कर्म की तरफ प्रेरित करता है तो रजोगुण और शांति देता है तो सत्वगुण।

हमारा भोजन भी तीन तरह का होता है। जो नशा देता है वह तमोगुणी है, जो ऊर्जा देता है, आपके अन्दर गर्मी व शक्ति पैदा करता है वह रजोगुणी भोजन है और एक वह भोजन है जिसको खाने के बाद शांति और तृप्ति महसूस होती है, वह सतोगुणी है। इसी प्रकार कुछ वस्त्र

व्यक्ति को उन्मादी बना देते हैं। कुछ वे हैं जिनको पहनकर चुस्ती व फुर्ती आती है, कर्म करने की स्फूर्ति आती है। साधक बिना सिले वस्त्रों को ओढ़कर बैठते हैं। बिना सिले सभी वस्त्रों से साधुता नहीं आती। लेकिन बिना सिले वस्त्र, शाल या चादर आप ऐसे ओढ़कर बैठते हैं कि उसमें हाथ बंध जाएं। उसका मतलब यह हुआ कि यहाँ कर्म को महत्त्व नहीं देना है, शांत होकर बैठना है। यूरोपियन लोगों ने इसे आलसियों की वेशभूषा कहा है। आपने शाल ओढ़ी या कम्बल ओढ़ा तो आलसियों की वेशभूषा हो गई क्योंकि हाथ बंध गए। अब आप बैठे रहिये चुपचाप। इसलिए साधक की वेशभूषा ऐसी होनी चाहिए। आदमी भागे दौड़े काम करे तो उसकी वेशभूषा तदानुसार होनी चाहिए। इस प्रकार वेशभूषा में भी वही तीन गुण सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण दिखाई देते हैं। इसलिए सभी चीज़ों खाने पीने, पहनने और यहाँ तक कि बैठने की जगह के बारे में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि वे अवसर के अनुकूल हों।

राजा दशरथ ने तो कोप भवन अपने महल से बाहर बनवाया था। किसी ने गुस्सा करना है तो क्रोध करने का भवन उधर है वहाँ जाकर के क्रोध कर लेना। इसी तरह साधना के स्थल सत्वगुणी होने चाहिए जहाँ पर सात्विकता जागृत होती हो।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि सबसे पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि तुम्हारे स्वभाव में इतनी विभिन्नताएं क्यों हैं ? कभी नाचते हो, उछलते हो, शोर मचाते हो और कभी शान्त होकर बैठ जाते हो, तो ऐसा क्यों होता है? जीवात्मा जैसे ही शरीर धारण करता है वैसे ही वह प्रकृति के तीन गुणों में बंध जाता है। जीवात्मा बंधता कैसे है? जो चीजें बांधती है उन्हें तोड़ा कैसे जा सकता है? पहले तमोगुण से छूटना है, फिर रजोगुण से छूटना है और सतोगुण में आ जाना है। फिर सतोगुण के साथ साधना करते हुए अन्ततः सतोगुण को भी छोड़ देना है। कोई आदमी संसार में उलझा हुआ है। जीवन में एकदम अव्यवस्था है। कोई काम ढंग से नहीं हो रहा। इसका मतलब है कि रजोगुण और तमोगुण दोनों का मेल इतना भयंकर रूप धारण कर गया है कि काम करने लगता है तो काम नहीं होता,

खाली बैठना चाहे तो खाली नहीं बैठा जाता। उलझा हुआ है, घर में शान्ति नहीं है, जीवन में शान्ति नहीं है। जहाँ जाता है वहीं पर अशान्ति पैदा कर लेता है। पता लगा कि तमोगुण और रजोगुण दोनों का मेल हो गया है। अगर बुद्धि सात्विकता से जुड़ी होती तो बुद्धि जागृत होती। परन्तु सात्विकता है नहीं इसलिए बुद्धि अपना काम नहीं कर पा रही। और अगर बुद्धि काम करती भी है तो उल्टे काम करती है और उलझने के काम करती है। ऐसे लोग अपने घर परिवार से लेकर बाहर तक कहीं सफल नहीं होते। अगर कमाकर कोई सम्पत्ति इकट्ठी कर भी ली तो उसका सुख नहीं भोग पाते।

ये तीन तरह के गुण मनुष्य को नचाते हैं। जिन लोगों में रजोगुण के साथ तमोगुण का प्रभाव आ मिलता है वे लोग यदि दूर से भी कोई चिन्गारी दिखाई दें तो एकदम आग बबूला हो जाते हैं। उन्हें तो लड़ने का बहाना मिलना चाहिए।

कई लोग यह सोचते हैं कि किसी काम को जीवन भर करते रहने में क्या फायदा ? कोई ऐसा धंधा या काम करो कि एक बार में ही, चाहे लूटकर, चाहे चोरी, डाका या तस्करी करके इतना धन इकट्ठा करके ले आओ कि उसके बाद मस्ती में रहा जा सके। यह तामसिक स्थिति है। कहीं कहीं आदमी के अन्दर थोड़ा सत्वगुण दिखाई देता है लेकिन रजोगुण बहुत है और तमोगुण भी साथ में सक्रिय है। ऐसा व्यक्ति संसार में उलझा उलझा जीता है। कोई व्यक्ति अपने मोहल्ले का नेता बन गया था। अचानक ही उसको कोई अच्छा पद दे दिया गया। अब नेताजी के लिए ज़रूरी हो गया कि वह नेता वाली ड्रेस यानि कुर्त्ता पाजामा पहनें। सो गए बाज़ार और कहीं से रेडीमेड खरीदकर ले आए। पाजामा कुछ ज्यादा लम्बा था। वह तो ठीक कराना ही था। सो घर पहुँचकर पत्नी से बोले, "देखो, आज मौका मिला है मुझे मोहल्ले में अपनी हस्ती बनाने का। मेरी इज्जत काफी बढ़ गई है। बड़ा भारी समारोह होने वाला है। तुम और तो कोई काम करती नहीं हो, तो इस पाजामे को ४ इन्च काट कर छोटा कर देना।" पत्नी ने साफ कह दिया, "मुझसे काम न करवाएं, बहू को जाकर कहें। मुझे वैसे ही फुरसत नहीं है।

आप लीडर बन गए होंगे क्योंकि आपके पास खाली समय है और काम कुछ है नहीं। हमारे पास पाजामा ठीक करने का समय नहीं है।" जाकर बहू को कहा। बहू ने उत्तर दिया, "पिताजी आज तो हम व्यस्त हैं। आप अगर दीदी को बोल दें तो ज़्यादा अच्छा हो।" अब नेता जी अपनी बेटी के पास पहुँचे और बोले, "इसको ४ इन्च छोटा करना है"।

घर में तो तालमेल था नहीं, झगड़ा, कलह, क्लेश बहुत ज़्यादा था। सबका मुख अलग अलग दिशाओं में था। अब हुआ यह कि पहले तो किसी ने उसकी बात सुनी नहीं, फिर सबके मन में उस पर दया आ गयी। सो पहले पत्नी ने ४ इन्च पाजामा काटकर छोटा कर दिया और किसी को बताया नहीं। पत्नी के बाद बेटी आई। उसने भी आकर वही किया। उसने भी ४ इन्च काटा और उस जगह से सिलाई करने के बाद पाजामा जहां का तहां रख दिया। उसके बाद बहू आई और चुपचाप पाजामा ४ इन्च छोटा करके चली गई। इधर लोग नेता जी को बुलाने आ गए। उन्होंने जल्दी तैयार होने को कहा। अब जो इन्होंने पाजामा पहना तो वह न तो पाजामा बचा था और न कुछ और बना था। उसका तो एक अलग ही डिजाइन बन गया था। मान पाना चाहता था, लेकिन स्थिति अपमान वाली हो गई।

जहाँ अव्यवस्था होती है वहाँ व्यक्ति कहने पर काम करता नहीं और फिर मनमाना काम करता है। किसी का किसी के साथ तालमेल नहीं होता। सब इकट्ठे बैठना ही नहीं चाहते। वहाँ पर रजोगुण और तमोगुण का बहुत भयंकर प्रभाव काम कर रहा होता है। इस तरह प्रकृति के ये तीन गुण व्यक्ति को नचाते रहते हैं। परन्तु व्यक्ति इन तीन गुणों को नियंत्रित कर सकता है। पशु पक्षियों में भी कुछ तामसिक होते हैं, कुछ राजसिक और कुछ सात्विक जो अपने स्वभाव में जीवन भर एक तरह से रहते हैं। उनमें कुछ फेर बदल नहीं कर सकते। जैसे गऊ में सात्विकता है, भेड़िये में राजसिकता है। शूकर योनि वाले घोर तामसिक जीव हैं। वे अपनी गंदगी में ही रहना पसंद करते हैं। वहां से बाहर निकलना नहीं चाहते। यही हाल कीट पतंगों का भी है। शहद वाली मक्खी केवल

शहद के लिए ही जाएगी, हर जगह से वह मिठास ढूंढकर लाएगी। दूसरी ओर मक्खी है जो केवल घोर तामसिकता में जीती है। उसको जहाँ भी मौका मिलेगा वह गंदगी को ढूंढेगी और गंदगी में ही जाकर बैठेगी। तो यह अलग अलग स्वभाव वाले जीव संसार में हैं। लेकिन वे अपने ही दायरे में रहते हैं। मनुष्य ही एक ऐसा जीव है कि जिसमें तीनों गुण घटित होते हैं। कभी वह सात्विक होता है, कभी राजसिक तो कभी तामसिक। कोई भी व्यक्ति पूरी तौर पर सात्विक, राजसिक या तामसिक नहीं होता, बल्कि इन सबका मिश्रण होता है। इसलिए हमारा स्वभाव बदलता रहता है। परिस्थितियाँ बिगड़ती बनती रहती हैं। आप एक डायरी में लिखा करें कि आप कब किस स्थिति में थे। कब आप सात्विक थे, कब राजसिक तथा कब तामसिक। ऐसा करने से आप अपने स्वभाव का सही निर्धारण कर पाएंगे।

संसार में विभिन्न साधनाओं के आधार में भी यही तीन गुण हैं। जैसे कुछ लोग तांत्रिक साधनाएँ करते हैं जो केवल घोर तामसिक साधनाएँ हैं। कामनाओं को पूरा करने के लिए जो साधनाएँ की जायें, उनको राजसिक कहेंगे। परब्रह्म परमेश्वर से ही जुड़ने के लिये जब व्यक्ति साधना करता है, तो वह सात्विक साधना होती है। उन साधनाओं को करने से व्यक्ति का जीवन सात्विक हो जाता है। सात्विक व्यक्ति में एक यह विशेषता होती है कि सताये जाने पर भी वह शांत बना रहता है, जैसे आप अपने बच्चे की शरारत देखकर भी शांत रहते हैं। उसे समझा देते हैं लेकिन तनाव में नहीं आते।

सात्विक व्यक्ति शांत चित्त होता है, झगड़े फसाद में नहीं पड़ता। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि, "हे अर्जुन! यह ज्ञान मैं तुम्हें इसीलिए दे रहा हूँ कि इस दिव्य ज्ञान को प्राप्त करने के बाद तुम्हारे अन्दर दिव्यता उत्पन्न हो जाएगी।" **किसी जगह पहुँचने के लिए चलने से पहले हमारे लिए यह जान लेना ज़रूरी होता है कि चलना किधर है, मंजिल कितनी दूरी पर है, तथा कितनी गति से चलना चाहिए जिससे समय पर मंजिल तक पहुँच सकें।** यह बात भी ध्यान में रखने की होती है कि मंजिल तक पहुंचने के लिए हममें सामर्थ्य कितना है, चलने से पहले यह

सब निर्धारण करना ज़रूरी है। तभी ठीक समय पर चलकर ठीक समय पर पहुँचा जा सकता है।

गीता में दिव्य ज्ञान का इतना भंडार भरा पड़ा है इसे इस तक हम लोग क्यों नहीं जान पाए, क्यों नहीं समझ पाए ? असल में किसी भी ग्रन्थ को केवल माथा झुकाकर पूजा करने या उसका सम्मान करने से नहीं समझा जा सकता। बारीकी से उसका अध्ययन करना तथा उसमें बताई गई बातों का चिंतन करना ज़रूरी है। इसी प्रकार जब गीता में दिए गए दिव्य ज्ञान का श्रवण या पठन करके उस पर चिंतन करेंगे तो जानेंगे कि **गीता हमारी जीवन संहिता है। एक आचरण संहिता है। इस पर आप विचार करते जाइए और इसे अभ्यास में लाते जाइए, फिर देखिए कि यह ज्ञान आपके जीवन को कितनी ऊँचाई तक पहुँचाता है।**

भगवान श्रीकृष्ण कहते है :

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।५।।

सत्, रज और तम ये गुण प्रकृति में उत्पन्न होते हैं जो इस अविनाशी तत्व, जीवात्मा को शरीर के साथ बांध देते हैं। इन तीन गुणों से व्यक्ति संसार में बंध जाता है। सत्व गुण, राजसिक गुण तथा तामसिक गुण, ये तीनों मनुष्य को प्रकृति के द्वारा मिलते हैं और उनके प्रभाव से व्यक्ति संसार में व्यवहार करता है। **सतोगुण सात्विक व शुद्ध है, शांति तथा सरलता देने वाला है। रजोगुण व्यक्ति के अन्दर आवेश भरता है और साथ ही कर्म करने की शक्ति भी। तमोगुण प्रधान प्रकृति वाला मनुष्य आलसी तथा अज्ञान में डूबा होता है; वह लापरवाही से जीवन जीता है और तरह तरह के ख्वाब देखता हुआ कपोल कल्पनाएँ करता रहता है।**

कुछ चिन्तक ऐसा भी कहते हैं कि चूंकि सृजन के कार्य में ज्ञान की प्रधानता होतीं है अर्थात् ज्ञान द्वारा नियमों एवं व्यवस्था में बांधकर सृजन एवं निर्माण किया जाता है इसलिए ब्रह्मा जो सृजन करते हैं; वह सतोगुण प्रधान हैं। संसार का पोषण करने का कार्य विष्णु भगवान करते हैं

इसलिए वे रजोगुण प्रधान स्वरूप वाले हैं। सृष्टि का नियम है संसार में प्राणियों को भेजना और फिर वापिस बुलाना। इस नियम के अनुसार प्राणियों को संसार से समेट लेने का कार्य, निद्रा में भेज देने का कार्य भगवान शिव शंकर करते हैं, इसीलिए वे तम प्रधान देव हैं। सृजन में कर्म का आधिक्य होता है इसलिए ब्रह्मा में राजसिक गुण भी हैं; पोषण करने में ममता और दया का पुट रहता है। जहाँ दया है वहाँ सत्व गुण है। इसलिए विष्णु में जो पोषण करते हैं, सतोगुण भी है और जहाँ सबको उठाकर समेटना है, व्यक्ति शरीर से शिथिल हो गया है, मुख में दाँत नहीं हैं, आँखें काम नहीं करतीं, कान से सुना नहीं जाता, शरीर जर्जर हो गया है, दुःख भोग रहा है, संसार में आयु भी सम्पन्न हो गयी है, लेकिन फिर भी जीव जीने की चाह रखता है, उसे दलदल से, गंदगी से, कीचड़ से बाहर निकालकर फिर से नया जीवन देकर प्रेरित कर देने का कार्य भगवान शंकर करते हैं। इसलिए वे तम के साथ ही रजो गुण से भी युक्त हैं। यथार्थ मे तीनों एक ही शक्ति के तीन भिन्न रूप हैं, जिन्हें प्रकृति के अन्दर भगवान ने व्यवस्थित एवं स्थापित किया है। इन तीन गुणों के द्वारा ही मनुष्य का जीवन चलता है। अगर ये तीनों मनुष्य के अन्दर न हों तो संसार में उसका जीवन चल ही नहीं सकता।

भगवान ने संसार का व्यवहार चलाने के लिए इन तीनों गुणों से युक्त व्यवस्था कायम की है। शरीर को संचालित करने के लिए भी वात् पित् और कफ हैं। इन से शरीर संचालित होता है। विद्युत शक्ति और परमाणु शक्ति में भी ये तीनों ही दिखायी देती हैं। बस अलग अलग जगह इनके नाम बदल गये हैं। उदाहरणार्थ परमाणु में तीन नाम हैं एलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन। इन तीनों, सत्व, रज और तम, का संतुलन जब बनता है, तभी सृष्टि की सृजना संभव होती है। हमारे जीवन में तीनों का संपूर्ण रूप से समावेश है। दुकान है तो दुकान का मालिक, सामान और ग्राहक तीनों हों तो काम चलता है। इनमें से यदि एक की भी कमी है तो दुकान का होना निरर्थक है। इसी प्रकार माता पिता और उनकी संतान ये तीन या गुरु, शिष्य और उनके बीच ज्ञान का आदान प्रदान तीनों का तालमेल हो

तभी उनका संबंध दिखायी देता है। **संसार में हर जगह 'तीन' का रूप प्रभावी है। इन तीनों से ही संसार की सृजना हुई है, तीन से ही जीवन चलता है।** अपने उत्थान के लिए व्यक्ति सबसे पहले राजसिक गुणों को उभारता है। अगर उसमें सात्विक प्रवृतियों का मेल हो गया तो मनुष्य अच्छा उत्थान करेगा। अगर रजोगुण के साथ तमोगुण का मेल हो गया तो पतन की संभावना अधिक रहेगी। सात्विकता के सहारे जीवन शान्तिपूर्ण होता जाता है।

भगवान कहते हैः

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।६।।

सतोगुण जीवन को निर्मलता प्रदान करता है। जीवन को प्रकाशित करता है और पापों को दूर करने के लिए प्रेरणा देता है। **'सुखसंङ्गेन बध्नाति'**—सत्व गुण के प्रभाव से व्यक्ति में सुख की अनुभूतियां बढ़ती हैं। वह शांति से युक्त हो जाता है, उसके अन्दर निर्मलता आ जाती है और बाहर प्रकाश प्रकट होने लगता है। उसमें उद्वेग नहीं होता, बेचैनी नहीं रहती। **सात्विक व्यक्ति शील, शांति, प्रसन्नता, सौहार्द, दया, सहानुभूति, सरलता, शिष्टता और सज्जनता से युक्त होता है।**

मनु और याज्ञवल्क्य ऋषियों ने भी सत्व गुण को महत्त्वपूर्ण माना है। साधना के माध्यम से व्यक्ति अपने में सतोगुण को जागृत करता है। अतः व्यक्ति को वही भोजन करना चाहिए कि जिससे उसमें सात्विकता उत्पन्न हो। दूसरी तरह के भोजन का निषेध है। कई ऐसी चीज़ें हैं जिनको खाने के बाद व्यक्ति को होश नहीं रहता। वह गुस्से में या नशे में ऐसे कार्य कर बैठता है कि समाज में घृणा का पात्र बन जाता है। हम सब भोजन से शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव का अनुभव कर सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने कुछ प्रयोग किये हैं कि अगर व्यक्ति के शरीर में हार्मोन्स का थोड़ा सा परिवर्तन हो जाए तो उसके स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। व्यक्ति के शरीर में जो तरह तरह की ग्रन्थियां (ग्लैण्ड्स) हैं उनमे से एक है पीयूष ग्रन्थि (पीट्यूटरी)। इस ग्रन्थि की खासियत

यह है कि इसके स्राव के द्रव्य की दो स्थितियाँ होती हैं, एक सौम्य तत्व है और दूसरा आग्नेय तत्व। एक भाग पुरुष प्रधान है और दूसरा स्त्री तत्व है। इसके अनुपात में यदि थोड़ा सा भी फर्क पड़ जाए तो व्यक्ति के स्वभाव में अन्तर आ जाता है। इसी प्रकार एक और ग्रन्थि है, थायराइड् ग्रन्थि, जिसके स्राव की मात्रा में थोड़ा सा भी अन्तर आ जाय तो आपका वज़न बढ़ने या घटने से लेकर स्वभाव तक में बहुत अन्तर आना शुरू हो जाता है। इस प्रकार की अनेक और भी ग्रन्थियां शरीर में हैं जिनके स्राव की मात्रा बहुत कम होते हुए भी उनका प्रभाव शरीर पर बहुत अधिक होता है। कई आदमी देखने में मोटे हैं लेकिन आवाज़ बिलकुल बच्चों या औरतों जैसी। इन असमान्यताओं का कारण ग्रन्थियों में कुछ न कुछ ऐसा परिवर्तन आ जाता है जो उनके स्राव की मात्रा में असंतुलन पैदा कर देता है। सामान्य रूप से इन ग्रन्थियों का कार्य युवा अवस्था में आने पर जो शारीरिक परिवर्तन होते हैं उनमें संतुलन रखना भी होता है जैसे गले की आवाज़ का बदल जाना आदि। इन ग्रन्थियों का हमारे शरीर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भोजन से शरीर में एक ओर खून, रस, रक्त, मज्जा, आदि बनते हैं, तो दूसरी ओर उसी भोजन से कुछ और चीजें भी शरीर को प्राप्त होती हैं जैसे ओज, तेज तथा वर्चस्व आदि। ओज व तेज बहुत बड़ी चीज़ें हैं जो आपके चेहरे पर नूर बनकर चमकती हैं।

जब किसी व्यक्ति का भोजन पूर्ण सात्विक होता है तो उसके व्यवहार में एक प्रकार की सौम्यता दिखायी देती है। सात्विक भोजन होने के बाद चेहरे पर कठोरता या शुष्कता दिखलायी नहीं देती। बहुत सारे जीव जन्तु व्यक्ति को सूंघकर उसकी प्रवृत्ति पहचान लेते हैं इसीलिए उसके निकट या उससे दूर भागते हैं। संसार में अनेक महापुरुष ऐसे हुए हैं जिन्होंने जंगल में बैठकर शाकाहारी भोजन करते हुए तपस्या की है। उन्होंने कभी गुस्सा नहीं किया, कभी खीजे नहीं तथा किसी से वैर और द्वेष भी नहीं रखा। वन में अपनी तपस्या में लीन ऐसे महापुरुषों के पास हिंसक जीव भी प्रेम से आकर बैठ जाया करते थे। ऐसे भी उदाहरण हैं कि जब उनके साथ अधिक दया का भाव प्रकट किया गया तो वे हिंसक

जीव मनुष्यों और तपस्वियों के प्रति वर्षों तक कृतज्ञता और मित्रभाव व्यक्त करते रहे।

केवल भोजन ही नहीं वरन् आपके कपड़ों के रंगों से भी सात्विकता, राजसिकता और तामसिकता प्रकट होती है। काला रंग तामसिकता, श्वेत रंग सात्विकता और लाल रंग राजसिकता का प्रतीक है। रूस में एक फैक्ट्री में काम करने वाले सभी मजदूरों को लाल रंग के कपड़े पहनाये गये। लाल रंग के राजसिक गुण के प्रभाव में मजदूर ज्यादा तेज़ी से काम करेंगे। वे खाली नहीं बैठेंगे तथा आलसी नहीं होंगे। जीव को सुलाने के लिए परमात्मा अंधेरे की काली चादर ओढ़ा देता है। काले के प्रभाव से नींद आनी शुरू हो जाती है। जादूगर आपकी चेतना को सुला देने के लिए काले कपड़े का इस्तेमाल करता है। श्वेत ही एक ऐसा रंग है जो व्यक्ति में सात्विकता लाता है। विशेष रूप से गऊ के दूध वाली सफ़ेदी, जिसे आप क्रीम कलर, कह सकते हैं सात्विक मानी गई है।

सात्विकता जैसे जैसे आपके अन्दर उभरती है, एक तरह का नूर आपके अन्दर से प्रकाशित होने लगता है। उसके प्रभाव से आपकी सहनशीलता बढ़ेगी, उद्वेग खत्म होगा। जैसे जैसे तामसिक प्रवृत्तियां आने लगती हैं वैसे वैसे सात्विकता मिटने लगती है और आदमी आलसी व लापरवाह हो जाता है। ऐसा व्यक्ति हिंसक और वैर पालने वाला होता है। जब तक वह वैरी के पूरे खानदान और उसकी अगली पीढ़ियों को चोट नहीं पहुँचा लेता तब तक उसे चैन नहीं आता। तामसिक भोजन करने वालों के अन्दर क्रूरता बहुत दिखायी देती है। आपका भोजन सात्विक होना चाहिए। इसलिए माँस व नशा आदि छोड़ने के लिए सलाह दी जाती है।

महापुरुषों ने कहा है कि साधना के साथ वैसा ही जीवन बना लेना बहुत ज़रूरी है। हमारे भोजन, रहन सहन और स्वभाव के अनुसार हमारे विचारों में सात्विकता, राजसिकता अथवा तामसिकता उत्पन्न होती है। कर्मशील लोगों के बीच बैठने से आप आलस्य वाली बात नहीं करेंगे। नशे वालों के साथ मिल बैठेंगे तो वे लोग आपको चरस, गांजा, अफीम इन्हीं

चीज़ों की संगति देंगे और वैसी ही आपकी बुद्धि बना देंगे। उदाहरण के रूप में एक कहानी बताता हूँ। एक बेर के पेड़ के नीचे दो आदमी चरस पीकर पड़े हुए थे। दोनों बहुत ज्ञान की बातें कर रहे थे, बड़ी बड़ी कल्पनाएँ कर रहे थे। इतने में ऊँट पर बैठा हुआ एक व्यक्ति सामने से निकला। अब इन दोनों ने उसे आवाज दी "भई ऊँट वाले, तुझे तरस नहीं आता कि दो आदमी यहाँ पड़े हुए हैं। तुझे यह सोचने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई कि हम यहाँ किसलिए पड़े हुए हैं?" ऊँट वाले ने सोचा कि किसी विपदा या विपत्ति में पड़े हुए लोग हैं। वह अपना ऊँट लेकर पास आया और बोला, "कहो क्या बात है?"

उन दोनों ने नीचे लेटे लेटे ही कहा, "वहाँ आसमान में टंगे हुए को हम क्या बतायेंगे? नीचे उतरकर आओ और हमारी बात सुनो।" ऊँट वाले आदमी ने सोचा कि ये दोनों आदमी जो हिल नहीं पा रहे हैं, जिनके शरीरों में कोई हरकत ही नहीं है, शायद किसी बड़ी मुसीबत में हैं। इसलिए वह नीचे उतरकर आया और आवाज देकर बोला, "बताओ क्या बात है?" अब उन दोनो में से एक आदमी लेटे लेटे ही बोला, "देखो वह सामने जो पका हुआ लाल बेर पड़ा है उसे उठाकर मेरे मुँह में डाल दो।" अब उस ऊँट वाले आदमी ने अपने माथे पर हाथ मारा और बोला "बड़ा भारी दुर्भाग्य है तुम्हारा। कितने बड़े आलसी हो तुम।" तब दूसरा नशेड़ी कहने लगा, "बिल्कुल सच कहते हो। यह आदमी इतना आलसी है कि रात भर कुत्ते मेरा मुँह चाटते रहे और मैं इसको कहता रहा कि भैय्या उन्हें आकर हटा दे पर इसने आकर कुत्तों को नहीं हटाया। यह बहुत आलसी है।" अब इसे क्या कहेंगे आप? किसी चीज़ को खा लेने के बाद आदमी इतनी निकृष्टता तक पहुँच जाए तो वह पदार्थ घोर तामसिक गुण वाला होता है। अगर ऐसे व्यक्ति को जो किसी प्रकार के नशे में ग्रस्त है, आप जाकर समझायें तो उसे आपकी कोई बात समझ में नहीं आयेगी। बल्कि उसे लगेगा कि आप उसके दुश्मन हैं, आप उसका बुरा चाहते हैं। जैसी हमारी संगति और भोजन होगा वैसे ही हमारे विचार हो जाएंगे। वैसा ही हमारा व्यक्तित्व ढलने लगेगा।

सात्विक लोग जहाँ अपना कल्याण करते हैं वही जन कल्याण करने के लिए भी सदैव तत्पर रहते हैं। समाज में ऐसे ही लोगों ने कुछ न कुछ निर्माण किये हैं। भगवान इसलिए कहते है कि **सात्विकता से ज्ञान उत्पन्न होता है। सात्विकता से निर्मलता आती है। सात्विकता से सुख की अनुभूतियाँ होती हैं। इसलिए ऐसा भोजन करें, ऐसे विचार सुनें, ऐसी पुस्तकें पढ़े जिससे सात्विकता आये।**

आपके स्वभाव का आपके रहन सहन पर भी प्रभाव पड़ता है। आप अपने घर में सीनरी कैसी लगाते हैं इसका चुनाव आप अपने स्वभाव के अनुसार करते हैं। कुछ व्यक्ति जीवन का एकदम निराशा वाला रूप दिखाने वाले चित्र चुनते हैं, जैसे उजड़ा हुआ मकान, टूटे हुए खण्डहर या सूखा हुआ पेड़ या हड्डियाँ निकला हुआ इन्सान। या वे लोग रेत के टीलों वाली सीनरी लगायेंगे जैसे रेत का कोई टीला है, उस पर हाथ में लाठी लिए कोई बूढ़ा व्यक्ति ऐसे बैठा हुआ है मानो बहुत थक गया है। तो ऐसे चित्रों को लगाकर कई लोग शांति अनुभव करते हैं। उनके घर में संगीत भी बिल्कुल निराशा वाला होगा। चाहे गजलें हों या गीत या कोई कविता, उनमें सिर्फ़ निराशा होगी। ज़िन्दगी में कुछ नहीं रखा, सब कुछ बेकार है, टूट गये हैं, बरबाद हो गये हैं, अब केवल पत्ते बिखर रहे हैं, हवाएँ चल रही हैं और कहीं प्रसन्नता नहीं है। नदी सूख गयी है, वह अब कभी कलकल नाद नहीं कर पाएगी। इस संसार के संबंध बेकार हैं, रिश्ते नाते कुछ नहीं हैं, लेन देन सब स्वार्थपूर्ण है, संसार झूठा है।

दूसरी स्थिति वह है कि व्यक्ति हलचल वाला संगीत सुनता है जिसमें कुछ गति हो, हिलें डुलें, चिल्लायें और शोर मचायें, यहाँ राजसिकता है। जिसके अन्दर राजसिकता है, वे घर में जो चित्र लगायेंगे उमनें ऐसे दृश्य होंगे जिनमें गति हो, जैसे घोड़ों पर बैठे हुए सैनिक जा रहे हैं, घोड़े दौड़ रहे हैं, या दौड़ते हुए बच्चों का चित्र आदि। एक तरह के व्यक्ति वे हैं जिनके घर में खिले हुए फूलों के चित्र हैं, चारों तरफ शांति है, बर्फीले पहाड़ हैं, शीतलता से पूर्ण वातावरण है। ऐसे लोग सौन्दर्य पसंद करते हैं। ऐसे लोगों के घरों में सब काम नियम से होते हैं। सोने

जागने का नियम अनुशासित है व बातचीत भी बड़ी नपी तुली करते हैं। एक वे लोग हैं जो बोलने लगे तो कोई उन्हें हरा नहीं सकता, वे राजसिक मनोवृत्ति वाले लोग हैं। तामसिक स्थिति वाले वे हैं जो दूसरे को बोलने न दें और अपनी सुनाकर ही चुप हों।

जीवन में कहीं राजसिकता और तामसिकता का मेल है, तो कहीं सात्विकता और तामसिकता का मेल है। जीवन में ये तीनों गुण सात्विकता, राजसिकता, तामसकिता हर समय दिखाई पड़ते हैं। प्रभात का समय, ब्रह्म बेला, सात्विक समय है। उस समय बैठकर आप जितना भी ध्यान करें, भक्ति करें, ज्ञान अर्जन करें उतना ही अच्छा है। विद्यार्थियों को रात्रि में अच्छी नींद करने के बाद चार बजे उठकर अध्ययन करना चाहिए। उस समय स्मरण शक्ति बहुत अच्छा काम करती है। किताब पढ़ने का कार्य किसी और समय भी किया जा सकता है लेकिन स्मृति बढ़ाने का कार्य सवेरे उठकर ही करना चाहिए। लेकिन आजकल उलटा माना जाता है। आजकल यह कहा जाता है कि आप रात में भोजन करें और पढ़ने बैठ जाएं पूरी रात पढ़ते रहें और सवेरे के समय सो जाएं। सो आजकल ज़्यादातर विद्यार्थी सवेरे ब्रह्म बेला के समय सोते हैं। उस समय सोने वाले विद्यार्थी निस्तेज हो जाते हैं। अथर्ववेद में ऐसा विवरण है कि सूरज उगने के समय जो लोग सोते रहते हैं उनके अन्दर के तेज और उनके चेहरे के तेज को सूर्य छीन ले जाता है और उनको आलस्य दे जाता है। अगर इसको आप वैज्ञानिक ढंग से देखें तो यह बात सिद्ध हो जायेगी कि सूरज के उगने के बाद की जो निद्रा है उसका प्रभाव व्यक्ति के शरीर पर नुकसानदेह होता है। यह भी हम देखते हैं कि यदि कोई व्यक्ति सारी रात करवटें बदलता रहा हो, नींद न आयी हो तो सवेरे के समय जाकर उसको भी थोड़ी देर के लिए नींद आ जाती है क्योंकि उस समय ब्रह्म बेला का समय है। ब्रह्म बेला भगवान की बेला है, इस समय सात्विकता काम करती है इसलिए अति अशांत मन को भी इस समय कुछ न कुछ शांति मिलती है।

यह बात निश्चित है कि जो सात्विक लोग होते हैं वे जहाँ बैठ जाते हैं वहीं शांति बरसाते हैं। उनका हाथ जो अभय मुद्रा में उठा होता है उसका मतलब यह होता है कि वे सबकी मंगलकामना करते हैं, कल्याण की कामना करते हैं। किसी को भय नहीं देना चाहते। इसका मतलब यह भी है कि वे किसी से भयभीत नहीं हैं। वे किसी से डरे हुए नहीं हैं इसलिए किसी को डराना भी नहीं चाहते और अगर कहीं डर है तो उसे निकाल देना चाहते हैं। संसार में सात्विकता से पूर्ण जो महापुरुष हुए हैं वे किसी भी स्थिति में कभी डरे नहीं,उन्होंने संसार को डराया भी नहीं।

राजसिक व्यक्ति अन्दर से डरा हुआ होता है, इसलिए दूसरे को डराने में लगा हुआ है। जितने भी लोग हाथ में हथियार लिए हुए हैं उन्होंने हाथ में हथियार इसीलिए लिया है कि उन्हें डर है। हाथ में हथियार लेकर वे दूसरे को डराना चाहते हैं कि तू मुझ से दूर रह। यहाँ आकर जब तामसिकता जुड़ जाती है तो व्यक्ति डर का साम्राज्य स्थापित करना चाहता है। डर का साम्राज्य स्थापित करने वाले लोगों के पास एक ही बल होता है, लोगों में भय बनाकर रखना।.जब तक वे अपना भय बनाकर रख सकते हैं तब तक वे अपने आपको सुरक्षित मानते हैं। उनका भय हट जाये तो उनको यह लगता है कि अब हम गये। उन्होंने दुनिया में भय बाँटा है, दुनिया को भयभीत किया है इसलिए उनकी मौत जब भी हुई, भय से हुई। चंगेज़ जब संसार से गया तो भय के मारे रात भर बैठे बैठे सोचा करता था और इसी तरह मरा। मैंने तरह तरह की मानसिकता वाले लोगों को देखा है। लोग मिलने आते हैं तब पता चलता है कि कौन आदमी किस मनःस्थिति में है। एक व्यक्ति आए तो उन्होंने बताया, "मेरे साथ एक समस्या है कि मैं आराम से कुर्सी पर ही बैठकर के सो सकता हूँ। कितनी भी ठंड हो, कुछ भी हो मैं उसी अवस्था में हाथ बांधकर के कुर्सी पर बैठे बैठे सोता हूँ।"

एक व्यक्ति मिला जिसने कहा "मुझमें एक आदत बहुत ही खराब है। वैसे मैं पेटभर खा–पीकर सोता हूँ फिर भी बीच रात में नींद खुलती है और तब मैं फ्रिज में जो भी सामान रखा होता है उसे खाकर के फिर से

सो जाता हूँ।" एक अजीब तरह का व्यक्ति मिला जिसने बताया कि जब वह किशोरावस्था में था तो रात को उसे यूँ लगता था कि उसे किसी के ऊपर गुस्सा आ रहा है, फिर वह जाकर उस व्यक्ति को, चाहे वह सोया पड़ा हो, दो चार घूंसे लगा आता था। विदेश में बहुत बार ऐसा हुआ कि लोग रात्रि में उठकर अनेक प्रकार के काम करके आ जाते हैं, उनके घर के लोग उन्हें रोकने के मतलब से कुंडी लगाकर रखते हैं, ताला भी लगाते हैं पर वे कुंडी, ताला सभी खोलकर चले जाते हैं। सो संसार में तरह तरह की मानसिकता वाले लोग हैं, तरह तरह के विचार मनुष्य के अन्दर हैं लेकिन हमें यह पता नहीं है कि ये विचार बनते कैसे हैं? हमारे स्वभाव बनते कैसे हैं? हम किसी स्वभाव को किस तरह अपने अन्दर पैदा करते हैं? भगवान कृष्ण कहते हैं कि ये जो तीन तरह के स्वभाव गुण मुख्य रूप से हैं, इनमें से किन्हीं दो को एक दूसरे के साथ जोड़कर अलग अलग स्थितियां बनती हैं। कब किस समय कौन सा गुण प्रधान हो जाये और उसी के अनुसार स्वभाव दिखायी देने लगे, नहीं कहा जा सकता।

राजसिक गुण के संबंध में भगवान ने कहा :

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन् देहिनम्।।७।।

'तृष्णा संग समुद्भवम्' अर्थात् रजोगुण तृष्णा और राग से जुड़ा हुआ है। यह राग वाला गुण है और यह तृष्णा के संग से उत्पन्न होता है। शरीर आत्मा के साथ जैसे ही संयोग करता है और राजसिक गुण उसके साथ जुड़ता है, तो वह व्यक्ति को कर्म से जोड़ता है। कर्म से जोड़ने का मतलब है कि ऐसा व्यक्ति अधिक कर्मशील होगा, कर्मयोगी बनेगा। राजसिक व्यक्ति शान्त बैठने वाला नहीं, हाथ हिलने चाहिए, कुछ भी काम करते रहना चाहिए। वह आलसियों की जिंदगी नहीं जी सकता। ऐसे व्यक्ति को ध्यान के लिए भी बैठाया जाये तो उसकी समझ में नहीं आएगा, साधना में बैठाया जाये तो उसकी समझ में नहीं आएगा, क्योंकि साधना में बैठना उसे खाली बैठना लगेगा। ऐसे व्यक्ति को पूजा में लगाएं तो वह कहेगा कि सेवा वाला काम ज़्यादा अच्छा है। भजन में उसका मन

लगने वाला नहीं। ऐसे व्यक्तियों को राग (लगाव) ज़्यादा होता है। ऐसे व्यक्ति वासनाग्रस्त होते हैं। वे संसार में ज़्यादा डूबे होते हैं। उनके मन में चीज़ों के प्रति लगाव ज़्यादा होता है और यदि कोई व्यक्ति उस लगाव को तोड़ने की कोशिश करे तो उसके प्रति ऐसा वैर, ऐसा गुस्सा करेंगे कि उसका बुरा करने के लिए पूरी शक्ति लगा देंगे। राग से तृष्णा बढ़ती है, कामनाएँ बढ़ती हैं। सात्विकता में तृष्णाएँ कम हो जाती हैं, आनन्द बढ़ता है। व्यक्ति अपने आप में संतुष्ट रहेगा। राजसिक व्यक्ति संतुष्ट नहीं होता, उसे और चाहिए। जितना मिल जायेगा, उतना ही कम लगेगा। सात्विक व्यक्ति को जितना मिल गया वह उतने में संतुष्ट है। राजसिकता व्यक्ति में कर्म की प्रधानता बढ़ाती है। व्यक्ति कर्मशील होता है।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धिः मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।८।।

'तम' एक अलग तरह की प्रवृत्ति है। व्यक्ति में तामसिकता आती है तो अज्ञान उत्पन्न होता है। संकीर्णता के अंधेरे में डूबे रहना, उससे बाहर निकलने की कोशिश न करना, अपने एक घेरे में कैद रहना, ये सब बातें व्यक्ति को मोहग्रस्त कर देती हैं। मोहग्रस्त व्यक्ति उससे बाहर नहीं आना चाहता। उसे अपनी वही दुनिया पसंद आयेगी। चाहे वह कीचड़ में पड़ा है या दुर्गन्ध में। वह अपने अज्ञान में डूबे रहना चाहेगा। उसे ज्ञान पसंद नहीं होगा।

'प्रमादः आलस्यः निद्राभिः' सोये रहना और आलस्य करते रहना। मनुष्य के तीन प्रकार के रूप दिखायी देते हैं। एक व्यक्ति वह है जो ज्ञान यज्ञ में लगा हुआ है, आध्यात्मिक, पारमार्थिक, लौकिक, पारलौकिक सब प्रकार का ज्ञान। **'विद्याः विवादाय, धनं मदाय, शक्ति परेषां परपीडनाय'** अगर विद्या विवाद के लिए हो जाये, धन अहंकार के लिए और बल दूसरों को सताने के लिए तो समझ लेना चाहिए कि राजसिकता और तामसिकता दोनों का मेल हो गया है। ऐसी प्रवृत्ति सज्जनों की नहीं, दुर्जनों की मानी जाएगी और दुर्जन हमेशा नरक की तरफ ले जाता है। ऐसे लोग हमेशा पतन की स्थिति में पड़े रहते हैं, उनका कभी उत्थान नहीं होता। वे अपनी आत्मा की आवाज़ को भी नहीं सुन पाते।

जो लोग अपने अन्दर की आवाज़ नहीं सुनते और आत्मा का हनन करते हैं, वे निकृष्ट अंधेरी योनियों में जाकर गिरते हैं, जहाँ प्रकाश नहीं होता। वे सदा दुःखी रहते हैं। इसे त्रिजग योनि कहा जाता है। यह सब बड़े गूढ़ ज्ञान के विषय हैं। कितने प्रकार की योनियाँ, कितने प्रकार के कर्म, किस किस व्यक्ति को कर्म किस किस प्रकार से बांधता है। फिर उसका फल कैसे मिलता है और यह जो करनी भरनी है उसका चक्र कैसे चलता है? यह एक विचित्र शास्त्र है। कर्मफल शास्त्र को कभी आप पढ़ें तो बड़ी हैरानी होगी। इसमें समझना होगा कि पिछला कर्म, मतलब भाग्य, कितना प्रभावकारी होता है और इस जन्म के कर्म पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है तथा दुःखों को दूर करने के लिये किये जाने वाले उपाय कितना काम देते हैं।

संसार में संबंधो की दुनिया कैसी है? बाप बेटे हैं या फिर पति पत्नी लेकिन न जाने दोनों की किस जन्म की दुश्मनी साथ चल रही है कि कभी मेल हुआ ही नहीं। जाने कौन से जन्म की दुश्मनी, कौन से जन्म के बैर इस जन्म में आकर प्रकट हो गये। कोई भी रिश्ता न जाने कौन सा रूप लेकर सामने आ जाये। इसलिए यह कहा जाता है कि दुनिया में ये खून के संबंध सिर्फ जन्मने जन्माने के काम तक ही रहते हैं। भावनाओं का रिश्ता ज़्यादा काम में आता है। खून का रिश्ता आशाओं प्रत्याशाओं में बंधा है। रिश्तेदारों को तो आपसे कुछ चाहिए ही। जब तक आप दे रहे हैं तब तक आप सगे हैं, जब आपने देना बंद कर दिया तो आपका संबंध खत्म हो गया। यह संसार इतना विचित्र है कि इसे समझना असान नहीं है। हमारा शरीर हमारे मस्तिष्क से संचालित होता है। इसमें जो विचार उठते हैं उसी के अनुसार शरीर व्यवहार करता है। लेकिन मस्तिष्क में अच्छे विचार क्यों नहीं आते? कई बार हम अच्छे लोगों के बीच में बैठकर भी क्यों अच्छा नहीं सोच पाते? अच्छी संगति का अच्छा प्रभाव हम पर इसलिए नहीं हो पता क्योंकि अन्दर राजसिकता है।

महापुरुष कहते हैं कि आपके कमाने का ढंग भी सात्विक होना चाहिए, गलत तरीके से धन नहीं कमाना चाहिए। गलत तरीके से कमाया गया धन सुख

नहीं, बैचेनी पैदा करता है। बच्चों में बुरे संस्कार पैदा करता है। कणाद ऋषि पूरे दिन में केवल एक मुट्ठी अनाज खाते थे और साधना करते थे। यह अनाज भी वह एक एक दाना करके किसानों के खेतों से बीनकर इकट्ठा करते थे। वे सोचते थे कि जिन अनाज के दानों पर पक्षियों तथा अन्य जीवों का ही अधिकार है और जिन्हें किसान ने भी नहीं उठाना, उनको मैं मेहनत कर उठाकर अपने लिए लाऊँ। ऐसा करने से न तो किसान की कमाई में हानि होगी और न ही किसी को चोट पहुँचेगी। तब उन्होंने **वैशेषिक दर्शनशास्त्र** लिखा। उसे लिखते समय एक घटना घटी।

एक दिन उस देश का राजा उनसे मिलने के लिए आया और उसने कहा, "मुझे पता लगा है कि हमारे देश में एक बड़ा ऋषि भारी तपस्या कर रहा है, जिसके कारण हमारा देश प्रसिद्ध हाने वाला है। इसलिए मेरी इच्छा हुई कि मैं आपके चरणों में कुछ भेंट लेकर आऊँ।" उसने तब सोना, हीरे जवाहरात लदी तीन गाड़ियाँ उनके सामने खड़ी कर दीं और कहा, "ये आपके लिए हैं इन्हें आप संभालिए।" कणाद ऋषि ने राजा की तरफ देखा, फिर वे बोले "अब मुझे पता चल गया कि आप क्या चाहते हैं। बात समझ में आ गई कि अब मैं आपके राज्य में न रहूँ। अब आप आए हैं तो बाद में और लोग भी आयेंगे और जब लोग आयेंगे तो कोई जय जयकार करेगा तो कोई मज़ाक उड़ायेगा। दोनों ही तरह के लोग आया करेंगे। मेरी तो साधना समाप्त हो जायेगी। राजन! आपने आकर मेरा भला नहीं किया वरन् बुरा किया है। आप संसार की दृष्टि से भले ही मेरा भला करने के लिए आये हैं, लेकिन मेरी दृष्टि में इससे मुझे सुख नहीं दुःख हुआ है।" कुछ समय बाद कणाद ऋषि उस जंगल को छोड़कर और घने जंगल में चले गये।

साधना में बैठकर अपने आपको ऊँचा उठाने के लिए ऐसे तप करने का विधान है कि **तप करते करते व्यक्ति के अन्दर के सारे पाप व कलुष जल जायें, अन्तःकरण पवित्र हो जाये, सात्विकता उभरे और फिर वहाँ से गुरु अपना बीज बोना शुरू करे।** ज्ञान का बीज, भक्ति का बीज, तपस्या का बीज जो पूरे अंधेरे को, तामसिकता को मिटाकर व्यक्ति को

जागृत करता है। तब व्यक्ति के अन्दर शालीनता तथा शांति आ जायेगी। जहाँ भी वह बैठ जाएगा वहीं अपनी शांति से दूसरों को भी शांत करेगा। यह एक बहुत बड़ा विज्ञान है। अपने देश में ऐसा माना गया है कि व्यक्ति के स्वभाव को पूरी तरह बदला जा सकता है। अब बहुत से ऐसे प्रयोग हो रहे हैं जिनके द्वारा आपके अन्दर जो भी कुछ है उसे मिटाया जा सकता है। आदमी को पागल करने के तरह तरह के प्रयोग समाज में हो रहे हैं लेकिन व्यक्ति को पूरी तरह होश में लाने का जो प्रयोग है वह केवल ऋषियों ने किया है। उस पर हमें अवश्य विचार करना चाहिए। होश में लाने वाला प्रयोग यह है कि **जब व्यक्ति अन्दर से और बाहर से प्रबुद्ध हो जाता है तब वह न भय देना चाहता है और न भय में रहना चाहता है। न वह अशिष्ट होगा और न अशिष्टता को पंसद करेगा।** छोटी झोपड़ी में रह लेगा लेकिन पाप की कमाई घर में नहीं लायेगा। कम खा लेगा लेकिन किसी को सतायेगा नहीं। अपने भड़कीले वस्त्रों के लिए किसी दूसरे के तन से कपड़ों को छीनकर नहीं लायेगा। वह अपने मकान को सजाने के लिए किसी के बच्चों का खून नहीं बहायेगा।

इसका निषेध नहीं है कि आदमी स्मृद्धि कमाये, धन कमाये। **धन कमाना अपराध नहीं है, धन कमाना तो गुण है, कमाना चाहिए, समाज में स्मृद्धि होनी चाहिए। समाज की निर्धनता मिटनी चाहिए।** लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग केवल इसी कार्य में लगा दें; अपनी अधिकांश शक्ति इस कार्य में लगाकर हम जीवन का आनन्द ही न ले पायें। यह तामसिक प्रवृत्ति है। तामसिकता व्यक्ति को ऐसा मोहग्रस्त कर देती है कि वह उससे बाहर ही नहीं निकलना चाहता।

कई व्यक्ति ऐसे होते हैं कि अगर उनसे कहा ज़ाए कि सत्संग में जाना अच्छी बात है, सात्विक लोगों के पास बैठना अच्छी बात है तो वे इस बात को पसंद नहीं करते। वे कहते हैं कि यह सब समय खराब करने वाली बातें हैं। अगर उनसे कहा ज़ाये कि फलाने कैसीनो में आज जुआ खेलने का प्रोग्राम है तो वे दस काम छोड़कर भी उस प्रोग्राम में चलने के लिए तैयार हो जाते हैं। कई लोग ऐसे होते हैं जो खुद भी और दूसरे को

भी लड़ाने के लिए तैयार रहते हैं। मुकदमें बाजी में ही उनका समय बीतता है। चालीस बैयालीस मुकदमे चल रहे हैं और कहेंगे बड़ा तर्जुबा है उन्हें, कोई समस्या हो तो बताओ, वह बताएंगे कि केस कैसे दायर किये जाते हैं। कहीं झगड़ा करना हो तो वे पहुँचेंगे। झगड़ा करना भी जानते हैं, झगड़ा कराना और करवाना भी जानते हैं।

कई लोगों की आदत होती है कि तामसिकता में ही जीते हैं, स्वयं रोते पीटते और चिल्लाते रहते हैं और वैसा ही दूसरे को भी देखना पसन्द करते हैं। दूसरा व्यक्ति उनके सामने रोये तो उन्हें अच्छा लगता है। मैंने सुना है कि पंजाब में कहीं ऐसी परम्परा थी कि घर में रोने के लिए भी किराये पर लोग मिलते थे। रुदाली स्त्रियाँ किसी के यहाँ जाकर उनके दुःख के मामलों में पैसे लेकर रोती थीं। इतने बढ़िया ढंग से रोती थीं, ऐसी ऐसी अजीब सी बातें कर करके रोती थीं कि जिसको रोना न भी आये वह भी उनका रोना सुनकर रो पड़े। सो यह संसार तामसिकता से भरा हुआ है। केवल निराशा, रोना या दूसरों को भी वैसी ही हालत में देखना उन्हें अच्छा लगता है।

मैंने सुना है कि कोई आदमी अपना कारोबार बढ़ाने की लालसा से अपने छोटे से कस्बे को छोड़कर एक दूसरे शहर में आया। वहाँ आकर उसने लोगों से पूछा कि इस शहर में हमारा बसने का इरादा है इसलिए हम यह जानना चाहते हैं कि यहाँ के लोग कैसे हैं? यहाँ रहना चाहिए या नहीं? वहाँ उसे जो पहला आदमी मिला वह देखने में बूढ़ा, फक्कड़ और फ़कीर लगता था पर था बड़ा समझदार। उसने पूछा, "पहले तुम यह बताओ कि जिस जगह से तुम आये हो, वहाँ लोग कैसे हैं?" आगन्तुक बोला, "देखिए, वहाँ के लोग तो बड़े अच्छे हैं। बड़ी शांति, बड़ी शालीनता है, वहाँ बड़ा प्यार है। लेकिन बच्चे कारोबार बढ़ाना चाहते हैं इसलिए वहाँ से छोड़कर यहाँ आने की इच्छा हुई हैं।" तब उस बूढ़े आदमी ने उसकी तरफ देखकर कहा, "तुम बहुत सही जगह आ गये हो। इस शहर में इतने अच्छे लोग तुम्हें मिलेंगे कि जहाँ से तुम आये हो वहाँ भी ऐसे लोग नहीं होंगे। इतने शांत, इतने शालीन,

इतने उदार तथा इतने सहयोगी कि तुमने कभी कल्पना भी नहीं की होगी। यहाँ आकर बस जाओ, बहुत आनन्द आयेगा।"

इसके थोड़ी ही देर बाद एक और आदमी आया। उसने उसी बूढ़े आदमी से कहा, "भई ज़मीन खरीदने का प्रोग्राम है हमारा। जहाँ हम लोग रहते हैं वहाँ कलह क्लेश बहुत है। अब हमारी इच्छा है कि इस शहर में जहां नई नई कालोनियाँ बनती जा रही हैं, आकर हम बस जायें तो बहुत अच्छा रहेगा। ज़रा बताना कि यहां के लोग किस तरह के हैं?" यह बात सुनते ही उस बुजुर्ग ने पूछा "जहाँ तुम रह रहे हो पहले वहाँ की स्थिति बताओ।" तब वह आदमी बोला "इतने जाहिल, लड़ाके, मारपीट वाले लोग हमने कहीं नहीं देखे जितने वहाँ हैं। इतना लड़ाई झगड़ा चल रहा है वहां कि हम वहाँ से ऊब गये हैं इसलिए हम चलकर यहाँ आये हैं। यहाँ के बारे में बताओ कि यहाँ लोग कैसे हैं?" उस बूढ़े आदमी ने तब कहा,"यहाँ तो उससे भी ज़्यादा लड़ाके लोग हैं। यहाँ तो अगर गला पकड़ लें तो गला काटकर ही छोड़ते हैं। गाली देने पर आ जायें तो किसी की इज्ज़त उतारे बिना छोड़ते नहीं। ऐसी जगह बसने में कुछ लाभ होने वाला नहीं हैं, उलटे हानि बहुत है।" वह आदमी यह बात सुनने के बाद वहाँ से चला गया। गाँव के कुछ लोग जो वहाँ बैठे हुए थे और सारी वार्ता सुन रहे थे, उन्होंने उस बुजुर्ग से पूछा, "आपने दो तरह के लोगों को दो तरह की बातें बताईं। गाँव तो एक ही है, एक ही तरह के लोग हैं फिर भी एक को कहा कि यहाँ के लोग बहुत प्यार वाले हैं और दूसरे को बताया कि यहाँ के लोग बहुत झगड़ालू हैं। इसका क्या कारण है? क्या आप एक के रिश्तेदार हैं और दूसरे से आपकी दुश्मनी है?" उस बुजुर्ग आदमी ने कहा कि, "असल में दुनिया न कहीं अच्छी है और न बुरी। अच्छा बुरा आदमी का अन्तःकरण होता है। अगर इन्सान का अन्तःकरण अच्छा है तो वह जहाँ भी जायेगा वहीं उसको चारों तरफ से प्रेम ही प्रेम मिलना शुरू हो जायेगा और अगर आदमी का अन्तःकरण खराब है तो वह जहाँ भी जायेगा कलह क्लेश के सिवा और क्या होगा?"

एक व्यक्ति ने कहा कि मैं जहाँ भी जाता हूँ मेरी लड़ाई हो जाती है। पता नहीं मुझे हमेशा गलत लोग क्यों मिलते हैं। मेरे साथ ही ऐसी क्या बात है कि जहाँ भी जाऊं मुसीबत हो जाती है। यह संसार कब सुधारेगा, आप इसका जवाब दो। मैंने कहा, "जब तुम सुधर जाओगे तब सारा संसार सुधर जायेगा। जिस दिन से तुम अपने आप को बदल लोगे सारा संसार बदलता हुआ नजर आयेगा।" लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इन्सान अपने को बदलना ही नहीं चाहता, क्योंकि उसके अन्दर तामसिकता का प्रभाव है।

भगवान फिर ये समझाते हैं :

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।।६।।

अर्थात् सत्व सुख देगा, राजसिकता कर्म में लगायेगी, तामसिकता जब आयेगी तब अक्ल को अज्ञान से ढक देगी। आपको आलसी और निकम्मा बनाकर छोड़ देगी।

हमारा शरीर पंचमहाभूतों से बनता है। इन पंचमहाभूतों से ही हमें सात्विकता, राजसिकता, और तामसिकता प्राप्त होती है। जन्म के साथ ही प्राप्त इन गुणों के कारण हम संसार में तरह तरह के व्यवहार करते हैं। मनुष्य की चेतना कहीं बहुत ही ऊर्ध्वगामी है, कहीं मध्यम प्रकार की और कहीं उसकी अवस्था निकृष्ट है। अर्थात् संसार में कुछ लोग ऊँचाई की ओर बढ़ते दिखाई देते हैं, कुछ लोग मध्यम स्थिति में रहकर जीते हैं और कुछ लोग निकृष्ट जीवन जीते रहते हैं। संयोग से उनसे कोई अच्छे काम हो जाएं तो हो जाएं पर अच्छा करने की उन्हें कभी लालसा नहीं होती। मननशील तथा विचारशील व्यक्ति कर्मरत रहते हैं, वे अपना भला करने के साथ साथ दूसरे के भले की भी सोचते हैं। परन्तु वे सामान्य मनुष्य के रूप में ही पहचाने जाते हैं, क्योंकि **'मत्वाकर्माणि सीव्यति'** जो मननशील व्यक्ति कर्मरत है वह वास्तव में मनुष्य है। लेकिन जो व्यक्ति अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये मात्र अपना ही भला करता है, भले ही उसे किसी को दुःख भी देना पड़े, ऐसा करना उसे ठीक लगता है। दूसरों

को ठगने से उसे खुशी होती है, धोखा देना उसे अच्छा लगता है, बेईमानी और छल कपट करने के बाद उसे कोई अफ़सोस नहीं होता। जिसको अपनी आत्मा की कचोट का अहसास नहीं होता, वह निकृष्ट व्यक्ति है।

जो भोगवादी हैं वे भी निकृष्ट हैं, उन्हें अपनी सुख सुविधा और ऐश्वर्य का ही ख्याल रहता है। ऐसा मनुष्य अपनी इस मानसिकता को छोड़ना नहीं चाहता। ऐसा व्यक्ति परलोक और कर्म के फल को भी कुछ नहीं समझता। वह बहुत ज़िद्दी, अहंकारी और मूढ़ होता है। बोलेगा तो बोलता जायेगा, दूसरों को दबाता जायेगा, इसी में खुशी मनायेगा।

कुछ लोगों का काम केवल दूसरों को दुख देना, कष्ट पहुंचाना होता है। उनका यही स्वभाव है। मनुष्य के शरीर में वे असुर हैं। "असु" कहते हैं प्राणों को और 'र' का अर्थ है रमण करना अर्थात् अपने प्राण पोषण में ही रमण करते रहना। यह अति निकृष्ट अवस्था है। ऐसों को राक्षस कहा जाता है। उन्हें दूसरों को तड़पाने में ही आनन्द आता है। वे घाव के ऊपर नमक छिड़क कर आनन्दित होते हैं। इस अवस्था को पशुता माना गया है। चित्रकार राक्षसों का चेहरा तो मनुष्य जैसा बनाते हैं परंतु माथे पर पशुओं जैसे सींग लगा देते हैं। सींग लगाने का मतलब है कि इस व्यक्ति के पास मस्तिष्क नाम की चीज़ नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण ने निम्न श्लोक में कहा है कि जब किसी के अन्दर सात्विकता आती है तो उसके अन्दर देवत्व जागता है, दिव्य गुण जागते हैं। परिणामस्वरूप एक तरह का नूर उसके अन्दर से प्रकट होता है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।११।।

आजकल इस बात पर बहुत खोज हो रही है कि हर व्यक्ति का अपना एक प्रकाश का घेरा होता है, जो उसके शरीर के अन्दर से निकलता है। किसी किसी के शरीर के अन्दर से श्वेत या क्रीम रंग वाली धवल किरणें निकलती हैं। ऐसे व्यक्ति सात्विक हैं। बहुत सारे यंत्र भी बन गये हैं जिनसे मनुष्य के मन के भाव पता लग जाते हैं। उदाहरणार्थ ऐसे कलम (पेन) मिलते हैं जिनको आप पकड़कर बैठिये तो आपके मन के

भाव के अनुसार उनका रंग हो जाता है; अगर आप बहुत गुस्से में हैं तो कलम का रंग बैंगनी रंग में बदल जायेगा; यदि कलम का रंग हरा हो जाए तो इसका मतलब है कि आपके अन्दर उत्साह है, प्रसन्नता है, और अगर आप में निराशा है तो कलम का रंग अपने आप काला हो जाएगा। ऐसे कैमरे बन गये हैं जो आपके शरीर के अन्दर का चित्र ले सकते हैं। ये कैमरे महान पुरुषों के शरीर के अन्दर से निकलने वाले प्रकाश का चित्र ले लेते है। अगर अलग अलग समय पर आपके चित्र उन कैमरों से लें तो यह देखकर आपको हैरानी होगी कि जब आप गुस्से में थे तब आपके चेहरे के चारों तरफ अलग रंग का प्रकाश दिखाई दे रहा था, जब आप शान्ति में थे तो प्रकाश श्वेत था और जब आप निराशा में थे तो प्रकाश का रंग अलग था। आपके शरीर से निकलता हुआ प्रकाश जो दूसरों को प्रभावित करता है।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि जब व्यक्ति भयभीत होता है तब ग्रन्थियों में से भय के कारण एक स्राव शरीर में फैलता है जिसकी गंध पशु पहचानते हैं। अगर व्यक्ति कुत्ते से डर कर भाग रहा हो तो कुत्ता और ज़्यादा पीछा करता है क्योंकि शरीर के अन्दर की गंध उसे खींचती है और जैसे ही वह व्यक्ति रुक जाता है ग्रन्थि का स्राव बन्द हो जाता है तो कुत्ता भी एकदम पीछे हट जाता है। चोट लगने पर भी एक और तरह की ग्रन्थि का स्राव आपके शरीर में होता है जो बहुत देर तक आपको अहसास नहीं होने देता कि आपको चोट लगी है और आप चोट की हालत में ही बड़े बड़े काम कर जाते है। बड़ी विचित्र बात तो यह है कि हम जितना भी अपने शरीर की व्यवस्था और कार्य करने की विधि की जानकारी हासिल करते हैं; उतना ही हमारा आश्चर्य बढ़ता जाता है कि हमारे इस यंत्र में कितना कुछ भरा हुआ है जिसे विज्ञान बताता है और कितना कुछ है जो अभी भी अनजाना है। मनुष्य के शरीर में परमात्मा ने इतनी विशेषताएं भर दी हैं जिनकी पूरी जानकारी अभी तक बड़े बड़े चिंतक और शोधकर्ताओं को नहीं हो पाई है। आज ट्राँस्प्लान्ट और रिप्लेसमेन्ट सर्जरी द्वारा मनुष्य के शरीर के अनेक अंगों को बदला

जा सकता है, पशुओं के अंग लगाये जा सकते हैं या लकड़ी और लोहे के नकली अंग फिट किये जा सकते हैं। हार्ट के आपरेशन (सर्जरी) के दौरान टाँग में से नस निकाल कर लगाते हैं। बाद की खोज के अनुसार अब फेफड़ों के पास से ही नस ले ली जाती है। टाँग के पास की नस की उम्र १० से १२ साल होती है। फेफड़े के पास से लेकर जो नस लगाएं तो वह १५ से २० वर्षों तक काम कर सकती है।

वैज्ञानिक कहता है कि हम ने खोज की है। पर खोजा क्या है? क्या स्वयं कुछ नया बना लिया है? परमात्मा के खज़ाने में से किसी चीज़ को उठाकर टॉर्च से देख लिया, उठा कर प्रयोग कर लिया और जानकारी ले ली, तो इसको आप खोज कह रहे हैं। जितनी भी खोजें हुई हैं उसमे मनुष्य ने सिर्फ यही किया है जैसे अपने पिता के खज़ाने में से किसी बच्चे ने ताला खोलकर कोई चीज़ निकालकर हाथ में ले ली और कहने लगा कि उस चीज का उसने आविष्कार किया है। इसी प्रकार विज्ञान के अन्वेषण हैं। जो अभी तक पता नहीं लगा पाये थे उसका पता लग जाने पर वह अन्वेषण हो गया। परन्तु वह चीज़, वह जानकारी, पहले से मौजूद तो थी ही। हम अपने शरीर के अन्दर इतना कुछ छिपाये हुए हैं कि जिसके बारे में अभी भी पूरी तौर पर जान नहीं पाये हैं।

मनुष्य के चेहरे पर उठती हुई भाव भंगिमाओं पर तरह तरह के प्रयोग हो रहे हैं। अभी तक ४२ तरह की भाव भंगिमाओं के बारे में जानकारी मिली है कि व्यक्ति किस स्थिति में चेहरे पर किस प्रकार की भाव मुद्रायें बनाता है। घृणा आये तो क्या रूप बनाता है, क्रोध में आये तो क्या रूप बनाता है, ईर्ष्या में किस तरह दिखता है और निन्दा करते हुए कैसा दिखता है, यह सब भिन्न भिन्न होती हैं। जब व्यंग्य में हँसता है तो कैसे हँसता है, खुलकर हँसता है तो उसकी हँसी कैसी होती है और निश्छल हँसी कैसे हँसता है, यह भी भिन्न भिन्न होता हैं। अहंकार में किस तरह से देखता है और जब वह अपने बच्चे को वात्सल्य से देखता है तो किस प्रकार से देखता है, प्रेम में चेहरे पर क्या भाव आते हैं और जब देश भक्ति के भाव जागते हैं तब चेहरे का क्या रूप होता है, वह जिस समय अपने

गुरु को व माता पिता को प्रेम और सम्मान की दृष्टि से देखता है तो उसके चेहरे पर क्या हाव भाव आते हैं यह सब अध्ययन की बातें हैं। जब बहुत उदास हो जाता है तो चेहरा कैसा दिखता है; निष्काम भाव में हो तो कैसा होता है; एकदम शान्त होकर बैठेगा तो कैसा दिखेगा और जब किसी के वियोग में होगा तो उस समय कैसा महसूस करता होगा; मन में बदला लेने का विचार आए तो उसके चेहरे पर जो हाव भाव आते हैं वह कैसे होते हैं इन सब तरह तरह की भाव–भंगिमाओं को यंत्रों की सहायता से समझा बूझा गया है, लेकिन विज्ञान यह कहता है कि संवेदनाओं को अभी हम जितना जान पाये हैं वे बहुत कम हैं।

जब किसी के अन्दर सात्विकता आती है तो चूंकि सात्विकता का अपना एक अलग वातावरण होता है, इसलिए ऐसे व्यक्ति का उठना, बैठना, सोना, जागना, काम करना सब में एक अलग तरह की विशेषता होती है। व्यक्ति शान्त रहेगा शान्ति बाँटेगा, न अशान्त होगा न अशान्ति से सम्बन्ध जोड़ेगा। हज़ार काम छोड़ने को तैयार हो जायेगा, हजार तरह के नुकसान उठाने को तैयार हो जायेगा लेकिन शान्ति से ही जियेगा और दूसरों को भी जीने देगा। सीधी सी पहचान है कि जो आदमी शान्त और सौम्य है उसके अन्दर सात्विकता काम कर रही है।

भगवान यह भी कहते हैं कि सात्विकता आने से सारे शरीर में प्रकाश आ जायेगा, ज्ञान की अभिवृद्धि होगी, ज्ञान में रुचि होगी, जानने में रुचि होगी। एक उम्र तक व्यक्ति के अन्दर कुछ करने की, जानने की, सीखने की इच्छा होती है। उसके बाद उसे आलस्य घेर लेता है। पुस्तक बंद कर देगा, कहेगा सिर में दर्द है। उसमें तामसिकता और राजसिकता अपना काम करने लगी। सात्विक व्यक्ति पढ़ना चाहेगा, जानना चाहेगा। बर्नार्ड शा को जब भी मौका मिलता था तो वह लाइब्रेरी में चला जाता था। उसको वहाँ आनन्द आता था। वह कहता था कि लाइब्रेरी में उसे युग युगान्तरों के महापुरुषों के समय के मस्तिष्क व विचारों को जानने का मौका मिलता है। लाइब्रेरी में एक ओर तो वह अनेक युगों तक पीछे जाता है और दूसरी ओर आने वाले युगों की भी जानकारी लेता है।

पागलों की दुनिया से बाहर वह मस्तानों की दुनिया में पहुँच जाता है जहाँ आनन्द है, उल्लास है। जहाँ अपना विकास करने का मौका मिलता है। जो लोग पढ़ने के शौकीन हैं वह अलग ही तरह की दुनिया में जीते हैं। राजसिक प्रवृत्ति वाले लोग धन जोड़ने की ही सोचते रहते हैं। वे जानते हैं कि ज़िन्दगी का भरोसा नहीं है और यह भी पता नहीं है कि उनका धन उनके लिये मुसीबत बनेगा या सुख, लेकिन फिर भी वह अपना सारा ध्यान धन कमाने पर ही केन्द्रित करके जीते रहते हैं। **संस्थाओं में भी जब तक धन नहीं होता लोग आगे नही आते। वही लोग आयेंगे जो सेवा करने वाले हैं पर जब धन ज्यादा और पद ऊँचा हो जाता है तो वे लोग आयेंगे जो झगड़ा करेंगे, जो गद्दी छीनने की कोशिश करेंगे और काम बिलकुल नहीं करेंगे। वे चाहेंगे कि काम दूसरे करें और नाम उनका हो।** राजसिक लोग आगे आकर बैठ जायेंगे। तामसिक लोग उनसे भी आगे आकर बैठ जायेंगे। जिस जगह से सात्विक धारायें निकलती थीं वहाँ तामसिकता वाली स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। परन्तु ज्ञानी व्यक्ति, सात्विक व्यक्ति केवल ज्ञान की अभिवृद्धि में रुचि लेता है। भगवान आगे समझाते हैं :

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।१२।।

राजसिक गुणों के प्रभाव से व्यक्ति में लोभ पैदा होता है। जमा करने की लालसा बढ़ जाती है। खायेगा पीयेगा नहीं, समय पर सोयेगा भी नहीं। कमाने के लिए रात दिन दौड़ रहा है, लोभ बढ़ता जाता है, दुनिया में उलझता जाता है। **अशमः,** शान्ति नहीं चाहता; वह कहता है कि शान्ति तो मरघट में होती है। ज़िन्दगी में शान्ति की क्या ज़रूरत है? जहाँ ज़िन्दगी है वहाँ शान्ति नहीं हो सकती। काम करो, दौड़ो, भागो, धन इकट्ठा करो। वह दौड़ता रहेगा, लालच में पड़ा रहेगा, इकट्ठा करता रहेगा। नींद नहीं आयेगी, सपने भी आयेंगे तो नोट गिन रहा होगा।

आप ऐसे बहुत सारे लोगों की कथायें सुनते हैं जो व्यापार में लगे हुए हैं। सारा दिन व्यापार करते हैं, पैसा कमाते हैं। रात्रि में सोते सोते

सपना देख रहे हैं कि दुकान में बैठा हुआ हूँ, ग्राहक आया है और कह रहा है कि आधा थान फाड़ कर दे दो। तब वह व्यक्ति सोते सोते नाप रहा है, अपने हाथ से नाप रहा है अपनी ही चादर को, और फिर चादर फाड़ कर फेंक देता है, रात्रि में सोते सोते। अब पत्नी चिल्ला कर कह रही है, "क्या कर रहे हो?" और वह कहता है, "बोलो मत बीच में। ग्राहक निकल जायेगा।" लालच यानि राजसिक गुण इतना बढ़ गया है कि सपने में भी सता रहा है। सपने में आए ग्राहक के लिए थान नापते नापते अपनी चादर नाप कर फाड़ देता है। कभी कभी लालच मौत का कारण तक बन जाता है।

पुराने समय की बात है। एक स्वर्णकार ने अस्सी रु. तोले के हिसाब से सोना खरीदा था और ऊँचे दामों पर बेचना चाहता था। चिन्ता में वह बीमार पड़ गया। बुखार १०४ डिग्री पहुँच गया। डाक्टर ने थर्मामीटर लगाकर जैसे ही १०४ डिग्री है, कहा तो उसने समझा ग्राहक आ गया और बता रहा है कि १०४ का भाव चल रहा है। घर के लोग उसे भगवान का नाम लेने को कह रहे थे लेकिन वह बोला, "ग्राहक हाथ से निकलना नहीं चाहिये, १०४ में दे दो।" राजसिक व्यक्ति लगातार काम में उलझा हुआ, संसार में उलझा हुआ, जियेगा। इतना बना लिया, अभी इतना और बनाना है इसी में लगा रहेगा। व्यक्ति को कुछ नहीं चाहिये। वह एक यज्ञ करे, सर्वमेध यज्ञ। अर्थात् जो कुछ है उसे सबमें बांटने वाला यज्ञ। साधना करने का समय है, सब चीज़ें त्याग कर त्याग का आनन्द ले और उस समय तो यह भी भूलना पड़ता है कि क्या छोड़ा, कितना त्यागा? एक ही बात ध्यान में रहती है कि आवरण से मुक्त हो गया हूँ। उस समय वैराग्य भाव रहता है। सात्विकता रहती है, शालीनता रहती है, शिष्टता रहती है। **त्यागने का मतलब फेंकना नहीं है, वरन् वस्तुओं को सही ढंग से दूसरों को देना है।** व्यक्ति जब ज्ञान की ऊँचाई पर पहुँचता है तो वैराग्य जन्म लेता है **"ज्ञानस्य प्रकाष्टाः वैराग्यम्"** ज्ञान चरम पर पहुँचा तो वैराग्य का जन्म हो गया।

आगे भगवान ने तामसिक स्थिति के बारे में कहाः

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।।१३।।

तामसिक स्थिति में अंधेरा है, आसक्ति है। आदमी प्रमादी, आलसी, लापरवाह और मोहग्रस्त होता है। जिसमे मोह हुआ उससे चिपक गया। झगड़े में पड़ गया तो झगड़ा इतना बढ़ा लेगा कि सपने भी दूसरे को मिटाने के देखेगा। निकृष्टता में जिएगा। निकृष्ट भोजन करना, निकृष्ट विचार रखना राक्षस, असुर और पिशाच जैसी मनःस्थिति में पहुँच जाना, तामसिकता के लक्षण हैं। ऐसे लोगों को नशे वाले पदार्थ, लहसुन, प्याज़, अम्ल, तम्बाकू आदि पसन्द आते हैं। "**बुद्धिं यत् द्रव्यं लुम्पति तद्मदकारी उच्यते।**" दर्शनशास्त्र के अनुसार जिस द्रव्य से बुद्धि निस्तेज होती है, जो वस्तु अक्ल को घुमा दे वह नशे वाली चीज़ है। होश वाला आदमी अपनी संतान को नशे से दूर रखने के उपाय करेगा। लेकिन तामसिक आदमी यह भी नहीं सोचता। वह तो अपने बच्चे को बुलाकर बैठायेगा और दोनों मिलकर पीयेंगे। मछली, मांस खाने और नशा करने से क्रूरता जागती है। ऐसे व्यक्ति का गुस्सा कुछ न कुछ बुरा कर के ही जाता है। इनमें आवेश भी बहुत ज़्यादा होता है।

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन केवल सात्विक भोजन है, शाकाहारी भोजन है। भगवान ने हमारा शरीर शाकाहारी भोजन के लिए बनाया है। जो जीव मांसाहारी हैं भगवान ने उनकी पहचान अलग बनाई है। उनके दाँत नुकीले होते हैं। वे घूँट भर कर पानी नहीं पी सकते, चाट कर पीयेंगे, जैसे कुत्ते, बिल्ली। शाकाहारी घोड़ा, गाय, बकरी घूँट भर कर पानी पीते हैं। पानी पीने के लिए वे जीभ का इस्तेमाल नहीं करते। मनुष्य भी घूँट भरकर पानी पीता है, क्योंकि उसको शाकाहारी बनाया गया है। परमात्मा ने हमें शाकाहारी बनाया है तो हमारा भोजन शाकाहारी ही होना चाहिए। शाकाहारी भोजन से शरीर, बुद्धि और मानसिकता सात्विक होती है। दिव्यता भी प्राप्त होती है और शक्ति भी बढ़ती है। मांसाहारी में अधिक शक्ति होने की बात भ्रामक है। सबसे ज़्यादा ताकत घोड़े की मानी जाती

है; घोड़ा चना और घास खाता है। ताकत नापने का पैमाना घोड़े की शक्ति है अर्थात् अश्व शक्ति (हॉर्स पॉवर)। शाकाहारी बैल में बोझा खींचने की अबूझ शक्ति है। गैंडा और हाथी भी शाकाहारी हैं। अगर हम अपने अन्दर प्रकाश को अनुभव करना चाहते हैं, तामसिकता से ऊपर उठना चाहते हैं, तो हमारा आहार सात्विक होना चाहिए।

सात्विक लोगों का संग करें, उनसे वार्ता करें, अच्छे ग्रन्थ पढ़ें तो आपमें शान्ति आएगी और ज्ञान का विकास होगा। आप ऐसे वस्त्र पहनें जिनको पहनने से आप में सात्विकता उभरे और शालीनता दिखाई दे। आपकी वाणी, आपके शब्द, आपका बोलना सब कुछ वैसा ही होना चाहिए। संगीत के प्रति रुचि से भी आपकी मनःस्थिति का पता चलता है।

आयुर्वेद में ऐसा माना जाता है कि जब आप ऐसे सपने देखते हैं जिनमें पहले आप हवा में उड़ने का अनुभव करते हैं, बाद में नीचे गिर जाते हैं, तो यह आपके अन्दर वात का प्रकोप दर्शाते हैं। यदि व्यक्ति किसी घूमती हुई चीज़ या किसी मशीन के ऊपर लिपट रही रस्सी जैसी चीज़ का सपना देखता है तो इसका मतलब कफ का प्रकोप है। आग लगने के सपने ज़्यादा दिखाई देते हों तो पित्त की प्रकृति है। आयुर्वेद ने पहचाना कि व्यक्ति की मानसिक दशा से उसकी शारीरिक दशा को जाना जा सकता है। उसी तरह जब आपको लड़ाई, झगड़े मेहनत करने और धन कमाने के सपने ज्यादा आते हों तो समझना चाहिए कि आपके मन की दशा राजसिक चल रही है। यदि सपने में आप देखते हैं कि आप किसी गन्दी जगह पर हैं, चारों ओर लाशें पड़ी हुई हैं या दुर्गन्ध भरी जगह से गुज़र रहे हैं तो मनःस्थिति तामसिक होती है। यदि किसी व्यक्ति को केवल ऐसा सपना आये कि वह ज्ञान, ध्यान में लगा हुआ है, भगवान के चिंतन में लगा हुआ है, कहीं दान पुण्य करके आ रहा है, या क़िसी का दुःख बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है, तो पता चलता है कि वह सात्विकता की मनःस्थिति से गुज़र रहा है।

भगवान कहते हैं :

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।।१४।।

जो मनुष्य सात्विक मनःस्थिति में शरीर छोड़ता है वह स्वर्ग लोक जाकर परम आनन्द की प्राप्ति करता है और यदि कोई व्यक्ति राजसिक अवस्था में शरीर को छोड़ता है तो उसे सुखदायी लोग मिल जाते हैं लेकिन संसार में लौटना पड़ता है। तामसिक स्थिति में शरीर छूटने पर परलोक में भी दुःख भोगने पड़ते हैं। मृत्यु के बारे में भी दो प्रकार की स्थितियां मानी जाती हैं। एक उत्तरायण की और दूसरी दक्षिणायन की। उत्तरायण में शरीर छूटना अच्छा माना जाता है, स्वर्ग लोक की प्राप्ति का आधार माना जाता है। और दक्षिणायन में शरीर छूटना अच्छा नहीं माना गया है। इसमें अच्छी गति नहीं होती। दक्षिणायन वाले दिन वह होते हैं जब दिन छोटे और रातें लम्बी होती हैं। उत्तरायण में प्रकाश अधिक समय तक होता है। दिन बड़े व रातें छोटी होती हैं।

मकर सक्रांति हो जाने के साथ साथ उत्तरायण प्रारम्भ हो जाता है। तिल तिल करके दिन बड़े होने लगते हैं। ऐसा माना गया है कि जिस तरह उत्तरायण में दिन बड़े होते जाते हैं और रातें छोटी उसी तरह व्यक्ति को अपने अन्दर की तामसिकता और गलत आदतों को धीरे धीरे घटाना चाहिये, अन्धेरे को घटाना चाहिये। प्रकाश को, ज्ञान को, उल्लास को धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये, ताकि ऐसी स्थिति आ जाये कि आपके दिन (प्रकाश,सात्विकता) बड़े हो जायें, रातें (अंधेरा,तामसिकता) छोटी हो जायें। अर्थात् आपका उत्तरायण शुरू हो जाये। उस समय की स्थिति में यदि स्वर्गवास हो तो उत्तम शरीर को धारण करने का अवसर मिलता है।

इससे भी उत्कृष्ट अवस्था है रज, तम और सत्व तीनों से ऊपर उठकर गुणातीत हो जाना। जीवन मुक्त हो जाता है। मोक्ष वाली स्थिति में पहुँचने के लिए अभी से प्रयास शुरू करें। अपनी तामसिकता को मिटाने के लिए प्रयत्नशील हो जाएँ। हमारे जीवन में राजसिकता कम होती जाए, इसके लिये चेष्टारत हो जायें। हमारा विचार, आहार, बातें, व्यवहार, आचार, चिंतन, मनन, बोलना, चलना कैसा है, इस बात पर ध्यान देना शुरु कर दें। आप में दया, सहयोग की भावना, धैर्य संवेदना कितनी है, इस पर भी ध्यान देना शुरू करें। यह सब इस बात पर निर्भर करेगा

कि आप किस प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। धीरे धीरे आप को अपनी प्रवृत्ति का अहसास होने लग जायेगा। अपनी एक सारणी बना कर रखिये। **डायरी में लिखा करिए कि आपने सप्ताह में किस तरह की कार्य प्रणाली अपनाई? कैसे कैसे लोगों से मिले? क्या क्या बातें की? कितनी बार झुंझलाहट आई? कितनी बार गुस्सा आया? कितनी बार झूठ बोला? कितनी बार दिखावा किया?** आप अब किस प्रकार का संकल्प लेने लगे हैं? **सारी बातों की सारणी बनाइये। आपको महसूस होगा कि कुछ प्रवृत्तियाँ आपके अंदर दौरे की तरह आती हैं। जब आप बहुत गुस्से में हों तो शीशे में अपना मुँह देखें। ज़्यादा बोलना भी दौरा होता है।**

हर आदमी अपने घाव याद रखता है, दूसरों को पहुँचाई चोट याद नहीं रखता। आदमी लेकर भूल जाता है, देकर कभी नहीं भूलता। उसने दूसरों पर कितने अहसान किये हैं उसकी गिनती उसके पास है, लेकिन दूसरों ने उस पर कितने अहसान किए हैं यह उसे याद नहीं है।

सात्विकता में आपके अन्दर सहनशीलता बढ़ती जाती है। सहनशीलता जितनी बढ़ती है, सुख दुःख सहन करने का आपका तरीका भी बदल जाता है। बहुत कुछ सह जाओगे, बदले में किसी को सताओगे नहीं। बच्चा गिर जाता है तो माँ ज़मीन पर चार पाँच थप्पड़ मार कर कहती है कि देख मैंने इसे मार दिया। बच्चे के गिरने का बदला माँ ने ज़मीन को थप्पड़ मारकर ले लिया। ऐसा बदला लेने वाला हिसाब कभी बच्चे को नहीं समझाना चाहिये।

महात्मा गांधी के जीवन की एक घटना है। गांधी जब छोटे थे तो उनके भाई ने उनको शरारत करने के लिए पीट दिया। गांधी जी रोते हुए माँ के पास आये और शिकायत की। माँ अपने काम में लगी लगी बोली, "तू भी उसे मार दे, हिसाब बराबर हो जायेगा।" गांधी जी माँ का आँचल खींचकर बोले, "माँ, भाई गलती कर रहा है तो आप उसे रोक नहीं रहीं, उलटे मुझे भी गलती करने को कह रही हैं।" अब माँ का ध्यान अपनी गलती पर गया। उसने सोचा कि मेरा बेटा कितना समझदार है। मैं उसे कितना गलत सिखा रही थी। तब उसे प्यार से छाती के साथ लगा कर

माँ ने कहा, "मेरे बेटे, तू ज़रूर अपने माँ बाप का नाम संसार में अमर करेगा। तू साधारण आदमी नहीं है। तेरे सोचने का ढंग अलग है।" हम रात दिन दूसरे की गलती का हिसाब लगाते रहते हैं। स्वयं कैसी भी ग़लती करें उसके बारे में कभी सोचते भी नहीं। यह मूर्खता है।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से यह जानना चाहा कि जब ये तीनों गुण नहीं रहते और व्यक्ति इन तीनों गुणों से ऊपर उठ जाता है तब वह कैसे रहता है, कैसे चलता है, कैसे बात करता है?

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।।२२।।

हे अर्जुन! प्रकाश सात्विक अवस्था में प्रकट होता है। राजसिक अवस्था में कर्म की प्रवृत्ति दिखाई देती है और तामसिक स्थिति में मनुष्य के अन्दर आलस्य दिखाई देता है और जब व्यक्ति इन तीनों से ऊपर उठ जाता है तो उसमें कोई आकांक्षा नहीं रहती। न उसे कोई लालसा रहती है। उस स्थिति में केवल आनन्द है। उसमें वह सम बना रहता है।

ज़िन्दगी की धारा में सुख दुख की तरंगें उठती रहती हैं। एक किश्ती, बहने वाली हवाओं के हलके फुलके झोंकों से कभी बाईं और कभी दाईं तरफ झुक जाती है। हमारे मन की स्थिति भी इसी प्रकार डावांडोल है। लेकिन मनुष्य अगर चाहे तो वह निर्वाण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। चेतना का दीया सीधा जगमगाता रहता है, बत्ती खड़ी रहती है। प्रकाश की लौ सीधी ऊपर की ओर जाती है। ध्यान में भी आपका प्रकाश ऊपर की ओर उठता है। वर्त्तिका को स्थिर रखते हैं। यह ध्यान का स्वरूप है। ज्योर्तिलिंग को भी ऐसा ही रूप दिया गया है।

व्यक्ति जब न द्वेष में होता है और न किसी प्रेम में, न किसी चीज़ के राग में और न वैराग्य में, तो वहाँ केवल आनन्द होता है।

भगवान कहते हैं, "ऐसे स्थितप्रज्ञ के पास किसी भी प्रवृत्ति वाले लोग आयें, वह सम स्थिति में ही रहता है। उसे कोई प्रवृत्ति विचलित नहीं करती। अलग अलग गुणों वाले व्यक्तियों से जो राजसिक, सात्विक तथा तामसिक गुणों की धाराएं उसकी ओर आ रही होती हैं उनका उस पर

कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह उनमें बंधता नहीं। सुख और दुःख, मिट्टी का ढेला या कंचन उसके लिए सब समान होते हैं।

कहते हैं कि सिकन्दर ने अपनी हिन्दुस्तान यात्रा के दौरान किसी को साधना करते देखा। पत्थर की शिला पर बैठे व्यक्ति को उसने पहले लालच दिखाया, फिर उसे डराया। बाद में यह भी कहा कि मेरे साथ चलो, पर वह व्यक्ति न हिला न डुला। तब सिकन्दर ने उसकी तारीफ़ें की, पर फिर भी साधक को फ़र्क नहीं पड़ा। फिर कहा, "मैं आपकी कोई सहायता कर सकता हूँ तो बताइए।" उस समय का विजेता सिकन्दर, जिसने आक्रामक बनकर भारत पर आक्रमण किया था, हर कोशिश कर के हार गया, लेकिन महात्मा शान्ति में बैठे रहे। आखिर में जब उस ने यह कहा, "मैं आपके लिये कोई काम करना चाहता हूँ।" तब महात्मा के मुँह से निकला, "बस एक काम करो। धूप छोड़कर दूर खड़े हो जाओ।" उस समय सर्दी का मौसम था सो उन्होंने कहा, "ज़रा धूप छोड़ दो, फिर जो बोलना है बोलते रहो; मुझे अपने आनन्द में डूबा रहने दो।"

यह वर्णन 'ग्रेट हिस्टरी' में आता है। तो अपने देश में ऐसी साधना वाले लोग हुए हैं, जिन्होंने अपने आप को गुणातीत स्थिति में पहुँचा दिया था।

मिथिला राज्य की सीमा के साथ कौशल राज्य था। एक बार मिथिला के राजा ने कौशल पर चढ़ाई कर दी। बीच बीच में अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाने की इच्छा राजाओं को हो जाया करती थी। सो ऐसी इच्छा लेकर उसने कौशल पर एकाएक हमला बोल दिया। मिथिला का राजा जीत गया परन्तु कौशल का राजा बच कर भाग गया। कौशल के राजा में एक खास बात थी कि उसके पास साधुओं का लगातार जमघट रहता था जो उसे सिखाते रहते थे कि जीवन में कैसे ऊपर उठना है। अब हार कर भागने के बाद एक बार उसके मन में आया कि वह जंगल में आकर जप तप करे। दूसरी ओर उसके मन में दुःखियों की सेवा की बात आई।

इसी उधेड़ बुन में राजा भेष बदल कर एक गाँव से गुज़र रहा था। कुछ बूढ़े चुपचाप बैठे हुए थे, कुछ महिलाएँ रो रही थीं। राजा ने उनसे

पूछा, "भई क्या हुआ? क्यों दुःखी हो?" उत्तर मिला, "हमारे गाँव के नौजवान युद्ध में मारे गए हैं अब हमारे पास खाने पीने को नहीं है। हमारे देश का राजा किसी तरह से निकल कर भाग गया है। मिथिला के राजा ने घोषणा की है कि राजा को गिरफ़्तार करवाने वाले को १०,००० स्वर्ण मुद्राएँ ईनाम में मिलेंगी। हम लोग सोने के सिक्कों के लिए अपने राजा को ढूंढकर गिरफ्तार कराने का पाप तो कर नहीं सकते। इसलिए हम बहुत दुःखी हैं।" यह सुन भेष बदले हुए कौशल का राजा गाँव वालों को साथ लेकर मिथिला नरेश के दरबार में गया। वहाँ जाकर उसने अपना परिचय दिया और कहा कि उसे गिरफ़्तार कर गाँव वालों को १०,००० स्वर्ण मुद्राएं दे दी जाएं। मिथिला के राजा ने तब कहा कि वह उसे इसलिए गिरफ़्तार करवाना चाहता था कि वह कहीं दूसरे राजाओं की मदद से आक्रमण न कर दे। कौशल के राजा ने कहा कि वह अपनी प्रजा का दुःख नहीं देख सकता। यह सुनते ही मिथिला के राजा ने खड़े होकर कहा, "अगर मुझे पता होता कि आप इतने महान हैं तो मैं कभी आपके राज्य पर आक्रमण न करता। आप अपने राज्य के साथ साथ मिथिला का राज्य भी संभाल लें क्योंकि राज्य करने का अधिकार आप जैसे लोगों को ही मिलना चाहिए जिनकी मानसिकता इतनी ऊँची है। **ऐसे लोगों के पास धन होना चाहिए जो सात्विक लोग हैं। उन्हीं के पास बल तथा साधन भी होने चाहिए जिससे वे समाज की भलाई कर सकें।** मेरे जैसा तामसिक प्रकृति का व्यक्ति, जो सारे समाज को दुःखी करने में और अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने में लगा हुआ है, उसके पास साधन नहीं होने चाहिए।"

इस प्रकार **महान पुरुषों के प्रभाव से दूसरे लोगों की भी विचारधारा बदल जाती है, दृष्टिकोण बदल जाता है। उनमें भी दूसरों को सुखी करने की भावना जागृत हो जाती है।**

दुर्भाग्यवश हम लोगों की रुचियाँ दूसरी ही तरफ़ लगी हुई हैं। संग्रह करने, लालच, कलह, क्लेश और ईर्ष्या द्वेष में डूबे रहने, दूसरों को नीचा दिखाने के सपने, घाव करने वाली तथा अपशब्दों से युक्त वाणी का प्रयोग करने में लगे रहते हैं। जिनकी वाणी पर अपशब्द बैठ गए हैं या जो वाणी

से प्रहार करते हैं उनसे अधिक छोटा और कोई नहीं हो सकता। कई पढ़े लिखे लोग भी गाली नहीं देते, लेकिन गाली से भी जो ज़्यादा खतरनाक है ऐसी तानाकशी करते हैं। गाली को व्यक्ति भूल भी सकता है, लेकिन व्यंग्य को कभी नहीं भूलता।

आप अपने अन्दर वह ज्ञान पैदा करें जिससे सात्विकता बढ़ने लग जाए। भक्ति की लहर पैदा करो, जिससे अंतःकरण सात्विकता पूर्ण होकर परब्रह्म से मेल करने की स्थिति में आ जाए। सात्विकता में ऊपर उठते उठते अन्त में एक ऐसी स्थिति दिखाई देने लग जाती है जब व्यक्ति सात्विकता, राजसिकता, तामसिकता सभी को पार करके, भक्ति की उस चरम सीमा तक पहुँच जाता है जहाँ वह गुणातीत होकर जीता है। उसके मुँह से शब्द निकलें तो वह मंत्र बन जाएँ। जिसके लिए जो कुछ बोले वह सिद्ध हो जाए। उसे किसी से मान की इच्छा नहीं होती, किसी से बैर नहीं होता, बस शांति होती है।

कवि गंग जब बहुत ज़्यादा मस्त हो गया तो अपनी भक्ति में उसने दुनिया के लोगों की तारीफ़ करनी छोड़ दी। पहले जब कविता करते थे तो इन्सान की तारीफ़ करते थे। अब भगवान की तारीफ़ में बैठ गए तो इन्सान की तारीफ़ छूट गई। तब एक बार अकबर बादशाह से लोगों ने कहा कि गंग कवि आपके खिलाफ है और इतना खिलाफ है कि लोगों को आपके विरूद्ध भड़काता है और यह भी कहा कि यदि इसका प्रमाण लेना हो तो इसको अपने पास बुलाकर इससे अपनी तारीफ़ में कोई कविता पढ़ने को कहें; वह आपकी तारीफ में कविता कभी नहीं पढ़ेगा। बादशाह ने गंग कवि को बुलाया। सिपाहियों ने उसको लाकर राज दरबार में खड़ा कर दिया। बादशाह ने कहा, "हमारी प्रशंसा में, तारीफ़ में कोई कविता पढ़ो।" तब उसने जवाब दिया, "इन्सान की तारीफ़ नहीं, इन्सान को बनाने वाले की तारीफ़ करने का मेरा मन है। अगर वह सुनना चाहते हो तो हम सुना देते हैं।" दरबारियों की सलाह पर बादशाह ने गंग कवि को हाथी से कुचलवाने का आदेश दे दिया।

नशे में चूर हाथी उसे मारने के लिए लाया गया। उस समय गंग ने आनन्द में आकर एक कविता पढ़ीः **'चाह भई परमेश्वर की, कवि गंग**

को लेन गणेश पठायो' परमेश्वर की चाह देखो, इस कवि गंग को लेने के लिए अपना गणेश भेजा है। शरीर छोड़ते समय कवि के मुँह से यह शब्द सुनकर कहते हैं बादशाह भी खड़ा होकर रोया। उसने कहा, "मुझसे इतना बड़ा अपराध हो गया। रब के चाहने वाले को मैंने कष्ट पहुँचाया। न जाने इसका मुझे क्या सिला देना पड़ेगा?"

गुणातीत स्थिति वालों के अन्दर एक अलग तरह की मस्ती होती है। उसमें आनन्द ही आनन्द समाया होता है।

अथ चर्तुदशोऽध्यायः

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।। १।।

श्रीभगवान बोलेः सम्पूर्ण ज्ञानों में उत्तम और परा ज्ञान को मैं फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब मुनि लोग इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।। २।।

इस ज्ञान का आश्रय लेकर जो मनुष्य मेरी सधर्मता को प्राप्त हो गये हैं, वे महासर्ग में भी पैदा नहीं होते और महाप्रलय में भी व्यथित नहीं होते।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।। ३।।

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! मेरी मूल प्रकृति तो उत्पत्ति स्थान है और मैं उसमें जीवरूप गर्भ का स्थापन करता हूं। उससे सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।। ४।।

हे कुन्तीनन्दन! सम्पूर्ण योनियों में प्राणियों के जितने शरीर पैदा होते हैं, उन सबकी मूल प्रकृति तो माता है और मैं बीज स्थापन करने वाला पिता हूं।

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।। ५।।

हे महाबाहो! प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण अविनाशी देही को देह में बाँध देते हैं।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।६।।

हे पापरहित अर्जुन! उन गुणों में सत्त्वगुण निर्मल (स्वच्छ) होने के कारण प्रकाशक और निर्विकार है। वह सुख और ज्ञान की आसक्ति से (देही को) बाँधता है।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गेसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।७।।

हे कुन्तीनन्दन! तृष्णा ओर आसक्तिको पैदा करनेवाले रजोगुण को तुम राग स्वरूप समझो। वह कर्मों की आसक्ति से शरीरधारी को बाँधता है।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।८।।

हे भरतवंशी अर्जुन! सम्पूर्ण देहधारियों को मोहित करनेवाले तमोगुण को तुम अज्ञान से उत्पन्न होनेवाला समझो। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा देहधारियों को बाँधता है।

सत्त्वं सुखे सञ्ज्यति रजः कर्मणि भारत।

ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत।। ६।।

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सत्त्वगुण सुख में और रजोगुण कर्म में लगाकर मनुष्य पर विजय करता है तथा तमोगुण ज्ञान को ढककर एवं प्रमाद में भी लगाकर मनुष्य पर विजय करता है।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।

रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा। १०।।

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! रजोगुण ओर तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण, वैसे ही सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।

ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।। ११।।

जब इस मनुष्य शरीर में सब द्वारों (इन्द्रियों और अन्तःकरण) में प्रकाश (स्वच्छता) और ज्ञान (विवेक) प्रकट हो जाता है, तब जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा हुआ है।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।

रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।१२।।

हे भरतवंश में श्रेष्ठ अर्जुन! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, प्रवृत्ति, कर्मों का आरंभ, अशांति और स्पृहा वृत्तियाँ पैदा होती हैं।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।। १३।।

हे कुरुनन्दन! तमोगुण के बढ़ने पर अप्रकाश, अप्रवृत्ति, प्रमाद और मोह वृत्तियाँ भी पैदा होती हैं।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।। १४।।

जिस समय सत्त्वगुण बढ़ा हो, उस समय यदि देहधारी मनुष्य मर जाता है, तो वह उत्तमवेत्ताओं के निर्मल लोकों में जाता है।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।। १५।।

रजोगुण के बढ़ने पर मरनेवाला प्राणी मनुष्य योनि में जन्म लेता है तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरनेवाला मूढ़ योनियों में जन्म लेता है।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।। १६।।

(विवेकी पुरुषों ने) शुभ कर्म का तो सात्त्विक निर्मल फल कहा है, राजस कर्म का फल दुःख कहा है और तामस कर्म का फल अज्ञान (मूढ़ता) कहा है।

सत्त्वात्सञ्जयते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।

प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।। १७।।

सत्त्वगुण से ज्ञान और रजोगुण से लोभ आदि ही उत्पन्न होते हैं; तमोगुण से प्रमाद, मोह एवं अज्ञान भी उत्पन्न होता है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।। १८।।

सत्त्वगुण में स्थित मनुष्य ऊर्ध्वलोकों में जाते हैं, रजोगुण में स्थित मनुष्य मृत्युलोक में जन्म लेते हैं और निन्दनीय तमोगुण की वृत्ति में स्थित मनुष्य अधोगति में जाते हैं।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।

गुणेभयच्श्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।। १६।।

जब विवेकी (विचारकुशल) मनुष्य तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और अपने को गुणों से परा अनुभव करता है, तब वह मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

गुणानेताanतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान।

जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।। २०।।

देहधारी (विवेकी मनुष्य) देह को उत्पन्न करनेवाले इन तीनों गुणों का अतिक्रमण करके जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था रूपी दुःखों से रहित हुआ अमरता का अनुभव करता है।

कैर्लिङ्गस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते।। २१।।

अर्जुन बोले 'हे प्रभो! इन तीनों गुणों से अतीत हुआ मनुष्य किन लक्षणों से युक्त होता है? उसके आचरण कैसे होते हैं? और इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कैसे किया जा सकता है?'

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।। २२।।

श्रीभगवान् बोले 'हे पाण्डव! प्रकाश, प्रवृत्ति तथा मोह ये सभी अच्छी तरह से प्रवृत्त हो जायँ तो भी गुणातीत मनुष्य इनसे द्वेष नहीं करता, और ये सभी निवृत्त हो जायँ तो इनकी इच्छा नहीं करता।'

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।। २३।।

जो उदासीन की तरह स्थित है और जो गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता तथा गुण ही (गुणों में) बरत रहे हैं इस भाव से जो अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है और स्वयं कोई भी चेष्टा नहीं करता।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।। २४।।
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।२५।।

जो धीर मनुष्य सुख दुःख में सम तथा अपने स्वरूप में स्थित रहता है; जो मिट्टीके ढेले, पत्थर और सोने में सम रहता है; जो प्रिय अप्रिय में तथा अपनी निन्दा स्तुति में सम रहता है; जो मान अपमान में तथा मित्र शत्रु के पक्ष में सम रहता है; जो सम्पूर्ण कर्मों के आरम्भ का त्यागी है, वह मनुष्य गुणातीत कहा जाता है।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते।। २६।।
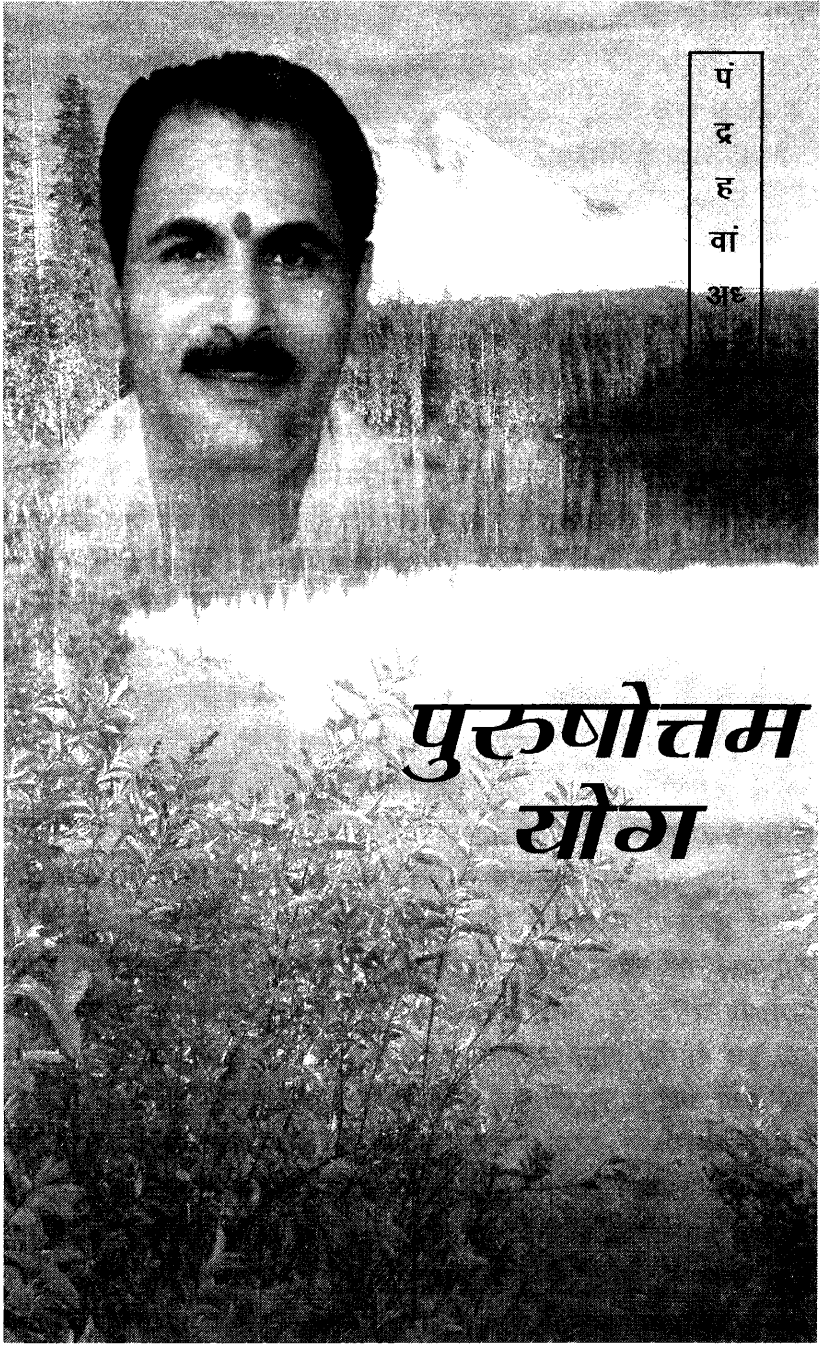
जो मनुष्य अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा मेरा सेवन करता है, वह इन गुणों का अतिक्रमण करके ब्रह्मप्राप्ति का पात्र हो जाता है।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। २७।।

क्योंकि ब्रह्म, अविनाशी अमृत, शाश्वत धर्म और ऐकान्तिक सुख का आश्रय मैं ही हूं।

पं
द्र
ह
वां
अध
पुरुषोत्तम
योग

पुरुषोत्तम योग

सार

भगवान श्रीकृष्ण ने इस अध्याय में अर्जुन को जीवन के वृक्ष के बारे में बताया है। संसार और सृष्टि का स्वरूप बताया है। जो शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है, जो ब्रह्माण्ड में है वही शरीर में है क्योंकि जीव परमात्मा का ही अंश है, उसका टुकड़ा नहीं, परमात्मा का पूर्ण स्वरूप है, लघु रूप एवं आकार में परमात्मा का संस्करण है। जीवन वृक्ष की जड़ ऊपर है, शाखाएं नीचे हैं। मूल ऊपर है, परमात्मा ही मूल है। जीवन रूपी वृक्ष की जड़ ऊपर है, क्योंकि जड़ ही जीव का मुख है जिससे वह भोजन ग्रहण करता है। वृक्ष अपने ऊपरी हिस्से से ही प्रकृति से आहार, वायु और जल ग्रहण करता है और ऊपर से नीचे की ओर भेजता है। जीवन रूपी वृक्ष की जड़ आप हैं क्योंकि जड़ ही जीव का मुख है जिससे वह भोजन ग्रहण करता है। माँ के गर्भ में शिशु केवल अंकुरित होता है, आहार भोजन हवा पानी सब बाहर से माँ के माध्यम से प्राप्त करता है। मनुष्य कर्म योनि और भोग योनि के चक्रव्यूह में फँसा है। बाकी सब प्राणी भगवान द्वारा बनाई व्यवस्था में जीवन जीते हैं। जीवन एक वृक्ष अश्वत्थ (पीपल) है जो कल नहीं रहेगा लेकिन निरन्तर एवं शाश्वत है। वह पत्ता, वह शाख, पत्ते पर चमक रही ओस की वह बूंद नहीं रहेगी लेकिन पत्ता और ओस की बूंद रहेगी। आने वाले कल की कोंपल और ओस की बूंद में आज का पत्ता और ओस की बूंद पुनःजीवित होकर चमकेगी, उनकी ताज़गी और सौन्दर्य भी रहेगा। संसार क्षणभंगुर और परिवर्तनशील है, नित्य नया है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के माध्यम से मनुष्य से कहते हैं कि बदलते हुए संसार के साथ बदलो नहीं, स्थिर रहो। मौसम बदलेंगे, दिन रात बदलेंगे, सृष्टि में सब कुछ परिवर्तित होता रहेगा, लेकिन सृष्टि स्थिर है। अपनी बढ़ती उम्र के साथ अपना स्वभाव, व्यवहार, खानपान

बदलो लेकिन तुम स्थिर रहो क्योंकि तुम्हारी जीवात्मा भी स्थिर और शाश्वत है। शरीर छोड़ते समय जीवात्मा सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर में अंतर्निहित संस्कार और वृत्तियों को साथ ले जाती है जैसे फूलों के बगीचे से गुज़रती हवा फूल की सुगन्ध लेकर उड़ जाती है और अवसर पाकर उन्हें नए जन्म में प्राप्त शरीर में संप्रेषित करती है। वृत्तियों में तीन अग्नियों तृष्णाग्नि, जठराग्नि और कामाग्नि तथा तीन तृष्णाओं लोकैषणा, वित्तैषणा एवं पुत्रैषणा के अतृप्त अंश जीवात्मा के संग ही नए जन्म में तिरोहित होती हैं और पुनः संसार के मायाजाल में बांधती है। इस मायाजाल में आदमी अज्ञान के कारण ही उलझता है अतः मायाजाल से मुक्त इसी जन्म में होना है। इस जन्म में इस जाल को सुलझाने का एकमात्र उपाय ज्ञान है। ज्ञान संसार से भागकर प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि जहाँ भी जाओगे वह स्थान कहीं न कहीं इसी संसार में ही होगा। अतः संसार में रहना है, कर्म कर्त्तव्य करना है, अपने मूल (परमात्मा) को पकड़ना है और जन्म मृत्यु के चक्रव्यूह से मुक्त होना है। इतने सारे कार्य करने के लिए भगवान ने हमें दो उपकरण दिये हैं बुद्धि और मन। दोनों के लिए अन्य अनेक सांसारिक भावनाओं के साथ ही बुद्धि के लिए विवेक और मन के लिए वैराग्य की भावना दी हैं जिन्हें अभ्यास द्वारा हमें नियंत्रित कर परिष्कृत एवं विकसित करना होगा।

ता के पन्द्रहवें अध्याय 'पुरुषोत्तम योग' में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया है कि जीवन का वृक्ष क्या है? संसार और सृष्टि का स्वरूप क्या और कैसा है?

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।१।।

'ऊर्ध्वमूलमधः शाखम्' अर्थात् इस संसार का स्वरूप ऐसा है जिसकी मूल जड़ ऊपर की तरफ़ है और **'अधःशाखम्',** शाखाएँ नीचे की तरफ़ हैं। **'अश्वत्थं प्राहुरव्ययम्'** इसे अश्वत्थ कहा जाता है। यह पीपल का वृक्ष है। **'छन्दांसि'** छन्द अर्थात् वेद, **'यस्य पर्णानि'** जिसके पत्ते हैं। **'यस्तं वेद स वेदवित्'** जो इसको जानता है, वह वेदवित् और ज्ञानी है। आगे भी कहा है :

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।२।।

इसकी शाखाएँ **'अधश्चोर्ध्वं',** नीचे और ऊपर की तरफ फैली हुई हैं। **'गुणप्रवृद्धा'** संसार का यह वटवृक्ष तीन गुणों से युक्त है। **'विषयप्रवालाः'** और विषय वासनाएं इसकी कोंपलें हैं। इसकी जड़ ऊपर की तरफ है और कर्मों के माध्यम से हम सभी इससे बंधे हुए हैं। कर्मों से बंधा मनुष्य, जब निष्काम भाव से जीवन जीने लगता है, तब इस वृक्ष से मुक्ति पाकर परमधाम तक पहुँचता है।

यहाँ किस वृक्ष की चर्चा की गई है और भगवान हमें क्या समझाना चाहते हैं? एक वृक्ष है, जिसकी शाखाएँ नीचे की तरफ हैं और जड़ ऊपर की तरफ। यह सृष्टि का वृक्ष है, संसार का वृक्ष है। यह एकदम उलटा है, लेकिन हमें उलटा नज़र नहीं आ रहा। यदि तालाब के किनारे कोई वृक्ष हो और तालाब में जल ठहरा हुआ हो, निर्मल हो, तब ध्यान से देखने पर वह वृक्ष तालाब के अन्दर दिखाई देगा। उसकी जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे दिखाई देंगी। एकदम उलटा, मानो पेड़ ने शीर्षासन कर लिया हो। भगवान कहते हैं कि संसार का वृक्ष ऐसा ही है जो देखने में

सीधा दिखाई देता है, लेकिन है उलटा।

ऊपर मूल होने का मतलब है कि परमात्मा ऊपर है। परमात्मा ही मूल है इस संसार का, इस वृक्ष का। इस वृक्ष को **'अव्ययम्'** कहा गया है क्योंकि यह अव्यय से आया है, शाश्वत है। परमात्मा अविनाशी तत्त्व है, उसी से यह वृक्ष, सृष्टि का स्वरूप बना है। उस की शाखाएँ नीचे की तरफ़ फैली हुई हैं अर्थात् हम सब नीचे की तरफ़, माया की तरफ़ बँधे हुए हैं। माया है पृथ्वी, जिसका आकर्षण नीचे की तरफ बाँधता है। हम सभी नीचे संसार की तरफ़ बँधे हैं, लेकिन हमें जीवनी शक्ति मिलती है ऊपर से, मूल से, परमात्मा से। यद्यपि परमात्मा सिर्फ़ ऊपर ही नहीं बल्कि सर्वत्र ही है, परंतु वह एक सत्ता है, सर्वोपरि है, सबसे ऊपर है।

ग्रीक. दार्शनिक प्लेटो ने भी कहा है कि हमारी आत्मा शरीर के ऊपरी भाग में है, और वही भाग परमात्मा से जुड़ा हुआ है। शरीर का नीचे का भाग विषय वासनाओं से जुड़ा हुआ है, पृथ्वी से जुड़ा हुआ है। हमारी ऊर्जा शक्ति भी ऊपर से नीचे की तरफ़ बह रही है। ऊर्जा शक्ति के नीचे की तरफ़ बहने का मतलब है कि हमारा पतन हो रहा है। जीवन में ऊँचाई की तरफ़ जाने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है, लेकिन नीचे आने में कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती। सीढ़ियाँ चढ़ने में कठिनाई है, लेकिन नीचे उतरने में नहीं। पहाड़ों पर चढ़ना मुश्किल है, लेकिन ढलान पर उतरने में आपकी गति स्वभावतः तेज़ हो जाएगी। माया की शक्तियाँ बहुत तेज़ी से नीचे की ओर खींचती हैं। देखा जाए तो नीचे की तरफ़ ऊर्जा स्वाभाविक रूप से बहती है, लेकिन उसे ऊपर की तरफ उठाना हो तो हमें शक्ति का प्रयोग करना होगा और हमें जाना ऊपर की तरफ़ ही है। शक्ति लगाकर ऊर्जा को ऊपर की तरफ़ ले जाना है। नीचे की तरफ़ संसार की कीचड़ है। इसलिए शाखाएँ नीचे की तरफ़ हैं, ऊपर की तरफ़ नहीं। मूल हमारा ऊपर है।

कहा है **'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे, यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे'** अर्थात् जैसा ब्रह्माण्ड में है, वैसा इस शरीर में भी है और जो इस शरीर में है, वही ब्रह्माण्ड में है। हम अपने शरीर को भी एक वृक्ष मान लें तो जहाँ

से हम भोजन ग्रहण करते हैं, वह हमारा मूल है, हमारी जड़ है। वृक्ष जहाँ से भोजन ग्रहण करते हैं, ज़मीन में से भोजन का अंश खींचते हैं, वहाँ उसकी जड़ है। हमारी जड़ हमारा मुख है। इसलिए हम सब की जड़ें ऊपर की तरफ़ हैं। ये हाथ, ये उंगलियाँ, ये पाँव, ये अंग-प्रत्यंग जो नीचे की तरफ़ फैले हुए हैं, इनको अपनी शाखाएँ मानिए। ये शाखाएँ बहुत व्यापकता से फैली हुई हैं। अगर हम मूल को देखें तो मूल तो अविनाशी तत्त्व से आता है, अर्थात् हम सब के सब अविनाशी परमात्मा से आते हैं। इसलिए हमारे पत्ते, जिसके द्वारा हम प्रकाश को खींचते हैं, धूप लेते हैं, जीवनी शक्ति लेते हैं, वे पर्ण, वे पत्ते वेद अर्थात ज्ञान हैं। **अगर हमें कोई चीज़ सींच सकती है, शक्ति दे सकती है तो वह सिर्फ़ ज्ञान है। हम जीवन में केवल अपने अज्ञान के कारण कष्ट भोगते हैं।** भगवान ने कहा है कि इस वृक्ष को जिसने जान लिया, वह इस दुनिया में सदैव के लिए आनन्दित हो गया। जो इस जीवन में इस वृक्ष को नहीं जान पाया, वह कर्म करते हुए इस संसार में फंसता जाता है। बंधनों में आता जाता है। जो सांसारिकता में फंस गया फिर उसे कष्ट भोगने के सिवाय दुनिया में और कुछ नहीं मिलता।

हम सब अपनी ज़ंजीरों में कैद हैं। अपने आप को बाँध कर बैठे हुए हैं। इस दायरे से बाहर जा नहीं पाते। कोई आदमी घर से भागकर कहीं जाना चाहे तो वहीं जाएगा, जहां कोई उसकी पहचान वाला हो। अपनी जानी पहचानी जगह से आगे वह नहीं जा सकता। जिस जगह को उसने देखा है, जहाँ के बारे में सुना है, वह वहीं जाएगा। उसने जो सीमाएँ अपने मन में बना रखी हैं, वहीं तक वह दौड़ सकता है, उससे आगे नहीं। हम सभी अपनी अपनी सीमाओं में कैद हैं और उसी दायरे में घूमते हैं। इससे इधर उधर कहीं किसी का आना जाना नहीं होता। लेकिन उपनिषदों में कहा है कि मनुष्य का जितना अधिक विस्तार हो वह उतने ही अधिक आनन्द में होता है। जितना वह संकुचित होता जाएगा, उतना छोटा होता जाएगा। उसमें उसे सुख नहीं मिलेगा इसलिए उसे अपना विस्तार करना चाहिए।

कुछ सोचते हैं कि विस्तार नीचे की तरफ़ है। कुछ नीचे से ऊपर की ओर सोचते हैं और कुछ लोग सोचते हैं कि वे ऊपर से नीचे की तरफ़ आ रहे हैं। एक बूढ़े व्यक्ति के लिए, बुढ़ापा उसके जीवन का विस्तार है और बचपन जीवन का मूल। लेकिन मूल को ज्यादा बड़ा माना गया है क्योंकि उसमें संभावनाएँ बहुत थीं। बुढ़ापे में उसको दिखाई देता है कि बहुत चीज़ें अविकसित रह गईं। जो विस्तार हो सकता था वह नहीं हो पाया। **हम सब अपनी मजबूरियों में कैद हैं। ये मजबूरियाँ हमारे बंधन हैं, जिनसे हम बाहर नहीं निकल पाते।** हर आदमी के साथ उसकी कुछ मजबूरियाँ, अपने कुछ कष्ट, अपनी समस्याएँ हैं। उन सबका एक ही कारण है कि **हम अपने अज्ञान के कारण उनमें बँधे बैठे हैं।**

भँवरा अपनी शक्ति से लकड़ी को काटकर बाहर निकल सकता है। बाँस को काटकर बाहर निकल सकता है, उसमें छेद कर सकता है। लेकिन जब सांझ को सूरज अस्त होने पर भंवरा कमल की पंखुड़ियाँ बंद हो जाने से उसमें कैद हो जाता है तो वह उसमें बैठा बैठा प्राणहीन हो जाता है। जिसमें इतनी शक्ति है कि वह लकड़ी को काट सकता है, वह कोमल पंखुड़ियों, पत्तियों के बीच में कैद होकर रह जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वह समझता है कि उसकी सारी जीवनी शक्ति कमल में ही है। इसी में उसे रहना है, यही उसकी ज़िन्दगी है। काटना चाहे तो लकड़ी को भी काट सकता है और मोह में बँध गया तो वह कोमल पत्तियाँ भी नहीं काट पाता। **इन्सान ऐसा ही है। सब जगह लड़ लेगा, संघर्ष कर लेगा, बड़ी से बड़ी ज़ंजीर को तोड़ कर फेंक देगा, लेकिन घर में, परिवार में जो कच्चे धागे हैं, उनमें ऐसा बँधा हुआ है कि उनको तोड़ नहीं पाता। हम अपनी खींची लकीरों से बाहर निकल ही नहीं पाते। यह हमारी कमज़ोरी, हमारा दुर्भाग्य या हमारा अज्ञान है।** हम सब इसमें बँधे हैं।

प्रश्न यह नहीं है कि क्या संसार से भागकर आदमी कहीं जा सकता है? दुनिया से भागकर इंसान जहां भी जाएगा, चाहे वह जंगल ही हो, है तो वह भी दुनिया में ही। संसार से भागा नहीं जा सकता। आदमी त्याग

भी करेगा तो क्या करेगा? एक स्थान का त्याग कर लेगा तो दूसरा स्थान जहाँ वह जाएगा, वह स्थान भी तो संसार में ही है न? निर्जन स्थान में जाएगा तो व्यक्तियों से दूर हो सकता है, लेकिन व्यक्ति के अपने अन्दर भी तो संसार के विचार बसे हुए हैं, व्यक्तियों का मोह बसा हुआ है, उससे तो नहीं भाग सकता वह। कहीं भी जाएगा, उसके अन्दर जो संसार है वह उसके समीप ही होगा और वह संसार उसे बाँधे हुए है। इसीलिए भगवान ने आगे समझाया है कि ज्ञान के माध्यम से तुम इन बंधनों को काटने वाले बनो। सुलझने का एक ही रास्ता है **ज्ञान** और उलझने का एक ही कारण है **अज्ञान।** इसलिए जितना हो सके अपने आप को ज्ञान की दिशा में ले जाओ।

एक राजा ने कुछ विद्वानों को बुलाकर कहा, "तुम लोग मुझसे रोज़ कुछ न कुछ माँगना चाहते हो, लेकिन मैं तुम्हें रोज़ कुछ देने वाला दाता नहीं बनना चाहता तथा तुम्हें याचक नहीं बनाना चाहता। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि एक बार में ही मैं तुम्हें बहुत कुछ दे दूँ।" सभी ब्राह्मणों ने एक साथ मिल कर कहा, "आप कृपा करके ज़मीन का कोई हिस्सा और थोड़े से साधन हमारी आवश्यकतानुसार हमें दे दें ताकि वहाँ जाकर हम बस जाएँ।" राजा ने तब उन ज्ञानी ब्राह्मणों को कहा, "मैं तुम्हें उतनी बड़ी ज़मीन देता हूँ जितनी तुम घेर सको।" सब जमीन घेर कर उस पर कब्ज़ा करने में लग गए। सभी ने राज मिस्त्री बुलाए और जितनी बड़ी जगह वे ढूंढ सकते थे ढूँढ कर सात दिनों में उस जगह को घेरकर दीवार बना ली, उतनी जमीन उनकी हो गई। केवल एक ज्ञानी ब्राह्मण चार दिन तक तो आराम से बैठा रहा, पाँचवें दिन उसने एक जगह दीवार बनानी शुरू की, लेकिन बनाते बनाते दीवार को अपने हाथों से तोड़ने भी लगा। सातवें दिन राजा आया। उसने कहा, "जिस जिस ने जितनी जगह घेरी है, वह उसको दे दी जाए।" वह आदमी जो दीवार तोड़ रहा था, जगह घेरना नहीं चाहता था, उसने कहा, "दीवार तोड़कर ही मैं जगह घेरना चाहता हूँ।" राजा बोले, "किस तरह से?" उसने कहा, "अगर दीवार बनाता हूँ तो जमीन एक सीमा में बँध जाएगी, इसलिए छोटी हो जाएगी। अगर मैं दीवार बनाता हूँ तो फिर मैं छोटी सी जगह का मालिक होता हूँ और अगर

मैं दीवार नहीं बनाता तो जहाँ तक दृष्टि जाएगी, वहाँ तक जगह मेरी है। इसलिए मैंने दीवार नहीं बनाई और सुनो राजन्! इस दुनिया में जिसने भी दीवारें खींचने की कोशिश की है, उसने स्वयं को कैद में डाला है। हम तो सबको बाँधकर अपने में जोड़ लेना चाहते हैं, न कि संसार की कैद में अपने को डालना।" राजा ने उसी समय उससे कहा, "केवल तुम्हीं एक व्यक्ति हो जो ठीक ढंग से जगह को घेरना सीखे हो। बाकी सब लोग ज्ञानी कहलाने के भी हक़दार नहीं हैं क्योंकि वे छोटी छोटी सीमाओं में कैद होकर अपनी जगह बनाना चाहते हैं।"

जो बाड़ों और वर्गों में कैद हो गया, वह आदमी ज्ञानी नहीं है, अज्ञानी है। हम सब के पास मोह और अहंकार के अपने दायरे हैं जिनमें हम बँधे हुए हैं। उससे बाहर निकलना नहीं चाहते। एक व्यक्ति पूरे विश्व का हो जाता है, पूरे विश्व को अपना बना लेता है। जहाँ दीवारें और सीमाएँ नहीं हैं वहाँ एकमात्र परमात्मा का रूप बचता है। अगर तुम संसार की तरफ़ जाते हो, तो तुम दायरे बनाकर बँध जाते हो। अगर इनको तोड़कर बाहर निकलना चाहते हो, तो दीवारों को ढाहिए। जो आदमी समग्र को अपना बना लेना चाहता है, वह सबसे पहले अपने अन्दर की दीवारें गिराता है। अपना अहंकार, अपना मोह, अपना वर्ग त्यागता है।

झगड़ा यहाँ तक है कि एक भाषा बोलने वाले जहाँ जहाँ बसते हैं, वे हमारे हैं; उनका और हमारा पहनावा एक जैसा है; तो हमने एक दीवार बना ली। एक ने कहा, हमारे जैसे खानपान वाले लोग जहाँ तक बसते हैं, वे हमारे हैं। दूसरे ने कहा, हमारे जैसी पूजा पद्धति अपनाने वाले लोग जहाँ तक हैं, हमारे अपने लोग हैं। तीसरा वह है जिसने कहा कि धरती पर जहाँ जहाँ भी हमारे जैसा हृदय धड़कता है, हमारे जैसा जीवन है, हमारी जैसी संवेदनाएँ हैं, वहाँ तक सब हमारा अपना है और हम उन सबके हैं। ऐसा व्यक्ति सारे विश्व का हो गया और सारा विश्व उसका हो गया। वह परमात्मा का हो गया। इसलिए अपने आप को किसी दायरे में कैद नहीं कीजिए। **विडम्बना यही है कि भाषा, वेशभूषा, भाव भजन के भेद में हम पड़े हुए हैं। सारी धरती पर, जहाँ जहाँ भी इन्सान बसा**

हुआ है उसने दायरे खींच रखे हैं।

अरब में एक कहावत है कि भगवान ने, दुनिया के मालिक ने जब दुनिया बनाई, तो इन्सान के कान में जाकर धीरे से यह कह दिया कि मैंने दुनिया में सबसे अच्छा तुझे बनाया है। तुझसे बढ़कर कोई नहीं है, तुझसे महान कोई नहीं है, तुझ जैसी अक्ल किसी के पास नहीं है। इसीलिए आदमी जब तक जीता है, इसी खुशफहमी में रहता है कि उससे बढ़कर कोई नहीं है, उससे अच्छा कोई हो नहीं सकता, उस जैसी अक्ल किसी की नहीं है। इस अहंकार के कारण वह अपने विकास का दायरा बंद कर देता है। कान बंद कर लिए, किसी की राय सुनना नहीं चाहता। खुद रायसाहब बन गया, दूसरों को राय देना चाहता है, किसी की राय लेना नहीं चाहता। उसे सुनने में रुचि नहीं है पर सबको सुनाने को हरदम तैयार है। वह दूसरों को काम बताएगा, खुद कुछ नहीं करना चाहेगा। दूसरों की उन्नति देखकर जलेगा, क्योंकि वह यह सोचेगा कि दूसरे को मौका मिल गया, नहीं तो अक्ल तो उसकी बड़ी थी। दूसरे को मौका मिल गया, इसीलिए छलबल कर वह आगे पहुँच गया। लेकिन वास्तविकता यह है कि खुला आकाश हर किसी के सामने है, जितना चाहो बढ़ो। परमात्मा ने अगर यह कहा भी है कि उसने इन्सान से बढ़कर कुछ नहीं बनाया तो भगवान ने यही कहा है कि उसका हर बच्चा एक से बढ़कर एक है। जो चाहेगा वह सबसे आगे बढ़ जाएगा। अगर अपनी गफलत में जिएगा तो दुनिया की भीड़ में खो जाएगा।

हम जिस संसार में जीते हैं, उसका मूल ऊपर की तरफ़ है, उसकी जड़ ऊपर है, शाखाएँ नीचे की तरफ फैली हुई हैं। ऊपर से अर्थात् परमात्मा से आया है यह संसार। हम इस संसार में बँधे हुए हैं, वासनाओं और मोह से बंधे हुए हैं। वही संकुचित चिन्तन, वही दायरा। हमें इससे बाहर निकलने का मार्ग दिखाई नहीं देता। केवल ज्ञान ही आधार है, जिसके द्वारा हम इस बंधन को तोड़कर बाहर निकल सकते हैं। हमारी कुछ कामनाएं आवश्यकताएं बनकर हमें बांधती हैं और फिर आदत बन जाती हैं। **आदतों में एक बहुत बड़ा दोष यह है कि हर आदतपुनरावृत्ति**

चाहती है। कोई स्वादिष्ट फल आपने एक बार खाया नहीं कि बार बार खाने की चाह मन में जागी। कोई वस्तु जो आपको आकर्षित करती है, मन को अच्छी लगती है, तो मन बार बार उसे देखना, खाना, दोहराना चाहता है और दोहराव से आपके अंतःकरण पर पड़ी उसकी लकीरें गहरी होती जाती हैं। **यदि कोई व्यक्ति यह सोचता हो कि संसार का भोग भोगकर हम अपने मन को ऐसा तृप्त कर लेंगे कि फिर आगे कुछ चाह नहीं रहेगी, तो यह संभव नहीं है।** क्योंकि जितनी बार आप आदत को दोहराओगे, उतना बँधते जाओगे। बीच बीच में नागा करिए, व्यवधान डालिए, आदत को दोहराने से चूकिए। धीरे धीरे अन्तर बढ़ाते जाइए। दोहराने को कम करते जाइए।

यह नहीं सोचना कि आप कुछ छोड़ रहे हैं, बस आदत दोहराना कम करते जाएं। सोचोगे तो ज्यादा बंधोगे। **आदत से छुटकारा नहीं पाना है बल्कि एक गलत आदत को पालना नहीं है।** धीरे धीरे अच्छाई की तरफ आपकी प्रवृत्ति बढ़ेगी अच्छी आदत पालिए। वह भी अपने लिए दोहराव चाहेगी। एक समय ऐसा आएगा कि न अच्छाई और न बुराई दोनों तरह की आदतों से आप अपने आपको ऊपर उठायेंगे और परमतत्व की स्थिति तक पहुँच जाएंगे। खराब आदतों में बहुत ताकत होती है, वे तेजी से आपको अपनी तरफ खींचती हैं, आप स्वयं को रोक नहीं पायेंगे। जैसे किसी बच्चे से किसी खिलौने को छीनकर उसका ध्यान किताब की तरफ़ लगाने के लिए उसे दूसरा नया खिलौना देना पड़ता है तभी वह पुराने को छोड़ेगा और फिर उसे समझाइए कि अब तू बड़ा हो गया है, खिलौने छोड़, किताब पकड़। निश्चित बात है कि **जैसे जैसे आप बड़े होते जाओगे वासनाओं के खिलौने अपने आप छूटते जाएँगे। इसलिए पहले ज्ञान का विकास कीजिए। अपने आप को बड़ा कीजिए।**

आपको आदतें कैसे बाँधती हैं पहले इसका ज्ञान होना चाहिए। कोई आदत जब भी पड़नी शुरू होती है, वह पुनरावृत्ति के लिए ज़िद करती है। एक बार नहीं अनेक बार। उसके बीच में बाधा डालिए। अपने आपको समझाते हुए कि इन शाखाओं में उलझे तो यहीं के यहीं रह जायेंगे।

शाखाओं से सरकते हुए आप मूल की तरफ आइए। संसार के बीच से होकर संसार के मूल की तरफ आने की कोशिश व्यक्ति को परमात्मा की तरफ़ ले आती है और फिर जीवन में संसार नहीं रह जाता, केवल आनन्द होता है। माया को पकड़ना चाहोगे तो वह कभी पकड़ाई में नहीं आएगी। शाखाएं पकड़ने की कोशिश के बावजूद वे पकड़ में नहीं आएंगी। एक शाखा से दूसरी और फिर तीसरी शाखा में उलझ जाओगे। इच्छाओं का जाल अनन्त है। **हर इच्छा दूसरी इच्छा को जन्म देती है। हम सबकी बड़ी दुःखद स्थिति है कि जो प्राप्त है, उसका आकर्षण कम है, और जो अप्राप्त है उसका आकर्षण ज़्यादा है।** नई गाड़ी खरीदने या नया मकान लेने के बाद उस का आकर्षण थोड़े दिन तक रहता है। नए डिज़ाइन का मकान या नए मॉडल की कार दिखाई दी कि आपका ध्यान उसमें अटका। यह दुःखद स्थिति वहाँ नहीं होती जहाँ भक्ति जागती है। वहाँ व्यक्ति संतुष्ट है। वहाँ वह आनन्द में है, मन का भटकाव नहीं है। इसलिए मन के भटकाव में नहीं जीना।

एक संसार मस्तिष्क का संसार है, दिमागी संसार, बुद्धि का संसार और एक संसार दिल का संसार है, हृदय की भावनाओं का संसार। दिमाग के संसार में तर्क ही तर्क हैं। दिल के संसार में भावनाएं हैं। माँ के पास दिल है, पिता के पास दिमाग है। पिता भावनाओं में नहीं जीता, माँ भावनाओं में जीती है। पश्चिम में जहाँ भोग सामग्री का बाहुल्य है उनकी प्रकृति और प्रवृत्ति उन्हीं में रमी है। वे भावना को कोरी और निरर्थक भावुकता समझते हैं। अगर भोग के साधन उपलब्ध कराने के लिए पर्याप्त धन है तो उसकी आदत पड़ भी जाए तो परमात्मा की उपासना भी उनकी नियमित आदत में से एक है। वे लोग केवल दिमाग से ज़ी रहे हैं। भारत के पास दोनों चीज़ें हैं। यहाँ दिल भी है और दिमाग भी है, दोनों का मेल है। व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता ही तभी है जब उसके अन्दर पिता की बुद्धिमता हो और माँ की ममता हो। जब दोनों चीज़ें जुड़ती हैं तो व्यक्ति सम्पूर्ण बनता है। कुछ लोग सिर्फ़ दिमाग के आधार पर जीते हैं। वे हृदयहीन लोग हैं। उनके पास हृदय जैसे है ही नहीं। सिर्फ

कठोरता है। यहाँ **भारत में यदि कोई व्यक्ति एक चींटी को भी जाते हुए देखता है तो वह अनुभव करता है कि किसी समय, किसी चेतना में उसका आत्मस्वरूप इस चींटी के रूप में रहा हो सकता है।** इसलिए ज्ञान और चेतना का जितना विस्तार भारत में है और यहाँ के ज्ञानियों ने जितनी ऊँचाई पर सोचा है इतनी ऊँचाई से दुनिया में किसी ने नहीं सोचा।

आइंस्टीन ने जब अपने प्रयोगों का परिणाम दुनिया के सामने रखा तो जर्मन तानाशाह हिटलर जैसे लोग उसके पीछे पड़ गए। आइंस्टीन जर्मनी से भागकर अमेरिका चले गये। अपनी खोजों के आधार पर आज वह दुनिया के वैज्ञानिक हैं। इधर हिटलर ने अनेक वैज्ञानिक इकट्ठे किये और उनसे कहा कि तुम सब बुद्धिमान लोग इकट्ठे होकर, आइंस्टीन ने जो कुछ खोजा है, उससे विपरीत लिखना शुरू करो और बताओ कि वह गलत आदमी है। उसे बदनाम करने के लिए एक के मुकाबले सौ खड़े हो गए। किसी ने आइंस्टीन से जाकर पूछा कि आपको गलत सिद्ध करने के लिए बहुत कोशिशें की जा रही हैं, क्या आप इस बात को जानते हैं। आइंस्टीन बहुत ज़ोर से हँसा और बोला "अगर मैं सत्य हूँ तो फिर सौ को साथ लाने की ज़रूरत नहीं है। अगर मैं ग़लत हूँ तो फिर एक ही आदमी काफ़ी है जो खड़ा होकर कह दे कि मैं ग़लत हूँ। **जो सत्य है, उसे किसी की गवाही की ज़रूरत नहीं पड़ती।"**

तो **मूल है सत्य और सत्य से ही आपको जुड़ना है।** संसार में घूम आयें, शाखाओं की तरह फैलते चले जाएँ, लेकिन यह न भूलें कि हर शाखा का आधार जड़ है। जड़ स्थिरता देती है और जड़ है परमात्मा। परमात्मा से जुड़ने से ही हममें स्थिरता आती है। संसार को समझते ज़िन्दगी बीत जाती है, लेकिन यह समझ में नहीं आता कि संसार है क्या? लोगों के जीने का ढंग क्या है? लोगों का व्यवहार क्या है? यह रिश्ते नाते क्या हैं?

ज़्यादा समस्या इसीलिए है कि हम लोगों को समझ नहीं पाते और लोग हमें समझ नहीं पाते। हमारा अज्ञान हमारे दुःख का कारण बना हुआ है। एक बच्चा छाया के पीछे भाग रहा है। उछलता है पर छाया पकड़ में नहीं आ रही। आखिर में एक ज्ञानी पुरुष ने बच्चे से कहा, "अगर

तू चाहता है छाया को पकड़ना, तो मैं तुझे तरकीब बताता हूँ।" उसने बच्चे का हाथ पकड़ा और उसी के सिर पर रखकर कहा, "अब छाया की तरफ देखो।" बच्चे ने छाया की तरफ देखा तब वह खुशी से उछलकर कहता है, "मैंने छाया को पकड़ लिया, मेरा हाथ छाया को पकड़े हुए है।" **संसार को पकड़ने का तरीका यही है कि अपने आपको पकड़िए क्योंकि आपके हृदय में आपका परमात्मा है और परमात्मा का ही बिम्ब सारे संसार में चमक रहा है।** अपने अन्दर परमात्मा को पकड़ लीजिए। उस मूल को बाहर किसी तीर्थ में ढूंढने की कोशिश करोगे, तो उसे नहीं पा सकोगे। इसलिए साधक और ज्ञानी ध्यानी लोग यह कहते रहे हैं कि जो मूल है उसको पकड़ो। मूल तुम्हारे अंतर में है। सारे संसार का मूल परमात्मा है। जो परमात्मा को पकड़ लेता है वह उसकी कृपा की एक बूंद से तृप्त हो जाता है। जिसने नहीं पकड़ा वह जगह जगह भटकेगा, उस हिरण की तरह जो रेगिस्तान में अपनी प्यास बुझाने के लिए दौड़ता रहता है। मृगतृष्णा के पीछे नहीं दौड़ो। परब्रह्म के स्रोत से जीवन को जोड़ लो।

जिन नदियों में जल सदा बहता रहता है, वास्तव में नदियाँ तो वही होती हैं। वह सदा नदियाँ कहलाती हैं। वे नदियाँ जिनमें कभी कभी जल आ जाता है, खासकर बरसात के दिनों में, लोग उनको भी नदी कहते हैं। लेकिन वह नदी क्या हुई जिसमें जाओ तो पानी न मिले। ज़िन्दगी तो सबकी है, सब साँस ले रहे हैं, और मनुष्य का चोला भी सबका है, लेकिन **जिसमें कोई उत्साह नहीं है, कोई मस्ती नहीं है, प्रसन्नता और उल्लास नहीं है, कर्मठता और स्फूर्ति नहीं है, वह ज़िन्दगी ज़िन्दगी नहीं है।** वह बिना पानी वाली नदी है। जिन नदियों में जल सदा बहता है वह नदियाँ हिमालय से जुड़ी होती हैं। हिमालय मूल है जहाँ से नदियाँ निकलती हैं। हिमालय कुछ और नहीं परमात्मा है। जो हिमालय से जुड़ी हुई नदी है और जो हिमालय रूपी परमात्मा से जुड़ा हुआ इन्सान है, उसकी ज़िन्दगी में हमेशा ही जल बहता रहेगा, आनन्द बहता रहेगा। आप अपने को आधा अधूरा बना कर जीना चाहते हो तो संसार से जुड़े रहो और अगर अपने में सम्पूर्णता लाना चाहते हो तो फिर अपने मूल, अपने

परमात्मा से जुड़ने की कोशिश करो।

यदि आप किसी सिद्ध साधक को, संत को, ज्ञानी, ध्यानी को देखें तो उसमें आपको शान्ति, प्रसन्नता, उल्लास नज़र आएगा। यह उसका अपना नहीं है। वह किसी हिमालय (परमात्मा) से जुड़ा हुआ है। संसार का मालिक, परमात्मा, जो मूल है वह पूर्ण है और उसकी व्यवस्था भी पूर्ण है। उसके साम्राज्य में अव्यवस्था कहीं नहीं है। महान पुरुष संसार में जीने की व्यवस्थाएँ दिया करते हैं। परम व्यवस्थापक से जुड़े होने के कारण उन्हें व्यवस्था का, प्रबन्ध का ज्ञान है। इसलिए भगवान उनको अपना विस्तार करने का अवसर देते हैं।

हम अपने घर के चार लोगों को बाँध कर नहीं रख सकते, उनकी व्यवस्था नहीं कर सकते परन्तु वह, जिसकी शक्ति परमात्मा से जुड़ती है, वह एक नहीं, लाखों लोगों की व्यवस्था बनाएगा, लाखों को ज़िन्दगी का संदेश देगा, लाखों को भंडारे के साथ बाँध सकेगा, लाखों व्यक्तियों के जीवन में उत्साह भर देगा, क्योंकि वह स्वयं परमात्मा से जुड़ा हुआ है, मूल से जुड़ा हुआ है। जितने भी संत, ज्ञानी ध्यानी लोग रहे हैं, हर युग में, उन लोगों ने पेट भरना या परिवार के पोषण को समस्या माना ही नहीं, जबकि हम लोग तो सारी जिन्दगी इसी में बिताते हैं। महिलाओं की आधी से ज्यादा जिन्दगी रसोईघर में बीत जाती है। उनका ध्यान उधर ही रहता है। पुरुषों की आधी से ज्यादा ज़िन्दगी अपने दफ्तर, दुकान या कारोबार वाली जगह में पेट भरने के साधन जुटाने में बीत जाती है। उसके बाद शरीर रोगी हो जाता है। इंसान अपने आपको बचाने में, अपने को सुरक्षित रखने में लग जाता है।

किसी चींटी को, किसी हाथी को रसोईघर (किचन) वगैरह की आवश्यकता नहीं पड़ती। न उनको ईंधन जोड़ने की आवश्यकता है, न माचिस की डिबिया लाने की जरूरत है न मिट्टी का तेल चाहिए और न गैस का सिलेण्डर। उनकी व्यवस्था तो अपने आप में पूरी है क्योंकि उनकी व्यवस्था परमात्मा कर रहे हैं। इसलिए उनके लिए यह सोचना कोई ज़रूरी नहीं है कि गैस किस कम्पनी की आएगी। यह तो इन्सान की समस्या है।

उनके लिए परमात्मा ने रोशनी (लाइट) की व्यवस्था की हुई है इसलिए बिजली भागेगी तो आपकी भागेगी, उनके घरों में कोई अंधेरा होने वाला नहीं है क्योंकि वे भगवान की व्यवस्था में देखते हैं। सारी समस्याएँ आप लोगों के लिए ही हैं क्योंकि आप कर्म योनि और भोग योनि के चक्रव्यूह में फंसे हैं। जितने भी पशु पक्षी, कीट पतंग हैं, उनकी व्यवस्था भगवान ने की हुई है। मकान बनाने के लिए उनको अलग से नक्शा नहीं बनवाना पड़ता क्योंकि उनको उसका नक्शा परमात्मा के दरबार से पहले से ही मिला हुआ है। भगवान ने उनके दिमागी कम्प्यूटर में नक्शा भरा हुआ है। बिल कैसे बनाना है चूहे जानते हैं। अब वह चाहे काश्मीर का चूहा हो या मद्रास का सभी एक जैसा ही बिल बनाएंगे। कौआ चाहे 'अटक' का हो या 'कटक' का, जहाँ का भी होगा, वह अपना घोंसला एक जैसा ही बनाएगा।

कभी आप चींटियों की कालोनी देखिए कि किस तरह से बसती हैं। आप हैरान हो जाएँगे उनकी व्यवस्था देखकर। ऊपर से, एक ही द्वार है परन्तु ज़मीन के अन्दर प्रवेश करने पर अन्दर से उनकी पूरी कालोनी बनी होती है। बीच बीच में पार्क के लिए जगह भी छोड़ी हुई होती है। गोदाम कहाँ बनेंगे, माल कहाँ पर जमा होगा, बस्ती कहाँ बसेगी, रहने वाले कहाँ रहेंगे, बच्चे कहाँ रहेंगे, अण्डे कहाँ होंगे, अंगरक्षक लोग कहाँ पर खड़े होंगे, सबकी पूरी व्यवस्था है। मधुमक्खियां छत्ता बनाती हैं तो रानी मक्खी कहाँ बैठेगी, बाकी अंगरक्षक कहाँ रहेंगे, माल जमा करने वाले कहाँ रहेंगे, हिसाब लगाने वाले कहाँ रहेंगे, उनको इस बात का पता होता है। भगवान ने उनको नक्शे दिए हुए हैं। वे अपने नक्शे के मुताबिक ठीक ढंग से चल रही हैं। लेकिन इन्सान का कोई नक्शा कभी पूरा नहीं होता। इन्सान जब किसी भी डिज़ाइन से मकान बनाएगा, यदि उसको बढ़ाने की बात आएगी तो उसके लिए यह समस्या ज़रूर रहेगी कि कहीं से तोड़ना पड़ेगा। इसलिए आपकी व्यवस्थाएँ कभी सम्पूर्ण नहीं कहलातीं।

विकास की सम्भावनाएँ बहुत हैं, लेकिन आनन्द से जिओ तो सही। इसलिए अपने को उलझने से रोकिए। अपने को गलत दिशा में दौड़ते रहने से रोकिए। गलाकाट प्रतिस्पर्धा में शामिल होने से अपने को रोकिए।

आपको मूल की तरफ़ लौटना ही होगा। इसलिए 'गीता' में पन्द्रहवें अध्याय की शुरुआत सृष्टि के वृक्ष, जिसका मूल शाश्वत है, परमात्मा से हो रही है। यह संसार अश्वत्थ है। अश्वत्थ का अर्थ होता है पीपल। 'श्व' का मतलब है आने वाला कल। 'अश्व' अर्थात् जो कल नहीं रहेगा। 'स्थ' का अर्थ हुआ जो कल ऐसा स्थिर नहीं रहेगा। **यह जो संसार है, आज कैसा है और कल कैसा होगा, इसकी कल्पना हम नहीं कर सकते। हर रोज़ नया संसार है।** इसलिए हर समय **हर रोज़ आप भी नए होते हैं। हर रोज़ की समस्या अलग है, हर रोज़ के विचार अलग हैं, हर रोज़ की भावनाएँ अलग हैं, हर रोज़ की संवेदनाएँ अलग हैं।** किसी दिन आप बहुत खुश हैं क्योंकि कोई चीज़ आपको मिली है। किसी दिन आप किसी आश्वासन में कुछ पाने की आशा में जी रहे हैं। किसी दिन आप उदास हैं क्योंकि आपने जो उम्मीद की थी, वह पूरी नहीं हुई। किसी दिन आप बहुत जोश में हैं, आपको लगता है कि आप सब बटोरते जा रहे हैं, आपके पास इकट्ठा होता जा रहा है। किसी दिन लगता है कि आज का दिन कितना स्मरणीय है क्योंकि आज आपके अपने आपके साथ हैं। किसी दिन लगता है कि आज आपके साथ आपका कोई है ही नहीं।

ज़िन्दगी में हर क्षण एक नई अनुभूति होती है। संसार किन्हीं दो क्षणों में एक जैसा नहीं रहता। वह तो बदल रहा है। आईना सामने सड़क पर लगा हुआ है। लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं। कितनी सारी छायाएं, कितने सारे प्रतिबिम्ब उसके ऊपर पड़ते हैं, पर आईना नहीं बदलता। पर्दे पर रोशनियां डाली जा रही हैं, चित्र बदलते जा रहे हैं लेकिन पर्दा (स्क्रीन) एक है, जो बदल नहीं रहा। वह तो वैसा का वैसा है। पहिया घूम रहा है लेकिन धुरी नहीं घूम रही। संसार पूरे का पूरा घूम रहा है, लेकिन जो इसको घुमाने वाला है, वह स्थिर है। वही परमात्मा है। उसी के कारण सब घटित हो रहा है, उस को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। वह वैसे का वैसा ही है। बदलती हुई दुनिया में सब कुछ बदलता है लेकिन परमात्मा रूपी तत्व नहीं बदलता। सब परिवर्तित होंगे लेकिन आपके आत्मस्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होगा। **आपकी आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं होगा। आप,**

आप ही रहेंगे। अलग अलग शरीर धारण करते रहेंगे। हर दिन एक नया दिन जन्म ले रहा होता है, नई ज़िन्दगी जन्म ले रही होती है। हर रोज़ एक साँझ होती है, हर दिन का अंत होता है, एक ज़िन्दगी का समापन होता है। लोग रोज़ जन्म ले रहे हैं, रोज़ मर रहे हैं लेकिन देखने वाले हम, हमारा चेतन तत्व सदा एक ही है। हम रोज़ नई ज़िन्दगियों को देखते हैं। नए दिन को रोज़ घटते बढते देखते हैं, खत्म होते देखते हैं, लेकिन खुद टिके हुए हैं, हम नहीं बदल रहे। अपने आत्मस्वरूप को ऐसा ही समझना, "आप नहीं बदल रहे, संसार बदल रहा है।" अगर बदलते हुए संसार के साथ बदलते रहोगे, तो रोज़ रोओगे, रोज़ हँसोगे, रोज़ दुःखी होओगे। अतः मूल से जुड़ने की कोशिश करो।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।२ ।।

भगवान यह भी कहते हैं कि सृष्टि के वृक्ष की मूल, अर्थात् उसकी जड़, अर्थात् परमात्मा जो मूल है, जिसके साथ तुम्हें जुड़ना है, वह ऊपर है। इस वृक्ष की शाखायें नीचे और ऊपर की ओर फैली हैं। इन शाखाओं पर विषयों की नई नई कोपलें तीन गुणों, सत, रज, तम से संयुक्त होकर प्रकट हो रही हैं। इन तीन गुणों सत, रज, तम द्वारा उत्पन्न होने वाली विषय वासनाओं की नई नई कोपलें इस संसार के वृक्ष में लगातार फैलती दिखाई देती हैं। यही कोपलें हैं, **कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके,** जो कर्मों द्वारा मनुष्य को संसार से बांधती हैं। शाखायें ज़मीन से लेकर आसमान तक फैली हुई हैं। ऊपर और नीचे दोनों तरफ़ इनका विस्तार है, लेकिन इस वृक्ष की जड़ ऊपर की तरफ है, एक उलटे वृक्ष की तरह। भगवान ने कहा कि सृष्टि का प्रवाह या संसार का स्वरूप इस वृक्ष की तरह का है।

जो व्यक्ति इस संसार को जानना चाहता है वह शाखाओं से मूल की तरफ़ जाये। शाखायें हैं संसार की विषय वासनायें और इस वृक्ष में जो विस्तार है वह, कर्मों का अनुबन्धन है। अर्थात् यह सृष्टि उस विराट चेतना शक्ति की ही एक अभिव्यक्ति है। **परमात्मा एक विराट चेतना शक्ति है, जिसका**

प्रकटन संसार के रूप में हुआ है। धर्म उस चेतना को प्राप्त करने का, परब्रह्म तक पहुँचने का एक मार्ग है। विवेक और वैराग्य इस मार्ग का आरम्भ है और मुक्ति समापन, उसके आगे मार्ग नहीं निकलता।

जब तक किसी चित्रकार की चित्रकारिता सामने नहीं आती तब तक उसकी विशेषता पता नहीं लगती। कोई व्यक्ति कितना ऊँचा है यह जानना हो तो केवल उस व्यक्ति को देख लेने भर से कुछ समझ में नहीं आ सकता, उसके कृत्यों से ही उसका स्वरूप जाना जा सकता है। किसी साज़ को अगर आप देखें तो उस **वाद्य में कौन सी ध्वनि छिपी है इसका अन्दाज़ नहीं लगा सकते। तबले को, सारंगी को, हारमोनियम को या सितार को बाहर से देखें या अन्दर से खोल कर देखें तो कुछ समझ में नहीं आयेगा। लेकिन जब उनके अन्दर से संगीत प्रकट होता है तब एक एक वाद्य को प्रणाम करने की इच्छा होती है।** इसी प्रकार परमात्मा यदि अपने विराट रूप को जगत में प्रकट न करता और इतना विविध संसार न बनाता तो उसके प्रति श्रद्धा से माथा न झुकता। माथा यह देखकर श्रद्धा से झुकता है कि वह इतने असंख्य जीवों की व्यवस्थाएं किस तरह से करता है? वह सबका लेखा जोखा रखता है, सबके लिए मकान की व्यवस्था करता है, सभी को भोजन एवं वस्त्र के साथ जीवन जीने का अधिकार, और उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध, फिर उसके साथ न्याय, और अंत में, उस स्थिति में जब वह इस दुनिया में रहते रहते थक गया, वापिस बुला कर फिर से नये कर्म में प्रवृत्त करता है।

इस अभिव्यक्ति की विविधता से ही उस परम तत्व के प्रति श्रद्धा और प्रेम जागता है। यह उसका चमत्कार है कि उसने सृष्टि का प्रवाह जिस तरह से प्रवाहित किया है उसमें अपूर्व सौन्दर्य है। संसार में यह प्रवाह अगर रुक जाये, कोई भी दृश्य यदि एक जगह ठहर जाये तो फिर वह सुन्दर नहीं रहता, फिर वह अच्छा नहीं रहता, फिर उससे आप आनन्दित नहीं होते। यह परब्रह्म परमेश्वर का चमत्कार है कि सृष्टि में उसने लगातार प्रवाह दिया है, गति दी है। अगर आप अपने बचपन में ही ठहर जायें, उसके आगे विकास न हो तो जीवन का सौन्दर्य लुप्त हो

जाएगा। परिवर्तन आना चाहिए। किशोर अवस्था में जब आप पहुँचते हैं तो बचपन विलुप्त हो जाता है। बचपन की पुरानी फोटो देखकर आप खुश ज़रूर हो सकते हैं लेकिन वहीं रुके रह कर खुश नहीं हो सकते थे। जहाँ अब आप पहुँच गये हैं वहाँ पहुँच कर खुश हैं। किशोरावस्था में रुके रहना भी अच्छी बात नहीं है। उसके बाद यौवन आना चाहिए, जवानी आनी चाहिए। यौवनावस्था में पहुँच कर बहुत अच्छा लगता है लेकिन आदमी फिर और बड़ा होना चाहता है, आगे से आगे बढ़ना चाहता है। लेकिन एक स्थान पर आकर हम अपने को रोक लेना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि यह जो सुख है वह मेरे पास ही ठहर जाये। लेकिन अगर जवानी ठहर गई, तो फिर उसका रस भी फीका लगने लगा। **सौंदर्य तो परिवर्तन में है।**

मालिक ने संसार के प्रवाह को जिस तरह बनाया है, उसके विषय में वेदों में कहा है :

"अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृताः"

संसार एक अश्वत्थ अर्थात् पीपल का वृक्ष है और तुम्हारा सबका ठहराव या डेरा उस वृक्ष के पत्ते पर ठहरी हुई ओस की बूंद की तरह है। ओस की बूंद अत्यन्त क्षणिक है, लेकिन उस थोड़ी देर के लिए वह बड़ी अच्छी लगती है। कुछ जीव जैसे छोटे छोटे कीट पतंग या चीटियां ज़्यादा समय तक नहीं जीते। चींटियों के हिसाब से इन्सान अजर अमर है क्योंकि चींटियों की उम्र बहुत थोड़ी सी है। हमारे हिसाब से देवता अजर अमर होते हैं लेकिन सृष्टि में कोई भी चीज़ कहीं रुकती नहीं है। हर चीज़ में परिवर्तन होता है। किसी चीज़ को आप पहाड़ की सात तहों के नीचे रख दें तो उसमें भी परिवर्तन होगा।

हमारा ठहराव पत्ते पर ओस की बूंद की तरह है। कब ओस की बूंद गिरे और उसका स्वरूप मिट जाये। ओस की बूंद क्षणिक है, हमारा जीवन भी क्षणिक है। इस क्षणिकता को हम समझें कि इस क्षणिकता में निरंतरता भी है। यह जीवन क्षणभंगुर है, थोड़े समय के लिए है, सब जानते हैं, लेकिन फिर भी **हम संसार में ऐसे उलझते हैं कि उससे बाहर निकलना ही नहीं जानते। हम इसको 'सैट' (ठीक) करते करते खुद**

'अपसैट' (उलटे) हो जाते हैं। दूसरों को सुलझाने में लगे हुए हैं, खुद अपनी ज़िन्दगी को उलझा कर बैठे हुए हैं। परिवार का हर आदमी अपनी अपनी ज़िन्दगी, अपना अपना भाग्य लेकर आया है। आपका कर्त्तव्य केवल इतना है कि उनके सहयोगी बनें। परंतु आप अपने कन्धों पर चढ़ाकर उन्हें दुनिया दिखाना चाहते हैं। यही आपकी गलती है। अपने कंधे पर बिठाकर किसी को संसार दिखाने का मतलब है कि आप उसके साथ बैसाखी लगा देना चाहते हैं, आप उसे लंगड़ा बनाकर जीने के लिए प्रवृत्त कर रहे हैं। उसे अपनी टांगों पर खड़े नहीं होने देना चाहते। आप उसे ज़िन्दगी का संघर्ष स्वयं करने दें। वे अपने ढंग से जीवन जियें, आप केवल सहयोगी बनिये। पंछी का बच्चा जिसके नए नए पंख निकले हैं, एक डाल से दूसरी डाल पर उड़ान भरता है। जब तक वह कमज़ोर है तब तक नर और मादा दोनों उसको अपने बीच में रखते हैं जिससे वह नीचे न गिर पड़े। लेकिन जब मान लेते हैं कि अब इसके पंख मज़बूत हो गये हैं तो उसे खुले आसमान में स्वतन्त्र छोड़ देते हैं।

पर **मनुष्य के साथ बहुत बड़ा दोष यह है कि वह प्रकृति के इस नियम और सिद्धान्त को समझना ही नहीं चाहता।** संसार का मोह जाल एक उलटा नियम है जो आपके स्वार्थ को पोषित कर रहा है। जो नियम आपके स्वार्थ को पूरा कर रहा हो वह आपको बहुत अच्छा लगता है और जो नियम आपके स्वार्थ को पूरा न कर रहा हो आप उसके विरोधी हो जाते हैं। आप उसकी निन्दा और आलोचना करना और दोष निकालना शुरू कर देते हैं।

याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपने वृहदारण्यक उपनिषद् में अपनी पत्नी को समझाते हुए कहा है कि "पति को पत्नी इसलिए अच्छी नहीं लगती क्योंकि वह अच्छी है, बल्कि इसलिए अच्छी लगती है क्योंकि वह उसकी कामनाओं को पूरा करती है और पत्नी को भी पति इसलिए अच्छा लगता है क्योंकि उसकी अपनी कामनायें उसके साथ जुड़ी हुई हैं। इसी तरह से कोई पुत्र इसलिए अच्छा नहीं लगता कि वह अच्छा पुत्र (इन्सान) है, बल्कि इसलिए कि उसके द्वारा पिता की कामनायें पूरी हो रही हैं।" **जो**

वस्तु हमारी आत्मा की तुष्टि और कामनाओं की पुष्टि करती है वह हमें अच्छी लगती है। अगर हम उसमें व्यवधान देखते हैं तो फिर वह वस्तु हमें अच्छी नहीं लगती, न पत्नी, न पुत्र, न पति, न भाई, न रिश्ते, न सम्बन्धी। सब रिश्तों में कहीं न कहीं व्यक्ति की अपनी कामनायें होती हैं। कोई हमारे अनुरूप चल रहा है तो वह बहुत अच्छा है। जो हमारी समझ से नहीं चलता वह ठीक नहीं है, गलत है। हम किसी से सहयोग (adjust) करें न करें लेकिन दूसरा हमारे साथ ज़रूर करे। हम किसी को बुरा भला चाहे कह दें, लेकिन दूसरा कुछ नहीं बोले। हम चाहे जिसकी बेइज्ज़ती कर दें लेकिन सबको हमारी इज्ज़त करनी चाहिए। हम अपनी इन विचित्रताओं के जाल में फंसे रहना चाहते हैं।

भगवान ने कहा वेद इस वृक्ष के पत्ते हैं। वृक्ष का सौन्दर्य उसके पत्तों से होता है इसलिए पत्तों रूपी वेद को जो जान लेता है और फिर पत्तों से वह मूल तक आ जाता है, ईश्वर तक पहुंच जाता है, वही ज्ञानी है। भगवान ने यह भी कहा :

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।३।।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।४।।

अर्थात् संसार रूपी इस वृक्ष का रूप संसार में दिखाई नहीं देता। यह उलटा वृक्ष दिखाई नहीं देता लेकिन संसार का वृक्ष ऐसा ही है, इस वृक्ष का न आदि है न अन्त। कहाँ से शुरू हुआ, कहाँ तक फैला हुआ है कुछ पता नहीं। इस वृक्ष को स्वरूप देने वाले 'परब्रह्म परमेश्वर', का भी न आदि है न अन्त क्योंकि वह शाश्वत है। लेकिन कार्य और कारण के सिद्धान्त के अनुसार बिना किसी कारण के कोई कार्य नहीं है, हर कार्य का कोई न कोई कारण है।

दर्शनशास्त्र में इस नियम का उल्लेख है कि जहाँ धुआँ है वहाँ आग है। आग बिना धुएँ के हो सकती है लेकिन धुआँ बिना आग के नहीं हो सकता। हर चीज़ का कहीं न कहीं कारण मौजूद है। कारण में दोष होगा

तो वह पहले दिखाई देगा। **संसार में सब वस्तुओं का आदि और अन्त तो शाश्वत परब्रह्म परमेश्वर है लेकिन परमेश्वर का आदि और अन्त नहीं है।** हम अपने अन्दर भी अपनी वासनाओं का एक संसार बसा लेते हैं जिसका आदि और अन्त भी हमें दिखाई नहीं देता। इन वासनाओं के कारण हम जन्म और मरण के चक्र में फंसते हैं। **एक जन्म में कर्म करते यदि हमारी चेतना किसी के मोह, किसी वासना, या किसी पदार्थ की आसक्ति में ठहर गई तो उसी आधार पर हमारे अगले जन्म की प्रक्रियाएं बनेंगी।** यदि इस जन्म के कर्म अच्छे नहीं हुए तो हो सकता है कि अगले जन्म में जो चोला मिले, वह कीट पतंग या पशु पक्षी का हो। जो वासनायें आखिरी समय में अपूर्ण रह गईं थीं उनको पूर्ण करने के लिए पुनः चेष्टारत होना पड़े। यह जन्म बहुत क्रोध करते, ईर्ष्या द्वेष करते व बदला लेते जिया तो अगला जन्म मनुष्य का नहीं भेड़िए का मिल सकता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस वृक्ष की शाखाओं को काटकर इसकी उलझनों से बाहर निकलने का केवल एक ही रास्ता है **'असंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।'** अर्थात् अनासक्ति, विवेक और वैराग्य।

अपने को संसार से ऊपर उठाने के लिए व्यक्ति को विवेक और वैराग्य दोनों का सहयोग चाहिए। ज्ञानियों का आसक्ति और पदार्थों के प्रति कभी मोह नहीं रहा। इसलिए संसार को छोडने के समय उन्हें कष्ट नहीं हुआ।

गांधी जी के जीवन में राम धुन समायी रही इसलिए जब उन्होंने शरीर छोड़ा तो 'हे राम' कह कर छोड़ा। उनकी चेतना राम में बस गई थी। शरीर में तीन गोलियाँ लगने की पीड़ा रही होगी। मुख से कुछ और भी निकल सकता था लेकिन चेतना जिसमें बसी हुई हो आखिर में वही तो निकलता है। किसी महापुरुष की विशेषता देखनी हो तो उसका अन्त और अन्त में मुख से निकले आखिरी वाक्य को देखें।

एक सही दिशा में चलते रहने का अभ्यास करते हुए, वैराग्य और ज्ञान से अपने आप को पकाओ ताकि जिस समय आप पर कोई चोट पड़े या सुख आये, तो उस समय मूल अर्थात् परमात्मा की तरफ ध्यान रहे। संसार रूपी वृक्ष का मूल परमात्मा है, मूल से जुड़े रहना। पत्तों को सींचने

से बात नहीं बनेगी। मूल में पानी डालना।

संसार के ऐश्वर्य को पाने के लिए चाहे कितनी सड़कें बनाकर जितनी भी तेज़ी से दौड़ोगे उतना ही उलझते जाओगे। थोड़ी दिशा बदल कर जहाँ से सारे रास्ते शुरू होते हैं, और जहाँ जाकर सब मिल जाते हैं उसी को लक्ष्य बना कर संसार की यात्रा शुरू करो तो आदि और अन्त दोनों सही हो जायेंगे। यदि आप कोई गोला बनायें तो आप जिस बिन्दु से शुरू करेंगे, वहीं आना पड़ेगा। परिधि चाहे छोटी बनाएं या बड़ी, जहाँ से शुरू करेंगे आखिर में उसी बिन्दु पर आना पड़ेगा। इसी प्रकार **संसार के चक्र में शुरुआत जहाँ से होगी वह भी परमात्मा है और जहाँ आकर खत्म होगी वह भी परमात्मा है।** सारी भाग दौड़ का एकमात्र बिन्दु परमात्मा है। सब यात्राओं में यदि यह मूल बिन्दु ध्यान में रहेगा तो यात्रा पूर्ण होगी।

जल की कोई धारा जो चली थी सागर से मिलने परन्तु बहते बहते किसी रेगिस्तान में फंस जाये, वहाँ उसका जल खतम हो जाये तो भी उसे वापिस अपने वृत्त में आना पड़ेगा, अर्थात् जहाँ से जल बिन्दु शुरू हुआ था (और बिन्दु शुरू हुआ था समुद्र से)। समुद्र में एक तरफ सारी नदियाँ आकर मिलती हैं तो दूसरी तरफ जल का वाष्पीकरण हो रहा है, मानो कोई नीचे देग में चूल्हा जला कर खूब तेज अग्नि से पानी गरम कर रहा हो; पानी गरम नहीं हो रहा, फिर भी भाप बनकर उड़ रही है। पानी ऊपर उठ रहा है, बादलों में जा रहा है। बादल बरसते हैं तो पानी की बूंदें पहाड़ों पर बर्फ बन रही हैं। बर्फ पिघल कर जल फिर नदियों के रूप में बह कर समुद्र में मिला है। रेगिस्तान में फंसी जल की बूंदें भी खतम नहीं होतीं, किसी न किसी रूप में या तो ऊपर उड़ेंगी या फिर नीचे वृक्षों के माध्यम से सागर तक पहुँचती अवश्य हैं।

ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात एक ही है कि आनन्द और शांति की खोज में हम चाहे कितना दौड़ें, वह समाहित है परमात्मा में ही। सारा दिन काम करते करते जब आदमी थक जाता है तो वह चाहता है शान्ति, चैन और आनन्द। जन्म बीत जायेंगे, वह थक जायेगा, तो अपने पड़ाव पर पहुंचने की चाह करने लगेगा। साधना करते करते आदमी रोने लगता है,

प्रार्थना करते करते यह कहने लगता है कि हे भगवन्! अभी कितने जन्म और भटकना पड़ेगा? फिर आदमी कहेगा, हे प्रभु! अब और नहीं। अब इन शाखाओं को काटो, जिनमें मैं उलझ गया हूँ।

हम एक जंगल में उलझ गये हैं। झाडियों झंखाड़ों ने हमें चारों तरफ से जकड़ लिया है। हम बाहर निकलना चाह कर भी निकल नहीं पा रहे। अफ्रीका में ऐसे नरभक्षी (जीवभक्षी) वृक्ष हैं जो किसी भी जीव को, मनुष्य और पशु पक्षी को, अपनी ओर खींच कर उनका खून चूस लेते हैं। यह संसार उन वृक्षों जैसा है जो हमें अपनी ओर खींच कर चूस रहें है। लेकिन हमें यह भी दिखाई नहीं दे रहा कि कोई हमारा खून पी रहा है। हमारी हालत उस कुत्ते जैसी है जिसका मसूढ़ा हड्डी चबाते चबाते फट गया है और उसमें से उसका अपना ही खून बह रहा है जिसे चाटता हुआ वह यह सोचता है कि वह बहुत बढ़िया रस ले रहा है, लेकिन बाद में तड़पता है। संसार के भोगों में हम अपने ही शरीर की ऊर्जा को जला रहे हैं। विषयों की हड्डी को चबाते चबाते हम अपने ही खून को चाट रहे हैं।

जब तुम्हें ज्ञान होगा तो तुम स्वतः ही सब जंजालों से ऊपर उठना शुरू कर दोगे। निर्लिप्तता और असंगता की तलवार हाथ में लो और इन शाखाओं को काट दो। **अनासक्त होकर संसार में जीना। कर्त्तव्यपरायणता हो, प्रेम हो, पर मोह नहीं।** बड़ा अन्तर है दोनों में। प्रेम में व्यक्ति बांटता है। जिसके प्रति प्रेम और भावनायें हैं उसे देगा, बदले में कुछ नहीं चाहेगा। राष्ट्र प्रेम होगा तो आप राष्ट्र के लिए कुर्बानियाँ देंगे। माता पिता के प्रति प्रेम, श्रद्धा बन कर उभरेगा। **पत्नी को पति से बहुत प्रेम है, लेकिन अगर पति को राष्ट्र की रक्षा के लिए जाना है तो तिलक करने के लिए पत्नी आगे आयेगी।** इतिहास में राजस्थान की क्षत्राणियाँ उदाहरण हैं। अपने पति के माथे पर तिलक लगा कर क्षत्राणी कहती थी, "वह कुल धन्य होता है, जिस कुल में कोई वीर जन्म लेता है। मैं सौभाग्यशालिनी हूँ कि मेरा पति वीर है। युद्ध में जाओ लेकिन पीठ दिखा कर नहीं आना, छाती पर वार सहना पीठ पर नहीं।" उसे अपने पति से बहुत प्रेम है, लेकिन राष्ट्र के तीव्र प्रेम में खुद की भी कुर्बानी देना चाहती है।

हाडा रानी का उदाहरण है। नया विवाह हुआ है। सरदार चूड़ावत को अपनी पत्नी में बहुत ज़्यादा मोह था। उस वीर राजपूत ने युद्ध में जाते जाते अपनी पत्नी से कहा, "अभी तो तेरे हाथ की मेंहदी भी नहीं सूखी और मुझे युद्ध में जाना पड़ रहा है। मुझे नहीं लगता कि मैं लौट कर आऊँगा। परन्तु तेरा क्या होगा, यह सोच कर मुझे दु:ख हो रहा है।" हाडा रानी ने पति के माथे पर तिलक किया और कहा, "जाइए, देश ने पुकारा है। देश के लिए आपका जाना जरूरी है।" तिलक किया और भेज दिया। सौ पचास मील जाकर फौज ने पड़ाव डाला। चूड़ावत ने वहां से रानी को पत्र लिखा, "यहाँ का मौसम बहुत अच्छा है। हम लोग घर से काफ़ी दूर आ गये हैं। बहुत सारी फौजें हमारे साथ हैं, लेकिन मुझे तुम्हारे बिना कुछ अच्छा नहीं लग रहा।" भावुकता में आकर और आगे लिखा, "अब थोड़े समय के बाद जब हमारा डेरा यहाँ से कूच करेगा तो हम सीधे मोर्चे पर होंगे। लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी कोई निशानी मेरे पास हो। मैं उसे देख कर लडूँगा तो मेरी शक्ति बढ़ जायेगी।"

वह पत्र लेकर जब एक व्यक्ति पत्नी के पास पहुँचा तो उस क्षत्राणी ने घुड़सवार से पत्र लिया, पढ़ा और फाड़ दिया। आँखे लाल हो गई। सामने खड़ा घुड़सवार कहता है कि उन्होंने कहा है कि कोई निशानी ले कर आना। तब रानी ने उससे तलवार मांगी और घुड़सवार से कहा, "जो निशानी मैं दे रही हूँ, उन्हें कहना कि उसे याद रखें, उस निशानी को कभी भूलें नहीं।" ऐसा कह कर रानी ने तलवार उठाई और अपनी गर्दन पर इतनी ज़ोर से प्रहार किया कि गर्दन कट कर नीचे गिर पड़ी। रानी ने अपनी गर्दन को काट कर पति को निशानी भेज दी। चारों तरफ़ हाहाकार मच गया। जो महारथी किले की सुरक्षा के लिए थे, उन्होंने कहा, "रानी ने निशानी के लिए अपना सिर दिया है, उसे सजाकर ले जाओ।"

हाडा रानी का सिर थाल में सजा कर के रखा गया और घुड़सवार सरदार चूड़ावत के पास ले गया। वहाँ जाकर उसने पूरे रौब के साथ कहा, "रानी ने आपके लिए उपहार भेजा है।" सरदार ने जैसे ही रुमाल ऊपर से उठाया तो रानी का सिर देख कर ज़ोर ज़ोर से बिलखने लगा।

सरदार चूड़ावत ने अपनी पत्नी के बालों की रस्सी सी बना कर सिर को गले में डाल लिया। तब दोनों हाथों में तलवार लेकर घोड़े पर बैठा। आंखों में खून उतर आया। जिस क्षत्राणी ने अपने देश के लिए इतनी बड़ी कुर्बानी दी उसके राष्ट्र को कोई गुलाम नहीं बना सकता। प्रेम कितना ऊँचा हो गया। राष्ट्र के लिए अनेक कुर्बानियाँ दी जा सकती हैं। **अपने प्रेम का इतना विस्तार करो कि राष्ट्र के लिए, मानवता के लिए बलिदान देने वाले बन जाओ,** या फिर संसार की मोह ममता के बन्धन काट डालो और विवेक तथा वैराग्य जगाकर इतने ऊँचे उठ जाओ कि तुम्हारा ध्यान परब्रह्म की तरफ मुड़ जाये।

तीन अग्नियाँ इन्सान को जलाती हैं। पहली है तृष्णा की अग्नि। जागा हुआ इन्सान विवेक और वैराग्य से तृष्णा की अग्नि को बुझा लेता है। दूसरी जठराग्नि है अर्थात् पेट की आग, जिसको बुझाने के लिए हम रात दिन दौड़ रहे हैं। इसका ईंधन ढूंढने, इस के लिए तरह तरह का भोजन इकट्ठा करने में लगे हुए हैं। तीसरी अग्नि कामाग्नि है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट करने वाली अग्नि है। जो इन तीनों का संतुलन कर ले वह योगी है, वह वैरागी है, वह ज्ञानी है। जो ज्ञानी है वह इन जालों में फंसा नहीं करता।

सृष्टि रूपी वृक्ष के पत्ते हैं वेदज्ञान। इस ज्ञान को प्राप्त करो। ज्ञान से युक्त हो जाओगे तो फिर वैराग्य जागेगा। वैराग्य जागा तो फिर तुम किसी भी सांसारिक बन्धन से बाहर निकलने में सफल हो सकोगे। **ज्ञानी व्यक्ति पीड़ा में मुस्कुराता है, मृत्यु आती दिखती हो तो भी घबराता नहीं। जो बात बात में रोये वह अज्ञानी है। जो खुशी के पलों में मुस्कुराए नहीं वह अज्ञानी है और जो रोतों को भी हँसा दे वह ज्ञानी है।** इस प्रकार दोनों की पहचान और मिलान करते जाना। पढ़ाई लिखाई और डिग्रियां, प्रमाण पत्र और सर्टिफिकेट, और मनोरंजन के साधन होने के बावजूद जिसके मन में रंज हो, दिल खुश करने के लिए बहुत सारी चीजों, सुविधाओं के होते हुए भी जो दुविधाओं में जिए, गर्व करने के कारण हैं फिर भी निराशा या अभिमान में जिए तो समझना वह अज्ञानी व्यक्ति है। पर जिसके पास

सुविधा नहीं है फिर भी दुविधाओं को ही सुविधा समझे, अशान्ति के बीच में जो शान्ति के फूल खिलाये, माथे पर आई चिन्ता की रेखाओं को जो चिन्तन में बदल दे, अपनी चिता जलने से पहले तक जो अपनी चेतना को जागृत करने में लगा रहा हो वह ज्ञानी है। प्रसन्नता के लिए आयोजित खेल को जो आनन्द और मस्ती के लिए समझे, तब तो वह सामान्य इन्सान है, लेकिन जो उसी खेल को कर्म और बोझ बना ले वह अज्ञानी है। कर्म को खेल बनाने वाला ज्ञानी है। जो खेल को भी कर्म बना ले, वह अज्ञानी है। **कर्म को पूजा बना लो, पूजा को कर्म नहीं बनाना।** पूजा को यदि कर्म मानोगे तो वह धन्धा हो जाएगा। हमारा प्रत्येक कर्म ही पूजा है।

ज्ञानी के जीने का अन्दाज़ ही अलग होता है। वह किसी चीज को बोझ बनाकर नहीं जीता, बोझ को हल्का कर लेता है। बोझ उठाते समय पहलवान महसूस करता है कि शक्तियाँ उसके अन्दर प्रवेश कर रही हैं। मज़दूर बोझ उठाता है, तो उसे मजबूरी समझ में आती है। **ज़िन्दगी को मज़बूरी मान कर चलोगे तो हर पल, हर कदम दुःखदायी लगेगा।** ज़िन्दगी को प्रसन्नता और उल्लास समझोगे तो हर कर्म आपके लिए प्रसन्नता और मस्ती देने वाला बनेगा। इसलिए अगर जीने के ढंग को अच्छा बनाना चाहते हो, तो जीने का सही अन्दाज़ अपनाओ। ज्ञान की सही दिशा समझो।

भगवान ने कहा है, '**यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः**', जहाँ जाने के बाद फिर वापिस लौटना नहीं होता '**ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं**' उसी परम पद की तलाश करना, उसी मार्ग को खोजना सही दिशा है। अपने घर पहुँचने के बाद मुसाफिर रास्ते की थकान भूल जाता है। बच्चा माँ की गोद पाकर चैन पाता है। दुनिया का सताया हुआ इन्सान परमात्मा की गोदी में, परब्रह्म के आनन्द में पहुंचता है तो फिर वहाँ से लौटना नहीं चाहता, आनन्द में डूब जाना चाहता है।

विवेक और वैराग्य उस परम चेतना को पाने का आरम्भ है; यहाँ से शुरुआत होगी। मुक्ति उसका समापन है,जैसे समुद्र में जाकर नदी मिल गई। परम पद पा लिया। जिन्दगी में एक ही खोज जारी रखना, परब्रह्म

तक पहुंचने की खोज। वहाँ पहुँच कर देखोगे कि वह परम पद परमात्मा ही है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब तुम्हारी भावना, '**तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये, यतः प्रवृत्ति प्रसृता पुराणी**' वाली बन जाए तो समझना कि तुम परब्रह्म परमात्मा की शरण में हो। तुम उसे पाने के लिए आतुर हो, तुम्हारी सारी चाह परमात्मा है, तुम्हें कोई और छोटी मोटी चाह नहीं है। तुम लालचवश किसी बड़े खजाने का मालिक नहीं होना चाहते क्योंकि तुम्हारे परमात्मा के पास ही सबसे बड़ी समर्थता है और उसी के पास सबसे अच्छा संगीत, और सबसे बढ़िया स्वाद है।

लोकमान्य तिलक ने कहा था, "गीता तुम्हें जितनी समझ में आ जाये, जितना ज्ञान तुम्हारी बुद्धि में बैठे उतने का आचरण शुरू कर दो।" जितना मार्ग पता लगा है उतना तो चलना शुरू कर दो। तुम सारा ही नक्शा हाथ में लेकर बैठ गये और कहने लगे कि आगे सड़क कहाँ जाएगी, किधर जाएगी, उधर जाएगी या नहीं, इधर से जाएगी या नहीं, इत्यादि। एक ही जगह बैठे नक्शा पढ़ रहे हो, आगे चलते नहीं। जितना रास्ता दिखाई दे गया पहले वहाँ तक चलो। टॉर्च लेकर अगर सौ किलोमीटर लम्बे सुनसान अंधेरे जंगल को पार करना है तो टॉर्च सौ किलोमीटर तक रोशनी नहीं करेगी परंतु घबराने का काम नहीं है। **टॉर्च एक बार में सिर्फ दस कदम रास्ता रोशन करेगी लेकिन हर कदम पर दस कदम आगे रोशन करती जायेगी। ज़िन्दगी में हर स्थिति में ऐसा होता है।** भगवान ने आपको विवेक दिया है, रोज़ सुनो, रोज़ पढ़ो, रोज जानो। **ज्ञान रूपी टॉर्च आपके हाथ में है, कदम कदम चलते जाओ। हर कदम अगले कदम का रास्ता बताएगा।** टॉर्च जलाये रखना, यात्रा ज़ारी रखना। कदम बढ़ाते जाओगे तो बढ़ते जाओगे और पहुंचोगे ज़रूर। रुकना नहीं, बस इतनी शर्त है। अगर आप रुक कर बैठ गये तो मंजिल तक नहीं पहुँच सकते।

हमारी शक्ति और ऊर्जा परमात्मा के परमधाम की ओर जाने में लगे इसका भगवान ने एक मार्ग बताया है :

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः परमव्ययं तत्।।५।।

भगवान कहते हैं, मान अपमान से परे रहकर, अभिमान को त्याग कर, संसार के मोह से हटकर, संसार के संग दोष को जीतकर **'अध्यात्मनित्या'**, अपनी आत्मा की ओर उन्मुख होकर, सुख दुःख की अनुभूतियों का ध्यान करते हुए कि यह सुख दुःख कहाँ से, क्यों और किस प्रकार से आता है, **'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः'**, संसार के द्वन्द्वों से विमुक्त होकर, ज्ञान को प्राप्त होकर, अविनाशी परमपद तक पहुंचने के लिए तुम प्रयत्नशील होओ। भगवान ने कहा

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।६।।

मेरे धाम का मार्ग यही है कि तुम मान, अभिमान व मोह आदि का परित्याग करके आओ। मेरे धाम को सूर्य प्रकाशित नहीं करता, न कोई चन्द्रमा उसे प्रकाशित करता है और न किसी अग्नि से वहाँ प्रकाश होता है। समस्त प्रकाश जो सारे संसार में है वह मेरे धाम के कारण है। मेरे इस स्वरूप के कारण है। **'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'**, जहाँ जाने के बाद फिर वापिसी नहीं है। जहाँ पहुँचने के बाद जीव के लिए परमानन्द है। जहाँ जाकर समस्त पीड़ाओं का अन्त हो जाता है। जहाँ कोई कष्ट, क्लेश और चिन्ता नहीं रह जाते। जब तक व्यक्ति संसार के वृत्त में, और चक्रव्यूह में फँसा हुआ है तब तक उसके जीवन में भटकाव और अशान्ति रहेगी। आप जब किसी वृत्त को बनायेंगे, कोई घेरा खीचेंगे तो जहाँ से, जिस बिन्दु से शुरू करेंगे फल भोगने के लिए लौटकर वहीं आना पड़ेगा। इन्सान इस चक्र से बाहर नहीं निकल पाता। वह संसार की दलदल में फंसता ही जाता है। जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद फिर जन्म है। संसार में एक व्यवस्था बन गई है कि दुःख के बाद सुख और सुख के बाद फिर दुःख आएगा।

एक के खाली स्थान को दूसरा भरेगा। गर्मी लगेगी तो तुम ठंड चाहोगे। सर्दी बढ़ जायेगी तो गर्मी की राह देखोगे। तेज लू और सूखा मौसम होगा, तो उसके बाद वर्षा की कामना करोगे, लेकिन फिर वर्षा से भी तंग आकर कामना साफ दिनों की होगी। बहुत मान होगा तो अपमान भी आयेगा। पुराने पीले पत्ते झड़ेंगे, नई कोंपले फूटेंगी। संसार के इस

क्रम से हम बाहर नहीं निकल सकते। इसी कारण यह संसार हमें अच्छा भी लगता है। **तारे तभी बहुत सुन्दरता से चमकते हैं जब उनके पीछे अन्धेरी परत ज़्यादा गहरी दिखाई देती है।** रात के अंधेरे के कारण ही तारे चमकते हैं। सूरज का प्रकाश आने पर तारे रहते तो हैं लेकिन दिखाई नहीं देते। पीछे जो अन्धेरा है उसके कारण तारों में चमक है। **जीवन की पीड़ाओं के कारण आगे बढ़ने का उत्साह मिलता है। आदमी का व्यक्तित्व भी तभी चमकता है जब उसके पीछे कोई पीड़ा होती है।** जिस व्यक्ति की प्राण अग्नि पर जितनी ज़्यादा गहरी चोट लगती है वह उतनी ही तेज़ी से आगे बढ़ने के लिए उठता है। जिन लोगों के अन्दर गहरी चोट नहीं होती, अन्दर आग नहीं सुलग रही होती उनमें आगे बढ़ने की उमंग नहीं होती।

आगे बढ़ने की कामना वाले लोगों के अन्दर छिछोरापन नहीं होता, वे अपने अंदर हल्कापन नहीं आने देते। निन्दा चुगली करने और दूसरों का दोष देखने में समय नहीं लगाते। उनके सामने एक ही लक्ष्य होता है। **आगे बढ़ना, बहुत दूर जाना, रुककर नहीं बैठना। जिनके अन्दर आगे बढ़ने की भावना नहीं होती उनके अंदर की आग बुझी हुई है।** उनके ऊपर राख पड़ी है। वे कुछ कर नहीं पाते तो निन्दा, चुगली करके मन को सन्तोष दे लेते हैं। जो परमधाम तक जाने की इच्छा रखते हैं वे पेट भरने, तन ढाँपने, रिश्तेदारों के साथ तालमेल बैठाने, राग दरबारी गाते रहने में ज़िन्दगी नहीं बिताते। कोई नाराज हो या खुश हो, वे अपनी राह पर चलते हैं। उनको दुनिया के मान अपमान की परवाह नहीं होती। उनका संसार ही अलग होता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं ***'निर्मानमोहा'*,** मान को, अभिमान को, मान और अपमान दोनों की भावना को, त्याग कर इनसे ऊपर उठो। जीवन में जैसे गर्म और सर्द हवाएं शरीर को स्पर्श करती हैं, वैसे ही मन को मान और अपमान दोनों स्पर्श करेंगे। संसार की भीड़ कब किसी के लिए वाह वाह करे और कब हाय हाय, कुछ पता नहीं। श्रद्धा चन्द्रमा की तरह है, घटती बढ़ती रहती है। लेकिन वह श्रद्धा, श्रद्धा नहीं जो घटे बढ़े। जिसकी

श्रद्धा घटती बढ़ती है वह इन्सान डावाँडोल है। दीये की रोशनी बहुत हिलने लग जाए तो पूरा प्रकाश नहीं देती। उसका प्रकाश पूरा तभी मिलता है जब वह ऊँचाई पर हो और उसकी शिखा हिल न रही हो। प्रकाशवान होने के लिए आपकी आस्था पूर्ण और स्थिर होनी चाहिए।

गुरु का कोई अहसान नहीं होता। सूरज का काम प्रकाश देना है, नदियों का काम जल देना है, हवाओं का काम बहना है। वे अपने काम में लगे हैं, कोई उनसे लाभ लेता है तो वह व्यक्ति अपने लिए लाभ लेता है, व्यक्ति अपने पर अहसान करता है। हवाएँ अपनी तरफ से अपना काम करेंगी, पेड़ों पर जब फूल या फल आयेंगे तो पेड़ अपना काम करेंगे, फलों को पकायेंगे और फूलों को सुगन्धित बनायेंगे, धरती पर बिखेरते रहेंगे। लेने वाले आयें या न आयें, वे रात दिन अपने काम में लगे रहेंगे। बादलों ने कभी यह नहीं देखना कि कोई व्यक्ति तैयार है या नहीं, कोई कद्रदान है या नहीं, वे तो बरसेंगे। दुनिया के महापुरुषों ने अपने से जो कुछ हो सका किया, जो उनके पास था उन्होंने बाँटा। जिसने लाभ लेना था लिया, जिसने नहीं लेना था वे सोते रहे। कुछ वे लोग रहे जिन्होंने अपने को धन्य माना कि वे महापुरुषों के युग में जी रहे हैं। अवतारी व्यक्ति और मार्गदर्शक लोगों का जो युग है वे उस युग का साक्षी बनकर जी रहे हैं। वे अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं। एक वे लोग होते हैं जो समय बीत जाने पर कहते हैं कि उनका दुर्भाग्य था कि उन्होंने ऐसे युग में श्वास लिया लेकिन उनसे नहीं मिल पाये, उनके दर्शन नहीं कर पाये।

जिनकी श्रद्धा गहरी थी वे आगे बढ़े, जिनकी श्रद्धा में विचलन था, वे कभी आगे नहीं बढ़े। सबसे पहले अपने मान अपमान की धारा से ऊपर उठिये। मानकर चलिए कि कभी मान तो कभी अपमान मिलेगा ही। कभी सुख तो कभी दुःख आयेगा ही। जब आप यह मानते हैं कि सर्दी भी आयेगी, गर्मी भी आयेगी, बरसात भी आयेगी, लू भी चलेगी तो उनका आप विरोध नहीं करते। स्वाभाविक रूप से मान लेते हैं कि ऐसा होगा। तो फिर यह भी मानें कि **सम्मान मिला है तो अपमान भी मिलेगा। सुख मिला है तो दुःख भी होगा। लाभ कमाया है तो हानि भी उठानी पड़ेगी। जब**

आपने मीठे फल खाये हैं तो कड़वे भी खाने पड़ेंगे। जब आपने कोमलता का अहसास किया है तो कठोरता भी तो लेनी पड़ेगी। लेकिन मीठे को हम स्वीकार कर लेते हैं, कड़वे से भागने लग जाते हैं। कड़वाहट आते ही भगवान से प्रार्थना करने लग जाते हैं कि ध्यान रखना, भगवान, अब तेरा ही सहारा है। लेकिन वे लोग सच में ऊँचे थे जिन्होंने कहा कि पहले हमारे हिस्से की कड़वाहट दे दे भगवान, जिससे कि जब मिठास आये तो मिठास और ज्यादा मीठी लगे। तेरा प्यार हमें ज़्यादा अच्छा लगे। हम तेरे प्रति और श्रद्धा से झुक सकें, क्योंकि कड़वा आप अपनी तरफ से नहीं देते वह तो मेरे ही किसी कर्म का फल है। ऐसे लोगों को अगर किसी दूसरे के हिस्से की कड़वाहट पीने को मिल जाये तो प्रेम से पी लेंगे क्योंकि यह योग्यता भी भगवान की ही देन होती है।

परिवार में प्रमुख को बहुत कड़वाहट पीनी पड़ती है। जो जितनी ऊँचाई पर होता है उसे उतनी ही कड़वाहट पीनी पड़ेगी। परिवार या समाज का ज़हर पीने के बाद ही वह उन्हें जोड़ सकता है, समाज को मार्ग दर्शन दे सकता है। भगवान शिव ने पूरी सृष्टि को बचाने के लिए विष पिया। परिवार की एकता को बनाये रखने के लिए थोड़ी कड़वाहट को पी लेने से छोटे नहीं हो जाओगे। ऊँचे हो जाओगे। इसलिए दुनिया के हर महापुरुष ने संसार की आग अपने सिर पर रख ली, पर दुनिया को जलने नहीं दिया।

भगवान आगे कहते हैं कि मान अभिमान से ऊपर उठकर फिर मोह से ऊपर उठो। संसार के प्रति प्रेम होना अच्छी बात है। व्यक्ति व्यक्ति के प्रति प्रेम रखे, पर मोह नहीं। मोह को तोड़ने के लिए हमारे देश में एक यज्ञ था जिसे सर्वमेध यज्ञ या **'सर्वजित् यज्ञ'** कहते हैं।

मनुष्य की तीन तृष्णाएं है। लोकैषणा, यश की कामना। वित्तैषणा, धन और संसार की सुख सुविधाओं, संसार के पदार्थ और साधन, सत्ता, सम्पत्ति और समृद्धि की कामना। पुत्रैषणा, परिवार के, वंश के विस्तार की कामना। इन तीनों में व्यक्ति बंधा हुआ है और यह बन्धन हर किसी को इस तरह से बांधे हुए है कि व्यक्ति उससे हट कर और कुछ सोचता ही

नहीं। भगवान कहते हैं कि इनके मोह को अगर छोड़कर इन्सान पार निकल जाए तब वह मेरी तरफ आता है। मोह में इन्सान की क्या दशा होती है यह जानने के लिए यह धृतराष्ट्र को देखिए। धृतराष्ट्र जानता था कि सही क्या है और गलत क्या है। लेकिन उसके बाद भी मोह में अन्धा था। बाहर की आँखें नहीं थी यह बात अलग है, लेकिन मोह के कारण उसने अन्दर की आँखें भी बन्द कर ली थीं। 'मैं' का मोह, 'मैं' का अभिमान है। उसके लिए सिर्फ 'मैं' और 'मेरे' का ही संसार है। धृतराष्ट्र के लिए 'मैं' सबसे ऊपर था और जो 'मेरा' है उसको कोई छू नहीं सकता।

कबीर कहते रहे, **"मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर, तेरा तुझ को सौंप कर क्या लागत है मोर।"** जो भगवान का है उसे भगवान को देते क्या हर्ज़ है। नामदेव भक्ति में डूबे हुए थे। एक बार उनकी झोपड़ी में उनकी भक्ति से ईर्ष्या करने वालों ने आग लगा दी। नामदेव ने जब सब जलते देखा तो कुछ चीज़ें जो बाहर थीं उनको भी आग में डाल दिया और कहा, "अब इनका मोह क्या करना। जब यज्ञ होने ही लगा है तो सर्वमेध यज्ञ हो।" जो कुछ बचा था उसे भी अग्नि में डालने के बाद वे निर्जन स्थान में गये और ध्यान में बैठ गये। यह बड़ा कठिन है कि इंसान मन की दशा इतनी ऊँची बना सके। वह दुनिया में एक एक चीज़ के लिए लड़ता झगड़ता है जैसे कि उसके प्राणों पर बन आई हो। जिस वस्तु पर उसका अधिकार नहीं हो सका तो उस पर किसी का नहीं होने देगा। उसको नहीं मिला तो किसी को भी न मिले। यह हमारे मन की निर्दयता है। हमारा मोह हर चीज़ को पकड़ लेना चाहता हैं। भागवत् महापुराण में भगवान कृष्ण कहते हैं यह ज़िन्दगी मेरी विरासत है, मेरी अमानत है जिसे तुम्हें लौटाना पड़ेगा। जीवन ही क्यों, जो कुछ संसार के माध्यम से तुम्हारे पास है, मेरा दिया हुआ है। वह सब मेरी अमानत है, सब कुछ तुम्हें लौटाना पड़ेगा। बहुत लोग ऐसे होते हैं कि जब वे कुछ उधार लेने आते हैं तो उनके लेने का ढंग और होता है और जब लौटाने की बात आती है तो झगड़े पर उतर आते हैं। देना नहीं चाहते; लौटाना उन्हें अच्छा नहीं लगता। कहा जाता है लेने में कण भर और देने में मन भर। जब हम

किसी से कुछ लेते हैं तो चीज़ हल्की दिखाई देती है और जब लौटाना पड़ता है तो वही वस्तु मन भर भारी लगती है। उधार लेते वक्त जो सगा लगता है, लौटाते समय दुश्मन दिखाई देता है। क्यों लेने आ गया है? कुछ ऐसा समझौता हो जाए कि आधे पर बात बन जाये। क्योंकि नीयत तो कुछ भी देने की नहीं होती।

एक स्वरूप यह भी है कि जितना दिया है उससे दस गुना बढ़ाकर वापिस मिलेगा। अगर ज़मीन में कुछ बोया है तो वह आपको दस गुणा से लेकर सौ गुणा तक बढ़कर वापिस मिलेगा। देवताओं का नियम है कि जो तुम उन्हें दोगे, उसका अनेक गुणा बढ़ाकर वे तुम्हें वापिस करेंगे। मनुष्य ने जो लिया है वह ईमानदारी से ही वापिस कर दे तो बड़ी बात है। राक्षस की स्थिति यह है कि जो लिया है वह फिर उसका है। यह निकृष्टता है। चेतना ईर्ष्या में पड़ जाए, लड़ाई झगड़े में पड़ जाए, और बदला लेने की भावना पर आ जाये तो उसका कोई अन्त नहीं।

अभिमान का विनाश करते हुए, मोह को छोड़ते हुए **'जितसङ्गदोषाः'** अर्थात् संग दोष को जीतो। संग दोष बहुत जल्दी लग जाता है। संग दोष का अर्थ है, किसी चीज़ को देखकर उसको प्राप्त करने की चाह को लगा लेना। मन में उस चीज को बसा लेना। किसी चीज़ को खरीदना है तो व्यक्ति दस जगह देखकर के आयेगा। सपने भी उसी के लेगा। उस वस्तु को घर में लाने की कामना होगी। इस प्रकार जब किसी चीज़ को आप आसक्ति से देखते हैं तो मन के अन्दर उस वस्तु के लिए संग पैदा होता है। रास्ते में आप दो तरह की चीज़ें देखते हैं। एक मोहक है और दूसरी घृणास्पद। एक तरफ फूल खिले हुए हैं, बगल में कूड़ा पड़ा हुआ है। फूलों के लिए आप में संग की इच्छा पैदा होगी। दो गाड़ियाँ एक ही जगह पर खड़ी हैं। एक टूटी फूटी पुरानी और दूसरी नये मॉडल की कार। एक को आपने कामना की दृष्टि से देखा। वह आपके मन में बस गई और एक को उपेक्षा की दृष्टि से देखा, आपके मन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

जिस को पाने की चाह मन में लगा ली उसका संग बनाने की, अपने नजदीक रखने की कामना होगी। किसी भी चीज़ का बार बार ध्यान

करोगे तो संग पैदा होगा। संग पैदा होगा तो पाने की कामना जागेगी। यदि फिर कोई बीच में बाधक बनेगा तो उस पर गुस्सा आयेगा। गुस्से में होश नहीं रहेगा कि आप क्या बोल रहे हैं? अच्छा बुरा सोचने की आपकी शक्ति भी जाती रहेगी। फिर आपका व्यवहार पतनोन्मुख होता जाएगा। स्मृति का नाश हो जाएगा। **'स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति'**, स्मृति का लोप हुआ तो बुद्धि गई, बुद्धि गई तो व्यक्ति का विनाश हुआ। इसी क्रम से हम संसार में बंधते हैं, फिर वैर विरोध से हम घृणा जगा लेते हैं। इतनी घृणा कि दुश्मन के दुश्मन को अपना दोस्त समझने लगते हैं और अगर अपना दोस्त दुश्मन से बोलकर आये तो उसे भी दुश्मन समझने लग जाते हैं। इस तरह से दल बनाकर हम ज़िन्दगी को दलदल में फँसा लेते हैं।

दुनिया में हूँ पर दुनिया का तलबगार नहीं हूँ,
बाज़ार से गुज़रा हूँ पर खरीदार नहीं हूँ।

देखते हुए आगे चले जाओ, जैसे कोई आदमी मेला देखता है। मेले में व्यक्ति एक बार तेज़ी से दौड़ता हुआ मेले में घूम जाता है। दूर जाकर देखता है कि कोई नाच रंग में लगा हुआ है, कोई झूला झूल रहा है, कोई मिठाई खा रहा है तो कोई चाट और कोई लोगों की तरफ देखकर यह सोच रहा है कि कितने पागल हैं लोग। कोई बेकार में समय खराब करते घूम रहे हैं। कुछ लोग आनन्दित हैं और यह कह रहे हैं कि साल में एक बार लगने वाला मेला एक जश्न है, उत्सव है ज़िन्दगी का। एक व्यक्ति वह है जो बाहर किसी ऊँची जगह पर खड़ा हुआ सबको देख रहा है और देखकर कहता है, "हम रहें न रहें, यह संसार है और ऐसे ही चलता रहेगा। कितने आये और कितने गए, इसकी रौनक नहीं बिगड़ा क़रती। मेले लगाने के लिए कितने भी अच्छे से अच्छे अधिकारी आ जायें, उनके बाद कोई दूसरे लोग आयेंगे। लेकिन मैं इस सब से परे हूँ क्योंकि मैं तो एक पर्यटक हूँ। तमाशा देख लिया, फिर लौटकर अपने देश वापिस चले जाना है क्योंकि मैं इस देश का रहने वाला नहीं हूँ।" तो ये परदेसी की तरह देखने के लिए आये थे, देखकर लौट जायेंगे। उन्हें मेले से कोई आसक्ति नहीं है।

भगवान ने आगे एक शब्द कहा, **'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः'**, अभिमान को छोड़ना, मान अपमान से ऊपर उठना, मोह नहीं आने देना। समय के साथ मोह की धारा को त्यागते जाना और फिर किसी भी आसक्ति को अपने अन्दर नहीं आने देना। **'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः'**, और फिर भगवान ने एक भावना और दी कि सब प्रकार के द्वन्द्वों से विमुक्त हो कर **'उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्'। अपने आपको इस संसार से ऊपर उठाते उठाते अपनी आत्मा की तरफ उन्मुख होने की कोशिश करो।** आत्मविकास के लिये प्रयत्नशील होओ। जैसे ही दृष्टि बाहर की तरफ जाए तो फिर अन्दर की तरफ लाओ। आँखें बंद करके अपना ध्यान करना, अपने बारे में सोचना, शान्त रहना और प्रसन्न रहने की आदत बनाना। सृष्टि के नियमों के बारे में विचार करना, फिर विचार करते हुए यह भी ध्यान में लाना कि यह संसार किसकी व्यवस्था से व्यवस्थित है? अनेकों जीव आ रहे हैं, सबके भोजन की व्यवस्था हो रही है। सबके रहने का प्रबन्ध हो रहा है। परमात्मा के सागर में चींटी भी जल लेने के लिए गई है, हाथी भी गया है। जिसकी जितनी औकात है वह अपनी औकात के हिसाब से वहाँ से जल लेकर पी रहा है, पर नदी में कोई कमी नहीं आती। परमात्मा के भंडार से लेकर सब खा रहे हैं।

किसी अच्छी स्वचालित फैक्ट्री को आप देखें, जहां ऑटोमैटिक ढंग से सब काम हो रहा है तो उसे देखकर आप कहेंगे कि कितनी अच्छी व्यवस्था है। कपड़ा किस तरह से बन रहा है। सब पहले से ही निश्चित है। धागे अपने आप लग रहे हैं, कपड़ा अपने आप बुनता जा रहा है। अपने आप कटाई (कटिंग) हो रही है, कपड़ा अपने आप आगे खिसकता जा रहा है। तो आप सोचते हैं कि व्यवस्था कितनी बढ़िया है, बीच में कोई दखलअन्दाजी नहीं है। यहां तक कि कभी धागा टूट जाये तो मशीन रुक कर इशारा करती है कि धागे को ठीक लगाया जाए। ऐसी भी मशीनें हैं कि धागा टूटे तो अपने आप फिर से जुड़ता है और काम शुरू हो जाता है। पूरी व्यवस्था को देखने के बाद लगता है कि यहाँ का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। तो जिसने सारे संसार की व्यवस्था इतने अच्छे ढंग से की हुई

है कि इधर से जल बहकर समुद्र में जा रहा है और उधर समुद्र से जल ऊपर उठकर बादल बन रहा है, जो पहाड़ों में बरसेगा, फिर नदी बनकर वापिस आयेगा। इन्सान के लिए भी उसने व्यवस्था दी है कि तू जहाँ भी रहता है आस पास पेड़ पौधे लगा। बादलों से वर्षा होगी। पेड़ पौधे अपने लिए उस जल को धरती से अपनी जड़ों की तरफ खीचेंगे। थोड़ा जल खुद पी लेंगे, कुछ जमीन में ले जायेंगे। जमीन में जाकर पानी छनेगा (फिल्टर होगा), फिर स्रोत में जाकर ठहर जायेगा। तब तुम अपनी तरफ से पाईप लगाना और पानी खींचकर लाना। खुद भी पीना और पेड़ पौधों में भी डालना। अन्य जीवों को भी पिलाना। भगवान ने सृष्टि को एक व्यवस्था दे दी है और हम उस व्यवस्था के अन्तर्गत जी रहे हैं। अगर हम इस व्यवस्था को तोड़ते हैं तो कष्ट भोगना पड़ेगा।

जिसने इतनी अच्छी व्यवस्था की है वह व्यवस्थापक कैसा है? वह भण्डारी कैसा है जिसके भण्डार अपने आप भरे जा रहे हैं। चीज़ें खराब भी नहीं होतीं और सबको मिलती भी रहती हैं। उसने धरती माँ के गर्भ में कितनी सारी चीज़ें जमा कर रखी हैं। राजा महाराजाओं ने अपने मुकुट में जितने हीरे जवाहरात जड़े, ये सब के सब ज़मीन के नीचे से निकले हैं। कितनी तरह की धातुएँ (सात प्रकार की धातुएँ तो पुराने लोग बोलते थे अब तो कोई गिनती ही नहीं है) ज़मीन के अन्दर जमा हैं। १३२ प्रकार की प्लास्टिक है। अनेक प्रकार की रबड़ है। कितने प्रकार के सूत हैं जिनसे हम तरह तरह के वस्त्र बनाते हैं। कितने ही प्रकार के तत्त्व हैं जो ज़मीन से निकलते हैं। धरती से निकले तत्त्वों से प्राप्त छः रसों से हम ५६ प्रकार का भोजन बनाते हैं। गिनती करनी मुश्किल है। भोज (पार्टी) में गये तो वहाँ इतने प्रकार के व्यंजन थे कि अगर सबका एक एक चम्मच का स्वाद लें तो भी पेट भर जाये और याद ही न रहे कि कितने सारे व्यंजन थे। **विभिन्न स्वादों से युक्त जो भोज्य पदार्थ हम ग्रहण करते हैं उन सबकी व्यवस्था परमात्मा ने अपने हाथों से की हुई है।**

व्यक्ति की व्यवस्था में सम्पूर्णता नहीं है। जहाँ जहाँ भगवान ने मनुष्य के लिए कुछ विधान छोड़ दिये हैं कि तुम अपने हाथों से चीज़ों को अच्छा बुरा बनाओ उसमें जो कमी रह जाएगी उसका दोष मनुष्य का होगा। अगर उसने

अच्छी खाद और पानी डाला होता तो फ़सल अच्छी होती। हमने चूक कर दी तो प्रकृति ने भी कंजूसी कर दी। **कुदरत आपको उतना ही देगी जितने के आप पात्र हैं। कुदरत ने आपको स्वाभाविक प्रतिभा दी है। आप अगर विकास करेंगे तो कुदरत आपको और देगी, पर अगर आप विकास नहीं करेंगे तो फिर आपके पास जो है वह भी कुन्द होता जायेगा।** हमारी दृष्टि जैसे जैसे संसार की व्यवस्था की तरफ जायेगी तो परमात्मा का ध्यान आयेगा। परमात्मा का ध्यान आयेगा तो उसकी भक्ति जागेगी और उसमें डूबकर आनन्दित होंगे। भगवान कहते हैं कि जो नित्यप्रति आध्यात्म में डूबा हुआ है, आत्मा और परमात्मा, आत्मस्वरूप और परमात्मस्वरूप को जानने में लगा हुआ है वही मेरी तरफ आता है।

भगवान् कृष्ण कह रहे हैं, **'निवृत्तकामाः'** जिसकी कामनाएँ निवृत्त हो गई हैं, कामनाएँ शान्त हो गई हैं, वह आत्मसन्तुष्ट व्यक्ति कर्त्तव्य करता है परंतु कामनाओं का इतना विस्तार नहीं करता कि ज़िन्दगी उसमें उलझ जाए और ज़िन्दगी का रस ही जाता रहे। ज़िन्दगी के दिन कुछ आरजू और कुछ इन्तज़ार में गुज़र जाते हैं। इसलिए भगवान यह कहते हैं कि कामनाओं से निवृत्त होकर ही **'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः'** द्वन्दों से विमुक्त हो सकोगे। संसार की चक्की सबको दल रही है, तुम बीच की कीली की तरह ठहरने की कोशिश करो। मान अपमान, दुःख सुख, हानि लाभ, जीत हार यह द्वन्द्व हैं, इनसे मुक्त होओ।

साक्षी भाव से दुनिया देखो और अच्छे बुरे तथा जीत हार का विश्लेषण करो। किसी के जीतने हारने से न सुखी हो न दुःखी। एक दूसरा व्यक्ति भी खेल देख रहा है पर वह एक पक्ष (पार्टी) की तरफ है। उसके खिलाड़ी जब जीतने लग जाते हैं तो उसे लगता है कि वह जीत रहा है पर जब उसकी पार्टी हारने लगती है तो वह सिर पीटने लग जाता है कि मैं बर्बाद हो गया, तबाह हो गया। पहला व्यक्ति जिसे दोनों से कुछ लेना देना नहीं है, दोनों को देख रहा है, वह तो यह देख रहा है कि बढ़िया ढंग से कौन अपनी पारी खेलता है, कौन खिलाड़ी किस ढंग से अपना काम पूरा करता है। वह दोनों को देखता है, कोई काम कैसे किया जाए यह सीखने की

चेष्टा करता है। वह दोनों का विश्लेषण करता है। पर संसार में ज़्यादातर लोग दूसरे व्यक्ति की तरह हैं जो अपने तो अपने, दूसरों के खेल में भी स्वयं उलझे हुए हैं। पहला संसार के द्वन्द्व में अपने को उलझाता नहीं। सुख दुःख जहाँ से आते हैं उस स्रोत की तरफ देखो। स्रोत है परमात्मा। वहीं से सुख भी आयेगा और दुःख भी। कभी कभी तो सुख के लिए दुःख की तरफ चलना पड़ता है। जो दोनों की चाह छोड़कर बैठ जाए, वह आनन्द में आ जाएगा।

एक मस्त बाबा के पास कोई सेठ गया और कहा, "बाबाजी, सुखी होने का कोई रास्ता बताओ।" महात्मा ने पूछा, "यह जो तुमने छाती से लगा रखा है क्या यह तुम्हारा बच्चा है? कपड़े में लपेट कर बहुत ज़ोर से छाती में क्या रखा है?" सेठ ने कहा, "यह तो मेरा थैला है। थैले में मेरी पूंजी है। मैं इसको लेकर जा रहा हूँ। आपकी तारीफ़ सुनी थी, इसलिए आपके पास आ गया। ज़रा हमें कोई सुख का रास्ता बताओ।" बाबा ने कहा, "कुछ पैसे दोगे क्या?" वह बोला, "जो कहोगे दे देंगे, हमें सुखी होने का रास्ता बताओ।" बाबा ने कहा, "अपनी पोटली तो दिखाओ, ज़रा देखें कितना माल है।" अब यह आदमी थोड़ा सा डरा सोचने लगा कि बाबा क्या सचमुच ज्ञानी हैं? हमारी आदत है कि हम दूसरे को अपने से विपरीत देखना चाह रहे होते हैं। हम बेईमान हैं तो जिसके पास जा रहे हैं वह बेईमान न हो, हम लालची हैं तो वह लालची न हो, हम विलासी हैं तो वह त्यागी हो, हम मर्यादाहीन हैं तो उसमें मर्यादा दिखाई दे, हम बहुत बोलते हैं तो वह शांत स्वभाव का हो, हममें चंचलता है तो उसमें गम्भीरता हो, हम पदार्थों को संग्रह कर रहे हैं तो वह अपरिग्रह हो, हम बहुत कपड़े पहनते रहे हैं तो वह बिना वस्त्र पहने कोई महात्मा हो। जो एक वस्त्र पहने अपने शरीर को सता रहे हैं उनसे श्रद्धा रखने वाले दूसरे लोग कहते हैं, "देखो, यह कितना तप कर रहे हैं? कितना कष्ट सह रहे हैं? इसलिए पूजनीय हैं।" एक बार एक महात्मा को मैंने देखा कि काँप रहे हैं पर रज़ाई नहीं ओढ़ रहे। मैंने उनसे कहा, "क्यों नहीं ओढ़नी?" तो बोले, "इसी बात के लिए तो लोग श्रद्धा रखते हैं कि सर्दी गर्मी में हम एक जैसे रहते हैं।" मैंने उनसे कहा, "मेरी रज़ाई ले लीजिए। सवेरे चार बजे तक लोग नहीं जागेंगे" और इस तरह से जाड़े से उसको बचाया।

सेठ ने बाबा को लालची समझा। फिर ध्यान आया कि उसके इतने रिश्तेदार इनको मानते हैं, इतनी सारी चीज़ें भेंट करते हैं। कई मंत्री (मिनिस्टर) भी आशीर्वाद लेकर गये तो उनको भी लाभ मिला। सोचा कि अगर यह पोटली मांगता है तो दे दूँ। सेठ ने पोटली बाबा को दे दी। महात्मा ने पोटली को हाथ में पकड़ा और कहा, "अच्छा तो तुम्हें सुख चाहिए।" उसने कहा, "हाँ महाराज, सुखी होना चाहता हूँ।" बाबा ने और पूछाः "शान्ति भी चाहिए?" बोला, "हाँ शान्ति तो एकदम चाहिए।" "चैन?" बोला, "चैन तो बिल्कुल चाहिए। महाराज थोड़ी घबराहट भी होती है, घबराहट भी दूर कर दीजिए।" महात्मा ने कहा, "बैठो।" वह बैठ गया। जैसे ही बैठा, महात्मा ने कहा "आँखें बन्द कर लो।" उस आदमी ने आँखें बन्द कर लीं। इधर इन्होंने पोटली उठाई और भाग पड़े। वह आदमी आँखें तो बन्द कर के बैठा था पर उसका पूरा ध्यान पोटली पर ही लगा हुआ था। तो जैसे ही भागने की आवाज आई तो आँखें खोल कर देखा कि बाबा जी भागे जा रहे हैं। अब सेठ भी उठ कर, पूरी ताकत लगाकर उसके पीछे भागा। भागते भागते चिल्लाता जा रहा था, "मेरी पोटली लेकर बाबा भागा है। मैं तो इसको बड़ा ज्ञानी समझा था, पर यह तो उलटा निकला।" दोनों के दोनों भागते रहे। बाबा ने उसे पूरे गाँव के तीन चक्कर कटाये। अब तीन चक्कर कटाने के बाद जहाँ पेड़ों के पास बैठ कर दोनों पहले बातें कर रहे थे वहीं बाबा ने पोटली फेंक दी।

बाबा ने जैसे ही पोटली फेंकी सेठ ने दौड़कर इस तरह से उसे पकड़ा जैसे बंदरिया अपने बच्चे को छाती से लगाती है। इसने वह थैला छाती से लगाया और बोला, "अब चैन मिला, अब शांति मिली, अब घबराहट दूर हुई। बाबा बड़ा दुष्ट था। बहुत बुरा आदमी था, कितनी घबराहट बढ़ गई थी मेरी, अब थोड़ी घबराहट भी कम हुई है।" यह सुनकर महात्मा पेड़ों के पीछे से निकल कर आये और बोले, "और चाहिए शांति, चैन तो एक बार फिर पोटली लेकर के भागूँ?" उसने कहा, "महाराज, आपसे हाथ जोड़े। आप तो कुछ अलग ही तरह के आदमी हैं। ज्ञान देने का यह कौन सा तरीका है कि दूसरे की चीज़ लेकर भाग जाओ?" महात्मा बोले, "तुम जैसे को ज्ञान देने के लिए यही तरीका अपनाना पड़ता है। मुझे भी कितनी मेहनत करनी पड़ गई।

तेरे जैसे मूर्ख को समझाना इतना आसान नहीं है, क्योंकि तू पोटली को छाती से लगाकर घूम रहा है। अगर सुखी होना चाहता है तो पहले दुःखी हो। पोटली को जाता देख तू कितना दुःखी हुआ था। हाँ, अगर मेरे पास कुछ लेने के लिए आया है तो सुख दुःख दोनों को छोड़। अपने अन्दर की शांति में अपना मन लगा। मन को टिकाकर रख क्योंकि संसार में रहेगा तो सुख दुःख दोनों होंगे, हार जीत भी होगी, हानि और लाभ भी होगा। तू इससे पार निकल।"

भगवान श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "मेरे धाम में सूरज, चन्द्रमा और अग्नि से प्रकाश नहीं होता। सच तो यह है कि मालिक को नौकर तनख्वाह नहीं दिया करते। नौकर तो तनख्वाह लेता है। सूरज और चन्द्रमा जिसकी नौकरी करते हों अर्थात् जिससे प्रकाश पाते हों उसके यहाँ वे प्रकाश कैसे करेंगें? जहाँ से गंगा निकली है वहाँ पर वापिस क्योंकर जाएगी? परमात्मा के प्रकाश से ही सारा संसार प्रकाशित है। **परमात्मा के धाम में सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश देते नहीं, बल्कि वहीं स्वयं दोनों प्रकाशित होते हैं। करोड़ों सूर्य मिलकर भी परमात्मा के प्रकाश का मुकाबला नहीं कर सकते,** क्योंकि उस प्रकाश की मात्रा नापी नहीं जा सकती। सूरज का प्रकाश जलायेगा लेकिन परमात्मा के प्रकाश में गर्मी नहीं है, जलन नहीं है। सूर्य का प्रकाश राह दिखाता है लेकिन कुछ स्थानों पर वह अस्त भी है। लेकिन परमात्मा का प्रकाश चतुर्दिक है और सदैव है। हमारी हर व्यवस्था में दोष आ सकता है। बिजली (लाईट) आयेगी, जाएगी। लेकिन वहाँ सदा प्रकाश रहता है।"

यद्गत्वा न निवर्तन्ते, अर्थात् जहाँ जाने के बाद फिर लौटना नहीं है, हे अर्जुन, **'तद्धाम परमं मम',** वही मेरा परम धाम है। उस परम धाम में जाने के बाद फिर लौटना नहीं है। दुनिया में हमें चाहे कुछ भी मिल जाये उससे तृप्ति थोड़ी देर के लिए होगी। फिर भूख लगेगी, फिर चाह जागेगी। यहाँ ऐसा होता रहेगा। सुख दुःख आता रहेगा। हर माँ बाप की कोशिश अपने बच्चों को इतना सुखी करने की होती है कि वे कभी दुःखी न हों। फिर भी उनके जीवन में दुःख आता है। सारा समाज मिलकर प्रयास कर ले, फिर भी किसी को एकदम सुखी नहीं कर सकता। जो व्यवस्था परमात्मा के हाथ में है उसमें हम

कुछ नहीं कर सकते, केवल सहयोगी बन सकते हैं। परमात्मा जिसको सुखी करना चाहे उसे कोई आदमी दुःखी नहीं कर सकता। उसकी कृपा को कोई छीन भी नहीं सकता। **भगवान ने जिसके भाग्य में जो लिख दिया है वह उसको अवश्य मिलेगा। दुनिया भर के लोग मिलकर भी उसे छीन नहीं सकते।** लेकिन दुनिया में आप जब तक रहेंगे, दुःख सुख रहेगा। यह क्रम चलता रहेगा। बार बार अपने कर्मों के घेरे में हम घूमकर वहाँ आते रहेंगे।

भगवान कहते हैं कि तुम एक क्रम ऐसा बनाओ जिससे दुनियादारी का क्रम टूट जाए और तुम सीधे परमात्मा के धाम से जुड़ जाओ। उसके बाद फिर सदा आनन्द ही आनन्द होगा; ऐसा आनन्द जो कभी टूटे नहीं, जो कभी खत्म न हो। वहां दुःख भोगना जारी नहीं रहता। मेरे धाम पहुँचने के बाद फिर वापसी की कोई सम्भावना नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण अपने परमधाम को पाने का रास्ता बताने के बाद जीव के सम्बन्ध में बताते हैं।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।७।।

"हे पार्थ! मेरा ही अंश यह जीव सदैव अवृत्त भाव से संसार में आता है।" मन और इन्द्रियाँ उसे प्रकृति के साथ जोड़कर संसार में आकर्षित करती हैं। इस तरह जीव संसार से बंधता है। प्रकृति की अनेक शक्तियाँ मनुष्य को संसार से बांधती हैं। मेरा अंश होकर भी, अर्थात् मेरे चेतन तत्व को धारण करता हुआ भी, मुझ पिता का पुत्र होता हुआ भी यह जीव इस संसार में अपने स्वरूप को भूलकर माया के चक्रव्यूह में लगातार चक्कर काटता रहता है और उसमें डूब जाता है।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।८।।

अर्थात् **जब जीव शरीर को छोड़कर जाता है तो मन और ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियों को अपने साथ ले जाता है। जैसे कोई वायु चलती है तो सुगन्ध को लेकर जाती है वैसे ही यह जीव सूक्ष्म शरीर को अपने साथ लेकर उड़ जाता है।** सूक्ष्म शरीर फिर दूसरे नये शरीर के साथ जुड़ने में

सफल होता है। हमारे पुराने संस्कार जो हमारे अन्तःकरण में हैं, वे तथा हमारी वृत्तियां और मूल बीज शरीर छूटते ही हमारे अर्थात् आत्मा या (सूक्ष्म शरीर) के साथ जाते हैं, जो बाद में नए जन्म के लिए हमारे सहायक बनते हैं। यह क्रम इसी तरह चलता रहता है कहीं रुकता नहीं। जब तक हमारे अन्तःकरण में बीज है, वे जमीन पर ज़रूर उगेंगे। इसलिए अधिकांश रूप से साधक लोग साधना करते हुए अपने अन्तःकरण में बसे हुए इन संस्कारों को धोने और जलाने का काम करते हैं, अन्यथा इस आवागमन के चक्र में बंधे ही रहना पड़ेगा।

जीव परमेश्वर का अंश है। यहाँ अंश से अर्थ 'टुकड़ा' नहीं है, बल्कि यह है कि जो शक्तियाँ परमात्मा में हैं वे सब जीव में भी हैं। वह पिता हैं और हम उनके पुत्र हैं। पुत्र में पिता के अंश होंगे ही। लेकिन पुत्र जन्मते ही माया के चक्र में फंसकर उलझ गया है। जैसे ही उसे अपने स्वरूप का भान होता है वह माया को तोड़कर ऊपर निकलता है। अगर उसे यह भान न हो, वह अपने तत्व को जान न पाये तो **अगले जन्म की प्रक्रिया में वह फिर से जुड़ता है। यह आत्मा जब शरीर को छोड़कर जाती है तो अपने साथ अपना सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर भी लेकर जाती है। सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर हमें फिर से इस संसार में बांधने वाले बनते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए जीवात्मा को शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर तीनों से मुक्ति पाना आवश्यक है।**

प्रकृति के नियम हमें स्थूल शरीर से छुड़ा देते हैं, लेकिन सूक्ष्म शरीर के अन्दर जो संस्कार और प्रवृतियाँ रहती हैं उन्हें हमे अपने ज्ञान से छुड़ाना होता है। हमारे अन्तःकरण में जो भी अंकित होता है, संसार का व्यवहार, संसार की अनुभूतियाँ, भोगों का प्रभाव वह सब ही स्मृति और बीज बनता है जो सही वातावरण देखकर पुनः अंकुरित होता है। ज़मीन के गर्भ में कई बीज सोये रहते हैं। जिस समय लू चल रही होती है, सारी ज़मीन खाली दिखाई देती है। अचानक वर्षा की बौछार होते ही न जाने कितनी सारी बेलें, कितनी लतायें, कितना खर पतवार, कितनी कंटीली झाड़ियाँ एक साथ उग आती हैं। जिस मौसम में जिस बीज को उगना है, वह उसी मौसम में उगता है। कुछ पौधे ऐसे हैं जो गर्मियों में ही उगते हैं। कंटकारे का पौधा ऐसा ही होता है। अन्य

ऋतुओं में कंटकारे का बीज जमीन में सोया रहता है, लेकिन जैसे ही ग्रीष्म ऋतु आती है, चारों तरफ सूखा हो जाता है, कंटकारे का पौधा उगता है। पहले उसके कांटे वाले पत्ते उगते हैं, फिर पीले फूल खिलते हैं। सर्दियों के पौधे अलग होते हैं, बीज पूरे वर्ष तक ज़मीन का ताप सहते रहते हैं, लेकिन अपना मौसम आते ही अंकुरित हो जाते हैं। उसी प्रकार **आपके मन के अन्दर भी न जाने कितनी वृत्तियाँ, कितने बीज दबे पड़े हैं। सही वातावरण पाकर वे अंकुरित होते हैं।**

गुस्से का संस्कार भी आपके अन्दर बैठा हुआ है, हँसने का, करुणा का भी है और रोने का भी है। जब रोने की बात आएगी तो फिर आपको वे सारी बातें याद आएंगी जिससे रोना आएगा। जब गुस्से की बात आएगी तो फिर आपको एक ही व्यक्ति के प्रति गुस्से की बहुत सारी बातें याद आ जाएंगी। न जाने कब का दबा गुबार सब निकलने लगता है। आप पूरे प्रमाण देने लग जाते हैं। तब तुमने यह कहा था, तब तुमने वह कहा था। अगर हँसने हँसाने की बात होगी तो आप को भी हँसाने वाली न जाने कितनी बातें याद आ जाएंगी। आप कहेंगे कि हम भी चुटकुला सुनाते हैं। अगर आप कविता सुनाने पर आ गये तो आपको बहुत सारी कविताएँ और शेरो शायरी याद आने लग जाएगी। गाने के वक्त गाने भी याद आ गए। सब आपके अन्दर दबा पड़ा है। प्रकट होने के लिए उन्हें मौसम (वातावरण) चाहिए। अगर कोई गाली देने वाला मिल गया, तो फिर आपके पास भी गाली का भंडार निकल आता है। कोई ज्ञान की बात सुनाने लग जाए तो आप भी न जाने कहाँ से ढूंढ के काफी समझदारी की बात करते हैं। जिस स्तर का आदमी मिल जाए, आप उसी हिसाब से बात करने लगते हैं। बहुत कुछ आपके अन्दर दबा पड़ा है।

मन और मस्तिष्क साधारण नहीं हैं। इतनी सारी तंत्रिकाएँ और इतनी सारी नस नाड़ियाँ हैं, जिनका उपयोग हो ही नहीं पाता। वैज्ञानिक कहते हैं कि मस्तिष्क में दस लाख शब्दों को स्मृति में रखने का सामर्थ्य है। दिमाग की अपनी प्रक्रिया है, मस्तिष्क की अपनी। स्मृति के लिए पहली प्रक्रिया में पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) ठीक से होना चाहिए। दूसरी यह कि जमा (स्टोर) हुआ या नहीं हुआ। विद्यार्थियों के सामने यह समस्या प्रायः आती है। तीसरी

स्थिति यह है कि जो स्टोर हुआ है, वह बाहर निकलता है या नहीं। याद तो कर लिया, लेकिन समय पर याद आता है या नहीं? कई बार आप कोई बात याद करने के लिए माथे पर दबाव डालते हैं, फिर अचानक याद आ जाता है। जो स्टोर था, वह बाहर आ गया।

आपके अन्दर बीज दबा पड़ा है। उसे प्रकट होने के लिए मौसम चाहिए। अगर बीज को ही भून दिया गया तो कोई भी मौसम आता रहे, वह अंकुरित नहीं होगा। ऋषियों ने कहा है कि तपस्या और साधना से बीज को ही जला दिया जाए। नहीं तो ऐसे ऐसे बीज हैं कि किसी से बबूल उगेगा, किसी से वट वृक्ष, किसी से गुलाब तो किसी से आम का अंकुरण होगा। आपके अन्दर एक बहुत बड़ी दुनिया बसी हुई है अक्सर भीड़ में आप अपने आपको अकेला महसूस करते हैं। अकेले बैठेंगे तो अन्दर का संसार जागने लगता है। न जाने कहाँ कहाँ की बातें याद आएंगी। याद आने के बाद फिर अकेलापन महसूस होगा। डर भी लगेगा कि कहीं मैं अकेला न हो जाऊं। तरह तरह की आशंकाओं में इन्सान घिरा रहता है।

योगी की तरह सबसे ध्यान हटाकर अपने आपको एकदम स्थिर करके, अन्दर की शान्त गहरी झील में प्रविष्ट हों। लगेगा कि आप निष्क्रिय हो गये हैं लेकिन वह निष्क्रियता नहीं होती। आप अपने अन्दर के अंतरिक्ष में आ जाते है। अन्दर आपका अपना आकाश है उसकी गहराई में पहुँचें। एकदम शान्त होते जाएं, ताकि अन्दर की शान्ति और बाहर की शान्ति दोनों का मेल बैठ जाए। इसलिए **साधक साधना के लिए प्रकृति की नीरवता, और निस्तब्धता, शान्ति और शून्यता वाले स्थान ढूंढते हैं।** दबाव, हलचल नहीं। बाहर ऐसा वातावरण मिल जाए कि हम अपने अन्दर की गहरी घाटियों में पहुँच सकें। एक कल्पना करें कि आप एक ऐसे पर्वत शिखर पर हैं, जहाँ चारों तरफ बर्फ है। बर्फ से लदा एक छोटा सा आँगन है। कुछ पेड़ पौधे भी हैं, लेकिन सब बर्फ से ढके हुए। वहां कोई इन्सान नहीं पहुँचा है। पंछी आए हैं और उड़ान भर कर चले गए हैं क्योंकि बैठने की कोई जगह नहीं है। जब सुबह सूर्य उगा तो लगा जैसे पहाड़ों के शिखरों पर एकाएक सोना बिखर गया हो। एकदम शान्ति है। ऐसी ही गहन स्थिति अपने अन्दर लाइए। योगी शान्ति में ऐसी ही

स्थिति अनुभव करते हैं।

एक होता है आत्म–सम्मोहन। इसमें भी थोड़ी देर के लिए शान्ति मिलती है, लेकिन वह ध्यान नहीं होता, वह साधना नहीं होती। बहुत लोगों को यह बात मालूम ही नहीं है। वे अपनी कल्पनाओं में खोकर रह जाते हैं। बाद में दोनों कुएँ में गिरते हैं। साधना के लिए पहले तैयारी करनी होगी, अपने आहार से, व्यवहार से, मनोदशा से, वातावरण से, फिर गुरु के पास जाना होगा, जो यह देखता है कि मूल वाला भोजन कराया जाए या पत्र वाला भोजन, क्योंकि व्यक्ति की दशा देखनी पड़ती है। स्थिरता है या नहीं, वायु का प्रभाव अधिक तो नहीं है। अग्नितत्त्व प्रधान है या जल तत्त्व। शरीर की दशा देखने के बाद गुरु व्यक्ति में स्थिरता लाने की कोशिश करता है। हर व्यक्ति के अन्दर भाँति भाँति की गांठें होती हैं। आदमी के अन्दर बहुत कुछ दबा पड़ा है, जो बाहर निकलना चाहता है। नहीं निकल पाता तो अकेला आदमी बड़बड़ाता रहता है। महिलाएं कपड़े धोते समय जोर जोर से थापी मार कर अपना गुस्सा निकालती हैं। बड़बड़ाती भी जाती हैं। न जाने किस किस को क्या क्या बोलती जाती हैं। कई लोग गाड़ी चलाते समय भी कुछ बोलते रहते हैं। कई लोग बाहर आँसू नहीं दिखा सकते। ऐसे लोग बाथरूम में खूब रोयेंगे। रोने के बाद अपना मुँह धोकर दूसरों के सामने ठीक होकर आ जाते हैं।

हर आदमी के अन्दर बहुत कुछ दबा हुआ है। इसलिए **साधना में यह प्रयास करना होता है कि पहले उसकी गाँठें खोली जाएं।** कई बार प्रायश्चित्त के माध्यम से भी व्यक्ति रोने पर आता है तो इतना रोता है जैसे किसी बेटी को बरसों के बाद उसकी माँ मिल गई हो। हिचकियाँ बंध गई और माँ से कहे कि कहां से सुनाऊँ, कैसे शुरू करूँ। मैंने कितना दर्द और कितनी पीड़ाएँ भोगी हैं। या कोई पुत्र व्यवसाय (बिजनेस) में घाटा सहने के बाद अपने पिता के पास आकर बैठे। पिता उसके सिर पर हाथ रखकर कहे कि अभी मैं बैठा हुआ हूँ तू क्यों चिन्ता करता है। यह सुन कर उसे हौसला मिलता है, लेकिन फिर बहुत रोता है। व्यक्ति गुरु के सामने ऐसी ही स्थिति में पहुँचता है। कई बार अपने मित्र के सामने भी व्यक्ति ऐसी ही स्थिति में पहुँचता है। वह चाहता है कि कोई ऐसी बात बने कि अन्दर का सब बह जाए। बादल बरस

जाने के बाद, आकाश निर्मल हो जाता है। उस आकाश में कहीं न कहीं कोई इन्द्रधनुष ज़रूर दिखाई देता है। आपके अन्दर का विषाद निकल जाने के बाद मन निर्मल हो जाएगा। और आशा का इन्द्रधनुष ज़रूर दृष्टिगोचर होगा।

इस संबंध में अनेक लोगों ने कई प्रकार के प्रयोग (उपाय) निकाले हैं। तिब्बती लोगों की ध्यान पद्धति अलग है, सूफियों की ध्यान पद्धति अलग है, जापानियों का ध्यान अलग है। चीन में ध्यान को 'चान' बोलते हैं। जापान वाले 'ज़ैन' बोलते हैं। उनकी पद्धति भी बहुत प्यारी है। सब प्रयोगों का एक ही लक्ष्य है व्यक्ति के अन्दर को हिलाना, उसके मन मस्तिष्क को शान्त करना और फिर ध्यान द्वारा उसे परमतत्व से जोड़ना। लेकिन वहाँ तक कोई नहीं पहुँचा, जहां तक भारत के मनीषियों और ऋषियों ने प्रयास किये हैं। उन्होंने कहा कि उन बीजों को ही जला दिया जाए, जो हमें संसार में बार बार लाते हैं, भटकाते हैं, जिनके कारण हम बार बार दुःख भोगते हैं। हमारे मन पर स्वभाव की गहरी परत पड़ी हुई है। बाहर से आप भले ही कसमें खाऐं पर कसमें टूटने में देर नहीं लगती। आप कहते हैं कि आज के बाद गुस्सा नहीं करेंगे, जिद् नहीं करेंगे, किन्तु कब गुस्सा आ जाए और कब आप क्या बोल जाएं, पता नहीं होता। **कोई कब किस तरह का व्यवहार कर जाए उसे भी पता नहीं रहता, क्योंकि मन पर स्वभाव की गहरी परत पड़ी है।** आप कसमें ऊपर ऊपर से खाते हैं। किसी कच्चे रास्ते से होकर कोई बैलगाड़ी निकल जाए, तो रास्ते पर एक लकीर बन जाती है। दूसरी बैलगाड़ी आएगी तो उसी लीक पर चलेगी। तीसरी बैलगाड़ी आएगी तो वह लीक और गहरी हो जाएगी। चौथी पांचवीं आएगी तो लीक और गहरी होती जाएगी। उसके बाद अगर कोई आदमी अपनी बैलगाड़ी को उस लीक पर नहीं भी चलाना चाहता तो भी गाड़ी के पहिए अपने आप फिसल कर उस लीक में पहुँच जाते हैं। पानी जहाँ से एक बार बहा हो तो पुनः पानी डालने से वह उधर से ही बहेगा, क्योंकि वहाँ लकीर बन गई है। आपके मन की परत के ऊपर आदतों की ऐसी ही लाइनें खिंच जाती हैं। वे मन के पहिये को अपनी ओर खींच लेती हैं और मन इसी पर चलने लग पड़ता है।

आदतों को अगर दोहराते जाओगे तो इतनी मज़बूत हो जायेंगी कि फिर उससे निकलना आसान नहीं होगा। आदत हमेशा दोहराव चाहती है, पुनरावृत्ति चाहती है। इसे तोड़ने के लिए व्यवधान पैदा करना शुरू कर दो। दोहराव में देर लगाओ, और देर लगाओ। अभी नहीं, और नहीं। परिणाम यह होगा कि आपके मन पर जो पकड़ है वह ढीली पड़नी शुरू हो जाएगी और अंत में आप उस आदत से छुटकारा पा लेंगे। ऐसा सहज रूप से करना। ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं करना। मन बार बार उसी के इर्दगिर्द चक्कर काटेगा। आप स्वाभाविक रूप से आदत छोड़ने की कोशिश करना। आदत का जो बीज है, उसको ही जलाने की चेष्टा कीजिए।

पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति का ब्रेन वाश करने पर भी उसकी आदतें बनी रहती हैं, स्वभाव नहीं बदलता। किसी का उग्र स्वभाव है तो वह उग्र ही रहेगा। शान्त स्वभाव वाला शान्त ही रहेगा। आलसी आलसी रहेगा और लापरवाह बना रहेगा। वह एकदम चुस्त नहीं हो सकता, स्फूर्तिवान नहीं हो सकता। कुंद बुद्धि वाले को तेजस्वी नहीं बनाया जा सकता। परंतु भारत में हम कहते हैं कि तपस्या, भक्ति, साधना से आदतें बदली जा सकती हैं। कालिदास को पेड़ की उसी डाल को काटते देखकर जिस पर वह बैठे थे, एक आदमी ने कह दिया कि जिस डाल को तुम काट रहे हो, यह कटेगी, तो तुम गिर पड़ोगे, चोट खाओगे पर कालिदास ने उसे तिरस्कृत भाव से देखा। लेकिन जैसे ही उन्होंने डाल काटी, धड़ाम से नीचे गिरे, चोट लगी, भाग कर उस व्यक्ति के पास गए और उसके पाँव पकड़ कर कहने लगे कि ऐसा भविष्यदृष्टा तो मैंने देखा ही नहीं। फिर तो इस मंदबुद्धि कालिदास ने वह साहित्य रचा कि साहित्य के साथ वह भी अमर हो गये। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। वाल्मीकि पहले डाकू थे और बाद में कितने बड़े विद्वान और व्याकरणाचार्य बने।

हम भारतवासी मानते हैं कि व्यक्ति को पूरी तरह बदला जा सकता है। बहुत उग्र लोग अच्छे साधक बने, ऋषि बने। पहले उनका क्रोध देखने लायक था, बाद में उनकी सहनशीलता और तपस्या देखने योग्य थी। पश्चिम कहता है कि व्यक्ति को बदला नहीं जा सकता। पूर्व कहता है कि उसे पूरी तरह बदला जा सकता है। व्यक्ति को जैसा चाहो, बना सकते हो। आलसी आदमी कर्मठ हो सकता है। हर

किसी के अन्दर संभावनाएं छिपी पड़ी हैं, लेकिन दुनिया आपको सुला देना चाहती है, क्योंकि हर आदमी अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए आपको घुमाए रखना चाहता है। **अपने अन्दर की संभावनाओं को जगाने और उन सीमाओं को तोड़ने की कोशिश कीजिए, जो आपकी उन्नति में बाधक हैं।**

हर जीव परमात्मा का अंश है। परमात्मा की ही दिव्यता लेकर वह संसार में आया है। लेकिन माया उसको खींच रही है और हर कोई माया के चक्कर में फंसा पड़ा है। इसके पार निकलना आसान नहीं है। विडंबना यह है कि हम परमात्मा को अपने से दूर कहीं ढूंढ रहे होते हैं। वह इतना पास है कि ध्यान ही नहीं जाता। डाक्टर भी अपने बेटे का इलाज कराने के लिए, बाहर वाले डाक्टर को बुलाएगा। अपने बेटे के इलाज के बारे में पिता को अपने पर और बेटे को पिता पर भरोसा नहीं। वह आपकी बात नहीं समझेगा। बाहर वाला डाक्टर समझाएगा तो बात बनेगी। दूसरे विश्वयुद्ध में प्रसिद्ध सेनापति जनरल मैकार्थर ने अपने फौजियों का मनोरंजन करने के लिए एक हास्य अभिनेता को बुलाया। बाद में सेनापति मैकार्थर ने उस हास्य अभिनेता से अपने साथ चित्र खिंचवाने के लिए कहा। सेनापति ने कहा "मेरे घर में मेरी एक बेटी है। मैं उसके लिए आपका फोटो आपसे हस्ताक्षर करवा कर ले जाऊंगा तो वह बड़ी खुश होगी। मेरी बेटी मुझे नहीं मानती, वह आपको मानती है। आपका फोटो मेरे साथ नहीं खींचा जा रहा, आपके साथ मेरा फोटो खींचा जा रहा है।" इधर वह अभिनेता कह रहा है कि वह अपने परिवार वालों को दिखाएगा कि उसने इतने बड़े सेनापति के साथ फोटो खिंचवाई।

पास बैठा हुआ व्यक्ति कितना भी ज्ञानी गुणी क्यों न हो, उसकी पूछ नहीं होती। बाहर का कोई फक्कड़ व्यक्ति भी मिल जाएगा तो वह ज्ञानी माना जायेगा। जो भी ऊँचे पहुँचा, ज्ञानी ध्यानी हुआ, उसे कुछ लोग नहीं पहचान पाए, खासकर नज़दीक वाले। दुश्मन, दोस्त और सगे सम्बन्धी, ये लोग कभी नहीं पहचान पाते। बाकी सब पहचान लेते हैं और लाभ उठाते हैं। दोस्तों को हमेशा वह दोस्त ही लगेगा। माँ नहीं समझेगी, बाप नहीं समझेगा। उन्होंने जिसे गोद में खिलाया है वह बेटे के सिवा और क्या हो सकता है? पत्नी नहीं समझ पाएगी क्योंकि वह रात दिन साथ रहती है। पत्नी ने उसको उदास होते,

हँसते, रोते, अहंकार करते और घबराते हुए भी देखा है। उसको कहां अंदाज़ लगेगा कि इस व्यक्ति में कोई बड़ाई भी छिपी हुई है। दुश्मन ने तो खैर गुण देखने ही नहीं, सिर्फ दोष निकालने हैं। हाँ, जो बाकी लोग हैं, वे पहचानते हैं। इसलिए यह बड़ी विडंबना है कि हम भावना वहीं खोजते हैं, जहाँ वह नहीं होती।

बूढ़ी माँ की सुई तो खोई है घर के अन्दर, लेकिन अन्दर अंधेरा है इसलिए वह उसे सड़क पर स्ट्रीट लाइट में ढूंढ रही है। उसे कोई कहे कि माँ, अन्दर ढूंढो, तो कहती है कि अन्दर कैसे ढूंढें, अन्दर रोशनी नहीं है। हम भी ऐसे ही हैं। बाहर न जाने कहाँ कहाँ ढूंढ रहे हैं। वहाँ ढूंढने की कोशिश नहीं करते, जहाँ वह है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण यह समझाते हैं कि हर जीव उनका ही स्वरूप है। उनकी शक्तियाँ लेकर ही वह संसार में आता है, लेकिन संसार का आकर्षण उसे बांधता है। वह संसार में उलझ जाता है और फिर जन्म मरण के चक्र में फंसता है। न जाने कितने जन्म की स्मृतियों और कृत्यों के बीज हमारे अंतःकरण पर अंकित हैं। शरीर छोड़ते समय जीव इन्हें अपने साथ ले जाता है।

भगवान ने आगे फिर कहा :

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।१५।।

"सब के हृदय में मैं ही बैठा हुआ हूँ। दुनिया में जितने जीव हैं, जितने मनुष्य हैं, जिन भी प्राणियों का हृदय धड़क रहा है, सबके हृदय में मैं बैठा हुआ हूँ। मैं ही **मत्तः स्मृतिः** व्यक्ति का विचार बनता हूँ। मति और स्मृति बनता हूँ, व्यक्ति की विचार शक्ति मेरे कारण है, स्मृति मेरे कारण है, ज्ञान मेरे कारण है और यदि इन सबका लोप हो जाए तो वह भी मेरे ही कारण है, क्योंकि मैं और मेरी व्यवस्था ऐसी है।" फिर कहा : **'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'**, "दुनिया में जितना भी ज्ञान है, तुम जान पाओ या न जान पाओ, लेकिन मैं जानता हूँ। **'कृत्वेदविदेव चाहम्'**, वेदान्त को करने वाला और देने वाला भी मैं ही हूँ। मुझसे अलग कुछ भी नहीं। मैं ही इस ज्ञान को जानता हूँ, मैंने ही इस ज्ञान को दिया है, मैं ही ज्ञान को हृदय में जगाता हूँ और मैं ही इसका लोप भी कर देता हूँ क्योंकि

मैं सबके हृदय में बसा हुआ हूँ। मुझ से अलग कुछ भी नहीं।

भगवान कहते हैं कि वे सबके हृदय में बसे हुए हैं। परमात्मा सबके हृदय में रहकर ज्ञान की धारा को, मति को, सुमति को जगाने का कार्य करते हैं। इसलिए हृदय में बैठे हुए परमात्मा के प्रति अगर हम सिर झुकाते हैं, हमारा ध्यान उधर जाता है तो हम अपने स्वरूप को ही ध्यान में लाते हैं। अपने अन्दर की ज्ञान धाराओं को जागृत करते हैं। साज में कितना संगीत छिपा पड़ा है हमें नहीं मालूम। हमारे शरीर में कितना और क्या कुछ छिपा पड़ा है, हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हमें एक नाटक में अभिनय करने का मौका दिया गया है। हम निर्देशक के कहने से राजा, सेनापति या ज्ञानी का अभिनय कर सकते हैं। संसार रंगमंच है, यहाँ जो भी पार्ट हमें दिया जाता है हम वैसे ही ढलने लगते हैं। हम सबकी दशा पानी जैसी है। जैसे बर्तन में पानी को डाला जाएगा, वह वैसा ही आकार धारण कर लेगा। जिस रंग का बर्तन होगा, पानी उसी रंग में चमकने लगेगा। पानी का अपना कोई रंग और आकार नहीं है। कोई गर्म करे तो गर्म हो जाए, खुला छोड़ दे तो ठंडा हो जाए। हम भी स्थिति और वातावरण के अनुरूप ढल जाते हैं।

साज़ में संगीत विद्यमान है। वह साज़ के अन्दर से प्रकट होगा, परंतु एक विशेषता चाहिए। बच्चे कलाकार को ढोलक बजाते देख कर यही समझते हैं कि वह ढोलक को थप्पड़ मार रहा है। अकेला पाकर वे ढोलक को थप्पड़ मारना शुरू कर देते हैं और फिर शोर मचाने के लिए बड़ों से मार खाते हैं।

एक बजाने वाले के बजाने में वह बात होती है कि एक एक बंदा नाचने लगे और जिसको बजाना ही नहीं आता, उसकी ढोलकी के अन्दर से शोर नहीं निकलेगा तो क्या निकलेगा। **जिसको जीवन के साज़ से संगीत निकालना आता हो, वह ऐसा मधुर संगीत निकाल सकता है कि सारी दुनिया झूमने लगे। जिसको नहीं पता, अनजाना या अनाड़ी है, वह शोर मचा देगा।** इसलिए उनका सान्निध्य पाइए, जो साज़ में से संगीत प्रकट कर सकते हैं। साज़ आपके पास है, बजाने की शक्ति आपके पास है लेकिन विधि का ज्ञान नहीं है। कैसे बजाना है, यह आप नहीं जानते। यह सीखना पड़ेगा।

इन्सान जैसे लोगों के साथ रहता है वैसा ही हो जाता है। फिर भी वह अपना खुद का अहंकार छोड़ने को तैयार नहीं होता। **आदमी मान लेता है कि उससे बढ़ कर कोई नहीं है। इस मानसिकता से विकास के द्वार बंद हो जाते हैं।** जिस दिन यह बात समझ में आ जाए, उसी दिन से शुरू हो जाइए। शुभ मुहूर्त का समय मत देखिए, देर कभी नहीं होती। कहीं से भी शुरू करके समय बदला जा सकता है। कहीं से भी अपने आपको संभाला जा सकता है। आप कहीं से भी मोड़ मुड़ सकते हैं।

कुछ करने की आग यदि अन्दर जगे तो वह हलकी चिंगारी नहीं होनी चाहिए। आग जगे तो बहुत तेज़ी के साथ जगे। हैलन कीलर नाम की एक महिला थी, जिसके हृदय में यह भावना जागी कि वह अंधी है, लेकिन उसे भी कुछ करना चाहिए। दीन हीन होकर नहीं बैठना चाहिए। ऐसा नहीं बनना कि दुनिया दाता बनी रहे और वह भिखमंगी। वह भी दुनिया को कुछ दे। उसने अंधे लोगों के लिए तब ब्रेल लिपि बनाई। दुनिया के सत्रह विश्वविद्यालयों से उसे सम्मान मिला। उसे डॉक्टरेट की उपाधियां दी गईं। दुनिया ने कहा कि हेलेन कीलर महान बन गयी। लेकिन वह कहती थी कि हर पेड़ पौधे द्वारा, बादलों और नदियों के द्वारा संसार में कुछ न कुछ बांटा जाता है। वे सब कुछ न कुछ देकर जाते हैं। तो हम क्यों नहीं कुछ बाँटें? आप भी अपने अदृश्य खज़ाने में से बहुत कुछ बाँट सकते हैं। केवल उनका संग कर के देखिये जो आपको आपके खज़ाने से परिचित करा दें।

गुरु और कुछ नहीं करेगा। बस इतना ही करेगा कि आपको आपके खज़ाने से परिचित करा देगा। **गुरु ईश्वर नहीं देगा वह ईश्वर को पकड़वा भी नहीं सकता। गुरु रास्ता बता देगा, तुम्हें खड़ा कर देगा, धक्का भी दे देगा और यह भी कह देगा कि पूरा ज़ोर लगा कर चल। गांधी जी ने कहा था कि बहुत चला जा सकता है, लेकिन सवाल सिर्फ़ पहले कदम का है।** पहला कदम कैसे उठे? इसके लिए गुरु की आवश्यकता है। पहला कदम सही दिशा में उठ जाए, फिर तो कदम के बाद कदम उठते रहेंगे। वही पहला कदम गुरु रखवा देता है। हां, गुरु भी तब ही देता है जब श्रद्धा, विश्वास और सेवा भावना लेकर गुरु के पास जाओ। तब वह पहला कदम उठवा देगा फिर

चलते जाना। चौराहे से उत्तर को भी रास्ता जाता है, दक्षिण को भी, पूर्व को भी और पश्चिम को भी। आप हिमालय तक भी जा सकते हैं, कन्याकुमारी तक भी जा सकते हैं। कहीं भी जाना चाहें, लेकिन पहला कदम उस चौराहे से ही उठाना पड़ेगा। वह एक कदम ही फिर आगे की दिशा का निश्चय करेगा। तभी ज़िन्दगी के साज़ पर जो कुछ तुम गाना चाहते हो, गा सकोगे।

इसलिए पहला वह स्वर, जो गुरु सिखाता है, उसे सीखने की तैयारी कर लेनी चाहिए। एक बार तो अपने आपको समर्पित करना ही पड़ता है। किसी गाड़ी में आप बैठेंगे तो अपने ड्राइवर पर भरोसा करना ही पड़ेगा। जिस डाक्टर से आप इलाज कराएंगे उस डाक्टर पर भरोसा करना ही पड़ेगा। जिस मल्लाह की नौका में आप बैठेंगे, उस मल्लाह पर भरोसा करना ही पड़ेगा। नहीं भरोसा करेंगे, तो आप यात्रा पूरी कैसे करेंगे। पहला कदम तो पूर्ण विश्वास करके ही उठाना है। **पहला कदम ठीक ढंग से उठा सको, पूर्ण निश्चय, पूरे भरोसे और दृढ़ संकल्प के साथ, तभी बात बनती है।** प्रार्थना करने बैठो तो यह कभी नहीं कहना कि भगवन्! बोझ हल्का कर, बल्कि कहना कि बोझ उठाने की शक्ति दे। यह नहीं कहना कि दुःख दूर कर, बल्कि यह कहना कि दुख सहने की शक्ति दे। यह नहीं कहना कि चिन्ताएँ हटा और उलझनें दूर कर, बल्कि यह कहना कि वह बुद्धि प्रदान कर कि चिन्ताओं और उलझनों के बीच से निकल सकूँ, अपनी मंज़िल तक पहुँच सकूँ। भगवान से इन चीजों की प्रार्थना कभी नहीं करना कि तू ही आ, सब काम कर, भोजन पका, मेरे मुँह में डाल, खिला और हो सके तो चौका बर्तन भी करके जाना। हम ऐसी ही प्रार्थनाएँ करते हैं, इसीलिए वे अधूरी हैं और हम लोग अधूरे हैं।

कभी कभी प्रार्थनाओं में हम शत्रु से बदला लेने के लिए भगवान को अपने युद्ध में खींचते हैं। दुःख में आकर विचित्र चीज़ें माँगते हैं। मजदूर जा रहा है, बड़ा परेशान, बड़ा थका हुआ, रास्ता तय करता हुआ। कहता है कि भगवान! कोई घोड़ा मिल जाए, घोड़ा नहीं तो घोड़े का बच्चा ही मिल जाए। कुछ तो कृपा कर। चलते चलते मज़दूर ने एक थानेदार को घोड़ी पर बैठे आते देखा। पीछे पीछे घोड़ी का छोटा सा बच्चा भी धीरे

धीरे चल रहा था। थानेदार ने मज़दूर से अपनी घोड़ी के नवजात बच्चे को उठाकर साथ चलने को कहा। मज़दूर भगवान पर बड़बड़ाया कि घोड़ी दी तो वह भी कंधे पर उठाने के लिए। आप भगवान से गाड़ी, मकान मांगते हैं। क्यों? सुखी होना चाहते हैं न? पर गाड़ी मिल जाए और गाड़ी का सुख न मिले तो? इसलिए भगवान से सीधे सुख मांगें। भगवान के संग से अधिक कोई सुख नहीं, इसलिए भगवान से उसी को मांगें, भगवान से भगवान् को मांगें।

अथ पंचदशोऽध्यायः

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।१ ।।

श्रीभगवान् बोले–ऊपर क़ी ओर मूलवाले तथा नीचे की ओर शाखा वाले जिस संसाररूप अश्वत्थ वृक्ष को अव्यय कहते हैं, और वेद जिसके पत्ते हैं, उस संसार वृक्ष को जो जानता है, वह सम्पूर्ण वेदों को जानने वाला है।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके।।२।।

उस संसार वृक्ष की गुणों (सत्त्व, रज और तम) के द्वारा बढ़ी हुई तथा विषय रूप कोंपलों वाली शाखाएं नीचे, मध्य में और ऊपर सब जगह फैली हुई हैं। मनुष्यलोक में कर्मों के अनुसार बांधने वाली शाखएँ भी नीचे और ऊपर (सभी लोकों में) व्याप्त हो रही हैं।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।। ३।।

इस संसार वृक्ष का जैसा रूप देखने में आता है, वैसा यहाँ (विचार करने पर) मिलता नहीं; क्योंकि इसका न तो आदि है, न अन्त है और न स्थिति ही है। इसलिये इस दृढ़ मूलों वाले संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष को दृढ़ असङ्गतारूप शस्त्र के द्वारा काट।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। ४।।

उसके बाद उस परमपद (परमात्मा) की खोज करनी चाहिये जिसको प्राप्त होने पर मनुष्य फिर लौटकर संसार में नहीं आते और जिससे अनादिकाल से चली आने वाली यह सृष्टि विस्तार को प्राप्त हुई है, उस आदिपुरुष परमात्मा के ही मैं शरण हूँ।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।। ५।।

जो मान और मोह से रहित हो गये हैं, जिन्होंने आसक्ति से होने वाले दोषों को जीत लिया है, जो नित्य निरन्तर परमात्मा में ही लगे हुए हैं, जो (अपनी दृष्टि से) सम्पूर्ण कामनाओं से रहित हो गये हैं, ऐसे (ऊंची स्थिति वाले) मोह रहित साधक भक्त उस अविनाशी परमपद (परमात्मा) को प्राप्त होते हैं।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। ६।।

उस (परमपद) को न सूर्य, न चन्द्र और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है; और जिसको प्राप्त होकर जीव लौटकर (संसार में) नहीं आते, वही मेरा परमधाम है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। ७।।

इस संसार में जीव बना हुआ आत्मा मेरा ही सनातन अंश है; परंतु वह प्रकृति में स्थित मन और पांचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है (अपना मान लेता है)।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।। ८।।

जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को ग्रहण करके ले जाती है, ऐसे ही शरीरादि का स्वामी बना हुआ जीवात्मा भी जिस शरीर को छोड़ता है, वहां से मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें चला जाता है।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।। ९।।

यह जीवात्मा मन का आश्रय लेकर श्रोत्र, नेत्र, त्वचा, रसना और घ्राण–इन पांचों इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सेवन करता है।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।। १०।।

शरीर को छोड़कर जाते हुए या दूसरे शरीर में स्थित हुए अथवा विषयों को भोगते हुए भी गुणों से युक्त जीवात्मा के स्वरूप को मूढ़ मनुष्य नहीं जानते, ज्ञानरूपी नेत्रों वाले ज्ञानी मनुष्य ही जानते हैं।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः।।११।।

यत्न करने वाले योगी लोग अपने आप में स्थित इस परमात्मतत्त्व का अनुभव करते हैं। परंतु जिन्होंने अपना अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अविवेकी मनुष्य यत्न करने पर भी इस तत्त्व का अनुभव नहीं करते।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।१२।।

सूर्य में आया हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है और जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।। १३।।

मैं ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ; और मैं ही रसमय चन्द्रमा के रूप में समस्त औषधियों (वनस्पतियों) को पुष्ट करता हूँ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।१४।।

प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।१५।।

मैं संपूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।१६।।

इस संसार में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) ये दो प्रकार के पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर नाशवान् और कूटस्थ (जीवात्मा) अविनाशी कहा जाता है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्व बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।१७।।

उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो परमात्मा नाम से कहा गया है। वही अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर सब का भरण-पोषण करता है।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।१८।।

मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।१९।।

हे भरतवंशी अर्जुन! इस प्रकार जो मोहरहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।।२०।।

हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन! इसको जानकर मनुष्य ज्ञानवान् (तथा प्राप्त प्राप्तव्य) और कृतकृत्य हो जाता है।

सो
ल
ह
वां
अध्
याय

दैवी संपदा योग

दैवी संपदा योग

सार

गीताकार महर्षि वेदव्यास ने कुरुक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये नीतिज्ञान के १६ वें अध्याय में उन २६ दैवी गुणों का विस्तार से वर्णन किया है जिन्हें अपनाकर, अपने में विस्तार कर, उन पर अभ्यास कर मनुष्य संसार के दुःख दरिद्र से मुक्त हो सकता है। इन गुणों को जानकर उनको जीवन में उतारना भी आवश्यक है क्योंकि अनुभूति के बिना ज्ञान ध्यान अधूरा है। भगवान श्रीकृष्ण ने सबसे पहला दैवी गुण अभयता बताया है। संसार में निडर होकर रहना। दूसरा अन्तःकरण की परिशुद्धि। मन और बुद्धि मिलाकर अन्तःकरण बनता है अतः दोनो की शुद्धि आवश्यक है। ज्ञान और योग में स्थिरता होनी चाहिए। ज्ञान सिद्धान्त है योग इसका प्रयोग, इसलिए सिद्धांतों को प्रयोग में लाए बिना वे अनर्थक हैं। विवेक से पूर्ण दान। दान दया नहीं है, सहयोग है। सूर्य और बादल बिना पक्षपात के पानी और उष्णता देते हैं। मनुष्य भी देने वाला बने। संसार के प्रलोभनों से बचने के लिए आत्मनियंत्रण, कार में ब्रेक की तरह आवश्यक है। यज्ञ करना, अग्निहोत्र (हवन) करना। परोपकार मनुष्य को परमात्मा के बहुत पास ले जाता है। व्यक्ति के लिए स्वाध्याय अत्यन्त लाभदायक है। अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए स्वप्रेरित होना चाहिए। तप का अर्थ अपने को सताना नहीं है। नियमपूर्वक किसी पौधे में प्रतिदिन जल देना भी तप है। मनुष्य को बच्चे की तरह सरल होना चाहिए। अर्जुन का अर्थ 'सरल' भी है, इसलिए अर्जुन द्वारा सरल भाव से अपनी शंका प्रकट करने के परिणामस्वरूप गीता प्रकट हुई। संसार के कष्टों को सहन करने के लिए मनुष्य को अपनी सहनशक्ति का विकास करना चाहिए। आपद्धर्म के अतिरिक्त मनुष्य को हिंसा से सदैव बचना चाहिए। अहिंसा को अपनाना चाहिए। अक्रोध, अर्थात् क्रोध में रहने और क्रोध करने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। शांति जीवन का सौन्दर्य, वैभव और स्वास्थ्य है। निंदा, चुगलखोरी और चापलूसी आत्मा को

करना है। धर्म, लोक, परिवार और आत्मा से लज्जा करोगे तो दुष्कर्म से बचे रहोगे। व्यवहार में कोमलता और मृदुता होगी तो हृदय संवेदनशील होगा, दया और परोपकार जीवन के अंग बन जायेंगे। सबसे खतरनाक है लालच क्योंकि इसकी कोई सीमा नहीं होती। ज्ञान की प्यास सदैव बनी रहनी चाहिए। विवेक और स्वाध्याय से सच्चा ज्ञान प्राप्त कर उसकी अनुभूति करो। मन बहुत चंचल होता है। मन की चपलता दूर कर स्थिरता लाओ तो अंदर की तेजस्विता मुखमंडल पर प्रकट होगी। हर हाल में अंतरात्मा की आवाज पर ध्यान देना। जो व्यक्ति इन २६ गुणों से युक्त हो जाएगा वह देवता बन जाएगा, अन्यथा असुर।

महर्षि वेदव्यास ने गीता के १६वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से दैवी एवं आसुरी सम्पदा, अर्थात् दैवी और आसुरी प्रवृत्तियाँ लेकर उत्पन्न हुए व्यक्तियों के स्वभाव का दिग्दर्शन कराया है। सृष्टि की उत्पत्ति से अब तक परमात्मा ने जैसे भी मनुष्य बनाए हैं, उनमें दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। एक भद्रभाव वाले, जिनकी भावनाएँ अपना भला चाहने के साथ साथ दूसरों की भी मंगलकामना वाली है। दूसरी प्रकृति के वे लोग हैं, जो केवल अपना ही सोचते रहे। अपनी सुख सुविधा, अपनी सत्ता, अपना यश, अपना सम्मान प्राप्त करने के लिए, वे कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। दूसरों को उनके कारण कितना कष्ट पहुँचा है इस बात का उन्हें कोई अहसास नहीं होता।

भगवान राम की संस्कृति को हम श्रेष्ठ मानते हैं। इस संस्कृति में दिव्य गुण हैं। दूसरी संस्कृति, जिसको हम रावण की संस्कृति कहते हैं, वहाँ केवल अंधेरा है, स्वार्थ है, लिप्सा है। इन दो प्रकार की प्रवृत्तियों का संघर्ष सृष्टि के आदिकाल से अब तक चल रहा है। एक तरफ कृष्ण रहे तो दूसरी तरफ कंस रहा। एक तरफ राम, दूसरी तरफ रावण। मनुष्य के अन्दर शुभ अशुभ, बुरा और भला, सफेद और काला, दिन और रात का संगम हमेशा बना रहा। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि कोई आदमी बुरा ही बुरा है क्योंकि उसके अन्दर कहीं न कहीं अच्छाई भी है। लेकिन कुछ लोगों के स्वभाव में केवल निकृष्टता ही होती है, जहाँ सुधार और विकास की कोई सम्भावनाएँ दिखाई नहीं देतीं। इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने मनुष्य के लिए वांछित छब्बीस गुणों का वर्णन किया है। जिस व्यक्ति में ये गुण हैं वह निश्चित ही दिव्य गुण लेकर इस संसार में आया है।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।१।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।२।।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।।3।।

ये दिव्य गुण हमारे व्यक्तित्व को एक नया स्वरूप प्रदान करते हैं। इन गुणों में सर्वप्रथम है– '**अभयम्**' अभयता, भय रहित होकर जीना। न भय देना, न भयभीत रहना। '**सत्त्वसंशुद्धिः**' अंतःकरण की परिशुद्धि, '**ज्ञानयोगव्यवस्थितिः**' ज्ञान योग में स्थिरता और उनका विभाजन कर सकने का **विवेक,** विचार। **दान,** स्वयं पर नियन्त्रण, यज्ञ आदि अनेक अग्निहोत्रादि परोपकारी कार्यों को करना, स्वाध्याय अर्थात् अच्छे ग्रन्थों को पढ़ना, तप और सरलता को अपनाना।

भगवान कहते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व में सर्वप्रथम विशेषता निडरता है। यदि वह दिव्य गुण सम्पन्न है तो वह अभय होगा, निडर हो कर जियेगा। भय की बेटी है चिन्ता। **आने वाले कल का भय, चिन्ता बन कर हमारे दिल और दिमाग पर कब्जा कर लेता है। भय से चिन्ता उत्पन्न होती है। जो मनुष्य निर्भय है वह निश्चिन्त होता है और जो निश्चिन्त व्यक्ति है उसके जीवन में सन्तुष्टि होती है।** उसके पास प्रसन्नता होती है। अतः दिव्य गुणों से युक्त जो दौलत है उसमें पहली सम्पदा 'अभयता' है।

तीन चीज़ें आपके व्यक्तित्व को हिलाती हैं 'तनाव','आवेग' 'निराशा' यानि कुंठा। तनाव कष्टप्रद होता है। दूसरी दयनीय स्थिति तब होती है जब आप किसी आवेग में आकर उसके प्रवाह में बह जाते हैं। आवेग लालच का भी होता है, अभिमान का भी होता है, क्रोध का भी और आवेग मोह ममता का भी होता है। मोह ममता के आवेग में मनुष्य पक्षपात करेगा। **मोह के कारण अपने बच्चे की गलती नहीं देखेगा। मोह के आवेग में वह सही निर्णय नहीं कर पाता। आवेग चाहे काम का हो, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर या ईर्ष्या का हो, उस के कारण व्यक्ति ठीक निर्णय नहीं ले पाता।** ईर्ष्या के आवेग में आपको कुछ नज़र नहीं आएगा। ईर्ष्या का आवेग पूरे खानदान को नष्ट करने की स्थिति पैदा कर देता है। तनाव हो या आवेग, निराशा हो या कुंठा यह सब आपके व्यक्तित्व को कमज़ोर करते हैं। 'कुंठा' से 'आत्महीनता' उत्पन्न होती है। तब व्यक्ति सोचने लग जाता है

कि वह अब कुछ नहीं कर पायेगा क्योंकि उसके पास धन नहीं हैं, क्योंकि उसके परिवार का नाम नहीं है, क्योंकि उसका शरीर ठीक नहीं है, क्योंकि अब उसकी उम्र नहीं रही या उसका वक्त निकल गया आदि। इस प्रकार की बातें सोच करके व्यक्ति अपने आप को हीन अनुभव करने लगता है, निराशा बढ़ती है। यह सब आपके व्यक्तित्व को तोड़ने वाली चीज़ें हैं।

आप जीवन में जब भय से युक्त होते हैं तो चिन्ता से युक्त हो जाते हैं। भय रहित हो जाएँ तो फिर तनाव नहीं रहता। फिर शान्ति और प्रसन्नता होगी। **इसलिए आपकी पहली दौलत, पहली दैवी सम्पदा भय रहित होकर जीना है।** दुनिया में जो महापुरुष हुए हैं उन्होंने समाज को भय रहित वातावरण दिया है, उन्होंने समाज को अभय किया है। धर्म की जय ही तब होती है, जब समाज में अभयता हो। इसलिए जब यह नारा लगाते हैं 'जो बोले सो अभय,' तब कहते हैं 'धर्म की जय'।

वेदों की प्रार्थना है, **'अभयम् अमित्रादभयम्'** दुश्मन से हम अभय रहें। लेकिन उससे पहले का शब्द है **'मित्रादभयम् अमित्रादभयम्'** जो मेरे दोस्त हैं भगवान, मैं उनसे भी अभय रहूँ और जो मेरे दुश्मन हैं, अमित्र हैं उनसे भी अभय रहूँ। '**अभयं नक्तम् अभयं दिवा**' रात्रि में अभय रहूँ, दिन में भी अभय रहूँ, किसी भी समय मुझे डर न हो। मेरे मन की स्थिति ऐसी हो जाए '**सर्वाआशा मम मित्रं भवन्तु**' कि जिस दिशा में मैं जाऊँ, सारी दिशाएँ मेरी मित्र बन जाएँ, और ऐसी मित्र कि जहाँ भय न हो। मित्रता वहीं है, जहाँ मित्र, मित्र के लिए भय नहीं, वरन् अभयता का वातावरण पैदा करे। इस प्रार्थना में सर्वप्रथम कहा : **'मित्रादभयम्'** भगवान मुझे मित्र से अभय करना। **मित्र तब तक तो बहुत अच्छा है जब तक वह आपका मित्र है लेकिन जब वह अमित्र बन जाता है, शत्रु बन जाता है, तो उससे बढ़कर खतरनाक फिर कोई नहीं होता।** तब दोनों ही एक दूसरे के लिए खतरनाक हो जाते हैं क्योंकि दोनों एक दूसरे को भय देने लगे। अब तक सोचते थे कि एक दूसरे का भला करें तो सुख मिले, अब सोचने लगे कि दूसरे का बुरा हो तो हम सुखी हों। लेकिन अगर आपका अन्तःकरण शुद्ध है तो जीवन के अंतिम क्षण तक सब का भला सोचने की कामना रहेगी। भय में कहीं न कहीं

क्रोध दबा हुआ होता है, जिससे चिंगारियाँ उत्पन्न होना चाहती हैं।

भय कभी अपने अंदर से उत्पन्न होता है और कभी बाहर की परिस्थितियों से। अपने ही विचारों से मन के अंदर उत्पन्न होने वाला भय मन को डावांडोल कर देता है। बाहर की परिस्थितियाँ भी मन को भयभीत करती हैं। अन्दर से भय आए तो भी आप कमज़ोर पड़ते हैं और बाहर से डर जाना भी बीमारी है। भयभीत मन निराश होकर सोचने लगता है कि अब कुछ ठीक नहीं होगा। गरीबी दूर नहीं होगी। ऊँचे पद से नीचे आ गया हूँ तो अब ऊपर जाने वाला नहीं हूँ। इन्सान की ज़िन्दगी में एक बार निराशा आ जाए और भय अपना काम करना शुरू कर दे, तो फिर उत्थान कहीं दिखाई नहीं देता।

वेदों में कहा गया है कि परमात्मा की छाया अभयता देती है। '**यस्यच्छायाऽमृतम्**', उसकी शरण में आने से अमृत मिलता है और अमृत पी लेने के बाद भय नहीं लगता। जिन्होंने अमृत पी लिया वे अभय हो गए। अमृत और कुछ नहीं, भक्ति है। भक्ति का अमृत जिसने पी लिया, वह फिर निर्भय होकर जिया। वह फिर किसी से नहीं डरा। समाज में जिसने भी डर पैदा किया, चंगेज़, हलाकू, नादिरशाह, तैमूर लंग आदि जो भी डर का पर्याय बन कर भारत की धरती पर आए, किसी भी देश में कोई भी व्यक्ति ऐसा हुआ हो जिसने आक्रामक रूप धारण किया या प्रजा को सताया, जैसे रोम में नीरो का नाम लें या युगांडा के ईदी अमीन का, उनका भय कुछ समय तक ही रहा। जब तक भय था तब तक समाज का साहस दबा हुआ था। लेकिन अंत में समाज उस भय को तोड़ कर खड़ा हो गया और भय दिखाने वाला व्यक्ति बुरी मौत मरा। इतिहास के पृष्ठों में भी उसे प्रताड़ना मिलती रही।

समाज में आप अभयता की स्थिति पैदा करें और अपने मन में भी अभयता लायें। उसका परिणाम यह होगा कि आप संतुलन में जीयेंगे। अतः आपकी पहली दैवी सम्पदा अभयता है। निडर हो कर रहो, डरना नहीं। डर डर के नहीं जीना, घुट घुट कर नहीं जीना। मनुष्य को भय किस चीज़ का होता है? योग दर्शन की भाषा में पाँच क्लेश कहे गए हैं– **'अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेशाः इति पञ्च कलेशः'** 'अविद्या' अर्थात्

अज्ञान, 'अस्मिता' अर्थात् अहंकार (मैं) ये क्लेश हैं। 'राग' और 'द्वेष' भी क्लेश हैं। 'अभिनिवेश' अर्थात् मौत का डर, इसे भी क्लेश माना गया है। जब किसी आततायी का इन्सान पर कोई बस नहीं चल पाता, तो आखिर में वह उसे मारने का डर दिखाता है। डंडे के बल पर अपनी सी करवाना चाहता है। मौत का डर दिखा कर कुछ कराना चाहता है, क्योंकि वह यह जानता है कि आप जीना चाहते हैं और मरने से डरते हैं इसलिए वह आपको जीते जी मौत का डर दिखा कर आप से मनमाना काम करा लेता है।

एक राक्षस किसी को यह कह कर रोज़ डराया करता था कि अगर उसने उसका काम नहीं किया तो वह उसे खा जाएगा। वह आदमी भय के मारे रोता गिड़गिड़ाता। एक दिन उसके मन में आया कि मैं रोज़ ही तो मर रहा हूँ। इससे बढ़कर मौत क्या होगी कि मुझे हर घड़ी मारा जा रहा है, हर वक्त मिटाया जा रहा है। मैं हर समय मौत के मुँह में जा रहा हूँ। क्या गारंटी है कि काम करवाने के बाद यह मुझे नहीं खाएगा। खाएगा तो है ही एक दिन। दस दिन के बाद खाए या आज इससे क्या फर्क पड़ता है। रोज़ रोज़ तड़फना तो नहीं पड़ेगा। ऐसा सोचकर उसने एक दिन कुछ भी काम नहीं किया। राक्षस के आने पर वह उसके सामने खड़ा हँसता रहा। गाना गाता रहा। राक्षस ने कहा, "तेरी बुद्धि खराब हो गई है क्या ? या आज कोई उलटी सीधी चीज खा ली है कि काम कुछ नहीं किया और खड़ा हँस रहा है, गाना गा रहा है ?" उसने जवाब दिया, "राक्षस! तुम आ गए हो न, अब मुझे खा जाओ।" राक्षस को झटका लगा कि यह कैसी भाषा बोल रहा है। राक्षस को सोच में पड़े देखकर उसने कहा, "तूने एक न एक दिन तो मुझे खाना ही है, तो आज ही क्यों नहीं? मैं जीना नहीं चाहता। अब मुझे तुझसे डर नहीं लगता।" अब राक्षस ने कहा, "तेरी बुद्धि बिगड़ गई है।" उसने कहा, "बिल्कुल नहीं।" तब राक्षस बोला, "फिर तेरे विचार गन्दे हो गए हैं, इसलिए मैं तुझे मारना नहीं चाहता।" इस पर वह व्यक्ति पूछता है, "तू मुझे छोड़ना क्यों चाहता है?" राक्षस बोला, "मैं किसी दूसरे आदमी को पकड़ लाऊँगा, जिसको डरा डरा कर रोज़ काम करा लूँगा। मुझे तो काम कराने से मतलब है, मारने से मेरा क्या फ़ायदा। तू इस बस्ती से भाग जा। अब मैं जिस को

पकड़ कर लाऊँगा उसको अगर तेरे बगावत के विचार मालूम हो गए तो मेरा तो काम रुक जाएगा। मुझे तो काम कराना है, किसी को खाना नहीं।" सारी दुनिया आपको डरा कर आपसे काम करा रही है। आपको बंधन में बांधे हुए है। लेकिन जिस दिन आप इस बंधन को तोड़ने के लिए कटिबद्ध हो जाएंगे, उस दिन के बाद फिर भय का कोई राक्षस, आपके सिर पर हावी नहीं होगा। हम लोग भय में जीवन जी रहे हैं। जिस दिन आपने कह दिया, "आखिर कोई मेरा क्या बिगाड़ लेगा ?" सचमुच उस दिन के बाद किसी ने कुछ नहीं बिगाड़ना। यह डर हमें उस प्राण का है जो शरीर में बसा हुआ है, परन्तु एक प्राण हमारा और भी है जो वस्तुओं में बसा हुआ है। हमारी चीज़ें टूट न जाएँ, इसलिए हम डर रहे हैं। गाड़ी खराब न हो जाए, मकान गंदा न हो जाए, व्यापार (बिज़नेस) चौपट न हो जाए। अतः एक तरफ़ प्राणों का भय तो दूसरी तरफ धन सम्पदा के छिन जाने का भय। तीसरा भय एक और होता है, इज्जत मान सम्मान का भय, आपके प्राण वहाँ भी बसे हुए हैं मान खोने का भय। पुरखों से चली आ रही इज्ज़त, समाज में बना हुआ मान कहीं चला न जाए, इसका बड़ा भारी भय है। एक भय सबसे बिछुड़ने का भी होता है। संतान, परिवार, मित्र कहीं ये रूठ न जाएँ, छोड़ कर चले न जाएँ। कुल बिखर न जाए, घर परिवार में विघटन न हो जाए। प्राण घर में भी बसे हुए हैं। तिनका तिनका जोड़कर जो घोंसला सजा कर रखा है, वह बिखर न जाए।

जब तक आप जिस चीज़ से डरते रहेंगे वह आपको डराती रहेगी। रविदास बहुत प्यारे संत हुए हैं। काशी में रहते थे। संत रविदास के जीवन में ऐसी घटना घटी कि उनके देखते देखते उनकी झोंपड़ी को आग लग गई। झोंपड़ी से बहुत मोह था। अपनी झोंपड़ी का बहुत ध्यान रखते थे। झोंपड़ी जल गई तो लोग सोचते थे कि बहुत दुःखी होंगे, लेकिन वह खड़े हँसते रहे। लोगों ने सोचा कि जब तक झोंपड़ी थी, उसके लिए बड़ा मोह था, जल गई तो कोई मोह नहीं, खड़े हँस रहे हैं। लोगों ने पूछा, "महाराज संत जी, बात समझ में नहीं आई कि जब तक झोंपड़ी थी, बहुत मोह था। जल गई तो आपको कोई मोह नहीं?" जवाब में उन्होंने ऊपर की ओर

इशारा किया और बोले, "ऊपर वाले के ढंग हैं। उसने एक वस्तु दी, उसकी छाया दी, शरीर को चलाने के लिए उसका साथ था। जल गई, तो वह मुझे यह समझाना चाहता है कि देह भी ऐसे ही जलेगी। इसका मोह मत कर। झोंपड़ी जलाकर उसने मेरा मोह तोड़ा है। झोंपड़ी रूपी मेरा शरीर जल रहा है। इसलिए मोह से रहित हो कर मैं हँस रहा हूँ।" **अपनी चिता जलती देख कर जो आदमी हँस सकता हो, तो समझो कि वह सर्वोच्च ज्ञान तक पहुँच गया है।** वह भय से रहित होकर जीने लग गया है।

अपने देश में एक परम्परा है कि जब बुढ़ापा आने लगे तो वानप्रस्थ जीवन जीने लग जाओ। अपने सामने ही अपने सारे रिश्ते नाते, संबंध, अपना पद, अपनी सत्ता, अपनी शक्ति को टूटते हुए देखो। परिवार के लोग साथ छोड़ कर अपने अपने काम में मस्त हो गए। जिस मकान में मालिक बन कर रहते थे अब उसमें बेटा बैठा हुआ है और आप मकान के एक छोटे से कमरे में। कई बार तो बेटा गैराज को ठीक कर माँ बाप को रहने के लिए दे देता है। पूरा मकान हो या गैराज, किसी में रहने से कोई छोटा बड़ा नहीं हो जाता। दोनों जगह आप आप ही रहेंगे। मन की स्थिति अगर ठीक है तो आप हर जगह राजा हैं।

इन्सान को धन छिनने का भय रहता है। धन में प्राण बसे हुए हैं, मकान में प्राण बसे हैं, दुकान में प्राण बसे हैं, सत्ता में प्राण बसे हैं, मान में प्राण बसे हैं। इनको खोने का भय अन्दर समाया है। यह भय ऐसा सताता है कि आप हर समय भय के मारे थरथराते हुए प्रतीत होते हैं। किसी एक ने भी साथ छोड़ा तो चेहरा फीका पड़ जाएगा, रात भर नींद नहीं आएगी। कल क्या होगा? मेरा कोई नहीं रहा? मैं अकेला हो गया हूँ, मेरे साथ कोई नहीं है। लेकिन अगर हम यह सोचें कि एक जो कल भी साथ था, आज भी है और वह कल भी रहेगा, वह मेरा पिता परमात्मा हर समय मेरा साथी है, तो मुझे क्यों डरना? हम क्यों न निर्भय हो कर जियें।

कभी कभी भय अलग ढंग से भी सामने आता है। एक संत अपने शिष्यों के साथ वन में भ्रमण करते भजन गाते हुए जा रहे थे। अचानक रास्ते में एक बस्ती पड़ी। वहाँ के कुछ लोगों ने गुरु के सामने कुछ धन

चढ़ाना चाहा। गुरु ने धन की तरफ देखा भी नहीं। गुरु के शिष्यों में से एक ने कहा, "गुरुजी तो कुछ लेंगे नहीं। अगर हमें कुछ देना चाहो तो दे सकते हो।" सेठ ने सोने की एक ईंट गुरु के शिष्य की झोली में डाल दी। गुरु महाराज जब बस्ती छोड़ कर आगे चले तो वन में पहुँचते ही सांझ घिर आई। गुरु महाराज ने कहा, "भई, अब आगे जाना ठीक नहीं है। ऐसा करो, यहीं रुकते हैं। एक पेड़ के नीचे डेरा जमाएँगे। यहीं धूनी जलाओ तो यहीं भजन गाएं।" गुरु तो ध्यान लगाकर बैठ गए पर शिष्य बैठा बैठा डर रहा था। "गुरुजी! बस्ती की तरफ चलें तो बहुत अच्छा हो, यहाँ डर लग रहा है।" गुरुजी ने कहा, "इसका मतलब है कि डर वाली कोई चीज़ तेरी झोली में है ज़रूर। उसे निकाल कर बाहर फेंक और निश्चिंत होकर भजन कर।" अब चेला सोचने लगा कि गुरुजी ने देख लिया है क्या? मैंने तो बहुत लपेट कर, संभाल कर रखा है। चेले को सोच में पड़े देखकर महाराज जी फिर बोले, "आज से पहले तो तू कभी नहीं डरा। जिसके कारण तू आज डरने लगा है, उसे निकाल और सामने वाले तालाब में फेंक दे।" शिष्य बोला, "गुरुदेव! अगर यहाँ से हम लोग बस्ती में जाकर रहें रात में और सवेरे आकर फिर यहाँ भजन कर लें तो ठीक नहीं रहेगा?" गुरु ने झोली पकड़ी और पूरी की पूरी झोली ही उठाकर पानी में फेंक दी और कहा, "अब आँखें बंद करके बैठ। अब डर नहीं लगेगा। निश्चिन्त होकर जी।" उसके कुछ देर बाद गुरु ने पूछा, "अब बस्ती की तरफ चलें?" शिष्य ने कहा, "अब बस्ती की तरफ जाने से क्या फ़ायदा महाराज, अब तो यहीं ठीक है। बस्ती की तरफ जाने की बात तो तब थी, जब झोली में कुछ था। उसे कोई छीन न ले, इसका डर था। अब जब आपने उसे खुद ही उठा कर फेंक दिया तो किस बात का डर? अब भजन करें। अब हमसे कोई क्या ले जाएगा?" तो **जितना ज़्यादा जिसने संग्रह किया है, उतना ही ज़्यादा उसने अपने लिए डर पैदा किया है।** जितना ज़्यादा धन जोड़ा उतनी ज़्यादा चिन्ता जोड़ी।, जितना ज़्यादा उलझे, उतने ज़्यादा दुःखी होते गए। जिसने अपने पास कुछ भी नहीं रखा, केवल भगवान का भजन रखा, वह निश्चिंत होकर जिया, अभय होकर जिया।

भगवान कहते हैं कि तुम सम्पदा रखो न रखो, सत्ता रखो न रखो, लेकिन चिन्ता नहीं रखना। निश्चिंतता रखना, अभयता रखना। यह विचारों से आएगी। अपने अन्दर के विचारों को प्रबल बनाओ क्योंकि निडरता आपकी संपदा है। जिनके साथ रहनें से आपकी ज़िन्दगी तरंगित होती हो, जीवन में ज्ञान की धारा, भक्ति की धारा जागती हो, उनका संग कभी नहीं छोड़ना। उनका सान्निध्य पाने की कोशिश करो। वे महापुरुष जहाँ मिलें, उनके सान्निध्य में जाने का प्रयास करो। डर आएगा, तो संतुलन बिगाड़ेगा। निर्भयता आएगी तो संतुलन बनेगा, शांति आयेगी।

अगला शब्द है '**सत्त्वसंशुद्धिः**' अंतःकरण की शुद्धि। मन की शुद्धि, बुद्धि की शुद्धि, अहं तत्व और चित्त की शुद्धि। **मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चार से अंतःकरण बनता है।** अंतःकरण शुद्ध होगा तो विचार अच्छे उठेंगे, चिन्तन अच्छा होगा और आप अपने ऊपर नियन्त्रण रख पायेंगे।

अभयता आने के बाद ही अंतःकरण शुद्ध होता है क्योंकि जिन लोगों का अपना अंतःकरण शुद्ध नहीं है उनको दूसरे लोग भी गलत दिखेंगे। चोर को सब चोर दिखाई देंगे, बेईमान को सब बेईमान और ठग को हर आदमी ठग दिखाई देगा। परन्तु भले आदमी को सब भले ही दिखाई देते हैं। साधु को सारे साधु लगते हैं। तपस्वी को लगता है कि सब तपस्या कर रहे हैं। संगीतज्ञ हर जगह संगीतज्ञ को ढूँढेगा। जुआरी जुआ खेलने वालों को ढूँढेगा। जो कुछ आपके अंतःकरण में है वैसा ही आप दूसरों पर स्थापित करते हैं। पहले अपना अंतःकरण शुद्ध कीजिए और फिर उसे एक ऐसी स्थिति में ले आइए कि न वहाँ जोश हो, न निराशा, न तनाव, न दबाव। सन्तुलन की स्थिति में जीने की कोशिश करें।

व्याकरण में दो कारक कहलाते हैं : कर्त्ता और कर्म। बच्चों को जब व्याकरण पढ़ाया जाता है तब बताते हैं कि कर्त्ता स्वतन्त्र है और 'कर्म', 'कर्त्ता' के आधीन। जो काम करने वाला है वह कर्त्ता है और जो कार्य किया जा रहा है वह कर्म है। हम कर्त्ता हैं और कर्म करने वाले हैं, अतः कर्म हमारे आधीन होना चाहिए। लेकिन हो यह रहा है कि जो कर्म, कर्त्ता के यानि हमारे आधीन रहना चाहिए था, उस कर्म ने कर्त्ता की जगह ले ली है। किसी

कार्य को बहुत बार करने से कर्त्ता उसका अभ्यस्त हो जाता है। अंधेरे में भी कर्त्ता से वह कर्म स्वचालित ढंग से होने लगता है। कर्म का महत्त्व बढ़ गया, कर्त्ता की चेष्टा का महत्त्व कम हो गया। पहली बार किसी सीढ़ी पर चढ़ते हैं तो बहुत सावधान हो कर चढ़ेंगे। अगर सीढ़ी लकड़ी की या बाँस की हो, पतली सी हो और आपको दूसरी मंजिल तक जाना हो तो और भी सावधान हो कर चढ़ेंगे। दूसरी बार चढ़ते समय इतनी सावधानी नहीं रखेंगे, दस बीस बार चढ़ लेने के बाद तो आप इधर उधर देखते हुए, बात करते हुए और हो सकता है कि टेलीफोन सुनते हुए भी आराम से चढ़ जाएं। आपको कोई डर नहीं लगेगा। आपका शरीर, शरीर की तंत्रिकाओं और स्नायुओं की प्रक्रियाओं के आधार पर कार्य करता है। किसी चीज़ का अभ्यास पड़ जाए तो आपको देखने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। अंधेरा भी होगा, तो अभ्यस्त हो जाने पर आप सीढ़ियां खट खट चढ़ते चले जाएँगे। कोई डर नहीं लगेगा, क्योंकि आपको सोचना नहीं पड़ेगा। आपके अवचेतन मन में सारी बात आ गई है, आपकी तंत्रिकाएँ उस के अनुसार काम करने लगी हैं।

ऊँट वाले किसी एक रास्ते से दस बीस बार ऊँट को लेकर जाते हैं, फिर बाद में यदि ऊँट पर सोते हुए भी चले जाएँगे तो ऊँट अपने आप उसी रास्ते पर चलता जाएगा। बैलगाड़ी वाले लोग भी ऐसा ही करते हैं। बैलगाड़ी में बैठकर दस बीस बार एक ही रास्ते से जब चलते हैं, तो बैल अपना रास्ता पहचान लेते हैं। उसके बाद उन्हें बैल हाँकने की जरूरत नहीं पड़ेगी, बैलगाड़ी अपने आप मुड़ती जाएगी। आपका अंतःकरण भी इसी प्रकार कुछ चीजों को, क्रियाओं को पकड़ लेता है। वे चीज़ें जब आपके अभ्यास में आ जाती हैं तब फिर आप को बार बार वही क्रिया करने के लिए ध्यान नहीं लगाना पड़ता। आपको पता भी नहीं लग पाता कि आपके द्वारा आपके अभ्यास में आए सारे काम हो जाते हैं। लेकिन आपका अंतःकरण बहुत सारे गलत अभ्यास भी कर चुका है। आदतें डाल चुका है। गुस्सा करने, लड़ाई झगड़ा करने, खीझने, चीखने, पक्षपात करने के अभ्यास को तोड़कर हमें अपने अंतःकरण को इतना शान्त और निर्मल बनाना है, जैसे वर्षा के बाद आसमान एकदम निर्मल व साफ हो जाता है।

कपड़े का रंग बार बार गंदा होते होते बदरंग हो गया है। सोना था तो सुन्दर स्वरूप वाला, लेकिन कीचड़ में गिर गया और ऊपर से मिट्टी पड़ती चली गई तो उसका स्वरूप बदल गया। कुछ और ही दिखाई पड़ने लग गया। अब उसको साफ़ करने की आवश्यकता है। उसी अवस्था में लाने की ज़रूरत है जो उसकी वास्तविक अवस्था थी। साफ़ होते होते जब वह अपने सही रूप में आ जाएगा, तभी वह मूल्यवान होगा। आप भी तभी कीमती होंगे जब आपका अंतःकरण पूर्ण रूप से निर्मल हो जाएगा, शुद्ध हो जाएगा। ऐसा होने पर आपकी कीमत अनेक गुणा बढ़ जाएगी। तब आपके अन्दर आपका परमात्मा प्रकट होने लगेगा। इसलिए अपने आप को निर्मल बनाने की कोशिश करो।

भगवान कहते हैं कि आपने अपने ऊपर जो लेप चढ़ा रखा है, परतें चढ़ा रखी हैं इन्हें उतार फेंको क्योंकि दिव्यता को प्राप्त करने के लिए दिव्य गुण आने चाहिए। प्रकृति, प्रवृत्ति और संस्कृति के सम्मिश्रण को शुद्ध करके संस्कृति का परिष्कृत रूप ले आना है। गंगा जो हिमालय से निर्मल निकल कर चली वह गंगा तो परोपकारिणी है पर प्रदूषित होने के बाद नहीं।

अंतःकरण भी वैसा ही शुद्ध रहे जैसा बचपन में था तभी ठीक है। परन्तु इस पर बहुत लकीरें खिंच गई हैं, कई परतें चढ़ गई हैं इसे धोओ। जितना धोएंगे उतना ही आप शुद्ध होते जाएंगे। **शुद्ध और निर्मल अंतःकरण आपकी दूसरी संपदा है, इसे संभाल कर रखिए।**

पहली संपदा है निर्भयता, अभयता। दूसरी संपदा है शुद्ध अंतःकरण और तीसरी संपदा है **'ज्ञानयोगव्यवस्थितिः'** ज्ञान और योग में स्थिरता। दोनों का अंतर जानना। ज्ञान सिद्धान्त है और योग उनका प्रयोग अर्थात् क्रियान्वयन। विद्यार्थियों को सैद्धांतिक शिक्षण(थ्योरी) और प्रयोगात्मक स्वरूप (प्रैक्टिकल) का शिक्षण प्रशिक्षण दिया जाता है। भगवान कहते हैं कि ज्ञान और योग, सिद्धान्त और प्रयोग, दोनों जीवन में आ जाएं तो वह दैवी संपदा होगी। बहुत लोगों ने अपने साथ बड़े बड़े सिद्धान्त जोड़ रखे हैं, लेकिन उनके अपने जीवन में उनका प्रयोग नहीं हैं। जैसे किसी ने तिजोरी में धन जोड़ा हो लेकिन कंजूस हो, पैसे का प्रयोग नहीं करता। कंजूस

आदमी बहुत बड़ा दाता होता है क्योंकि कंजूस सब कुछ दूसरों के लिए छोड़ कर मरता है। क्या ऐसे कंजूस के समान जीना ठीक है? जो धन प्रभु कृपा से मिला है उसका न खुद प्रयोग किया, न दूसरों को करने दिया। ज़िन्दगी में दोनों चीजें, ज्ञान और उसका प्रयोग, ज़रूरी हैं। इससे फिर एक तीसरी चीज़ उमड़ती है – अनुभव। ज्ञान के प्रयोग से अनुभव प्राप्त करो, अनुभूतियाँ बटोरो। अनुभूति के बिना ज्ञान व ध्यान अधूरा है। अरस्तु ने कहा था कि नीति की बातें केवल ग्रन्थों में लिखी रह जाने के लिए नहीं हैं। अगर तुम्हारी नैतिकता, अभ्यास (प्रयोग) में लाई जा सकती है तो वह नैतिकता है। लेकिन अगर तुम सिर्फ़ सिद्धान्त ले कर बैठे रह गए और उन्हें अपना नहीं पाए, तो फिर वह बोझ हैं। बोझ लेकर जीना इस तरह है जैसे किसी जानवर पर मिट्टी की जगह सोना लाद दिया तो उसे रोज जितना बोझा ही मालूम देगा।

अरस्तु ने ज्ञान और योग के बारे में कहा था, "ज्ञान सिद्धान्त है, नैतिकता योग(प्रयोग) है।" उसने सिद्धान्तों में इस बात पर बहुत बल दिया कि अगर आप के पास विचार मीमांसा है तो वह आपको सिद्धान्त (थ्योरी) की तरफ मोड़ेगी। किसी विषय पर आपने बहुत विचार विमर्श किया, तो आप कोई सिद्धान्त खोज लेंगे। लेकिन उन्होंने इस तरह खोजे गए सिद्धान्तों पर प्रयोग किये। अरस्तु, प्लेटो या फिर सुकरात ने यूनानी दर्शन में जिस धारा को प्रतिपादित किया उस पर प्रयोग भी किया। उन्होंने कहा कि बहुत लोग दिन के उजाले में भी अंधे होकर चल रहे हैं। सुकरात एक बार दिन के उजाले में लैम्प जलाकर लोगों के बीच में चला। नौजवानों ने उनसे पूछा, "आप लैम्प जलाकर क्यों चल रहे हैं?" बोले, "मैं कुछ खास तरह के लोगों को ढूँढता फिर रहा हूँ क्योंकि मुझे चारों तरफ अक्ल के अंधे ही दिखाई दे रहे हैं।" अतः एक तरह के लोग वे हैं जो बड़ी बड़ी बातें करते रहे हैं लेकिन सिद्धान्त पैदा नहीं कर पाए। कुछ अन्य लोगों ने सिद्धान्त तो पैदा किए लेकिन उनका प्रयोग नहीं किया। इसलिए भगवान कृष्ण ने कहा है कि ज्ञान और योग, सिद्धान्त और प्रयोग दोनों जब प्रतिपादित होंगे तभी बात बनेगी। इसलिये दोनों का मेल बैठाओ। यह तुम्हारी दौलत है।

कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में राजा के लिए कुछ नियम लिखे हैं कि राजा कैसा होना चाहिए। लिखा है कि विपरीत परिस्थितियाँ व अपमान करने वाले लोग सामने हों तो वह सह जाए, मान देने वाले लोग हों, तो वह सहज भाव में रहे। जिसका जीवन सहज और सरल हो जाए, जो न्याय करने में कभी पीछे न हटे, जो कानों का कच्चा न हो और जिसे निश्चय से कोई डिगा न सके, ऐसे व्यक्ति को राजा होना चाहिए। उसके हाथों से कितनों ही के भाग्य का निर्णय होगा इसलिए उसे बहुत स्थिर होना चाहिए। वह केवल ज्ञानवादी न हो, उसे प्रयोगवादी भी होना चाहिए। जिसकी ज़िन्दगी में दोनों का तालमेल हो, वही व्यक्ति राजा बनने के योग्य होगा। महामंत्री कौटिल्य ने अपने ढंग से राजा के लिए नियम दिए।

आपके माता पिता ने भी तो आपको राजा बेटा कहकर पुकारा था। बेटी रानी बेटी है, तो बेटा राजा बेटा है। सभी राजा रानी थे। लेकिन बड़े होकर हम सब भूल गए कि हम राजा हैं। इतिहास की एक बात आपको सुनाता हूँ। ढाई हजार साल पहले प्रसेनजित नाम का एक राजा था। उसकी बहुत संतान थी, बहुत सी रानियाँ थीं। सौ के लगभग बेटे थे। सब को उसने खूब पढ़ाया, बहुत लायक बनाने की कोशिश की। प्रश्न आया कि इनमें से एक को राजगद्दी देनी है, तो निर्णय कैसे हो? युवराज के चयन के लिए परीक्षा की घोषणा की गई। राजा ने सबको भोज पर आमंत्रित किया। राजा ने अपने मंत्री से सबको बैठाने की व्यवस्था करने को कहा। सौ राजकुमार बैठाए गए और उन के भोजन की व्यवस्था की गई। सब राजकुमार भोजन के लिए बैठे, सबके सामने थाल भोजन परोस कर रख दिए गए। वे भोजनपूर्व प्रार्थना के लिए हाथ जोड़ने ही वाले थे कि शिकारी कुत्ते तेज़ी से दौड़ते हुए अंदर घुस आए। इतनी तेज़ी से कुत्ते दौड़ते हुए आए कि एक को छोड़कर बाकी सब राजकुमार डर कर भाग गए। एक राजकुमार बैठा रहा।

राजा के पास समाचार पहुँचा कि शिकारी कुत्तों के आ जाने से भोजन में विघ्न पड़ गया और कोई भोजन नहीं कर पाया। सभी राजकुमार राजा के पास पहुँचे और उन्होंने कहा, "महाराज भोजन तो क्या करते, वहाँ तो

बैठना ही मुश्किल हो गया। आपने आज यह चुनाव भी करना था कि हममें से कौन युवराज बनेगा; किसको राजगद्दी दी जाएगी। पर महाराज आपके अधिकारियों को तो व्यवस्था भी नहीं आती। हम भोजन करने के लिए बैठे ही थे कि शिकारी कुत्ते आ गए।" राजा ने पूछा, "किसी भी राजकुमार ने भोजन नहीं किया ?" तब राजकुमार श्रेणिक आगे बढ़ कर बोला, "पिता महाराज, मैंने तो भोजन कर लिया।" राजा ने पूछा, "शिकारी कुत्ते नहीं आए थे?" श्रेणिक बोला, "आए थे।" "फिर तू डरा नहीं" बोला, "महाराज, शिकारी कुत्ते उसी को काटते हैं जो अकेला खाता है? जो बाँट कर खाए उसे नहीं काटते। कुत्ते आए थे, लगभग सौ कुत्ते रहे होंगे। वहां भोजन के सौ थाल भी लगे थे। मैं एक एक कुत्ते के आगे एक एक थाल करता गया और वे सब खाने में लग गए। कई थालों में दो दो कुत्ते एक साथ खाने लग गए। इसलिए कुछ थाल बचे भी रह गए।" राजा ने कहा, "तुम्हें यह बात सूझी कैसे?" राजकुमार कहने लगा, "महाराज, मेरे मन में पहली बात तो यह थी कि व्यक्ति को हर परिस्थिति का सामना करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। दूसरे जिस तेज़ी से कुत्ते भागते हुए आए थे उससे लग रहा था कि कई दिनों से उनको भूखा रखा गया है। मुझे उन पर दया आ गई। वे मुझे डरावने लग रहे थे, लेकिन उन्हें देखकर मुझे यह लग रहा था कि वे डरावने इसलिए हैं कि बहुत भूखे हैं। अतः मैंने उनके आगे भोजन रख दिया। तीसरे महाराज! **आदमी डरता तब है जब वह अंदर से डरा हुआ हो। जो अंदर से कमज़ोर हो, वह हर चीज़ से डरता है।** महाराज, आपके साथ रहकर, आपके विचार सुनते सुनते मैंने अब तक यही सीखा है कि ज़िन्दगी में डरने लायक कुछ भी नहीं है। डर अगर कहीं है तो हमारे अंदर ही है। मैंने अंदर वाले डर को मार लिया है और बाहर वाला डर मुझे बेचैन नहीं कर पाया, मेरा संतुलन बिगाड़ नहीं पाया; इसलिए मैं डरा नहीं।"

राजा ने पूछा, "लेकिन जब यह घोषणा की गयी थी कि आज युवराज का चुनाव किया जाएगा तब तो तू खुश हुआ होगा ?" राजकुमार ने कहा, "महाराज मुझे जो भी कार्य दिया जाएगा, उसे करते हुए मैं देर सबेर उतनी ही ऊँचाई पर पहुँच जाऊँगा, जितनी ऊँचाई पर दूसरे किसी के द्वारा ऊँचा

बैठाने से पहुँचूंगा। ऐसा मेरा विश्वास है। मैंने वहाँ पहुँचना ही है क्योंकि मैंने विचारों से अपने को पकाया है। इसलिए मुझे न डर है, न घबराहट।" राजा प्रसेनजित ने तब बेटे श्रेणिक से कहा, "राजा के अन्दर यही गुण होने चाहिए। मेरा चुनाव पूरा हो गया। तेरे अंदर राजा वाले गुण विद्यमान हैं। बाहर से किसी पर राजा का पद थोप दिया जाए तो वह राजा नहीं बना करता।" आप को भी भगवान ने राजा बनाया है। अपने अन्दर राजा वाले गुणों को ज़िन्दा करें। ज्ञान और योग, सिद्धान्त और प्रयोग दोनों का मेल बैठाएं। अंतःकरण को निर्मल कीजिए, निर्भय जीवन जीने की कोशिश कीजिए। फिर आपके जीवन में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं होगी। आपके अन्दर एक संपदा उपजेगी जो आप में अमीरी पैदा करेगी।

दिव्यता से युक्त होने के लिए, अपनी आसुरी वृत्तियों को मिटाने के लिए हमारी जीवनचर्या क्या होनी चाहिए, हमें अपने जीवन को किन सुन्दर गुणों से युक्त बनाना चाहिए, उसका वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मनुष्य जिन छब्बीस दिव्य गुणों की दिव्य सम्पदा लेकर संसार में जन्म लेता है, उसमें प्रथम गुण है **अभयता**। दूसरा अतःकरण की शुद्धि और तीसरा ज्ञान एवं योग में समन्वय की क्षमता और स्थिरता है। अगला गुण 'दान' है।

जीवन में पाने की कामना सब की होती है, लेकिन पाने से अलग हट कर जिसे देना आ जाए, वह व्यक्ति दिव्य गुण से युक्त हो जाता है।

अन्य गुणों में स्वयं पर नियन्त्रण रखना, परोपकारी कार्यों में रुचि लेना, ज्ञान के लिए स्वाध्याय करना, सहनशक्ति का विकास करना और जीवन को सरल बनाना है। कुल मिलाकर जिन छब्बीस गुणों से युक्त व्यक्ति को दिव्य सम्पदा से परिपूर्ण माना गया है उनमें सर्वोपरि है निर्भयता और अंतःकरण की शुद्धि, ज्ञान और योग अर्थात् सिद्धांत और प्रयोग में सन्तुलन। **सिद्धान्त बना लेना एक बात है और सैद्धांतिक होकर जीना दूसरी बात। जब तक सिद्धान्त प्रयोग द्वारा जीवन में न उतरें तब तक कोई लाभ नहीं होगा। ज्ञान और योग में तालमेल बैठाना बहुत मुश्किल होता है। बड़ी बड़ी बातों का संग्रह तो हर किसी के पास होता है लेकिन केवल बड़ी बातों से जीवन बड़ा नहीं बनता।** ज्ञान भी तभी परिपूर्ण होता है जब

सिद्धांत प्रयोग पर खरे उतरते हैं। कुछ पुस्तकें पढ़ लेने और कुछ जानकारी इकट्ठा कर लेने से ही ज्ञानी नहीं हुआ जा सकता। ज्ञान का प्रयोग जीवन में प्रतिदिन होना चाहिए। परंतु जब तक हमारे विचारों में शुद्धि नहीं होती, हम शुद्ध और अशुद्ध विचारों मे भेद नहीं कर पाते। अपने सिद्धांतों व विचारों की शुद्धता के संबंध में प्रयोग न करते हुए, हम दूसरों की बातें भी जोड़ लेते हैं और एक संग्रह बना कर रख लेते हैं। उसका परिणाम ऐसा होता है जैसे कोई शुद्ध जल और शुद्ध दूध दोनों को मिला दे तो हालांकि दोनों अपनी अपनी जगह शुद्ध थे, लेकिन मिलने के बाद जो तरल पदार्थ बना वह अशुद्ध है। वह न शुद्ध दूध है (पानी मिला है) और न शुद्ध जल (दूध मिला है)।

हमने हज़ार जगह के विचार जोड़े, प्रयोग कुछ भी नहीं किया। हमनें सन्यासी के कर्त्तव्य बना दिए। गृहस्थियों के लिए भी कर्त्तवय बना दिए। अगर हम दोनों विचारों को जोड़ कर चलना चाहें तो असंभव है। आप जो हैं, जिस तरह से हैं, बस अपने कर्त्तव्यों को निभाना और उनमें निहित सिद्धांतों को प्रयोग में लाना शुरू कीजिए तो चमत्कार हो जाएगा। ज्ञानी कहलाने के लिए सिर्फ कुछ चीज़ें रट लेना काफी नहीं है।

विचारों की शुद्धि के लिए साधन की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। साधन की शुद्धि अर्थात् हमारे सुख सुविधा के साधन और उपाय शुद्ध हैं या नहीं? कमाने का ढंग शुद्ध है या नहीं? इसके अतिरिक्त हमारा व्यवहार भी शुद्ध होना चाहिए। लेन देन में आप साफ हैं या नहीं? नीयत साफ है या नहीं? ज्यादातर लोग लेन देन में झगड़ पड़ते हैं। व्यापार (बिजनेस) किया, ठीक हो गया। बहुत कमाया, पर बंटवारे में दोनों भाइयों का झगड़ा हो गया। यदि दोनों की नीयत साफ़ हो तो बाँटते समय कोई समस्या नहीं होनी चाहिए।

जायदाद का बंटवारा होते ही जगह बँटी, पैसा बँटा, फैक्टरी बँटी, दुकान बँटी लेकिन उससे भी ज़्यादा मन बँट गया, दिल बँट गए। नीयत खराब हो जाए, अंतःकरण ठीक न हो तो किसी बात को लेकर बेटा और बहू घर से अलग रहने के लिए चले जाते हैं। जगह दूर हुई तो दिल भी दूर हो जाते हैं। वह पहले वाला प्यार भी नहीं रहा। अतः **अंतःकरण के विचार, साधन व उपायों का प्रयोग और नीयत, तीनों में अगर शुद्धि करोगे तो अन्दर दिव्यता पैदा होगी।**

भगवान श्रीकृष्ण ने एक उन्नत, परिष्कृत एवं सभ्य समाज की परिकल्पना की है जिसमें खुद घाटा सह कर भी भाई के प्रति प्यार बना रहे संपत्ति कम ज़्यादा हो जाए, तो हर्ज नहीं, लेकिन प्यार कम नहीं होना चाहिए। सम्पत्ति तो भाग्य फिर देगा, पुरुषार्थ से पैदा कर लेंगे, लेकिन संबंध न टूट जाएँ। परमात्मा की बहुत बड़ी कृपा से प्यार के संबंध बनते हैं। ईंट और पत्थरों का बनाया मकान टूट भी जाए तो दोबारा बन जाएगा लेकिन संबंधों का सिलसिला ऐसा है कि दिलों की दीवारें टूट जाएँ, तो उनको जोड़ा नहीं जा सकता।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाए।
टूटे से फिर न जुरै, जुरै गाँठ पड़ जाए।।

रहीम ने कहा है कि प्रेम और भावनाओं के संबंधों में खींचातानी मत करो। अगर ये टूट गए तो बाद में जुड़ेंगे नहीं और जो जुड़ भी गए तो गाँठ पड़ ही जाएगी। फिर वह गाँठ ज़िन्दगी भर महसूस होती रहेगी। संबंधों में सरलता नहीं रह जाएगी, फिर प्रेम, प्रेम नहीं रहेगा, फिर धागा, धागा नहीं रहेगा। प्रेम ही तो वह धागा है जो माला के मोतियों को बाँधे रखता है। धागा टूटा, मोती बिखरे। एक प्रेम ही तो है जो आप सबको बांधे हुए है।

यदि आपका अंतःकरण शुद्ध है, आपने ज्ञान व योग का समन्वय कर लिया है तो समझो आपको जीना आ गया। हंस सिर्फ मोती खाता है, वह साधारण चीज़ खाता ही नहीं। प्रेम और प्यार के संबंधों का जो हंस है, वह भी मोती ही चुगता है, वह साधारण चीज नहीं चुगता। उसको संभालने के लिए आपको बहुत जतन करने पड़ेंगे। कुत्ते को रोटी फेंककर डालो तो भी वह झट आकर खा लेगा, लेकिन हाथी को मालिक बहुत प्यार से खिलाता है, फिर भी वह आसानी से नहीं खाता। वह जो बहुत शक्तिशाली है और आपकी शान है, वैभव है, आपके प्रेम का भूखा होता है।

ईंट पत्थरों के मकानों में रहने वाले लोगों ने आज दुनिया में एक दुर्भाग्यजनक स्थिति बना दी है। एक तो शहरों के बीच से हरियाली चली गई, हरियाली नहीं रही तो प्रकृति के सौंदर्य का रस भी गया। संबंधों के बीच प्रेम की जो गर्मी थी, वह भी खत्म हो गई। चारों ओर मतलबपरस्ती है। सम्पर्क (कम्यूनिकेशन) के साधनों ने लोगों को भौगोलिक निकटता तो दी है, दूर संचार साधनों द्वारा लोगों में दूरियां घटी हैं, पर दिलों की दूरियाँ

कम नहीं हुईं। **हम आसानी से एक स्थान से जाकर दूसरी जगह बस सकते हैं लेकिन किसी दिल में बसने का बड़प्पन हम नहीं पैदा कर पाये। किसी को अपना बना लें और हम उसके हो जाएँ, यह बात नहीं पैदा कर पाए। इसमें तो हम दूर होते जा रहे हैं। इसलिए तो माँ बेटा, पिता पुत्र, भाई भाई, पति पत्नी, मित्र मित्र के संबंधों में न पहले की सी तड़प है, न उष्णता।**

रामायण में प्रसंग आता है कि भरत, सेना मंत्री परिषद और गुरुजनों को लेकर भाई राम को मनाने के लिए चित्रकूट पहुँचे। लक्ष्मण पहरेदारी कर रहे थे इसलिए उन्होंने जब दूर से दिशाओं में धूल उड़ती देखी तो शाल के एक वृक्ष पर चढ़ गए। लक्ष्मण ने देखा कि एक बड़ी सेना उनके कुटीर की ओर बढ़ रही थी और ऊपर चढ़ कर देखा तो अयोध्या का झण्डा दिखाई दिया। लक्ष्मण ने तुरंत कहा, "मालूम होता है भरत की बुद्धि लालच में इतनी आ गई है कि अब विवेक नहीं रहा। हमें यहाँ भी सताने के लिए आ गया है।" इतना कह लक्ष्मण ने राम जी की तरफ इशारा करके कहा, "भैय्या, इस समय आप अपना दयालु रूप छोड़ दीजिए और हो सके तो मेरा धनुष बाण मुझे उठा कर के दे दीजिए। भरत को पता तो लगे कि सुमित्रा के बेटे के तीरों की तीव्रता कैसी है। उसकी पूरी फौज को रोकने के लिए मैं अकेला काफी हूँ। राजगद्दी इतनी महत्त्वपूर्ण हो गई कि हमला करने के लिए आ गया।" राम तब कहते हैं, "लक्ष्मण नीचे उतर आओ। आने वाला भरत ही है तो उसे मैं जानता हूँ। उसने कभी किसी पदार्थ को महत्त्व नहीं दिया, संबंधों को महत्त्व दिया है। भरत के लिए भाइयों का प्यार इतना मूल्यवान है कि वह कभी उन पर तीर नहीं तान सकता। सम्पत्ति और राजगद्दी इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं कि भाई भाई के प्यार को भूलकर एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाएँ। लक्ष्मण, नीचे उतर आओ। अगर अपने प्रेम के लिए, अपने भाई के लिए और अपने कुल की मर्यादा के लिए हमारी गर्दन भी चली जाए, हम कुर्बान हो जाएं, हमारा शरीर कट जाए तो हम इसके लिए भी तैयार हैं लेकिन आपस में हम लड़ेंगे नहीं।" इसे कहते हैं दिव्यता।

दिव्यता जब आ जाए तो व्यक्ति, व्यक्ति नहीं रहता, उसके अन्दर भगवत्ता जागने लगती है। उसके अन्दर भगवान का स्वरूप जागने लगता

है। वह साधारण नर दिखाई तो देता है, लेकिन उसके अन्दर से नारायण के दर्शन हो रहे होते हैं। उसके अन्दर की दिव्यता प्रकट हो रही होती है। इसके आगे भगवान श्रीकृष्ण ने कहा **'दानं दमश्च यज्ञश्च'** व्यक्ति के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने के लिए महत्त्वपूर्ण है 'दान'। **दान का मतलब किसी संस्था, मन्दिर या किसी गरीब को सहयोग कर देना ही दान नहीं है। प्रेम, सहयोग और करुणा की भाँति दान भी आपका एक रूप होना चाहिए। दान आपके जीवन का अंग होना चाहिए। देना आपका स्वभाव बन जाए।** परमात्मा की प्रकृति में बादलों का स्वभाव ही देना है। उनकी महत्ता इसी बात में है कि वे बरसें। जो बादल आएँ और चले जाएँ, वे सम्मानित नहीं होते। सूरज की धूप अगर सर्दियों में सर्दी न मिटा पा रही हो तो लोग कहते हैं कि आज सूरज को क्या हो गया है? किरणों में दम ही नहीं है। **संसार के लिए जो वस्तु उपयोगी है वही महत्त्वपूर्ण है। हमारा उपयोग जब समाज और मनुष्य के हित में हो तभी हम और आप उपयोगी और पूजनीय कहलायेंगे।**

समाज को आपने क्या दिया? परिवार को आपने क्या दिया? मोहल्ले को आपने क्या दिया? राष्ट्र को आपने क्या दिया? धरती को आपने क्या दिया? संसार को क्या देकर जायेंगे? वृक्ष भी विदाई लेते लेते अपने बीज धरती पर बिखेर कर जाता है। पेड़ पौधे सब अपने बीज छोड़ कर जाते हैं। यह परम्परा चलती रहनी चाहिए, **हरियाली की परम्परा, फलों की परम्परा, फूलों की परम्परा, जाते समय संसार को कुछ न कुछ देकर जाने की परम्परा संसार से मिटनी नहीं चाहिए।** विचारिये कि आप क्या दे रहे हैं? जिए तो दूसरों पर भार बनकर, सबकी शिकायतें करते हुए जिए। अपना भला करने में लगे रहे, किसी का भला नहीं किया। व्यवहार भी ऐसा किया कि दूसरों को डंक जैसा लगा। दूसरों को सताया। यह आसुरी वृत्ति है। दैवी वृत्ति तो वह है कि व्यक्ति जहाँ भी रहे, उसकी सुगंध, उसके गुण, उसकी दिव्यता, उसका सहयोग दिखाई देता रहे।

ज़रूरी नहीं है कि आप के पास थोड़ा है तो आप ज़्यादा दें। वर्णन आता है कि किसी महापुरुष से एक गरीब आदमी ने कहा, "मैं रुई धुनने का

काम करता हूँ। जो पैसे आते हैं, उससे गुजारा करता हूँ। लेकिन आप कहते हैं कि कुछ न कुछ दान करना चाहिए। मेरे पास तो इतना है नहीं कि दान करूँ। तो मैं कैसे दान करूँ ?" महापुरुष ने कहा "जितना लेते हो, ईमानदारी से उतना ही तुम वापिस कर दो। जितनी रुई तुमने ली है, धुनने के बाद, साफ करने के बाद, उतनी ही तुम वापिस करो, उसमें बेईमानी न करो। यही तुम्हारा दान होगा।" **हम अपनी जीवन शैली से बेईमानी को जन्म दे रहे हैं। हम चोर नहीं हैं, लेकिन फिर भी छोटी मोटी चोरियाँ चलती रहती हैं।** जैसे दूसरे की चीज़ है, उठा ली, सोचा क्या हो गया, बाद में बता देंगे, अभी हमें ज़रूरत है ले लेते हैं। **कुछ छोटी मोटी बातों को तो हम चोरी मानते ही नहीं हैं। किसी का अखबार है, उससे बिना पूछे आपने उठाया, पढ़ा और अपने घर में रख कर भूल गए।** किसी की कोई वस्तु आपने उठाई और वापिस देना भूल जाएँ। इन बातों को तो हम महसूस भी नहीं करते कि ये सब भी चोरी है।

जो व्यक्ति बाँटना सीख गया, देना सीख गया, उसे जीना आ गया। अपने अंतःकरण को आप कभी पापी नहीं बनाना। आप समाज से जो कुछ भी लेते हैं उससे कई गुणा वापिस करने की कोशिश कीजिए। शंख और लिखित मुनि का उदाहरण बड़ा ही विचित्र है। इस से पता चलता है कि हमारे देश में ईमानदारी का स्तर क्या था। शंख और लिखित दोनों मुनि सगे भाई थे और उनके आश्रम साथ साथ थे। शंख मुनि ने लिखित मुनि के आश्रम में सुन्दर फल लगे देखे। सोचा कि भाई तो यहाँ है नहीं। भाई के आश्रम में गए और दो चार फल तोड़कर खा लिए। बहुत अच्छा लगा। फिर अपने से प्रश्न करने लगे, 'इन फलों को उत्पन्न करने में मेरा क्या योगदान था? मैंने तो कोई परिश्रम किया नहीं। दूसरों की कमाई को तुरन्त ले लेने की आदत तो बहुत खराब है। माना मेरा भाई है, लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि मैं उससे पूछे बिना उसके फ़ल तोड़ कर खाऊं। अगर ऐसे ही विचार रखूंगा तो समाज को क्या दूंगा। एक दूषित वातावरण। इस समय तो मैं एक आदर्श हूं, अगर मैं ही बेईमानी और चोरी करूंगा तो तपस्या धरी की धरी रह जायेगी। थोड़ा सा लालच, थोड़ा सा स्वाद मन में

आया, तो चोरी कर ली। ऊपर से मन में यह तर्क बना रहा हूं कि थोड़े से फल खाने से क्या होता है। भाई के ही तो हैं।'

उनके मन में जब यह विचार आए तो वे राजा के पास गए और बोले, "राजन्! अगर कोई आदमी चोरी करे तो उसके लिए क्या दंड है?" राजा ने कहा, "जिस हाथ से चोरी की है वह हाथ काट देना चाहिए।" बड़ा कठोर दंड विधान रहा होगा उस समय में।

शंख मुनि ने कहा, "मैंने अपने भाई लिखित के आश्रम से कुछ फल चुरा कर खाए हैं। अब आप मेरा हाथ काटिए।"

राजा ने कहा, "मुनि जी, आप क्या बात कर रहे हैं? आपका हाथ काटा जाए? थोड़े से फलों का दंड इतना नहीं होना चाहिए।"

शंख मुनि ने कहा, "थोड़े या ज़्यादा दंड की बात नहीं है। सवाल यह है कि अगर आज मेरा अंतःकरण बिगड़ गया तो जन्म जन्मान्तरों के अन्तराल में बिगड़कर यह बहुत बड़ा चोर बन सकता है। आज मेरा अंतःकरण सुधर गया, तो जन्म जन्मान्तरों की इस पीड़ा से बच जाऊँगा। एक हाथ कटने की पीड़ा सह लेना आसान नहीं है पर मैं कहूँगा कि यह फिर भी आसान है, क्योंकि वह पीड़ा जो मुझे बाद में जन्म जन्मांतरों तक भोगनी पड़ेगी, वह मेरे लिए ज़्यादा दुखदायी हो जाएगी। इसलिए अच्छा है कि आप मुझे दंड दे दे।"

शंख मुनि हाथ कटवाने के लिए तैयार हो गए। राजा मना कर रहे हैं। भाई भी आ गए और उन्होंने भी कहा, "भाई आपने अपने मन को पीड़ा दे दी तो पश्चाताप हो गया।" पर शंख मुनि नहीं माने।

पुराने लोग ऐसा करते थे कि किसी शिक्षण या धार्मिक स्थान में जाने पर अगर वहाँ पर किसी ने चाय पिलाई तो पहले तो पीएँगे नहीं किन्तु अगर खाना पीना पड़ जाए तो दान पात्र में यथाशक्ति डाल कर आएंगे। सोचते थे कि ऐसा नहीं करेंगे तो मन पर इतनी मैल जम जाएगी कि बाद में हम दूसरों की चीज़ें छीनने में खुशी महसूस करेंगे और चोर होकर भी चोर कहलाना पसंद नहीं करेंगे। इसलिए हिसाब किताब उसी समय साफ़ कर आते थे। कहीं से भी कुछ लें तो तुरंत वहाँ दें। अगर आपके विचार ऐसे बन

जाएं तो आप यदि किसी भी बगीचे में गए तो वहाँ का फूल तोड़ने की इच्छा नहीं होगी? आप सोचेंगे भी नहीं कि आपको यह फल या फूल तोड़ना चाहिए। आपके मन में बात आयेगी कि आपने इस बगीचे को बनाने में कोई काम नहीं किया है इसलिए आपको फल खाने का कोई अधिकार नहीं है।

भगवान कृष्ण ने दिव्य गुणों के संबंध में बताया है कि समाज में आप जिस प्रकार का जीवन जीते हैं, आप के ऊपर एक व्यक्ति का नहीं, अनेक व्यक्तियों का ऋण होता है। आपका वस्त्र अनेक व्यक्तियों के हाथों से तैयार किया गया होता है। आपने जो भोजन किया, उसके उत्पादन और तैयार करने में अनेक आदमियों की मेहनत लगी होती है। फिर भोजन पकाने में भी कईयों का हाथ लगा होता है। इस प्रकार अनेक लोगों का कर्ज़ा आपके ऊपर है। इसलिए समाज के लिए कुछ करना आपका फर्ज़ है। इस समाज के लिए कुछ कार्य करो, योगदान दो, तब आप के जीवन का ढंग बदलेगा। सोचो, विचार करो कि जिस समाज में मैं रहता हूँ उस समाज के लिए मैं क्या करता हूँ? फिर आपकी मनःस्थिति ऐसी बनेगी कि आप चौराहे पर कार्पोरेशन द्वारा रखे हुए गमले उठा कर अपने घर ले आने की बजाय अपने दो गमले चौराहे पर रख आयेंगे। आप अपने नगर को सजाएंगे।

समाज बीमार हो जाए, रुग्ण हो जाए तो धारणाएँ दूषित हो जाती हैं। चोरों के समाज में चोरी करना धर्म है। बहुत से कबीलों का पेशा ही चोरी है। चोरी करने जाने से पहले वे देवी का पूजन करते हैं। परन्तु हमने ऐसे निकृष्ट और घटिया समाज का निर्माण नहीं करना है। हमारा समाज ऊँचे लोगों का होना चाहिए। **हममें से जो अपने आपको धार्मिक कहते हैं पहले कम से कम वे तो आदर्श कायम करें। हम जो बड़ी बड़ी आरतियाँ करते हैं, बड़े बड़े मन्त्र बोलते हैं, पहले आदर्श कायम करें।** भगवान कहते हैं कि दान देना। अगर तुम्हें देना आ गया तो यह गुण तुम्हारी ज़िन्दगी को बहुत ऊँचा ले जाएगा।

आप दाता बनें इसके लिए यह ज़रूरी नहीं होना चाहिए कि कोई दूसरे भिखारी बनें। दान सहयोग है, प्रेम है जो एक भाई दूसरे भाई को देना चाहता है। जैसे कि आप की गाड़ी कहीं रास्ते में फँस जाए और कुछ व्यक्ति उधर

से आ निकलें और गाड़ी में बैठे हुए आपको परेशान देखकर सहयोग देने आ जाएं। उन्होंने खुशी खुशी गाड़ी निकाली और हँसते हुए अपने रास्ते चल दिए। आपने उनकी तरफ प्यार और कृतज्ञता से हाथ हिलाया। यह मनुष्यता है, एक दूसरे के प्रति सहयोग है और यही दान है। **किसी को खून की आवश्यकता पड़ गई तो आपने खून दे दिया,** अहसान जताने की कोई बात नहीं। **इन्सान दूसरे इन्सान के काम आया, यह दान है।**

सहयोग की भावना जगाओ। **भिखारियों का समाज पैदा कर देने का नाम दान नहीं है।** कुछ लोग दान (भीख) माँगें और कुछ दान (भिक्षा) दें, यह अजीब चीज़ है। चौराहों पर भिखारी खड़े हुए होते हैं। वे और कुछ नहीं करते। उनका काम ही पैसा उगाहने का है। आसान काम है। सबने अपना बायाँ हाथ बांध रखा है। सब का बायाँ हाथ बंधा हुआ होगा क्योंकि दाँये हाथ से तो उन्होंने भीख मांगनी है। बायाँ हाथ बाँध कर उसमें लाल रंग जैसा कुछ लगा लेते हैं। दिखाते हैं कि वे बीमार है, अपाहिज हैं। ऐसे जितने भी मांगने वाले अपाहिज खड़े हुए दिखाई देंगे उन सब का बायाँ हाथ खराब है और आपके पास इतनी फुर्सत नहीं है कि आप जांचें कि उनके बायें हाथ के ज़ख्म सही हैं या नकली। अगर आप ध्यान दें तो पाएंगे कि वही व्यक्ति कई महीनों से ज़ख्मी हालत में भीख मांग रहा है। उसका घाव ठीक ही नहीं होता, उसी तरह से ताजा रहता है। उनके माँगने के ढंग बन गए हैं और आपके देने के ढंग। अपनी समझ से उनको दान देकर आप और भिखारी बढ़ाते जा रहे हैं।

नानजी भाई कालिदास किसी समय एक होटल में साधारण बर्तन साफ करने का काम करते थे। एक दिन एक व्यक्ति ने उसको कहा कि भीख नहीं माँगना, न किसी का सहयोग लेना। लेकिन आगे बढ़ने के लिए सहयोग लेना पड़े तो उसे कर्ज़ समझना और कई गुणा बढ़ा कर वापिस करना याद रखना। बैंक भी लोगों को कल कारखाने चलाने के लिए अनुदान देता है। व्यापार (बिज़नेस) चलाने के लिए पैसे बैंक देता है, पर साथ में कहता है कि ब्याज भी लौटाना, मूल भी लौटाना। समाज ने आपको कुछ अनुदान दिया है या भगवान ने आप पर कृपा की है तो फिर आपको उसका कर्ज़ा चुकाना चाहिए। अपने को इस लायक बनाना कि आप ब्याज

और मूलधन दोनों को चुका सकें। आप ऐसा बनेंगे तो पहले से अनन्त गुणा अधिक अनुदान दे सकेंगे। ऐसे बेईमान समाज को बढ़ावा नहीं देना कि मूल भी खत्म और ब्याज भी खत्म और फिर भी माँगने के लिए हाथ बढ़े हुए हैं। भीख मांगने वाले को भीख देना दान नहीं है।

भगवान कहते हैं कि **समाज में सहयोग की भावना को पैदा करना दान है। कमज़ोर को बलवान बनाने की चेष्टा करना दान है।** फिर जब वह बलवान हो जाये तो उसको तैयार करना कि वह भी किसी कमज़ोर का सहयोग कर उसे स्वावलम्बी बनाए। इसे दान भावना कहा गया है। जयप्रकाश नारायण ने समाज को एक खास प्रकार की दिशा दी। उन्होंने बताया, "एक बार जापानियों के साथ विचार विमर्श चल रहा था कि भारत में गरीबी दूर करने के लिए क्या प्रयोग किए जाने चाहिएं? देश में साधन और स्रोत तो बहुत हैं। धन संपदा, खनिज पदार्थ तथा अन्य उत्पादन भी हैं।" जयप्रकाश नारायण ने आगे बताया, "भ्रमण करते हुए हम लोगों ने एक जगह देखा कि कुछ लोग टूटी हुई झोंपड़ी के बाहर आराम से बैठे चिलम में तम्बाकू रखकर पी रहे हैं। कोई लेटा हुआ है, कोई चिलम पी रहा है। यह देखकर जापानी लोग कहने लगे कि ये लोग तो गरीब नहीं हैं, ये तो बहुत अमीर लोग हैं। मैंने पूछा कि क्या आप मजाक कर रहे हैं? तो वे लोग बोले कि, "जिस आदमी के सिर पर गरीबी हो, वह इतने आराम से बैठ कर चिलम नहीं पी सकता, इतने आराम से लेटा भी नहीं रह सकता। जिसको अपने सामने गरीबी, दुःख और लाचारी दिखाई देती हो वह अपने समय का उपयोग करेगा और पूरी ऊर्जा शक्ति कमाई में लगाएगा। ये गरीब जितने इत्मीनान से समय बर्बाद कर रहे हैं ऐसा तो जापान में रईस भी नहीं कर सकते।"

जयप्रकाश नारायण कहते थे, **"ओ भारत वालों! तुम्हारे पास तुम्हारा समय और पुरुषार्थ तुम्हारी कीमती संपदा हैं। अगर तुम एकजुट होकर समय का उपयोग करते हुए, उसे सही दिशा में लगाना शुरू कर दो, एक दूसरे का सहयोग करना शुरू कर दो, तो तुम्हारी गरीबी रह ही नहीं सकती।"**

अगर हमारे सामने मुश्किलें हैं तो वह हमें पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित करने वाली होनी चाहिए। इसलिए दान का मतलब यह कभी नहीं लेना चाहिए कि कोई हमें दे दे और हम लेने वाले बन जाएँ। मैंने पहाड़ों में जाते हुए गरीब गांववालों को देखकर उनको कुछ पैसे देने की चेष्टा की लेकिन उन्होंने यही कहा, "आप हमें भीख दे रहे हैं? हमें आप गरीब समझते हैं? हमारे पास साधन कम हैं मगर कपड़े पहनेंगे तो अपनी कमाई के। अगर हम किसी का दिया हुआ वस्त्र पहनेंगे तो मन गंदा बन जाएगा।" वे लोग दान में, भीख में पैसा नहीं लेते। नंगे पाँव रह लेना उनकी आदत बन गई है। कच्चे मकानों में रहेंगे लेकिन बड़े सन्तुष्ट और बड़े समृद्ध। दूसरी तरफ वे लोग हैं जो महलों में रहते हैं लेकिन रात दिन चोरी करने की उनकी आदत है। एक का मन समृद्धि में रहने पर भी चोर और दूसरा टूटी हुई झोंपड़ी में रह कर भी मन से साधु।

छठवाँ दैवी गुण है **'दमश्च'** अर्थात् आत्म नियन्त्रण। अपने ऊपर नियंत्रण करना। इस **दमश्च** शब्द को थोड़ा समझिए। इस का अर्थ अनुशासन है। फौज में अनुशासन चलता है, पुलिस में अनुशासन चलता है, लेकिन वह ऊपर से लादा गया अनुशासन है। बड़ा साहब सामने है, उसके सामने उन्हें उसी तरह से चलना है। एक अनुशासन वह होता है जो बाहर से लादा नहीं गया, अन्दर से आया है। अन्दर से आया हुआ अनुशासन आपको समय से जगाएगा, समय से सुलाएगा और आपको व्यवस्थित रखेगा। आप कहीं पर भी हों, अगर किसी को दुःखी देखेंगे तो आप उसके साथ सहयोग करने के लिए तैयार हो जाएँगे। दूसरे की कितनी भी धन सम्पदा सामने पड़ी हो चुरायेंगे नहीं। आप किसी भी ऊँचे पद पर बैठे होंगे, कितना भी लालच दिया जाए, आप किसी लालच में नहीं आएँगे। क्योंकि आप अन्दर के अनुशासन से बंधे हुए हैं।

एक बहुत बड़े धनपति थे। एक बार उन्होंने मज़ाक में एक बात सुनाई। न जाने कहाँ तक सही रही होगी। उन्होंने कहा, "मुझे एक बार सरकारी अफसर से अपना कोई काम निकलवाना था। मेरा काम रुका हुआ था क्योंकि हमसे कुछ गलतियाँ हुई थीं, जिन्हें हम ठीक नहीं कर पा रहे थे।

तो हम लोग गए और उस आदमी से कहा कि कोई दूसरा होता तो पाँच दस हज़ार में हमारा यह काम कर देता। हम आपको चालीस पचास हज़ार रुपए तक देने को तैयार हैं। उस आदमी ने सुना और हँस कर बोला, "साहब, आप जाइए। मैं चाहता तो आपको गिरफ़्तार करा सकता हूँ। लेकिन प्यार से आपको समझा रहा हूँ कि दस हज़ार क्या, दस लाख या दस करोड़ भी लेकर आप आएँ तो भी मैं डोलने वाला नहीं हूं। मेरी रगों में मेरे माँ बाप ने जो खून भरा है और जो संस्कार भरे हैं वे ईमानदारी, सच्चाई और अनुशासन के हैं। वे डोलने वाले नहीं हैं, इसलिए आप जाइए।" हमने कहा कि देख लीजिए, आप काम नहीं करेंगे तो दूसरा कोई कर देगा और हो सकता है कि आपके बड़े अफसर को हम थोड़ा ज़्यादा दें तो वह आपका तबादला (ट्रांसफर) भी करा सकता है। काम तो हमारा हो ही जाएगा। यह बात सुनकर वह थोड़ा सा दुःखी हुआ और कहने लगा, "आप जो भी करना चाहें करें परन्तु मुझे इस बात के लिए मजबूर न करें कि मैं गुस्से में आ जाऊं। आप यहाँ से जा सकते हैं।" उस आदमी ने हमको डाँट कर बाहर भेज दिया। मैंने अपना काम तो कराना ही था, तो किसी न किसी तरह से करा लिया, पर मुझे वह आदमी याद रहा।

वह जब रिटायर हो गया तो मैं उसके घर गया और उससे जाकर कहा कि मैं उसे अपनी कंपनी में जितनी तनख्वाह वह सरकार से पाता रहा है उससे दुगुनी तनख्वाह देकर बहुत ऊँचे पद पर रखना चाहता हूँ। जैसे ही मैंने यह आफर दी तो उसने कहा कि एक समय में मैंने तो आपकी बहुत बेइज्ज़ती की थी, कड़वा भी बोला था, और आपकी बात भी नहीं मानी थी, तो भी आप मुझे इतने पैसे किसलिए दे रहे हैं? मैंने तब उस आदमी से कहा कि आपको मैं जो पैसे दे रहा हूँ बहुत कम दे रहा हूँ। आपको तो इतनी तनख्वाह दी जानी चाहिए कि जिसकी कल्पना भी न की जा सके क्योंकि ईमानदारी में आप सब से ऊपर हैं और ऐसे ही ईमानदार व्यक्ति से मेरी कंपनी चल सकती है। पैसे लेकर काम करने वाले तो बहुत मिल जाएंगे, पर ईमानदारी से कर्त्तव्य निभाने वाला मुश्किल से मिलता है। आगे उन्होंने बताया कि मैंने उस व्यक्ति को अपनी कंपनी में कुछ प्रतिशत का हिस्सेदार

बना कर रखा और मैं निश्चिंत होकर सो गया। मेरा काम सही चलता रहा।

बेईमान आदमी दूसरे को बेईमान बनाने के लिए पैसे देना चाहता है, लेकिन अपने लिए यही चाहता है कि उसके साथ काम करने के लिए आदमी ईमानदार हो। किसी शायर ने पंक्तियाँ लिखी भी हैं :

'मुजस्सिम' जफा हूँ, जफा कर रहा हूँ,
जमाने से फिर भी वफा चाहता हूँ।

मैं तो धोखेबाज हूँ, धोखा कर रहा हूँ लेकिन दूसरों से यह चाहता हूँ कि वे मेरे साथ धोखा न करें। अगर हम लोग अंतर्मन से अनुशासन अपना लें तो हमें अनुशासित करने के लिए कानून बनाने की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी। **जब कोई कानून, संविधान प्रजा के दिल पर अंकित हो जाता है तब वह प्रजा के व्यवहार में दिखाई देने लगता है।** पूरे देश में अपने आप संविधान का पालन होता दिखाई देने लगता है। **हम लोग कठोर से कठोर कानून बनाते जा रहे हैं, लेकिन उसके बावजूद कानून तोड़ने वाले बढ़ते जा रहे हैं।** कुछ भी सुधार नहीं हुआ है। कुछ कानून अपने अंदर बनाइए और उनका पालन कीजिए। अपने अंदर कुछ मजिस्ट्रेट और जज बैठाइए, और उसके बाद देखिए कि आपका जीवन और समाज का वातावरण कितनी ऊँचाई पर पहुंचता है।

भगवान कृष्ण इसके लिए **'दमन'** शब्द का प्रयोग करते हैं। कहते हैं अपने आप को अन्दर से नियंत्रित करना शुरू करो। दमन का मतलब दबाना नहीं है। दमन का मतलब है स्वयं से नियंत्रित होने की स्थिति पैदा करना, न कि दूसरा व्यक्ति आपको नियंत्रण में रखे। भगवान का अगला शब्द **'यज्ञश्च'** है अर्थात् परोपकारी कार्यों को करने के लिए तत्पर रहो। परोपकार के कार्य करना आपका स्वभाव बन जाना चाहिए।

यज्ञ और अग्निहोत्र करना, हमारी परम्परा रही है। हमारी संस्कृति यज्ञों की संस्कृति है। सब लोग यज्ञ अग्निहोत्र और हवन करते थे। इस संस्कृति में महत्त्वपूर्ण चीज़ यह है कि ऐसे कार्य ज़िन्दगी का हिस्सा बन जाते थे जो केवल अपने लिए ही नहीं, सबके कल्याण के लिए किये जाते थे। इसलिए शुरू से ही दो चीज़ें चलन में रही हैं। इष्ट और पुण्य कृत्यों को करना। हवन, यज्ञ, सत्संग, पूजन आदि अच्छे संस्कार देने के लिए

लोगों को एक जगह इकट्ठा करना, बच्चों को अच्छे संस्कार देना, धर्म प्रचार, संस्कृति का प्रचार ये सब यज्ञ में शामिल हैं। **समाज पर विचारों का प्रभाव पड़ता है इसीलिए अच्छे विचारों की सुगंध फैलाने के लिए यज्ञ और बड़े बड़े सत्संग किए जाने चाहिए, ताकि समाज अच्छा बने।** कोई बावड़ी बना देना, पानी के लिए कोई स्थान बना देना, पेड़ लगा देना, रक्त दान और नेत्रदान करना, अनपढ़ प्रौढ़ लोगों को पढ़ाना, जन साधारण को स्वास्थ्य की अधिक जानकारी देना आदि, यज्ञ हैं। समाज में चल रही कुप्रथाओं को बंद करने की चेष्टा में कोई प्रयोग करता है तो ये यज्ञ हैं। इसलिए अपने यज्ञ को, अपने अग्निहोत्र को, अपने हवन को सिर्फ हवनकुंड तक ही सीमित मत रखें, इसका विस्तार करें। गरीब विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए पुस्तकें देना आपका हवन है। विधवा और बेसहारा महिला की विवाह योग्य बेटी की शादी में सहयोग देने से बढ़कर कोई हवन नहीं। बूढ़े, हताश और निराश व्यक्ति जिसका कोई साथ नहीं देता, उसके पास बैठकर उसका दु:ख बांटना हवन है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हवन अग्नि को अपने अन्दर जलने दो जिससे तुम परोपकार और सेवा की भावना से प्रज्ज्वलित हो सको। समाज में जहां कोई भी दु:खी हो **काँटा लगे किसी के पाँव में तड़पते हैं हम। ऐ मीर, सारे जहाँ का दर्द हमारे दिल में है,** उसकी पीड़ा का हम अहसास करें। **कहीं भी कोई पीड़ित है, कहीं भी कोई दु:खी है, किसी के भी पाँव में काँटा लगा है तो तड़प हमारे दिल में होनी चाहिए।** इस भावना को लेकर जो जी रहा है, वह याज्ञिक व्यक्ति है। ऐसें पुरुषों के निकट रहने वाले व्यक्ति के अन्दर भी दिव्य गुण जागने लगत्ते हैं।

समुद्र के किनारे बैठकर कभी समुद्र की तरफ ध्यान से देखिए। समुद्र में जब लहरें नहीं होतीं तब समुद्र बहुत ही गहरा, शांत और शालीन दिखाई देता है। ज्वार आए तो समुद्र की चंचलता देखने योग्य है। जीवन भी ऐसा ही है। शांत हो तो बहुत गहरा, बहुत गम्भीर, विशिष्टता से युक्त। संसार की माया का ज्वार आए तो इतना विकराल कि हर चीज़ को तोड़ने के लिए तैयार। मन को अगर हम यह कहें कि मन चंचल है तो मन चंचल भी नहीं

है और अगर कहें कि शांत है तो वह शांत भी नहीं है। क्या किसी पंखे को घूमते हुए देखकर आप कहेंगे कि पंखा चंचल है? जब पंखे को आप विद्युत से अलग हटा देते हैं तो फिर देखकर लगता है कि पंखा चंचल नहीं, स्थिर है। अतः पंखा न तो चंचल है और न ही स्थिर। देखा जाए तो वह दोनों है और दोनों नहीं भी है। **मन को विचारों से रहित कर लिया जाए तो मन स्थिर दिखाई देता है। मन में तरह तरह के विचार आने लग जाएँ तो लगेगा कि मन से बढ़कर चंचल कोई नहीं है।** हमारे देखने की दृष्टि अलग अलग हो सकती है। यदि हम चाहें तो एक ही वस्तु को शांत भी कर सकते हैं और चंचलता से युक्त भी कर सकते हैं। जिन्दगी को हम जैसा चाहें, वैसा बना सकते हैं। इसलिए सम्भावनाएँ दिव्यता और दैत्य, दोनों होने की हैं।

इस जिन्दगी को हम क्या रूप देना चाहते हैं? प्रकृति ने हमें बहुत कुछ दिया है और हम उसका बहुत कुछ विकास भी करते हैं। हिमालय के साधक अपनी चर्चाओं में यह बात हमेशा कहते रहे हैं कि धरती पर तीन भाग जल है और एक भाग ठोस। इसी प्रकार धरती पर तीन भाग दुःख हैं और एक भाग सुख। एक भाग सुख को फैलाकर आप तीन भाग पर नहीं डाल सकते पर इतना ज़रूर कर सकते हैं कि **सुख का जितना टुकड़ा है उसका विकास कर लें, उसे और सुन्दर बना लें। जो है उसे और अच्छा बनाने की क्षमता परमात्मा ने आपको दी है। जितना सुख मिला है उसमें और मधुरता एवं मिठास लाकर दुःख की कड़वाहट को हल्का किया जा सकता है।** कुछ चिन्तक ऐसा मानते हैं कि किसी कार्य को पूरा करने में परमात्मा द्वारा मनुष्य को दी गयी प्रतिभा का योगदान केवल दो प्रतिशत है, बाकी अट्ठानवे प्रतिशत व्यक्ति का पुरुषार्थ है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति कुछ गुण, स्वभाव लेकर संसार में जन्म लेता है। कोई दैवी सम्पदा से युक्त होता है तो कोई आसुरी सम्पदा से। कुछ के अन्दर शुरुआत में ही शालीनता, सज्जनता, सरलता, सहृदयता, सहानुभूति और सेवा के संस्कार दिखाई देते हैं। कुछ में कुटिलता, कठोरता, निर्दयता, बेईमानी, छल प्रपंच और धोखाधड़ी जन्म से ही दिखाई देने लगते हैं। लेकिन भगवान ने यह भी कहा है कि दिव्य गुण इस बात के परिचायक

हैं कि यदि तुमने माया के प्रपंच को तोड़ लिया तो तुम जीवात्माओं में वह दिव्यता मौजूद है जिसके कारण तुम फिर से चमकने लग जाओ और अपने वास्तविक स्वरूप को पा लो। **हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है? निडर रहना, निर्भय रहना, अभय रहना, अंतःकरण को शुद्ध रखना, ज्ञान और योग का समन्वय बनाना, जीवन में सिद्धांत और प्रयोग का मिलान करके चलना, सहयोग की भावना रखना, स्वयं पर नियंत्रण रखना और परोपकारी कार्यों में रुचि, जिसको यज्ञ कहा गया है, ये सब दिव्य गुण हैं।**

एक दिव्य गुण है, **'स्वाध्यायस्तप आर्जवम्'।** स्वाध्याय करें, तप करें और सरलता से युक्त हों। भगवान कहते हैं कि दिव्यता से युक्त होने के लिए आपको चाहिए कि स्वाध्याय करते हुए अपनी आत्मा को निखारें। प्राचीन परम्परा रही है कि जिस समय शिष्य गुरुकुल में अध्ययन करने के बाद विदाई के लिए गुरु के चरणों में पहुँचता था, तो गुरु अपने अंतःवासी शिष्य को उपदेश के आखिरी वचन कहते थे, **सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।।** तुम स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना, सत्य बोलना और धर्म का आचरण करना। गुरु के प्रति, माता पिता के प्रति कर्त्तव्यों में कभी आलस नहीं करना। तप करने में कभी पीछे नहीं हटना और जो भी करणीय कार्य हैं, उनको अवश्य करना। गुरु जब कहता था कि सत्य बोलना और धर्म का आचरण करना, तो मतलब यह हुआ कि जो धर्म है, वह बोलने की नहीं, आचरण की बात है। सिद्धान्त, ज्ञान की धारा, कहने की नहीं आचरण की बात है। जो सत्य है वह तुम्हारी जीभ पर स्थिर हो जाए।

'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' ज्ञान अर्जन में, स्वाध्याय करने में कभी आलसी नहीं होना। बाकी सब बातों में आलस्य बर्दाश्त हो सकता है, धन कमाना, भोजन करना, सोना जागना, इनमें आलस्य कर लेना, पर स्वाध्याय में, अच्छी पुस्तकें पढ़ने में, ज्ञानार्जन में, सत्संग और प्रवचन में आलस्य नहीं करना, क्योंकि तुम्हारी दिशा ज्ञान की दिशा है। जैसे आँखें प्रकाश के बिना अंधी हैं, देख नहीं सकतीं, वैसे ही ज्ञान के प्रकाश के बिना बुद्धि की आँखें नहीं देख सकतीं। उसी तरह वेदों के अनुसार सूर्य समस्त ब्रह्माण्ड का चक्षु

है क्योंकि सूरज के प्रकाश के बिना आँखें देख नहीं सकतीं। इसलिए हर परिस्थिति में ज्ञान आवश्यक है। जानवरों के लिए परमात्मा ने ऐसी व्यवस्था की है कि वे रात के अंधेरे में भी देख लेंगे। उनको कोई टॉर्च या लालटेन की आवश्यकता नहीं है। कुत्ता, बिल्ली सब अंधेरे में खूब अच्छी तरह से देखते हुए चलते हैं। उनके लिए अंधेरा हो जाना कोई दुःखदायी नहीं है। लेकिन इन्सान के लिए प्रकाश ज़रूरी है तभी वह अंधेरे में भी देख सकेगा। इसी तरह **बिना ज्ञान के मनुष्य इस संसार में न ठीक ढंग से देख सकेगा, न चल सकेगा, परन्तु जब ज्ञान हो जाये तो हर स्थिति में वह सही मार्ग खोज लेगा।**

व्यक्ति को ज्ञानियों का संग करना बहुत जरूरी है। पुस्तकें, शास्त्र, अनुभव, प्रवचन, महापुरुषों के अनुभव ,ये सब शिक्षा का क्षेत्र हैं। इनको अपने जीवन के साथ जोड़े रखना। **बर्नार्ड शा ने कहा है कि दुनिया में लोगों को पढ़ना तो आ गया, लेकिन क्या पढ़ना चाहिए, यह बहुत कम लोगों को आया।** पढ़ना सीख लिया, पर क्या पढ़ना चाहिए, यह नहीं सीखा। आप कोई भी पुस्तक उठा कर पढ़ने लगें तो उससे कोई बात नहीं बनेगी। हमारे ऋषियों ने एक विभाजक रेखा खींची है। एक तरह के ग्रन्थ वे हैं, जिन्हें पढ़ने से मानो पहाड़ खोदा और लाभ एक कौड़ी जैसा हुआ। एक प्रयास ऐसा होता है कि एक डुबकी लगाई, बहुमूल्य मोती पाए। उपन्यास और इधर उधर की पुस्तकें सिर्फ मनोरंजन करेंगी, उनसे मिलेगा कुछ नहीं। लेकिन वे ग्रन्थ जिनमें डुबकी लगाने पर हीरे मोती मिलें, ऋषियों द्वारा रचित ग्रंथ हैं। वे ही स्वाध्याय के योग्य हैं। जिन ग्रंथों को आपके ऋषियों और अवतारी पुरुषों ने दिया उन्हें पढ़िए। उपनिषद्, सूत्र ग्रन्थ, नीति ग्रन्थ, वेद दर्शन शास्त्र, पुराण, गीता, रामायण, सन्तों की पवित्र वाणियाँ, ये सब आपके स्वाध्याय के लिए हैं। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में किए गए अन्वेषण और महान पुरुषों की जीवन गाथाओं का आप स्वाध्याय करेंगे तो आपकी ज़िन्दगी रंग बदलेगी। आपके अन्दर भी विशेषताएँ आने लगेंगी।

आप जहाँ सोते हैं, आपके बिस्तर के सामने दीवार पर सुन्दर वाक्य लिखे हुए होने चाहिए जिनसे प्रेरणा लेकर आप ज़िन्दगी का रूपान्तरण करना चाहते हैं, परिवर्तन करना चाहते हैं। ऐसे अनमोल वाक्य जो आपके

जीवन का लक्ष्य और ध्येय बताएं। किसी भी पवित्र ग्रंथ के वाक्य लिखकर अपने घर में दीवार पर सजाएं। सोते, जागते, उठते, बैठते उन्हें देखें। जीवन एक नई दिशा में चलता दिखाई देगा। रात दिन दो चार ऐसे वाक्य आपकी आँखों के सामने घूमने चाहिए। दो महीने, तीन महीने के लिए एक वाक्य आपके सामने रहना चाहिए। वेदों का वाक्य आपने लिखा : **'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्' मनुष्य! तेरा जन्म इसलिए हुआ है कि तू ऊपर उठे, नीचे न जाए।** यह वाक्य दीवार पर आपने लिखा तो बार बार ये शब्द मन में गूंजते रहेंगे "मेरा जन्म ऊपर उठने के लिए, आगे बढ़ने के लिए हुआ है, नीचे गिरने के लिए नहीं।" लगातार देखने से ये शब्द आपको आत्म विश्लेषण के लिए प्रेरित करेंगे। क्या मैं ऊँचाई की ओर जा रहा हूँ? मैं किन लोगों के साथ बातचीत करता हूँ? जिनके साथ बैठता उठता हूँ उससे मेरे अन्दर क्या ऊँचाई आएगी? या मैं नीचे जाऊँगा? मैं कैसे कमाता हूँ? इससे मैं नीचा होता हूँ या ऊँचा? मेरा लेनदेन कैसा है? यह मुझे ऊँचा उठाता है या नीचे गिराता है? मेरी रिश्तेदारी कैसे लोगों के साथ है? यह रिश्तेदारी मुझे आगे बढ़ाएगी या नीचे ले जाएगी? शब्द एक है, पर वह आपकी पूरी ज़िन्दगी को हिलाता रहेगा। आपने सामने ऋगवेद का वचन लिखा–**'आरोह तमसो ज्योतिः' अंधेरों से निकलो और प्रकाश के शिखरों की ओर बढ़ो।** तो मन में बार बार शब्द गूंजेंगे मैं अंधेरे से निकल रहा हूँ, प्रकाश की ओर जा रहा हूँ। उजाले के शिखर की ओर जा रहा हूँ, जिससे मेरे जीवन में ऊँचाई आएगी। बार बार यह सोचते रहोगे। आपने लिखा **'कृतं मे दक्षिणेहस्ते जयो मे सव्याहितः'** दाएँ हाथ में मैंने पुरुषार्थ लिया, सफलता बाएँ हाथ में आने वाली है। मैंने पुरुषार्थ को, मेहनत को, परिश्रम को आगे रख लिया, अब मैं भाग्य को तोड़ूँगा। अब दुर्भाग्य भी सौभाग्य में बदलेगा, क्योंकि मैं पुरुषार्थी हो गया हूँ, आलसी नहीं। मैं सिर्फ भाग्य का भरोसा लेकर बैठने वाला व्यक्ति नहीं हूँ। मैं सफलता देखना चाहता हूँ लेकिन उससे पहले मेरे भगवान मेरा पुरुषार्थ देखना चाहते हैं। क्या मैं इसके लिए तैयार हूँ? शब्द लिखो और विचार करो। यह विचारशक्ति इतना चमत्कार करेगी कि आप जो रोज काँपते थे, कमज़ोर पड़ते थे, अपने आप को शक्तिवान अनुभव करेंगे।

किसी समय इंग्लैण्ड का सारी दुनिया पर अधिकार था। पर एक व्यक्ति इंग्लैंड को ही जीतने चल पड़ा। वह था हॉलैंड का राजा विलियम्स। उसके मन में विचार आया कि इंग्लैंड को जीतूँ। पानी के जहाज में अपनी फौज लेकर वह चल पड़ा। उस का जहाज इंग्लैण्ड के समुद्र के तट पर रुका तो सेना तट पर उतरने लगी। राजा भी हड़बड़ाहट में बाहर निकला। किनारे पर पाँव रखते ही उसका पाँव फिसला और. वह नीचे गिर गया। उसके दोनों हाथ ज़मीन पर जाकर लगे। शरीर को सम्भालने की कोशिश में सिर नीचे की तरफ झुक गया। वह गिरते गिरते हाथों के बल सम्भला। सैनिक चर्चा करने लगे कि अपशगुन हो गया। राजा ही ज़मीन पर गिर गया तो फिर यह जीतने वाला नहीं है। इसलिए इसके पीछे मरने से कोई फ़ायदा नहीं, वापस चलो।

राजा ने ज़ोर से हँस कर कहा, "मेरे सैनिकों, मेरे बहादुरों! देखो! परमात्मा ने इस ज़मीन पर पाँव रखते ही ऐसा करिश्मा किया कि इंग्लैण्ड की ज़मीन मेरे हाथ में पकड़ा दी। यह ज़मीन निश्चित रूप से मेरे हाथ में आने वाली है। प्रभु बहुत कृपालु हैं। आज लगता है कि भगवान मेरे साथ हैं। हम ज़रूर जीतेंगे।" कुछ सैनिकों ने कहा कि राजा ने खुश करने के लिए ऐसी बातें कह दी हैं, पर आते ही हुआ तो बुरा ही है। आते ही राजा का सिर झुका और वह गिरते गिरते सम्भला है। एक तरफ राजा ने विचार दिया जिससे जोश जाग जाए और दूसरी तरफ कहा गया कि मामला गड़बड़ है, अब कुछ होने वाला नहीं है।

राजा ने कड़क कर फ़ौज को कूच करने का आदेश दिया, साथ में यह भी कहा कि जीतना निश्चित है। ऐसा कहते ही उसने जिस जहाज में बैठकर आए थे, उसमें आग लगवा दी। फिर कहा, "अब वापस जाने का कोई भी रास्ता नहीं है। अब यह बात निश्चित है कि या तो हम मरेंगे या ऊँचे तख्त पर बैठेंगे।" उसने अपने सैनिकों से फिर कहा, **"जो मरने पर आ गया, वह मरा नहीं करता, जीया करता है। वह जीतता भी है और जिंदा भी रहता है।** इसलिए हम जीवित रहेंगे।" उसने यह बात इतने जोश के साथ कही कि जितने भी सैनिक थे आगे बढ़ने लगे। राजा ने फिर कहा,

"मेरे बहादुरों! तुम्हारा जहाज जल चुका है, अब तो जीत का झण्डा गाड़कर और दुश्मन का जहाज लेकर उसी पर बैठकर वापस जाएँगे।" इतनी ऊँची बात बोलने का परिणाम यह हुआ कि विलियम्स ने सच में ही युद्ध जीत लिया। जीतने के बाद अपने सैनिकों को बुलाकर उसने कहा कि, **"जो कायर, कमज़ोर, नपुंसक लोग होते हैं, उनके विचार बहुत कमज़ोर होते हैं, वे हर बात पर थरथराते रहते हैं।** इसके विपरीत जिनके विचार प्रबल होते हैं, वे दुनिया में जीता करते हैं। इसलिए पहले तुम अपने मन को जीतने की कोशिश करो, बाद में कर्म क्षेत्र में जीतोगे।"

आप सोचिये, प्रतीक चिन्ह क्यों लगाए जाते हैं? झण्डा क्यों लगाया जाता है? बिगुल क्यों बजाया जाता है? बिगुल बजाने से क्या हो जाएगा? शादी में ढोल क्यों बजाए जाते हैं? सड़कों पर यातायात चिन्ह क्यों लगाए जाते हैं? जैसे एक चक्र बना दिया गया, जिसमें बताया गया कि तेजी से नहीं चलना, आगे संकरा पुल है। दौड़ते बच्चे का निशान बना दिया। यह इस बात का प्रतीक है कि आगे कोई स्कूल है, बच्चे सड़क पार कर रहे होंगे। इन प्रतीकों में हमारी ज़िन्दगी बंधी हुई है। इनको हटाया नहीं जा सकता। लेकिन अगर हम इन प्रतीकों को लेकर लकीर के फकीर बनें रह जाएं तो हमारी विचार शक्ति कुंद होने लगती है। जबकि हम अपने विवेक और पुरुषार्थ से जीवन को किसी भी तरह से मोड़ सकते हैं।

जैसी विचार शक्ति हम अपने अन्दर रखेंगे उसी तरह के व्यक्ति बन जायेंगे। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि दिव्यता की तरफ जाने के लिए दिव्य विचारों को अपने अन्दर आने दो । विचार जो तुम्हें ऊँचा उठाएँ। वेदों में एक बात कही गई है : **मा गतानाम् आदिदीथाः ये नयन्ति परावतम्।** निराशा के ऐसे विचारों को अपने अन्दर कभी नहीं आने देना जो तुम्हें गहरी खाइयों में धकेल दें। **आरोह तमसो ज्योतिः**, क्योंकि तुम्हारा लक्ष्य ऊपर उठने का है। विचार ऊँचे लाओगे तो ऊँचे उठोगे।

किसान बीज बोता है, फसल उगाता है। गेहूँ के बीज बोए तो गेहूँ उगने लगा, लेकिन खर पतवार भी साथ साथ उगने लगे। वे गेहूँ के बीजों को दबाने की कोशिश कर रहे हैं। किसान खर पतवार का उन्मूलन करता है,

उनको उखाड़ देता है। फिर खेत में खाद डालता है, जिससे गेहूँ की फसल के जो अंकुर अभी निकले हैं, वे और बढ़ें। जैसा किसान करता है, वैसा ही आप भी कीजिए। **कुविचार अच्छे विचारों को ढकने की कोशिश करते हैं। आप कुविचारों को उखाड़कर बाहर फेंक दें और सुविचारों की खाद डालें, जिससे वे और पनपें और आपकी ज़िन्दगी खिलती चली जाए।** इसलिए वेदों में यह भी कहा गया है कि जब मन में बुरे विचार आने लगें, तो उन पर रोक लगाओ– **'परोपेहि मनस्पाप किम् शस्तानि शंससि।'** 'मेरे मन में उठने वाले बुरे विचारो, बाहर निकलो। मेरे पास तुम्हारे लिए जगह नहीं है। ऐसे विचारों की खाद डालते जाना और झाड़ झंखाड़ उखाड़ कर बाहर फेंक देना। तब विचारों की बहुत सुन्दर फसल निकलेगी। बहुत सुन्दर फसल प्राप्त करोगे, बहुत अच्छा लाभ प्राप्त करोगे।

भगवान ने कहा-**'तप आर्जवम्'** तपस्या करो। यदि अपने जीवन में दिव्यता लाना चाहते हो, तो तप करो। फिर कहाः **तपो द्वन्द्वसहनम्** सहनशक्ति का विस्तार करो। कष्ट सहिए, कष्ट सहने की क्षमता पैदा कीजिए। अपने को सताने के लिए नहीं। कष्ट सहने की स्थिति इसलिए पैदा करो कि जिससे तुम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आने वाली विघ्न बाधाओं को लांघ सको, क्योंकि जीवन में विघ्न बाधाएं आनी ही हैं। स्कूल में बच्चों के लिए बाधा दौड़ कराई जाती है। एक दौड़ सीधी सरपट होती है। दूसरी बाधा दौड़ होती है। एक संकरे रास्ते के बीच बीच में अड़चनें रख दी जाती हैं। कहीं मेज़ रखी है, कहीं कूद कर फांदने के लिए रस्सी, कहीं पर मिट्टी का ढेर, कहीं पर खाई, कहीं पर आग जल रही है, तो कहीं पर पानी। फिर कहा जाता है कि दौड़ कर सब बाधाओं को पार करना है। जो सबको लांघता हुआ सबसे आगे पहुँचेगा वही जीतेगा। ज़िन्दगी भी ऐसी ही है। किसी के लिए रास्ता सुगम नहीं है। **जीवन का मार्ग अड़चनों और मुश्किलों से भरा है। बाधाएं भी तरह तरह की आयेंगी।** बाधा दौड़ में ऐसा नहीं रखा जाता कि टेबल ही टेबल रख दी जाएं। फिर तो पूरा अन्दाजा हो जाएगा कि अगली अड़चन जब आएगी तो टेबल पर हाथ रखो, छलांग लगाओ और निकल जाओ। नहीं, **हर बार नई अड़चन है, नई शक्ल वाली**

अड़चन है, नई तरह की बाधा है, जिस का पता ही नहीं कि कैसी बाधा होगी? ज़िन्दगी में आपके सामने कैसी बाधाएँ आएंगी, आपको पता नहीं है। यह तो पता है कि बाधाएँ हैं, लेकिन कैसी होंगी, यह आपको नहीं पता है। पता नहीं ऊँचा कूदना पड़ेगा या सीधी छलांग लगानी पड़ेगी। हो सकता है ठंडी चीज़ हो या गर्म। **सभी प्रकार की बाधाओं को पार करने के लिए तप आवश्यक है।** शुरुआत से ही व्यक्ति को तप करने की आदत डाल लेनी चाहिए।

भगवान कहते हैं कि दिव्यता पाने के लिए कष्ट सहना सीखो, तप करना सीखो। तप करना सीखोगे तो तुम्हारे अन्दर विशेषता आएगी, अन्यथा कुछ भी नहीं बन सकोगे। इसलिए हमारे महापुरुषों ने तप किया। भगवान श्रीकृष्ण ने भी तप किया। भगवान राम ने चौदह वर्षों तक वन में तप किया और उससे पूर्व वशिष्ठ के आश्रम में, विश्वामित्र के सान्निध्य में तप चलता रहा। सभी ऋषि मुनि तपस्वी थे। हमारे देश में तो यह मान्यता ही है कि जीवन का पहला भाग, पच्चीस साल तक, स्वाध्याय तथा तप करने का है। गृहस्थ में थोड़ा आराम कर सकते हो, लेकिन फिर भी परिश्रम है, तप है और गृहस्थ के बाद फिर तप करने के लिए जाना होता है। **तप और त्याग, हमारी संस्कृति का हिस्सा हैं।** लेकिन हम इन चीज़ों को भूल रहे हैं। अपनी दृष्टि को बदलें। परिवार में यदि आपको कोई कष्ट सहना पड़े तो मानें कि आपको तप का अवसर मिल रहा है। आपको तपाया जा रहा है, ताकि आपकी आत्मा बलवान हो सके, आत्मा और दृढ़ हो सके। उनका शुक्र मनाएं जो बेचारे समय निकाल कर आप को तप करने में सहयोग दे रहे हैं। उनका धन्यवाद करें जो कड़वे शब्द सुना सुना कर अपना खून जलाते हैं और आपकी तपस्या को निखारते हैं। आप उनके लिए रात दिन मंगलकामना करें, ईश्वर से उनकी भलाई के लिए प्रार्थना करें क्योंकि भला आपका हो रहा है। तप हो रहा है, आत्मा निखर रही है और परमात्मा के नजदीक जाने का मौका मिल रहा है।

महापुरुष कहा करते हैं कि **मनुष्य को स्वर्ग जाने के लिए जीभ और हृदय का ठीक ढंग से प्रयोग करना चाहिए। यह दोनों बातें स्वर्ग भी ले**

जा सकती हैं और नरक भी। यही तुम्हें परमात्मा के दरबार में बैठा दें और यही तुम्हें संसार की ठोकरों में धकेल दें। अतः जीभ में मधुरता लाओ और भगवान का नाम बसाओ। दुनिया के साधन कमाने के लिए भले ही समय कम मिले, परमात्मा का नाम जपने के लिए ज्यादा से ज्यादा समय निकालो। थोड़ी कमाई में बरकत ज्यादा होगी। घर का भी गुज़ारा चला, बचा भी सही। ईश्वर से दूर हट कर बेईमानी से ज्यादा कमाया तो जितना आया था, उतना ही चला भी गया। अशान्ति और छोड़ गया तथा मन में लोभ का राक्षस पैदा कर गया। वे दिन अच्छे थे, जब थोड़ा कमाते थे, प्यार से रहते थे। थोड़े में से थोड़ा बचा भी लेते थे। अब ज्यादा कमाते हैं, ज्यादा बेचैन हैं और बचा भी नहीं पाते। इसलिए जीभ पर परमात्मा का नाम बसाने से ही बात बनेगी।

जिसने हृदय में परमात्मा की स्मृति और सद्विचारों का संग्रह कर लिया, वह ऊँचा उठना शुरू हो गया। **जिसके हृदय में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, पाप बस गया, भगवान की भक्ति में मन नहीं लगा और जीभ से गालियाँ, अपशब्द, निन्दा और चुगली ही निकलती रही, तो फिर उसने अपने लिए दुःख का नरक स्वयं ही पैदा कर लिया,** रास्ता बना लिया। इसमें भगवान को दोष देने की आवश्यकता नहीं कि भगवान, तूने हमारे लिए नरक क्यों बनाया। अतः जीभ और हृदय पर जिसको बैठा लोगे, वही तुम्हारे अन्दर आ जाएगा।

भगवान कहते हैं कि स्वयं पर नियंत्रण रखना तप है। जिह्वा से निकलने वाले शब्दों पर ध्यान देना, हृदय में सद्विचारों को आमंत्रण देना, अच्छे लोगों के स्वागत के लिए द्वार खुला रखना। घर में द्वार पर स्वागतम् किसके लिए लिखा होता है? प्रियजनों के लिए, भले लोगों के लिए। चोर के लिए तो स्वागत नहीं लिखा जाता। अगर चोर स्वागतम् पढ़कर अन्दर आ जाए, और आदमी उससे पूछे कि कैसे आए हो और वह कहे 'स्वागतम्' लिखा हुआ था, 'आइए पधारिए' लिखा हुआ था, इसलिए आ गए तो आदमी डंडा उठाएगा और कहेगा कि तुम्हारे लिए नहीं लिखा हुआ था। भले लोगों के लिए स्वागत लिखा है। लेकिन फिर भी भले लोग बिना बुलाए, बिना

निमन्त्रण पाये, नहीं पधारते। बुरे लोग बिना बुलाए किसी न किसी द्वार से अन्दर पहुँच जाते हैं। इसलिए अपने उन द्वारों को संभाल कर बंद रखें जिनसे बुराई प्रवेश कर सकती है और उन द्वारों को खोलें जिनसे अच्छाई आपके अन्दर प्रवेश कर सकती है। उन विचारों को आमंत्रित करें जो आपके अन्दर सुगन्ध पैदा करें। यही तपस्या करनी है। सद्विचारों से अपने आपको बलवान, शक्तिवान और सुदृढ़ बनाना है।

भगवान श्रीकृष्ण ने अगला देवी गुण बतायाः **'आर्जवम्'** अर्थात् सरलता। यह शब्द बहुत प्यारा है क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण को बहुत पसंद है। अर्जुन का अर्थ भी सरल होता है। सरलता का अर्थ है सीधापन, भोलापन, सहज, कुटिलता से रहित होकर जीना। दिमाग को पारखी और ज्ञानी होना चाहिए। साथ ही प्रकृति सरल और सहज होनी चाहिए। क्योंकि समाज सरल आदमियों का नहीं रहा, इसलिए सरल आदमियों की कद्र घट गई है। मछली बाजार में रहने वाले लोगों को दुर्गन्ध की आदत पड़ जाती है, इसलिए इत्र के बाजार से निकलेंगे तो रुमाल नाक पर लगा कर चलेंगे। चारों तरफ बेईमान, छली, कपटी और टेढ़े लोग दिखाई देते हैं। ऐसे लोग यह सोचने में अपना समय लगाते हैं कि दूसरों का समय कैसे बरबाद करें, कैसे किसी को भिड़ाएं?

लखनऊ में नवाब लोग मुर्गे भिड़ाते हैं, उनको लड़वाते हैं। बच्चे पतंग उड़ाते भी हैं, साथ में भिड़ाते भी हैं। लोगों की आदत है, खुद नहीं भिड़ सकते तो किसी को भिड़ा दो। इसी से सही, अपनी भड़ास तो पूरी होगी। लड़वाने के तरीके ढूँढते हैं। दो मुर्गे लाए और आमने सामने लड़ने को रख दिए। इधर वाले को भी कहा, "शाबाश, पीछे नहीं हटना" और दूसरे वाले को भी कहा, "शाबाश, पीछे नहीं हटना।" अब दोनों बिचारे भिड़ रहे हैं और लोग तमाशा देख रहे हैं, हँस रहे हैं। जो अपने आपको बुद्धिमान मानते हैं, वे भी भिड़ते हैं। हाँ, तरीके बदल जाते हैं। कोई कचहरी में भिड़ रहा है, तो कोई व्यापार में या चुनाव में भिड़ रहा है। अपमान सहेगा, घाटा सहेगा, बराबर वाले को नुकसान पहुँचाने के लिए लागत से कम में बेचकर भिड़ेगा। **यह समाज कुटिलता का है। शेयर मार्किट से व्यापार और बाजार तक**

या फिर राजनीति का अखाड़ा, सब जगह कुटिलता का बोलबाला है। कुछ लोग कुर्सी की दौड़ में सामने हैं, कुछ किंगमेकर बने हुए हैं, पीछे खड़े लड़ा रहे हैं। वह यह सोचते हैं कि उनका काम यह है कि गद्दी पर वे नहीं बैठें, लेकिन उनका कोई जमूरा ज़रूर बैठे, जिसे वह अपनी मरजी से हिला, डुला सकें। जिस तरह से लोग शतरंज खेलते हैं, बिल्कुल उसी तरह से। भिड़ाने वाली मनोवृत्ति एक तरह का प्रतिशोध है। हमारे अन्दर आक्रामकता है, इसको हम बाहर निकालना चाहते हैं। खुद किसी से वैर मोल नहीं ले सकते, बदला नहीं ले सकते, तो किसी ऐसे आदमी को ढूँढ़ते हैं, जो उससे भिड़ सके। फिर उसको मदिरा पिलाकर, पैसों से मदद कर, उकसाकर दूसरे से भिड़ने के लिए तैयार करते हैं। उस आदमी को उकसाते हैं कि कैसे भिड़ना है। अगर गुस्से की आग ठंडी पड़ने लगे तो फिर जाकर कहते हैं "सुना? आज उसने क्या कहा तुम्हारे बारे में?" उसे अशांत किया जाएगा। यह कुटिल लोगों का दिमाग है।

कुटिल लोगों की दृष्टि ही अलग होती है। अपने लिए अलग बात, दूसरों के लिए अलग बात। पति पत्नी दोनों ही चाँदी का चम्मच नहीं मिलने से दुःखी हैं। दोनों ही शोर मचा रहे हैं कि चम्मच नहीं मिल रहा हैं। थोड़ी देर में पत्नी आ कर पति से कहती है "ज़रूर नौकर ने ही वह चम्मच चुराया है जो हम लोग उस दिन होटल से उठा लाए थे। नौकर की हिम्मत तो देखो?" खुद सोचने को तैयार नहीं है, डाँटा जा रहा है नौकर को हमें शक तुम्हारे ऊपर ही है, तुमने ही चुराया है। तभी छोटा बच्चा जो उस दिन होटल में साथ था और जानता था कि माँ बाप वह चम्मच कहाँ से लाए थे आ कर कहता है, "आप भी तो वह चम्मच चुरा कर लाए थे।" भोले मन वाले बच्चे की निगाह एक है। लेकिन बड़े अपने और नौकर के बारे में अलग मापदंड रखते हैं। उन्होंने अपने लिए अलग सिद्धान्त बना रखा है। **चौराहे पर किसी को चोर कह कर लोग पीट रहे हैं, लेकिन सामने की उस दुकान में चोरी का कितना माल है, दूसरों के साथ रोज व्यापार में कितना कपट करता है, इसका तो कोई हिसाब नहीं है।** कुटिल लोगों के समाज में कुटिल लोग जिस समाज को चलाते हैं, वहाँ कोई सरलता की

सुगंध लेकर रहे, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। उसको भोंदू समझा जाता है। उसको बुद्धू समझा जाता है। लेकिन जो सीधा और सरल है उसकी स्थिति बिलकुल ऐसी होती है जैसे किसी घर में एक बच्चा सीधा व सरल हो और दूसरा चालाक, तो माँ का ध्यान बार बार अपने भोले बच्चे की तरफ जाता है। वह चिन्ता करती है तो भोले बच्चे की। न जाने बड़ा होकर मेरा भोला कैसे ठीक रहेगा? भगवान! मेरे भोले का ध्यान रखना। माँ यह नहीं जानती कि जैसे उसे अपने भोले बच्चे का ध्यान है, वैसे ही पिता परमात्मा को भी अपने भोले बच्चों का ध्यान ज्यादा रहता है। तुम सीधे, सरल, सहज बने रहो। कपट करके क्यों जीते हो?

मैंने बहुत उदाहरण देखे हैं। कपटी लोगों ने पैसा जोड़ जोड़ कर ज़्यादा इकट्ठा कर लिया, लेकिन फिर भी दुःखी थे। रिश्तेनातों में आपने भी देखा होगा। मेरा अपना एक रिश्तेदार बहुत सीधा और सरल है तथा सहज ढंग से रहता है। उसे जीवन में कभी कोई कमी नहीं आई। साथ ही मैंने उनको भी देखा है जिन्होंने कपट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, लेकिन बहुत बड़ा काम धाम होने के बावजूद उन्हें आज भी कमी है। किसी से लेना है तो किसी का देना बाकी है। बचपन से यह बातें देखता आया हूँ, समझता आया हूँ। शास्त्रों को पढ़ता हूँ तो वहाँ भी ऐसे ही उदाहरण मिलते हैं। ज़िन्दगी में देखता हूँ तो वहाँ भी यही बात दिखाई देती है। **ज़िन्दगी के लिए सरलता और सहजता बहुत महत्त्वपूर्ण है।** इसलिए **अगर आप दिव्यता से युक्त होना चाहते हैं तो सरल बनें।** कुटिलताओं, चालाकियों तथा छल प्रपंच को ज़िन्दगी में स्थान मत दें। कुटिलता से कुछ नहीं बनेगा। अन्तरतम में सरलता रखो। संभव है ऐसी स्थितियाँ पैदा हो जाएं कि आपात धर्म के अनुसार आपको कठोर बनना पड़े परन्तु जैसे चंदन रगड़ने पर भी सुलगता नहीं उसी प्रकार आप अपना आपा मत त्याग देना, अपने स्वभाव में रहना। हर समय ईंट का जवाब पत्थर से देने की कोशिश भी मत करना।

कबीर ने कहा था **मैं कहता हूँ आँखन देखी,** अर्थात् जो मैंने स्वयं अनुभव किया है और **तू कहता है कागद की लेखी** जो तू कह रहा है, वह सिर्फ कागज पर लिखे की बात कह रहा है। अब मैं कागज पर लिखे का

विश्वास करूँ या अपनी आँखों से देखे का? ज्ञानी लोगों ने हमेशा ही जो आँखों से, हृदय से, अन्दर से देखा वही कहा और वह ज्ञान बना।

इसलिए सूचनाएँ व जानकारी प्राप्त करने से बात नहीं बनेगी। किसी आदमी को बहुत प्यास लगी हो और कागज पर कोई पानी लिखकर दे दे और कहे कि लो पानी तो प्यास बुझने वाली नहीं। कोई आदमी यदि बहते झरने का चित्र बनाकर दे दे तो क्या प्यास बुझेगी? पानी ही पानी दिखाई दे तो भी प्यास बुझने वाली नहीं। कागज पर लिखे हुए से ज्ञान की पिपासा क्या, कोई भी प्यास नहीं बुझती। लेकिन धरती के अन्दर से झरना निकल आए तो न जाने कितनों की प्यास बुझाएगा। भगवान यही कहते हैं कि **अपने अन्दर के झरने को झरझर बहाओ, जिससे तुम्हारा ज्ञान प्रवाहित हो। तुम उसका लाभ उठाओ और दुनिया भी उसका लाभ उठाए।** इसलिए यह सब साधन हैं जो आपके ज्ञान की धारा को जगाते हैं। **जीवन में देना सीखो।** प्रकृति की हर चीज दे रही है, बाँट रही है, तुम भी बांटो। जितना बांटोगे उसका कई गुणा बढ़कर तुम्हारे पास वापस आएगा।

भगवान कहते हैं कि स्वयं पर नियंत्रण रखना सीखो। उन्होंने कुछ शब्दों में कहा **'दानं दमश्च यज्ञश्च'।** देना सीखो, यह दान है और दमन अर्थात् स्वयं पर नियंत्रण करना सीखो। समझा बुझाकर जैसे कोई किसी व्यक्ति के क्रोध को शान्त कर दे, ऐसे ही अपने मन को समझा कर उन सब स्थितियों से बाहर निकल आओ, जो तुम्हें अशान्त करती हैं, दुःख देती हैं और **'यज्ञश्च'** अर्थात् यज्ञ आदि परोपकारी कार्यों को करो। अग्निहोत्र करना, हवन में आहुति देना, परोपकारी कृत्य है। प्रदूषण को रोकना, देवताओं के लिए आहुति देना और वातावरण में शुद्धि पैदा करना यज्ञ है। विचारों को शुद्ध रखना हवन है। परोपकार के लिए, सेवा के लिए, कल्याण के लिए, मंगलकामना के लिए किए गए सभी श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ हैं, उनको जीवन में स्थान दो। अच्छे ग्रन्थों का स्वाध्याय करो और वहाँ से प्राप्त उत्तम विचारों को जीवन में स्थान दो, उन पर प्रयोग कर अनुभूतियाँ प्राप्त करो। आजकल कैसेट भी स्वाध्याय का एक तरीका है। आप बैठकर पढ़ नहीं सकते तो कैसेट सुनिये। चलते फिरते भी आप उन्हें सुन सकते हैं। कोई भी माध्यम आप अपनाएं, लेकिन ज्ञान से जुड़े रहें।

वर्ष में एक मौसम, एक ऋतु ऐसी है जिस में अनेकानेक रंग बिरंगे फूल खिलते हैं, धरती के रोएँ रोएँ से हरियाली छिटकती है और प्रकृति का सुन्दर श्रृंगार दिखाई देता है। उसे हम बसन्त ऋतु या बसंत बहार कहते हैं। नदियों का जल निर्मल होता है, आसमान स्वच्छ और वातावरण में पक्षियों का कलरव होता है। पौधों पर पड़ी हुई ओस की बूँदें मोती बन कर चमका करती हैं, हवाओं में मीठी ठंडक और मादकता होती है। प्रभात का माधुर्यपूर्ण समीर अपने में सुगन्ध लेकर बहता है। बसन्त में डालों के ऊपर कोयल और पपीहा अपने गीत गाने लगते हैं। यह सब इस बात का परिचायक है कि प्रकृति उत्सव मना रही है। इस मीठे गुलाबी मौसम में न गर्मी होती है न सर्दी। एक सम अवस्था रहती है। ठीक इसी प्रकार से भक्ति के मार्ग पर चलते चलते व्यक्ति के जीवन में जब सात्विकता का प्रभाव बढ़ने लगता है और सन्तुलन कायम होने लगता है, तब उसके जीवन में एक ऐसा रूप और रंग रचने लगता है जिससे शान्ति, शीतलता, चैन, माधुर्य, शिष्टता, शालीनता, सहयोग, सेवा भाव, प्रसन्नता और उल्लास, एक साथ प्रकट होने लगते हैं। ऐसा लगता है मानो जीवन में एक उत्सव प्रारम्भ हो गया हो। यह उल्लास हमारे जीवन में समाहित हो सके, इसके लिए हमें सात्विकता और भक्ति का मौसम अपने अंतर में जन्माना होगा।

जीवन में चार बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं पहली है भक्ति, दूसरी है शक्ति, तीसरी है युक्ति और चौथी है मुक्ति। भक्ति में मन लगे, मन बुद्धि, आत्मा और हमारा यह तन, ऊर्जा से, शक्ति से भरपूर हो और शवित एक सही दिशा में चलने लग जाए और चलने की युक्ति मालूम हो, जीने की युक्ति मालूम हो और मुक्ति की कामना हो, तो निश्चित रूप से व्यक्ति को जीवन का लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा। **भक्ति, शक्ति, युक्ति और मुक्ति हमारे जीवन में वह आनन्द और उल्लास पैदा करती हैं जिस को पाने के लिए मनुष्य को मनुष्य का चोला दिया गया है।** नहीं तो पेट भरना, तन ढांपना, अपने परिवार और रिश्ते नातों के ईदगिर्द दौड़ते रहने की ज़िन्दगी तो हम सब पूरी कर ही लेते हैं। इस तरह की ज़िन्दगी तो कीट और पतंगे भी पूरी करते हैं। वे भी घर बनाते हैं, वे भी बच्चों का पालन

पोषण करते हैं। उनकी भी एक ज़िन्दगी होती है, एक परिवार और एक दुनिया होती है। लेकिन हम सब जंजाल से बाहर निकलकर संसार में कुछ और होने और करने के लिए आए हैं।

अगर कोई बीज पूरी तरह से अंकुरित न हो पाए या किसी ने केवल गमलों में उगे हुए बॉनसाइ के छोटे छोटे पेड़ ही देखे हों, तो वह व्यक्ति यह अन्दाजा नहीं लगा सकता कि एक छोटे से बीज से उपजे वृक्ष का कितना विस्तार हो सकता है। यह समझने के लिए तो उसे घने जंगलों में जाकर देखना पड़ेगा। पहाड़ों के शिखरों में उगे, उन देवदार के वृक्षों को देखना पड़ेगा जो सौ या डेढ़ सौ फुट तक ऊपर जाकर यह दर्शाते हैं कि एक बीज का अंकुर कहाँ तक जा सकता है। किसी महापुरुष को देखकर यह अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि मनुष्य कितनी ऊँचाई तक जा सकता है और किसी राक्षस या दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्ति को देखकर भी समझा जा सकता है कि मनुष्य कितना नीचे गिर सकता है। उसी एक ऊर्जा से आप अपने को कितनी भी ऊँचाई तक ले जाइए या नीचे गिरा डालिए। उत्थान की तरफ ले चलिए या पतन की तरफ ले जाइए यह आपके हाथ में है।

भगवान श्रीकृष्ण ने एक और दिव्य संपदा का वर्णन करते हुए कहा कि तुम उस दिव्य संपदा के मालिक बनो। अपनी तपस्या और साधना से उसे अपने अन्दर जागृत करो। भगवान ने कहा कि तुम इस दिव्य सम्पदा को विस्मृत कर चुके हो। अपनी उस खोई हुई दौलत को खोजने की कोशिश करो। **हमारे सब के अंतर में एक महान पुरुष विद्यमान है। यह जो कहा जाता है कि नर के अन्दर नारायण है तो वह इसलिए कहा जाता है क्योंकि नारायण की शक्तियाँ मनुष्य में हैं।** कोई वनवासी व्यक्ति पहली बार माचिस देखकर यह अन्दाजा नहीं लगा सकता कि इसकी तीलियों में कितनी चिन्गारियाँ भरी हुई हैं। ये चिन्गारियाँ, अग्नि के शोले जो माचिस की तीलियों में हैं और जो आपकी जेब में पड़े हुए हैं, आपको जला नहीं रहे हैं। एक युक्ति के माध्यम से उन चिन्गारियों को प्रकट किया जा सकता है। इसी प्रकार दिव्यता आप सब के अन्दर है लेकिन एक युक्ति की आवश्यकता है जिससे उस दिव्यता को प्रकट किया जा सके। सत्संग या

महापुरुषों का संग ही वह युक्ति है जिससे हम अपनी चिन्गारियों को जागृत कर सकते हैं। अगर हम अपने अन्दर की चिन्गारियों को जागृत करने के लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं तो फिर हम साधारण नहीं रह जाते।

उस दिव्यता को जानने का प्रयास करें और पता लगाएं कि हमारा यह खजाना क्या है जिसकी ओर भगवान श्रीकृष्ण इंगित कर रहे हैं :

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।२।।

अहिंसक हो जाना। सत्यता को जीवन का आधार बनाना। क्रोध की लहर अपने अंतःकरण में उपजने न देना। उन लहरों से अंतःकरण को उद्वेलित न होने देना जो आपके अन्दर की राक्षस वृत्तियों को जगाती हैं। जीवन को त्याग की ओर ले चलो। संग्रह करने के लालच में अपने जीवन की कीमती ऊर्जा को बरबाद मत करो। बिना कुछ खोए, अपना आपा त्यागे, 'मैं' को गिराए, अपने अन्दर रिक्तता उत्पन्न किए, तुम परमात्मा को अपने हृदय में आमंत्रित नहीं कर पाओगे। आमंत्रण के लिए स्थान ही तब बनता है जब अन्दर एक रिक्तता आ जाए। अन्तरतम में शून्यता (वैक्यूम) पैदा हो या साइफन की प्रक्रिया को अपने अन्दर शुरू करें। एक तरफ के जल के साथ अपना संपर्क रखकर अपनी नाली को खाली रखते हुए एक ऐसा खिंचाव पैदा कर दें कि वह फिर भरे और उतनी ही ऊँचाई से जल की धारा फिर बहने लग जाए। उस स्रोत के साथ संपर्क जुड़ जाए। भगवान ने इसको त्याग कहा है।

अगला शब्द है **'शान्तिरपैशुनम्'। शांति एक स्रोत की तरह है जो आपके अन्दर है पर न जाने उसके ऊपर संसार की माया की कितनी सारी परतें पड़ी हुई हैं। उन परतों को हटाना पड़ेगा जिससे शांति का स्रोत अंदर से बहने लग जाए।** कई बार हम तनाव का वातावरण बना देते हैं। हमने कोई वातावरण बनाया है जिस कारण दूसरा व्यक्ति बरस रहा है, चीख रहा है, चिल्ला रहा है, गुस्सा कर रहा है। तुम अपनी मनःस्थिति शान्त बनाए रखो। अगर कोई व्यक्ति अपनी अशांति को तुम पर लादता है तो भी तुम्हारी स्थिति बिलकुल ऐसी हो जैसे चट्टान पर पड़ी हुई आग। कुछ

समय के बाद वह बुझने के लिए मजबूर हो जाएगी। लेकिन अगर आपने पहले से ही ईंधन तैयार कर रखा है तो आग को भड़काने के लिए एक छोटी सी चिंगारी ही काफी है। आप भी तैयार, वह भी तैयार तो फिर जलते रहिए। फिर सब कुछ राख हो जाएगा, बचेगा कुछ भी नहीं।

भगवान ने कहा, "शांति के स्रोत से संबंध जोड़ो। अगला शब्द है: '**अपैशुनम्**' पैशुन का अर्थ है चुगलखोरी, निन्दा, किसी की आलोचना करना। भगवान कहते हैं कि इस आदत का पूर्ण रूप से उन्मूलन करो। अपैशुनम् का शमन एक दौलत है। **दूसरों की कमज़ोरियों को ध्यान में रखना और फिर उन्हें बढ़ा चढ़ा कर दूसरों से बयान करना दरिद्रता है। आप दूसरों से निन्दा कर अपने अन्दर की अतृप्त वासनाओं की तृप्ति करते हैं। यह रुग्ण मानसिकता है।** एक बीमार समाज के अन्दर किसी की उन्नति देखकर अपने अन्दर हीनता की आग पैदा कर लेने से यह दोष दिखाई देता है। यह आत्मघात है। हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं तो कम से कम उसकी निन्दा ही कर लें। किसी का वैभव देखकर और कुछ नहीं कर पा रहे तो निन्दा में ही शक्ति लगा दें। भगवान कहते हैं कि यह रोग पागलपन है। अपनी मनःशक्ति (psychic energy) इस तरह से जलानी नहीं चाहिए कि अन्दर निन्दा की राक्षसी ज़िन्दा हो जाए। हम लोग अक्सर ऐसे चक्कर में पड़ जाते हैं।

कबीर साहब से एक बार किसी ने पूछा, "दिव्य सम्पदा का दर्शन करना हो तो क्या करना चाहिए ?" कबीर ने कहा, "मेरे घर में आकर बैठो और देखो।" वह व्यक्ति कबीर के घर आया तो कबीर ने अपनी पत्नी से कहा, "थोड़ी मिट्टी लाओ, थोड़ा घी लाओ।" पत्नी ले आई। पति ने फिर कहा, "इन सब को मिलाओ, दीवार पर लेप करेंगे।" अब दोनों पति पत्नी घी और मिट्टी को मिलाकर लेप करने लगे। वह आदमी बैठा यह सब देखता रहा। वह कभी मुस्कुराता और कभी बड़बड़ाता कि ये दोनों पागल हैं। लेकिन उसने यह भी देखा कि इनके घर में कलह क्लेश नहीं है, अशांति नहीं है। चाहे फिजूल के काम में लगे हुए हैं लेकिन इकट्ठे लगे हुए हैं। विचारों में भी एकता है। दोनों एक दूसरे को समझते हैं। मैं भी सोचता हूँ

कि यही दिव्यता अपने घर में जाकर के शुरू करूँ।

वह अपने घर गया और पत्नी से कहा, "ज़रा घी लेकर आना और थोड़ी सी मिट्टी भी लेकर आना।" पत्नी ने घी का नाम लेते ही बड़बड़ाना शुरू कर किया। फिर जैसे ही उसने कहा, "मिट्टी भी ले आना" तो उसने और बोलना शुरू किया और जैसे ही कहा, "ज़रा दोनों को मिलाना, दीवार पर लिपाई करेंगे।" तब तो उसने जो किया उससे तो वह आदमी एकदम छनछनाता हुआ वहाँ से भागा और कबीर के पास आकर बोला, "मैं तो सोचता था, दिव्यता का दर्शन होगा, राक्षसी का दर्शन हो गया महाराज। मैंने ऐसा क्या कह दिया ? थोड़ा सा घी, थोड़े सी मिट्टी खराब हो जाती तो क्या था, लेकिन हमारी ही मिट्टी खराब हो गई।" कबीर ने कहा, "जहाँ समरूपता हो, जिसके साथ संबंध है उसके दोष देखने की आदत न हो, एक दूसरे को समझने की भावना हो तो वहां एक स्वर्ग पैदा हो जाता है। **स्वर्ग खरीदा नहीं जाता, कमाया जाता है। प्रेम भी खरीदा नहीं जाता, कमाया जाता है। भक्ति भी खरीदी नहीं जाती, कमाई जाती है।** प्रेम और भक्ति पाने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है। किस्मत वाले लोग ही इसे प्राप्त करने में सफल होते हैं। बहुत प्रयास करना और बहुत कुछ खोना पड़ता है।"

भगवान आगे कहते हैं: **'दया भूतेषु' तुम्हारे अन्दर प्राणी मात्र के प्रति दया भाव जाग जाए तो समझो कि तुम्हें एक दौलत मिल गई, एक संपदा हाथ लग गई। 'अलोलुप्त्वम्'** लालच से रहित हो कर जीना भी संपदा है। नहीं तो धन जितना आएगा, लालच उतना बढ़ेगा। **'मार्दवं ह्रीरचापलम्'** भगवान कहते हैं कि एक दौलत और है, कोमलता। व्यक्ति में मृदु रूप का दर्शन हो। कोमलता का दर्शन हो। लोग कहें कि बड़ा मृदु स्वभाव है, विनम्र है। मृदुता को भी भगवान ने दौलत कहा है। **'ह्री'** लज्जा से युक्त हो कर जीना। अपनी आत्मा की आवाज़ को सुनते हुए तथा लोक लाज का ख्याल करते हुए जीना। आपके अन्दर से जब कोई ऐसा शब्द गूंजे कि 'तुमसे ऐसी उम्मीद नहीं थी' या कभी फटकार मिले, 'शर्म नहीं आती ? क्या करने जा रहे हो ?' तो अंदर से उठने वाली यह आवाज़ भी

एक दौलत है। यह आवाज़ जो तुम्हें रोकती है। इस से बढ़कर ब्रेक नहीं होता, यह इन्सान को ऊँचाई की ओर ले जाता है, और खतरों से बचाता है, गिरने से बचाता है। भगवान कहते हैं कि यह तुम्हारी दौलत है। इस आवाज को अपने अन्दर जिन्दा रखना, मरने मत देना।

जिस प्रकार स्वादिष्ट चीज़ को देर तक खाते रहने की इच्छा होती है, गुलदस्ते में फूल भरते समय उनको बार बार सूंघने का मन करता है उसी प्रकार भगवान के अनमोल वचनों को विस्तार से समझने और समझाने की इच्छा होती है। भगवान श्रीकृष्ण ने हमको जो थोड़े से शब्द दिये हैं, पहले हम उनकी व्याख्या करें। भले ही हमें यह ज्ञान अर्जुन के माध्यम से मिला है लेकिन ज्ञान तो हम सब के लिए है, सारी धरती के पुत्रों के लिए है।

भगवान सबसे पहले शब्द कहते हैं, **'अहिंसा'** बड़ा प्यारा शब्द है। आप हिंसा को त्याग सको तो यह दौलत है आपकी। स्वभावतः सभी लोग अहिंसक होते हैं, परन्तु परिस्थितियों या किसी व्यक्ति के उकसाने पर या कभी किसी स्वार्थ में पड़कर हम लोग हिंसक बन जाते हैं। हिंसा हाथों के द्वारा, हथियारों के द्वारा या प्रयोगों के द्वारा तो की ही जाती है पर वाणी के द्वारा हिंसा सबसे ज़्यादा की जाती है। वाणी से हम लोग अपशब्दों के साथ साथ व्यंगात्मक भाषा बोल कर दूसरे व्यक्ति को न जाने कितना दुःखी करते हैं। उससे भी ज़्यादा हिंसा तानाकशी द्वारा होती है। महिलाओं में आपस में तानाकशी बहुत ज़्यादा होती है। कुछ नहीं कर सकते तो जीभ तो हिला ही सकते हैं। **किसी दूसरे परिवार की बेटी, तुम्हारे परिवार में बहू बन कर आती है। अपने घर से पराए घर में आना, और उसे अपना घर मानकर रहने की भावना मन में बनाना अपने आप में एक तप है। ऐसे में जब वह नए जीवन का प्रारम्भ कर रही होती है तो बात बात में सास या ननद की तानाकशी ज़हरीले तीरों के समान दिल को चीर देती है।** महिलाओं में यह आदत होती है कि विवाह की शुरुआत में जो शब्द कहे गए वे उनके हृदय में लिख जाते हैं। वे उन्हें कभी भूलती नहीं। बूढ़ी हो जाएँगी लेकिन तब भी उनको याद रहेगा कि सास ने शुरुआत में क्या शब्द कहे थे, क्या क्या ताने दिए थे, कौन से बोल बोले थे। गाली तो शायद थोड़े समय

के बाद आदमी भूल भी जाए, पर ये जो ताने और व्यंग्य कसे जाते हैं, मज़ाक में जो कह दिया जाता है, जिनके आगे व्यक्ति बोल न पाने के कारण घुट कर रह जाता है, वह ऐसा घाव बनाते हैं जो आजीवन रिसता रहता है।

वाणी और पाणि, जीभ और हाथ ये दोनों ही हिंसा के हथियार बनते जा रहे हैं इनको रोको। तीसरी है आपकी बुद्धि। **कई लोग वैसे हिंसा नहीं करते लेकिन कलम से मारते हैं। कलम से ऐसा मारेंगे कि दूसरे का परिवार तक तबाह हो जाएगा।** साँप और बिच्छू डंक मारेंगे, घोड़ा और गधा लात से मारेंगे। जिसके पास जो कुछ है, उसी से मार रहा है। जिसके पास कलम की ताकत है, वह कलम से मार रहा है। है तो यह भी हिंसा ही न? भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि हिंसा से बचो। **किसी को न सताओ और न दुःख दो। नहीं तो गरीब की आह, सताए हुए व्यक्ति की आह, लोहार की धोंकनी की तरह होती है।** लोहार की धोंकनी जैसे लोहे को जला देती है, वैसे ही गरीब की आह सताने वाले को तबाह कर देती है। **गरीब की आह कभी नहीं लेनी चाहिए।** पर आदमी इस बात को नहीं समझता। जब वह सत्ता या ताकत के नशे में होता है उस वक्त उसको कुछ नहीं सूझता। स्वाद के नाम पर भी कितनी हिंसा होती है। कितने सारे जानवरों को खाने के लिए मारा जाता है। अहिंसक बन कर जीना दिव्यता है। दिव्यता सम्पदा है, इसे अपनी ज़िन्दगी का हिस्सा बनाओ।

अगला शब्द है **'सत्यम्'**। भगवान कहते हैं **सत्यता संपदा है। सत्य बोलना, सत्य का आचरण करना एक बात है लेकिन सत्य में जीना दूसरी बात।** कुछ चीज़ें क्षणिक होती हैं। प्राप्त होकर भी पास नहीं रहेंगी। उनका सम्बन्ध सत्य से नहीं है जो थोड़ी देर के लिये ठहर कर अदृश्य हो जाएं। आसमान पर चमकने वाली बिजली का प्रकाश झूठा प्रकाश है। उस प्रकाश से कोई काम नहीं बनता। सूर्य के प्रकाश से सारी दुनिया को प्रकाश, उष्णता और ऊर्जा मिलती है। वह एक सत्य है। जो क्षणिक चमक देकर हाथ से निकल जाये, उनका सुख शाश्वत सुख नहीं है। बच्चे खेलने के लिये कागज के रुपये चला लेते हैं। पर बड़े होकर उन्हें पता चलता है कि असली रुपये तो दूसरे हैं जिनसे काम चलता है। इसलिये तुम असली

दौलत का पता लगा कर, उसी का संग्रह करना, उसी से अपना काम करना। यही सत्यता की सही परख है। आपको जब सत्य में जीना आ जाएगा तो आप सत्यमय होकर सत्य को पाने में समर्थ हो जायेंगे। इसीलिये सत्य में जीना सीखो, सत्य को अपनाना सीखो और सत्य तक पहुँचने के लिये प्रयासरत रहो।

किसी व्यक्ति का रूप लुभावना क्यों न हो लेकिन जब किसी सुन्दर से सुन्दर स्त्री या पुरुष को कोई बीमारी लग जाती है, बीमारी चाहे कफ़ की हो या दस्त की, उसके बाद चेहरा जब मुरझा जाता है, हड्डियां उभरती हैं, चेहरा फीका और डरावना लगने लगता है, तब ज़रा उस सौन्दर्य के बारे में सोचना जो शरीर से निकल कर बाहर गया है। बीमारी के समय शरीर की गंदगी बाहर निकलती तो दिखाई दी, लेकिन उसके साथ सौन्दर्य जाता दिखाई नहीं दिया, लेकिन गया वह भी गंदगी के साथ ही। इस सत्य का भान होते ही आप एकदम चौंकेंगे। मानो गन्दगी पर किसी ने चांदी का वर्क लगा कर सजा रखा था। इस सच्चाई को जानने के बाद घिन बढ़ेगी। सत्य जानने के बाद संसार के आकर्षणों के प्रति भी ऐसी ही घृणा पैदा होती है। फिर परमाकर्षक परमात्मा के प्रति प्यार जागा करता है।

एक किवदंती है कि एक बार जब कोई राजा मरने लगा तो उसने अपने गुरु से कहा, "महाराज! कोई ऐसा रास्ता बताइए कि मैं जिस हाल में अभी हूं उसी हाल में मेरी मुक्ति हो जाय। मुझे संसार से अभी मोह है। मैं महल, रानियाँ, समृद्धि और मुक्ति सब एक साथ चाहता हूँ।" गुरु ने कहा, "ध्यान से सुनो, तुम्हारा एक जन्म अभी और होगा और वह जन्म कष्टकर होगा। सूअर बनकर पैदा होओगे। गन्दगी में रहोगे।" उसने हाथ जोड़कर कहा, "गुरुदेव! मैं ऐसा नहीं चाहता। आप थोड़ा परिचय दे दें कि कहाँ पैदा होऊंगा, कहाँ शूकर बनकर रहूंगा और क्या निशानी होगी।" गुरु ने निशानी बता दी और कहा, "फलां कूड़ाघर के पास जो गन्दगी और कीचड़ का बहुत बड़ा जमाव है वहां तुम्हारा आवास होगा। तुम वहां जाकर बैठोगे, कभी कीचड़ में तो कभी गन्दगी के ढेर पर।" राजा विचलित हो गया और बोला, "गुरुदेव! थोड़ी निशानी और बता दीजिए कि शक्ल कैसी होगी।" गुरुदेव ने

बताया, "शक्ल ऐसी होगी कि माथे पर एक सफेद टीका सा दिखाई देगा, बाकी शक्ल काली होगी।" राजा घबराकर बोला "दिन, महीना तारीख भी बताइए महाराज।" गुरुदेव ने सब कुछ बता दिया। तब राजा ने गुरुदेव को हाथ जोड़कर विदा किया और सोचने लगा कि पता नहीं कब शरीर छूट जाए क्योंकि बीमारी बहुत गहरी लगी हुई है। तब उसने अपने बड़े बेटे को बुलाया और कहा, "देख बेटा, मुझ पर एक उपकार करना। जब मैं मरूंगा तो मेरी चिता को तू आग लगायेगा ही लेकिन दो साल के बाद इस दिन इस समय मैं फलां कूड़ाघर के पास गन्दे तालाब के किनारे बैठा मिलूंगा। तू यह निशानी देख कर मुझे आकर मार देना जिससे मेरी मुक्ति हो जाये। मैं सूअर वाली स्थिति में जीना नहीं चाहता।"

दो साल बाद राजा के बेटे ने जाकर ढूंढना शुरू किया तो जैसी निशानी बताई थी वैसी निशानी वाला शूकर देखा। इसने हाथ में तलवार ली और उस शूकर के पास जाकर बोला,"मैं आ गया हूँ, तुम्हारी मुक्ति के लिये।" अब वह शूकर वहीं से गर्दन हिलाकर कहता है, "नहीं बेटा, मारना नहीं। उस राजमहल में भी इतना आनन्द नहीं था जितना यहां है। देख तेरे भाई बहन भी पैदा हो गये हैं, वहाँ बैठे हैं। यह जो कीचड़ है न, यह तेरे लिए गन्दगी होगी पर मुझे तो बढ़िया गलीचे जैसा लगता है। इस जगह में बहुत आनन्द है और जिसको तू दुर्गन्ध कहता है न वह मेरे लिये बढ़िया सुगन्ध है। आ मेरे साथ मैं अपने पूरे परिवार का तुझसे परिचय करवा दूं।" राजा का बेटा वहां से लौट आया। मैं यह कहना चाहूंगा कि जब सत्य समझ में आता है तो संसार के आकर्षण अच्छे नहीं लगते और तब वैराग्य जागता है।

इस सत्य को ज्ञान कहा गया है। **'ज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यम्।' ज्ञान जब पराकाष्ठा में पहुँचा, सत्य के दर्शन हो गये।** अपने को भरमा कर तो असत्य में जीते रहे पर जब सत्य सामने आयेगा तो फिर संसार में कहीं रमने का मन नहीं करेगा। इसलिये महापुरुषों ने कहा है कि गृहस्थ में रहकर संसार की चमक दमक देखने के साथ धीरे धीरे वैराग्य की ओर भी बढ़ते रहना और ऐसा ढंग पैदा कर लेना कि सत्य तक पहुँच सको। वानप्रस्थ में व्यक्ति सत्य और तप को आधार बना कर चलता है। इनके

माध्यम से जब वैराग्य और भक्ति सुदृढ़ होने लग जाये तो फिर मुक्ति का द्वार खुलना शुरू हो जाता है। यही मुक्ति पाने की युक्ति है।

अक्रोधम् अर्थात् क्रोध रहित होना। क्रोध में हम थोड़ी देर के लिये अपने 'स्व' से दूर हट जाते हैं। क्रोध में थोड़ी देर के लिये हमारा अपने आप से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। हम अपने आपे में नहीं रहते, होश में नहीं रहते। अगर क्रोध की हालत में आपका चित्र उतारा जाए तो उस चित्र को आप देखना भी पसन्द नहीं करेंगे। आप कभी उस समय अपना फोटो खिंचवाइये जब आप अपने आपे में न हों, होश गंवा बैठे हों। क्रोध में हों, भृकुटि चढ़ गई हो, दाँत पीसने लगे हों, आपकी मुट्ठियां कस गईं हों और जीभ लड़खड़ाने लगी हो तो उस फोटो में अपना दर्शन कीजिये। बूझिये कि आपके अन्दर क्या आ गया था। फोटो में अपने को देख कर आप अपने आप से डर जाएंगे। थोड़ी देर का पागलपन जो आपके अन्दर आया वह भूकम्प के झटके की तरह आपको हिलाकर चला गया।

जब यह (गुस्सा) आपके अन्दर से बाहर निकलेगा तो न जाने किस किस को हिलायेगा। पागलपन के इस दौरे से बचिये, इसे पैदा ही मत होने दीजिए। जब ज्ञान बढ़ेगा, समझ आयेगी तो आपके अन्दर एक और विचार जागेगा। जैसे बच्चे आपके सामने गलतियां करें तो आप ऊपर से उन्हें डांट देते हैं पर अन्दर ही अन्दर हँस देते हैं, या सामने नकली क्रोध करेंगे और पीछे हँस देंगे। उसी प्रकार आप दूसरों की गलतियों पर नकली क्रोध भले ही कर लिया करें, वह आपको जलाएगा नहीं क्योंकि आपकी नीयत क्रोध करने की नहीं होती। लेकिन जहां क्रोध भयंकर रूप लेकर ईर्ष्या, राग, द्वेष लेकर आ गया वहां तो फिर विवेक गया, होश गई। कई व्यक्ति हमेशा क्रोध की मनःस्थिति में रहते हैं। जब भी किसी से मिलते हैं, बात करते हैं, चिन्गारियां निकलती हैं। दंपतियों की स्थिति भी ऐसी होती है कि एक अम्बाला बोलेगा तो दूसरा पटियाला कहेगा, एकता होती ही नहीं।

किसी पति पत्नी में बहुत झगड़ा था, कभी एकमत नहीं होते थे। किसी पड़ोसी ने पूछा, "तुम लोग कभी एकमत होते हो या नहीं ? बात बात पर झगड़ा होता है। ज़रा याद करो कि कभी एकमत हुए थे ?" पड़ोसी ने जब

यह पूछा कि कब एकमत हुए थे तो वे लोग बोले कि जब घर में आग लगी थी तो दोनों एक ही दरवाजे से बाहर निकले थे। तब हुई थी एक राय कि भागना है तो इधर से ही भागना पड़ेगा और कोई रास्ता नहीं है। पड़ोसी समझदार था, "मतलब कि मुसीबत ने तुम्हें एक किया था। जब प्राणों पर बन आई तब तुम्हारी मत एक हुई। लेकिन तुम्हारा रोज़ रोज़ का झगड़ा भी तो मुसीबत है। तुम्हारे और पड़ासियों सबके लिए। इसलिए एकमत बना कर रहो।" **जिस घर में क्रोध की चिन्गारियां और ईर्ष्या का धुआँ लगातार उठ रहा हो, जहाँ दूसरों को गिराने की फिसलन बनी रहती हो, विचारों में गन्दगी इस तरह बसी हो कि नालियां सड़ जाएं, सब के वस्त्र और दिल फटे हों, ज़िन्दगी धागों की तरह उलझी हुई हो तो स्थिति नरक जैसी है।** तो आप एक नारकीय जीवन जी रहे हैं। व्यक्ति यह स्थिति स्वयं अपने अन्दर से पैदा करता है।

अपने जीवन में सुव्यवस्था पैदा कर तुम अपने और अपने घर के अन्दर स्वर्ग का दिग्दर्शन कर सकते हो। तो अपने आपको संभालो। गांधी जी के बचपन की घटना बताता हूं। एक बार भाई के साथ खेल खेल में झगड़ा हो गया। भाई ने उन्हें मारा। गांधी जी ने माँ से जाकर कहा, "भाई को समझाओ भाई ने मुझे मारा है। भाई ने गलती की है।" माँ ने जवाब दिया, "उसने तुम्हें थप्पड़ मारा है तो तुम भी उसको एक थप्पड़ लगा कर आओ।" गांधी जी माँ का आंचल पकड़ कर उन्हें रोक कर बोले, "माँ तुम क्या सिखा रही हो ? भाई को गलती करने से रोक तो रही नहीं, उलटा मुझे भी गलती करने के लिए उकसा रही हो। भाई ने जो गलती की है वही मुझे भी सिखा रही हो। सिखाना है तो यह सिखाओ कि मैं उसे माफ़ कर दूं।"

बदला लेने की भावना समाज को इतना क्रूर बना देती है कि ज़िन्दगियां खतम हो जाती हैं पर बदला खतम नहीं होता। दिन–ब–दिन व्यक्ति भयंकर हो रहा है। कहता है दूसरे को ठीक करने के लिये हमें क्रूर होना ही पड़ेगा। आपद धर्म में कोई घटना हो जाए तो अलग बात है, अपने अन्दर क्रोध के ज़हर को पनपने मत देना।

त्यागशील होकर जिओ, त्यागी होकर रहो। जन्म लिया, होश सम्भाली

तो हर चीज़ उठा कर मुँह में डालने की आदत बनाई। चीज़ों को जोड़ तोड़ कर अपने पास रखने, मुट्ठी बन्द रखने, ये आदतें शुरुआत में ही होती हैं। प्रकृति ने ही यह आदत दी है। जन्म के समय मुट्ठी बंधी होती है इसलिए बांधने की आदत है। धीरे धीरे इस आदत से छुटकारा पाओ, हाथ को खोलना सीखो। प्रयास करो कि हाथ ऐसे खुल जाएं कि सब कुछ स्वाभाविक रूप से छूटता चला जाए। घर, मकान, खेत, खलिहान, संपत्ति और व्यापार व्यक्ति अपने बच्चों को देता है, उनको सौंपता है, लेकिन बदले में एक मोह बना लेता है। बदले में यह अपेक्षा करने लगता है कि ये सब मेरे आदेश पर ही चलें। होना यह चाहिए कि जब संपदा त्यागी है, तो फिर मोह भी क्यों रखना ? इसलिए मन को समझाओ कि मेरी देह भी छूटने वाली है, तब मेरे बाद मेरे परिवार के लोग किस तरह रहेंगे ? मेरी चीज़ों का कैसे प्रयोग होगा ? मेरे बाद मेरी गद्दी पर कौन बैठेगा, कैसे कारोबार चलायेगा ? जब मैं नहीं रहूंगा तो बाद में यह दुनिया मेरे बारे में क्या कहेगी। इस शरीर को जलाने के लिए जब लोग लेकर जायेंगे तो कैसे लेकर जायेंगे ? कोई रोयेगा तो उसका शोक कितना सच्चा और कितना झूठा होगा ? कौन कितनी जल्दी अपने शोक को खतम कर देगा ? फिर सारा संसार अपने काम में लग जायेगा। फिर उनको मेरी याद तब आयेगी जब उनको लगेगा कि मेरे बिना उनका काम नहीं चल पा रहा है। वे मतलब के लिये रोयेंगे। कभी कभी मेरी खट्टी मीठी यादें उनके ज़हन को रुलायेंगी। लेकिन मैं दुनिया में कैसे जिया, ज़िन्दगी चलते चलते कहां आ गई, अपने आप से सवाल करना और फिर त्यागने की मनःस्थिति में आ जाना।

बहुत पाया, बहुत संग्रह किया, अब त्यागने की बारी है। सब सम्बन्ध छोड़ देना, केवल परब्रह्म से सम्बन्ध रखना। केवल उसी को अपना बनाना, फिर देखना मोह ममता नहीं रह जायेगी। न परिवार से न व्यक्ति विशेष से। यह त्याग अपने आप आनन्द देता है। खलीफा उमर बहुत प्यारे बादशाह हुए हैं। उन्होंने त्याग को बड़े सहज ढंग से अपनाया। सारा दिन बादशाह के रूप में शान शौकत में बैठते थे, लेकिन अपने विश्राम का स्थान साधारण सा बनाया हुआ था। अपने परिवार के खर्च को वहन करने के लिए

राज्य से पैसे लेते थे। उनके साधारण कर्मचारी को जितना वेतन मिलता था उतना ही अपने लिये रखते थे। लोगों ने उनसे कहा कि आपका पद इतना बड़ा है पर आप साधारण वेतन लेकर गुजारा करते हैं। आपको अपने पद के हिसाब से वेतन लेना चाहिए। खलीफा उमर ने उस समय जो शब्द कहे वह बहुत प्यारे शब्द थे। उन्होंने कहा, "भई मेरा पद ही बड़ा है, पेट तो बड़ा नहीं। पेट को बड़ा क्यों कर लूं, लालच क्यों बढाऊं ?" उन्होंने लालच को बड़ा नहीं किया। **करना हो तो त्याग को बड़ा करो। बड़ा करना हो तो अपने बड़प्पन को बड़ा करो। त्याग की भावना बढ़ाते जाओ।** तुम्हारे सामने सारी चीज़ें पड़ी रहें, तुम उनके प्रति उदासीन होते जाओ। जैसे कमाया था वैसे ही छोड़ना है। इसके लिये प्राचीन काल में सर्वमेध यज्ञ किया जाता था। इसको करने वाला व्यक्ति सब चीज़ों को एकबारगी त्याग कर, साधक बनकर वन चला जाता था। यह हमारी संस्कृति का ऊँचा पैमाना था।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि दिव्य गुण **'त्याग'** मनुष्य को ऊँचाई की ओर ले जाता है। एक न एक दिन हमें सब चीजों का परित्याग करना ही है। चाहे हम संसार के पदार्थों को न भी छोड़ना चाहें और संसार में लिप्त होकर ही जीने की कामना रखें तो भी कुदरत का अपना नियम है। प्रकृति संसार की सब चीजों को स्वतः छुड़वाती है। परमात्मा जैसे देता है, वैसे लेता भी है। **जिस तरह कुछ फूल डाली पर खिलते हैं, मुस्कुराते हैं, सुगन्ध बिखेरते हैं और फिर झड़ जाते हैं, जीवन ऐसे ही खिले, मुस्कुराए, सुगंध बिखेरे और समाप्त हो जाए।** जैसे फल पक कर अपने आप डाल से अलग हो जाता है, बिल्कुल इसी प्रकार जीवन भी पके और फिर मुक्त हो जाये। डाल पर लगे रहकर सड़ना ठीक नहीं। हमें संसार में रहकर पकना चाहिये, अपने कर्त्तव्य पूरे करने चाहिए और फिर चल देना चाहिए। जीवन के अन्तिम भाग में हमें सम्पूर्ण त्याग करने की स्थिति में आ जाना चाहिए। त्याग को भगवान कृष्ण ने एक सम्पदा माना है।

शान्ति भी जीवन का एक परम बल है, क्योंकि शान्ति के बिना जीवन नहीं चल सकता। शान्ति न हो तो ज़िन्दगी का कोई वैभव दिखाई न दे। अगर घर में और मन में शान्ति न हो, तो भले ही कोई कितना अमीर हो,

उसकी अमीरी दिखाई नहीं देगी। आदमी कितना भी बलिष्ठ और सुन्दर क्यों न हो मन में शान्ति न हो तो उसका सौष्ठव सौन्दर्यविहीन हो जाता है। **शान्ति ही आपकी सुन्दरता है, शान्ति आपका स्वास्थ्य है। शान्ति ही जीवन में सुख पाने का एकमात्र मार्ग है। सुख की कामना करने के साथ ही शान्ति की कामना भी अवश्य करनी चाहिए।**

शान्ति देने के पदार्थ दुनिया में कहीं नहीं मिलते, शान्ति मन के अन्दर से पैदा होती है। आपके व्यवहार में जब शान्ति जागृत होती है, तब आपका विकास होता है, आपकी तरक्की होती है। किसी भी देश का विकास तभी सम्भव है, जब उस देश में शान्ति हो। अशान्ति में देश का विकास रुक जायेगा। आपका शरीर भी तभी स्वस्थ रहेगा और खाया पीया शरीर में लगेगा, जब आप चिन्ता से रहित होंगे। अगर आपका शरीर कमज़ोर है तो टॉनिक, पौष्टिक भोजन और व्यायाम के साथ यदि चिन्ता का रोग भी लगा लिया है तो चिन्ता दीमक की तरह अन्दर ही अन्दर सब कुछ खोखला कर देगी। तब अच्छी से अच्छी खुराक फ़ायदा नहीं करेगी। इसलिये निश्चितता जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण चीज़ है।

निश्चितता होगी तो आपके अन्दर प्रफुल्लता आयेगी, मस्ती आयेगी। **मन में सन्तुष्टि हो, चेहरे पर प्रफुल्लता हो, मन शान्त हो, रीढ़ में कर्म करने का जोश हो, और सिर पर किसी का कर्ज़ा न हो, परमात्मा के चरणों में मन टिका हो, अच्छे लोगों का साथ मिल जाये, हाथ में इतना धन वैभव हो कि आपकी आवश्यकताएं पूरी हो जायें, बस कुल मिलाकर इतना हो, तो मानो स्वर्ग है।** वफ़ादार साथी और सहयोगी हो, आपके साथ मित्रों परिवारजनों का प्रेम हो, परोपकार की मनोवृत्ति हो तो मानना कि आप दुनिया के सबसे समृद्ध और सुखी इन्सान हैं। लेकिन यह सारे साधन वे हैं, जिन्हें आपको स्वयं कमाना पड़ता है, अन्दर से अर्जित करना पड़ता है। इसलिये शान्ति स्वभाव में आनी चाहिये, वाणी में आनी चाहिये, देखने में आनी चाहिए, उठने बैठने में आनी चाहिए। आपके हाव भाव शान्ति वाले हों, ईर्ष्या द्वेष वाले नहीं, निन्दा चुगली वाले नहीं। भृकुटि हर समय तनी रहे, यह अच्छी बात नहीं।

लोग ऐसा स्थान ढूँढते हैं जहां शान्ति हो। आप वही वस्त्र पहनिये जो भड़कीले न हों, व्यवहार वही कीजिये जिससे तनाव और अशान्ति न पनपें और वैसी ही कमाई कीजिये जिससे जीवन ठीक ढंग से चले तो जहां आप हैं वहीं शान्ति होगी। अजीब बात है कि इन्सान के पास जब पैसा नहीं होता, दुःख और समस्याएँ रहती हैं, तो आदमी ईमानदार और सच्चा होता है। लेकिन जैसे ही पैसा आया, पेट भरा, तो दिमाग में उलटी खुराफात आने लगती है। मन गलत तरफ जाने लगता है, फिर कोई होटल, कैसीनो, क्लब और रेसकोर्स का मैदान ध्यान में आने लगता है। फिर आँखों की चंचलता, हाथों की खुजली, कानों की झनझनाहट, कदमों का बहकना शुरू हो जाता है। जैसे गुब्बारे में हवा भरने के बाद जब उसमें जरा सी सुई चुभे या ठोकर लगे तो सारी हवा निकल जाती है उसी प्रकार जब आदमी का पेट भर जाता है तो वैभव आने से वह दुर्गुणों को अपनाने लगता है। उसका अहं फूल जाता है जिसमें दुःख की ज़रा सी सुई लगने से सारी हवा निकल जाती है। दुःख इन्सान को जगा देता है। तब व्यक्ति भगवान की भक्ति करेगा, महापुरुषों के चरणों में जायेगा। सुख आया तो महापुरुषों के चरणों से प्रीति हटी। भगवान के बारे में कहता है कि वह है भी या नहीं। फिर आदमी का दृष्टिकोण बदल जाता है।

आने वाले कल के तनाव में, चिन्ता में हम हर दिन जीते हैं और इससे मुक्त नहीं हो पाते। जैसे भाव आप अपने मन में बनाते हैं वैसे ही भाव सामने वाले को आपके चेहरे पर दिखाई देते हैं। आपके प्रियजन मित्र, आप जिनसे मिलते हैं, उनके साथ यदि आप शांतिपूर्ण व्यवहार करते है, तो उनके अन्दर भी शान्ति परिलक्षित होने लगती है। ऐसा भी है कि समाज से हमें जो मिल रहा है वह हमारे ही व्यवहार का प्रतिबिम्ब है। समाज में हम जो रूप लेकर रहते हैं वही हमें दूसरे के चेहरे पर दिखाई देने लगता है। कोई आदमी जहां भी जाता है वहीं लड़ाई का माहौल बन जाता है तो वह समझता है कि लोग उसके साथ लड़ते हैं। वह यह सोचने की कोशिश नहीं करता कि झगड़े की चिन्गारियां उसके अन्दर हैं। कई लोगों को बहुत कम तनाव होता है क्योंकि वे सहज रूप से जीवन जी रहे हैं। वे अपनी नाक (अहम्) का सवाल

नहीं रखते। हम लोग अपनी राजपूती नाक आगे रखकर चलते हैं। नाक का सवाल है, झुकने की बात ही नहीं है। पीछे हटना ही नहीं। प्राण जायें पर वचन नहीं जाना चाहिए। जो कह दिया, वह होना चाहिये। कुछ लोग हर बात में नाक का सवाल बना कर बैठ जाते हैं। न झुकना चाहेंगे, न पीछे हटेंगे। आप अपने को कठोर मत बनाइये। ठीक है जिन कर्त्तव्यों और सिद्धांतों पर आपको डटना चाहिये, वहां डटो और वचन का पालन करो, लेकिन बिना बात का अहंकार मन में रखकर अड़ जाना, अच्छी बात नहीं है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो आपको बड़ा कहकर मान देंगे। इससे वे छोटे नहीं हो जाते। विवाह के समय वर वधु आमने सामने होते हैं। हमारे हिन्दू समाज में परम्परा है कि वधु पहले माला पहनाती है। वधु ने हाथ में माला ली है, तो वर का फ़र्ज है गर्दन झुकाये। वधु की तरफ से पंडित मंत्र पढ़ता है कि "मैं आपको सज्जन, श्रेष्ठ और महान मानते हुए आपका स्वागत करती हूँ।" वर द्वारा गर्दन झुकाकर माला स्वीकार करने की परम्परा है पर दुनिया क्या सिखाती है? दूल्हे के मित्र सिखाते हैं कि गर्दन नहीं झुकनी चाहिये। हो सके तो और ऊँचा उठाओ। विवाह में तो हँसने के लिये ऐसा हो सकता है लेकिन जीवन में यदि एक व्यक्ति गलती करे और माने नहीं तथा दूसरा क्षमा करने को तैयार न हो, दोनों अपनी जगह अकड़ने लगें, झुकना न चाहें, तो फिर सद्भाव पैदा नहीं हो सकता। सुख शान्ति नहीं आ सकती। जीवन में आनन्द तभी है, जब एक ने सम्मान दिया तो दूसरा गर्दन झुकाए। गलती करने वाला गलती का अहसास करे और दूसरा उसे क्षमा करे।

कथा है कि एक बार एक राजा ने अपने मन्त्री से कहा, "तुम्हारा जो व्यापारी दोस्त है उसकी दुकान के पास से जब भी मेरी सवारी निकलती है तो मेरा मन करता है कि उसको गिरफ़्तार करवाऊँ और फाँसी की सजा दे दूं। उसने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा, पर फिर भी मेरा मन करता है कि उसे सजा दूं। तुम्हारे दोस्त के प्रति मेरे मन में ऐसा भाव क्यों आता है?"

मन्त्री ने कहा, "आप तो किसी के साथ वैमनस्य नहीं रखते, सबके साथ न्याय करते हैं। मैं यह जानने की कोशिश करूगा कि ऐसा विचार क्यों आया और इसका कारण क्या है?" मन्त्री अपने मित्र के पास गया और

व्यापार का हाल चाल पूछने लगा। व्यापारी मित्र ने कहा "क्या बताऊँ। यह जो मेरा चन्दन का व्यापार है इसके ग्राहक कम आते हैं। माल बहुत भरा पड़ा है पर कोई चन्दन खरीदेगा तो घिस कर तिलक लगाने के लिये बहुत थोड़ा सा खरीदेगा। आज सवेरे मैं यही सोच रहा था कि चन्दन बिकने का एक ही रास्ता है। राजा मरे और यह चन्दन उसकी चिता के काम आये। अगर राजा की चिता में ये लकड़ियां लग जायें, तो मेरा व्यापार ठीक हो जाए। राजा मरता है तो मेरा लाभ होता है क्योंकि इतना चन्दन तो राजा ही खरीद सकता है।" अब मन्त्री सोचने लगा कि इस आदमी ने मन में दुर्भावना रखी। राजा जब इसकी मौत के बारे में सोच रहा था तो यह उससे पहले से राजा की मौत के बारे में सोच रहा था।

मन्त्री ने बात को समझा और व्यापारी से कहा, "राजा चन्दन की लकड़ी से कुछ खास किस्म की चीजें बनवाना चाहते हैं जिसके लिए मैं चन्दन खरीदने आया हूँ।" अब व्यापारी अपने कानों पर हाथ लगाकर मन ही मन कहने लगा, "भगवान, मुझे माफ करना। मैं जिस राजा की चिता जलाने को तैयार हूँ, वह मेरी मंगलकामना करता हुआ मेरा चन्दन खरीदने को तैयार है। भगवान, मुझे माफ कर देना।" मंत्री ने राजा से कुछ नहीं कहा पर चन्दन ज़रूर खरीद लिया। कुछ दिनों बाद राजा की सवारी पुनः उधर से निकली। इस बार राजा ने हाथी रुकवाकर देखा और सोचा कि आदमी तो भला है, मैं क्यों इसकी मौत मांग रहा था। मन करता है इसकी कोई कामना पूरी करके इसे किसी राजकीय कार्य में जोड़ दूं। व्यापारी भी राजा को मन ही मन प्रणाम कर रहा है। राजा अच्छा सोच रहा है तो व्यापारी भी राजा के बारे में अच्छा सोच रहा है। **जैसे भाव आप अपने मन में बनाते हैं, वैसे ही भाव सामने वाले पर भी दिखाई देने लगते हैं।**

विज्ञान ने इसे टैलीपैथी का नाम दिया। टैलीपैथी के अनुसार **जो विचार हम दूसरे के लिये सम्प्रेषित करते हैं वैसे ही विचार दूसरे के मन में भी उठते हैं चाहे वह सुदूर अमेरिका में ही क्यों न बैठा हो।** इसलिए हमारे ग्रन्थों में कहा गया है कि अपने विचार अच्छे बनाओ, अच्छी तरंगें उठाओ। आपके अन्दर से विचारों की तरंगें किरण बनकर उठती हैं। आज

लेज़र सिस्टम से कितनी चीजें चलाई जाती हैं, पर वह दिखाई नहीं देतीं। बच्चे लेज़र टार्च से खेल खेलते हैं, जिससे प्रकाश हिलता दिखाई नहीं देता। दूर से किरण भी दिखाई नहीं देती, लेकिन किरणें जहां जाकर गिरती हैं, वहां लाल पीला घेरा बन जाता है। इसी प्रकार आपके मस्तिष्क से विचारों की किरणें निकलती दिखाई नहीं देतीं, लेकिन जहां फेंकी गई हैं, वहां काम करती हैं। इसीलिए **अपने अन्दर के ट्रांसमीटर से शांति की तरंगें प्रवाहित करो।** जब तुम दिव्य स्वरूप से युक्त होते हो तो तुम्हारा अन्तःकरण शान्त होता है और तब तुम अन्तःकरण से शान्ति वाली किरणें फेंकते हो। जिसके प्रति आपका बहुत लगाव है, बहुत प्यार है, चाहे बेटा क्यों न हो, आप प्रेम वात्सल्य की किरणें उसके लिये भेजते हैं, तो वहां से भी वैसी ही किरणें वापिस आती हैं। भाई के साथ झगड़ा होने पर वैमनस्य बढ़ जाये तो अन्दर से उठती हुई चिन्गारियों की लड़ियां चलती हैं। झगड़े की, राग द्वेष की, वैर की लपटें उठने लगेंगी। यहां तक कि लड़ाई कचहरी में पहुँच जाएगी। अतः शान्ति को अपने जीवन का आधार बनाओ और हर तरफ शान्ति बिखेरने की कोशिश करो।

भगवान कहते हैं कि इतने से ही बात नहीं बनेगी। निंदा चुगली से भी रहित होकर जीने की कोशिश करो। **अपैशुनम्,** कुछ लोगों का स्वभाव होता है कि दूसरे की उन्नति, सम्पन्नता, (खास तौर से किसी परिचित की) तरक्की देखकर उनके मन में ईर्ष्या द्वेष के भाव जागते हैं। कुछ व्यक्ति खास लोगों की निन्दा चुगली करने में रस लेते हैं। अपने दस काम छोड़ कर भी परनिन्दा की चर्चा में शामिल हो जाते हैं। यहां तक कि सत्संग में आए अपने प्रतिद्वन्द्वी की तरफ आपका ध्यान जायेगा। प्रवचन से भी हट जाएगा। खास तौर पर सत्संग में बैठी महिलाओं में ऐसा होता है कि जिसके प्रति वैर है, उसका उपहास करती हैं। कुछ इशारा कर देंगी कुछ हाव भाव से प्रकट कर देंगी। सत्संग में आई थीं शांति की शीतल हवायें पाने, वहां स्वयं अंगीठी (हीटर) जलाये बैठी हैं। जिस जगह जाकर हम शान्ति पा सकते हैं, वहीं मिजाज गर्म करके बैठ गये। दूसरे के कारोबार के प्रति रुचि ज्यादा रहेगी कि वह कैसे पाप से कमा रहा है, कैसा बेईमान और छली

आदमी है। वह है या नहीं, पर आपकी नज़र में वह बेईमान है और फिर निन्दा चुगली शुरू।

बहुत लोगों को दूसरों की निजी जिन्दगी में झांकने की आदत होती है, क्योंकि उनके अपने अन्दर अतृप्त वासनाएं होती हैं। यह एक मनौवैज्ञानिक तथ्य है। आपका भूतकाल जिन कमियों से गुजरा हो, आगे चल कर आप उन चीज़ों की चर्चा ज़्यादा करते हैं। आदमी भूखा हो तो सपने रोटियों के आयेंगे। वासनाओं की अतृप्ति है तो सपने में भी वासनाओं का ही सामना होता है। पैसे की कमी खलती हो तो व्यक्ति सपने में नोट गिनेगा। आदमी ज़्यादातर वही करेगा, जिस की कमी जीवन भर रहती है और वही तो दूसरों पर थोप कर देखेगा। खुद का कीचड़ दूसरों के चेहरे पर लपेट कर, तरह तरह की कहानियां बनाकर चर्चा करेगा। मन की अतृप्ति बुढ़ापे के अन्तिम छोर तक तंग करती है। जो कामना अतृप्त है उसकी चर्चा करना चाहते हैं। भोगवादी देश, जहां भोग ही प्रधान है, जहां चीजों की उन्मुक्तता है, वहां निजी जिन्दगी में झांककर इस तरह की चर्चाएं बहुत कम होती हैं। उन लोगों की दूसरों के बारे में रुचि नहीं रहती। जो तृप्त हैं, वह ऐसी चर्चा कभी नहीं करेंगे। अतृप्त व्यक्ति ही ज्यादा चर्चा करता है और जब आदत पड़ जाती है तो थोड़ी सी बात देखी और दस काम छोड़ कर व्यक्ति मिर्च मसाला लगाकर और उसपर नींबू डालकर सबको सुनाता है। कई लोगों का तो यही धंधा है। चलते हुए लोगों को रोककर, घर ले जाकर, नाश्ता कराकर किसी की निंदा चर्चा शुरू कर देंगे। किसी के बेटे के बारे में, किसी की बेटी या बहू के बारे में, सास या व्यापार के बारे में चुगलियां चलती हैं। जीवन में अशान्ति लाने का सबसे बड़ा कारंण ये चुगलियां, वैर भाव और आलोचना है। ऐसा आदमी अपनी नाक ऊँची करने के लिये दूसरे की निन्दा चुगली करता ही रहता है।

एक चित्रकार ने बड़ा सुन्दर चित्र बनाया और चौराहे पर रख दिया। चित्र के नीचे लिख दिया कि कृपया सुझाव दें, जहां दोष हो, वहां निशान लगा दें। शाम को चित्रकार आया। उसने देखा कि हर जगह निशान लगा हुआ है। किसी ने कहा कि नाक ठीक नहीं, थोड़ी छोटी करो; किसी ने कहा

कि कान ठीक करना पड़ेगा; किसी ने चेहरा लम्बा बताया, गोल होना चाहिए; किसी ने बाल लम्बे करने की सलाह दी और किसी ने माथा थोड़ा सा और उभारने को कहा। हर एक व्यक्ति ने कोई न कोई कमी कहीं न कहीं ज़रूर निकाली। अगले दिन चित्रकार ने उसी जैसा एक सुन्दर चित्र बनाया और साथ में एक सादा कागज भी रखा जिसपर लिखा कि जिस भाई को इस चित्र में कमी दिखे, वह मुझे सिखा दे। बराबर रखे खाली कागज पर अपनी पसन्द का चित्र बना दे, जिसे देखकर मैं प्रेरणा ले सकूं। आदमी के पास दोष निकालने के लिये, निन्दा चुगली के लिये तो फुर्सत है, लेकिन निर्माण करने के लिये फुर्सत नहीं है। सब ने कहा कि जो है, सो ठीक है। किसी ने चित्र को नहीं छेड़ा। चित्र वैसा का वैसा ही रहा। किसी से अगर कहो कि बनाकर दिखाओ, इससे और ऊँचा उठ कर दिखा दो तो कोई चुनौती को स्वीकार नहीं करेगा। हाँ दूसरे को लांछित करने का समय सब निकाल लेंगे। ऐसे व्यक्ति के जीवन में कभी चैन और शान्ति नहीं रहती।

दुनिया में आलोचना करने वालों की मूर्तियां नहीं लगतीं। ऐसी कोई मूर्ति आपने नहीं देखी होगी जो किसी निन्दा चुगली करने वाले की हो। हां उत्तर प्रदेश में इटावा के पास एक जगह पर चुगलखोर की मज़ार है। उसकी पूजा जूते से होती है। किसी समय कोई चुगलखोर रहा होगा, उसकी मज़ार पर लोग पाँच जूते मारते हैं। दूसरों की निन्दा चुगली करके उनके मन में शक और संदेह पैदा करने से न जाने कितने घर बरबाद हुए होंगे, कितने घर जले और टूटे होंगे। अच्छे भले घरों में कोई मन्थरा और कोई शकुनि बनकर आया और उनके घर को तबाह कर गया। स्वयं निंदा करने और निंदा करने वाले दोनों से बचना। भगवान कहते हैं कि **जो व्यक्ति निंदा की बातों से प्रभावित न हो और स्वयं निन्दा या आलोचना के शब्द न बोले, वह व्यक्ति दिव्य गुणों से युक्त है, वह पूजनीय है।** मेरी कृपा का पात्र भी वही बनेगा। **घरों में जगह जगह कलह की आग लगी दिखाई देती है। घरों में आपसी सम्बन्ध टूट रहे हैं। किसी न किसी का हाथ उसमें जरूर होता है, जो आग लगाता है। घर को खराब करने वाला, इधर की बातें उधर करने वाला। यदि आप कहीं गलती से भी ऐसा कार्य**

कर रहे हों तो आज से ही अपने को रोकिये।

जज भी किसी का फैसला करता है तो दूसरे पक्ष को कम से कम सुन ज़रूर लेता है। हम कैसे जज हैं जो किसी की सुनने को तैयार ही नहीं हैं। कोई आदमी किसी के बारे में बताये कि वह पहुँचा हुआ दानी आदमी है, बहुत सहयोग करने वाला आदमी है, बड़ा सेवादार आदमी है, तो आप यकीन नहीं करेंगे और यदि करेंगे भी तो थोड़ा सा। लेकिन कोई यह कह दे कि यह दान वान तो सब दिखावा है, असल में बड़ा भारी तस्कर (स्मगलर) है, चोर है, तब आप एकदम गर्दन हिलाकर कहते हैं कि तू जो कहता है, लगता तो सच है। कोई किसी के लिये कहे कि यह बहुत अच्छा सितार बजाने वाला आदमी है कभी इसका संगीत सुनना तो यह बात कम समझ में आयेगी। लेकिन साथ में यह भी कह दे कि वह चोर है उसके सामने चीज़ इधर उधर मत रख देना। पता भी नहीं लगेगा कि कितनी सफाई से वह ले गया, तब उसकी इस बुराई वाली बात पर आपको बहुत जल्दी यकीन हो जाएगा। **अपने अन्दर भलाई ग्रहण करने की क्षमता पैदा कीजिए, समाज का वातावरण अच्छा बनेगा, घर और मन का वातावरण भी अच्छा बनेगा। निन्दा और चुगली की आदत डालें ही नहीं क्योंकि शब्द जहां से चलते है वहीं लौटकर आते हैं। यदि आप अच्छे शब्द प्रवाहित करेंगे तो वें शब्द आप तक अच्छे ही बन कर वापिस आयेंगे। यदि आपने बुरे शब्द भेजे, तो बुरे ही वापिस पहुँचेंगे।**

भगवान ने कहा है कि चुगली और निन्दा करने की आदत से रहित होकर जीना चाहिए। निन्दक आदमी पीछे से डंक मारता है और चापलूस आगे से दोनों ही डंक मारते हैं। निन्दक आदमी आपकी पीठ पर मच्छर बन कर बैठा है। वह कभी सामने नहीं बोलता, सामने उसकी हिम्मत ही नहीं होती। चापलूस आपके सामने डंक मार जायेगा और आपको पता भी नहीं चलेगा। **निन्दक, आलोचक या चापलूस होकर जीना या ऐसे लोगों को प्रशय देना, अपनी गुणवत्ता घटाना है।** इन दुर्गुणों को अपने अन्दर न आने दीजिए। रोज सोचिये कि आज आपने कितनी निन्दा की, कितनी चुगली खाई, कितनी आलोचना की, दूसरों के कितने दोष निकाले। प्याज

के छिलके छीलते जाइये, तो बदबू के सिवाय कुछ भी निकलने का नहीं। दूसरों की आलोचना करते जाइये, निकलेगा आपका बदबू वाला चरित्र चित्रण। इसका प्रभाव हमारे ही मस्तिष्क पर होगा।

भगवान कह रहे हैं कि शान्ति पाने के लिए शान्ति का आचरण करना चाहिए। चुगली व निन्दा से बचकर हृदय को कोमल बनाओ, प्राणी मात्र के प्रति दया रखो। दया का मतलब है, जीवन के प्रति आदर रखना। एक चींटी की भी अपनी दुनिया होती है। उसका भी परिवार है, उसके भी सगे सम्बन्धी हैं। सुख और दुख की अनुभूतियां उसे भी होती हैं। आप चीटियों की कालोनी को कभी देखें। विज्ञान की प्रदर्शनी में कभी कभी प्रदर्शित किया जाता है कि चीटियां कैसे रहती हैं। उनके भी नियम होते हैं। पहले वे ऊपर से छेद बनाती हैं, बाद में गोल घेरा जैसे अंग्रेजी में जी या सी लिखते हैं, वैसे ज़मीन खोदती हैं। ज्यादातर चीटियां इसी प्रकार से अपनी कालोनी बनाती हैं। उनकी सड़कें भी होती हैं। इसका हिसाब किताब भी होता है कि रास्ता कैसे बनाया जाये। उनकी गाड़ियां बड़ी सुरक्षा से चलती हैं। इधर से जाने वाले जा रहे हैं, आने वाले आ रहे हैं। आमना सामना होता है पर दुर्घटना बिलकुल नहीं होती। बीच बीच में यातायात विभाग के लोग खड़े होते हैं। गुप्तचर विभाग भी होता है। कहाँ कहाँ क्या माल पड़ा है, वे इसकी सूचना देते हैं। कुछ का काम दूरसंचार का है वे आते जाते को सूचना देते हैं कि फलां स्थान पर एक अकेला आदमी सामान उठाकर ला रहा है। जैसे ही सूचना मिलती है, कई चीटियां भारी सामान को उठाने तेजी से भागती हैं। मज़े की बात यह है कि उनको किसी रोशनी की ज़रूरत नहीं होती। जो वाहन चल रहे हैं, उनमें बत्तियां जलाने की ज़रूरत नहीं, अंधेरे में काम होता रहता है। कालोनी में ऐसा गोदाम भी होता है, जहां सारा सामान रखा जाता है। कहां बस्ती बसेगी, बच्चे कहां रहेंगे, वे सब स्थान बना कर रखती हैं।

इससे भी कमाल की बात है कि भूकम्प आने वाला है या बारिश होने वाली है तो १२ घन्टे या २४ घन्टे पहले ही उन्हें सूचना मिल जाती है। उन लोगों को पता चल जाता है कि मौसम में गड़बड़ होने वाली है। तब वे अपने

अन्डे बच्चे लेकर सुरक्षित जगह अलग कालोनी बसाने निकल पड़ती हैं। उनको सब मालूम होता है। उनके अन्दर भी जीवन होता है। जब आप चलते हैं और आपके पांव के नीचे कोई चींटी दब जाती है तो समझें एक जीव की हत्या हुई है। एक परिवार तबाह हुआ है। इसीलिए उनके प्रति भी दया की भावना रखिए।

एक परम्परा है जिसमें पांच प्रकार के यज्ञ करने का विधान है। उसमें एक **'भूत यज्ञ'** है। भूत यज्ञ का मतलब है जीवों के प्रति दया भाव रखकर उनके लिये कुछ आहुति देना। तो जितने भी जीव हैं, आप उनके लिये आहुति देना। **चीटियों को आटा डालना, गऊ के लिये घास निकालना, कुत्ते को रोटी डालना, पक्षियों को दाना डालना, यह सब कार्य जीवों के प्रति दया करने के परिचायक हैं।** प्रायश्चित के रूप में भूत यज्ञ करने और जीवों को अन्न दान देने का हमारे हिन्दू धर्म के शास्त्रों तथा ग्रंथों में विधान है। हमारे मन में जीवों के प्रति दया भाव हो, उनके प्रति हिंसा का भाव न हो ऐसा हमारे हिन्दु समाज की सनातन और शाश्वत परम्पराओं में उपदेश दिया गया है। यह संदेश हमारे ग्रन्थों में हमें बार बार मिलता है कि जीव जन्तुओं से लेकर पेड़ पौधों तक सबके प्रति मंगलकामना रखो, सबके जीवन की कामना करो। भगवान कहते हैं कि **वह व्यक्ति सच में ही दिव्य है जिसके ह्रदय में दूसरे को तड़पता देख तड़पन हो जाये।**

जीव जन्तुओं में भी आपस में बड़ी ममता, बड़ा प्यार होता है। पंछी अपने बच्चों का पालन पोषण करने के लिए कहां कहां से दाना लेकर आयेगा और बच्चे के मुख में डालेगा। कोई जानवर जब अपने बच्चे को दूध पिला रहा हो, उसे प्यार कर रहा हो, जीभ से उसे चाट रहा हो तब उसे देखें। एक बार मुझे एक अजीब दृश्य देखने को मिला। हम लोग घर से चले। बीच में एक नहर है, उस पर एक छोटा सा पुल है। वहां मैंने गाड़ी में से देखा कि आगे आगे एक रिक्शा चल रहा था, उसके पीछे एक भैंस। जितनी तेजी से रिक्शा चलता, उतनी ही तेजी से भैंस भी चलती, जबकि दोनों में करीब २०–३० फुट की दूरी थी। मैं गाड़ी में बैठा यह सोच रहा था कि लगता है भैंस के गले में कोई रस्सी है जो रिक्शे के साथ बंधी है।

मैं सोच रहा था कि २५ फुट की दूरी तक रस्सी बांधी गई हो, ऐसा तो हो नहीं सकता तो भैंस कौन सी रस्सी के साथ बंधी है?

गाड़ी रिक्शे के नज़दीक आई तो मैने देखा कि कोई रस्सी नहीं बंधी है, लेकिन रिक्शा में जो व्यक्ति बैठा है उसकी गोद में भैंस का बच्चा है। तब मैंने समझा कि भैंस ममता की रस्सी से बंधी हुई है। उसकी ममता का धागा रिक्शे में बैठे बछड़े के गले में है। भैंस एक माँ है. इसलिए जितनी तेजी से रिक्शा भाग रहा है, माँ पीछे दौड़ती जा रही है। कहा जाता है कि भैंस बहुत मोटी अक्ल वाला जीव है, लेकिन मोटी अक्ल वाला यह जीव ममता भी बहुत मोटी रखता है। उसके अन्दर अपने नवजात बच्चे के प्रति बहुत प्यार है। जन्तुओं में संवेदनाएं व्यक्त करने का अपना ढंग होता है। जंगल में एक बार देखा कि एक चिड़िया का बच्चा नीचे गिर गया था। मादा चिड़िया आई और बच्चे की जो टांग टूट गई थी, उसे मुँह में लेकर थोड़ा सा दबाया, प्यार किया। वह चीं चीं की आवाज निकालने लगी, शोर मचाने लगी कि आओ, मेरे बच्चे को सम्भालो। कितना प्यार है जीवों में। कोई इनके बीच में रहकर देखे, तो पता लगे। लेकिन **इन्सान ने अपने जीभ के स्वाद के लिये न जाने कितने जीवों की, पक्षियों की हत्या की है। नस्लें खत्म कर दीं उनकी। यद्यपि मनुष्य के खाने के लिये न जाने कितने पदार्थ हैं, फिर भी यह पशु पक्षियों को खा रहा है।** हमारी सनातन परम्परा के हिन्दू ग्रन्थों में बार बार यह कहा गया है कि सबके प्रति करुणा और मित्रता रखो, हर जीवन को मान दो, आदर करो, किसी भी जीवन को नष्ट न करो, न होने दो। सबको जीवन जीने का अधिकार है। दूसरे के जीने के अधिकार को नहीं छीनो।

भगवान ने कहा है, कि **दया भूतेषु** लालच का विस्तार नहीं करना। लालच होगा तो जीवन छोटा हो जायेगा। दिव्य गुणों में प्राणीमात्र के प्रति दया का गुण, हर जीव के अन्दर जीवन देखकर उसकी सुरक्षा की भावना और प्रेम भाव अपनाकर जब हम उसकी ज़िन्दगी का आदर करते हैं तब वह आदर ही **दया** है। मैं भी जिऊँ और तू भी जिए। यह दिव्यता है। आप बैठे हैं, आपके पाँव के नीचे कोई चींटी दब गयी। भगवान ने चींटी को एक

चिकोटी दी है, छोटी सी चिमटी दी है, वह उस चिमटी से आपके पाँव के पास की चमड़ी को काटती है। आप तिलमिला कर देखते हैं कि कौन है। इतनी देर में चींटी वहाँ से भाग जाती है। लेकिन वह यह कह कर जाती है कि वह तो बहुत कमज़ोर है और अपनी ज़िन्दगी बचाती फिरती है, पर आप जरा संभल कर पाँव रखा करें क्योंकि आपके कदमों के नीचे ही उनकी जिन्दगी है। जब आपका मन चींटी का यह संदेश सुनने लग जाए और मन में ऐसे भाव आ जाएं तो समझना वह दया है।

मनुष्य के व्यक्तित्व में 'दिव्य भाव' और 'आसुरी भाव' ये दो प्रकार के भाव होते हैं। एक तरफ़ पहाड़ सी ऊँचाई है, तो दूसरी तरफ़ गहरी खाई। मनुष्य अपने दिव्य भावों से ऊँचे शिखर पर चढ़ सकता है और आसुरी प्रवृत्ति के चलते गहरी खाई में गिर सकता है। हमारी ऊर्जा शक्ति कहाँ है और किस जगह टिकी है? हमारा ध्यान कहाँ है, हम कैसे सपने देखते हैं, हम क्या विचार करते हैं, हमारे ख्वाब क्या हैं, हमारी कल्पनाएँ कैसी हैं? हमारी चाहत में क्या चीज़ बैठ गई है, इससे पता चलेगा कि हम किधर जाना चाहते हैं, क्या बनना चाहते हैं, क्या पाना चाहते हैं, क्या संग्रह करना चाहते हैं और किन चीज़ों, वस्तुओं, स्थान व पद को महत्त्व देते हैं। हमारी ऊर्जा की सुई कहाँ ठहरी हुई है। एक तरफ हमारे पाँव नरक के दलदल में टिके हुए हैं तो दूसरी तरफ मस्तिष्क स्वर्ग को छू रहा है। भगवान श्रीकृष्ण इसी उत्थान और पतन का विश्लेषण कर रहे हैं।

कोमल हृदय वाले व्यक्ति में किसी एक फूल के खिलने से आनन्द की अनुभूति होती है क्योंकि उससे एक नया जीवन प्रकट हुआ है। सृष्टि के प्रत्येक कण को देखकर वह प्रफुल्लित होता है। ऐसा संवेदनशील व्यक्ति अगर किसी झरने को बहता देखेगा तो सब काम छोड़कर उसके किनारे बैठेगा। बहते पानी के कलरव को ध्यान से सुनेगा। चित्रकार पहले पूरे दृश्य को आत्मसात करेगा। कल्पना करेगा कि सूरज की पहली किरण निकलते समय वादियों के बीच बहता हुआ यह झरना कैसा प्रतीत होता है। दोपहर को जब सूरज शिखर पर हो, तब झरना कैसा लगता है। रात को चांदनी में उसकी छटा कैसी होगी। बसन्त ऋतु में कैसा लगता है और बरसात में

जब पानी भर आए तो कैसा लगता है। चित्रकार इन सारे रूपों की कल्पना कर झरने को अपने अन्दर बसाता है। फिर कागज पर प्रकृति के सौन्दर्य को उतारता है। कवि अपनी कविता के माध्यम से आपको बोध कराता है कि संसार कितना मोहक और कितना सरस है।

साधारणतया कोई आम आदमी झील देखेगा तो कहेगा, ठीक है, पानी भरा हुआ है। झरता हुआ झरना देख लेगा तो कहेगा कि पानी पहाड़ से नीचे गिर रहा है। देखना क्या है इसमें। एक सैकेण्ड में देख लिया कि पानी ऊपर से नीचे गिर रहा है। हर रोज़ सुबह सूरज उगता है, सांझ होती है, पानी ऊपर से नीचे बहता है, तो क्या हो गया? कोई फूल भी खिला हो, तो उसमें भी उसे कुछ नज़र नहीं आता। ठीक है, फूल खिले हुए अच्छे लग रहे हैं। चलिए आगे, हो गया काम, देख लिया। भाव में कठोरता है, इसलिए उसे कुछ भी नज़र नहीं आता। यदि कोई बच्चा बहता हुआ झरना देखेगा तो गाड़ी से उतरकर भागता हुआ झरने के पास पहुँचेगा। वह उसे छू लेना चाहेगा। अपने पाँव भिगोयेगा, पानी के छींटे अपने ऊपर डालेगा और उसका वश चले, तो पानी में घुस जायेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि **बच्चों के अन्दर जो संवेदनशीलता है, वह प्रकृति की दी हुई है। उसकी वह स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जिसकी बड़े होकर हम उपेक्षा करते हैं।**

रंग बिरंगे फूलों को देखकर किसी बच्चे को ऐसा लगता है मानो खज़ाना मिल गया हो। उड़ती हुई तितलियाँ, खिलते हुए फूल, रंग बिरंगे कागज़ के टुकड़े, बच्चे आनन्दित होकर उन सबको इकट्ठा करते हैं। बरसात के दिनों में आसमान में कहीं इन्द्रधनुषी रंग उभर आयें तो बच्चा बहुत ध्यान से उसको देखता है, तालियाँ बजाकर नाचता है। वह आनन्द ही अलग होता है। बचपन में आपने मन में जो कल्पनाएँ और इच्छाएँ संजोयी थीं, और जो आनन्द उस समय आपने लिया था, बड़े हो जाने के बाद, कितना भी पैसा कमाने के बाद आप उतना आनन्द कभी नहीं ले पाये। कहीं पर कोई ढोल बज रहा हो, कोई गा रहा हो उसका आनन्द जितना बच्चे ले सकते हैं, बड़े नहीं ले सकते। तितलियों के पीछे भागते उनके पंख पकड़कर उनको उड़ाते, बच्चे जो आनन्द लेते हैं, वह आपको हवाई जहाज

में उड़कर भी नहीं मिलेगा। बच्चे स्वयं कल्पनाओं के पंख होते हैं क्योंकि उनमें संवेदनशीलता होती है।

इस ज़िन्दगी में यह जो संवेदनशीलता है, वही आपको आनन्दित करती है। बागों में बोलती हुई कोयल हो या पी पी की आवाज़ करते हुए पपीहे हों या सवेरे के समय पेड़ों पर बैठे बहुत सारे पंछी तरह तरह का शोर कर रहे हों या फिर सांझ घिर रही हो और झींगुर बोल रहे हों, इन सबमें आनन्द है। ये तरह तरह के जन्तु अलग अलग आवाज़ में बोलते हैं। भगवान का एक ऑरकेस्ट्रा, एक बैण्ड बाजा है। रात वाले लोगों का कार्यकाल (ड्यूटी) अलग है। सांझ गहरी हो जाने के बाद पंछी नहीं बोलते, झाड़ियों के पीछे बैठे हुए झींगुर बोलते हैं, कोई बहुत मोटी आवाज़ वाला, कोई बहुत मीठी आवाज़ वाला और कोई तीखी आवाज़ वाला। किसी किसी तालाब के किनारे कोई मेंढ़क, जिन्हें दादुर भी कहते हैं, अपनी आवाज़ में टर्र टर्र करते रहते हैं। वह आनन्द अलग ही तरह का है। आसमान में बादल घिर रहे हैं, कहीं दूर बिजली कड़क रही है, सारे पक्षी सोए पड़े हैं, कोई जीव नहीं बोल रहा, सिर्फ झींगुर बोल रहे हैं या कहीं मेंढक बोल रहे हैं। अचानक बादल के कड़कते ही मोर बहुत ज़ोर से "ओहो" की आवाज़ निकालता है मानो बहुत आनन्द में आ गया हो। मनुष्य यह सब आनन्द अपनी संवेदनशीलता के कारण महसूस करता है। संवेदनशील व्यक्ति ही यह आनन्द ले सकता है, कोई दूसरा नहीं। संवेदनशून्य व्यक्ति को यह सब शोरगुल लगेगा।

संवेदनशील बनकर, **सत्यम् शिवम् सुन्दरम्** का रूप धारण करके, संसार को देखिए। इन दिव्य गुणों से अपने मन के आंगन को सजाकर 'स्वागतम्' लिखिए।

आसमान में पक्षी उड़ते हैं किन्तु आसमान में कहीं पगडण्डियाँ नहीं बनी हैं। पक्षी के लिए कोई रास्ता नहीं है कि यहाँ से उड़कर वहाँ जाना है। हवाई जहाज उड़ता है तो वह नीचे बेतार के यन्त्र के माध्यम से जुड़ा रहता है। नीचे से सूचनाएं आती रहती हैं। संकेत यन्त्र (इन्डिकेटर) बताते रहते हैं कि किस तरफ़ तुम कहाँ पहुँचे हो और किस तरफ़ तुम्हें जाना है। बल्कि अब तो सीधी सी व्यवस्था हो गई है। किस दिशा में जाना है, कहाँ

जाना है, पहले से ही सब कुछ कम्प्यूटर में भर (फीड) कर वायुयान में रख दिया जाता है। हवाई जहाज ने जैसे ही उड़ान भरी, फिर पायलट को कुछ भी देखने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने आप गन्तव्य दिशा में चलता जाएगा और यंत्र पर दिखाता रहेगा कि किस दिशा में हम लोग कहाँ पहुँचे हैं। लेकिन आसमान में उड़ते पंछी नीचे से जुड़े हुए नहीं होते, न आकश में उनके लिए किसी तरह की कोई पगडण्डी बनी होती है। कहाँ से किधर जाना है, परमात्मा ने उनके दिमाग में ही सब कुछ भरा (फीड किया) हुआ है।

इतनी दूर साईबेरिया से उड़कर पक्षी भारत में आते हैं। कुछ खास झीलों के किनारे बैठते हैं। सर्दियों के दिनों में दिवाली के बाद से आना शुरू हो जाते हैं और जैसे ही गर्मी शुरू होती है, तो वे फिर सैकड़ों किलोमीटर का रास्ता तय करके वापस जाते हैं और उनके बाद में उनके बच्चे भी उसी मार्ग से चले जाते हैं। उनको पूरा अन्दाज़ा होता है कि इधर से आये थे और इधर ही जाना है।

हमारी ज़िन्दगी की उड़ान भी पंछी की उड़ान की तरह ही है। कहीं कोई रेखायें नहीं खींची गई हैं। कहीं लिखा हुआ नहीं है कि इधर से जाना है, इधर ही पहुँचना है। नौका जिस किनारे पर लग जायेगी, हम मान लेंगे कि वहीं जाना था। लेकिन जिसने स्वयं को भगवान पर छोड़ दिया है, अपनी जीवन की नैया को उसके हवाले कर दिया है कि जिधर ले जाना चाहे ले जाए, उसकी नैया सच में सही किनारे लगती है। जिस प्रकार अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा था कि वह नहीं जानता कि उसे किधर जाना है। भगवान उसकी बुद्धि के रथ को हांकने वाले सारथी बनें और रथ को जिधर ले जाना चाहें, उधर ले जायें। इस समर्पण के कारण ही अर्जुन विजयी हुए।

लेकिन ऐसी कौन सी चीज़ें हैं जो समर्पण नहीं करने देतीं। आप जो होना चाहते हैं वह आपको नहीं होने देतीं। भगवान ने कहा कि **'अलोलुप्त्वम्'** लालच से रहित होकर जिये। लालसा का विस्तार नहीं होने दो। लालच, क्रोध या किसी चीज़ को पाने की कामना, ये जन्म के साथ ही मनुष्य में होती हैं। धीरे धीरे इनका विस्तार होता है। आदमी हमेशा यही कहता है कि अगर उसके पास इतना हो जाये, फिर उसके बाद उसे कुछ नहीं चाहिए।

वह एक सीमा रेखा खींच लेता है कि एक दो लाख तक उसके पास आ जाएं, तो वह निश्चिंत हो जाएगा। शुरू में उसने लालच की सीमा बता दी कि दो लाख चाहिए, लेकिन होता यह है कि जिस दिन दो लाख मिल जाते हैं, उस दिन ये पता लगता है कि यह रुपये तो बहुत कम हैं। तब वह कहता है कि भगवान उसे दो के बजाय अगर आठ दे दें तो उसके बाद वह फिर कुछ नहीं मांगेगा। वह कसमें खायेगा। दयालु परमात्मा जिस दिन उतना दे देंगे तो वह परमात्मा को धन्यवाद देने से पहले अपने बलबूते पर दस का चालीस बनाने की फ़िराक में पड़ जाता है। **लालच का कहीं अन्त नहीं है।** हम सब ऐसा ही करते हैं।

हम लालच करें अच्छे गुणों के लिये, प्रार्थना करने के लिये, सेवा करने के लिये, सद्भावना अपनाने के लिये। अलबत्ता इस तरह के लालच से हमको हिलाने वाले और सेवा करने से रोकने वाले प्रकट हो जाते हैं।

एक विदेशी लेखक ने अपने सन्दर्भ में लिखा है कि वह किसी धर्मस्थल में गया। उसके मन में आया था कि इतना उसने कमाया है तो धार्मिक और सामाजिक कार्यों के लिये कुछ सहयोग करना चाहिये। उस दिन दस डालर दान करने की इच्छा लेकर वह चला। फिर मन में आया कि कम से कम सौ डालर तो दान करना ही चाहिये। उसने सौ डालर दान करने का निश्चय कर जेब में डाले। धर्मस्थल पर पहुँचा तो वहाँ प्रवचन जारी था। वहाँ बैठे बैठे वह सत्संग नहीं सुन रहा था, हिसाब लगा रहा था कि पूरे सौ डालर दे या कुछ कम दे। पूरे प्रवचन के दौरान हिसाब लगाता रहा। फिर भी उसने सोच लिया कि चलो सौ नहीं तो पचास तो दान कर ही दूँ। तभी उसने बराबर वाले व्यक्ति को देखा जो उसकी ही पंक्ति में आगे बैठा हुआ था। बड़ा ही अमीर आदमी था। उसको देखा कि वह सिर्फ़ पाँच डालर दान कर रहा था। फिर उसके मन में यह विचार आया कि वह पचास क्यों दे रहा है। जब ऐसा अमीर आदमी भी केवल पाँच डालर दे रहा है। अगर उससे ज़्यादा ही देना है तो दस दे दे। इतने में उसने एक दूसरे अमीर आदमी को देखा जो सिर्फ एक डालर दे रहा था। तब वह सोचने लगा कि लोग इतना कम दे रहे हैं तो वह इतना अधिक क्यों देना चाहता है।

उसके बाद उसने भी एक डालर ही देने का विचार किया। तभी उसने अपने मित्र को सामने से आते देखा। जैसे ही किसी ने उसके सामने पैसे डालने वाला पात्र किया तो उसने एकदम इन्कार कर दिया और कहा कि वह अपना मासिक चंदा एक डालर दे चुका है। अब वह पशोपेश में पड़ गया कि दे या न दे। उस व्यक्ति ने तो अपनी बात को यहीं तक लिखा लेकिन जिस भारतीय ने उसकी यह बात लिखी वह आगे लिखता है कि उसकी जगह अगर वह होता, तो वह यह सोचता कि झोले में आठ आने डालकर उसमें से पूरा एक रुपया उठा ले। चले थे दान पुण्य करने लेकिन दूसरों को देखते देखते ऐसी मनःस्थिति में पहुँच गये कि पुण्य के बजाय पाप करने को तैयार हो गये। तात्पर्य यह कि **पुण्य कमाने का लालच हम कभी नहीं करते, अच्छाई की योजना का हम विस्तार नहीं करते,** लेकिन अगर बुराई की बात हो तो कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगते हैं। लेकिन व्यक्ति जब सद्गुणों का विस्तार करे और दुर्गुणों को रोकने की कोशिश करे तो वह दिव्यता है। **भगवान ने लालच दिया है, लोभ दिया है, तो अच्छाई के लिये करो।** अगर आप लालच पर नियंत्रण रख सकते हैं तो यह आपका हितैषी होगा। **लालच करना है तो भक्ति का लालच करो, सत्संग का लालच करो। अगर संसार के पदार्थों को इकट्ठा करने का ही लालच है तो उसे मर्यादा में रखो।** जैसे ही लालच अनियंत्रित विस्तार लेने लगे तो यह समझना चाहिये कि अब नदी किनारे तोड़कर बाहर आ रही है। नदी जब किनारे तोड़कर बाहर आती है तो बाढ़ बनती है और तबाही मचाती है।

भगवान कहते हैं **'मार्दवम्'** अर्थात् कोमलता अपनाओ। कोमल हृदय होकर रहना। वैसे एक बात तो है कि भक्ति में यह गुण अपने आप आता है। जब व्यक्ति कोमलता से परिपूर्ण हो जाता है तो उससे किसी का दुःख, किसी की परेशानी बर्दाश्त नहीं होती। इतनी कोमलता आ जाती है कि कहीं भी, किसी की भी पीड़ा को देखे तो उसे स्वयं को पीड़ा होने लगती है। दुनिया में ऐसे कई लोग हुए हैं जिन्होंने साधना और समाधि में वह चरम स्थिति प्राप्त कर ली कि वे चाहते तो शरीर छोड़कर अपनी मुक्ति प्राप्त कर लेते। लेकिन उन्होंने अपनी मुक्ति का सुख छोड़ा और दुनिया के बीच

आकर लोगों को दुःख से बचाने के लिये सेवा में लग गये। बाद में उन्हें अपमान मिला। गालियाँ, ज़हर और गोलियां मिलीं। उनकी स्थिति बिल्कुल ऐसी रही जैसे किसी अन्धे व्यक्ति को गड्ढे में गिरने से बचाने की चेष्टा में उसे उलटी दिशा में धक्का लग जाए और वह लड़खड़ाकर ज़मीन पर गिर पड़े। अंधा व्यक्ति यह नहीं जानता कि वह गड्ढे में गिरने से बच गया। वह गालियाँ देता है कि उसे धक्का देकर ज़मीन पर गिरा दिया गया।

अन्धों के ऐसे समाज में, नेत्रहीन लोगों ने नहीं, बल्कि अन्दर से जिनकी आंखें बन्द थीं उन लोगों ने, महापुरुषों को उलटा धक्का दिया। उनको चोट पहुँचाई, उनका अपमान किया। **जिन महापुरुषों ने समाज को बचाने का उपाय किया हमने उन्हें उपेक्षित किया। दुनिया के महापुरुषों ने गिरते हुए लोगों को बचाया, चोट खाते लोगों को बचाया, लेकिन लोग उन्हें पहचान नहीं पाये। परन्तु उनके जाने के बाद लोग उनकी मूर्तियाँ चौराहे पर लगा कर पूजते रहे,** उनके गीत गाते रहे, रोते रहे और पछताते रहे कि हम क्यों नहीं उनका सत्कार कर पाये।

हर महापुरुष के साथ ऐसा ही हुआ है। लोगों ने उसे सताया लेकिन फिर भी वह समाज की सेवा में लगा रहा, क्योंकि परमात्मा ने उसके हृदय में कोमलता दी थी। कितने ऐसे लोग भी हुए हैं जो कोढ़ियों के बीच रहकर सेवा करते रहे और उनको खुद को ही कोढ़ हो गया। कुछ दिनों पहले हम लोग हिमाचल की यात्रा पर थे। उन दिनों व्यास नदी में भयंकर बाढ़ आई हुई थी। हमने देखा कि एक जगह पर गाड़ियाँ रुकी हुई थीं और लोग एक फौजी आदमी का शव नदी से निकालकर रख रहे थे। वहाँ उसका कोई परिचित व्यक्ति नहीं था लेकिन जो लोग वहाँ खड़े थे, उन सबकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। हम लोगों ने जानने की कोशिश की कि बात क्या थी। मालूम हुआ कि बहुत सारे लोग इस नदी में एक साथ बह गए थे। नदी का पानी बहुत ठण्डा था। एक फौजी आदमी इधर से जा रहा था। नदी में डूबते लोगों को देखकर फौजी उफनती नदी में कूद गया और जितने लोगों को बचा सकता था उसने बचाया। पानी बर्फ़ीला और इतना ठण्डा था कि उसका अपना शरीर जकड़ने लगा था। इसके बावजूद वह जितने

लोगों तक पहुँच सकता था, अपना शरीर शिथिल होने तक उन्हें बचाता रहा। बाहर खड़े लोग आवाज देते रहे कि अब वापस आ जाओ पर वह नहीं माना।

तभी एक चट्टान पर से उसका पाँव फिसला, उसके सिर में चोट लगी और वह बह गया। उस आदमी के शरीर को देखकर लगता था कि उस शरीर में कोई दिव्य आत्मा आयी थी जो न जाने कितनों को ज़िन्दगी देकर गई। अब जिन तेरह लोगों को इस व्यक्ति ने बचाया था, वे तेरह के तेरह इस व्यक्ति के कर्ज़दार हैं। उसने सिर्फ तेरह लोगों को ही ज़िन्दगी नहीं दी बल्कि तेरह परिवारों को नई ज़िन्दगी दी। जिस जिस घर का व्यक्ति बचा उस उस घर में इस व्यक्ति ने रोशनी दे दी। उसका चेहरा देखा तो चेहरे पर कोई घबराहट नहीं, बल्कि शौर्य दिखाई दे रहा था। ज़िन्दगी तो हर किसी की एक न एक दिन पूरी हो जायेगी। पता नहीं बीमारी से सड़कर आदमी मरेगा या चारपाई पर लेटा लेटा मरेगा या बाथरूम में पाँव फिसलने से मरेगा। लेकिन ऐसा व्यक्ति, जिसकी मौत अनेक लोगों की ज़िन्दगियाँ बचाते हुए हो, उसकी मौत नहीं हुआ करती है, वह अमर हुआ करता है। स्वर्ग में भी उसका स्थान ऊँचा होता है। वह व्यक्ति व्यक्ति नहीं रह जाता, वह देवता बन जाता है।

उस व्यक्ति के हृदय में संवेदना थी तभी तो उसने इतना बड़ा कार्य किया। जिस का हृदय कोमल है, वही व्यक्ति ऐसा करेगा। यदि हृदय कठोर होगा तो व्यक्ति देखता हुआ आगे निकल जायेगा। बहुत से लोग हृदय को कठोर बनाकर चलते हैं। किसी का बच्चा दुर्घटना में चोट खाकर सड़क पर गिरा पड़ा हो, लोग तमाशा देखते हुए आगे निकल जाते हैं। हमें क्या लेना देना? हम क्यों पचड़े में पड़ें? कौन पुलिस के लफड़े में पड़ेगा? वैसे भी हमारे पास फुरसत नहीं है, हम तो जल्दी में हैं। जिसका हृदय कोमल है, वह कहेगा कि किसी की ज़िन्दगी बचा देना **पहले ज़रूरी है, बाकी बातें बाद में देखेंगे।** भगवान कहते हैं कि **जिसका हृदय कोमल है, वह कोई दिव्य इन्सान है और जिसका हृदय कठोर है वह इन्सान नहीं है, राक्षस है।** आसुरी वृत्तिवाला है। अतः हृदय को कोमल बनाओ, अपने अन्दर कोमलता लाओ।

आकर लोगों को दुःख से बचाने के लिये सेवा में लग गये। बाद में उन्हें अपमान मिला। गालियाँ, ज़हर और गोलियां मिलीं। उनकी स्थिति बिल्कुल ऐसी रही जैसे किसी अन्धे व्यक्ति को गड्ढे में गिरने से बचाने की चेष्टा में उसे उलटी दिशा में धक्का लग जाए और वह लड़खड़ाकर ज़मीन पर गिर पड़े। अंधा व्यक्ति यह नहीं जानता कि वह गड्ढे में गिरने से बच गया। वह गालियाँ देता है कि उसे धक्का देकर ज़मीन पर गिरा दिया गया।

अन्धों के ऐसे समाज में, नेत्रहीन लोगों ने नहीं, बल्कि अन्दर से जिनकी आंखें बन्द थीं उन लोगों ने, महापुरुषों को उलटा धक्का दिया। उनको चोट पहुँचाई, उनका अपमान किया। **जिन महापुरुषों ने समाज को बचाने का उपाय किया हमने उन्हें उपेक्षित किया। दुनिया के महापुरुषों ने गिरते हुए लोगों को बचाया, चोट खाते लोगों को बचाया, लेकिन लोग उन्हें पहचान नहीं पाये। परन्तु उनके जाने के बाद लोग उनकी मूर्तियाँ चौराहे पर लगा कर पूजते रहे,** उनके गीत गाते रहे, रोते रहे और पछताते रहे कि हम क्यों नहीं उनका सत्कार कर पाये।

हर महापुरुष के साथ ऐसा ही हुआ है। लोगों ने उसे सताया लेकिन फिर भी वह समाज की सेवा में लगा रहा, क्योंकि परमात्मा ने उसके हृदय में कोमलता दी थी। कितने ऐसे लोग भी हुए हैं जो कोढ़ियों के बीच रहकर सेवा करते रहे और उनको खुद को ही कोढ़ हो गया। कुछ दिनों पहले हम लोग हिमाचल की यात्रा पर थे। उन दिनों व्यास नदी में भयंकर बाढ़ आई हुई थी। हमने देखा कि एक जगह पर गाड़ियाँ रुकी हुई थीं और लोग एक फौजी आदमी का शव नदी से निकालकर रख रहे थे। वहाँ उसका कोई परिचित व्यक्ति नहीं था लेकिन जो लोग वहाँ खड़े थे, उन सबकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। हम लोगों ने जानने की कोशिश की कि बात क्या थी। मालूम हुआ कि बहुत सारे लोग इस नदी में एक साथ बह गए थे। नदी का पानी बहुत ठण्डा था। एक फौजी आदमी इधर से जा रहा था। नदी में डूबते लोगों को देखकर फौजी उफनती नदी में कूद गया और जितने लोगों को बचा सकता था उसने बचाया। पानी बर्फ़ीला और इतना ठण्डा था कि उसका अपना शरीर जकड़ने लगा था। इसके बावजूद वह जितने

लोगों तक पहुँच सकता था, अपना शरीर शिथिल होने तक उन्हें बचाता रहा। बाहर खड़े लोग आवाज देते रहे कि अब वापस आ जाओ पर वह नहीं माना।

तभी एक चट्टान पर से उसका पाँव फिसला, उसके सिर में चोट लगी और वह बह गया। उस आदमी के शरीर को देखकर लगता था कि उस शरीर में कोई दिव्य आत्मा आयी थी जो न जाने कितनों को ज़िन्दगी देकर गई। अब जिन तेरह लोगों को इस व्यक्ति ने बचाया था, वे तेरह के तेरह इस व्यक्ति के कर्ज़दार हैं। उसने सिर्फ तेरह लोगों को ही ज़िन्दगी नहीं दी बल्कि तेरह परिवारों को नई ज़िन्दगी दी। जिस जिस घर का व्यक्ति बचा उस उस घर में इस व्यक्ति ने रोशनी दे दी। उसका चेहरा देखा तो चेहरे पर कोई घबराहट नहीं, बल्कि शौर्य दिखाई दे रहा था। ज़िन्दगी तो हर किसी की एक न एक दिन पूरी हो जायेगी। पता नहीं बीमारी से सड़कर आदमी मरेगा या चारपाई पर लेटा लेटा मरेगा या बाथरूम में पाँव फिसलने से मरेगा। लेकिन ऐसा व्यक्ति, जिसकी मौत अनेक लोगों की ज़िन्दगियाँ बचाते हुए हो, उसकी मौत नहीं हुआ करती है, वह अमर हुआ करता है। स्वर्ग में भी उसका स्थान ऊँचा होता है। वह व्यक्ति व्यक्ति नहीं रह जाता, वह देवता बन जाता है।

उस व्यक्ति के हृदय में संवेदना थी तभी तो उसने इतना बड़ा कार्य किया। जिस का हृदय कोमल है, वही व्यक्ति ऐसा करेगा। यदि हृदय कठोर होगा तो व्यक्ति देखता हुआ आगे निकल जायेगा। बहुत से लोग हृदय को कठोर बनाकर चलते हैं। किसी का बच्चा दुर्घटना में चोट खाकर सड़क पर गिरा पड़ा हो, लोग तमाशा देखते हुए आगे निकल जाते हैं। हमें क्या लेना देना? हम क्यों पचड़े में पड़ें? कौन पुलिस के लफड़े में पड़ेगा? वैसे भी हमारे पास फुरसत नहीं है, हम तो जल्दी में हैं। जिसका हृदय कोमल है, वह कहेगा कि किसी की ज़िन्दगी बचा देना **पहले ज़रूरी है, बाकी बातें बाद में देखेंगे।** भगवान कहते हैं कि **जिसका हृदय कोमल है, वह कोई दिव्य इन्सान है और जिसका हृदय कठोर है वह इन्सान नहीं है, राक्षस है।** आसुरी वृत्तिवाला है। अतः हृदय को कोमल बनाओ, अपने अन्दर कोमलता लाओ।

ज्यों ज्यों हम बड़े होते हैं त्यों त्यों सांसारिकता की परतें हमारे अन्तःकरण पर पड़ने लगती है और हमारी संवेदनाएं न जाने कहां चली जाती हैं। हम इतने कठोर हो जाते हैं कि फिर हमें किसी पर कोई तरस नहीं आता। इसलिए भगवान ने कहा **मार्दवम्,** जिसके अन्दर मृदुता आ गयी, कोमलता आ गयी, वह दिव्य हो जाता है। वह व्यक्ति दिव्य गुणों से युक्त हो जाता है। **पतञ्जलि ऋषि ने चित्त को कोमल करने के लिये कई साधनों का वर्णन किया है। सदा प्रसन्न रहना, दूसरे की तरक्की को देखकर प्रसन्न होना, दुश्मन का वैभव देखकर के भी प्रसन्न रहना, जलना नहीं, दुःखी नहीं होना। दुःखी पर करुणा करना, मित्रता का दायरा बढ़ाना, दुष्ट लोगों के प्रति उदासीन रहना, पाप और पुण्य का विवेक रखना, सुख दुःख में समानता अपनाना। तुम्हारा चित्त ऐसा कोमल हो जाये, तो यह समझो कि तुम्हारे हृदय में परमात्मा का आसन तैयार हो गया, जिस पर भगवान विराजमान होंगे। साधना करने बैठोगे तो साधना खरी उतरेगी।**

श्लोक में आगे एक शब्द है 'ह्रीर'। ह्रीर का अर्थ है लज्जा। छोटे बच्चों में शर्म व लज्जा बहुत होती है। बड़े हो जायें तो यह गुम हो जाती है। एक होती है लोक लज्जा, लोक लाज। समाज क्या कहेगा? समाज की लज्जा से, समाज की शर्म से लोग पाप करने से बचते हैं। कहीं जेल हो गयीं तो दुनिया में बड़ी बदनामी होगी। लोग क्या कहेंगे? पूरी बिरादरी में नाक नीची हो जाएगी। लोक लाज व्यक्ति को गलत काम करने से रोकती है। लज्जा एक ब्रेक है। लाज मनुष्य में दिव्यता उत्पन्न करती है। इसे जाने मत दो। इसीलिए यह कहना गाली बन गई है कि किसी के अन्दर लज्जा नहीं है, वह लज्जाहीन है, बेशर्म है। **हमें धर्म की लाज, लोक की लाज और परिवार की लाज तीनों का निर्वाहन करना पड़ता है। इसके अलावा एक लाज और होती है, आत्मा की लाज।** बुरा करने पर जब व्यक्ति की अपनी आत्मा उसे मना न करे, आत्मा को शर्म नहीं आए तो समझिये कि आदमी की मौत हो गयी। हमारे समाज में हया को गहना माना गया है। लाज आभूषण है, इसकी सुरक्षा कीजिये।

व्यक्ति की आंखों में लज्जा हो, हृदय में कोमलता हो, लालच बिल्कुल नहीं हो, प्राणियों के प्रति दया भाव हो, निन्दा चुगली करने की आदत न हो, मन में शान्ति हो, जीवन में त्याग की भावना हो, क्रोध और आवेश से बचकर रहता हो, सत्यता को अपनाया हो, हिंसक प्रवृत्ति न हो, ऐसी विशेषतायें जिस किसी में भी हों, उससे बढ़कर सुन्दर व्यक्ति दुनिया में कौन होगा? उससे बढ़कर अच्छा कौन होगा? भगवान ऐसा ही आपको देखना चाहते हैं।

अगला शब्द है '**चापलम्**'। चपलता से युक्त और '**अचापलम्**' चपलता से रहित हो जाना। चपलता अर्थात् चंचलता। एक क्षण में कुछ और दूसरे क्षण में कुछ और। **क्षणे रुष्टाः क्षणे तुष्टाः रुष्टाः तुष्टाः क्षणे क्षणे** अर्थात् एक क्षण में नाराज़ हो जाना और एक क्षण में खुश हो जाना, फिर नाराज़ हो जाना और फिर खुश हो जाना। कभी कुछ बोलना और कभी कुछ। कभी इधर की बात कभी उधर की बात। ऐसे व्यक्ति का व्यवहार बड़ा डरावना और दुःखदायी होता है। इसको चपलता कहा जाता है। चपलता वाणी की भी होती है, चपलता सम्बन्धों की भी होती है। वाणी की चपलता भी गड़बड़ करती है। थोड़ी बहुत नहीं, बहुत ज़्यादा गड़बड़ करती है।

परमात्मा भी आपकी पात्रता को तोलते हैं। मोती होता है न? भगवान ने मोती उत्पन्न किया, लेकिन पहले उसकी सुरक्षा के लिये बहुत सुन्दर सीप दिया। पात्र दिया कि पहले यह पात्र आये, तब मोती आये। सीप का पात्र बना। एक ऊपर वाला और एक नीचे वाला पात्र। उन दोनों को जोड़ दिया जाये तो सीप बनता है। सीप लाखों होते हैं लेकिन मोती सबमें नहीं बनता। लाखों सीपों में से एक दो में ही मोती आयेगा। अतः पहले पात्रता, फिर मोती; ऐसे ही पहले आपकी योग्यता और फिर आपके अन्दर परमात्मा की कृपा का मोती। भगवान कहते हैं कि पहले अपनी पात्रता तैयार करो।

संत ज्ञानेश्वर के जीवन की एक घटना है। पात्रता के सन्दर्भ में ही वह उपदेश कर रहे थे। संत ज्ञानेश्वर ने कहा कि परमात्मा तो कृपा बरसाने के लिये तैयार ही है। पहले तुम उस लायक बनो तो सही। तुम्हारे खुद के पात्र में कमी है। दुनिया में लाखों लोग हैं, लेकिन जो सुपात्र हो, प्रभु उसी

पर कृपा करते हैं। यह सुनकर एक महिला उठी और बोली, "यह भगवान का बड़प्पन तो नहीं हुआ। यह तो सीधा सीधा पक्षपात हो गया कि किसी को दे, किसी को न दे। लाखों में से किसी एक को चुनेगा, उसको देगा। महाराज, आपका उपदेश हमें तो समझ में नहीं आया। भगवान को सबको एक जैसा समझकर सबको बराबर देना चाहिये। पात्रता देखने की क्या ज़रूरत है? सबको दे दें, तो अच्छा हैं।" संत ज्ञानेश्वर ने कहा "इस समय मैं समझाऊँगा तो तर्क वितर्क होते चले जायेंगे। उत्तर तो मैं दूंगा, पर समाधान नहीं दे पाऊँगा। उत्तर देना बहुत आसान है। कोई भी आदमी कोई भी सवाल करे और दूसरा आदमी कुछ भी जवाब देने लग जाये तो वह उत्तर हो गया, लेकिन समाधान नहीं हुआ। समाधान वह होता है जिसे हृदय स्वीकार कर ले और झुक जाये।" दिमाग तो आप किसी का भी हिला सकते हैं, लेकिन हृदय हिल जाये, तब बात बनती है। उसे कहते हैं समाधान जहाँ दिल और दिमाग दोनों ही झुक जायें। संत ज्ञानेश्वर ने कहा "आपको अपने प्रश्न के समाधान के लिए थोड़ा इन्तजार करना पड़ेगा।"

एक दिन सांझ का समय था। संत ज्ञानेश्वर ने एक भिखारी को बुलाया और कहा, "सामने उस मोहल्ले में उधर जो घर है, वहाँ जाओ। वहाँ जाकर दरवाजा खटखटाना और जो महिला उस घर में रहती है उससे कहना कि वह अपने कीमती गहने तुम्हें दे दे, जो तुम चार दिन के बाद वापस लौटा दोगे। उससे गहने लेकर मेरे पास आओ।" भिखारी गया और कहने लगा, "बहन, आपसे कुछ गहने चाहिये। आपके जो भी नये से नये कीमती गहने हैं, वह ज़रा मुझे दे दो, मैं चार दिन के बाद आपके गहने लौटा दूंगा। मुझे तो तुम जानती ही हो, मैं रोज़ यहाँ इसी गली में भीख मांगता रहता हूँ। मेरा घर भी इधर ही है।" उस महिला ने घूर कर उसको नीचे से ऊपर तक देखा और कहा, "तेरी हिम्मत कैसे पड़ी यहाँ आने की? गहने तो क्या, मैं तुझे भीख भी नहीं दे सकती। भाग यहाँ से।" डाँटकर उसे भगा दिया।

एक घण्टे के बाद संत ज्ञानेश्वर उस महिला के घर के सामने से गुज़रे। उस महिला ने संत जी को देखा तो हाथ जोड़े और कहा, "धन्य भाग्य जो आप इधर से गुज़रे हैं, इधर पधारे हैं। मेरे लिये कोई सेवा हो तो

बताइये।" संत ज्ञानेश्वर ने कहा, "सेवा यही है कि अपने गहने दे दो, दो चार दस दिन के लिये।" उसने कहा, "महाराज, गहने की तो क्या बात, पूरा घर भी आपके लिए लुटाया जा सकता है। आप हुक्म तो कीजिये। आपकी कृपा हुई जो पहली बार आपने कोई चीज़ मांगी।" महिला ने तुरन्त सब गहने लाकर संत ज्ञानेश्वर की झोली में डाल दिये और बोली, "आप यह गहने सम्भालिए।" उन्होंने कहा, "अगर दस दिन में मैं नहीं दे पाया तो महीना लग सकता है।" इस पर वह बोली, "महाराज, लौटाने की ज़रूरत ही नहीं है। यह सब आपका ही तो है। आप ले जाइये।"

संत ज्ञानेश्वर वहीं रुक गये और कहने लगे, "बहन, एक बात बता। एक घण्टा पहले एक भिखारी गहने मांगने आया था तो तुमने उसको गहने दिये या नहीं?" उस महिला ने कहा, "उस आदमी को गहने देने का क्या मतलब? वह आदमी इस लायक नहीं था कि उसको गहने दिये जा सकें? कीमती चीज़ें किसी को ऐसे ही थोड़े पकड़ा दी जाती हैं।" संत ज्ञानेश्वर हँसे और बोले, "तुमने भी तो पात्र ही देखा न? वह पात्र नहीं था तो तुमने उसे गहने नहीं दिये। उचित पात्र देख लिया तो उसको तुम सारे गहने देने को तैयार हो गईं और सारी ज़िन्दगी के लिए देने को तैयार हो गईं। जब तुम एक साधारण सी चीज़ के लिए इतना विचार करती हो तो परमात्मा तो असाधारण कृपा करना चाहता है। फिर वह क्यों नहीं विचार करेगा? परमात्मा को भी विचार करना पड़ेगा कि यह पात्र है भी या नहीं। माँ बाप भी देखा करते हैं कि उनका बच्चा लायक हो गया, कमाने लायक हो गया, सम्पत्ति की रक्षा कर लेगा, तभी उसे अपना सब कुछ देते हैं। यह देख लें कि बच्चा मन्द बुद्धि है, चंचल है, सब काम बिगाड़ देगा, कोई भी उसे ठग कर ले जायेगा, तो माँ बाप उसे देंगे भी तो एक या दो रुपया और नौकर को भी उसके साथ कर देंगे कि तू साथ साथ जाना, कहीं इधर उधर गिरा न दे। जब माँ बाप भी बच्चे की पात्रता को देखने के लिए कसौटी पर कसते हैं और उसके बाद जितना पात्र होता है उतना ही देते हैं तो फिर परम पिता परमात्मा क्या यह नहीं देखेंगे कि कोई पात्र है या नहीं? देखकर ही वह अपनी कृपा बरसायेंगे न? अगर सीप का सम्पुट तैयार हो और कोई सीप

मोती संभालने लायक हो, तो वहीं पर ही तो मोती आयेगा।"

इसलिये भगवान यह कहते हैं कि पहले तुम अपनी पात्रता तैयार करो तब मैं तुम्हारे अंदर अपनी दिव्यता को, अपनी कृपा को, अपने अमृत को उड़ेलने के लिए तैयार हूँ। तुम्हें सब कुछ दे सकता हूँ लेकिन तुम उसके लायक बनो तो सही। उन सारे ज़रूरी सद्गुणों का यहां वर्णन किया जा रहा है, जिन्हें अपनाकर हमारे अन्दर भी एक महापुरुष जागृत हो सकता है। हमारे अन्दर भी दिव्यता जाग सकती है। हमारे अन्दर भी देवताओं का रूप आ सकता है। पात्रता में एक गुण और बताया है। **अपनी चंचलता को, छोटेपन को, हल्केपन को, अपनी क्षुद्रता को मिटाओ। छोटे मत बनो।** हर बात पर घबरा जाना, हर बात पर चीखना चिल्लाना शुरू कर देना, छोटी सी किसी बात पर निन्दा व चुगली पर उतर आना, छोटी सी कोई बात हो गई तो जिसे अभी अभी सर आँखों पर बैठा रखा था, एक सेकेण्ड के बाद ही उसके प्रति वैर की भाषा बोलने लगना छोटापन है। अपने अन्दर स्थिरता रखो। अगर स्थिरता बना कर रखोगे तो निश्चित है कि तुममें पात्रता आएगी।

आप मिट्टी का घड़ा भी खरीदते हैं तो उसे भी ठोक बजाकर देखते हैं। उसी तरह भगवान भी आपको ठोक बजाकर देखना चाहते हैं कि क्या पात्र टिकाऊ है। जब देख लेते हैं कि सच में लायक है, तब उसमें अपनी करुणा का जल भरने के लिये तैयार होते हैं। अकेले बैठ कर विचार करें कि आपके अन्दर क्या है, क्या नहीं है? कौन सा गुण है, कौन सा दुर्गुण है? किसको सम्भालना है, किसको बाहर निकालना है? एकान्त में बैठकर इस पर विचार करना शुरू कीजिए। विचार करते करते फिर थोड़ी साधना में उतरिए। मन के अन्दर दिव्यता लाने के लिए मन पर नियन्त्रण लगाना शुरू कीजिए। फिर उसे थोड़ा थोड़ा उस दिशा में ले जाना शुरू कीजिए जिधर आप ले जाना चाहते हैं।

एक काम और करें। **यदि आप कोई अच्छा काम करके आएं तो अपने आपको शाबाशी दें** कि तुमने बहुत अच्छा काम किया। तुम सच में लायक हो। पहले से अच्छे बने हो, पहले से ऊपर उठे हो। अच्छा बोलने लगे हो, अच्छे लोगों के बीच में बैठने लगे हो। अपने हाथ से अच्छे कर्म

करने लगे हो। इस बात के लिये अपने आपको सराहिये। प्रशंसा के दो शब्द किसी के द्वारा कहे जायें या फिर आप स्वयं ही अपने आपसे कहें। यह हाथ देने के लिये उठते रहें और इन हाथों से किसी का भला होता रहे। इसी तरह के विचार अपने अन्दर रखकर अपने को शाबाशी दें। परिणाम यह होगा कि अपने आपको सुझाव देते देते आप शक्तिवान बन जाएंगे। **जहां अपने को फटकारना चाहिये वहां आप अपने को फ़टकारिये भी।** थोड़ा थोड़ा प्रयास कीजिये। अच्छे काम के लिए अपने को सहारा देना है और गलत काम के लिए चोट मारनी है। कुम्हार जिस तरह से घड़े को तैयार करता है, उसी तरह से आप अपने आपको तैयार कीजिये।

जो भी काम करो, उसका पूरा पूरा स्वाद लो। यहां तक कि भोजन करते हो तो **भोजन करने में भी जल्दबाज़ी नहीं करो, उसका पूरा पूरा स्वाद लो।** प्रकृति में यही विशेषता है। बच्चों को आप कुछ खास तरह की चीज़ खाने के लिये दीजिये तो वे उसे मुँह में डालेंगे और पूरी तरह से उसका रस लेंगे। उसको जीभ से पूरी तरह चूसेंगे। आप लोग भोजन करते समय बहुत जल्दी जल्दी निगलते जाते हैं, जैसे किसी प्रतियोगिता में भाग ले रहे हों। एक बात और; हम इतने समझदार हो गए हैं कि एक साथ कई कई काम करते हैं। हाथ में टेलीविज़न का रिमोट है, उसे दबाते जा रहे हैं, अखबार भी सामने रखा हुआ है, भोजन भी सामने है। अखबार भी पढ़ते जा रहे हैं, साथ ही रोटी के साथ सब्ज़ी लगाई जा रही है। तरह तरह के विचार भी आ रहे हैं। कोई फोन आ जाये तो फोन भी कान से लग गया। सब चीज़ें साथ साथ चल रही हैं। पूरी तरह से बिखरा हुआ व्यक्तित्व। न भोजन की तरफ ध्यान है, न खुद के आनन्द की तरफ। एक समय में एक ही काम को कीजिये तो बहुत आनन्द आयेगा। भोजन करने बैठें तो उसमें स्वयं को डुबाइये, उसका पूरा पूरा स्वाद लीजिये। आप कोई चित्र बनाने बैठें तो चित्र बनाने में ही डूब जाइये। **जिस चीज़ में आप पूरी तरह से रस ले सकते हैं, वह चीज़ आपको आनन्द देने लगेगी। अनमने ढंग से किसी भी काम को मत कीजिये।**

आयुर्वेद में एक नियम है तन्मय होकर खाओ। सब काम तन्मय होकर करो। हम भोजन करें या मनोरंजन करने जायें, सबमें आधे अधूरे होते हैं।

सत्संग में भी बैठेंगे तो आधे अधूरे। आधा यहाँ का ध्यान, आधा वहाँ का जहाँ सत्संग के बाद जाना है। भगवान श्री कृष्ण ने आपके व्यक्तित्व को उभारने के लिए, जो दिव्य गुण बताए हैं, वह एक बहुत सुन्दर सीढ़ी है। इस पर पाँव रखकर आप लगातार ऊपर चढ़ते जाइये। एक दिन वहाँ तक पहुँच जायेंगे जहाँ हमें भगवान पहुँचाना चाहते हैं।

कुछ मनुष्य संसार में दिव्यता को लेकर प्रकट होते हैं और कुछ की दिव्यताएँ अप्रकट होती हैं, लेकिन उनमें भी उनके प्रकट होने की सम्भावनाएँ रहती हैं। जैसे हर वस्तु एवं पदार्थ में अग्नि तत्त्व विद्यमान है, उसी प्रकार हमारे अन्दर दिव्यता की अनेक सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। जिस प्रकार अग्नि को प्रकट करने के लिये घर्षण ज़रूरी है, उसी तरह हम सतत प्रयास से अपने अन्दर की दिव्यता को जागृत कर सकते हैं। इसके लिए जहाँ प्रयास की आवश्यकता है, वहाँ युक्ति की भी आवश्यकता है। **भक्ति, शक्ति, युक्ति और मुक्ति द्वारा हम अपनी दिव्यता को प्रकट कर सकते हैं। चारों का सामंजस्य आवश्यक है। भक्ति के लिए आप तैयार हों, लेकिन भक्ति करने की शक्ति न हो, शक्ति प्राप्त करने की युक्ति न आती हो और युक्ति जान कर भी संपूर्ण प्रक्रिया में मुक्ति की कामना न हो, तो अधूरापन रह जाएगा।** अपनी दिव्यता को प्रकट करने के लिये पूर्ण रूप से सजग होना पड़ेगा। अपने आप को लगातार कुरेदिये, अपनी सम्भावनाओं को टटोलिये। प्रतिभाएँ कम या ज़्यादा, हर व्यक्ति में होती हैं। यदि प्रयत्नशील हों तो हम उन प्रतिभाओं को प्रकट कर सकते हैं।

इसलिये भगवान ने कहा :

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।।३।।

हे अर्जुन! ये दैवी सम्पदाएं मनुष्य अपने साथ लेकर उत्पन्न होता है। ये २६ गुण, जिनको दैवी सम्पदा कहा गया है, इनका वर्णन मैं तुम्हारे सामने कर रहा हूं। **तेजः** का अर्थ है तेजस्विता। कुछ लोग तेजस्विता सहित संसार में आते हैं। वे भीड़ में अलग दिखाई देते हैं। उनकी तेजस्विता कठिनाइयों में ज्यादा प्रकट होती है। वे सितारे ज़्यादा चमकते हैं जिन सितारों के पीछे

अंधेरा अधिक होता है। जिन्होंने गर्दिश देखी हो, कठिनाइयाँ झेली हों, समस्याओं के बीच से निकले हों, वही जीवन में सितारों की तरह चमकते हैं, क्योंकि कठिनाइयाँ व्यक्ति को उभारती हैं।

उस जल में रवानी रहती है जो पहाड़ों के बीच से निकलता है और चट्टानों से टकराता हुआ बहता है, लेकिन जैसे ही सुविधा मिल गई, मैदान सीधा व सरल मिल गया, तो फिर पानी की रवानी, उसकी तीव्रता, तेजस्विता धीमी पड़ जाती है। परन्तु यह नहीं माना जाना चाहिये कि यदि कठिनाइयाँ न आएं, तो फिर व्यक्ति की तेजस्विता नहीं उभर पाती। कठिनाइयों में वह और अधिक उभरती है। कभी भी अपनी परिस्थितियों का रोना नहीं रोना चाहिये। **भाग्य आपको अनुकूल या प्रतिकूल दोनों तरह की परिस्थितियाँ देता है। सौभाग्य है तो अनुकूल परिस्थितियाँ मिलीं। सारी चीज़ें, सुविधाएँ आपके सामने होंगी। भाग्य ठीक नहीं है, तो सब कुछ विपरीत दिखाई देगा।** पानी के बहाव के साथ नौका कोई भी बहा लेगा, तैरना हो तो आसानी से तैर लेगा लेकिन कोई व्यक्ति पानी की तेज धारा के बीच अपनी नौका को उलटी दिशा में ले जाए तो उसे दस गुना शक्ति लगानी पड़ती है। जो व्यक्ति कठिनाइयों को झेलने को तैयार हो, जान बूझकर कठिनाइयाँ मोल ले, वह अलग ही तरह का आदमी होता है। ऐसे लोग ही तेजस्वी कहलाते हैं।

वेदों में जो प्रार्थनाएँ हैं, उनको देखिये, **"तेजोऽसि तेजो मयि देहि"**, हे परमात्मन्! तू तेजपुंज है, तुझसे बढ़कर दुनिया में तेजस्वी कोई नहीं है, इसलिये मैं भी तेरे तेज को धारण करना चाहता हूँ। हे भगवान मेरे अन्दर भी वही आग सुलगा दे, जो तेरे अन्दर है। वही अग्नि, वही प्रकाश, वही तेज, वही तेजस्विता तुझसे मांगने के लिये मैं आया हूँ। शिष्य भी गुरु के पास आकर यही मांगता है कि "मैं आपके हवन कुण्ड की वह अग्नि चाहता हूँ, जो मेरे अन्दर भी प्रकाश भर दे। मुझे भी उसी तरह से सुलगा दे, जैसे आप सुलग रहे हैं, जैसे आप जगमगा रहे हैं।" लेकिन उसके लिये बड़ा प्रयास करना पड़ता है। अगर कहीं तुम्हारी अग्नि दब गई हो, चिंगारी पर राख आ गई हो तो उसे फिर से कुरेदो। रामधारी सिंह दिनकर ने शहीदों के लिये

कहा था, "हे वीरो ! तुमने दिया देश को जीवन। देश तुम्हें क्या देगा ?" देश के लिये जीवन देने वाले हे वीरों ! यह देश तुम्हें क्या दे सकता है ? यह अपनी आग जलाने के लिए तुम्हारा नाम लेगा। तुम्हारा नाम लेकर अपनी आग को प्रज्ज्वलित कर लेगा। तुम्हारा नाम लेने से आग जलती है, अन्दर तेजस्विता आती है।

लोगों को उन वीरों के तेजस्वी गीत गाने चाहिए, जो लोग राष्ट्र के लिये लोग कुछ कर गये। उनके लिये ये पक्तियाँ गाएं–

जिनकी चढ़ती हुई जवानी, खोज रही अपनी कुरबानी,
जलन जिनकी एक अभिलाषा, मरण जिनका एक त्यौहार।
नमन उन्हें मेरा शत बार।।

फिर उनको बारम्बार प्रणाम करें। फिर कहें कि उनको याद करो,

गड़ गये जो नींव में, उन पत्थरों को याद कर लो,
जो नहीं देते हैं दिखाई, उन बहादुरों को याद कर लो।

तेजस्विता आपके अन्दर है, उसे जगाने की आवश्यकता है। राष्ट्र के लिये भी, विश्व के मानवमात्र के लिये भी। अन्यथा एक चक्रव्यूह है, जिसमें आप पड़े हुए हैं। रोज़ वही रोज़ी रोटी, वही घर परिवार, वही मोह ममता के नाते। अपने अन्दर की तेजस्विता को जगाओगे तो मार्ग में तुम्हारे बन्धन या बाधा नहीं आयेगी।

व्यक्ति को उनका सान्निध्य पाना चाहिये, जिनके सान्निध्य में बैठने के बाद जीवन में क्रांति आती है। वह क्रांति आपको पूर्ण रूप से अपना रूपान्तरण करने के लिये प्रेरित करती है। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को जब पहली बार देखा था तो चन्द्रगुप्त धनुष बाण हाथ में लेकर निशाना लगा रहा था। वह उस समय छोटा बालक था। रोज बाण छोड़ता था, पर लक्ष्य तक कोई भी बाण नहीं पहुँचता था।

चाणक्य ने बच्चे से पूछा, "किसी से सीखा है?"

उसने कहा, "मैंने किसी से कुछ नहीं सीखा, लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि यह तीर लक्ष्य तक पहुँचता कैसे है।"

चाणक्य ने कहा, "एकाग्रता धारण करना। धनुष की डोरी को कान तक खींचना और तीर छोड़ते समय सांस रोक लेना। जो लक्ष्य है, बस वही दिखाई देना चाहिये।"

कहा था, "हे वीरो ! तुमने दिया देश को जीवन। देश तुम्हें क्या देगा ?" देश के लिये जीवन देने वाले हे वीरों ! यह देश तुम्हें क्या दे सकता है ? यह अपनी आग जलाने के लिए तुम्हारा नाम लेगा। तुम्हारा नाम लेकर अपनी आग को प्रज्ज्वलित कर लेगा। तुम्हारा नाम लेने से आग जलती है, अन्दर तेजस्विता आती है।

लोगों को उन वीरों के तेजस्वी गीत गाने चाहिए, जो लोग राष्ट्र के लिये लोग कुछ कर गये। उनके लिये ये पक्तियाँ गाएं–

जिनकी चढ़ती हुई जवानी, खोज रही अपनी कुरबानी,
जलन जिनकी एक अभिलाषा, मरण जिनका एक त्यौहार।
नमन उन्हें मेरा शत बार।।

फिर उनको बारम्बार प्रणाम करें। फिर कहें कि उनको याद करो,

गड़ गये जो नींव में, उन पत्थरों को याद कर लो,
जो नहीं देते हैं दिखाई, उन बहादुरों को याद कर लो।

तेजस्विता आपके अन्दर है, उसे जगाने की आवश्यकता है। राष्ट्र के लिये भी, विश्व के मानवमात्र के लिये भी। अन्यथा एक चक्रव्यूह है, जिसमें आप पड़े हुए हैं। रोज़ वही रोज़ी रोटी, वही घर परिवार, वही मोह ममता के नाते। अपने अन्दर की तेजस्विता को जगाओगे तो मार्ग में तुम्हारे बन्धन या बाधा नहीं आयेगी।

व्यक्ति को उनका सान्निध्य पाना चाहिये, जिनके सान्निध्य में बैठने के बाद जीवन में क्रांति आती है। वह क्रांति आपको पूर्ण रूप से अपना रूपान्तरण करने के लिये प्रेरित करती है। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को जब पहली बार देखा था तो चन्द्रगुप्त धनुष बाण हाथ में लेकर निशाना लगा रहा था। वह उस समय छोटा बालक था। रोज बाण छोड़ता था, पर लक्ष्य तक कोई भी बाण नहीं पहुँचता था।

चाणक्य ने बच्चे से पूछा, "किसी से सीखा है?"

उसने कहा, "मैंने किसी से कुछ नहीं सीखा, लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि यह तीर लक्ष्य तक पहुँचता कैसे है।"

चाणक्य ने कहा, "एकाग्रता धारण करना। धनुष की डोरी को कान तक खींचना और तीर छोड़ते समय सांस रोक लेना। जो लक्ष्य है, बस वही दिखाई देना चाहिये।"

बच्चे ने उसी तरह से किया। इस बार तीर लक्ष्य पर लगा। तब बालक बोला, "आप हैं कौन? कोई राजा या कोई भगवान? मैं तो कई दिनों से कोशिश कर रहा था, पर बात नहीं बन पा रही थी।"

चाणक्य ने कहा, "न हम राजा हैं, न हम भगवान, लेकिन एक बात हमें आती है। किसी को राजा बनाना हो, तो हम चुटकियों में उसे राजा बना देते हैं।"

बालक ने पूछा, "आप गुरु हैं क्या?" चाणक्य मुस्कुराये। बच्चे ने कहा कि वह उनके साथ चलना चाहता है और उसने चाणक्य की उंगुली थाम ली। ऐसी उंगुली पकड़ी कि चन्द्रगुप्त सम्राट बनकर ही रहा।

चन्द्रगुप्त में जो तेजस्विता थी उसको दिशा मिल गई, क्योंकि हाथ पकड़ने वाला आ गया। आपके अन्दर की तेजस्विता का कोई हाथ पकड़ ले, फिर आप आप नहीं रहेंगे, कुछ और हो जाएंगे। विश्वास नहीं होता लोगों को कि यह व्यक्ति क्या से क्या हो गया, कहाँ से कहाँ पहुँच गया। **"मिले ऐसा कोई पीर फकीर, पहुँचा दे भव नदिया के तीर।"** कोई ऐसा मिल जाए, जो संसार से पार होना सिखा दे। ज़्यादातर हम सारा गुरु पर ही छोड़ देते हैं कि बस अब वही करेगा। **गुरु को तो सिर्फ़ एक चिंगारी लगानी होती है। किन्तु उससे पहले यदि ईंधन तैयार नहीं होगा, तो चिंगारी बेकार जाएगी। तेजस्वी होने के साथ साथ हृदय की विशालता भी ज़रूरी है। क्षमा करने का गुण, दूसरे को माफ़ कर देने का गुण भी व्यक्ति में होना चाहिए।** उससे भी बड़ी बात तब होती है, क्षमा पूरी तब होती है, जब किसी व्यक्ति के दुर्गुण के प्रति उपेक्षा हो परन्तु स्वयं उसके प्रति सहानुभूति। **हृदय में उदारता, दुर्गुण के प्रति उपेक्षा, व्यक्ति के प्रति करुणा और सहानुभूति सारी बातें जुड़ जाएं, फिर क्षमा बनती है।** करुणा और सहानुभूति लेकर फटकारना भी पड़े, तो उसे कोने में बुलाकर कान में कहना चाहिये। सहानुभूति के दो शब्द बहुत बड़ा काम करेंगे। क्षमा करने के गुण से व्यक्ति के अन्दर बड़प्पन आता है।

जैनियों में एक परम्परा है। एक ऐसा पर्व मनाया जाता है, जिसे क्षमा पर्व कहते हैं। इसमें दो बातें साथ साथ चलती हैं। जिसने अपराध किया,

जिसने अपकार किया, उसे क्षमा करना और उनसे क्षमा मांगना जिन्हें हमारी गलतियों के कारण कष्ट हुअसा। आपने किसी को सताया हो तो उनके आगे विनम्रता से क्षमा मांगो। जैनियों ने इसको एक त्योहार बना दिया है। क्षमा पर्व में क्षमा मांगो और क्षमा करो। लेकिन वहाँ भी अगर व्यक्ति ने यह कह दिया कि वह सबको क्षमा कर सकता है लेकिन उस एक को नहीं या किसी की सब गलतियाँ माफ कर सकता है लेकिन एक गलती नहीं, तो वहाँ क्षमा पूरी नहीं होती। क्षमा करने का मतलब है सब गिला शिकवा खत्म।

हिन्दू समाज में रंगों के त्यौहार होली के दिन लोगों को यह कहना होता है कि पहली वाली को भुलाओ, नए रंग भरो। फागुन का महीना है, प्रकृति में नये रंग आये हैं, पहली सारी बातों को भुलाकर नए रंग में अपने आप को रंगना है। वहाँ फिर अतीत की पीड़ा अपने साथ नहीं रखनी होती। भूतकाल में किसने क्या कहा? किसके साथ क्या हुआ? सबको भुलाओ। ऐसा होता है हमारा यह होली का त्यौहार। हर व्यक्ति रंग लगाकर एक दूसरे का चेहरा बिगाड़ देता है। शक्ल बदल गई, गले मिल गये और हँसकर बोल भी दिया कि होली है। लेकिन मन में यह मानना होता है कि जो हो ली, सो हो ली। जो बीत गया, सो बीत गया। अब उसे याद नहीं करना। यह एक तरह से क्षमा करके आगे की सुध लेकर चलना ही है।

एक त्यौहार ज़िन्दगी में ऐसा भी होना चाहिये, (रोज़ ही हो सके तो बहुत अच्छा होगा) जिस दिन प्रत्येक अपना लेखा जोखा प्रस्तुत करे। जन्मदिन के दिन आप अपने भगवान को पूरा हिसाब किताब दें। अगले वर्ष में क्या करेंगे, इसकी योजना बनाएं। साथ ही उस दिन सभी को क्षमा कर दें। प्रत्येक जन्मदिन एक नया दिन बन जाए। भगवान कृष्ण ने क्षमा गुण पर बड़ा बल दिया है। उन्होंने अपनी लीला का वर्णन करते हुए कहा है कि जब शरीर छोड़ने की बारी आई और बहेलिये का तीर आकर पाँव में लगा तो उस बहेलिये को यह अंदाज़ा नहीं था कि उसके द्वारा चलाया तीर इन्सान को लगा है या पक्षी को। उसने तो शिकार समझ कर तीर चलाया था। बाद में आकर देखा कि तीर राजा को लग गया है। तब वह घुटनों के बल बैठ गया और बहुत रोया कि ज़हर से बुझा हुआ तीर आपके पाँव

में लग गया। भगवान श्रीकृष्ण ने इशारा करके उससे कहा कि जल्दी से यहाँ से भाग जा। राज्य का कोई अधिकारी तुझे देख न ले। अपनी ज़िन्दगी हरने वाले को कृष्ण ज़िन्दगी दे गये। कातिल को भी जीने की दुआ दे गए। दुनिया में इससे बढ़कर कोई क्षमा नहीं हो सकती। हमारी तरफ कोई एक उंगुली भी उठा दे, तो हम ज़िन्दगी भर उसके चेहरे को भूल नहीं पाते। लेकिन जिसने आपके सामने ही तीर चलाया हो और फिर वही सामने आकर बैठ जाये तो? भगवान कृष्ण ने संसार के सामने यह आदर्श प्रस्तुत किया कि क्षमा के गुण को ज़िन्दगी का आभूषण बनाना बड़प्पन है। पर हम ऐसा नहीं कर पाते।

'धृतिः' भी दैवी गुण है। धृति का अर्थ है धैर्य। धीरज रखना, आकांक्षाओं से रहित होकर जीना। बहुत से लोग भविष्य के प्रति आशंकित रहते हैं और अपने वर्तमान को खराब करते रहते हैं। न जाने कल क्या होगा? शरीर में बीमारी लगी है तो पता नहीं, ठीक होंगे या नहीं? सिर पर कर्ज़ चढ़ा हुआ है तो पता नहीं चुका पायेंगे या नहीं। बच्चे साथ देंगे या नहीं? पति पत्नी में निभेगी या नहीं? सहयोगी रहेंगे या छोड़ देंगे? मन में तरह तरह की आशंकाएँ उठती हैं। लेकिन अगर **व्यक्ति को अपने में धीरज और परमात्मा में विश्वास हो तो कठिनाइयों का कोहरा छंट जाता है। हमें उसका भरोसा करना चाहिये।**

एक राजा अपने मंत्रियों और अपने सिपाहियों के साथ समुद्र यात्रा कर रहा था। अचानक समुद्र में तेज लहरें उठने लगीं। जैसे ही लहरें ऊपर उठतीं, तो बेड़ा ऊपर की तरफ जाता और फिर जब लहरें नीचे आतीं तो बेड़ा नीचे की तरफ जाता। ऐसी स्थिति में राजा बिना घबड़ाए धीरज से बैठे बैठे मन ही मन उस स्थिति का आनन्द ले रहा था। सिपाहियों में जो राजा का अंगरक्षक था, उसको बहुत डर लगने लगा। देखने में तो वह बहादुर था, लेकिन मन से कमज़ोर निकला। उसने चिल्लाना शुरू कर दिया। लहरें और तेज़ हो रही थीं। हो सकता है पूर्णमाशी की सांझ रही होगी। ज्वार तेज़ी से उठने लगा। उधर वह सिपाही और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा। राजा ने मंत्री से कहा कि यह आदमी सबका मनोबल तोड़ेगा और सब मारे

जायेंगे। अब उससे कहो कि चुप होकर बैठे। लेकिन वह चुप होकर बैठने वाला न था। चिल्लाने लगा कि उसके तो छोटे छोटे बच्चे हैं। उसका यह हो जाएगा, उसका वह हो जाएगा। आप तो अमीर आदमी हैं। आपका तो यह है, आपका तो वह है। वह और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा।

राजा ने मंत्री से कहा कि इसका कोई इलाज करो। मंत्री ने अपने सामने बैठे एक अधिकारी को इशारा किया और उसके कान में कुछ कहा। अधिकारी सिपाही के पास गया और उसको उठाकर लहरों में फेंक दिया। वह डूबने लगा तो और ज़्यादा हाथ पाँव पटकने और शोर मचाने लगा। अधिकारी को मंत्री ने फिर इशारा किया। वह उसे पानी से निकलवा कर बेड़े पर ले आया। अब जैसे ही बेड़े में उसे बैठाया वह एकदम चुप होकर बैठ गया। न शोर करे, न कुछ बोले। राजा ने पूछा कि यह तूने क्या किया। तब मंत्री बोला, "यह आदमी खतरा महसूस कर रहा था। इसलिए ज़्यादा खतरे में डालकर फिर इसे बचाया। अब यह कह रहा है कि जान में जान आई। इस बेड़े में हम लोग तो सुरक्षित हैं। जहाँ पहले उसे घबराहट महसूस हो रही थी, अब वही जगह सुरक्षित महसूस होने लगी है।" आदमी को यह सोचना चाहिये कि इससे भी ज्यादा बुरा हो सकता था, लेकिन कोई हाथ नौका बनकर मुझे संभाले हुए है। उस हाथ को प्रणाम करूँ, धन्यवाद दूँ। वह तो मेरा परमात्मा है। उस स्थिति में व्यक्ति अकंप हो जाता है, फिर डोलता नहीं।

नारायण स्वामी बहुत बड़े विद्वान और सन्यासी हुए हैं। उपनिषदों पर उन्होंने बहुत अच्छा लिखा है। एक बार मथुरा में बैठे उपनिषदों पर लिख रहे थे कि उनको एक व्यक्ति मिले। उन्होंने कहा, "महात्मा जी, ऐसा लगता हैं कि आपको लिखने हेतु एकांत की आवश्यकता है। यहां मेरा एक गोदाम है। अगर आप वहाँ रहकर तपस्या करना चाहें, तो कर सकते हैं।" गोदाम में टीन की चादर की छत पड़ी हुई थी। लिखते लिखते गर्मियों के दिन आ गये, लू का समय आ गया। लू चलने लगी। ऊपर से टीन तपने लगी। जब लिखने बैठे तो गर्मी लगे और ध्यान बँटे। तब लोगों ने देखा कि वह बीच बीच में धूप में खड़े हो जाते थे और थोड़ी देर खड़े होने के बाद अंदर आकर फिर लिखने लगते थे। किसी ने पूछा, "महात्मा जी, यह क्या कर रहे हैं?

अन्दर तो पहले ही बहुत गर्मी है, फिर धूप में जाकर क्यों खड़े हो रहे हैं?" तब वह बोले, "मैं इस मन को समझा रहा हूँ। यह कहता है कि यहाँ बहुत गर्मी है तो मैं इसे धूप में लेकर जाता हूँ। फिर यह कहता है कि वहीं ठीक था, वहीं चलिये। कठिनाइयाँ हों, तो अपने मन को और कठिनाइयाँ दिखाओ कि यह भी हो सकता है। तेरे ऊपर तो तेरे रब की बहुत मेहरबानी है, उसने थोड़ा कष्ट दिया है और तुझे संभाल भी रखा है। उसका भरोसा रख और धीरज रख।"

भगवान श्रीकृष्ण ने इन गुणों को संपदा कहा है। **संपदा अर्थात् जिसका आप विनिमय कर सकते हैं। ये दिव्य गुणों रूपी संपदाएँ आपका बल हैं जिन्हें आप दुनिया के मेले में खर्च करते हैं। यह ऐसी मुद्रा है जो हर जगह चलती है,** दुनिया के हर कोने में चलती है और नुकसान कभी नहीं देती। इसका अवमूल्यन भी कभी नहीं होता। यहाँ मुद्रा स्फीति वाली बात बिलकुल नहीं है। यह संपदा तो आपको हर जगह सुख देती है। इसलिये कहा कि तेजस्वी, क्षमावान और धीरज वाले बनो।

चौथा गुण है **शौचम्**। शौचम् का अर्थ है पवित्रता। मन्दिर वह स्थान है जो पवित्र होता है। किसी पुस्तक के लिये भी कहते हैं कि यह पवित्र पुस्तक है। किसी व्यक्ति के लिये भी कहते हैं कि यह पवित्र व्यक्ति है। **आपका तन स्वच्छ हो तो यह तन की पवित्रता है। मन में द्रोह, ईर्ष्या, वैर और घृणा न हो तो यह मन की पवित्रता है। बुद्धि अच्छाई बुराई का सही निर्णय ले सके तो यह बुद्धि की पवित्रता है।** जहाँ यह तीनों पवित्रतायें हों वह हृदय मन्दिर जैसा है और वहीं पर परमात्मा का वास है, परमात्मा वहीं पर विराजमान हैं। इसलिये इन तीनों, शरीर, मन और बुद्धि को पवित्र बनाओ। **जिस घर के अन्दर पवित्र वातावरण है, वह घर नहीं, मन्दिर है। जिस मंदिर में पवित्रता नहीं है तो फिर वह मन्दिर भी मन्दिर नहीं है।** मन्दिर में जूते का प्रवेश वर्जित है क्योंकि कोई भी अपवित्र चीज़ वहाँ प्रवेश नहीं पाती। तो फिर वहाँ अपवित्र तन, अपवित्र मन और अपवित्र बुद्धि वाले को भी प्रवेश नहीं करना चाहिये। मंदिर में एकदम निर्मल मन लेकर प्रवेश कीजिये। पवित्रता और स्वच्छता में ही परमात्मा का वास है।

सद्‌गुरु भी ऐसा ही कहते हैं। एक बार एक शिष्य ने गुरु से पूछा,

"महाराज, आपकी शरण में आ गया हूँ। मंत्र भी मिला है। अब छ चीजें पूछना चाहता हूँ, कैसे चलूँ, कैसे बैठूँ, कैसे बोलूँ, कैसे खाऊँ, कैसे कर्म करूँ और कैसा व्यवहार करूँ? मेरे लिये आज से कौन सा आचरण अभीष्ट है?" गुरु ने कहा, "पवित्रता, अनुशासन सबको जोड़कर कहें तो आज से मर्यादा में रहना, मर्यादा से बैठना, मर्यादा से बोलना, मर्यादा में खाना, मर्यादा से कर्म करना और व्यवहार करते समय भी मर्यादा का ध्यान रखना। आज मैं तुझे मर्यादा की दृष्टि दे रहा हूँ। तू अगर मर्यादा में चलेगा तो फिर मेरा हो जायेगा। मर्यादा तोड़ेगा तो फिर संसार का होकर रहेगा। यदि संसार का होगा तो उसमें अशांति जरूर होगी"। गुरु मर्यादा देता है। बोलते समय मर्यादा का ध्यान रखना कि क्या बोलना है, क्या नहीं? किससे बात करनी है, किससे नहीं करनी? किसके साथ बैठना है, किसके साथ नहीं बैठना है? कहाँ चलना है, कहाँ नहीं जाना है?

इसलिये जब गुरु मर्यादा का उपदेश देते हैं तो उस मर्यादा को यह मान लेना चाहिये कि यह गुरु का रंग है जो मेरे तन मन पर चढ़ जाना चाहिये। अगर हम इस रंग को अपने पर नहीं चढ़ा पाये, तो फिर जीवन में क्रांति घटित नहीं होगी। परिवर्तन नहीं होगा। गुरु तो सब पर एक जैसी कृपा करता है, लेकिन जो अपने हृदय को पूरी तरह से रंगने को तैयार है, उसके साथ चमत्कार हो जाएगा। अपने अन्दर पवित्रता, मर्यादा और संयम का समावेश करें। कुछ ग्रन्थों में **मर्यादा** के स्थान पर **संयम** शब्द का प्रयोग है। बोलने में संयम हो, खाने में संयम हो, चलने में संयम हो। गुरु मर्यादा देता है। यदि संयम आ जाए तो शिष्य साधारण नहीं रह जाता। वैसे तो हर गुरु के अनेक शिष्य होते हैं, पर वह भेड़ बकरियों की तरह होते हैं। उनमें से दो चार तेजस्वी निकलते हैं। कोई एक भी गुरु के रंग में रंग जायेगा तो कमाल हो जाएगा। तब गुरु उसके हृदय में उतर जाता है और फिर शिष्य ऐसा चमत्कृत होता है कि सारे संसार को चमत्कृत कर देता है।

रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को कहा, "नरेन्द्र, मेरी वाणी बनकर तू संसार में प्रकट हो। मेरे ज्ञान को तेरी वाणी की आवश्यकता है। दोनों का सामंजस्य बैठा।" नौकरी मांगने के लिये आने वाला नरेन्द्र ऐसा

विवेकानन्द बनकर निकला कि सारी दुनिया को विवेक और आनन्द बांटता चला गया। गुरु का सान्निध्य मिल जाए और शिष्य गुरु की चिंगारी को अपने अन्दर धारण कर ले तो फिर वह अद्‌भुत हो जाता है। इसलिये अपने अन्दर मर्यादा को धारण करते हुए गुरु का सम्पूर्ण स्वरूप अपने हृदय में उतारना चाहिये। साथ ही संकल्प करना चाहिये कि मैं वह सारे सपने पूरे करूंगा, जो मेरे गुरु ने मेरे लिये दिये हैं। अतः भगवान कहते हैं कि **पवित्रता एक आभूषण है, संपदा है और पवित्रता को कभी नहीं छोड़ना, क्योंकि पवित्रता आपके अन्दर एक मन्दिर निर्माण करती है।**

एक गुण है–**अद्रोहः**। अद्रोह का अर्थ है द्रोह न करना। अब इसका साधारण भाषा में अनुवाद किया जाये, तो हुआ दगाबाजी न करना अर्थात् किसी को दगा न देना, किसी के विश्वास को न तोड़ना। जो लोग दगाबाजी से रहित होकर जीते हैं, निष्ठावान, वफ़ादार, जिसमें किसी तरह का छल प्रपंच नहीं है वही भक्ति के मार्ग पर चल पाते हैं। परमात्मा की अनुकम्पा उन्हें ही प्राप्त होती है। समाज के अन्दर यह द्रोह बहुत फैला हुआ है। किसी को वचन देकर तोड़ देना, बात कह कर मुकर जाना, भरोसा दिलाकर मुकर जाना, यह सब द्रोह है। द्रोह को एक तरह की गद्दारी माना जाता है। अजीब बात यह है कि इन्सान दूसरों के साथ तो द्रोह करता ही है, अपने साथ भी द्रोह करता है। दुर्योधन ने कहा था, "मैं जानता हूँ अच्छाई और बुराई को लेकिन मेरी मर्जी में जो आयेगा वही करूंगा। **'जानामि धर्मं न च में प्रवृतिः'** मैं जानता हूँ धर्म और अधर्म क्या है, लेकिन फिर भी, मेरे अन्दर जो संस्कार बैठा है वह मुझे जिधर ले जाता है, मैं उधर ही जाता हूँ, वही करना चाहता हूँ"। इसका मतलब है कि आदमी अपने साथ भी दगाबाजी करता है।

ज़िन्दगी में क्या मिला दुर्योधन को? आखिर में उसकी जंघा भी टूट गई। वह खून से लथपथ पड़ा हुआ था। भीम ने आकर उसके सिर पर लात मारी। युधिष्ठिर कहने लगे कि यह भी राजा भाई था। राजा भाई को लात मारना ठीक नहीं है और अब तो इसके प्राण निकलने वाले हैं। तब भीम ने कहा, "एक नहीं, हज़ार बार लात मारने को मन करता है क्योंकि यह कुल का द्रोही है। इसने हमारे पूर्वजों के साथ दगा की है, हमारे कुल के साथ

भी दगा की है और तो और पूरे राष्ट्र के साथ द्रोह किया है। इस व्यक्ति को मरते समय भी अपमान ही अपमान मिलना चाहिये। आप महात्मा हैं आप माफ़ कर देना लेकिन मैं माफ़ नहीं कर सकता और भावी दुनिया भी इसे माफ़ नहीं करेगी।'' द्रोह करने वाले इन्सान को कभी माफ़ नहीं किया जाता। उसके प्रति सबके मन में बहुत कठोरता होती है। इसलिये ध्यान रखना कि हमारे व्यवहार में कहीं द्रोह तो नहीं आता। तरह तरह की चालाकियाँ, तरह तरह की कुटिलताएँ, तरह तरह के छल प्रपंच, तरह तरह की बातें इन सबको लोग राजनीति कहते हैं। जिस आदमी में ऐसी राजनीति घुस जाती है उसे भगवान भी ज्ञान दे तो समझ नहीं सकता। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। उसमें कुछ भी बदलाव नहीं आने वाला।

कई लोग देखने में सीधे साधे लगते हैं लेकिन अन्दर से टेढ़े होते हैं। एक आदमी ने गाँव वालों को समझाना शुरू किया कि शराब पीना ठीक नहीं है, शराब से बड़े नुकसान होते हैं। फिर लोगों से पूछा कि समझ में आया? लोग चुपचाप गर्दन झुकाये बैठे रहे। आखिर उस आदमी को एक उपाय सूझा कि इनको कुछ प्रयोग करके दिखाना चाहिये। वह गिलास में शराब डालकर ले आया। फिर उसने एक कीड़ा उठाया और शराब में डाल दिया। तब समझाया कि देखो शराब में जो कीड़ा डाला था वह मर गया। अब समझ में आ गई बात कि यह क्या चीज़ है? उनमें से एक आदमी जो बहुत समझदार था, बोला, "हाँ समझ में आ गई। शराब पीने से पेट के कीड़े मर जाते हैं। अगर तुम पहले बता देते तो कम से कम मैं अपने पेट के कीड़े पहले ठीक कर लेता।" वह आदमी बेचारा सिर पीटकर रह गया।

जिनमें कुटिलता और द्रोह आ जाए, कितना भी बड़ा ज्ञानी चला जाए, उनमें कोई परिवर्तन नहीं ला सकता। जो बदलने के लिये तैयार है, वहाँ एक शब्द भी चमत्कार कर देगा। भगवान कहते हैं कि तुम द्रोह रहित होकर जियो। किसी के साथ धोखा नहीं करना, दगाबाजी नहीं करना। किसी के साथ छल कपट नहीं करना क्योंकि ऐसा करके तुम अपने साथ ही दगा कर रहे हो, अपने साथ ही कपट कर रहे हो। कुटिलता भरे जीवन में अशांति आने लगती है इसलिये जीवन में द्रोह को न आने दें। **गिरगिट की तरह**

रंग बदलना, लोमड़ी की तरह चालाकी अपनाना और सर्प की तरह टेढ़ा मेढ़ा होकर चलना, भेड़िये की तरह पीछे से आक्रमण करना और बिच्छू की तरह डंक मारना, यह सब दगा और द्रोह है। इसलिये अपने जिस रूप में जहां कोई दोष देखो तो उसे दूर करने को संकल्पबद्ध हो जाओ। ऐसा करने के लिए तीन बातें करनी होती हैं, समायोजन, अनुकूलन और नियमन।

यदि सर्दी लग रही है तो आदमी कपड़े पहनता है। ज़्यादा सर्दी है तो दो स्वेटर पहन लिये, कम सर्दी है तो एक पहन लिया। हम इस तरह समायोजन कर रहे हैं। अतः कुछ बातों में आपको समायोजित होना है। आदमी कड़वा बोलने वाला है, गाली देता है, बुरा भला कहता है तो उससे नपी तुली बात करना, थोड़ी दूरी बनाये रखना। ज़्यादा लेन देन न रखना। किसी भी तरह से समायोजन कर लेना। ऐसा मौका आना ही नहीं चाहिये कि झगड़ा खड़ा हो। घर परिवार में कोई जोर शोर से बोलने लगे तो उस समय देखना चाहिये कि वातावरण बिगड़ न जाए। तब अपने आप को थोड़ा सा पीछे हटा लो। थोड़ी देर के लिये शांत हो जाओ, मौन धारण कर लो। जब वह शांत हो जाए, तो फिर प्यार से बैठकर उससे बात करो। इस तरह परिस्थिति के साथ समायोजन कर झगड़े को खत्म किया जा सकता है।

एक स्थिति अनुकूलन की होती है। सर्दी है, तो सर्दी अपनी जगह है। आप अपने अन्दर सहनशक्ति पैदा करें। व्यक्ति अपनी शक्ति को बढ़ाये। यदि अन्दर से शक्ति बढ़ जाये तो व्यक्ति समायोजन करता हुआ अनुकूलन करने लगे। कई लोग कड़ाके की सर्दी में भी खुले बदन दौड़ रहे होते हैं। सर्दी तो एक जैसी है, महसूस करने का हिसाब किसका कैसा है, उस आधार पर सर्दी कम या ज़्यादा लगती है। सर्दी का रूप बच्चों के लिये, जवानों के लिये और बूढ़ों के लिये अलग अलग है और रोगी के लिये अलग है। बच्चे तो वैसे ही सर्दी के साथ खेलते हैं। सर्दी जवान आदमी के साथ मित्रता रखती है पर वह बूढ़े आदमी के कंधे पर बैठकर चलती है और रोगी के अन्दर बाहर, चारों तरफ अपना असर दिखाती है। **परिस्थितियाँ विपरीत हों तो थोड़ा झुककर चल लेने में हर्ज़ नहीं है।** कभी न कभी ये दिन भी निकल जाएंगे। अपने मन को इसके लिये तैयार

करें। विनम्रता से चलें। परिस्थिति के अनुकूल कार्य करें। दुःख तब होता है, जब व्यक्ति परिस्थिति को स्वीकार करने को तैयार नहीं होता। जब व्यक्ति ऊँचाई से नीचे आ गया, कुर्सी से हट गया, तो समझ लेना चाहिये कि आज वह साधारण स्थिति में है, अब दुःखी होने से काम नहीं चलेगा। इस स्थिति के साथ तालमेल बना लेना चाहिये। नरम घास झुककर आंधी का सामना कर लेती है, और सुरक्षित रहती है। इसी तरह व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों के हिसाब से अनुकूलन वाली स्थिति बनानी चाहिये। मनोविज्ञान में कहा गया है कि जब व्यक्ति अनुकूलन करने लगता है तो फिर वह छोटी चीज़ जो पहले बहुत ज्यादा दुःख देने वाली लगती थी, अब कष्टप्रद नहीं रही क्योंकि धीरे धीरे उससे अनुकूलन हो गया है। कई बच्चे डाक्टर की सुई लगवाने के लिये तैयार ही नहीं होते। वे सुई की तरफ देखते रहते हैं और सोचते हैं कि सुई शायद शरीर के आर पार हो जाएगी। जितना सुई को देखकर बच्चे घबराते हैं, सुई चुभते समय उससे भी ज़्यादा घबराते हैं। एक समय ऐसा आता है कि व्यक्ति अपने शरीर को खुद ही सुई लगा लेता है। कोई दर्द नहीं, कुछ घबराहट नहीं, अर्थात् स्थिति से हमने अनुकूलन कर लिया।

तीसरी स्थिति है नियमन करना। **सर्दी है तो आपने गर्म कपड़े पहन लिये। इसे समायोजन कहेंगे। दूसरी स्थिति है कि आप अपने शरीर को ऐसा बनायें कि सर्दी हो भी तो उसके प्रति सहनशीलता आ जाए। इससे इतनी सर्दी महसूस नहीं होगी। इसे अनुकूलन कहेंगे। तीसरी स्थिति है नियमन करना, नियंत्रण करना। बाहर से ही सर्दी पर नियंत्रण करना हो तो हीटर लगा लेते हैं।** गर्मी लग रही है तो ए. सी. लगा दिया। परिस्थिति को आप बाहर ही रोक दें, तो आप इसे नियंत्रण कहेंगे। इस तरह अपनी परिस्थितियों के साथ तीनों प्रयोग करने चाहिये। फिर आपके साथ चमत्कार हो जाएगा। दुःख दुःख नही लगेगा।

एक और गुण है **नातिमानिता**। अति मान, अति अभिमान से बचें। विनम्रता को ज़िन्दगी में स्थान दें। विनम्रता को भी एक सम्पदा कहा गया है। यह भी एक दौलत है। भले आदमी के गुणों में एक गुण यह भी है।

उसकी विनम्रता दर्शनीय होती है। बहुत ऊँचा होने के बाद भी उसके अन्दर सहजता, विनम्रता इस तरह से प्रदर्शित होती है जैसे किसी राजा के मुकुट में कोई हीरा जड़ा हुआ हो। यह विनम्रता व्यक्ति की सुन्दरता को आभूषित करने का कार्य करती है। हमारे ऋषि मुनि अत्यन्त सरल, सहज और विनम्र होते थे। जितना जानते थे उतना दूसरों को बताते गये। फिर कह दिया कि यहाँ तक आता था, अब आगे के ज्ञान के लिये दोनों मिलकर के कहीं और चलते हैं। इसलिये वहाँ ज्ञान के द्वार खुले हुए थे। **हम लोग अपने ज्ञान के द्वार बंद कर लेते हैं। जितना जान लिया उससे आगे जाना नहीं चाहते, वहीं रुके रहना चाहते हैं। हमने पात्र को ही उलटा करके रख दिया है।** जो विनम्रता को अपना ले, वह सीखेगा, और वह बांटेगा भी। विनम्रता को जीवन में स्थान दीजिये, अपने अन्दर की कठोरता को मिटाइये। जितना आप विनम्र होकर चलेंगे, उतना आपका जीवन महकेगा।

मनुष्य में दिव्यता की सुगन्ध की चर्चा करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने संकेत किया है कि पतन की ओर उन्मुख मनुष्य के क्या लक्षण होते हैं। गीता को हम भगवद्गीता कहते हैं, अर्थात् 'भगवान की गीता' अर्थात् गीतिका या कविता। भगवान का गीत दिव्य ही होगा। जीवनी शक्ति देने वाली **भगवान श्रीकृष्ण की बांसुरी की ध्वनि की तरह गीता का गीत भी जीवन संगीत है, ज़िन्दगी देने वाला संगीत। गीता संजीवनी है, अमृत है।**

मनुष्य विचारों से बनता है; जैसे विचार वैसा संग, वैसा कमाने का ढंग, वैसा व्यवहार, वैसी वासनायें और वैसी ही कल्पनायें। जिस प्रकार जल अपने पात्र का आकार धारण कर लेता है, तथा उसी का रंग ले लेता है उसी प्रकार हम सब भी अपने विचारों के अनुसार ढल जाते हैं। व्यक्ति की महानता उसके संग से निखरती है। इसलिये अपने आसुरी भाव और राक्षसी वृत्ति को मिटाने के लिये सबसे पहले यह जानना ज़रूरी है कि वे कौन से दुर्गुण हैं जो व्यक्ति को गिराते हैं। **यह बहुत अजीब बात है कि इन्सान को अपनी दुर्गन्ध में दुर्गन्ध नहीं आती। दूसरे का थोड़ा सा दोष भी बहुत बड़ा दिखाई देता है।** दूसरे की दुर्गन्ध बहुत महसूस होती

है जब कि अपने को तो हम स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लेते हैं। पास बैठे व्यक्ति को हमारे शरीर से गंध आती है लेकिन हमको तो अपनी गंध का पता ही नहीं चलता। हमें दूसरों की ही गंध का पता चलता है। हम अपने दोषों की तरफ कभी नहीं देख पाते। हम यह मान भी नहीं पाते कि हम कहीं कमज़ोर हैं या हममें दोष हैं।

हमारा ध्यान हमेशा ही दूसरों की तरफ़ रहता है। इसका एक कारण यह भी है कि भगवान ने इन्द्रियों को बाहर की तरफ बनाया है। आत्मचिन्तन एक ऐसा दर्पण है जिसमें हमें अपनी अंदरूनी शक्ल दिखाई देती है। इसलिए स्वयं कोई भी व्यक्ति कभी भी आत्मचिन्तन का शीशा अपने सामने नहीं रखता ताकि अपना असली रूप न दिखे, अपने दोष छुपे रहें। अपने दोष दूर करने वाली संकल्प की कंघी का इस्तेमाल भी वह नहीं करता। आदमी अपने स्वरूप को सजाने और अपने मैल को धोने के लिये भक्ति और सेवा का साबुन नहीं लगाता, प्रायश्चित के जल से अपनी आत्मा को नहीं धोता। इसलिये कोई भी व्यक्ति अपने स्वरूप को अन्दर से सुन्दर नहीं बना पाता। **बाहर से अगर हम सुन्दर भी दिखाई देते हैं तो भी अन्दर घुटन, सीलन, बदबू और तरह तरह की गंध है जिस पर बाहर से लगाया गया इत्र कुछ काम नहीं करेगा।**

जो दिव्य पुरुष होते हैं उनके अन्दर अपने आप सुगन्ध फूटने लगती है। उनकी सुगन्ध की मणि और ग्रन्थियाँ जागृत हो जाती हैं। हमारे अन्दर कौन से ऐसे दोष हैं जिनको हम देख नहीं पाते। हम जैसे ही धुले वस्त्र पहनते हैं उसी समय से उन वस्त्रों पर धूल गिरनी शुरू हो जाती है, पर यह धूल हमको तब दिखती है जब वस्त्र मैले हो जाते हैं। अर्थात् एक सीमा पर पहुँचने के बाद हमको अहसास होता है कि कपड़े इतने मैले हो गये हैं। इसी प्रकार जब हम समाज में कोई ऐसा दुष्कर्म कर बैठते हैं कि सारे समाज का ध्यान उस ओर चला जाता है तब हमें पता चलता है कि हम कितना नीचे आ गये हैं। अपनी कमियों की तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता, इसलिये हम कहते हैं कि हम सबके प्रति प्रेम और करुणा रखते हैं। लेकिन वास्तविकता कुछ और होती है।

जिन लोगों ने हमारे साथ रहकर न जाने हमें कितना सहयोग दिया और अपनी कितनी शक्ति हमारे लिए लगाई, उनके प्रति हम कितने उदार और स्नेहशील हैं, इसका यदि हम अंदाज़ लगाने बैठेंगे तो उस समय अपनी क्रूरता और बहुत सारी कठोरता की बातें याद आयेंगी। दूसरों के दर्द को हम दर्द नहीं मानते। दूसरों की पीड़ा को पीड़ा भी नहीं मानते। हमें केवल अपनी सुख सुविधा का ही ध्यान रहता है। यह मैल हम अपने अन्तःकरण में शुरू से बसाये बैठे हैं, जिसकी तरफ हमारा ध्यान आज तक नहीं गया। भगवान श्रीकृष्ण हमें एक आईना दे रहे हैं जिसमें हम अपने अंतःकरण को देखें।

पुराने समय से एक कथा कही जाती है। किसी साधु ने विश्व भ्रमण से लौट कर अपने राजा मित्र को, एक टूटा हुआ दर्पण भेंट किया और कहा, "सारी दुनिया घूमने के बाद मुझे इससे ज़्यादा मूल्यवान वस्तु नज़र नहीं आई। मैं आपके लिये यह लेकर आया हूँ। मेरी विवेक बुद्धि में इससे कीमती चीज़ दुनिया में नहीं है।" राजा हँसा और कहने लगा, "अब तक तो मैं आपको ज्ञानी समझता था, लेकिन आज की इस हरकत से पता चलता है कि ज्ञानी से ज्ञानी व्यक्ति के दिमाग में भी कहीं न कहीं गड़बड़ ज़रूर रहती है। शीशों की मेरे पास कमी है क्या? मेरे पास बहुत सारे एक से एक सुन्दर शीशे हैं।"

साधु ने कहा, "आपके पास अपने शीशे हैं पर यह शीशा बेढंगा और कुरूप है। इसे हाथ में पकड़ कर सोचना कि यह आपके सबसे हितैषी मित्र ने दिया है। इसमें केवल चेहरा नहीं देखना बल्कि अपनी आत्मा, मन और बुद्धि को भी देखना। मैं सच कहता हूँ राजन्! जिस दिन इस आत्मचिन्तन के आईने में आप अपने आपको देखना शुरू कर देंगे, उस दिन के बाद आपसे ज़्यादा सुन्दर आदमी इस दुनिया में नहीं होगा। उस सौन्दर्य के साथ आपको परमात्मा की गोद में बैठने का अधिकार मिल जाएगा। आपको पता नहीं राजन कि इस घड़ी वहाँ के द्वार आपके लिए बन्द किये जा चुके हैं। मुझे वहाँ जाना है लेकिन मैं नहीं चाहता कि मैं वहाँ अकेला जाऊँ। मेरे भाई, मेरे दोस्त को भी मेरे साथ जाना चाहिये। परमात्मा के दरबार में जिस ऊँचे सिंहासन पर मुझे

बैठने का मौका मिले उससे भी ऊँचे सिंहासन पर मेरा राजा बैठे, इसी इच्छा से बहुत ही प्रेम से यह भेंट आपके लिये लेकर आया हूँ। यह बात शायद अभी आपकी समझ में न आये, लेकिन कुछ महीनों या सालों के बाद आपको अहसास होगा कि यह कितना कीमती शीशा है।"

हम लोग रोज़ दर्पण देखते हैं, इसी से बाल ठीक करते और श्रृंगार करते हैं। भविष्य पुराण में लिखा है कि कलियुग में इन्सान के लिये बाल आभूषण बनेंगे और इन्सान उन्हीं को तोड़ता मरोड़ता रहेगा। कभी पीछे की तरफ, कभी दायें तो कभी बायें, कभी कुछ लट आगे और कभी कुछ पीछे और कहेगा कि उससे सुन्दर कोई नहीं है। लेकिन वह यह भूल जायेगा कि उसके दोषों ने उसके पूरे व्यक्तित्व को ढक रखा है। अगर वह कैंची उठाकर उन दोषों को काट लेगा तो उसे अपनी असली सुन्दरता दिखाई देगी।

हम लोगों का ध्यान अपनी ओर नहीं जाता। सभी एक दूसरे को उपदेश देने में लगे हैं, बड़ी ईमानदारी से सीख देते हैं। हमारे पास दूसरे को देने के लिए बहुत उपदेश हैं। हर आदमी की बीमारी का इलाज हमारे पास है। दुनिया में जिन बीमारियों का नाम भी अभी तक नहीं आया, सब लोग उनका इलाज लिये बैठे हैं। किसी से भी पूछ लीजिये इलाज बताना शुरू कर देंगे। हम बहुत अच्छे रायसाहब हैं, राय देने में सबसे आगे। हम बहुत बड़े सलाहकार हैं, किसी को भी सलाह दिलवानी हो तो हमारे पास चला आये। हम सबको अच्छी तरह समझायेंगे लेकिन अपने आप को नहीं समझा पाते।

मुझे गुरजीब की एक बात याद आती है, वह सुनाता हूँ। गुरजीब का एक नियम था कि वह तीन महीने के लिये साधना संबंधी एक प्रयोग करता था। एक छोटी सी जगह में एक छोटा सा हाल। तीन महीने के लिए तीस आदमी इकट्ठे किए और तीन महीने तक सबको कहता रहा कि एक ही बात याद रखना कि यहाँ तीस लोग हैं, लेकिन गिनती भूल जाना। केवल इतना याद रखना कि तुम अकेले हो। जैसे कमरे में अकेला रहता हुआ आदमी अपने से बातचीत भी करता है, जब मरज़ी आती है गीत गाने लगता है। मरज़ी आयेगी तो आईने के सामने अपना चेहरा बिगाड़कर भी देखता है, अपनी कुरूपता और सुन्दरता पर ध्यान देता है, बिल्कुल इसी तरह

का व्यवहार शुरू करो। कई समुदायों ने अपने अपने ढंग से इस विधि को अपनाया हुआ है। इस विधि का अपना एक आखिरी नियम होता है कि सारी दुनिया की भीड़ में अपने आप को एकाकी महसूस करो। सोचो कि मैं अकेला हूँ। तब न मोह रहता है, न ममता और न कोई अभिमान।

आदमी ज़्यादातर अपने मोह और अभिमान का प्रदर्शन करने के लिये अपनी बिरादरी वाले और अपने सहपाठियों के सामने कोई ऐसा काम करता है जिससे यह पता लगे कि व्यक्ति सच में बड़ा हो गया है। अपने गाँव या शहर, जहाँ वह जन्मा है, के लोगों को बुलायेगा और कहेगा कि आकर देखो कि मैं कहाँ पहुँच गया हूँ। यदि कोई मन्दिर आस पास हो, जहाँ अपनी बिरादरी या मोहल्ले वाले भी जाते हों तो वहाँ दान करने में उसे बड़ा आनन्द आता है। उसे मूछों पर ताव देने का मौका मिलता है। भूकम्प या बाढ़ के कारण चाहे कितने भी लोग तड़प रहे हों उसके दिल में उनके लिये कोई दर्द नहीं जागेगा, क्योंकि वहाँ ताली बजाने वाला कोई नहीं है। अकेला रहने वाला इन्सान अकेलेपन को अनुभूत करता हुआ बांटेगा, मांगेगा नहीं। महापुरुषों ने अपनी आत्मा को निखारने के लिए तरह तरह के प्रयोग किये हैं।

जुगान ने एक अलग तरह का प्रयोग किया था। उसने कहा कि मेरी ज़िन्दगी की शुरुआत एक झील के किनारे बैठकर झील के पानी में अपने आप को देखते हुए हुई। उपनिषदों में वर्णन आता है कि इन्द्र ने एक बार असुर और देवताओं को उपदेश दिया था कि वे अपने आप को झील के जल में देखें। पहले असुर गये। उन्होंने अपने आपको झील में देखा और बोले, "हमें तो हम ही दिखाई दे रहे हैं और यह संसार खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ के लिए नज़र आ रहा है।" फिर देवता गये और अपने को झील में देखने के बाद उन्होंने कहा, "ये तो हम नहीं हैं। संसार के रंगमंच पर एक पात्र के रूप में अभिनय करने के लिए हमने कई बार नई नई शक्लें धारण की हैं"।

नाटक में एक इन्सान कभी राजा बनकर आता है तो कभी रंक बनकर, भिखारी के रूप में वह हाथ में कटोरा लेकर आता है। राजा के रूप में वह

अकड़ कर बैठता है, भिखारी के रूप में उसकी गर्दन झुकी रहती है, हाथ कांपते हैं, आवाज कांपती है, चेहरे पर बेबसी होती है। देवताओं ने सोचा कि उस समय वे संसार के रंगमंच पर किसी एक पात्र का अभिनय करने के लिये खड़े हैं। उनका शरीर कई बार बदला जा चुका है लेकिन जो वस्त्र उन्होंने पहन रखे हैं उन वस्त्रों को पहनने वाला कभी नहीं बदला गया। यथार्थ में तो हमें झील में अपने अन्तःकरण को देखने के लिये कहा गया है। वे वापिस आये और इन्द्र से बोले, "महाराज! इस दर्पण से तो हमने अपने शरीर को देख लिया और पहनने वाले को भी देख लिया। बरसों तक तप किया लेकिन हम समझ नहीं पाये। कृपया हमें उपदेश दीजिये।" तब इन्द्र ने कहा, "तुम्हारी आध्यात्मिकता की यहीं से शुरुआत होगी।"

कठोपनिषद् में कहा गया है कि जिस प्रकार से धूप में खड़े होकर तुम अपने शरीर और अपनी छाया दोनों को देखते हो, उसी प्रकार जिस समय तुम अपने शरीर और उससे अलग हटकर अपनी आत्मा का भी अहसास करने लग जाओगे तो समझ जाओगे कि आत्मा ने यह शरीर धारण किया हुआ है। यह शरीर एक रथ है जिस पर बैठकर तुम सौ साल की यात्रा पर संसार में आये हुए हो। तुमने इतना ध्यान रखना है कि बाद में जब दूसरे स्थान पर जाओगे, वहाँ एक रथ अलग ही मिल जायेगा। तुमने इतना ध्यान जरूर रखना है कि जब दूसरे स्थान पर जाओगे तो तुम्हारा रथ बदल जाएगा। परमपिता ने हम लोगों की बहुत अच्छी व्यवस्था कर रखी है। हमारे पहचान पत्र में सम्मुख का फोटो होना चाहिये। अपने पासपोर्ट को भी हम अपना परिचय पत्र कहते हैं लेकिन यह हमारा वास्तविक परिचय नहीं है। आत्मा का चित्र तो कहीं है नहीं, हो भी नहीं सकता। अतः पहले आप अपना अहसास कीजिए।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।।४।।

दम्भः दिखावा, बड़ी बड़ी डींगें मारना, **दर्पः,** घमण्ड में चूर होना, **अभिमानस्य** विनम्र न हो पाना, कठोरता अपनाये रखना, झुकने की आदत न बना पाना आदि बातें हमारे पहचान पत्र में नहीं होतीं। **क्रोधः** बात बात

में गुस्सा दिखाना **पारुष्यमेव च** दूसरों के प्रति कठोर वचन कहने में नहीं चूकना और कहना, "मैं तो सच्चा हूँ और सच्चा आदमी तो कड़वी बात करेगा।" हम खुद जानते हैं कि हमसे बढ़कर झूठा दुनिया में और कोई नहीं है। हम उस समय कठोर इसलिये बोल रहे हैं ताकि दूसरे का भांडा फोड़ सकें और दूसरे को सब के सामने नीचा दिखा सकें।

भगवान श्रीकृष्ण ने आगे फिर **अज्ञानम्** कहा। अपने अज्ञान में चूर रहना, दूसरे की बात न मानना। न किताब से, न सलाह से, न ज़िन्दगी की ठोकरों से कुछ सीखने को तैयार होना। अपनी अक्ल को सबसे ज़्यादा बड़ा मान लेना। भगवान कहते हैं कि ये लक्षण उन लोगों में दिखाई देते हैं जो दुनिया में आसुरी वृत्ति लेकर आये हैं।

आसुरी वृत्ति वाले लोग दुनिया में कितने भी सुन्दर दिखाई दें, वास्तव में सुन्दर नहीं होते। रावण की सुन्दरता प्रशंसनीय थी। बहुत सुन्दर व्यक्ति था वह, लेकिन था घमण्ड का पुतला। उसी का परिणाम यह हुआ कि **आज तक रावण के प्रति हम अपनी घृणा का प्रदर्शन करते हुए यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि कहीं हमारे अन्दर का रावण जाग तो नहीं गया है और अगर जाग गया है तो उसे जलाने की कोशिश करें।**

तीन साल पहले दिल्ली में एक स्थान पर मुझे रामलीला के उद्घाटन के अवसर पर बुलाया गया था। वहाँ एक बोर्ड पर लिखा था कि दिल्ली में हमारा रावण सबसे ऊँचा है। हम लोग किसी तरह मौका पाकर वहाँ से निकल लिये क्योंकि जो लोग रावण को ऊँचा करने में लगे हुए हैं वे राम की जय कहाँ बोल पायेंगे? वैसे भी देखा जाये तो रावण को इतना ऊँचा दिखाकर यह अहसास कराया जाता है कि इतने भयंकर रावण के सामने भी राम जी विजयी हुए।

नाटकों या छाया चित्रों में पहले खलनायक का बहुत भयंकर रूप दिखाते हैं मानो वह किसी तरह मर नहीं सकता। परन्तु बाद में नायक के एक ही वार से वह मर जाता है। एक बार एक निर्माता हमसे मिलने आये और बोले कि अपनी फिल्म में मैं आपकी भी कुछ बातें डालना चाहता हूँ।

उनसे बातचीत के दौरान हमने कहा, "आप लोगों का जो नायक होता है वह तो आत्मा की तरह अजर अमर होता है। चाहे पहाड़ से गिरा दो, चाहे आग में डाल दो उसका कुछ नहीं बिगड़ता। ऐसे चित्रों के बारे में हम लोग क्या सलाह दे पायेंगे।" ऐसा प्रदर्शन या दिखावा, जिसको हम लोग दोष मानते ही नहीं हैं यह हमारी बहुत बड़ी कमज़ोरी है। भगवान ने शुरू में ही कहा है कि **असुर व्यक्ति की पहचान यही है कि वह दिखावा बहुत करता है।**

सज्जन और सभ्य व्यक्ति काम कर जायेगा लेकिन पता बाद में लगेगा कि उसने कितने बड़े कमाल किये थे। दुनिया के महापुरुषों के साथ ऐसा ही हुआ कि जब वे नहीं रहे तब लोगों ने उनके बारे में विवरण इकट्ठा किए और उनका जीवन चरित्र लिखा। तब लोगों को समझ में आया कि वह कितना बड़ा आदमी था। फिर अफसोस किया कि हम अन्दाज़ा नहीं लगा पाये, इसलिए उनके प्रति हमको जो करना चाहिये था, वह नहीं कर पाये। हम लोग उनके लाभ से वंचित रह गए। कोशिश की जानी चाहिए कि महापुरुषों को हम उनके जीवन काल में ही पहचान लें ताकि उनका लाभ उठाया जा सके। किसी के जाने के बाद यदि उसकी मूर्ति लगा ली और पूज लिया तो उससे लाभ नहीं हुआ करता।

भगवान कहते हैं कि **दिखावे से जो बचे वह देव व्यक्ति है और जो दिखावे में पड़ा रहे वह असुर** है। घमंड से चूर रहना और सोचना कि मुझसे बढ़कर कोई नहीं है आसुरी वृत्ति है। **'अभिमानस्य'** अपने अभिमान का प्रदर्शन करना आसुरी वृत्ति है। **मकान और शादियों पर बेतहाशा पैसा खर्च करना, महंगी गाड़ी खरीदना ताकि लोग देखें, अहंकार का प्रदर्शन है। एक से बढ़कर एक पार्टियां, आलीशान फार्म हाऊस सामाजिक स्तर (स्टेटस) बनाने की कोशिश में इतनी चमक, दमक किसलिए?** लेकिन हम कभी भी यह कोशिश नहीं करते कि अपनी आत्मा को, अपने अन्तःकरण को ऊँचा उठायें।

विद्यार्थी काल में हम लोग एक मज़ाक सुना करते थे कि कोई भी व्यक्ति कोई भी तरीका ढूंढकर अपने आप को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ इन्सान सिद्ध कर सकता है। फ्रांस की राजधानी पेरिस के विश्वविद्यालय में

दर्शनशास्त्र पढ़ाने वाले प्रोफेसर ने अपने विद्यार्थियों से कहा, "मैं आप लोगों को दर्शनशास्त्र पढ़ाता हूँ लेकिन मैं आपके सामने यह सिद्ध कर सकता हूँ कि मैं दुनिया का सर्वश्रेष्ठ इन्सान हूँ, मुझसे बढ़कर और कोई नहीं है।" छात्र आपस में कानाफूसी करके हँसते रहे कि यह कैसे सिद्ध कर देंगे कि ये दुनिया के सर्वश्रेष्ठ इन्सान हैं।

प्रोफेसर ने सवाल किया, "सारी दुनिया में सबसे सुन्दर और अच्छा देश कौन सा है?"

सारे बच्चे एक साथ बोले "फ्रांस"

अपने देश को हर कोई बढ़िया कहेगा। प्रोफेसर ने फिर पूछा, "फ्रांस में सबसे बढ़िया शहर कौन सा है?"

"सबसे बढ़िया शहर हमारी राजधानी पेरिस है"।

तब वे बोले, "अब यह बताओ कि पेरिस में सबसे अच्छी जगह कौन सी है?

छात्र बोले, "हमारा विश्वविद्यालय।"

प्रोफेसर ने फिर पूछा, "यहाँ जो कुछ पढ़ाया जाता है उसमें सबसे बढ़िया विषय कौन सा है?"

सब ने कहा, "दर्शनशास्त्र सबसे बढ़िया है।"

प्रोफेसर ने कहा, "दर्शनशास्त्र अर्थात् फिलोसफी सबसे बढ़िया विषय है और इसका विभागाध्यक्ष मैं हूँ। तो इसका मतलब यह हुआ कि दुनिया का सर्वश्रेष्ठ इन्सान मैं हूँ, मेरे से बढ़कर और कोई नहीं है"। अब यह सिद्ध करने में कितनी देर लगी उस प्रोफेसर को? अपनी महानता के गीत गाने हों तो कैसे भी गा लीजिये। अपने महान होने का ज़िक्र करना और महान होना, अलग अलग बातें हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने दैवी सम्पदा के २६ गुण बताये हैं। उनसे जो उलट हैं वह दुर्गुण हैं और जो व्यक्ति उन पर चलते हैं वे असुर हैं। कोई असुर होना नहीं चाहता लेकिन फिर भी आसुरी वृत्तियाँ हमारे अन्दर हैं। एक दिव्य गुण है **अक्रोधः,** क्रोध न करना। हर समय क्रोध में बने रहना राक्षस वृत्ति है। **दिव्यता** का अर्थ है नम्रता। **अभिमान**

और पाखंड आसुरी वृत्तियाँ हैं। यदि तुम मृदुता अपनाओगे तो दिव्य हो जाओगे और कठोर हो गये तो नीचे गिर गये। आपकी पवित्रता दिव्यता का परिचायक है। पवित्रता का अभाव होना यानि विचार गन्दे, लेन देन में गन्दगी, उठने बैठने में गन्दगी है तो यह अपवित्रता है, गिरावट है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि ज्ञान और योग में प्रतिष्ठित होकर तुम दिव्य होते हो। सिद्धान्त और वास्तविकता का मेल बैठाओ क्योंकि कुछ लोग बड़ी बड़ी बातें जोड़ लेते हैं पर उन्हें जीवन में नहीं उतारते। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि **जो व्यक्ति सिद्धान्तों का वास्तविकता से (theory और practical) मेल बैठा ले तो समझना कि वह दिव्य हो गया।** जो दोनों बातों से दूर है वह असुर है। भगवान ने कहा है कि जिसमें सत्य प्रतिष्ठित हो गया वह देवता और जो झूठ का पुतला है वह निकृष्ट है।

भगवान द्वारा दुनिया बनाने के साथ ही लोगों में दो तरह के व्यवहार प्रचलित हो गये, सत्य और झूठ। झूठ का एक रूप और भी है अर्थात् कृत्रिमता, बनावटीपन, नकलीपन, दिखावा। भगवान ने जहाँ सच देखा वहाँ श्रद्धा, विश्वास और प्रेम पैदा कर दिया और जहाँ असत्य देखा वहाँ अश्रद्धा, अविश्वास और घृणा दे दी। साथ में यह भी कह दिया कि शुरू शुरू में झूठों की चिकनी चुपड़ी बातें ज़रूर पसन्द आयेंगी पर बाद में उनके प्रति घृणा और अविश्वास जागृत हो जायेगा। जिनके पास सत्य प्रतिष्ठित है वे देव हो गये और जो असत्य से जुड़े रह गये वे असुर कहलाए।

अलोलुप्ता लालच का अभाव अर्थात् लालच में जो पागल नहीं है, जिन्हें कोई ललचा नहीं सकता, जिन्हें कोई आकर्षण बांध नही सकता, जो लालच के जाल को काटने में समर्थ हैं वे देव कहलाये और जो लालच के फन्दे में फंसने को तैयार हो गया; वह पतनोन्मुख हो गया। अथर्ववेद में ऐसा वर्णन आया है कि वरुणदेव सैकड़ों पाशों के साथ सबके साथ रहते हैं। किसी ने कोई गलत बात की कि वरुण देव उसको फन्दों में जकड़ लेते हैं और जब तक वह अपने किये का फल नहीं भोग लेता तब तक वे फन्दा ढीला नहीं करते। कर्म करने तक हम

आज़ाद हैं और जैसे ही कर्म कर दिया उसी के साथ वरुण देव के फन्दे हमें जकड़ लेते हैं। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो लालच में नहीं आया वह फन्दों से बच गया, उसके लिये स्वर्ग की सीढ़ियां खुली हैं और जो पाश में आ गया, वह गया नीचे।

भगवान ने फिर कहा **'शान्ति'**। जिस व्यक्ति के जीवन में शान्ति है वह देवता है और जो हर समय अशान्त रहे और अशान्ति बिखेरे, तनाव में रहे और दूसरों को तनावग्रस्त कर दे वह असुर वृत्ति का है। जो दिव्य है वह तपस्वी होगा। अपनी सहनशक्ति को बढ़ायेगा, कड़वा सुनेगा, कड़वा बोलेगा नहीं। सेवा करेगा, सेवा करवाने की कामना नहीं रखेगा। दिव्य व्यक्ति दूसरों को देकर भूल जायेगा लेकिन किसी से लेकर कभी नहीं भूलेगा। जो तप करता है वह दिव्य हो जाता है और जो संसार की सुविधा, आलस्य में डूबा हुआ है, लापरवाही से युक्त है, भोगी व विलासी है वह असुर है। दान दिव्यता है, धन की लालसा, दूसरे को ठगने की कामना आसुरी वृत्तियाँ हैं।

दया अहिंसा च प्राणीमात्र के प्रति दया भाव रखना और अहिंसक बनकर जीना दिव्यता है, दैवी सम्पदा है। दूसरों के प्रति क्रूरता का व्यवहार और अपने स्वाद के लिये जीव जन्तुओं को मारना राक्षसी वृत्ति है। **क्षमा** कर देना दिव्यता है, और दूसरों के प्रति वैर से जलते रहना, दूसरों को नीचा दिखाने का ख्वाब देखते रहना नीचता है, आसुरी वृत्ति है। त्याग करना दिव्यता है और आशाओं, आकांक्षाओं के पाश में बंधे रहना, पतन का द्योतक है। **यज्ञ** करना दिव्यता है परन्तु दम्भ और दिखावे के लिए यज्ञ करना नीचता है। याज्ञिक व्यक्ति विनम्र, सज्जन और श्रेष्ठ होता है, लेकिन जो यज्ञ को धंधा बना लेते हैं वे निकृष्ट हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।।८।।

वे लोग जो आसुरी वृत्ति से जकड़े हैं उनका संसार में कोई नियम नहीं है। उनका संसार निराधार है, आधार के बिना ही चलता है। वे लोग

प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग को भी नहीं समझते। जो यह समझना ही न चाहे कि क्या करणीय है और क्या नहीं करना चाहिये और यह कहे कि दुनिया को बनाने वाला कोई नहीं है, जो है वह अपने आप बना और अपने आप चल रहा है, बनाने वाले को किसी ने नहीं देखा। मरने के बाद किसने किसी के साथ क्या लेना देना है? ये बातें बिलकुल गप हैं। जो कुछ है इसी दुनिया में है। खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ। **जो आदमी जितना चालाक होगा वह उतनी चालाकी से सुखी हो जायेगा। जो भोले और सीधे लोग हैं वे दूसरों द्वारा प्रताड़ित किये जाते हैं।** इसलिए जब तक जियो सुख से जियो, सुविधा में जियो। कर्ज़े पर भी घी मिलता हो तो लेकर पीओ। ऐसे विचार लेकर जो जी रहे हैं वे असुर हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि संसार की व्यवस्था जिस तरह से बनाई गयी है, उस व्यवस्था को समझ कर जो व्यक्ति उसके अनुसार आचरण कर रहा है वह तो दिव्य है और जो उसके अनुसार आचरण नहीं करता वह असुर है। मैं दूसरो को ठग लूँ लेकिन मुझे कोई न ठगे, मैं झूठ बोलूं पर दूसरा मेरे आगे झूठ न बोले, मैं किसी को हज़ार गालियाँ दूँ लेकिन वह चुप रहे, पलट कर गाली न दे यह सोचना असुर वृत्ति है। लेकिन ऐसा हो नहीं सकता। समाज में सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यह संसार एक घाटी है, इसमें जो आवाज़ दोगे उसकी गूंज दस गुना होकर वापिस आएगी और आपके कानों से टकरायेगी। इसलिये ऐसे फूल खिलाओ जो तुम्हारी राह में सुगंध बिखेरें। ऐसे कांटे मत उगाओ, जिन पर चलने में तुम्हें परेशानी हो।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्।।१२।।

भगवान श्रीकृष्ण ने फिर कहा कि आशा, आकांक्षा, कल्पना के जाल में बंधे हुए बहुत सारे लोग जो क्रोध परायण हैं उन्हें दो ही चीज़ें दिखाई देती हैं, क्रोध या कामवासनाओं वाली कल्पनायें। कोर्ट कचहरी से लेकर छल कपट तक कैसे दूसरे आदमी को नीचा दिखाना है? किस आदमी को कैसे हराना है? किस आदमी का व्यापार (बिजनेस) कैसे चौपट करना है? इस

तरह की आसुरी वृत्ति लेकर हम लोग जी रहे हैं।

एक बार हम लोग हिमाचल गये। वहाँ एक हिडम्बा देवी का मन्दिर है जहाँ किसी व्यक्ति ने एक छोटा सा कमरा बनाया हुआ है। उस कमरे की दीवार पर लिखा हुआ था, अगर किसी ने मेरे कमरे को छेड़ा तो हिडम्बा माँ छोड़ने वाली नहीं, पूरा इलाज करके छोड़ेगी, अर्थात् हिडम्बा देवी को भी उसने अपनी नौकरी में रखा हुआ है। देवी देवताओं को भी हम लोगों ने अपने क्रोध में, अपने वैर में, अपने प्रतिशोध में शामिल कर रखा है। हम भगवान से कहते हैं कि मेरे शत्रु को छोड़ना नहीं, पूरा इलाज करना उसका क्योंकि उसने मुझे, तेरे भक्त को, जो रोज सवेरे पाँच पैसे तुझे चढ़ाता है, सताया है। पाँच पैसे के बदले हम भगवान से बहुत काम करवाना चाहते हैं।

अगले श्लोक में श्रीकृष्ण कहते है :

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।१८।।

अहंकार में, घमण्ड को प्रदर्शित करने में और काम क्रोध में जो व्यक्ति पागल हो गये हैं उनको केवल अपना आपा ही दिखाई देता है। उन्हें वैर, निन्दा व चुगली के सिवा और कोई काम नहीं होता।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।।१६।।

भगवान कहते हैं कि जो इन्सान ऐसे नराधम् हैं, वह उनको भयंकर योनियों में गिराते हैं। ऐसे लोगों के लिए नरक का रास्ता खुला है।

हमारे देश में जो बड़े लोग हुए हैं, ज़िन्दगी जीने का उनका एक अलग ही ढंग था। विद्या थी, शैली थी, बड़प्पन था। गांधी जी का उदाहरण लीजिए। उनके समय के जितने भी महापुरुष थे वे उन सबसे मिलने जाते थे, उन सबके चरण छूकर आते थे, उन सबसे आशीर्वाद लेते थे। रवीन्द्र नाथ टैगोर को तो उन्होंने बहुत अधिक मान दिया। रामकृष्ण परमहंस स्वयं इतने ऊँचे व्यक्ति थे कि उनकी ऊँचाई को नापना आसान नहीं है, लेकिन वे जब भी बनारस जाते थे तो वहाँ के

एक साधु तैलंग स्वामी के पास जाकर उनके चरणों को छूकर आते थे, उनके चरणों को बहुत देर तक पकड़कर बैठे रहते थे। बड़े आदमी का यह बड़प्पन है कि वह दूसरों को मान देता है। इससे अपने अन्दर की विनम्रता जागती है।

भगवान श्रीकृष्ण ने राजसूय यज्ञ के समय स्वयं ज्ञानियों और ऋषियों की चरण वन्दना की थी। महाभारत काल में तो लिखा है कि वे भीष्म पितामह को सदा झुककर अभिवादन करते थे। इसी प्रकार वे द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और कुन्ती बुआ को भी झुककर प्रणाम करते थे। अर्जुन सामने आता था तो बाँहें फैलाकर मिलते थे और अभिमन्यु को पास बुलाकर उसका माथा सूंघते और चूमते थे। लेकिन शकुनि का सामना उन्होंने हमेशा ऐसे फन्दे फेंक कर किया जिससे उसकी गर्दन नीचे झुक जाए।

चाणक्य ने कहा था

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
तत्र त्रीणि वर्त्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।

जहाँ अपूज्य लोगों की पूजा हो और जिसकी पूजा होनी चाहिए, उनके प्रति अनादर किया जाये, समाज के ऐसे लोगों से तुम खबरदार हो जाना। जिनका मान करना चाहिये था उनका मान तुम कर नहीं पाये और गलत लोगों को मान दिया इसलिये तीन चीजें तुम्हारे समाज में ज़रूर दिखाई देंगी, दुर्भिक्ष मौतें, लड़ाईयां और भय। समाज में सदा आतंक रहा करेगा। तुम उनको मान देना सीखो जो पूजनीय हैं। उनकी उपेक्षा मत करो क्योंकि तुम्हारे समाज को वे ही लोग बचाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने फिर कहाः

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।२१।।

नरक के तीन द्वार हैं **'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः**। तुम्हारी आत्मा और तुम्हारे आपे का विनाश करने वाले, तुम्हें नीचे गिराने वाले और तुम्हें चोट पहुँचाने वाले तीन द्वार हैं। **'कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं**

त्यजेत्। काम, क्रोध और लोभ। इसलिये इन तीनों को तुम नरक के द्वार समझना। इन तीनों में से कोई किसी न किसी रूप में यदि तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर गया तो तुम्हें अपनी होश नहीं रहेगी। **'काम' में हो तो भी होश नहीं रहेगी और 'लालच' में हो तो भी होश नहीं रहेगी। लालच आ जाये तो भाई को भाई नहीं दिखाई देता, दोस्त को दोस्त नहीं दिखता। लालच में पड़कर बेटे को बाप नज़र नहीं आता, सिर्फ यह दिखाई देता है कि लालच का अभीष्ट कैसे पूरा हो। तुम्हारी चेतना लुप्त हो जाएगी। वासनायें तुम्हें पागल कर देंगी। क्रोध तो बेहोशी का दौरा है ही।**

इसलिए इन तीनों को नरक का द्वार समझना। ऊपर से यह चीज़ें साधारण प्रतीत होती हैं किन्तु ये हमारे अन्दर तूफ़ान की तरह प्रकट होती हैं। यह तूफान जब तक उफ़नता नहीं तब तक हर किसी को लगता है कि वह जब चाहेगा अपने को नियन्त्रण में ले आएगा। लेकिन तूफ़ान जब काबू से बाहर हो जाता है तो उसे कोई नियन्त्रण में नहीं ला सकता। उस तूफ़ानी हालत में कोई दूसरा भी तुम्हें नियन्त्रण में नहीं ला सकता।

कालिदास ने कहा है कि जब पूर्ण फिसलन की संभावनाएं मौजूद हों उस समय जो व्यक्ति दुनिया में अपने आपको बचा ले जाये, वही सबसे ऊँचा इन्सान है। जो अपने आप को रोक ले और स्वयं को रोकने के साथ साथ दूसरे को भी सम्भाले रखे तो ऐसा व्यक्ति सबसे 'गुरु' अर्थात् भव्य होगा।

अथ षोडशोऽध्यायः

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।। १।।

श्रीभगवान् बोले, भय का सर्वथा अभाव; अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञान के लिये योग में दृढ़ स्थिति; सात्त्विक दान; इन्द्रियों का दमन; यज्ञ; स्वाध्याय; कर्त्तव्य पालन के लिये कष्ट सहना; शरीर मन वाणी की सरलता।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।। २।।

अहिंसा, सत्यभाषण; क्रोध न करना; संसार की कामना का त्याग; अन्तःकरण में राग द्वेष जनित हलचल का न होना; चुगली न करना; प्राणियों पर दया करना; सांसारिक विषयों में न ललचाना; अन्तःकरण की कोमलता; अकर्त्तव्य करने में लज्जा; चपलता का अभाव।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्तिं सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।। ३।।

तेज (प्रभाव), क्षमा, धैर्य, शरीर की शुद्धि, वैर भाव का न रहना और मान को न चाहना, हे भरतवंशी अर्जुन! ये सभी दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के लक्षण हैं।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।। ४।।

हे पृथानन्दन! दम्भ करना, धमण्ड करना, अभिमान करना, क्रोध करना, कठोरता रखना और अविवेक का होना भी आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के लक्षण हैं।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।५।।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये और आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये है। हे पाण्डव तुम दैवी सम्पत्ति को प्राप्त हुए हो, इसलिये तुम्हें शोक (चिन्ता) नहीं करना चाहिये।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु।। ६।।

इस लोक में दो तरह के प्राणियों की सृष्टि है, दैवी और आसुरी। दैवी का तो मैंने विस्तार से वर्णन कर दिया, अब हे पार्थ! तुम मेरे से आसुरी का विस्तार सुनो।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।। ७।।

आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानते और उनमें न बाह्यशुद्धि न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य–पालन ही होता है।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।।८।।

वे कहा करते हैं कि संसार असत्य, अप्रतिष्ठित और बिना ईश्वर के अपने आप केवल स्त्री पुरुष के संयोग से पैदा हुआ हैं इसलिये काम ही इसका कारण है, और कोई कारण नहीं है।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।।६।।

उपर्युक्त (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेनेवाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्रकर्मा और संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत् का नाश करने के लिये ही होता है।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।१०।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले तथा अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके संसार में विचरते रहते हैं।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।।११।।

वे मृत्युपर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है', ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्।।१२।।

वे आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्यायपूर्वक धन संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।।१३।।

इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर लीं और अब इस मनोरथ को प्राप्त (पूरा) कर लेंगे। इतना धन तो हमारे पास है ही, इतना धन फिर हो जायेगा।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।।१४।।

वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओं को भी हम मार डालेंगे। हम सर्वसमर्थ हैं। हमारे पास भोग सामग्री बहुत है। हम सिद्ध हैं। हम बड़े बलवान् और सुखी हैं।

आढ्योऽभिजनवानस्मिकोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।१५।।

हम धनवान हैं, बहुत से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान और कौन है? हम खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे और मौज करेंगे इस तरह से अज्ञान से मोहित रहते हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।१६।।

कामनाओं के कारण तरह तरह से भ्रमित चित्तवाले, मोह जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए तथा पदार्थों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।१७।।

अपने को सबसे अधिक पूज्य मानने वाले, अकड़ रखने वाले तथा धन और मान के मद में चूर रहनेवाले वे मनुष्य दम्भ से अविधिपूर्वक नाममात्र के यज्ञों से यजन करते हैं।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।१८।।

वे अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने और दूसरों के शरीर में रहने वाले मुझ अन्तर्यामी के साथ द्वेष करते हैं तथा (मेरे और दूसरों के गुणों में) दोष–दृष्टि रखते हैं।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।।१६।।

उन द्वेष करनेवाले, क्रूर स्वभाव वाले और संसार में महान् नीच, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार बार आसुरी योनियों में गिराता ही रहता हूं।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।।२०।।

हे कुन्तीनन्दन्! वे मूढ मनुष्य मेरे को प्राप्त न करके ही जन्म जन्मान्तर में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अधिक अधम गति में अर्थात् भयंकर नरकों में चले जाते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।२१।।

काम, क्रोध और लोभ–ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करनेवाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।२२।।

हे कुन्तीनन्दन! इन नरक के तीनों दरवाजों से रहित हुआ जो मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, वह परमगति को प्राप्त हो जाता है।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।२३।।
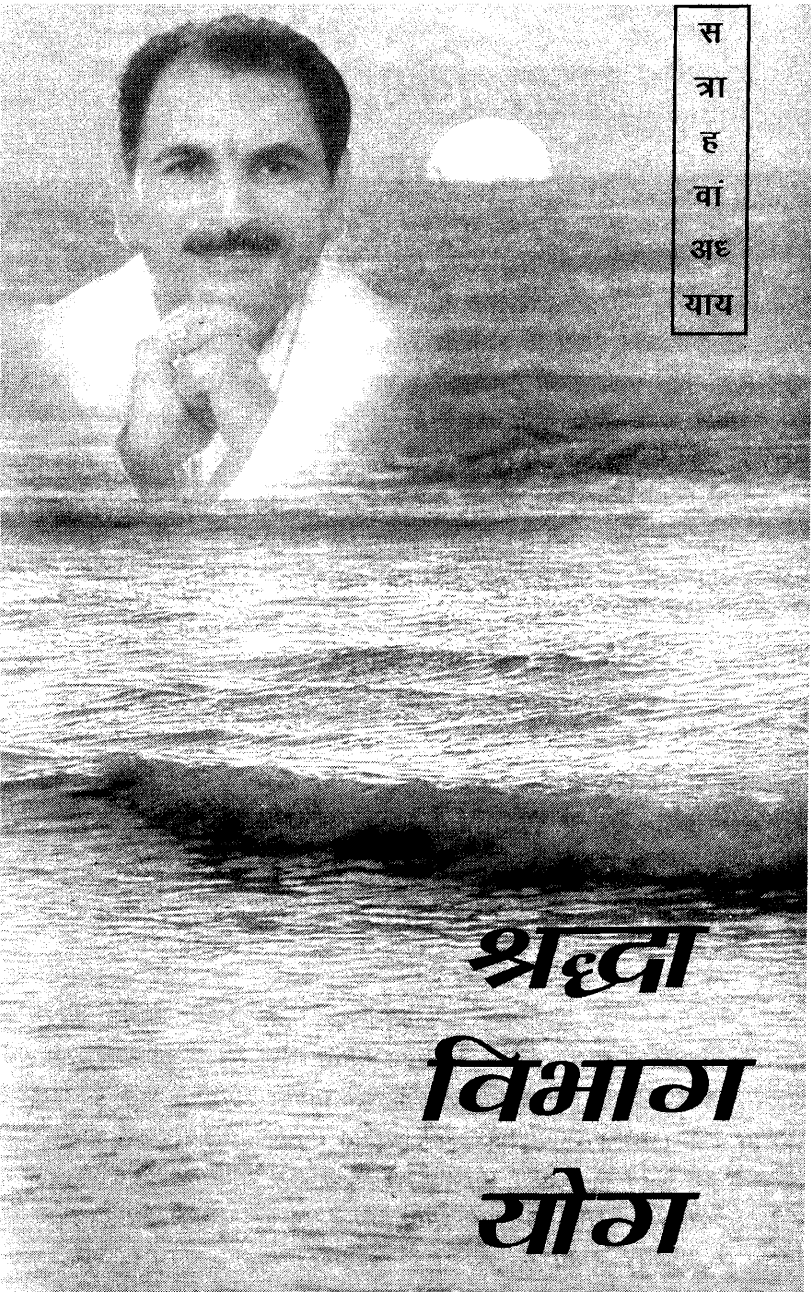
जो मनुष्य शास्त्र विधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरणकी शुद्धि) को, न सुख को और न परमगति को ही प्राप्त होता है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।२४।।

अतः तेरे लिये कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है ऐसा जानकर तू इसी लोक में शास्त्र विधि से नियत कर्त्तव्य कर्म करने योग्य है।

सत्रहवां अध्याय

श्रद्धा विभाग योग

श्रद्धा विभाग योग

सार

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से प्रश्न किया कि जो लोग शास्त्रोक्त विधि का परिपालन न करते हुए भी श्रद्धा और निष्ठा से पूजा पाठ करते हैं उनकी निष्ठा कैसी होती है? सात्विक, राजसिक या तामसिक। श्रीकृष्ण ने कहा कि श्रद्धा और निष्ठा भी कर्म और लक्ष्य के अनुसार गुणातीत होती है। जो देवताओं पर श्रद्धा रखते हैं, उनकी पूजा करते है उनकी श्रद्धा और पूजा दोनों सात्विक हैं। जो यक्ष और राक्षसी शक्ति की पूजा करते हैं उनकी निष्ठा और पूजा राजसिक है। तामसिक प्रवृत्ति के लोगों की निष्ठा भूतों प्रेतों में होती है, वे उन्हीं की पूजा करते हैं। आदमी जिस प्रकार का भोजन करता है और जिस प्रकार का संग करता है उससे उसकी प्रवृत्ति बनती है। ताजा, शाकाहारी रसयुक्त पदार्थों का सेवन करने वाले में सात्विकता उमड़ेगी। गर्म और चटपटा भोजन राजसिक व्यक्ति को प्रिय है। बासी, गंधयुक्त और रसहीन खाद्यों का सेवन तामसिक गुणों को पैदा करता है। भोजन के अनुरूप व्यक्ति की श्रद्धा और निष्ठा का विकास होता है। सात्विक व्यक्ति विद्वानों की संगत में बैठना पसंद करेंगे। राजसिक व्यक्ति बड़बोलों और घमण्डियों की संगत में बैठेगा और तामसिक शराबियों और हिंसक प्रवृत्ति वालों की।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से मानव जाति को संदेश दिया है कि वह शरीर, मन और वाणी से तप करे। वृद्ध जनों और पीड़ितों की सेवा करना शरीर का तप है। अपनी पूजा को पवित्र बनाने के लिए न अपने को कष्ट दो, न दूसरों को। अगर दिया तो वह राजसिक तप हो जाएगा क्योंकि उसके पीछे कोई कामना जरूर छिपी होगी। जिसका तप सात्विक है वह बिना किसी कामना के सरल सहज भाव से अपने कर्त्तव्य करता है।

तप आत्मा को आलोकित कर आंतरिक शक्तियों को जागृत करता है। भगवान श्रीकृष्ण ने वाणी के तप को बहुत महत्त्व दिया है। कडुवें बोल, अपशब्द, व्यंगात्म शब्द आदमी को शारीरिक चोट से ज्यादा चोट पहुँचाते हैं। अहिंसा, ब्रह्मचर्य अर्थात् अपनी ऊर्जा शक्ति को संयमित एवं नियंत्रित रखकर, पवित्रता एवं स्वच्छता को ध्यान में रखकर मनुष्य द्वारा किया कर्म सात्विक तप है। मनुष्य की श्रद्धा, निष्ठा और आस्था शास्त्रोक्त विधि विधान पर नहीं उसके अपने स्वभाव और प्रवृत्ति के अनुसार बनती है, व्यक्ति के आहार, व्यवहार, आचार, संग, संयम, संतोष. विचार. विवेक और चयन की योग्यता और यक्ति पर निर्भर है।

ता के सत्रहवें अध्याय 'श्रद्धा विभाग योग' के प्रारम्भ में ही अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से एक प्रश्न किया:

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।।1।।

"हे कृष्ण! जो व्यक्ति शास्त्र की विधि को छोड़कर श्रद्धा से पूजा पाठ करते हैं उन लोगों की भी कहीं न कहीं निष्ठा होती है। तो उनकी निष्ठा को क्या कहा जायेगा, सात्विक, राजसिक अथवा तामसिक? संसार में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो शास्त्र का अनुसरण नहीं करते, शास्त्र को नहीं अपनाते लेकिन पूजा पाठ श्रद्धा भावना के साथ करते हैं। हर व्यक्ति की अपनी एक निष्ठा होती है और अपनी श्रद्धा के अनुरूप हर व्यक्ति पूजा अर्चना करता है। तो क्या उसकी श्रद्धा फलती नहीं?" हर व्यक्ति अपनी श्रद्धा के अनुरूप संसार में व्यवहार करता है। व्यक्ति का दृष्टिकोण जैसा होता है वैसा ही वह व्यवहार करता है। उसके दृष्टिकोण के पीछे उसकी श्रद्धा होती है। उसके अपने व्यक्तित्व के पीछे भी उसकी अपनी निष्ठा और श्रद्धा है।

हम लोग जिस काम में भी पूरी शक्ति से, पूरे वेग से लगे हुए हैं, उसे करवाने में जो ऊर्जा हमें आगे बढ़ा रही है वह और कुछ नहीं हमारी श्रद्धा भावना ही है। किसी की श्रद्धा है कि धन कमाने में ही मान और सुख है। किसी व्यक्ति का ध्यान इस बात में लगा होता है कि वह दुनिया में जितने दिन भी रहे ज्ञानार्जन करता रहे। वह समझता है कि तजुर्बा व्यक्तित्व को ऊँचा उठाता है, इसलिये उसकी श्रद्धा ज्ञानार्जन में होती है। इसलिये वे शास्त्र पढ़ते हैं, ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, दुनिया का भ्रमण करते हैं, जीव जन्तुओं के बारे में जानने की कोशिश करते हैं, बिभिन्न समाजों की संस्कृतियों के बारे में जानकारी हासिल करते हैं। इस प्रकार उनकी श्रद्धा प्रज्ञा का रूप लेती है।

किसी व्यक्ति की श्रद्धा और निष्ठा कर्म में होती है। वह बड़े बड़े काम करने की योजना बनाता है। उसके मन में बहुत सारे कार्य करने के लिए

हर समय कुछ न कुछ विचार चल रहा होता है। वह खाली नहीं बैठना चाहता। हर समय अपने विचारों और योजनाओं को कार्यान्वित करने में लगा रहता है। हर समय काम करता रहता है। क्योंकि उस आदमी की श्रद्धा कर्म में है। उसकी श्रद्धा के अनुरूप ही उसके कर्म होंगे। जिसको अपने कर्त्तव्यों के प्रति श्रद्धा है उसको लगेगा कि जो करणीय कार्य हैं उसे उन्हें करना चाहिए। पहले वह इस पर ध्यान देगा कि उचित क्या है और अनुचित क्या है? फिर निष्ठापूर्वक उन्हें पूरा करने में जुट जाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना आदर्श बनाता है। जिस वस्तु, गुण अथवा भाव में अपनी भावना दृढ़ करके उसके प्रति हृदय में आदर तथा विश्वास जगाता है उस वस्तु, गुण अथवा भाव के प्रति उसकी श्रद्धा बनती है। दृढ़ विश्वास, उत्कट इच्छा, आदर और सम्मान की भावना को ही हम श्रद्धा एवं निष्ठा कहते हैं। भगवान कृष्ण ने अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि हर व्यक्ति के अन्दर एक श्रद्धा होती है और वह अपनी श्रद्धा के अनुरूप अपना चरित्र, और व्यक्तित्व बनाता है। श्रद्धा चन्द्रमा की तरह घटती बढ़ती भी है। कम होगी, बढ़ेगी, स्थिर होगी, डांवांडोल भी होगी। किसी व्यक्ति की श्रद्धा समाज सुधार में है तो उसका सामाजिक कार्यों में ध्यान रहेगा। वह दुनिया और उसकी व्यवस्थाओं की कमियों के बारे में सोचेगा। कोई आदमी दुनिया के बारे में सोचता ही नहीं। वह सारी दुनिया को छोड़कर अकेला एक कोने में जाकर बैठ जाएगा। कोई जंगल ढूंढेगा, किसी पहाड़ की तलहटी में बैठेगा या किसी ऊँचे पेड़ की छाया में बैठकर, दुनिया से दूर होकर अकेला अपना समय गुज़ारेगा। इसका मतलब है कि उसकी श्रद्धा समाज के प्रति नहीं है, अपनी निजता के प्रति है। वह व्यक्तिगत जीवन जीना चाहता है।

कई लोग ऐसे हैं जिनकी श्रद्धा प्रकृति में है। इसलिए वे दुनिया से अलग प्रकृति के बीच जायेंगे। कुछ लोग इस तरह के भी होते हैं जिनको नदी, पहाड़ यह सब अच्छा नहीं लगता। उनको लगता है कि नगर के कोलाहल के बीच रहना चाहिए। वे लोग बड़ी इमारतों वाले नगर में जाकर रहेंगे, वहीं बसना ठीक समझेंगे। उनको चहल पहल अच्छी लगती है, शोर

शराबा पसन्द है। उनको रौनक पसन्द है। किसी व्यक्ति की श्रद्धा सौभ्यता और गंभीरता में है। वह बहुत गम्भीर रहेगा, गम्भीर बातें करेगा। बहुत ज़्यादा बोलने वाला आदमी उसको छिछला लगता है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें गुमसुम आदमी पसंद नहीं। उन्हें चपलता, चंचलता और हलचल पसंद है। उन्हें गंभीर लोग मौत आने से पहले ही मुर्दा लगते हैं। अपनी श्रद्धा के अनुसार उनका कहना है कि दुनिया में ऐसी कौन सी चीज़ है जो अपनी जगह स्थिर है? यदि हवा रुक जाए तो घुटन लगती है। नदी रुक जाए तो गंदी हो जाती है। फूल अगर एक ही स्थिति में रुके रह जाएं तो मुरझा जायेंगे। ज़िन्दगी में सर्वत्र गति है, प्रवाह है। फिर आदमी क्यों रुक कर बैठे? उन्हें संगीत भी वैसा ही पसन्द आएगा जिसमें तेज़ी हो। जो संजीदगी प्रिय हैं वे संगीत भी संजीदा सुनेंगे। कुछ लोग संगीत में थिरकन पसन्द करते हैं तो किसी को संगीत में ठहराव पसंद है। मन्थर गति से स्वर बहने चाहिए। **आदमी का व्यक्तित्व कैसा है यह उसकी श्रद्धा और निष्ठा पर निर्भर करता है।**

श्रद्धा का स्वरूप बहुत विस्तृत है। श्रद्धा शब्द का विच्छेद किया जाए तो श्रत्+धा अर्थात् सत्य+धा, यानि सत्य को धारण कर लेना, सच्चाई के करीब हो जाना श्रद्धा है। दूसरे शब्दों में 'सत्' अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक रहना और उसे धारण किए रहना ही तुम्हारी श्रद्धा है। किसी व्यक्ति के प्रति आपकी श्रद्धा है तो आपकी भाषा उसकी जैसी बन जाएगी; जिसके प्रति आपकी श्रद्धा है उसी के जैसा आपका व्यक्तित्व हो जायेगा। बोलना चालना, उठना, बैठना, चलना उस जैसा हो जायेगा।

जिसके प्रति आपकी श्रद्धा है आपके गुण और चिन्तन उसके अनुरूप हो जायेंगे। शुरू में बच्चे में माँ के प्रति श्रद्धा होती है। वह लड़का होने के बावजूद माँ की तरह बिन्दी लगाएगा, शीशे के सामने बैठ जाएगा और माँ की तरह से अपने आपको सजाएगा। हो सकता है कि माँ जो श्रृंगार करती है वही श्रृंगार होठों पर, चेहरे पर लगाकर शीशे में अपने को देखे। उसे माँ जैसा बनना अच्छा लगता है। वह माँ का प्रतिबिम्ब बनकर झलकना चाहता है क्योंकि उसकी श्रद्धा सिर्फ़ माँ के प्रति है। अगर डरेगा तो माँ

को पुकारेगा, कुछ खाना है तो माँ से कहेगा, उसके लिये माँ ही सब कुछ है। थोड़ा बड़ा हुआ तो अब उसे लगता है कि माँ के साथ सिर्फ़ घर में ही बैठे रहना होता है, इससे अच्छा है कि पिता की उंगली पकड़ी जाए।

पिता की उंगली पकड़ी तो उसको बहुत अच्छा लगा। पिता दफ़्तर जाने लगे तो बच्चा रोएगा, साथ चलने की ज़िद करेगा। अब उसकी श्रद्धा पिता पर हो गई है। पिता की तरह कपड़े पहनता है, पिता की नकल करता है, पिता जैसा बनना चाहता है। पिता डाक्टर है तो वह भी स्टैथोस्कोप की तरह की कोई चीज़ गले में डालेगा और दूसरे का मुआयना (चैकअप) करना शुरू करेगा। टार्च लेकर आएगा और बच्चों से कहेगा मुँह खोलो, जीभ बाहर निकालो। पिता अगर दुकानदार है तो बच्चा तराजू लेकर बैठ जाएगा या तराजू जैसी कोई चीज़ उठा लेगा और तोलने बैठ जायेगा। पिता अगर किसान है तो बच्चा लकड़ी का हल बनाएगा और उसको लेकर खेती करने चल पड़ेगा। बच्चे का ध्यान पिता के काम की तरफ़ रहता है, क्योंकि श्रद्धा पिता में है।

बच्चा इससे थोड़ा सा और आगे बढ़ता है तो स्कूल जाता है। तब वहाँ जो अध्यापक है उस के प्रति श्रद्धा जागती है। वही शैली, वही विद्या, खड़े होने तथा बात करने का वही तरीका अपनाने की कोशिश करता है। हो सकता है तो बच्चों को बैठाकर उसी तरह से डांटना शुरू कर देगा, उनको समझाना और पढ़ाना शुरू कर देगा। जिसके प्रति उसकी श्रद्धा होगी, उसकी बात जल्दी समझ में आ जायेगी। मां बाप अक्सर कहते हैं कि बच्चा बात नहीं मानता, इसकी टीचर (अध्यापिका) से शिकायत करनी पड़ेगी। अध्यापिका ने अगर कह दिया कि खाना खाना, दूध पीना, सब्जी भी खाना, फल भी खाना तो बच्चा सोचता है कि टीचर ने कहा है इसलिए बात मान जाओ क्योंकि उसके प्रति श्रद्धा है। **जिसके प्रति आपकी श्रद्धा है उसकी हर बात मानने को आपका जी करता है।**

अगर भगवान पर आपकी श्रद्धा नहीं है तो चाहे वह स्वयं ही धरती पर आ जाए तो भी उसकी बात पर आप ध्यान नहीं देंगे। दुर्योधन की श्रद्धा भगवान पर नहीं थी इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कितना समझाया, पर

उसकी समझ में कुछ नहीं आया। विदुर की श्रद्धा भगवान श्रीकृष्ण में थी। वह भगवान श्रीकृष्ण को अपनी कुटिया में ले जाना चाहता था। इसलिए भीड़ में खड़ा होकर वह बहुत प्यार से भगवान श्रीकृष्ण को निहारता रहता था। **जिसके प्रति श्रद्धा है व्यक्ति उसे अपने घर में, अपने दिल में, अपने सपनों में और अपने विचारों में ले आना चाहता है। जिसके प्रति श्रद्धा नहीं है उसकी शक्ल भी नहीं देखना चाहता। उसकी कोई बात पसन्द नहीं आएगी। इसलिए सब कुछ आपकी श्रद्धा पर निर्भर है।**

लोग आपकी श्रद्धा को हिलाने डुलाने का प्रयास करेंगे। अगर आपकी श्रद्धा हिली तो जिसके प्रति श्रद्धा थी उसे तो कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा, लेकिन आपका ईमान हिल जाएगा। वही मन्दिर है, वही गुरु है, वही सत्संग है लेकिन उनमें आपकी श्रद्धा नहीं रही तो फिर प्रभु की कृपा भी नहीं होती। रावण के सामने राम खड़े हैं, पर उन पर रावण को श्रद्धा नहीं है इसलिए बहुत समझाने से भी बात नहीं बनी। उधर शबरी श्रद्धापूर्वक इंतजार में बैठी रही, कोई दिन ऐसा नहीं बीतता जिस दिन उसने उस रास्ते को साफ़ नहीं किया जिससे उसने राम के आने की उम्मीद लगाई थी। वह रोज़ पलकें बिछा कर राह देखती रहती थी। शबरी की श्रद्धा राम को उसके घर ले आई।

राम आए और उसकी कुटिया में बैठे। शबरी उन सब पेड़ों के बेर लेकर आई जिन्हें वह मीठा समझती थी। लेकिन फिर भी उसे लगा कि जो फल वह अपनी श्रद्धा के पात्र प्रभु राम के लिए लाई है, वे कहीं कड़वे या खट्टे न हों इसलिए उसने बारी बारी से सब बेर चख कर देख लिए थे। इस श्रद्धा को सिर्फ़ राम ही समझ सकते थे। राम ने शबरी की श्रद्धा के वे झूठे बेर बड़े प्रेम से खाये। तत्पश्चात आत्मविभोर होकर शबरी ने राम से बड़ी श्रद्धा से पूछा कि "भक्ति की शक्ति क्या है और मुक्ति कैसे होती है?" राम जी ने फिर भक्ति, भक्ति की शक्ति और मुक्ति की युक्ति आदि को नवधा भक्ति के रूप में शबरी के सामने प्रस्तुत की। कहते हैं कि उसके बाद योगाग्नि जागृत करके शबरी ने अपने शरीर को परम सत्ता के प्रति अर्पित कर दिया। ज्ञान जब इतना जागृत हो गया कि आत्मस्वरूप की

प्रतीति हो गई तो अब श्वास लेने का कोई फ़ायदा नहीं। शरीर धारण किये रहने से कोई लाभ नहीं सो शबरी ने अपनी मुक्ति कर ली।

जिसकी श्रद्धा अपने देश के प्रति है वह राष्ट्र के लिए अपने आपको, अपने तन, मन, धन सब कुछ, अर्पित कर देगा। वह क्या चीज़ है जो किसी कीट पतंग को आग में जल जाने के लिए उकसाती है? छोटा सा कीट उड़कर आता है और दीपक की लौ में जल जाता है। लौ के पास आकर पंख फैलाकर आग की लपट के ऊपर बैठ जाता है। अगर आग में वह पूरा जल नहीं पाया और नीचे गिर गया तो ज़मीन पर गिर कर भी वह उसी लपट की तरफ़ ही देखता रहता है। वह क्या चीज़ है जो उसको आग की ओर ले गयी, उसे जलने के लिए उकसाया? इसे आप प्रेम कहेंगे। लेकिन यह प्रेम नहीं है, यह श्रद्धा है, अथाह श्रद्धा जो जलने को प्रेरित करती है।

एक हल्की सी सुई भी चुभे तो आपको दर्द होता है लेकिन किसी आदर्श के लिए लोग अपने को जलाने को तैयार हो जाते हैं। थोड़े समय पहले की बात है। छोटी उम्र के नौजवानों ने अपने शरीर को आग लगा ली। उन्हें लगा था कि अब पूरे देश के अन्दर लहर पैदा करने के लिए कुरबानी की आवश्यकता है। किसी चीज़ के विरोध में और किसी सामाजिक न्याय के प्रति निष्ठा दिखाने के लिए वे अपने को आग में जलाने के लिए तैयार हो गए। एक छोटी सी सुई चुभ जाए, थोड़ी सी आंच लग जाए तो आदमी कराह उठता है। लेकिन जब कोई अपने को जलाने को तैयार हो जाए, अपने को मारने को तैयार हो जाए, मिटाने को तैयार हो जाए, अपना सर्वस्व देने को तैयार हो जाए तो ऐसी कौन सी शक्ति है जो इतनी हिम्मत देती है, वह है श्रद्धा। **श्रद्धा किसी भी वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति, व्यक्तित्व, आदर्श अथवा कर्त्तव्य के प्रति हो वह मनुष्य को बहुत आगे तक ले जाएगी। श्रद्धा ही सब कुछ है। श्रद्धा आपका व्यक्तित्व बनाती और संवारती है।**

श्रद्धा भी तीन तरह की होती है एक सात्विक, दूसरी राजसिक तथा तीसरी तामसिक। सात्विक श्रद्धा ज्ञान, भक्ति तथा कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा जागरूक करने वाली श्रद्धा है। सात्विक श्रद्धा से युक्त व्यक्ति समाज को

लाभ देने के कार्यों में लगा रहता है। यदि खुद कुछ नहीं कर पाएगा तो दूसरे व्यक्ति को प्रेरित करेगा। वह ज्ञान का प्रचार करेगा। बड़े बड़े सत्संगों का आयोजन करवाएगा क्योंकि उसे ज्ञान और भक्ति के प्रतिं श्रद्धा है। सात्विक आदमी शान्त, शालीन और सहज होगा। एक दूसरा व्यक्ति है जो बहुत ज्यादा कर्मठ है उसे किसी और बात में यकीन नहीं है। उसके लिए कर्म सर्वोपरि है। ऐसे जोशीले व्यक्ति की श्रद्धा राजसिक है। तीसरा व्यक्ति है जो कहता है कि जो होना है अपने आप हो जाएगा। कहीं जाने या कुछ करने की ज़रूरत नहीं हैं। आराम से बैठा रहेगा और दूसरे को भी कर्म करने से रोकेगा। कहेगा कि हाथ पाँव पटकने से कुछ नहीं बनने वाला, जोश में आने से कोई फ़ायदा नहीं। जो मिलना है घर बैठे मिल जाएगा। वह कुछ करना नहीं चाहता, बस ऐसे ही सब कुछ पा लेना चाहता है। उसकी श्रद्धा तामसिक होती है।

व्यक्तियों की पूजा भी विशेष होती है। व्यक्ति निष्काम भाव से केवल अपना कर्त्तव्य निभाने के लिए पूजा करता है। प्रभु के प्रति श्रद्धा के कारण वह पूजा करता है। उसे यह ध्यान नहीं है कि प्रभु उसकी श्रद्धा और पूजा का क्या फल देंगे? राजसिक व्यक्ति फल पाने का ध्यान रखेगा। सोचेगा, इतनी बार आया हूं, सोलह सोमवार हो गए या सोलह शुक्रवार हो गए, पर अभी तक कुछ मिला नहीं। पंडित जी से तब दोबारा पूछेगा। उनके आदेश से चालीस दिन लगातार रोज़ माला जपी। उसकी श्रद्धा राज़सिक है। पूरे जोश के साथ चालीस दिन लगातार दस माला फेरता रहा। वह पूजा तामसिक है जो दूसरों को दिखाने के लिए माला फेरेगा और भगवान से फल का पूरा हिसाब मांगेगा। कहेगा पंडित ने जितना बताया उससे दुगना कर रहा हूँ। तामसिक व्यक्ति साधना में लग गया तो सारी रात बैठा रहा और मन नहीं किया तो सब छोड़छाड़ दिया।

भगवान ने तीन प्रकार की श्रद्धा का वर्णन किया है। तीनों तरह के लोग, सात्विक, राजसिक और तामसिक अलग अलग श्रद्धा के कारण चाहे अलग अलग ढंग से पूजा करें, पर पाठ पूजा करते तो हैं, भगवान की आराधना और भक्ति करते ही हैं। यह भक्ति अपना फल तो देगी ही।

सात्विक भाव से श्रद्धा भक्ति करने वाले लोग दुनिया में बहुत कम मिलेंगे, राजसिक वाले ज़्यादा मिलेंगे और तांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा तामसिक भक्ति करने वाले लोग तो बहुत ही ज़्यादा हैं। **श्रद्धा जब राजसिक होती है तब व्यक्ति कर्मकाण्ड की तरफ ज़्यादा जाता है। वह बड़े बड़े यज्ञ और पूजन करेगा। श्रद्धा जब सात्विक होती है तब व्यक्ति दिखावे वाला कोई काम नहीं करेगा। अपने अंतर में ही आनन्द लेगा, बाहर लोगों को पता ही नहीं लगने देगा कि वह कोई भक्ति भी करता है।** सहज और शान्त रहेगा। उसके हाथों से कोई बड़ा काम हो जाए तो भी लोगों से यही कहेगा कि उसने कुछ नहीं किया, कराने वाले ने करा दिया। कहेगा कि प्रभु की प्रेरणा हुई, भाईयों की कृपा हो गई, और मित्रों का सहयोग मिल गया तो भगवान का सेवादार बनकर कार्य करने का मौका मिल गया। हम लोग श्रद्धा को बहुत ज़्यादा महत्त्व नहीं देते परंतु भगवान श्रीकृष्ण ने श्रद्धा को बहुत महत्त्व दिया है।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से मनुष्य की व्यक्तिगत निष्ठा के बारे में प्रश्न किया था। निष्ठा को एक और नाम दे सकते हैं वफ़ादारी। किसी के प्रति आप वफ़ादार होकर रहें तो इसका मतलब है कि उसके प्रति आपकी निष्ठा है। निष्ठा का अर्थ है श्रद्धा; तो जिसके प्रति निष्ठा है उसके प्रति आपकी श्रद्धा भी है। जिसके प्रति आप वफ़ादार होंगे उसके लिए अपनी जान देने में भी आप हिचकिचाएंगे नहीं। अपनी निष्ठा और श्रद्धा में आप एक बार जो निश्चय कर लेंगे उस पर कायम रहेंगे। स्थिर होकर कहेंगे कि आपने वह श्रद्धा अपनाई है जो आपकी गहरी निष्ठा है, **अपनी वफादारी के प्रति पूर्ण निष्ठा ही आपकी श्रद्धा है।**

जिन लोगों की श्रद्धा गहरी थी उन लोगों ने तो साधारण पत्थर में भी भगवान को देख लिया, परंतु जिनकी श्रद्धा में गहराई नहीं थी उनके सामने भगवान साक्षात् खड़े रहे पर उन्हें इसका आभास भी नहीं हुआ। प्रत्येक व्यक्ति में, हर वस्तु में, हर जीवधारी में भगवान का रूप देखने वाले एकनाथ ने एक साधारण से गधे के अन्दर भगवान का रूप देखकर अपना जल उसको पिला दिया। जो अन्य भक्त साथ चल रहे थे उनको जानवर

में प्रभु के रूप का दर्शन नहीं हुआ। उन्होंने यही देखा कि गधे को पानी पिलाया जा रहा है और पिला कौन रहा है, इतना बड़ा सन्त! उन सबने विरोध करना शुरू कर दिया। कहा, "महाराज! भगवान शंकर को जो जल चढ़ाना था वह आप किसको पिला रहे हैं? जानवर को? जानवर भी कौन सा? निकृष्ट पशु गधा, उसे जल पिला रहे हैं? समझ में नहीं आता कि आपकी पूजा कैसे स्वीकार होगी क्योंकि आपने तो विधि विधान छोड़ दिया"। सन्त एकनाथ ने उत्तर दिया, "तुम्हारा जल भगवान स्वीकार करेंगे या नहीं इसमें सन्देह है, लेकिन मेरा जल तो मेरे प्रभु ने स्वीकार कर लिया"। ऐसी थी एकनाथ की श्रद्धा। उन्हें गुरु के प्रति श्रद्धा थी अतः उनका बताया हुआ सब मान लिया और जीवन में सब प्राणियों को भगवान के रूप में देखने लगे। **जिन लोगों में श्रद्धा की भावना नहीं होती वे भगवान के अस्तित्व और गुरु के ज्ञान पर भी संदेह करते हैं। प्रेम, विश्वास, निष्ठा तथा वफ़ादारी सब आकर जुड़ जाएं, आपके अन्दर दृढ़ता आ जाए तब उन भावनाओं के जोड़ से एक शब्द बनेगा-श्रद्धा।**

डाक्टर ने जो दवाई दी उस पर आपको विश्वास है, इसलिए आपने दवाई खाई। जितना काम दवाई करेगी उससे कहीं ज़्यादा आपकी श्रद्धा काम करेगी। आपका विश्वास काम करेगा। लेकिन यदि विश्वास नहीं है तो फिर अमृत भी मिले तो भी लाभ होने वाला नहीं है। संसार में भरोसा करना ही पड़ता है। अपने ड्राईवर पर, जिसके हवाले आपने गाड़ी की है, भरोसा करना पड़ेगा। जिस नौका में आप बैठ गए उसके मल्लाह पर आपको भरोसा करना पड़ेगा, चाहे वह किसी भी दिशा में लेकर जा रहा हो। समुद्र के अन्दर यदि बहुत तेज चलने वाली मोटर बोट में हम बैठें तो सिर्फ़ इतना ही पता होगा कि फलां स्थान को जाना है। परंतु समुद्र के बीच में पहुँचकर हमें पता नहीं लगता कि किस दिशा में जा रहे हैं। उस समय या तो ऊपर वाले पर पूरा भरोसा करो या उस पर जो मोटर बोट लेकर जा रहा है। अब वह तेज़ी से चलाए, उछाले, कुछ भी करे। हमें तो केवल यही पता है कि जो करेगा अब यही करेगा। इसी के भरोसे अपने को छोड़ना है। अगर उस पर भरोसा नहीं करेंगें और हम अपने हाथ पाँव

चलाएंगे, तो मामला गड़बड़ हो जाएगा। अन्ततः जब उसने पार लगा दिया तो समझ में आया कि उस नाविक के प्रति हमारी श्रद्धा, हमारी भावना या हमारा विश्वास रखना सही था।

आप जो बनना चाहते हैं उसके प्रति आपका विश्वास होगा तो आप वह बन सकेंगे। कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति कुछ बनना चाहता है लेकिन बीच में विघ्न बाधाएँ आ जाएं तो वह अपनी श्रद्धा व आस्था को छोड़ कर निराश होकर बैठ जाता है। लेकिन बाधाओं के बावजूद अपनी श्रद्धा की अग्नि की उष्णता के कारण यदि आप बढ़ते रहते हैं तो पहुँचते ज़रूर है मंजिल पर। इसलिए आप अपनी श्रद्धा को बराबर गहरा करते रहिए। श्रद्धा ऊर्जा है, श्रद्धा विश्वास है, श्रद्धा ईमान है। अपनी श्रद्धा पर विश्वास करिये, ईमान लाइए।

किसी निर्दिष्ट के प्रति श्रद्धा है तो उसके प्रति अटूट विश्वास जमाने के लिए संकल्प कीजिए। जो संकल्प आपने अग्नि को साक्षी रखकर ले लिया फिर चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाए, आप अपना वचन नहीं तोड़ेंगे क्योंकि आपने ऊर्जा की प्रतीक अग्नि को साक्षी बना लिया है। इसीलिए विवाह संस्कार में अग्नि को साक्षी रखकर वर वधू जीवन निर्वाहन का अटूट संकल्प लेते हैं। वह कौन सी चीज़ है जो उन्हें जोड़े हुए है। वह परस्पर विश्वास है। जिसके प्रति श्रद्धा है उसके प्रति कोई किसी भी प्रकार की बात करे तो वह बर्दाश्त नहीं होती। अपनी श्रद्धा पर फेंका गया पत्थर भी बर्दाश्त नहीं होता।

झण्डा मात्र कपड़े का एक टुकड़ा नहीं है, हालांकि झंडा कपड़े से ही बनाया जाता है। यह जो राखी बांधी जाती है क्या यह मात्र धागे ही हैं? जो जनेऊ पहना जाता है वह भी धागे का ही तो बना होता है, फिर भी उसके लिए आदमी कटने मरने को तैयार हो जाता है, क्योंकि बात सिर्फ़ धागों की नहीं होती। झंडे के एक गज़ कपड़े की बात नहीं है, उसके पीछे जो भावना है, श्रद्धा है, बात उसकी है। उसके लिए मनुष्य जान की बाज़ी भी लगाने को तैयार हो जाता है। "झण्डा ऊँचा रहे हमारा" इसका अर्थ यह नहीं है कि मेरा कपड़ा ऊंचा रहे जिसे मैंने डण्डे के ऊपर टांग

लिया है। इसका अर्थ है कि मेरा विश्वास बढ़ता रहे, मेरी श्रद्धा बढ़ती रहे। श्रद्धा के प्रतीक झंडे को ऊंचा करने का माध्यम डण्डा है। झंडा ऊँचा तभी रहता है जब डण्डा ऊँचा होता है। जिसका डण्डा ऊँचा उसका झण्डा ऊँचा, जिसका डण्डा छोटा उसका झण्डा भी छोटा। अब डण्डे से मतलब हो गया, ताकत। अपनी श्रद्धा के प्रति आपकी शक्ति भी होनी चाहिए, नहीं तो आपका झण्डा छोटा रह जाएगा, ऊँचा नहीं उठेगा। **आप अपनी श्रद्धा को जितना ऊँचा देखना चाहते हैं उतनी ही अधिक शक्ति का इस्तेमाल कीजिए,** ऊर्जा लगाइए। नहीं तो ये झण्डा ऊँचा नहीं रह सकता।

सात्विक लोग श्रद्धा और शक्ति दोनों का सन्तुलन बनाते हैं। राजसिक व्यक्ति डण्डे (शक्ति) को ज़्यादा महत्त्व देगा, झण्डे को कम, लेकिन सात्विक व्यक्ति दोनों को बराबर का महत्त्व देगा, शक्ति भी होनी चाहिए, श्रद्धा भी होनी चाहिए, सामर्थ्य भी होना चाहिए। शिवाजी को अपने गुरु के प्रति बहुत ज़्यादा श्रद्धा थी। गुरु की श्रद्धा सिर्फ ईश्वर में है और वे जीव मात्र में ईश्वर को देखते हैं। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास एक बार रास्ते पर चले जा रहे थे। उन्होंने सामने गन्ने का एक खेत देखा। बस्ती अभी दूर थी सो बाबा के मन में आया कि सामने वाले गन्ने के खेत से थोड़े से गन्ने ले लिए जाएं। गन्ना चूसकर सामने जंगल में बैठकर भजन पूजन का आनन्द ले लें। बस्ती में जाकर भिक्षा मांगेंगे तो देर लग जायेगी। इसलिये उन्होंने कुछ गन्ने तोड़े और चूसना शुरू कर दिया। तभी गन्ने के खेत का मालिक वहाँ पहुँच गया। उसने क्रोध में आकर महात्मा जी को पाँच सात डंडे जड़ दिए। महात्मा जी ने कुछ नहीं कहा, बस मंगलकामना करते हुए चले गये।

इधर शिवाजी को जब पता चला तो उन्होंने गन्ने वाले किसान के पूरे परिवार को पुलिस भेजकर पकड़वा मंगाया। गुरु का इतना अपमान कि उन्होंने गन्ने लिए तो पाँच डण्डे लगा दिए। उनके गुरु के प्रति इतनी अवज्ञा। शिवाजी के मन में आया कि प्रत्येक को कम से कम पाँच बार फाँसी पर चढ़ाया जाये। उन्होंने गुस्से में आकर दण्ड देने की घोषणा कर दी। परिवार के लोग रोने लगे। किसान कहता है, "माई बाप, मुझे तो पता

ही नहीं था कि वे आपके गुरु जी हैं।" शिवाजी बोले, "यह तो पता था कि साधु हैं। साधु ने यदि गन्ने ले लिए तो उसके लिए तुम उन्हें मारने पीटने लगे?" वे लोग बहुत रोये पर शिवाजी नहीं माने।

इधर गुरु जी को पता लगा तो वे भागते हुए आए और आते ही कहने लगे, "शिवा इस आदमी ने जो कुछ किया उसके बदले में इसको क्या देना चाहिए वह मैं तुम्हें बताता हूँ। इस आदमी के पास थोड़ी सी ज़मीन है। थोड़ी सी ज़मीन में थोड़े से गन्ने पैदा होते हैं। इन थोड़े से गन्नों से इसका गुज़ारा पहले ही नहीं चलता, अब उनमें से भी इसको थोड़ा और नुकसान होता है तो उसे बहुत ज़्यादा दर्द होता है। इस आदमी की गरीबी ने इसको गुस्सा दिलाया। इसको फाँसी देकर क्या इसका दुःख दूर कर सकता है"।

शिवाजी ने तब कहा, "गुरुदेव फिर आप ही बताइये कि मैं क्या करूं?" वे बोले, "इस आदमी को अपनी तरफ से पाँच बीघे ज़मीन दान दे दो। इसकी गरीबी भी दूर हो जाएगी और इसके खानदान में फिर कभी कोई गुस्सा भी नहीं करेगा। हर आदमी यह कहेगा कि न जाने किस रूप में कब कौन महापुरुष सामने आ जाए जो भगवान का रूप हो"। जब शिवाजी को गुरु की बात समझ में आ गई तो उन्होंने उनके आदेशानुसार पाँच बीघा जमीन किसान को दान में दे दी।

दान करने के बाद शिवाजी ने आनन्द का अनुभव किया। उन्होंने सोचा कि यह भी एक प्रकार का इन्साफ़ है जो हमारी बुद्धि में नहीं आता, सिर्फ़ गुरु की ही समझ में आता है। यह घटना शिवाजी और गुरु रामदास, दोनों के जीवन में अविस्मरणीय बन गई। इस घटना से पता चलता है कि जिसकी जैसी निष्ठा और भावना होती है व्यक्ति वैसा ही ढल जाता है। वैसा ही उसका रूप बन जाता है। हम देखें कि हम किस प्रकार की निष्ठा, कैसी श्रद्धा और कैसी आस्था रखते है? प्रत्येक वस्तु और घटना के बारे में क्या सोचते हैं? क्योंकि जैसा भी हम सोचेंगे वैसी ही हमारी श्रद्धा बनेगी। वैसी ही हमारी भावनाएँ, निष्ठा और वफादारी बनेगी। उसी के अनुरूप हम संसार में व्यवहार करेंगे। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उत्तर दिया :

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रृणु।।२।।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि श्रद्धा तीन प्रकार की होती है, सात्विक, राजसिक और तामसिक। श्रद्धा स्वाभाविक रूप से हर किसी में होती है। स्वाभाविक रूप से व्यक्ति श्रद्धायुक्त होकर ही दुनिया में आता हैः

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।३।।

हर व्यक्ति का चरित्र उसकी श्रद्धा के अनुरूप ढलता है। यदि स्वाभाविक रूप से हम उग्र स्वभाव के व्यक्ति हैं क्योंकि अन्दर राजसिकता है, तो किसी के समझाने से थोड़ी देर के लिए तो हम शान्त हो जायेंगे, पर फिर किसी न किसी बात को लेकर गुस्सा आ जाएगा। अगर हम तामसिक व्यक्ति हैं तो फिर हमारा रूप इस प्रकार का होगा कि यदि एक बार किसी व्यक्ति के साथ कोई लड़ाई हो गई तो ज़िन्दगी खत्म हो सकती है, वैर खत्म नहीं होगा। श्रद्धा का एक सात्विक रूप भी है जो व्यक्ति को सहनशील, शालीन और सहज स्वभाव वाला बनाता है। वह कडुवा सुनकर भी कडुवा जवाब नहीं देगा। कडुवा सुनकर भी मीठा बोलेगा, आक्रोश करने वाली स्थिति में भी आक्रोश नहीं करेगा। पर जो कभी देश के प्रति, धर्म के प्रति, कर्त्तव्य के प्रति लड़ना पड़े तो फिर उसका जोश कम नहीं होगा, बढ़ता जाएगा।

जहाँ ताकत दिखाने की आवश्यकता है वहाँ दिखाओ; हर समय उबलते उफनते मत रहो। सात्विक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को अगर कमज़ोर आदमी भी डाँट कर चला जाएगा तो वह हँसता रहेगा, मुस्कुराता रहेगा। लेकिन कोई ताकतवर अत्याचारी अगर आ जाये तो वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर उससे भिड़ जाएगा। सात्विकता में संघर्ष करने की शक्ति होती है लेकिन हर समय किसी को दबाने की कामना नहीं। यहाँ तक कि युद्ध में जीतने के बाद भी यदि देखेगा कि शत्रु सुधर गया है तो उसे क्षमा कर देगा।

जरासन्ध दुष्ट व्यक्ति था। भगवान श्रीकृष्ण ने उसको दण्डित किया और भीम को उसे मारने के लिए कहा। जरासन्ध मारा गया पर चूंकि

उसके खानदान के प्रति भगवान श्रीकृष्ण को कोई वैर नहीं था इसलिए उन्होंने उसके बेटे को बुलाकर कहा कि सारी प्रजा जिस व्यक्ति के प्रति विरोध कर रही थी और जिसके द्वारा अनेक लोग दुःख पा रहे थे, युद्ध में उसका अन्त हो गया है। लेकिन हम तुम्हारा राज्य लेने के लिए नहीं आए हैं। तुम्हारी सम्पत्ति को भी हम लेना नहीं चाहते। यह सम्पत्ति, यह राज्य और यह प्रशासन, सब तुम्हारे लिए है। इस प्रकार जरासंध के बेटे को राजगद्दी पर बिठाकर उसका तिलक किया और तिलक के बाद उससे कहा, "तुम्हारी निष्ठा युधिष्ठिर के प्रति रहनी चाहिए। इनके अनुसार प्रशासन को चलाओ तथा कुछ टैक्स इन्हें देते रहो। यह इस बात का प्रतीक होगा कि तुम्हारे ऊपर कोई नियन्त्रण करने वाला बैठा है"। इस प्रकार नियन्त्रण तो रखा पर जीतने के बाद भी सब सम्पत्ति लौटा दी। कई लोग ऐसे भी हैं जो जीत नहीं सकते लेकिन छल कपट से हड़पना चाहते हैं, छीन लेना चाहते हैं, वे तामसिक होते हैं। इस प्रकार तीन तरह के लोग हैं, क्योंकि श्रद्धा तीन तरह की है।

व्यक्ति किसी कार्य में कितनी गहराई और निपुणता से लगा हुआ है इससे उस कार्य के प्रति उसकी श्रद्धा का पता चलता है। धन कमाने के लिए कोई व्यक्ति बेईमानी करता है तो उस व्यक्ति की आन्तरिक स्थिति और धन के प्रति उसकी कितनी श्रद्धा, लगाव और निष्ठा है इसका पता लगता है। अपनी जीत के लिए व्यक्ति दूसरे का कितना बुरा कर सकता है यह उस व्यक्ति के अन्तःकरण पर निर्भर करता है। **हमारा अन्तःकरण हमारी श्रद्धा के अनुरूप होता है इसीलिए भगवान ने कहा कि जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसका व्यक्तित्व होता है।** व्यक्ति स्वभाव के रूप में अपनी श्रद्धा और निष्ठा लेकर आता है और उसी के अनुरुप उसका आचरण और व्यवहार बनता है।

जो लोग सात्विक हैं वे देवताओं का पूजन करते हैं। जो राजसिक लोग हैं वे यक्ष तथा राक्षसों का पूजन करते हैं और तामसिक लोग भूत, प्रेत आदि का पूजन करते हैं। जो देवताओं का पूजन करते हैं, उनमें दैवी

गुण झलकते हैं। इसी प्रकार क्रमशः राजसिक लोगों में यक्षों एवं राक्षसों तथा तामसिक लोगों में भूतों एवं प्रेतात्माओं की छवि दिखती है। **अग्निहोत्र के माध्यम से जो देव पूजन किया जाता है उसके द्वारा जड़ और चेतन जितने भी देव हैं, उन सबका पूजन सम्पन्न होता है।** ऐसा कर वे देवताओं से आशीर्वाद तो लेते ही हैं, साथ ही उनके दिव्य गुण धारण करके देवताओं के करीब हो जाते हैं। उनकी श्रद्धा सात्विक श्रद्धा है।

शिव की आराधना करने वाले भक्त का ध्यान उनके माथे पर शोभित चन्द्रमा पर जब टिकता है तो वह भी अपना माथा चन्द्रमा जैसा शीतल (क्रोध रहित) रखने की चेष्टा करता है। इसी में उसकी श्रद्धा प्रकट होती है। जिसका ध्यान शंकर भगवान के स्वरूप का पूजन करते हुए उनके गले में लिपटे सर्पों पर टिकता है तो वह सोच लेगा कि इस संसार में अपने आसपास वैर करने वाले लोग (सर्प) भी होंगे। सोचेगा कि उन्हें अपने निकट रखना ही अच्छा होगा ताकि उन पर निगाह रखी जा सके। जिस शिव भक्त का ध्यान भगवान शंकर के हाथ में धारण किए त्रिशूल पर होता है वह जानता है कि त्रिशूल के रूप में शंकर उससे तीन प्रकार के दुःखों का वर्णन कर रहे हैं। त्रिशूल संसार में तीन प्रकार के शूल (दुःख) का प्रतीक है जो सबको चुभते हैं। यह है दैहिक, दैविक तथा भौतिक। दैहिक दुःख अर्थात् शरीर का रोग; भौतिक दुःख अर्थात् साधनों की कमी और तीसरा आध्यात्मिक दुःख अर्थात् धर्म कर्म पूजा आदि में बाधा। तो शंकर भगवान जिन्होंने तीनों प्रकार के दुःखों को संभाला हुआ है, उनके त्रिशूल पर ध्यान करने का अर्थ है कि भगवान शंकर हमें तीनों प्रकार के दुःखों से बचाये हुए हैं लेकिन हमें इन तीनों प्रकार के दुःखों के लिए तैयार रहना है।

यदि हम भगवान श्रीकृष्ण को पूज रहे हैं तो भगवान की सोलह कलाओं का ध्यान करें। जिस प्रकार चन्द्रमा १६ कलाओं को प्राप्त करने के बाद पूर्ण होता है उसी प्रकार १६ कलाएं हमारे व्यक्तित्व में भी दिखायी दें तो समझिये कि हमारा पूजन सम्पूर्ण हुआ है। प्रसन्नता, ज्योत्सना, उदारता, विशालता, सरलता आदि व्यवहार की कलाएं हैं। भगवान श्रीकृष्ण की इन कलाओं को अनुभव कर उन्हें अपने व्यक्तित्व में उतारने की चेष्टा

करें। पहली कला है **प्रसन्नता।** श्रीकृष्ण का चेहरा हर समय प्रसन्नता से भरपूर दिखायी देता है। तो जो भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप को पूज रहा है वह प्रसन्नता को धारण कर के उनका ध्यान करे। यदि उनका स्वरूप आपके हृदय को भाता है तो आपका व्यवहार भी ऐसा हो कि आप हर किसी के हृदय को भाएं। श्रीकृष्ण का एक स्वभाव है, **ज्योत्सना।** उनके मुख मंडल की कांति, चमक सर्वत्र दृष्टिगत है इसलिये भक्तों को भी कोशिश करनी चाहिए कि जैसे चन्द्रमा अपनी चांदनी की छटा से सारे संसार का स्वरूप मोहक और शीतल बना देता है, उसी प्रकार वह भी जहाँ जाए वहाँ का सारा वातावरण उसकी ज्योति के अनुरूप ढल जाये, सौन्दर्य से परिपूर्ण हो जाये।

तात्पर्य यह है कि देवताओं का पूजन इस रूप में हो कि उनके दिव्य गुण हमारे अन्दर आ जायें। यह सात्विक श्रद्धा है। चन्द्रमा की १६ कलाओं को आप सम्पूर्णता में देखें तो आपके अन्दर भी वही पूर्णता दिखायी देने लगेगी। पूर्णिमा में चन्द्रमा का सौन्दर्य अपूर्व होता है। इस बात का अहसास करने के लिए कभी समुद्र तट पर खड़े होकर देखें। चन्द्रमा जब पूर्णता की ओर बढ़ता है तो समुद्र का ज्वार ऊपर की तरफ जाता है। लहरें इतनी तेज़ी से ऊपर को उछलती हैं मानो वे चन्द्रमा को छू लेना चाहती हैं। धरती में स्पन्दन पैदा होने लगता है। चन्द्रमा के कारण फूलों और फलों में रस भरने लगता है। जिस भक्त में चन्द्रमा जैसी विशेषता आ गयी हो उसके अन्दर रस बढ़ना शुरू हो जायेगा, उसके कार्यों में रस दिखायी देने लगेगा।

संसार की हर चीज़ में आकर्षण और विकर्षण दोनों होते हैं। जब समुद्र में एक लहर उठती है तो वह ऊपर जाकर फिर नीचे आती है। संसार की हर चीज़ ऊपर उठने के बाद फिर नीचे वापिस आती है। गेंद फेंकिये तो टकराव के बाद फिर वापिस आयेगी। ध्वनि कीजिये तो वह भी आपके मुँह से निकलने के बाद दूर कहीं टकराकर प्रतिध्वनि के रूप में आपके नज़दीक तक वापिस आयेगी। सारे संसार में वस्तु और व्यक्ति के उठने और फिर नीचे गिर जाने का क्रम दिखायी देता है। यह क्रम चलता

रहता है। किसी वस्तु के प्रति आकर्षण होगा तो फिर विकर्षण होगा। बहुत ज़्यादा प्रेम, फिर बहुत ज्यादा घृणा। मन टूट गया, निराशा हुई तो घृणा हो गयी; मन फिर जुड़ गया तो अतिशय प्रेम हो गया। यह क्रम लगातार चलता रहता है। सांसारिक वस्तुओं में मन सदा एकरस होकर डूबता नहीं है; कुछ समय बाद ऊब पैदा होने लगती है क्योंकि संसार की चीजों में कहीं आकर्षण है तो वहीं साथ में कहीं विकर्षण भी मौजूद है। परन्तु जिसमें कृष्ण स्वरूप की कलाएँ आने लग गयीं उसके अन्दर फिर ऊब पैदा नहीं होती। उस सम्मोहन में आदमी लगातार बंधा रहकर भी कभी ऊबता नहीं। कृष्ण स्वरूप अपने सम्मोहन में सबको बांध लेता हैं।

कृष्ण का अर्थ है काला, अर्थात् एक ऐसा रंग जो किसी पर एक बार चढ़ जाये तो फिर उस पर दूसरा रंग चढ़ने वाला नहीं। कृष्ण को पूजने वाला कृष्णमय हो जाएगा। शिवजी की तरफ ध्यान है तो आप शिवमय हो गये। अगर रामजी का ध्यान है तो आप राममय हो गये। आपको रामजी की मर्यादाएँ ही याद आयेंगी। हर चीज़ में आपको आदर्श नज़र आयेगा। संतुलित बोलना, मर्यादित कर्म करना। कोई प्रलोभन आपको अपनी तरफ़ खींच नहीं पायेगा।

राम अपनी मर्यादा में चलते हैं। उन्हें सब मिलकर समझाने के लिए आये कि आप राज्य ग्रहण कर लीजिए क्योंकि पिता नहीं रहे और देश पर विपत्ति आई है। किसी ने समझाया, "हे राम! आप अयोध्या छोड़कर चले आए, अयोध्यावासी रोते रोते निढाल हो रहे हैं। विपत्ति में आपको अपना संकल्प और भावनाएँ बदल देनी चाहिए।" लेकिन राम अपनी मर्यादा से डिगे नहीं। राम कहते हैं, "कुछ न कुछ रास्ता निकल आयेगा अयोध्या के लिए। मैं अपने वचन से इधर उधर नहीं जाऊँगा।" राम किसी वाक्य को दो बार नहीं दोहराते। ऐसी भाषा नहीं बोलते जिसके दो अर्थ निकल सकें। ऐसा नहीं कहते कि मैंने यह नहीं यह कहा था, आपने गलत अर्थ निकाल लिया। उनकी भाषा सीधी सादी है। इसलिए राम जी का ध्यान और पूजन किया तो राम जी का आदर्श ध्यान में आना चाहिये। वे धीर गंभीर सौम्य शान्त और सहज हैं। उनके मुस्कुराने में भी मर्यादा है, उनके चलने, उठने

बैठने, हर व्यवहार में मर्यादा है। वे अतिशयोक्ति नहीं करेंगे। राम कोई उपदेश नहीं देते, वे जीवन जीकर बताते हैं कि ये आदर्श हैं जिनके अनुसार जीवन जीना चाहिये। उन्होंने कोई गीता नहीं कही लेकिन जो कुछ उन्होंने दिया वह गीता से भी बढ़कर है। राम का ध्यान करेंगे तो आप राममय हो जायेंगे।

देवताओं का ध्यान करने वाला कोई व्यक्ति यदि अग्निहोत्र के माध्यम से पूजन करता है तो वह अग्निहोत्र में जलने वाली अग्नि की प्रखरता को ध्यान में रखेगा। ऊपर की तरफ उठने वाली अग्नि के स्वभाव की तरफ ध्यान देगा। **आग की लपट कभी भी नीचे की तरफ़ नहीं आती, आप कितनी भी कोशिश करें लपट को नीचे की तरफ़ नहीं ला सकते। लौ सदा ऊपर की तरफ़ जाती है।** तो यह बात उस व्यक्ति को ध्यान में अवश्य आयेगी कि वह जिस अग्नि देव का पूजन कर रहा है उसी के समान उसके जीवन का क्रम सदा ऊपर की तरफ़ उठना चाहिये। इसलिए वह सोचेगा कि मैं रोज़ अपने आपको परखूं, कि कहीं मैं नीचे की तरफ़ तो नहीं आ रहा। अग्नि अग्रणी होती है, अग्नि हमेशा आगे की तरफ होती है। लोग अंधेरे में प्रकाश लेकर चलते हैं तो उसे आगे की तरफ़ रखते हैं क्योंकि प्रकाश रास्ता दिखाता है। इसी प्रकार **जिसके अन्दर ज्ञान की अग्नि है वह खुद आगे रहकर दूसरों को रास्ता दिखायेगा।** फिर वह व्यक्ति सोचेगा कि अग्नि देवताओं का मुख है। मुख पवित्र है और अग्नि भी पवित्र है। **अगर समस्त देवताओं का पूजन एक साथ करना है तो सब आहुतियाँ अग्नि को दे दो। अग्नि आगे सब देवों को देगी।** अग्नि में आहुति दी जायेगी तो सबको मिल जायेगी। अग्नि के सम्मुख हाथ जोड़े तो समझो सबको हाथ जोड़ दिये। अग्नि को साक्षी मानकर वचन लिया तो समझिए सभी देवी देवता साक्षी बन गये, क्योंकि उन सबके प्रमुख, अग्नि देव हैं।

अग्नि पांच रूपों में सारे संसार में फैली हुई है। वह दिव्याग्नि बन आकाश में चमकती है, वह जठराग्नि के रूप में आप का भोजन पचाती है, वह गाढ़वत्य अग्नि बनकर आपके घर के चूल्हे में आपका भोजन पका रही है। वह अग्नि चिता में एक और रूप लेकर आती है। इस शरीर में जब

तक अग्नि है, गर्मी है, उष्णता है तब तक आपके प्राण चल रहे हैं। **अग्निहोत्र करेंगे तो आपको दिखायी देगा कि आप अग्नि का पूजन कर रहे हैं, अपने आपको तेजोमय कर रहे हैं, अपने में तेजस्विता ला रहे हैं। जब तक आपकी आँखों में तेज है, आपके कर्म में गति है, आपके हृदय में ओज है तब तक आप अग्नि रूप हैं।** जैसे जैसे आपके अन्दर की अग्नि मंद होने लग जायेगी वैसे वैसे रोग आने लग जायेंगे। जब तक अन्दर की अग्नि तेज रहती है तब तक जोश रहता है; कितना भी काम कराओ, सारा दिन दौड़ाओ व्यक्ति थकता नहीं है।

वेदों में कहा है अग्नि हमेशा जगी ही रहती है, अग्नि सोती नहीं। इसलिए सारे वेद मंत्र अग्नि को ही समर्पित हैं। आग जगी हो तो स्वयं भी सुरक्षित है और दूसरों को भी सुरक्षित रखती है। वन में जलती हुई अग्नि व्यक्ति की रक्षा करती है। रात्रि में वन में लोग अपने आस पास आग जलाकर सो जाते हैं जिससे हिंसक जानवर दूर रहते हैं। अग्नि सो गयी तो फिर चींटी भी आपके ऊपर से निकल जायेगी और अग्नि जगी है तो शेर भी नज़दीक नहीं आयेगा। यौवनावस्था में हमारे अन्दर अग्नि तीव्र होती है इसलिए व्यक्ति खतरों से टकराने को तैयार रहता है। जो अग्निहोत्र द्वारा अग्नि का पूजन करते हैं वे अग्नि को अपने अन्दर धारण कर रहे हैं, अपने आपको तेजस्वी बना रहे हैं, अपने अन्दर गति प्रवाहित कर रहे हैं। इसलिए अग्नि के नज़दीक बैठने और अग्नि में आहुति देने वाला व्यक्ति सोचता है कि उसने अग्नि देव को जो दिया वह उसे वापिस मिल रहा है। अग्नि में आप जो भी आहुति देते हैं, अग्नि उस को कई गुना बढ़ाकर वापिस करती है। सुगंधित आहुति देंगे तो सुगन्ध बढ़ जायेगी।

महाकवि हरिऔध जी ने किसी से आड़े वक्त में पाँच रुपये लिए थे। बाद में जब वे बहुत बड़े कवि हो गये तो उस व्यक्ति को सारा जीवन हर महीने वे पाँच रुपये लौटाते रहे। उस व्यक्ति ने एक बार कहा, "मैंने आपको जो पाँच रुपये दिये थे वह तो आपने वापिस कर दिये थे। फिर हर महीने आप पैसे क्यों भेजते हैं?" हरिऔध ने कहा, "जिस समय आड़े वक्त में आपने यह पैसे दिये थे उस समय उनकी कीमत मेरे लिए इतनी

थी कि मैं सारी ज़िन्दगी भी उन पैसों को वापिस करता रहूँ तो भी वह वापिस नहीं हो सकते। मेरे जीवन में उन पाँच रुपयों का महत्त्व सदा बहुत अधिक रहेगा।" यह देवताओं के गुण हैं। आपके आड़े वक्त में, बुरे वक्त में किसी ने भी आपका सहयोग किया, आपका साथ निभाया तो उस साथ के निर्वाहन को महत्त्व दो। ऐसा करने का एक परिणाम यह भी होगा कि संसार में अच्छाई फैलेगी, अच्छाई बढ़ेगी। अच्छे लोग यह सोचेंगे कि भलाई करने से भला होता है।

'यजन्ति सात्त्विका देवान्, जो सत्विक लोग हैं वे देवताओं का पूजन करते हैं। जो लोग सांसारिक कामना से पूजन करते हैं; उनकी श्रद्धा राजसिक श्रद्धा है। वे केवल पुरुषार्थ का फल नहीं माँग रहे, उनकी भावना और प्रयास यह रहता है कि वे जो थोड़ा सा प्रयास कर रहे हैं प्रभु उन्हें उनका कई गुणा ज़्यादा लाभ दें। यक्ष का अर्थ है धनी अथवा कुबेर। अधिकाधिक धन एकत्र करने की भावना का नाम यक्ष भावना है। दार्शनिक गेटे ने कहा है कि व्यक्ति की निष्ठा ही जीवन को विशिष्ट बनाती है। राजसिक व्यक्ति पैसा जमा करेगा, पैसे से और पैसा कमायेगा लेकिन वफ़ादारी खरीदना चाहेगा तो नहीं खरीद पायेगा क्योंकि **वफ़ादारी, निष्ठा और श्रद्धा का व्यापार नहीं होता। प्रेम, करुणा, निष्ठा का व्यापार नहीं होता, ये खरीदी नहीं जा सकतीं।** पैसा देकर व्यक्ति अच्छी वर्दी में नौकर चाकर रख सकता है, लेकिन मालिक के पसीने की जगह अपना खून बहाने वाला वफ़ादार नहीं। वफ़ादार व्यक्ति पालन करने वाले को जन्म देने वाले माता पिता से भी बढ़कर समझेगा।

एक फैक्ट्री में एक व्यक्ति यह मानकर आया कि वह उसकी कर्मशाला है और उसका मालिक से न जाने किस जन्म का लेन देन है। यहाँ वह काम ज़रूर कर रहा है लेकिन इस व्यक्ति के माध्यम से उसको रोजी रोटी मिल रही है। इसकी छाया में रहकर ही उसका परिवार पल रहा है और उधर मालिक की भावना यह बनी कि यह मज़दूर नहीं, मेरे परिवार का ही सदस्य है। इसका सुख दुःख मेरा अपना ही सुख दुःख है। दोनों एक दूसरे के प्रति संवेदनशील हो गए हैं। यहाँ परस्पर प्रेम और निष्ठा

ने जन्म ले लिया है। अब अगर मालिक पर कभी आड़ा वक्त आ गया, तो सेवक मालिक का सहारा बनकर खड़ा हो जायेगा। लेकिन अगर निष्ठा नहीं है, वफ़ादारी नहीं है तो जैसे डूबते जहाज से पहले चूहे जहाज छोड़कर भागते हैं, उसी प्रकार कष्ट का समय आने पर वे लोग जो उसके पैसे पर जी रहे थे, छोड़कर भागेंगे। **आज की दुनिया में निष्ठा, वफ़ादारी, श्रद्धा जैसी भावनाएं खत्म होती जा रही हैं। हर चीज़ व्यापार बन गई है। हर चीज़ को व्यक्ति तराजू में तोल रहा है और तिजोरी में भर रहा है।**

पुराने समय में माँ बाप इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि उनके द्वारा कोई बात ऐसी न हो जाये जिससे उनके बच्चों की निष्ठा उनके प्रति गिर जाये, श्रद्धा टूट जाये। उनका प्रयास यह रहता था कि उनकी हर बात को देखकर उनका बच्चा उनके प्रति श्रद्धावान बने। व्यक्ति सोचता था कि मेरी बातों से नहीं बल्कि मेरे व्यवहार, त्याग और कुर्बानियों से मेरा बच्चा मेरे प्रति समर्पित हो। अब हम सोचते हैं कि बच्चों को बढ़िया स्कूल में भेज देने मात्र से बच्चे का जीवन बन जायेगा। बच्चा हमारे अनुरूप हो जायेगा। लेकिन बात ऐसे नहीं बनती। हमने बड़ों को छिप कर सिगरेट पीते देखा है। उनसे पूछा भई पीते ही क्यों हो? तो कहते हैं कि आदत खराब पड़ गयी है छूट नहीं पा रही। पूछा कि फिर बच्चों से क्यों छिपा रहे हो? तो कहते हैं कि हमारी बुरी आदत उनमें न पड़ जाए इसलिए। शराब भी पीयेंगे तो छिपकर। लेकिन एक व्यक्ति वह भी है जो अपने बेटे को बुलाकर चीयर्स कह रहा है। साथ बिठाकर उसे भी पिला रहा है, स्वयं भी पी रहा है। अगर ये बाप बेटा लड़ पड़े तो एक दूसरे को मरने मारने को तैयार हो जायेंगे। इस व्यवहार के लिये दोष कलियुग को दिया जायेगा या अपनी बुद्धि को?

आप अपनी श्रद्धा सुरक्षित नही रख पाये। परिणामस्वरुप बच्चे के अन्दर श्रद्धा जाग नही पायी। जहाँ श्रद्धा जाग नही पायी वहां तो झगड़ा होगा ही। राक्षसों के अन्दर इसीलिए तो झगड़े होते हैं। यह एक गहरा विज्ञान है जो आसानी से समझ नहीं आयेगा। और जब समझ में आ गया तो कलियुग का अंत होने व सतयुग के आने में देर नहीं लगेगी। **श्रद्धा ही सतयुग**

लाएगी। श्रद्धा है तो सतयुग आपके अन्दर आ जाएगा। यदि श्रद्धा नहीं है तो आपके अन्दर का सतयुग भी कलियुग में बदल जायेगा। इसलिए निष्ठा को, प्रेम को, आनन्द को, करुणा को, वफ़ादारी को, जो अनमोल हैं, खरीदा नहीं जा सकता, उसे अपने अन्दर विकसित करें और दूसरों को भी सिखाइये। दुनिया में बहुत सारी चीज़ें बिकती हैं। लेकिन **वफ़ादारी और श्रद्धा को बेचा या खरीदा नहीं जा सकता। आप साज़ खरीद सकते हैं परन्तु स्वर व संगीत नहीं। दवाईयां खरीद सकते हैं पर सेहत नहीं। नौकरों की फौज जुटा सकते हैं पर एक वफ़ादार सेवक नहीं।** अभी भी कुछ चीज़ें बाकी हैं जो बिकाऊ नहीं हैं, और उन्हीं के आधार पर संसार कायम है।

आपको एक कथा सुनाता हूँ। इन्द्र देव अपनी पत्नी इन्द्राणी को साथ लेकर संसार की यात्रा पर आये। एक गाँव को उन्होंने देखा कि वहाँ के लोग बहुत मेहनती थे लेकिन थे फटेहाल, वहाँ गरीबी बहुत थी, लोग बहुत लाचार थे। लोग दुःखी भी बहुत थे। इन्द्राणी को दया आ गयी। उन्होंने भगवान से हाथ जोड़कर कहा, "नाथ, कुछ ऐसी कृपा कीजिये कि इन लोगों की गरीबी दूर हो जाये।" इन्द्र देव ने कहा, "अन्न दूं, धन दूं या जल के माध्यम से इनकी गरीबी दूर करूं? बताओ क्या दूं इनको?" इन्द्राणी ने तब कहा, "कोई ऐसी कृपा कीजिए कि इन पर सोने की वर्षा हो जाए।" यह सुनते ही इन्द्र देव ने उस गाँव में सोना ही सोना बरसा दिया। परन्तु सबके घरों में नाप तोलकर बराबर बराबर सोना बरसाया क्योंकि वे चाहते थे कि सबको बराबर का धन मिले। सबने अपने अपने आंगन में पड़े हुए सोने को बटोर लिया और सभी समान रूप से धनी हो गये। सबने अपने अपने धन का रात भर हिसाब लगाया और सवेरे सब के सब मिलकर इन्द्र देव को गालियाँ देने लगे। सबने कहना शुरू कर दिया कि भगवान यह कैसा देना हुआ? अब कौन किसकी नौकरी करेगा? कौन किसके काम आयेगा? सभी तो बराबर हैं। अब तो यहाँ रहना ही बेकार हैं। यहाँ से निकल कर किसी गरीब गाँव में जाना पड़ेगा जहाँ अपनी अमीरी के हिसाब से दूसरों को खरीद कर ला सकें। किसी को नौकर बनाए या किसी को

सेवक। किसी दूसरे से काम ले सकें तभी तो इस धन का फ़ायदा होगा। पर जब सब बराबर हो गये, कोई छोटा और गरीब बचा ही नहीं तो इस धन का प्रयोजन ही समाप्त हो गया। इन्द्र देव इन्द्राणी की तरफ देखकर बोले, "भाग्यवान! तुमने कहा था न कि इनको सोना दो तो मैंने दे दिया। अब मैं इनको सोना तो दे सकता हूँ, धन तो दे सकता हूँ लेकिन सब्र नहीं दे सकता, सन्तोष और धैर्य नहीं दे सकता। यह तो इनको खुद ही कमाना होगा। अगर इनको सब्र होता तो अपने घर में पहले जैसे रह रहे थे उसी में सुखी होते। अब इतना पाने के बाद भी दुःखी हैं और मुझे भी भला बुरा कह रहे हैं।"

यह बड़ी विचित्र बात है कि **संतोष भी श्रद्धा के अनुपात से जागता है।** सात्विक व्यक्ति है तो अन्दर से श्रद्धा जागेगी और श्रद्धा जागी तो साथ ही संतोष भी जागेगा। संतोष नहीं है तो व्यक्ति हर हाल में बेचैन रहेगा। चाहे जितना भी मिल जाये उसे कम ही लगेगा। हमारा जीवन हमारी निष्ठा और श्रद्धा के अनुसार ढल जाता है। इसलिए अपनी श्रद्धा को बढ़ाने, जगाने, तोलने तथा उसका रूप जानने की चेष्टा करो। अगर श्रद्धा में कमी है तो फिर आगे नहीं बढ़ पाओगे।

कुछ लोग भूत प्रेत की पूजा करते हैं। वे तामसिक लोग हैं। भूत प्रेत को पूजकर अनेक प्रकार की सिद्धियां पाने के लिए वे लोग श्मशान घाट भी जाते हैं और अपनी पूजा को दूसरों को सताने का माध्यम बनाते हैं। उनकी भक्ति भी दूसरे का बुरा करने, दूसरों को सताने के लिए होती है। ऐसी भक्ति भक्ति नहीं, एक तामसिक कर्म है। अतः संसार में तरह तरह के लोग हैं और उनकी तरह तरह की पूजा पद्धतियां हैं। हर आदमी अपनी पूजा पद्धति और कर्मकाण्ड को उचित ठहराता है। लेकिन व्यक्ति अपनी निष्ठा और श्रद्धा के अनुसार स्वयं बन जाता है। तामसिक लोग पाषाण हृदय होंगे। वे क्रूर कर्म करने के लिये जल्दी से तैयार हो जायेंगे। अगर किसी ने उन्हें बता दिया कि दूसरे के घर में आग लगा दो तो तुम्हे फलां फलां लाभ होगा तो वे वैसा कर गुजरेंगे। लाभ होगा या नहीं यह तो अलग बात है लेकिन वे दूसरे का बुरा करने के लिए तैयार हो जाते हैं। वे लोग इसे भी एक तरह की भक्ति कहते हैं। कोई ऐसी ही शैतानी श्रद्धा में अपने

बच्चों की बलि तक चढ़ा देता है। कोई परमात्मा को खुश करने के लिए अपनी जीभ काटकर चढ़ा देता है। इस तरह की पूजा को भक्ति नहीं कहते।

आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक रूप में बलि देने की बात को दर्शाया तो गया है लेकिन कहा गया है कि मारना है तो मन को मारो। मन को मारने के लिए तलवार या खून खराबे की ज़रूरत नहीं है। मन को मारने के लिए कामनाओं, इच्छाओं और वासनाओं को मारना होता है। ऐसा करने से तुम्हारी भक्ति सार्थक हो जाएगी। अगर कोई सिर चढ़ाने को कहे तो मतलब हुआ कि अपने अहंकार को चढ़ा दो। सिर अहंकार का प्रतीक है। अपनी अकड़बाजी भगवान को अर्पित कर दो। भगवान को नारियल (सिर का प्रतीक) भेंट करने का अर्थ भी यही है। सिर का तात्पर्य है अहंकार। नारियल बाहर से कठोर होता है लेकिन अन्दर से कोमल होता है। नारियल की भांति व्यक्ति बाहर से ऊबड़ खाबड़ है परन्तु उसके अन्दर प्रेम, करुणा, सेवा और भक्ति का जल भरा हुआ है।

राक्षसी प्रवृत्ति के लोग पाषाण हृदय होते हैं। उनकी पूजा पद्धति भी तामसिक और निकृष्ट होती है। वह पूजा नहीं, घोर क्रूर कर्म है। तामसिक लोग कभी किसी को क्षमा नहीं करते। वे जिस वैर को गाँठ बांध लेंगे, सारी ज़िन्दगी के लिए बांध लेंगे। सारी ज़िन्दगी उसका बुरा ही करते रहेंगे। **हमारे ग्रन्थों में कहा गया है कि यदि व्यक्ति का आहार बदले, व्यवहार बदले, विचार बदले, परिवेश बदले, वेश बदले, रहन सहन बदल जाये तो उसका अन्तःकरण भी बदलेगा। फिर उसकी श्रद्धा भी सात्विक हो जाती है।** हमारे शरीर में बहुत सारी ग्रन्थियां हैं जो हार्मोन्स बनाती हैं। यदि इन हार्मोन्स में बहुत मामूली सा भी परिवर्तन हो जाये तो व्यक्ति का व्यक्तित्व बदल सकता है। उसकी आवाज़ बदल जाती है, व्यवहार बदल जाता है, भावना बदल जाती है, कठोरता या करुणा आ जाती है।

उदाहरणस्वरूप, यदि थॉयराइड ग्रन्थि का संतुलन बिगड़ जाये तो शरीर का मोटापा बढ़ता जायेगा या फिर वह पतला होता जायेगा। वज़न तेज़ी से घटेगा या बढ़ेगा। कोई व्यक्ति बहुत उत्साहित हो जायेगा या फिर बिल्कुल निराश हो जायेगा। अच्छी अच्छी बातें सोचेगा या फिर आत्महत्या

की बातें सोचने लगेगा। थोड़ा सा हार्मोन्स का सन्तुलन बिगड़ा तो विचार बदल गये, भावनाएँ बदल गयीं, व्यवहार बदल गया। पिट्यूटरी ग्लैण्ड (पीयूष ग्रन्थि) का हिसाब बिगड़ जाये तो भी व्यक्ति का व्यक्तित्व एकदम पलट जायेगा, आवाज़ अलग तरह की हो जायेगी। अगर ग्रंथि का पुरुष प्रधान भाग जागृत हो गया तो स्त्री होकर भी चेहरे पर बाल उग आयेंगे, दाढ़ी उगने लग जायेगी, भावनाएँ बदल जायेंगी, कठोरता आ जायेगी। हमारी ग्रन्थियों के कारण हमारी संवेदनाओं में अन्दर से जो बदलाव आता है उसी के अनुसार हमारा रहन सहन बदल जाता है। कई पुरुष महिलाओं जैसे वस्त्र पहनने लगते हैं और कई स्त्रियाँ पुरुषों जैसे वस्त्र। कई पुरुष घर में बैठकर महिलाओं के काम करेंगे और कई महिलाएँ बाहर जाकर पुरुषों के काम करेंगी।

व्यक्ति का व्यक्तित्व किसी एक बात से नहीं बनता या बिगड़ता। हमारे पूर्वजों ने बहुत गहराई से विचार कर उपाय बताए हैं कि यदि हम चाहें तो अपना पूरा जीवन कैसे बदल सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि श्रद्धा और निष्ठा के अनुरूप व्यक्तित्व बनता है। अगर भोजन सात्विक है तो अन्तर में सात्विकता होगी। अन्तर में सात्विकता होगी तो श्रद्धा भी सात्विक होगी। श्रद्धा सात्विक होगी तो विचार सात्विक होंगे आपका सारा व्यक्तित्व सात्विक हो जाएगा। आहार भी तीन तरह का सात्विक, राजसिक और तामसिक होता है। यही क्रम बाकी वस्तुओं और कार्यों पर भी लागू होता है। पूजा पद्धतियां तीन तरह की हैं, तुम्हारी श्रद्धा तीन तरह की और तुम्हारा भोजन भी तीन तरह का है।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु।।७।।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि, "आहार तीन प्रकार का होता है, यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार के होते हैं। हे मेरे प्रिय अर्जुन! अब तू इन सब भेदों को सुन। तीन तीन भेद संसार की हर वस्तु के होते हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व के भी तीन भेद हैं। स्वयं भगवान के भी तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। यज्ञ में दी जाने वाली समिधाओं के भी तीन रूप हैं। जहाँ

सामान बिकता है उस दुकान के भी तीन रूप हैं। सामान जो बिकना है, दुकानदार जो बेचने वाला है, और ग्राहक जिसको सामान बेचा जायेगा। ये तीनों एक साथ उपलब्ध हों तो काम चलता है। अगर तीनों में से एक भी न हो तो फिर दुकान बेकार है। दुकानदार हो, सामान हो, ग्राहक न हो तो फिर कैसी दुकानदारी। ग्राहक भी हो, दुकान भी हो लेकिन मालिक न हो तो भी सामान नहीं मिलेगा।

संसार में तीन का अंक महत्त्वपूर्ण है। जीवन में हर जगह तीन चीज़ों का मेल है। संसार तीन प्रकार से बंटा हुआ है। माता पिता और उनकी संतान। माता और पिता तब ही बनते हैं जब उनकी संतान जन्म लेती है। जब तक संतान न हो वह माता पिता नहीं पति पत्नी हैं। संतान होने पर पति पत्नी, माता पिता बन जाते हैं। इसलिए दर्शनकार कहते हैं कि माता पिता और संतान तीनों का जन्म एक साथ होता है।

भोजन के अनुसार ही तीन शारीरिक विकृतियां वात, पित्त और कफ होती हैं और तीन प्रवृतियों सात्विक राजसिक और तामसिक के अनुरूप भावनाएं बनती है। अर्थात् जैसा भोजन वैसा मनन, जैसा मनन वैसा चिन्तन, जैसा चिन्तन वैसा व्यवहार। तो तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व इस बात पर निर्भर करेगा कि तुम्हारा आहार किस प्रकार का है। भगवान कहते हैं:

आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।८।।

सात्विकता को बढ़ाने वाला भोजन बल को, स्वास्थ्य को, सुख को, प्रेम को, और आयु को बढ़ाने वाला होता है। सात्विक भोजन में रस होता है तथा वह स्निग्ध होता है। ऐसे रसीले भोजन में घी आदि का प्रयोग होता है। यह भोजन तुम्हारे अन्दर स्थिरता पैदा करता है। यह दिल को अच्छा लगने वाला होता है। सात्विक भोजन मीठा, चिकने पदार्थों, फल, हरी सब्जियों आदि से युक्त होता है। भोजन ऋतु के अनुकूल होना चाहिए। स्वास्थ्य के हित को ध्यान में रखकर ऋतु में उगने वाले फल, मूल; कंद; नपी तुली मात्रा में लेने चाहिएं।

कहा है–**हित भुक्, ऋत भुक्, मित भुक्**–स्वास्थ्य के हित को ध्यान में रखकर भोजन खाओ, स्वाद को ध्यान में रखकर नहीं। जीवन चलाने के लिए खाना है न कि खाने के लिये जीना है। जो लोग खाने के लिए जीते हैं उन्हें रोज़ पार्टियां चाहिए। **जिस आदमी की जीभ चंचल है उस आदमी का मन भी चंचल होता है। जिस आदमी का मन ज़्यादा चंचल होता है उसकी सहनशक्ति कमजोर होती है** और जिसकी सहनशक्ति कमजोर होती है वह किसी भी बात पर गुस्सा कर सकता है, किसी भी बात पर भिड़ सकता है, किसी से भी लड़ सकता है, किसी से भी रूठ सकता है और किसी से भी बहुत देर तक नाराज़ रह सकता है। इसलिये कहा है कि ऋतु के अनुकूल शाकाहारी भोजन जो फलों से युक्त हो करना चाहिये। कुछ चूषण वाले (चूसे जाने वाले) अर्थात् रसीले पदार्थ भी भोजन में शामिल होने चाहिये।

कुछ व्यक्ति बासी और घृणित चीज़ें खाने को तैयार हो जाते हैं। जैसे मीट तथा नशे वाली चीज़ें। मांस भी, शराब भी और व्यक्ति हड्डियां भी चबा लेता है। उसके मन में क्रूरता है। जीवों के प्रति करुणा, सहानुभूति और प्रेम नहीं है। यह तामसिक भोजन है।

जो भोजन कड़वा, खट्टा, नमकीन, बहुत गर्म, बहुत तीखा, बहुत रूखा और पेट में जलन पैदा करने वाला होता है वह राजसिक भोजन है। मिर्च खायी है तो वह जब तक शरीर में रहेगी जलन पैदा करेगी। एक भोजन वह है जो :

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।१०।।

पुराना, रसहीन, सड़ा हुआ, मांस आदि से युक्त भोजन जिसको देखकर घृणा पैदा हो और जिसे सब मिलकर एक दूसरे का झूठा भी खा लेते हों, ऐसा भोजन तामसिक कहा जायेगा।

कुछ लोग सोचते हैं कि आपस में प्रेम बढ़ाने के लिए बहुत ज़रूरी है कि सब मिलकर किसी एक ही बर्तन में खाएं। इतना हो सकता है कि

आप जिस थाली में रोटियां रखें वह एक हो, मगर दाल सब्जी की कटोरियां तो अलग अलग रखनी चाहिए। एकता पैदा करने के लिए आप इकट्ठे बैठकर खाएं, यह तो अच्छी बात है, लेकिन एक दूसरे का झूठा खाने से जिसमें राजसिक, तामसिक सब तरह के लोग होंगे तो आप उनकी मनोवृत्तियां भी ग्रहण कर सकते हैं। इससे क्या प्रेम पैदा होगा? संभव है आपके अन्दर किसी की क्रूरता चली जाये। किसी की बेईमानी प्रभावी हो जाए। इसलिए किसी का झूठा खाने से परहेज़ करें।

जो भोजन नशा और क्रूरता पैदा करे, जिससे आप अपने होश में न रहें वह तामसिक भोजन है। किसी ने एक व्यक्ति से कहा जुआ खेलो, मांस खाओ, गलत काम करो पर व्यक्ति तैयार नहीं हुआ। तब उसको कहा, "चलो सिर्फ एक पैग ले लो।" अब जैसे ही शराब का एक पैग अंदर गया तो उसने वे सारे कर्म जो वह पहले मना कर रहा था, जैसे जुआ खेलना, मांस खाना, वह उन सभी कर्मों को करने लगेगा। क्योंकि उस एक पैग ने, जो उसके अन्दर गया, उसकी बुद्धि बिगाड़ दी।

शराबों में जो डूबे हैं न उभरे ज़िन्दगानी में,
हज़ारों बह गये इन बंद बोतलों के पानी में।

बोतल के इस बन्द पानी में न जाने कितने खानदान, कितने कुल तबाह हो गये, लेकिन आश्चर्य है कि दुनिया में जब भी किसी देश में शराब पर पाबंदी लगी वह सफल नहीं हुई। चोरी से शराब बनाने और पीने के कारण अपराध और बढ़ गये। भारत में शराब पर सरकार का एकाधिकार है। वही ठेके देती है। शराब सरकारी आमदनी का सबसे बड़ा ज़रिया है। और तो और शराब की प्रशंसा में एक टी.वी. विज्ञापन दिखाया गया है कि शराब से दो दुश्मन देशों की सीमाओं के आर पार मित्रता हो जाती है।

रूस के लेखक लियोटॉलस्टाय ने एक दर्दनाक और हृदय को हिलाने वाली कथा लिखी है। टॉलस्टाय ने लिखा है कि एक बार शैतान अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए अपने दूतों को बैठाकर सभा कर रहा था। एक गाँव में बहुत सात्विक और भले लोग रहते थे। शैतान ने दूतों से कहा कि अगर हमने इस गांव को बदल दिया, तो आस पास की सारी

बस्तियों को बदलने में हमें आसानी होगी। शैतान ने अपने एक चुनिंदा आदमी को कहा कि वह उस गांव में जाकर पहले वहां की शांति भंग करे, जो लोग बहुत सहनशील हैं उनकी सहनशीलता को खत्म करे, उन्हें गुस्सा करना, उनको अपशब्द बोलना सिखाए। उन्हें ऐसा बना दो कि उनके मुँह से गालियाँ निकलें। कुछ ऐसे भोजन कराओ और कुछ ऐसी चीजें पिलाओ जिनको पीते ही आदमी इतना जोश में आ जाये कि गालियाँ बकने लगे, बड़े छोटे का भेद भूल जाये, निर्लज्ज हो जाये, बेशर्म हो जाये। तुम उन्हें खिला पिलाकर गाँव की फिजां बदल दो। जो आदमी सबकी बातें सह जाते हैं उनको ऐसा बना दो कि वे किसी की कोई बात न सहें।

शैतान का प्रतिनिधि धरती पर आया। उसने सोचा कि पहले सबसे शांत और शालीन आदमी को पकड़ा जाये। एक किसान खेत में हल चला रहा था। शैतान का प्रतिनिधि झाड़ियों में छिप कर बैठ गया। सोचने लगा कि जब यह आदमी भोजन करने के लिए आयेगा उस समय इस आदमी को गुस्सा दिलाऊंगा। जैसे ही दोपहर का समय हुआ, किसान ने हल चलाना रोका। बैलों को पेड़ के नीचे बांधा, उनको पानी पिलाया और उनके आगे घास रख दी। उसके बाद उस जगह की तरफ़ बढ़ा जहाँ उसका भोजन रखा हुआ था। शैतान के आदमी ने किसान का भोजन चादर के नीचे से उठाकर छिपा दिया था। किसान ने चादर उठाई तो भोजन और पानी दोनों के बर्तनों को गायब पाया। किसान आसमान की तरफ हाथ जोड़ कर बोला "हे भगवान! तेरा बहुत बहुत शुक्र है। बहुत दिनों से सोच रहा था कि व्रत करूंगा, लेकिन मौका नहीं मिल रहा था। आज तेरी कितनी बड़ी कृपा हुई कि व्रत भी हो गया, दान भी हो गया, किसी भूखे व्यक्ति को भोजन व पानी मिल गया। जितनी देर भोजन करता उतनी देर बैठकर तेरा भजन कर लेता हूँ"। ऐसा कह कर वह भजन करने बैठ गया।

शैतान का प्रतिनिधि झाड़ियों के पीछे छिपा सब देख सोच रहा था कि किसी की रोटी छीनो तो उसको गुस्सा आता है, लेकिन यह कमाल का आदमी है, इसे कोई फ़र्क ही नहीं पड़ा। तब वह उसके घर गया और झगड़ा कराने की कोशिश की, लेकिन वहाँ भी वह सफ़ल नहीं हुआ।

आखिर में थककर वापस आकर वह शैतान से बोला, "महाराजाधिराज, सब तरह के प्रयास किये, लेकिन उस गाँव के किसी आदमी का मैं कुछ भी नहीं बिगाड़ पाया। अब आप ही कुछ करें"। शैतान ने पूछा, "जितने भी हमारे हथियार हैं, तूने उन सबका प्रयोग किया या नहीं?" उसने कहा, "जितने भी हो सकते थे, उतने हथियार मैंने इस्तेमाल किये। हां, एक हथियार मैंने इस्तेमाल नहीं किया। वह जो पीने वाली चीज़ है न, वह मैं लेकर नहीं गया था। लेकिन महाराज, यह गंदी चीज़ उसको पिला कैसे सकते हैं? वह ऐसी चीज़ न खायेंगे न पीयेंगे"। तब शैतान ने उसे समझाया, "एक काम करो। जाकर उस आदमी को अपने काम धंधे में जोड़ो, उसके साथ व्यावसायिक संबंध पैदा करो। उसके बाद धीरे धीरे अपनी सोसायटी में घूमना फिरना सिखलाओ और फिर किसी पार्टी में बुलाकर उसे यह शरबत पिलाना"।

शैतान ने प्रतिनिधि को पुनः भेजा। वह गरीब का रूप धारण करके किसान के पास गया और बोला, "हुजूर, आप बड़े धार्मिक व्यक्ति हैं, बड़े भले आदमी हैं, मैं आपके नज़दीक रहकर थोड़े दिन अपनी आत्मा को पवित्र करना चाहता हूँ। आपके साथ रहकर कुछ सेवा का कार्य करना चाहता हूँ"। किसान ने कहा "बदले में लोगे क्या?" "आपका आशीर्वाद चाहिये और कुछ नहीं चाहिए"। किसान ने कहा, "भले घर के लगते हो, बैठ जाओ"। फिर दोनों साथ साथ रहने लगे। एक दिन उस व्यक्ति ने कहा, "देखो एक बात बताऊँ, इस बार बारिश बहुत होगी। अतः आपकी जो नीची वाली ज़मीन है, उसमें फसल नहीं बोना क्योंकि नुकसान होगा। ऊँची वाली जमीन में मक्के बोना, उसमें पानी नहीं ठहरेगा और आपकी फसल अच्छी होगी, लाभ ज़्यादा होगा"। किसान ने बात मान ली और सच में ऊंची ज़मीन में फसल बहुत हुई। उसने खूब पैसा बचाया। इस व्यक्ति ने ऊँची जगह पर खेती की, गाँव के बाकी लोगों की फसलें नीची ज़मीन होने के कारण तबाह हो गयीं। अगले बरस शैतान के प्रतिनिधि ने किसान से कहा, "नीची ज़मीन में फसल बोना, जहाँ पानी ठहरता हो क्योंकि इस बार बारिश कम होगी। लेकिन जितनी भी बारिश हो, उस पानी को रोककर रखना और उसमें धान आदि की फसल उगाना। बहुत लाभ

होगा"। सच में ऐसा ही हुआ और किसान को बहुत लाभ हुआ। तब किसान ने उससे कहा, "भई, तू कोई देवता आदमी मिल गया है मुझे, जैसा कहता है वैसा ही होता है"।

अगले साल उसने किसान से कहा, "आप जौ बोना, परन्तु उस जौ को मंडी में बेचने से कोई खास लाभ नहीं होगा। इसके लिए तो फैक्ट्री लगनी चाहिए। जौ का अर्क निकालना चाहिए"। "अर्क निकालने से क्या लाभ होगा?" किसान ने पूछा। तब उसने कहा, "इससे बहुत लाभ होता है। चाहे सरकार समझती हो कि यह गलत चीज़ है, लेकिन फिर भी इससे पैसा खूब आता है।" किसान ने कहा, "भाई, अब तक तेरे ऊपर भरोसा किया है, तो इस बार भी तेरे ऊपर भरोसा करता हूँ।"

इसके बाद इन दोनों ने मिलकर एक कम्पनी खोल ली और जौ का अर्क निकालना शुरू किया। जौ को सड़ाया और उन्होंने उससे वह शरबत बनाया, जो वह नरक से लेकर आया था अर्थात् शराब बनानी शुरू की।

किसान ने पूछा, "इसमें तुम छिपकर कुछ डालते हो, वह क्या है"? उसने कहा, "इसके अन्दर अनेक जीवों की शक्तियाँ डाली गयी हैं। यह बहुत अच्छा द्रव्य तैयार हुआ है। जो इस द्रव्य को पियेगा, उस आदमी का रंग ढंग बदल जायेगा। कितना भी कमज़ोर आदमी हो, वह ताकत वाला दिखायी देगा"। किसान ने कहा, "चलिए भई, यह काम भी हमने पूरा कर दिया। अब आगे की बताओ कि आगे क्या करना है।" वह बोला, "आगे बस इतनी बात करनी है कि उन जगहों में आपको चलना है, जहाँ बड़े बड़े लोग उठते बैठते हैं। जाकर देखना है कि बड़े लोग कैसे बात करते हैं"। अब शैतान का प्रतिनिधि किसान को किसी पार्टी में लेकर गया। वहाँ लोग शराब पी रहे थे। इसको भी पीने के लिए कहा। इसने यह सोचकर कि मुझ पर इसके इतने अहसान हैं इसलिए ज़हर समझ कर ही पी लेते हैं। यह सोचकर उसने दो घूंट लगा लिये। लगाने के बाद उसकी आँखे खुलने लगी, भाषा बदल गयी और वह अकड़ने लगा। तब शैतान के आदमी ने कहा, "अब ऐसा करना है कि ये जो बड़े बड़े लोग हैं, इनको अपने घर पर आमंत्रित करो। तुम्हारे घर में भी कोई पार्टी होनी चाहिए, जिससे कारोबार

बढ़े। यहाँ नियम है कि पार्टी लो और पार्टी दो। अब पार्टी तुम्हारे घर में होनी चाहिए।" किसान ने कहा "ठीक है।"

अगली बार पार्टी किसान के घर में हुई। उसको बताया गया कि इसमें यह नियम होता है कि घर के जितने लोग हैं, वे सब लोगों की खातिर करें। अपनी पत्नी को कहना कि अच्छे कपड़े पहनकर पार्टी में सबको शराब बांटे और तुम भी पिलाना क्योंकि आने वाले लोगों की खातिर तो आप करेंगे ही। तब किसान ने अपनी पत्नी को कहा कि जितने भी लोग आयेंगे, सबको यह प्रसाद जिसे हम लोग बनाते हैं, थोड़ा थोड़ा बाँटना। वह आज्ञाकारिणी पत्नी थी, उसने पार्टी में शराब बाँटना शुरू किया, पिलाना शुरू किया। अचानक उसके हाथ से शराब वाली बोतल गिर कर टूट गयी। किसान को इतना गुस्सा आया कि उसने पत्नी को पीटना शुरू कर दिया, गालियाँ देनी शुरू कर दीं। बच्चे बीच बचाव करने के लिए आये तो उनको भी मारना शुरू कर दिया। सारा घर डर गया। पार्टी तो खत्म हो गई, लेकिन बच्चे अपने पिता के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले, "आज तक हमने आपको गुस्सा करते नहीं देखा। आप हमारी थोड़ी सी पीड़ा भी नहीं देख सकते थे। लेकिन आज आपने माँ का खून भी बहा दिया। काँच हमको भी लग गया, फिर भी आपको गुस्सा आता चला गया! आपको क्या हो गया है?" उसने सबको बहुत बुरी तरह से डाँटा और कहा कि कोने में जाकर बैठ जाओ। फिर भी घर के सब लोगों ने हाथ जोड़कर कहा, "हम गरीब रह लेंगे, हमें नहीं चाहिए पैसा, पर हमें अपने घर में सुख शांति चाहिए। हमें अपने घर में प्यार चाहिए। हम बड़े नहीं बनना चाहते। हम छोटे रहकर जीयेंगे।" किसान ने तब गुस्से में आकर कहा, "तुम्हारा दिमाग छोटा, तुम्हारे विचार छोटे। तुम घटिया लोग हो, घटिया ढंग की बात सोचते हो। मैं आगे बढ़ना चाहता हूँ। तुम लोग मुझे रोकना चाहते हो। तुम लोग मेरे दुश्मन हो।" अब शैतान का प्रतिनिधि अपने मालिक यम से जाकर कहता है, "मालिक! हमारा साम्राज्य, हमारा नरक धरती पर उतर आया है। इस बोतल ने तो कमाल कर दिया। धरती से सुख शांति का स्वर्ग चला गया है। अब धरती पर हमारा, नरक का ही राज होगा।"

टॉलस्टाय ने इस कथा में कितना दर्दनाक और हृदय को छूने वाला व्यंग्य किया है। **वह भोजन तामसिक है जो आपकी बुद्धि को हर ले, आपके विचारों को बिगाड़ दे, आपके धैर्य को खत्म कर दे, आपकी प्रसन्नता छीन ले।** कालिदास से एक बार राजा भोज ने पूछा, **'नष्टस्य कान्या गतिः'** "कोई आदमी नष्ट होना चाहे, तो उसके लिए कोई रास्ता बताओ।" कालिदास ने कहा कि इसका उत्तर वह किसी और समय देगा। बाद में जो उत्तर उन्होंने दिया, उसका सार यह है एक साधु मांस बेचने वाले की दुकान पर जाकर खड़ा हो गया। राजा उधर से गुजरा तो उसने साधु से पूछा, "क्या तुम मांस खाते हो?" साधु ने कहा है, "मांस तो खाता हूँ, लेकिन बिना शराब के मांस का आनन्द नहीं है।" "शराब भी पीते हो?" उसने कहा, "शराब का आनन्द भी नाचघर में बैठकर ही पीने में है"। "तो क्या नाचघर में भी जाते हो?" साधु ने कहा, "जिसे नष्ट होना हो, उसकी गति यही है। इस अर्क को पिये और सारे बुरे काम करे।" इसलिए नष्ट होने का यही रास्ता है।

हज़ारों सालों से इन्सान किसी न किसी रूप में अपनी ऊर्जा शक्ति को पतन की ओर ले जाता रहा है। **किसी की संगति से तामसिक पदार्थ खाने पीने की एक बार लत पड़ जाये तो बुद्धि पलट जाती है।** इसलिए कहते हैं कि अगर आपका खानपान गलत लोगों के साथ हो गया, तो आपके विचार और आपका आचरण गलत हो जायेगा।

भगवान कहते हैं कि तीन तरह के आहार के सेवन से तीन तरह का व्यक्तित्व बनता हैं। जिनमें सात्विक और राजसिक गुण मिले हुये हैं या जिनमें राजसिक तथा तामसिक गुण मिले हुए हैं, उनके व्यक्तिव अलग अलग बन जाते हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो सात्विक हैं परंतु समय पड़ने पर कभी राजसिक तो कभी तामसिक भी हो जाते हैं, हालांकि मुख्य रूप से वे सात्विक ही हैं। आपकी रुचि कैसी है? आप कैसा भोजन पंसद करते हैं? कैसी बातचीत करते हैं? स्वभाव आपका कैसा है? आपका व्यवहार कैसा है? आप अपने आप को राजसिक कहेंगे, तामसिक कहेंगे या सात्विक? इस वर्गीकरण में आप कहाँ हैं, अपना विश्लेषण स्वयं करिये। अगर आप अपना विश्लेषण स्वयं करते रहे तो निश्चित ही आपके अन्दर उच्चता आयेगी।

महात्मा बुद्ध ने कहा है कि सम्यक आजीविका, सम्यक आहार, सम्यक व्यवहार, सम्यक दृष्टि, जीवन को ऊँचा उठाने के लिए बहुत सहायक हैं। हमारी आजीविका संगत होनी चाहिए, कमाने का ढंग अच्छा होना चाहिए। जिस व्यक्ति की दृष्टि धन पर है उसकी श्रद्धा भी धन पर है। वह धन कमाने के समय इस बात को भूल जाता है कि वह सही तरीका अपना रहा है या गलत। माना जाता है कि किसान का कार्य सबसे उत्तम कार्य है। किन्तु उस किसान के लिए भी आप क्या कहेंगे, जो बाजरा, गेहूँ बो सकता था, लेकिन तम्बाकू की फसल उगाता है, क्योंकि बाजरे से उतना फ़ायदा नहीं हो सकता जितना तम्बाकू से होगा। उसको यह अहसास नहीं है कि वह तम्बाकू की खेती नहीं, कैंसर की खेती कर रहा है। दुःखों की फसल उगा रहा है। **जिसकी श्रद्धा सिर्फ़ पैसा कमाने में टिकी है वह तम्बाकू उगायेगा। धन ज़्यादा कमाने के बाद उसे इच्छा होगी कि उसकी वाहवाही भी हो। वह मन्दिर बनवाने में पैसा लगाएगा।** पैसा लगाएगा तो वहां उसके नाम का पत्थर भी लगना चाहिए। पत्थर लगेगा तो वह धार्मिक कहलाएगा, लोग उसकी तारीफ़ करेंगे। फिर वह यह चाहने लगेगा कि साधु, महात्मा, अच्छे सम्मानित लोगों को वह अपने घर में ठहराये, जिससे भले लोग यह कहें कि सेठ कितना महान है। महात्मा भी आते हैं तो इसके यहां ठहरते हैं। लेकिन श्रद्धा किसी साधु या धर्म पर नहीं है, उसकी श्रद्धा अपनी वाहवाही में है। दानी कहलाने के लिए दान करेगा। वह दान तब करेगा जब अपने लोग देख रहे हो तब करेगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि अपनी स्थिति को जांचना हो तो देखो कि तुम्हारी श्रद्धा कहाँ है? जैसी श्रद्धा, वैसा ही कमाने का ढंग होगा। कमाने का ढंग अगर हमारा खराब है तो निश्चित ही हमारा आहार व्यवहार, आचार सब खराब होगा। रावण और शिशुपाल भी, श्रद्धा रखने वाले लोग थे। हिटलर ने भी तो कहीं श्रद्धा रखी हुई थी। वह कहता था कि केवल शुद्ध लोग ही बचने चाहिए। वह कहता था कि जिनके खून में मिलावट है, उन्हें ज़िन्दा नहीं रहना है। जिनको उसने अशुद्ध माना, उनको मिटाने की कोशिश शुरू कर दी। हिटलर जैसे व्यक्ति पर साठ लाख यहूदियों की

हत्या का पाप है, पर उसकी श्रद्धा इसी में थी। कुछ लोग खून का बदला खून के सिद्धान्त को मानते हैं। उनका यह सिद्धान्त है कि खून हुआ है तो उसके बदले में खून होना चाहिए। गाली दी गयी है तो बदले में गाली देनी चाहिए। किसी ने हमारा हाथ तोड़ा है तो उसका भी हाथ टूटना चाहिए। किसी ने हमारी मान मर्यादा पर हमला किया है तो फिर उसका मान भी भंग होना चाहिए। एक सिद्धान्त बनाकर उस पर सारी श्रद्धा रख ली। पर यह श्रद्धा का विकृत रूप है।

भोजन ताज़ा बनाकर ताज़ा ही खाना चाहिये। खाना न ज़्यादा गरम और न ज्यादा ठंडा हो, ऐसी व्यवस्था बने कि जैसा तापमान शरीर का है वैसा ही भोजन का भी हो। इसीलिए पुराने लोगों ने चम्मच की कम और हाथों की व्यवस्था ज़्यादा रखी। पहले हाथ जान लेते हैं कि भोजन कितना गर्म है। माँ जब अपने बच्चे को खिलाती है तो हाथ से ही खिलाती है। उसको मालूम हो जाता है कि भोजन कितना गरम है। बच्चे का मुँह तो नहीं जलेगा। हाँ, अगर आधुनिक माँ होगी तो उसका ध्यान अपने नाखूनों की पालिश पर होगा। सब्जी काटने, पकाने, परोसने और खिलाने में उसका पहला ध्यान अपने हाथों पर होगा। वह माँ भी क्या, वह पत्नी भी क्या, जो अपना प्यार, अपनी श्रद्धा, अपनी निष्ठा अपने परिवार, पति और बच्चों पर उड़ेल न सके। नौकर भोजन बनाकर लायेगा तो वह कितना शुद्ध होगा? खाना पकाते समय जब उसे पसीना आयेगा तो वह हाथ से पोंछेगा। आदमी जब एकान्त में होता है, आँख, नाक, कान से लेकर सब जगह उसका हाथ जाता है। इतनी फुरसत किसे है कि वह हर बार हाथ धोये और वह भी डिटॉल वाले साबुन से। एक बात यह भी तो है कि अगर मालिक को दूध पिलाया जा रहा है तो उसकी मलाई चखने का सबसे पहला मौका नौकर को मिलता है। पहले वह उसे झूठा करे, उसके बाद मालिक के पास लेकर जाये। **उच्छिष्ट** अर्थात् जो तामसिक लोग हैं, जिनकी बुद्धि बिगड़ गयी, भोजन बिगड़ गया, विचार बिगड़ गये, निश्चित बात है कि वे जूठा खायेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण ने एक शब्द प्रयोग किया है **'यातयामम्'** जो भोजन

पूरा पका नहीं है या फिर जिस समय खा रहे हों, उससे तीन घंटे पहले तैयार किया गया हो, एक प्रहर बीत जाये तो भोजन तामसिक हो जाता है। **'पर्युषितम्',** जो भोजन एक दिन पुराना है, वह तामसिकता पैदा करेगा। एक दिन तो क्या, लोग तो 'डीप फ्रीज़' करते हैं। सात दिन क्या सात महीने पुराना भी खायेंगे। रेफ्रिजीरेटर क्या चीज़ है? जिस यन्त्र से भोजन बासी होने में थोड़ी देर लगे, उस यन्त्र का नाम रेफ्रिजीरेटर या फ्रिज़ है। कोई वस्तु आप फ्रिज़ में रखें या डीप फ्रीज़र में रख दें, उससे बिगड़ने की स्थिति थोड़ी कम हो जायेगी, लेकिन बासा तो बासा ही है। फिर कितनी बार आप उसे गर्म करेंगे। जितनी बार आप उसे गर्म करेंगे,उसकी शक्ति हर बार क्षीण होगी। प्रायः स्थिति यह होती है कि घर में सभी इकट्ठे भोजन नहीं करते। जब जो आया, उसके लिए निकालो, गर्म क़रो, फिर रखो। यह कितनी विचित्र बात है कि जो गरीब आदमी है, वह कुपोषण का शिकार है क्योंकि उसको ठीक पौष्टिक पदार्थ नहीं मिलते, सही विटामिन वगैरह नहीं मिल पाते, उसे उचित मात्रा में प्रोटीन नहीं मिल पाते। वह कुपोषण का शिकार होता है, क्योंकि वह गरीब है। लेकिन अमीर को जिसे सब कुछ ताज़ा और पौष्टिक मिल सकता है, वह पौष्टिक पदार्थ नहीं खायेगा। वह सिर्फ स्वादिष्ट पदार्थ खायेगा। उसको चाहिए भेलपूरी या फिर चटपटी चीज़ें। उसकी पार्टी में कितने हलवाई आये, कितनी तरह की चीज़ें बनीं और कितनी पार्टियाँ खाकर कितनी बार वह डाक्टर के पास गया, वह यह हिसाब नहीं रखता।

इस युग को तमस प्रधान कहा गया है क्योंकि इस युग में तामसिकता अधिक है। तामसिक भोजन भी है, तामसिक विचार भी हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि जिस खाद्य पदार्थ का स्वाद खत्म हो गया है, वह भोजन तामसिक है। लोग बहुत पागल हैं। प्रकृति ने पदार्थों में जो स्वाद भरे, आपने वह स्वाद बिगाड़े। पपीता जैसा है वैसा नहीं खायेंगे। उसमें नमक, जीरा डाल कर उसका स्वाद बिगाड़ेंगे। खरबूजे का जो स्वाद है वह नहीं रहने देंगे। उसमें चीनी डालेंगे तब बेटे को खिलायेंगे। दूध जो स्वाद लेकर प्रकृति से आया है, उसका हम वह स्वाद नहीं रहने देते। पहले गर्म करेंगे

फिर उसमें कुछ न कुछ ज़रूर मिलायेंगे। जार्ज हारवीन नाम का एक बहुत अच्छा चिन्तक हुआ है। उसने लिखा है, "हे परमाणु बम बनाने वाले लोगों, तुमने एक तरफ तो परमाणु बम विस्फोट जैसा खतरनाक काम किया है, दूसरी तरफ वायुविहीन डिब्बों के अन्दर भोजन बन्द करके रखा है, यह भी परमाणु बम से कम नहीं हैं"। आजकल 'फास्ट फूड' का ज़माना है, ये बीमारियाँ देते हैं। विज्ञान ने औद्योगिक क्रांति के साथ साथ शरीर और बुद्धि को सुविधा देने के लिए कम्प्यूटर शुरू कर दिये, रोबोट बना दिये। अब हिसाब के लिए दिमाग पर ज़ोर डालने की जरूरत नहीं है। गणित करना है, तो केल्क्यूलेटर (यंत्र) हाथ में रखो। मस्तिष्क खाली होगा तो शैतान का घर ही तो बनेगा। शरीर को आराम पसंद बनाया, तो दिमाग को शैतान का घर बना दिया।

आराम करते करते शरीर रोगों का घर बनता जा रहा है। मैं इन सुविधाओं और उन्नति का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन यह ज़रूर कहूंगा कि चीज़ों के प्रयोग के साथ साथ, हमें जो प्रकृति से मिला है उसको विकृत कर के उपयोग न करें। इससे नयी नयी समस्याएँ पैदा होंगी। इधर रोग बढ़ाओ, उधर इलाज ढूंढो। **जो भोजन रसहीन हो गया है, वह तामसिक भोजन है। जिसमें गंध आने लगी हो, वह तामसिक भोजन है। वह भोजन, जिसमें आपने तीक्ष्ण गंध प्याज, लहसुन या हींग डाल दी (वह आपके अन्दर तामसिकता पैदा करती है)** वह आपके खाने योग्य नहीं है। आयुर्वेद की दृष्टि से चिकित्सा के लिए लहसुन का प्रयोग और तीक्ष्ण गंध के स्वाद के लिए इसका प्रयोग दो अलग बातें हैं। भारत में तो प्याज़ के नाम पर तख्ता ही पलट गया। प्याज़ और परमाणु बम, दोनों की स्थिति एक हो गयी।

जूठा भी नहीं खाइए, और ऐसा भोजन भी खाने के योग्य नहीं है जिसे देखकर घृणा आये और दुर्गन्ध आये। हमारे ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि श्मशान घाट के आस पास जो खेत होंगे, उनमें उपजे अन्न से बना भोजन लाभकारी नहीं है। आज हम खेतों में रासायनिक खाद डाल रहे हैं जिसका असर अब ज़हर के रूप में सामने आता जा रहा है। ज़मीन बंजर होती जा रही है। फ़सलों के ऊपर कीटनाशक दवाईयां छिड़की जा रही

हैं और इंजेक्शन लगाकर पशुओं का दूध निकाला जा रहा है। कुल मिलाकर अन्न के माध्यम से, दूध और फलों के माध्यम से एक प्रकार का ज़हर हमें मिल रहा है। आज का युग आतंक का युग हो गया है। चारों तरफ भय ही भय है क्योंकि व्यक्ति की मानसिकता वैसी हो गयी है। लोगों में सहिष्णुता नहीं है, सहनशीलता नहीं है। आदमी निर्दयी हो गया है क्योंकि भोजन बिगड़ा है, आहार बिगड़ा है और हमारी व्यवस्थाएँ खराब हुई हैं। अगर हम विश्व में शांति चाहते है, तो हमें सात्विक भोजन की बात सामने रखनी ही पड़ेगी। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि तुम्हारी श्रद्धा सात्विक हो, तुम्हारा तप सात्विक हो, तुम्हारा यज्ञ सात्विक हो, तुम्हारा भोजन सात्विक हो, तुम्हारा विचार सात्विक हो तो विश्व को शांतिमय बनाने के ये आधार बनेंगे। आने वाले समय में विज्ञानवेत्ता खोज कर निष्कर्ष निकालेंगे तो उनका निष्कर्ष इसी बात पर आकर टिकेगा कि अन्न बोने, अन्न कमाने और अन्न खाने का ढंग सात्विक होगा तभी संसार में शान्ति आयेगी।

भारत में पाँच हज़ार वर्ष पूर्व विचार कर वैज्ञानिक निष्कर्ष बताए गए थे कि तीन प्रकार के भोजन और तीन प्रकार के यज्ञ है।

अफला काङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः।।११।।

सात्विक, राजसिक और तीसरा तामसिक यज्ञ है। व्यक्ति अग्निहोत्र यज्ञ करता है जिसमें फल की आकांक्षा नहीं होती। कर्त्तव्य भावना से किसी बड़े अग्निहोत्र को किसी ने शास्त्र सम्मत विधि से सम्पन्न किया तो वह सात्विक यज्ञ होगा। आपकी श्रद्धा तथा यज्ञ की विधि की शुद्धता पर यज्ञ का सात्विक, राजसिक व तामसिक होना पता लगता है।

व्यक्ति ठीक समय पर उठकर स्नानादि करके, यज्ञ को ही ध्यान में रखकर अपने आसन पर आकर बैठे। मन शान्त हो, मन में किसी प्रकार का क्रोध और लालच न हो। यज्ञ वेदी पर बैठ कर झगड़ा करना या ऊँचा बोलना यज्ञ को राजसिक व तामसिक बना देते हैं। यज्ञ की वेदी पर बैठकर हमारा मन एकदम शान्त और पवित्र होना चाहिए। तन पवित्र, वस्त्र

पवित्र, विचार पवित्र, मन पवित्र, अन्तःकरण पवित्र, बुद्धि पवित्र, आत्मा पवित्र। इन सारी पवित्रताओं को लेकर यज्ञ वेदी पर बैठना चाहिए। फिर पवित्र अग्नि में आहुतियाँ देनी चाहिए। आहुतियों के देते समय मन में सबके कल्याण की भावना होनी चाहिए, तब यज्ञ सात्विक होगा और याज्ञिक सात्विक व्यक्ति कहलाएगा। पर यदि व्यक्ति कुछ प्राप्त करने की कामना, अपना मान बढ़ाने के लिए, प्रचार की इच्छा, धन के लोभ की अभिलाषा या देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करता है तो वह राजसिक यज्ञ है।

राजसिक याज्ञिक अगर मन्दिर जायेगा तो चाहेगा कि दुनिया उसे देखे, प्रशंसा करे और कहे कि वह धार्मिक हैं; इसलिए वह नंगे पाँव, हाथ में जल का पात्र लेकर, मन्दिर जाते समय ऊपर से राम नाम की चदरिया ओढ़कर, तिलक लगाकर जाएगा क्योंकि इससे ज़्यादा प्रशंसा होगी। लेकिन वही व्यक्ति जब शराब के ठेके ,कैसीनो या किसी नाचघर में जा रहा होता है तो वह नहीं चाहता कि कोई उसे देखे। घर के अन्दर सबको डाँटता है, बुरा भला कहता और किसी को रोने भी नहीं देता ताकि आवाज़ बाहर न जाये। इज्ज़त में कमी न आ जाये। दरवाज़े पूरे बन्द कर गालियाँ देता है। **घरवालों के लिये भयंकर बनेगा, राक्षस बनेगा लेकिन चाहता है कि बाहर वालों को देवता दिखाई दे।** किसी लेखक ने लिखा भी है हर घर के सामने एक आकर्षक और सुन्दर पर्दा पड़ा हुआ है। पर्दे के दूसरी तरफ नरक है और बाहर की तरफ स्वर्ग है। **हमारा सारा जीवन दिखावटी है। दर्द है, लेकिन दिखा नहीं सकते। पीड़ा है, लेकिन बता नहीं सकते। सह रहे हैं, लेकिन जता नहीं सकते। अन्दर आँसू हैं, लेकिन बाहर मुस्कुराना पड़ेगा।** बहुत गालियाँ सुनी हैं, लेकिन बाहर से हाथ जोड़ कर शिष्ट शब्द बोलने पड़ेंगे। ऐसी स्थिति जीवन को अन्दर से खोखला बना रही है। परन्तु जो व्यक्ति सात्विक है वह दिखावे में नहीं अपने आनन्द में जीता है।

समाज ने कुछ बातों पर सही और गलत की मोहर लगा दी है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं हो जाता कि समाज जो कह रहा है, वह सही है। बहुत बार ऐसा हुआ है कि किसी समय में कोई प्रथा चल पड़ी

और लोगों ने उसको धर्म कह दिया। बाद में दूसरे लोग आये जिन्होंने उस प्रथा को और उस रस्म को तोड़ा। तब उस रस्म को तोड़ना धर्म हो गया। समाज में समय समय पर परिवर्तन आते रहते हैं। समाज में विकृतियाँ आती रहती हैं, जिनको कई बार धार्मिक कहे जाने वाले लोगों ने ठप्पे लगा कर धर्म घोषित कर दिया किन्तु जो आज के युग में अप्रासंगिक हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने यज्ञ का वह रूप भी बताया जिसमें यज्ञ परोपकार के लिए किया जाता है। उस यज्ञ को भी शास्त्र के अनुसार पूरी श्रद्धा के साथ करना चाहिए। भगवान कहते हैं कि भावनापूर्वक सबकी मंगलकामना करते हुए शास्त्र सम्मत विधि से अग्निहोत्र को पूरा करना सात्विक यज्ञ है।

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।।१२।।

मान और पदार्थ की कामना के लिये अपने आपको जताने एवं अपना दंभ दिखाने और फल की कामना से युक्त किया गया यज्ञ राजसिक है। वैसे तो कहा जाता कि **'स्वर्गकामो यज्ञेत'** स्वर्ग की कामना हो तो यज्ञ करो। लेकिन जहाँ कामना हो गयी वहाँ यज्ञ सात्विक नहीं रहा, राजसिक हो गया। पुराने समय में बहुत बड़े यज्ञ होते थे। प्रयाग में जहाँ यज्ञ होते ही रहते थे वहाँ पर खुदाई करके लोगों ने देखा है कि २२, २३ फुट नीचे तक भस्म ही भस्म निकली। भारद्वाज ऋषि ने वहाँ पर बहुत यज्ञ किये। इसलिये जहाँ याग अर्थात् विशेष याग हुआ, उस जगह का नाम प्रयाग पड़ गया। बाद में प्रयाग का नाम इलाहाबाद हो गया। उन यज्ञों की भावना थी कि मौसम ठीक बना रहे, मौसम का तेवर बिगड़े नहीं।

चरक आयुर्वेद के बहुत बड़े ऋषि व आचार्य हुए हैं। उन्होंने अपने शिष्य अग्निवेष को एक बार बैठाकर कहा, "अग्निवेष! आने वाला युग रोगों का युग होगा क्योंकि वायु बिगड़ जाएगी, जल बिगड़ जाएगा, बादल बिगड़ जाएंगे। जहाँ की वायु, जल और अन्न खराब हो जायें और आदमी प्रकृति से छेड़छाड़ करके हरियाली को नष्ट कर दे, पहाड़ों के सौन्दर्य को बिगाड़ दे, जंगलों में जाकर वहाँ आग जलाने लगे, तो ऐसे लोग सबके लिये चारों तरफ़ नरक पैदा करते हैं। देवता कुपित हो जाते हैं। जब देवता कुपित होते

हैं, तो फिर पूरे समाज को और पूरे युग को दुःख भोगना होता है।"

आज स्थितियाँ जो इतनी बिगड़ी हैं तो क्यों? देवता कुपित हो गये हैं। देवता से मतलब मंदिरों में बैठे देवताओं से नही हैं। जल प्रदूषित हुआ है, पृथिवी का वातावरण खराब हुआ हैं, पर्वत की हरियाली नष्ट हुई हैं और वायु देव कुपित हो गये हैं। सागर भी एक देव है, वरुण देव, उनको भी हमने नाराज़ कर दिया है। परिणामस्वरूप अब समय पर वर्षा नहीं होती। कब वर्षा हो जाये, कब गर्मी पड़ने लगे और कब कितनी सर्दी होने लगे, कहना मुश्किल है।

तब अग्निवेश ने चरक ऋषि से हाथ जोड़ कर पूछा, "महाराज! यह भी तो कृपा करके बताओ कि इस सब को ठीक करने का इलाज क्या है।" तब उन्होंने कहा, **"प्रकृति का ध्यान रखो, प्रकृति को सींचो। बस्तियाँ बसाते समय इस बात का ध्यान रखो कि आसपास का वातावरण दूषित न हो। कारखानों का ज़हर जल में नहीं मिले।"** अपने यज्ञों की अग्नि में तेंतीस प्रकार की विशिष्ट जड़ी बूटियों और घृत की आहुतियां दो। इससे वायु शुद्ध होगी। वायु के साथ आकाश की विद्युत ठीक होगी। यज्ञ द्वारा अपने मित्र वरुण को ठीक करो, उसका संतुलन बनाओ। चरक ऋषि ने हज़ारों साल पहले ये बातें कही थी और हम लोग आज भी इन यज्ञों के महत्त्व को, प्रकृति के प्रदूषण की विभीषिका को समझ नहीं पा रहे हैं।

लोहे के पात्र में हवन नहीं करना चाहिए। हवन का पात्र मिट्टी का हो या फिर तांबे का। हवन कुण्ड में घर्षण काष्ठों से उत्पन्न की हुई पवित्र अग्नि जागृत करो। पुराने लोग नीचे और ऊपर एक एक अरणी रखकर अग्नि मंथन करते थे। अभी भी यज्ञ में यही विधान है। ओखली की तरह का लकड़ी का एक पात्र होता है। उसमें मूसल की तरह की एक लकड़ी होती है। फिर उसमें, जिस तरह से दही को मथा जाता है, उस तरह से, बहुत से लोग अग्नि के लिये मंथन शुरू करते हैं। बहुत देर तक घर्षण करने के बाद अग्नि प्रचंड होती है। उस पवित्र अग्नि को लेकर फिर हवन कुण्ड में स्थापित करते हैं। हवन कुण्ड में उस अग्नि को रखने के बाद जब आहुतियाँ दी जाती हैं, उस समय यह प्रार्थना करें कि हे प्रभु! मेरा हृदय वेदी है, श्रद्धा अग्नि है और मैं सत्य की आहुति दे रहा हूँ। मेरे प्रभु! मेरे

अन्दर के जितने भी कल्मष हैं, उनको आज जला दो। मेरी आत्मा तेरा ईंधन बन जाये। आप इस ईंधन को अपने स्वरूप में जागृत करो, आप इसको इस तरह से प्रज्ज्वलित कर दो कि मेरी आत्मा आपका स्वरूप हो जाये, मेरी आत्मा में आप की ही ज्योति जागृत हो जाये। जैसे अग्नि में डली समिधा, अग्नि रूप हो गयी उसी तरह भगवान मैंने अपने आपको तेरे अर्पित कर दिया। अब तेरा ही रंग रूप, तेरी ही ज्योति मेरे अन्दर जागृत हो जाये, तेरा ही प्रकाश मेरे अन्दर आ जाये। ऐसा भाव लाने से आपको प्रजा, पशु, अन्न, ब्रह्म, वर्चस्व, इन सबकी अनायास ही प्राप्ति होगी। उनकी कामना करने की आवश्यकता नहीं। ऐसा यज्ञ सात्विक यज्ञ होगा, लेकिन अगर मन में अपने लाभ की कामना आ गयी तो फिर वह यज्ञ राजसिक हो जाएगा।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि तामसिक यज्ञ भी होता है परन्तु कोई विधि ही नहीं होती।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।।१३।।

जिस यज्ञ का अनुष्ठान दोषपूर्ण होता है, मंत्रों की व्यवस्था ठीक नहीं है, उचित दक्षिणा नहीं दी जाए और यज्ञ श्रद्धा से युक्त नहीं हो तो ऐसा यज्ञ तामसिक यज्ञ है। यज्ञ करते समय ब्राह्मण को प्रसन्न करना भी बहुत आवश्यक है। ब्राह्मण भी ऐसा हो जो ठीक से मन्त्र पाठ कर सके, जिनको स्वरों का ज्ञान हो और जिसका मंत्रोच्चारण शुद्ध हो। वैदिक मंत्रों का पाठ करते समय संकेत भी किये जाते हैं। जैसे कव्वाली गाने वाला व्यक्ति एक हाथ कान पर रखेगा और दूसरा हाथ एक खास तरह से ऊपर उठायेगा। हाथ उठाने का संगीत से कोई लेना देना नहीं है, लेकिन उससे यह पता लगता है कि तान किस तरह से ऊपर उठने लगी है। फिर वह हाथ को नीचे ले जाता है और फिर हाथ ऊपर ले जाता है। इसका मतलब है कि वह स्वर का संचालन अर्थात् आरोह व अवरोह कर रहा है।

आपने मिलिट्री बैंड के बीच में एक व्यक्ति खड़ा देखा होगा जो निर्देशक का काम करता है। उसके हाथ में एक छड़ी होती है और सामने कागज पर कुछ लिखा हुआ होता है, जिसे देखता हुआ वह छड़ी को

हिलाता डुलाता जाता है। जैसे ही वह छड़ी ऊपर करेगा तो इसका मतलब हो गया कि अब बन्द और नीचे करेगा तो इसका मतलब है शुरू। यह इशारा स्वरों का संचालन है। स्वर संचालन द्वारा बताया जाता है कि किस विधि से गाना या बजाना है। इसलिए जितने भी गाने वाले हैं, जितने भी साज वाले हैं, सबकी आवाज़ एक होगी, एक ढंग से सब गायेंगे। और कहीं भी, किसी के स्वर में किसी प्रकार का फ़र्क नहीं आएगा क्योंकि सब चीज़ें लिखी हुई हैं। बहुत नाप तोल कर लिखी गयी हैं। यह नपा तुला और सही ढंग से किया गया उच्चारण, कानों को अच्छा लगता है। हृदय को भी अच्छा लगता है। ध्वनि के माध्यम से रीढ की हड्डी तथा शरीर में अन्य रोगों का इलाज किया जाता है। कुछ लोग अपनी कारों में ऊँची आवाज़ के स्पीकर लगा लेते हैं, जिनसे निकलने वाली ध्वनियों का हानिकारक प्रभाव हृदय पर पड़ता है। परन्तु ऐसी ध्वनियाँ भी हैं जो हृदय के रोगों तथा कष्ट क्लेश को दूर करती हैं।

वैदिक मंत्रों के नीचे और ऊपर की तरफ कुछ खड़ी और कुछ पड़ी लकीरें खींची हुई होती हैं। ह्रस्व व दीर्घ का प्रयोग होता है। फिर तरह तरह के स्वरों में किसको ह्रस्व रखना है, किसको दीर्घ, सब संकेतों द्वारा लिखा होता है। उच्चारण के संकेतों को समझना होता है। संगीत की जो लिपि लिखी जाती है, उसमें डबल एस (S S) बनाकर कुछ लिखा होता है, फिर आगे डॉट डॉट (दो बिन्दुओं) का निशान लगाया हुआ होता है। सबको वह भाषा समझ में नहीं आती लेकिन संगीतकार समझ जाएगा। उसके सामने जैसे ही यह कागज़ रखा जाता है, वह गुनगुनाना शुरू कर देता है। उसी हिसाब से अपने साज़ पर निकाल लेगा; फिर साज़ का मिलान होगा और सब गाना शुरू कर देंगे। सबकी अपनी अपनी भाषायें होती हैं। व्यापारियों ने भी तो अपनी भाषायें बना रखी हैं। शेयर मार्किट में लोग कपड़े के नीचे उंगली रखकर हाथ से कुछ चला देते हैं जिसे देखकर दूसरा आदमी समझ लेता है कि कितना भाव चल रहा है। तरह तरह की भाषाएं चलती हैं। इसी तरह प्रत्येक मंत्र और उच्चारण का सही ढंग से प्रयोग करते हुए जिस समय व्यक्ति मंत्र पाठ करता है उस समय उस मंत्र पाठ का प्रभाव

पूरे ब्रह्माण्ड पर पड़ता है। इसलिए इस विधि को जानने वाले सभी लोग अगर सही ढंग से उच्चारण करें तो उसका प्रभाव आपके मन से लेकर, घर परिवार में सब जगह और विश्व में सर्वत्र ब्रह्माण्ड में पड़ेगा।

एक व्यक्ति कलकत्ता में मिले। उन्होंने बताया कि उनके घर में कपड़ों पर खून के छींटे आ जाते थे, आग स्वयं जलने लग जाती थी। तरह तरह की विकृतियाँ पैदा होने लगी थीं। घर के अन्दर कलह क्लेश बहुत थी। उन्होंने कहा "मैंने एक बार यज्ञ की महिमा पर उपदेश सुना। अपने संकट दूर करने के लिए मैंने एक यज्ञ करवाया और दक्षिण भारत से सही मंत्र उच्चारण करने वाले एक पंडित को बुलवाया। उन्होंने पूरी श्रद्धा के साथ ठीक विधि से यज्ञ शुरू किया। वेदोक्त मंत्रों का पाठ हुआ। उसके बाद से मेरे घर की स्थिति और मन की दशा बदल गयी। घर का वातावरण पूरा का पूरा बदल गया है। उन्होंने यह भी कहा कि जो यज्ञ कराने वाले लोग थे, उनका भी ध्यान यज्ञ पर ही था, दक्षिणा पर नहीं था। मंत्र पाठ करने वाले व्यक्ति का ध्यान अगर दक्षिणा पर रहता है तो वह सोचता है कि क्या बोलूं जिससे यजमान खुश हों और ज़्यादा से ज़्यादा दक्षिणा दें। विधिपूर्वक ठीक ढंग से मंत्र उच्चारित किये जायें तो वे चमत्कार दिखायेंगे। इसलिये श्रद्धा रखकर यज्ञ करो, शास्त्र के अनुसार यज्ञ करो।

विश्वामित्र ऋषि ने राम और लक्ष्मण को आंमत्रित किया कि आप हमारे यज्ञ की रक्षा के लिए आएं। राक्षस हमारे यज्ञ को अपवित्र करने में लगे हुये हैं। राम तो रक्षा के लिये तत्पर थे, पर राजा दशरथ तैयार नहीं हो रहे थे। पर गुरु वशिष्ठ ने दशरथ से अपने पुत्रों को भेजने को कहा तब राम और लक्ष्मण गये और धनुष बाण लेकर यज्ञ की सुरक्षा में खड़े हुये। नियम हैं कि यज्ञ स्थली के पास कहीं कोई हथियार नहीं होना चाहिये, लेकिन एक दांडिक व्यक्ति की व्यवस्था मानी गयी है। किसी भी विवाह के अवसर पर दंड धारण करने वाला व्यक्ति दूर खड़ा होता है, इसी तरह से दंड धारण करने वाला एक व्यक्ति मंदिर के बाहर खड़ा होता है। फूल के साथ कांटे इसीलिये उगाये जाते हैं, ताकि वे फूल को सुरक्षित रख सकें। क्षत्रियों का कार्य ही ज्ञानी लोगों की सुरक्षा के लिये शस्त्र धारण

करना और अपने धर्म का पालन करना है। जो लोग प्रशासन को सम्भालते हैं, उनकी भाषा कांटों जैसी कड़वी हो जाती है ताकि समाज का वातावरण सुरक्षित रहे। दंड की व्यवस्था इसलिये रखी गयी है कि जिसके हाथ में दंड है वह दांडिक व्यक्ति पवित्र स्थान को पवित्र बनाये रखे। फूल जिन कठोर डालों पर ठहरे हैं, वे ही तो उनको थामे हुए हैं। इसलिये यज्ञ की व्यवस्था ठीक रखने के लिए सुरक्षाकर्मी रहने चाहिएं ताकि वातावरण सुरक्षित बना रहे और यज्ञ करने वालों को स्वयं क्रोध न करना पड़े। राम लक्ष्मण ने यही कार्य किया।

राक्षस लोग यज्ञ को खराब करने में लगे हुए थे और किसी तरह से विश्वामित्र को गुस्सा दिलाना चाहते थे ताकि उनका यज्ञ भंग हो जाये। **अग्निहोत्र वाली स्थिति में या मन्दिर में या धर्म स्थान में या भक्ति वाले स्थान में कभी गुस्सा न करो, न ऊँचा बोलो, न कड़वा बोलो। अगर आप ऐसा बोलते हैं तो आपको वहाँ से अमृत फल की प्राप्ति नहीं होगी।** भगवान ने कहा है कि जो यज्ञ मंत्रहीन हो, जहाँ ठीक दक्षिणा नहीं दी गयी हो, विधि पूरी नहीं की गयी हो, वेदी का सृजन गलत ढंग से किया गया हो, उस यज्ञ से अच्छे परिणाम की आशा व्यर्थ है। पुराने समय में वेदी बनाने की अलग अलग विधियां थीं। कुछ कमल के आकार की, कुछ चन्द्राकार, कुछ सूर्याकार, कुछ षट्कोण वाली, कोई चार कोण वाली, कोई गोलाकार वेदियाँ बनाई जाती थीं। फिर प्रत्येक को बनाने की विधि भी अलग अलग है। मेखलाएँ बनाई जाती थीं जहाँ जल का प्रसेचन होता था। जल को प्रवाहित करने का स्थान भी ठीक ढंग से बनाया जाता था। कलश कहाँ रखा जाना है, दीप कहाँ रखा जाना है, रंगोली से कैसे सजाना है, किस प्रकार के आसन पर बैठेंगे, कौन किस दिशा में मुख करके बैठेगा, इन सबकी एक पूरी व्यवस्था थी। इन व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप यज्ञ ठीक ढंग से होते थे। उनसे लाभ भी उत्तम होता था। हम लोग वे सारी विधियाँ और विधान भूल गये हैं। इसलिए यज्ञ भी उस तरह का लाभ नहीं दे पा रहे।

महाभारतकार व्यास ऋषि ने इस बात पर बहुत अधिक बल दिया है कि भूखे को अन्न खिलाना, गऊ के लिये ग्रास निकालना और तड़पते

हुए लोगों के बीच जाकर अपने प्रेम और सहानुभूति को बांटना, यज्ञ है। परोपकार के जो भी कार्य आप करते हैं, वे सब यज्ञ कहलाते हैं। उन यज्ञों को अपने जीवन का आधार बनाना चाहिए। परन्तु उन कार्यो का फल इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें आपकी भावना क्या होती है। राष्ट्र रक्षा के लिये या देश की स्वतन्त्रता के लिये कुछ लोग जेल गये। जेल में उनके पास खाली समय था। उन लोगों ने उस समय को किस तरह से बिताया? लोकमान्य तिलक ने बर्मा की मांडेला जेल में बैठकर गीता पर भाष्य लिखा। सिर्फ लिखा ही नहीं वे गीता में काफ़ी गहराई तक़ उतरे। उन्होंने जेल को जेल नहीं रहने दिया, मन्दिर का रूप दे दिया। विनोबा भावे ने जेल को सत्संग स्थल बना दिया था। वहीं गीता पर प्रवचन देते थे। जेल में तीर्थ जैसा वातावरण निर्मित हो गया। जवाहरलाल नेहरू ने जेल में बैठकर अपनी बेटी को बड़े ही ज्ञानवर्धक पत्र लिखे जो आज अंग्रेज़ी साहित्य का हिस्सा बन गए हैं। 'डिस्कवरी ऑफ इन्डिया' नाम की पुस्तक भी उन्होंने जेल में लिखी। उनके लिये जेल एक विश्वविद्यालय बन गया।

मैं ये उदाहरण इसलिये दे रहा हूँ कि लोग जेल को अत्यन्त दुखकारी जगह समझते हैं। पृथिवी पर नरक का नाम जेल है लेकिन उसको भी किसी ने मन्दिर बना दिया, किसी ने सत्संग स्थल बना दिया, तो किसी ने विश्वविद्यालय। **दुनिया आप की है, उसे आप क्या बनना चाहते हैं यह आपकी भावनाओं पर निर्भर करता है। आप कैसे जीना चाहते हैं, कैसे रहना चाहते हैं यह आप स्वयं निर्धारित करते हैं।** गरीब की सेवा यह समझ कर करें कि दरिद्र में नारायण है और आप दरिद्रनारायण की पूजा कर रहे हैं। दरिद्र में भगवान को देखकर कुछ देंगे तो आपको यह नहीं लगेगा कि आप किसी पर अहसान कर रहे हैं बल्कि आप सोचेंगे कि आप भगवान को भोग लगा रहे हैं। आपकी फैक्ट्री आपका कर्मक्षेत्र है। प्रभु ने यह कर्मभूमि आपको दी है। यहाँ से आपको और आपके भाइयों को रोज़ी रोटी मिल रही है, मज़दूरों को भी मिल रही है। सभी अपनी अपनी कर्मभूमि में कर्त्तव्य करने के लिये आये हैं। उस जगह के प्रति भावना बदलते ही वहाँ पर आपका आना और कार्य करना आनन्द देने वाला बन जायेगा।

प्रत्येक माँ यदि अपने बच्चे में भगवान को देखना शुरू कर दे तो वह उससे उसी ढंग से बातें करना शुरू कर देगी जैसे वह भगवान से बातें कर रही हो। **इसलिये अपनी भावना बदलिये और फिर संसार को बदला हुआ देखिये।** जगत को बदला हुआ देखिये। सारी दुनिया ही बदली नज़र आयेगी। दुःख इस बात का है कि **हम सारी दुनिया को बदलने के लिये तैयार हैं, लेकिन स्वयं को बदलने को तैयार नहीं हैं। सारी दुनिया को समझाना चाहते हैं, लेकिन खुद समझने को तैयार नहीं हैं। सारी दुनिया को उपदेश देंगे, लेकिन स्वयं को उपदेश नहीं देंगे। सबको डांट फटकार देंगे, लेकिन अपने आपको कभी नहीं डांटेंगे।**

भगवान श्रीकृष्ण ने आगे फिर कहा कि तीन प्रकार के यज्ञ हैं, तो तीन प्रकार का तप भी है। तप भी सात्विक, राजसिक व तामसिक होता है। भगवान ने समझाया है कि एक होता है शरीर का तप, दूसरा मन का तप और एक तीसरा वाणी का तप। तप करते समय यदि कोई अपने शरीर को सताएगा, कष्ट देगा, अपने ऊपर अत्याचार करेगा तो वह तप तामसिक है। कई लोग पूजा पाठ करने के अपने ढंग से सारे घर को दुःखी करते हैं। घर में सबका काम करने का, सोने, उठने का अलग समय है। जो सुबह जल्दी उठते हैं वे सवेरे सवेरे 'हरे राम, हरे राम' बहुत ज़ोर ज़ोर से बोलना शुरू कर देते हैं। इससे दूसरों को कष्ट होता है। **आपके तप का माध्यम इस तरह का होना चाहिए कि आप अपने को भी कष्ट न दें और दूसरों को भी कष्ट न हो।** सबका ध्यान रखते हुए अपने नित्य कर्म करो और पूजा पाठ भी। आपके घर में जागरण हो तो सारे मोहल्ले को बुला लो, सबका आशीर्वाद लो लेकिन जब सबके सोने का समय हो, उस समय आप अपना माईक उतना ही रखें जितना आप सुन सकें। पता नहीं कोई बीमार, कोई लाचार हो जिसको नींद की आवश्यकता है। कोई विद्यार्थी हो जो पढ़ना चाहता है। तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम दूसरों का ध्यान रखें, तभी सबकी दुआएं मिलेंगी। अगर हम जोश में आ गये और दिखावे में लगे रहे, सारी सड़क के ऊपर माईक लगाये, स्पीकर लगाये और मन में यह मान लिया कि सबके कान पवित्र हो रहे हैं तो यह ठीक नहीं है। सही

पवित्रता यही होगी कि उनको सोने दिया जाये। उनके कानों में धर्म जबरदस्ती न घुसेड़ा जाए।

अपनी पूजा को पवित्र बनाने के लिए, सात्विक बनाने के लिए ज़रूरी है कि खुद भी कष्ट न सहो और दूसरों को भी कष्ट न दो। हाँ कर्त्तव्य पूर्ति के लिये कष्ट सहना, दूसरों को सुख देने के लिये खुद कष्ट सह लेना तप है। दंड को सहन करने का नाम तप है। सहनशक्ति को बढ़ाने का नाम तप है।

भगवान ने तप भी तीन तरह के बताए हैं:

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।१४।।

देवता, द्विज, गुरु और ज्ञानी ध्यानी लोगों का सम्मान करना, उनका पूजन करना, पवित्रता बनाये रखना, सरल बने रहना, ब्रह्मचर्य और संयम का पालन करना, हिंसा न करना, ये सब शरीर के तप हैं। देवताओं का पूजन करना, ब्राह्मणों ज्ञानियों ध्यानियों का सम्मान सत्कार करना तप है। उनके सत्कार में, उनकी सेवा में जितना समय लगा सकें, लगाइए। सेवा करें परन्तु सेवा करते हुए किसी प्रकार का अहंकार न आने दें, न क्रोध आने दें, न एहसान जताएं, न किसी के प्रति कोई ईर्ष्या वैर ही रखें।

मनोवैज्ञानिकों ने तरह तरह के प्रयोग किये हैं और कहा है कि आप जैसा दूसरों के बारे में सोच रहे होते हैं, दूसरे भी आपके बारे में वैसा ही सोच रहे होते हैं। अतः अच्छा चिंतन करो, जिससे दूसरे भी आपके प्रति अच्छा चिन्तन रखें। मनोवैज्ञानिकों ने इस संबंध में कुछ खोजें की हैं। एक स्थान पर एक ही कक्षा के बीस विद्यार्थियों को रखा। वे छात्रावास में साथ साथ रहते थे। मनोवैज्ञानिक ने एक बार उनसे कहा कि एक मिनट में कोई भी ऐसे पन्द्रह नाम लिखो, जिनसे तुम बहुत घृणा करते हो, जिनकी शक्ल भी देखना पसन्द नहीं करते, जिनके साथ बैठना भी नहीं चाहते, लेकिन मजबूरीवश बैठना पड़ता है। जिनके साथ तुम जीना नहीं चाहते लेकिन जीना पड़ रहा है। सबने कोशिश की। किसी ने पन्द्रह नाम लिख दिये,

किसी ने तेरह लिखे, किसी ने बारह नाम लिखे तो किसी ने आठ। एक विद्यार्थी ने एक भी नाम नहीं लिखा। मनोवैज्ञानिक ने सबके पर्चे ले लिए। उसमें एक विचित्रता देखने को मिली। जिस विद्यार्थी ने जिसका नाम लिखा था, उस विद्यार्थी ने भी उसका नाम लिख रखा था। परन्तु एक विद्यार्थी जो एक भी नाम नहीं लिख पाया जिससे वह घृणा करता हो, तो किसी की सूची में उसका नाम नहीं लिखा था। अर्थात् सभी उसके मित्र हैं, सभी उसके सहयोगी हैं, सबके साथ उसका मेल है।

मन की दशा जैसी बनाकर के आप चलेंगे, संसार आपको वैसा ही दिखाई देगा और दूसरे लोग भी आपको वैसा ही देखेंगे।

इस बात का ध्यान रखकर तप करो कि अहंकार का प्रदर्शन न हो, दिखावा न हो। जप तप करते समय परमात्मा को साक्षी बनाओ, संसार को नहीं। हम लोग संसार को साक्षी बनानें की कोशिश में लग जाते हैं। दुनिया देखे कि हम कितना बड़ा काम कर रहे हैं। लेकिन जहाँ कोई गलत काम कर रहे होते हैं, वहाँ हमारी कोशिश होती है कि कोई नहीं देखे। वहाँ यह भी मानने लग जाते हैं कि भगवान भी नहीं देख रहा है। तप ही वह माध्यम है जो आपके सारे दोषों को जलाकर आपके अन्तःकरण को इतना पवित्र कर देगा कि आप समाज के भय से मुक्त हो जायेंगे और तब आप अन्तःकरण की आवाज़ से चलेंगे। तप से आपका रब भी खुश होता है।

तप का कार्य हमारी आत्मा को आलोकित करके आंतरिक शक्तियों को जागृत करना है। तप से हमारी गुणवत्ता में बढ़ोतरी होती है। संसार के सभी महापुरुषों ने जीवन में अनेक तप किये। इसलिये आप अपने आपको तपाना, सहनशक्ति को बढ़ाना और सुप्त शक्तियों को जागृत करना। विपरीत परिस्थितियों में टिके रहने के लिये अपने अन्तर में बल को बढ़ाने का प्रयास करना, तप है। कच्ची ईंटें कमजोर होती हैं लेकिन आग में तपाने के बाद उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

किसी लोहे या हथियार को धारदार बनाने के लिये उसे बार बार आग में डालते और निकालते हैं। पहले आग में तपाकर उसको चपटा करते हैं, और फिर पानी में डालते हैं। अर्थात् खूब गर्म के बाद ठंडे और फिर खूब

गर्म जैसी विपरीत स्थितियों में रखकर लोहे को मज़बूत किया जाता है। उसी प्रकार आदमी के शरीर और मन को प्रतिकूल वातावरण में रखकर और उसकी बुद्धि को उलझनों में डालकर, उसकी शक्ति को निखारा जाता है। सैनिक कभी खन्दक में और कभी आग में कूदता है, दलदल के बीच से निकलता या पहाड़ों पर चढ़ता है, तो उसका यह कष्टप्रद अभ्यास निरर्थक नहीं होता। उस अभ्यास से उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं और यह पता चलता है कि यदि युद्ध में उसे किसी ऐसे ही वातावरण का सामना करना पड़ जाये तो वह उस परिस्थिति का सामना कैसे करेगा।

प्राचीन काल में इस बात पर बड़ा बल दिया जाता था कि जो छोटा बच्चा है उसे जहाँ कोमलता और प्यार दिया जाये (क्योंकि हर बच्चे को ममता, वात्सल्य, सौहार्द और प्रेम की आवश्यकता होती है) वहाँ उसे मज़बूत बनाने के लिये उससे थोड़ा तप भी कराया जाना चाहिए। इसलिये आठ साल से लेकर चौबीस साल तक की जो उम्र है उसमें गुरु के सान्निध्य में रहता हुआ कोई भी बालक जहाँ ज्ञानार्जन करता था वहीं वह अपनी तप की शक्तियों को भी जागृत करना सीखता था। गुरु उसे तपाता था और तपाकर उसे शक्तिवान बनाता था।

यदि आपके सामने विपरीत परिस्थितियाँ हैं चाहे वह घर का वातावरण है, परिवार का या समाज का, या जहां आप कार्य करते हैं उस संस्थान का, चाहे कंपनी, फैक्ट्री या दुकान या फिर कोई अन्य कार्य आप करते हैं, वहाँ भी विपरीत वातावरण आपको मिलता है तो उसके लिये आपको कभी यह नहीं मानना चाहिए कि यह आपके लिये कष्टप्रद है, दुःख देने के लिये आया है। बल्कि यह मानिये कि इस उलझन के बीच से निकलने का आपको अवसर मिला है ताकि आप अपनी शक्ति को संजो सकें। यह **परिस्थिति, दुःख या कष्ट आपके लिये तप की भट्टी है, तपोवन है।** कौन व्यक्ति ईर्ष्या में क्या कहता है, किस व्यक्ति ने निन्दा और चुगली करने के लिये कौन से शब्दों का प्रयोग किया इसका अहसास मन में

रखिये, लेकिन इस बात से घबराईये नहीं कि किस व्यक्ति का कैसा व्यवहार है? किसने आपकी तारीफ़ की और कब तारीफ़ करते करते बुरा कहा। यह दोनों स्थितियां जीवन में आपके सामने आयेंगी ही।

मौसम बदलने में भी कुछ समय लगता है लेकिन आदमी को बदलते देर नहीं लगती। मौसम बदलेगा तो आप अपने शरीर को उसके लिये तैयार कर लेते हैं। गर्मी जाते जाते बरसात आ जाती है, बरसात जाने लगी तो सर्दी आने लगती है। **मौसम बदलने में कुछ देर लगती है, वह धीरे धीरे बदलता है लेकिन व्यक्ति का व्यवहार मौसम से भी ज़्यादा तेजी से बदलता है।** कोई व्यक्ति आपको सम्मान देते देते न जाने कब किस समय बुरा कहने करने लग जाए, पता नहीं चलता। जिनसे आपने उम्मीद की थी कि वे आपके लिये अच्छे शब्द कहेंगे, क्योंकि उनके लिये आपने बहुत कुछ किया है और आप उनसे केवल इतना ही चाहते हैं कि वे आपके लिये दो अच्छे शब्द कहें, लेकिन अच्छे शब्द कहने की बजाय यदि वे बुरा भला कहने लग जायें तो? इन्सान कोई पत्थर या लोहे का तो बना नहीं है, उसके अन्दर संवेदनाएँ हैं। इसलिये छोटी छोटी बातें उसके हृदय पर बहुत चोट करती हैं, इनसे वह बहुत पीड़ित होता है। **लेकिन आदमी को यह मान कर चलना है कि विपरीत परिस्थितियों में धैर्य रखना तप है, और किसी से उम्मीद रखना ही गलत है।**

आपको यह सोचना चाहिए कि आपका कार्य केवल कर्त्तव्य निभाना है। अपना कार्य सिर्फ बांटना है बदला चाहना अनुचित है। आपके परमात्मा चाहते हैं कि आप सिर्फ़ देना सीखें क्योंकि आपके परमात्मा पिता का स्वभाव देने का है, इसलिये आपका स्वभाव भी दाता वाला बनना चाहिए। प्रभु इतना कुछ देता है, बदले में मांगता कुछ भी नहीं है। वह कभी यह भी नहीं चाहता कि कोई उसे धन्यवाद भी करे। वह अपना कार्य करता जाता है इसलिए आपको भी अपना कार्य करते रहना चाहिए।

भगवान ने कहा है कि दिव्य गुणों से युक्त मनुष्य तो देवता का रूप होता है। **देवी देवताओं का पूजन करना, परमात्मा का ध्यान और भजन अर्चना करना भी तप है।** इसे नियमपूर्वक करना चाहिये। नियमबद्धता सब

से बड़ा तप है। आसन पर स्थिर होकर बैठने का अभ्यास हो जाए तो यह भी तप है। मौसम अनुकूल न हो, परिस्थितियां विपरीत हों, शरीर साथ न दे रहा हो, फिर भी आप नियमानुसार भजन पूजन करते हैं तो यह तप है।

प्रायः लोग जोश में आकर कोई कार्य शुरू करते हैं परन्तु थोड़े ही दिनों बाद करने से पहले ही उनका जोश ठंडा पड़ जाता है। ऐसे लोगों के तप में कमी होती है। कई लोग अचानक सुख सुविधा मिलने पर बहुत उछलने लगते हैं और दुविधा आ गई तो रोने बैठ जाते हैं। किस्मत, दुनिया, शरीर, घरबार व्यापार सबको कोसने लगते हैं। वे विपरीत परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाते। **जीवन में सदा अनुकूलता नहीं मिलती और न हमेशा प्रतिकूलता। सुख आएगा तो दुःख भी भोगना पड़ेगा। मान मिलेगा तो अपमान भी आयेगा। उन्नति होगी तो अवनति भी होगी। आगे बढ़ोगे तो पीछे भी हटना पड़ सकता है। कई जगह अपनी मनवाई है तो कई जगह दूसरों की भी माननी पड़ेगी।** कई बार आपने दूसरों को झुकाया है तो कभी झुकना भी पड़ेगा। यह जीवन का सत्य है।

वही आदमी कमज़ोर पड़ता है जिसके अन्दर तप की शक्ति नहीं है। हमारे महापुरुषों ने कहा है कि व्यक्ति को तपाकर सम्पूर्ण बनाया जाना चाहिये। अपने लिये तो हर कोई कष्ट सहता है पर धर्म, समाज और मानवता के लिये कष्ट सहने को कोई तैयार नहीं होता। कष्ट सहकर भी जो धर्म और समाज के कार्यों के लिये तैयार हो तो समझना कि वह तपस्वी है सच्चा और धार्मिक है। पर ऐसे लोग कितने होंगे? लाखों की भीड़ में कोई एक ऐसा जागृत दिखाई देता है जो दूसरों की आग में खुद को जलाता है, दूसरों के दुःख को अपने सिर ले लेता है।

किसी जन्म में आप भी महापुरुष रहे होंगे, लेकिन अब आज परिस्थितियों का रूप ऐसा बदला है कि वही आदमी भिखारियों जैसी बातें करने लगा है। आप अपने स्वरूप को याद करें कि आप कौन हैं? ऐसा मान लीजिये कि आप राजा के बेटे थे। सिर पर चोट लगने से आप अपनी वास्तविकता भूल गए और कुछ ऐसे लोगों ने जो जंगली लोग थे, आपको पाला। इसलिये जो वे करते थे उन्हीं की तरह आप भी करने लगे। उन्हीं

की तरह बोलने गाने लगे लेकिन एक समय ऐसा आया जब राजा के मन्त्री ने आपको पहचान लिया। पहचान कर वह आपको राजा के पास ले गया और आपका इलाज शुरू हुआ। आपकी याद वापिस आ गई तब जिन भिखारियों के बीच आप उनके साथी की तरह चलते थे अब उन्हीं के बीच राजा की तरह चलने लगे। आदमी वही है, शरीर वही है, पर वास्तविक रूप याद आते ही स्थिति बदल गई। अपनी याद वापिस आने से उसका व्यक्तित्व बदल गया। जो लोग उस पर रोब जमाते थे अब वही उससे थर थर कांपने लगे। जिनसे वह डरता था अब उनके सामने वह शेर जैसा निडर बन गया।

अगर भेड़िये या शेर की मांद में कोई बकरी का बच्चा पहुंच जाए तो ज़िंदा नहीं बच पायेगा। लेकिन अगर शेर का बच्चा बकरियों के बीच चला जाए और बहुत समय तक वहीं पलता रहे तो वह यह भूल जायेगा कि वह शेर है। पर तभी अचानक कोई शेर उसके सामने दहाड़े और उसको लगे कि यह आवाज़ तो मैं भी निकाल सकता हूं और तब वह वैसी आवाज़ निकालने लग जाये तो सब बकरियां डर कर भागने लगेंगी। अभी तक बकरियां उस पर रोब जमा रही थीं पर स्थिति अचानक बदल गई।

शेर को जैसे अपने शेरपने का अहसास हो गया तो स्थिति बदल गई। उसी प्रकार आपको भी जब अपने स्वरूप का अहसास हो जायेगा तब सब डर खत्म हो जायेगा। फिर तो आपको यह लगेगा कि मैं साधारण नहीं हूँ, दिव्य आत्मा हूँ। आप संसार की कीचड़ में गिरने के लिये नहीं हैं, ऊपर उठने के लिए आए हैं। महापुरुषों के नज़दीक रहने और तपस्या करने का परिणाम यह होगा कि आप अपने आत्मस्वरूप को जागृत कर पायेंगे। **इसलिये दिव्य पुरुषों का संग करते समय हमेशा यह याद रखो कि आपके अन्दर दिव्यता है और आपने उसे जगाना है।**

भगवान ने कहा **द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनम्** द्विज (जिसके दो जन्म हुए हों) का अर्थ है ब्राह्मण। द्विज का अर्थ क्षत्रिय भी है और द्विज का अर्थ वैश्य भी है। द्विज का अर्थ पक्षी भी है और द्विज का अर्थ दाँत भी है। जिसके दो जन्म हुए हों अर्थात् जो दो बार पैदा हुआ हो उसे द्विज कहते हैं। पक्षी को द्विज कहा गया है क्योंकि उसका एक जन्म तब हुआ जब वह

कि सवेरे का समय है, मन को शान्त रखा जाये, उनका भी उत्तर देने की कोशिश की। उसने कहा, "महाराज! आपने उत्तर क्या दिये, यह तो बखेड़ा खड़ा कर दिया। इससे तो मुझे डेढ़ सौ सवाल और सूझ गये हैं। अब आप उनका भी जवाब दीजिये।" अब तक की बातचीत में ६० मिनट बीत चुके थे और इन ६० मिनट में महात्मा जी की हालत यह हो गई थी कि उन्होंने अपने आदमियों को बुलाकर कहा, "इस आदमी को आश्रम से बाहर निकाल कर फेंक दो। यह आदमी भगवान को तो मानता ही नहीं है और मेरी बात भी नही मानता।"

उस आदमी ने जाते जाते कहा, "महात्मा जी, जो आपने किया है, यही मेरे साथ हर जगह होता है। आपको तो एक घण्टा देर लग गयी समझने में, बाकी लोगों को तो एक मिनट में ही समझ में आ जाता है। मैं जहाँ जाता हूँ मेरे साथ यही होता है।" लेकिन महात्मा उसके बाद जब साधना करने बैठे, आँखें बंद की और ध्यान में उतरे तो अन्तर से आवाज़ आई, भगवान ने कहा, " यह आदमी साठ वर्ष का है और साठ साल से इस धरती पर रहता है, मेरी गोद में रहता है। मैंने तो कभी अपनी गोद से इसे बाहर नहीं ढकेला। तू साठ मिनट भी नहीं रख पाया इसको अपने पास। यही तेरी भक्ति और साधना है ? तेरी सहनशक्ति को क्या हुआ है?" अब तो महात्मा को दु:ख लगा वे बार बार मन को यूँ समझाने लगे कि हे प्रभु! तेरे पूजन की राह में जो बाधक बन जाए उससे खीझ आएगी ही। पर **तपस्या की कसौटी तो यह है कि खीझ आने ही मत दो।**

गुरु का धर्म है कि वह स्वयं में खीझ आने ही न दे. लेकिन शिष्यों का धर्म भी तो यह नहीं है कि वे सारे मिलकर गुरु में खीझ पैदा करने के कारनामें करते रहें। इसलिये गुरु के नज़दीक रहने से जागृति तो आयेगी, लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि हम उनको प्रसन्नता दे सकें, शान्ति दे सकें और उनके लिये अच्छा वातावरण बना सकें। इस बात का प्रयास किया जाना चाहिये कि गुरु किसी ऐसी भाव मुद्रा में आ जायें कि अचानक उनकी कृपा हमारे ऊपर हो जाए और जो कुछ वे बताना चाहते हैं वह हमें बतायें।

बूंद कब बरसेगी यह बात तो बादल पर निर्भर करती है लेकिन

माँ के गर्भ से अन्डे के रूप में धरती पर आया और दूसरा जन्म तब हुआ जब वह अन्डे से बाहर निकला और पक्षी बना। पंख आये और उड़ा। तो उसके दो जन्म हो गये। इसलिये उसे द्विज कहा गया।

दाँत के भी दो जन्म होते हैं। एक दूध के दांत होते हैं। बचपन में ये टूटते हैं और उसके बाद दूसरे दाँत आते हैं जिनको असली दाँत कहते हैं। उनसे ही आपका काम चलता है। पहले जन्म को इतना महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया है जितना दूसरे जन्म को। मनुष्य को एक जन्म माता पिता के माध्यम से मिलता है। लेकिन दूसरा जन्म वह है जो गुरु के कुल से मिलता है। जब आँख खुल ज़ाये, जब आपको होश आ जाय, जब आप जागृत हो जाएँ, जब आप अपने स्वरूप को पहचान लें तब आपका दूसरा जन्म होता है जो महत्त्वपूर्ण है, बाकी तो उम्र चाहे जितनी हो उसकी कोई कीमत नहीं है। इसलिए जब गुरु के घर से जन्म मिले तो उसके बाद व्यक्ति को द्विज कहते हैं।

जो दिव्य गुणों से युक्त जन्मा है उसकी सेवा करना तप है। जैसे अनेक दीयों के बीच यदि बुझा हुआ कोई दीया रखा हो और हवा का कोई हलका सा झोंका आने से लपट थोड़ी सी उधर हो जाने से वह अनायास ही जल उठता है, उसी प्रकार से महापुरुषों की सेवा करते करते, उनके बीच बैठे बैठे पता नहीं कब उनकी लपट आये और अनायास ही हमारे बुझे हुए दीपक के अन्दर की ज्योति जागृत कर दे। पता नहीं हमारा स्वरूप कब चेतन हो जाये? हमारे अन्दर भी वह दिव्य गुण जागृत हो जायें जो उनके अन्दर हैं। हमारे अन्दर का जो बुझा हुआ दीपक है वह भी उसी तरह से प्रचण्ड और ज्योतिर्मय हो जाए जैसे महान व दिव्य पुरुषों के अन्दर ज्योति जागृत है। ऐसे लोगों के नज़दीक बैठना चाहिये। पता नहीं कब क्या बात बन जाये।

एक बार एक महात्मा बैठे हुए थे। एक आदमी आया और बोला, "महाराज! शंका सामाधान करना है।" जिस उजड्ड ढंग से वह बोला था उसके कारण महात्मा ने सोचा कि जल्दी से इसको एक आध जवाब देकर यहाँ से विदा करें और तब शान्ति से अपना अध्ययन, मनन व चिन्तन करें। सो महात्मा जी ने उसकी शंका का उत्तर दे दिया। अब उस आदमी ने उस उत्तर को लेकर पचास सवाल और कर दिये। महात्मा ने यह सोचकर

आपको तो अपना पात्र खोले रखना है और बादल की ओर टकटकी लगाये रखना है। यह बात निश्चित है कि जिस दिन कृपा की बूंद बरसेगी उस दिन अगर आपने अपने पात्र को सीप बना लिया तो फिर वह बूंद, बूंद नहीं रहेगी, मोती बन जाएगी। इसलिए आप अपनी पात्रता में कमी न आने दें। बहुत से लोग बहुत दूर रहकर भी गुरु की सही ढंग से सेवा करते हैं। **मानवता की सेवा के लिए किसी ने कार्य किया है तो वह गुरु की सेवा है।** गुरु अपने लिये कभी कुछ नहीं चाहता। इसलिये देव, द्विज, गुरु, प्राज्ञ अर्थात् वह बुद्धिमान, स्थिरमति, प्रज्ञापुरुष जो युग को नयी दिशा दे, उसकी सेवा करने का मौका मिले, उसकी राह पर चलने का मौका मिले तो इसे अपना अहोभाग्य समझिए।

आप किनका अनुकरण और अनुसरण करते हैं? आपने किसको अपने जीवन का आदर्श माना है? आप किसकी नकल करते हैं? किसी नेता की या किसी अभिनेता की? या फिर उसकी जो रातोंरात अमीर बन गया है या छल कपट से एकाएक किसी पद पर पहुँच गया है? ऐसे लोगों की नकल करके आप अपने को क्या रूप देना चाहते हैं? समस्या केवल पेट भरने और तन ढांपने की तो है नहीं। वह तो कैसे भी पूरी हो जायेगी। चीटियां भी अपना पेट भरती हैं, उनका भी एक परिवार होता है। चिड़ियों का भी एक संसार होता है। कौए भी अपना पेट भर लेते हैं। शूकर भी अपना पेट भरता है। तो अगर यही ज़िन्दगी है तो ये सब जीव जन्तु अपना घर संसार चला रहे हैं। आपको तो भगवान ने इन सबसे अलग अंग-प्रत्यंग दिये हैं। ये जो हाथ आपके पास हैं वैसे हाथ पशु पक्षियों के पास नहीं हैं। अगर भालू या बन्दर को परमात्मा ने हाथ दिये हैं तो आपकी जैसी बुद्धि उनको नहीं दी, आपके जैसी वाणी नहीं दी, वैसा चिन्तन भी नहीं दिया। उनके पास विकास की सम्भावनाएं भी वैसी नहीं है जैसी आपके पास हैं। तो जब आपको परमात्मा ने इन सब जीवों से अलग बनाया है तो फिर इन सबसे अलग प्रकार का जीवन बनाने की बात आप को सोचनी चाहिये।

ज़िन्दगी को आप एक दायरे में मत घुमाए। रोज़ रोज़ उसी सर्कल (घेरे) में, उसी दायरे में चक्कर काटते जीवन पूरा न हो जाये।

इसीलिये जो प्रज्ञा पुरुष हैं उनका अनुसरण कीजिये, उनके नज़दीक रहिए, उनके पीछे चलिये। **महाजनो येनगता सपन्था** जिस मार्ग से बड़े लोग, महापुरुष लोग गये हैं उस मार्ग को पकड़िये। बचपन से ही यह मानकर चलिये कि आपने साधारण नहीं बनना है। छोटे बच्चे को भी यही सिखाना चाहिये। लेकिन हम तो शुरु से ही बच्चों को झूठ बोलने से लेकर चालाकियाँ और प्रपंच सिखाना शुरू कर देते हैं। उनके ज़ेहन और मस्तिष्क को बिगाड़ना शुरू कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि बड़े होते होते उनकी मनःस्थिति इतनी खराब हो जाती है कि जो कुछ हमने बचपन में उनको दिया है, उसको कई गुना बढ़ाकर वे हमें वापिस करते हैं। आज समाज का वातावरण इतना बिगड़ गया है।

समुद्र तट पर प्रकाश स्तंभ (लाइट हाउस) होते हैं। ये प्रकाश स्तंभ भटके हुए जहाजों को दिशा दिखाते हैं। दुनिया का हर महापुरुष एक प्रकाश स्तम्भ है जो तुम्हें यह बताता है कि तुम्हें किस मार्ग से चलकर कहाँ पहुंचना है। ये महापुरुष मानवता के कीर्तिमान हैं। कीर्तिमान (रिकार्ड) तब बनता है जब कोई ऐवरेस्ट की चोटी पर चढ़ता है, या सागर की गहराई तक या चन्द्रमा तक पहुँचता है। कीर्तिमान इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य यहाँ तक पहुँच गया है। इसका मतलब यह भी है कि तुम यहाँ तक तो आ ही सकते हो, इससे और आगे भी जा सकते हो। हम जो अवतार मानते हैं, तो अवतार को मानने का मतलब क्या है? यही कि नर के रूप में किसी ने नारायण की शक्तियां प्राप्त की हैं। नारायण जब नर का रूप धारण करके आया और मनुष्य की तरह से उसने जीवन जिया तो उसने यह दर्शाया कि यदि हम भी चाहें तो इतनी ऊँचाई प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि परमात्मा ने अपनी शक्तियां हम सब के अन्दर इसी रूप में दी हैं। पर दुर्भाग्य यह है कि हम अपनी शक्ति को पहचान नहीं पाते, अपने को जगा नहीं पाते।

क्या महापुरुषों के सामने पेट भरने की, तन ढाँपने की, परिवार चलाने की समस्यायें नहीं थीं? उनकी कोई रिश्तेदारी या बिरादरी नहीं थी? वे भी चाहते तो एक दायरे में सिकुड़कर बैठ जाते। हमारा बहुत सारा समय किसी की सगाई, किसी की शादी या किसी की रस्म पगड़ी, किसी के यहाँ

क्रिया है या चौथा है, किसी की यहाँ कोई लेन देन है या पार्टी है, किसी का जन्मदिवस है या किसी के विवाह की वर्षगाँठ है, इन्हीं सब रिश्तेनातों को निभाने में कट जाता है। संतान के प्रति हमारी जो ज़िम्मेदारियाँ हैं उनको पूरा करते करते, कभी मोह ममता में और कभी दिखावे के कारण, कितना सारा समय हम गंवा देते हैं। ज़िंदगी उसी तंग दायरे में घूमती रहती है, उससे बाहर हम निकल ही नहीं पा रहे।

महापुरुषों के पास भी दायरों की समस्या थी, लेकिन उन्होंने अपने को दायरों में नहीं बाँधा। उन्होंने सब दायरे और सीमायें तोड़ दीं, और पूरे विश्व को अपने अन्तर में समेट लिया। वे सारे विश्व के हो गये उन्होंने सारे विश्व को अपना बना लिया। इसीलिये वे कीर्तिमान कायम कर सके। **हमारी कहानी तो यूं है कि कटी उम्र होटलों में मरे अस्पताल में, बस ज़िन्दगी पूरी हो गई।**

महापुरुषों के सान्निध्य में रहना और उनका अनुकरण करना सीखिए। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, शहीद भगतसिंह, नैपोलियन, इब्राहिम लिंकन या कोई अन्य जननायक उनके जीवन चरित्र को पढ़ें। तब आपको एक बात समझ में आयेगी कि बचपन से ही ये महापुरुष ऐसी पुस्तकें पढ़ते और ऐसे लोगों की चर्चाएं करते रहे जो दुनिया में करोड़ों से ऊँचे थे। इसलिये अपने बच्चों को जब छुट्टियाँ आयें तो सर्वप्रथम महापुरुषों की जीवन गाथाएं (life history) और आत्मकथाएं (Autobiography) पढ़ने के लिये दीजिये। उन्हें बताइए कि कौन महापुरुष किस तरह से कितना बड़ा बना? वह क्या था और क्या हो गया तुम भी उनके जैसे बन सकते हो ऐसी प्रेरणा उन्हें दीजिए।

माता पिता बच्चों के लिये सीढ़ी बनें और बच्चे उस पर पाँव रखते रखते ऊपर चढ़ जायें, यह कितनी देर तक संभव हो सकता है? थोड़ा बहुत ऊँचा आप चढ़ा दें, बाद में तो उन्हें खुद ही अपनी टांगें लम्बी करनी पड़ेंगी। अगर ज़मीन पर उनके खुद के पाँव नहीं टिके होंगे तो उनकी ऊँचाई डगमगाने लगेगी। **इसलिए आप अपनी सन्तान को शुरू से ही वह शक्ति दें जिससे वे अपने पाँव पर खड़े हो सकें और अपने बल पर जी सकें।**

महापुरुषों के विचारों को पढ़ते पढ़ते उनके अन्दर खुद महान होने की कामना जागेगी।

अर्जुन ने गुरु द्रोण के नज़दीक रहकर उनकी बहुत सेवा की। कितनी ही बार राजा का बेटा होने के बावजूद घड़े भर अपने कन्धे पर रख वह गुरु के घर नंगे पाँव दौड़ता रहा। कामना क्या थी उसकी? गुरु की आज्ञा का पालन, उनकी सेवा और गुरु को प्रसन्न करने की चेष्टा। गुरु को वह इतना प्रसन्न करना चाहता था कि गुरु प्रसन्न होकर अपना सारा ज्ञान उसे दे दें। केवल ज्ञान ही नहीं, वह गुरु का स्वरूप ही अपने अन्दर उतार लेना चाहता था। **प्राज्ञपूजनम्** अर्थात् सेवा में आदर का भाव होना चाहिये। इसीलिये कहा **पूजनम्।** सेवा करना तप है । परन्तु सेवा हो तो आदरपूर्वक हो। आपके घर का सेवादार सेवा तो करता है लेकिन उसकी सेवा में आदर नहीं होता। इसलिए जब आप किसी गुरु, किसी विद्वान, किसी महापुरुष, किसी दिव्य पुरुष या अपने प्रभु की सेवा करें तो बहुत आदर, प्रेम और सेवा भाव से सेवा करें। भगवान कहते हैं कि ऐसी सेवा तप है जो फल ज़रूर देगी। कभी न कभी आपको उसकी सिद्धि मिलेगी।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं **ब्रह्मचर्यम्** अर्थात् संयम का पालन करना, अपनी ऊर्जा शक्ति को संभाले रखना और अपनी प्राण शक्ति को व्यर्थ न गंवाना। मनुष्य बहुत बोलकर, कुढ़कर, जलकर, अनेक प्रकार की विषय वासनाओं की पूर्ति में अपनी ऊर्जा शक्ति को जलाता है। भगवान कहते हैं कि अपने आप को संयत रखना तप है। अपनी पवित्रता का ध्यान रखना **शौचं आर्जवम्** तन की पवित्रता, वस्त्रों की पवित्रता, मन की पवित्रता। शुद्धिकरण को भी तप कहा गया है। **आर्जवम्** सरल बने रहना। भगवान कृष्ण ने सरल और सहज स्वभाव के लिए **आर्जवम्** शब्द का बहुत बार प्रयोग किया है। भगवान को सरलता बहुत प्रिय है। आप अपनी बुद्धि अवश्य कुशाग्र बनाएं लेकिन स्वभाव में सरलता बनी रहनी चाहिए।

हम लोग जब हिमाचल गये थे तो हिमाचल प्रदेश के निवासियों को देखकर बहुत आनंद आया। वे बहुत सीधे और सरल लोग थे। उनमें चालाकी बिलकुल नहीं थी। वहां जो भी बोलता देखा तो अमिधा में बोलता

हुआ देखा, व्यंजना में बोलता हुआ नहीं देखा। बोलते समय आदमी तीन तरह की भाषा का प्रयोग करता है **लक्षणा, अभिधा और व्यंजना।** व्यंजना में आदमी व्यंगात्मक ढंग (Taunting way) से बोलता है। मज़ाक करेगा, या मान देना चाहेगा तो भी घुमा फिरा कर शब्द बोलेगा। महानगरों में रहने वाले लोगों को व्यंगात्मक भाषा में, शब्दों को टेढ़ा करके बोलने की बहुत आदत होती है। बहुत बार तो व्यक्ति समझ भी नहीं पाता। लेकिन हिमाचल के उन लोगों को देखा कि वे बहुत सहज और सरल हैं। उनकी सरलता को उनके चेहरों पर देखा जा सकता है। जहां चेहरे पर प्रसन्नता है, शान्ति है, उत्साह है और उल्लास है तो समझना कि वहां हृदय में बड़ी सरलता है। जो हृदय से बड़े क्रूर व कठोर होते हैं, उनके चेहरों पर भी चालाकी दिखाई देगी।

बच्चा हृदय से सरल है, इसलिये उसका चेहरा बहुत प्यारा लगता है। बच्चा चाहे किसी जानवर का हो या किसी जीव जन्तु का, वह बहुत मोहक लगता है। परन्तु बड़े होकर हृदय में कुटिलता आ जाती है। टेढ़ापन आ जाता है जो स्वभाव में और चेहरे पर दिखाई देता है। भगवान को सरलता पसन्द है। भगवान कहते हैं कि सरल बने रहना बहुत बड़ा तप है। आपकी सरलता को खत्म करने के लिये बहुत लोग तैयार रहते हैं। आदमी को सीधा, सरल तो रहने ही नहीं दिया जाता। छेड़ते रहेंगे, बोलते रहेंगे और उसे तैयार कर देंगे कि वह भी उन्हीं की भाषा बोलने लग जाये। लेकिन आप हृदय से सरल बने रहो। आपकी मासूमियत, आपका भोलापन आपका स्फूर्ति और उल्लास भरा जो स्वभाव है वह आपके अन्दर बना रहना चाहिए।

आपके स्वभाव में कुछ इस तरह की ताज़गी होनी चाहिए जैसे किसी पहाड़ी स्थान पर सुबह सुबह बेलों पर खिले हुये फूलों पर पड़ी हुई ओस की बूंदों में होती है। ओस में नहाये हुए फूल और छोटी छोटी कलियाँ देखकर ऐसा लगता है मानो कलियाँ मुस्कुरा रही हैं और फूल हँस रहे हैं। पत्तों के ऊपर कुछ ओस की बूंदें ठहरी हुई हों, आप वहाँ जाकर खड़े हो जायें और उस वातावरण को देखते हैं तो आपको एकदम ताज़गी महसूस होती है। प्रकृति की ताज़गी और मासूमियत जो आपको आकर्षित करती है, वही उसका स्वाभाविक सौन्दर्य है। उसे देखकर आप कहेंगे कि यह ऐसा ही बना रहे।

आपके अन्दर ऐसी ताज़गी तब आती है जब आप अन्दर से सरल होते हैं। कुटिल नहीं, क्रूर नहीं, चालाक नहीं वरन् सहज होते हैं। पर दुनिया आप को सिखाती है चालाकी, छल और कपट। दुनिया आपको अपने जैसा बना लेना चाहती है। भगवान कहते हैं कि अपने अन्दर की सरलता को कायम रखना। स्वयं चालाकी नहीं करना, पर किसी की चालाकी में आना भी नहीं। धोखा देना नहीं, लेकिन धोखा खाना भी नहीं। कड़वा बोलना नहीं, दूसरों के कड़वे शब्दों को सुनकर आप धैर्य रखना। कड़वे नहीं हो जाना, अपनी सहनशक्ति बढ़ाना।

एक चिड़चिड़े स्वभाव वाली महिला थी। अचानक उसने घर बदला और किसी ने पड़ोस वालों को बताया कि यह जो महिला मकान बदल कर यहाँ आई है यह बहुत चिड़चिड़े स्वभाव वाली है। अब पड़ोस वाली महिला के साथ किसी बात को लेकर उसका झगड़ा हो गया। पड़ोस वाली महिला जानती थी कि मुझे ज़्यादा बोलकर अपने मन को अशान्त नहीं करना है क्योंकि इसने झगड़ा किया है। तो वह थोड़ी थोड़ी देर के बाद आकर उसको अगूंठा दिखा देती थी। अब जब भी वह अंगूठा दिखाये तो यह महिला घंटे डेढ़ घंटे तक बोले और कुछ भी बड़बड़ाती रहे। पर जिसने अंगूठा दिखाया था वह अपने घर जाकर अपने कामकाज में लग जाये। जैसे ही वह देखे कि बड़बड़ाने की आवाज़ बंद हो गई है तो वह फिर आकर 'स्विच ऑन' कर दे अर्थात् अंगूठा दिखाया और 'स्विच ऑन' कर दिया (बटन दबा दिया)। तब एक डेढ़ घंटा महिला फिर बोले। खूब बड़बड़ाये, चिल्लाये। फिर जब पड़ोस वाली महिला को समझ में आये कि लगता है कि टेप रिकार्डर बन्द हो गया है, स्टीरियो बन्द हो गया है तो वह दोबारा वापिस जाये और अंगूठा दिखाये। अब वह तो यह खेल खेल रही थी लेकिन जिसको वह चिढ़ा रही थी वह महिला बोल बोल कर थक गई, उसके सिर में दर्द हो गया और उसने सिर पर पट्टी बांध ली। तब उसको यह समझ में आया कि मैं चिढ़ती क्यों हूँ? मुझे चिढ़ना ही नहीं चाहिए। उसके बाद जैसे ही उसने फिर अंगूठा दिखाया तो इसने हंसना शुरू कर दिया। फिर दोनों आपस में बातचीत करने लग गई, झगड़ा खत्म

हो गया। तो **जब तक आप चिढ़ते रहेंगे, संसार आपको चिढ़ाता रहेगा।**

भगवान कहते हैं कि पवित्रता का ध्यान रखने और सरलता को अपना लेने में बहुत आनन्द है। अपने को जला कर, अपने सुख को क्यों बरबाद किया जाये। **अहिंसा च** हिंसक व्यवहार से बचे रहना। किसी आदमी से अपना गुस्सा बर्दाश्त न हो पाये और वह हाथ पाँव चलाना शुरू कर दे, दूसरों को भी पीड़ा दे और खुद भी पीड़ा उठाये तो यह उसके व्यक्तित्व का पतन है। इसलिये अपने आप को इस स्थिति से बचाइये। **अपने स्वरूप को इस तरह का बनायें कि आप कहीं भी, किसी भी प्रकार से स्वयं को हिंसक न होने दे। जब आप ऐसी स्थिति अपनाते हैं तो यह शरीर का तप है।**

देवताओं का पूजन, दिव्य गुण वाले लोगों के नज़दीक रहकर उनका सत्कार और सेवा करना, जो द्विज हैं, ब्रह्म में विचरण करने वाले ब्राह्मण हैं, गुरु हैं या फिर प्रज्ञा पुरुष की सेवा करना अपने तन, मन, वस्त्रों, परिवेश तथा वातावरण को पवित्र बनाये रखना शरीर का तप है। जहां रहो शुद्धिकरण करके रहो। कुत्ता भी कहीं बैठता है तो अपनी पूंछ से आसपास की सफ़ाई करके फिर बैठता है। लेकिन मनुष्य की आदत खराब है। वह जहाँ बैठेगा वहाँ अपनी जेब में से कुछ न कुछ कूड़ा कचरा निकाल कर फेंकेगा और उस जगह को गंदा करके जायेगा, जिससे पता रहे कि यहां कोई आया था।

जिन लोगों का स्वभाव अपवित्रता को फैलाने का है उनके अन्दर पवित्रता प्रवेश नहीं कर सकती। **वातावरण की शुद्धता, स्वच्छता और पवित्रता को बनाए रखना तप कहा है।** परिवेश को पवित्र रखना, मन को पवित्र रखना, अपने घर को पवित्र रखना, अपने वस्त्रों को पवित्र रखना, अपने तन की पवित्रता का ख्याल रखना इसको भी भगवान शरीर का तप मानते हैं।

वाणी का तप दूसरा तप है। पहले भी जो महापुरुष और चिन्तक हुए हैं उन्होंने भी तप के सम्बन्ध में कहा है। लेकिन वे तप ऐसे हैं जिसमें व्यक्ति अपने शरीर को कष्ट देता है, अपने आपको सजा देता है। कोई किसी पेड़ पर लटक कर तो कोई एक टांग पर खड़ा होकर तप करता है। कोई कांटों पर सोकर और कोई आग पर चलकर तप करता है। कोई पानी के बीच में खड़ा होकर तप करता है। अपने को सता लेने से आप

शक्तिवान नहीं हो जाते, तपस्वी नहीं हो जाते। अपने को सताइये नहीं। अपने को कष्ट मत दीजिये। बहुत लोग अपने शरीर में कीलें गाड़ते हैं तथा अनेक प्रकार से अपने शरीर को सताते हैं। कोई स्वयं को कोड़े मारता है तो दूसरे लोग उसे तप कहकर वाह वाह करते हैं। संसार भी ऐसा विचित्र है कि आप जितना ही ऊटपटांग काम करेंगे उतना ही लोग आपको सम्मान देने लगेंगे।

आप भीड़ के बीच जाकर खड़े हो जायें तो कोई आपको सम्मान नहीं देगा, पर अगर भीड़ के बीच सिर के बल खड़े हो जायें तो लोग आपको तपस्वी समझ हाथ जोड़ेंगे कुछ लोग बहुत कड़ाके की सर्दी में नाममात्र के वस्त्र पहने सवेरे सवेरे पंखे से हवा करते हुए भिक्षा मांगते है। लोग सर्दी में जागकर उनको अन्न देते हैं। वे दर्शाते हैं कि वे बहुत बड़ा तप कर रहे हैं। भिक्षा मांग लेने के बाद बाहर जाकर वे गर्म कपड़े पहन लेते हैं। तरह तरह के ये तप, तप नहीं हैं। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार सबसे बड़ा तप जीवन में सरल बने रहना है।

बड़ों की सेवा और अपने नियमों का पालन करना, अपनी भक्ति और पूजा के नियम को टूटने नहीं देना, कर्त्तव्य और श्रेष्ठ कार्यों के लिये कष्ट सहना तप हैं। जो लोग अस्पताल में सेवा करते हैं या वृद्धजनों की सेवा करते हैं वे भी तप कर रहे हैं। हाँ, गड़बड़ तब होती है जब व्यक्ति सम्मान चाहने के लिये आगे माईक पर आता है। **सेवा करे और सब से पीछे रहे तो फिर उस सेवा का प्रभाव उसके मन और मस्तिष्क पर दिखाई देगा। यह पता ही नहीं लगना चाहिए कि सेवा करने वाला व्यक्ति कौन है और किस तरह की सेवा उसने की है।**

इमारत (बिल्डिंग) आप बना देंगे तो जो आपके नाम का पत्थर वहाँ लगा हुआ है उससे ही आपको पूरा फल मिल गया, नाम हो गया आपका। लेकिन वह पत्थर भगवान के दरबार में नहीं लगा। भगवान के दरबार में अगर आपको अपना नाम पहुंचाना हैं तो फिर सीधी सी बात है कि अपनी नेकनामी की बातें दुनिया के दरबार में नहीं फैलने देना। केवल करतार के दरबार में आपका नाम जाए। सेवा करते जाना और प्रभु चरणों में अर्पित करते जाना। लोगों के सामने दिखाओगे तो फिर लोग ही देखेंगे, करतार

नहीं और ऐसा भी तो नहीं होगा कि सारे लोग तारीफ़ करें। बहुत से लोग नाक भौं सिकोड़ने वाले भी होंगे। **आप कितना भी अच्छा करें, बहुत सारे लोग ऐसे होंगे जो आपकी निन्दा व चुगली ही करेंगे। कुछ ही लोग ऐसे होंगे जो आपके कार्यों को समझेंगे और सराहेंगे।** अकारण बैर रखने वाले भी आपको मिलेंगे। एक भीड़ प्रशंसकों की होगी तो दूसरी बैर रखने वाले निन्दकों की। उनको बर्दाश्त नहीं होगा कि उनके होते हुए कोई दूसरा प्रशंसा पा जाये।

वाणी के तप के संबंध में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है:

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।१५।।

उद्वेगकारी वाक्यों को न बोलना और भड़काने वाली भाषा का प्रयोग न करना वाणी का तप है। आपकी वाणी सत्य से प्रतिष्ठित हो, प्रिय हो और हितकर हो। ज्ञान विज्ञान की पुस्तकों को पढ़कर अपनी वाणी को ज्ञान के शब्दों से सजाओ। **जब भी बोलो आप की वाणी से आपका ज्ञान ऐसे ही झरना चाहिए जैसे किसी पहाड़ को तोड़ कर झरना बहता है।** लोग कहें कि आपकी एक एक बात एक एक लाख की है, मुंह से फूल झरते हैं। जहां वाणी में ज्ञान हो और प्रसन्नता मुस्कुराये, शान्ति और शीतलता का मेल हो जाये, तो इसे वाणी का तप कहा जाएगा।

उद्वेगकारी वाक्यों को नहीं बोलना। **अनुद्वेगकरं वाक्यम्** आपका बोलना ऐसा होना चाहिए कि भड़कते हुए, लड़ते हुए, झगड़ते हुए लोगों को शान्ति दे सके, न कि शान्त बैठे लोगों को भड़काये। कुछ लोगों का स्वभाव ऐसा होता है कि वे जहां जायेंगे वहीं अशान्ति हो जाएगी। कोई मंथरा का रूप धारण करता है और कोई शकुनि का। कोई शिशुपाल का रूप धारण कर मुख से गालियां निकालता है। इतिहास के कुछ पात्रों पर ध्यान दीजिए। रामायण और महाभारत के पात्रों को देखिये। वाणी ने कितने झगड़े करवाये। वाणी में भगवान का वास है। वाणी में देवताओं को बैठाइये, दिव्य गुणों को जोड़िये। आपकी वाणी से कभी भी किसी के लिये बुरे वचन नहीं निकलने चाहिए। शुरू से ही बच्चों को सिखाएं कि क्या बोलना है और क्या नहीं बोलना है। **मां बाप को देखकर बच्चे सीखते हैं।**

आपके उपदेश से ज़्यादा बच्चे आपके आचरण की ओर ध्यान देते हैं। परंतु कुछ जीव पिछले जन्म का स्वभाव ही ऐसा लेकर आते हैं कि मां बाप कितनी भी कोशिश करते रहें उनको कोई फ़र्क नहीं पड़ता। फिर भी अपनी ओर से अच्छा स्वभाव देने का प्रयास करना चाहिये।

इस बात का पूरा ध्यान रखिये कि उद्वेगकारी, भड़काने वाली भाषा नहीं बोलनी क्योंकि यह पाप है। ज़ो किसी को भड़काता है, भाई भाई के प्यार में आग लगाता है, संगठन तोड़ता है, परिवार को बिखेरता है तो समझिये कि वह हत्या जैसा पाप कर रहा है। इस घोर पाप से बचना चाहिए। अधिकतर हम किसी के बारे में निर्णय लेते समय दूसरे पक्ष को सुनते ही नहीं। बहुत जल्दी निर्णय ले लेते हैं। **किसी के बारे में निर्णय लेते समय एक पक्ष और एकांगी फैसला कभी नहीं करना चाहिये नहीं तो तुम्हारे साथ भी ऐसे ही फैसले होंगे।** आपने किसी की बात सुनी है तो दूसरा पक्ष भी सुनिये। सुनने के बाद स्थिति को जांचिये। जांचने के बाद फिर अपना निर्णय दीजिये।

बहुत बार आंखों देखा, कानों सुना भी गलत होता है। किसी के व्यक्तित्व की हत्या करना उस व्यक्ति की हत्या करना ही है। राजनीति में जीने वाले लोग तो यह करते ही हैं। वे कई बार घिनौनी परिस्थितियां पैदा कर देते हैं। एक समय फ्रांस में विदेशी शासन था और फ्रांस को बहुत जल्दी स्वतंत्रता मिलने वाली थी। लेकिन फ्रांस में रह रहे विदेशी मूल के लोगों ने वहां के एक नेता के व्यक्तित्व के बारे में उलटी सीधी बातें कहनी शुरू कीं और फ़र्जी तरीके से किसी को खड़ा करके उसके ऊपर मुकदमा चला दिया। उसके चरित्र को इतना निकृष्ट दिखाया कि जो लोग उसके साथ थे वे भी साथ छोड़ गये। उसका परिणाम यह हुआ कि उस व्यक्ति को तो जेल में बन्द करके सताया ही गया लेकिन जिस देश को आज़ादी बीस दिनों में मिलने वाली थी, उस देश को बीस महीने तक और गुलाम रहना पड़ा क्योंकि निन्दा करने वालों की चाल काम कर गई।

दार्शनिक अरस्तु ने एक स्थान पर कहा है क़ि ईर्ष्यालु लोगों के पास तरह तरह के हथियार होते हैं। जब वे सब तरह के हथियार इस्तेमाल कर

भी कुछ नहीं कर पाते तो फिर उनके द्वारा उस व्यक्ति के ऊपर पैसे का गबन, चारित्रिक दोष या किसी प्रकार का कोई लांछन लगाने का हथियार इस्तेमाल किया जाता है। इस दार्शनिक ने कहा कि हज़ारों सालों से आज तक यह बात देखने में आ रही है कि जब और सब हथियार काम नहीं करते तो चरित्र हनन का हथियार काम कर जाता है। जितनी तेज़ी से बात उड़ा दी जाए, उतनी तेज़ी से लोग उस हवा में बहने लग जाते हैं। चरित्र हनन घोर पाप है। हत्या जैसे पाप से भी बढ़कर पाप है। बहुत बार हम भी इस पाप में शामिल हो जाते हैं। इसका परिणाम समाज को भुगतना पड़ता है। वह व्यक्ति तो अपने ढंग से चलता रहेगा, उसकी शांति में, उसके आनन्द में कोई अन्तर नहीं आयेगा। लेकिन समाज जो उससे बहुत लाभ ले सकता था, वह लाभ नहीं ले पाता। यह कैसा घोर पाप होता है इसे रामायण के उस धोबी की बात को याद करके महसूस कीजिये जिसने केवल अपनी जीभ हिलायी और अनर्थ हो गया। हज़ारों वर्ष बीत चुके हैं लेकिन उसके कुल, खानदान, परिवार को आज तक भी लोग अपशब्दों के द्वारा कोसते, लांछित करते, प्रताड़ित करते आ रहे हैं। उस बेचारे को क्या पता था कि मैं क्या बोलने जा रहा हूँ। माँ जानकी के प्रति, माँ सीता के प्रति कहे गये उन शब्दों ने समाज में अनर्थ पैदा किया और धोबी की सारी पीढ़ियों को लगातार इतने सालों से कड़वे शब्द कहे जा रहे हैं।

इसलिये भगवान ने कहा है कि उद्वेगकारी वाक्य नहीं बोलने चाहिए। यह साधारण तप नहीं है वरन् एक अनोखा तप है जो महत्त्वपूर्ण है। अपनी वाणी में सत्य को भी पिरोईये। अपनी वाणी में सत्य को बैठाइये। आपकी वाणी हितकर हो, मधुर हो। सत्य के साथ शर्त लगायी गई है कि **आपकी वाणी में सत्य हो लेकिन सत्य मीठा और हितकर हो।** कई लोगों को दूसरों को नीचा दिखाने के लिये कुछ भी बोलने की आदत होती है। वे कुछ भी बोल जाते हैं और कहते हैं कि हम तो सच कह रहे हैं। हम दबेंगे नहीं, हम दबने वाले नहीं हैं क्योंकि हम तो सच कर रहे हैं। लेकिन वह सच, सच नहीं होता, वह तो सच का बहाना लेकर किसी के

सिर पर पत्थर फोड़ने वाली बात है। इसलिये **सच को हथियार न बनाओ, सत्य को फूल बनाओ।** अगर इतने ही सत्यप्रिय हो तो जिसके प्रति बोलने लगे हो उसको प्यार से बुलाओ, उसके साथ रहो, प्रेम प्रदर्शित करो, उसके हितैषी बनो और फिर प्यार से उसके कान में कहो कि तुमने ऐसा सुना या समझा है, शायद तुम गलत हो, लेकिन अगर ऐसा है तो तुम चाहोगे कि उसकी दिव्यता में यह दोष न रहे तो अच्छा हो। कान में बोला गया वह वाक्य, जिसमें बहुत प्यार, बहुत आदर, बहुत विश्वास और उसका हित है, वह वाक्य फिर साधारण नहीं रहता। वह वाक्य उस व्यक्ति की ज़िन्दगी को बदलेगा और वह व्यक्ति आपको अपना मित्र अपना शुभचिंतक मानेगा। दोस्ती और प्रगाढ़ हो जायेगी।

परन्तु अधिकांश लोगों के पास सच नहीं होता, सच का केवल आभास होता है। लेकिन वे रोज़ शत्रुता पैदा कर रहे हैं। अपने पर कृपा करो और अपनी वाणी से शत्रुता मत खरीदो। परंतु किसी के दवाब या किसी के डर में आकर अपनी वाणी को इतना कमजोर मत करना कि सत्य तुम्हारे मुख पर आये ही नहीं। **सत्यवादी दब्बू और कमज़ोर नहीं होना चाहिए।**

कहते हैं **न स सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः** वह सभा, सभा नहीं है जहां बुर्जुग, समझदार, तजुर्बे वाले लोग न बैठे हों। **न ते वृद्धा येन वदन्ति सत्यम्** परन्तु वे बूढे समझदार नहीं हैं जिनके मुँह पर सत्य आने से जीभ कांपती है, और वे सत्यवादी भी सत्यवादी नहीं हैं जो बोलते समय दूसरे के हित को ध्यान में नहीं रखते। वे हितैषी भी हितैषी नहीं जिनके बोलने में मधुरता न हो। सभा में, सोसायटीं में बैठे हो तो सच कहने की हिम्मत रखना लेकिन सच के साथ हित देखना, अपना हित नहीं, सबका। यह देखना कि जो बोला जा रहा हैं उसमें प्यार है या नहीं। भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि इन शर्तों के साथ सत्य को उजागर करना और फिर उस सत्य का चमत्कार देखना। **सत्य से बढ़कर धर्म नहीं है, सत्य से बढ़कर तप नहीं है, सत्य से बढ़कर शक्ति नहीं है। सत्य बहुत बड़ा बल है।**

भगवान ने कहा हैः **स्वाध्यायाभयसनम्** अपनी वाणी को अच्छे अच्छे ग्रन्थ पढ़कर सजाओ। वाणी के अन्दर, आपके बोलने में, ज्ञान प्रकट होना

चाहिए। दिखावे का नहीं, स्वाभाविक रूप से ज्ञान झरना चाहिए। स्वाभाविक रूप से आपके बोलने में यह महसूस होना चाहिए कि यह व्यक्ति असाधारण है। देखने में कौआ और कोयल, एक ही रंग के हैं एक ही आकार है उनका, लेकिन बोलने से पता चल जाता है कि कौन सम्मान का हकदार है और किस के ऊपर पत्थर फेंके जाएं। इसलिये कहते हैं, **'कौआ किस का धन हरत, कोयल किस को दे देती है?'** कौए ने किसी का कोई पैसा तो नहीं छीन लिया, डाका तो नहीं डाल दिया और कोयल ने किसी को कुछ दान नहीं दिया, कोई पैसे नहीं बांट दिये। **'कौआ किसका धन हरत, कोयल किसको दे देती है? कोयल मीठे वचन सुनाकर सबको वश में कर लेती है।** कुछ मीठा कहा और सबको अपना बना लिया। तो अपनी मिठास को, अपने सौंदर्य को निखारिये। आपका सौंदर्य आपके स्वभाव से है। **जितना आप अपने चेहरे को सजाने पर ध्यान देते हैं उतना ही ध्यान यदि अपनी वाणी को सजाने पर दें तो आपसे बढ़कर सुन्दर कोई नहीं हो सकता।**

विवाह के बाद शरीर का सौंदर्य तो एक दो साल तक टिकेगा। उसके बाद टिकेगा आपके स्वभाव का सौंदर्य। लेकिन शरीर के सौंदर्य को निखारने और संवारने के लिये ब्यूटी पार्लर हैं। आप बहुत पैसा लगा रहे हैं तरह तरह के क्रीम पाउडर पर, परन्तु अपने अन्तःकरण को सुन्दर बनाने वाला ब्यूटी पार्लर तो सत्संग ही हो सकता है। सत्संग में आने की आदत डालिए। सौंदर्य प्रसाधन जिस प्रकार की सुन्दरता देता है वह न तो स्वाभाविक है और न ही टिकाऊ। परन्तु किसी भी सत्संग से स्वाभाविक रूप से आपके अन्दर जो निखार आता है उससे आपका वास्तविक सौंदर्य जागृत हो जाएगा। ऐसा आकर्षण जिसमें आपके संपर्क में आने वाला हर व्यक्ति बंध जायेगा। आपका वह सौंदर्य सारे संसार को मोह लेगा। इस सौंदर्य को बनाए रखने के लिये अपनी वाणी से कांटों को हटाइये। जो कांटे इस पर उग आए हैं बड़े बड़े नागफनी जैसे, उन पर हम ध्यान नहीं दे रहे हैं। हमें पता भी नहीं चलता कि हम कब किस को आहत कर देते हैं, कब किसको घायल कर देते हैं।

नीतिकारों ने एक सीख लिखी है: **बाणों से काटा हुआ, तलवारों से गिराया हुआ, फरसे से जिसको नष्ट कर दिया वह जंगल फिर भी हरा भरा हो जायेगा, पर ज़िसको जबान से मारा गया हो, उस इन्सान का जख्म कभी नहीं भरता।** वाणी से घायल हुए इन्सान की खुशियाँ चली जाती हैं। उसकी प्रसन्नता मर जाती है। **बाण का घाव भरेगा, वाणी का घाव नहीं भरेगा।** पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को ज़्यादा सावधान होना चाहिए। तानाकशी द्वारा चुभने वाली बातें कहने की आदत हो तो जीभ को हिलाते समय बहुत सावधान रहना चाहिए। मौन रह लेना अच्छा है, कम बोलना अच्छा है लेकिन कटु बोलना अच्छा नहीं है। आप जितना कड़वा बोलते जायेंगे आपके कष्ट बढ़ते जायेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण ने यह भी कहा कि अपनी वाणी में ज्ञान उतराने के लिए स्वाध्याय के अभ्यासी बनो। अच्छे ग्रन्थ पढ़ने की आदत डालो। अच्छे ग्रंथों को पढ़ना बहुत बड़ा तप है। वैसे तो आजकल पुस्तकों का एक रूप कैसेट्स भी है। कैसेट आप गाड़ी में चलते हुए भी सुन सकते हैं, या घर में बैठे या टहलते हुए, सैर करते हुए भी कैसेट का आनन्द ले सकते हैं। छोटा सा यंत्र 'वाक मैन' आता है जिसे कानों पर लगाकर सैर करते हुए सुनते जाते हैं। छोटा सा स्टीरियो लगाकर आप सैर करते समय प्रवचन सुन सकते हैं, भजन सुन सकते हैं। इस प्रकार सैर के साथ साथ आप ज्ञानार्जन भी कर सकते हैं और संसार की उल्टी सीधी चर्चा से भी बचे रह सकते हैं। याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा है कि गद्दों पर लेटकर भी कोई पुस्तक पढ़े तो वह भी तप है। **अंतर में ज्ञान को जगाकर उसे वाणी में स्थापित करना वाणी का तप है।**

तीसरा तप मानसिक तप है। भगवान कहते है :

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।। १६।।

मन में प्रसन्नता की स्थिति, सदैव प्रसन्न रहने का स्वभाव **सौम्यत्वम्** मृदुता, माधुर्य, शिष्टता और शालीनता से युक्त होकर चलना **मौनम् आत्म विनिग्रहः** अपने मौन को **आत्म विनिग्रह** द्वारा साधना, अपने पर नियंत्रण रखना मानसिक तप हैं। **भाव संशुद्धि** विचारों की पवित्रता भी मन का तप

अपने अन्दर प्रसन्नता की नदी को बहते रहने देने की स्थिति में बने रहें। यदि आप ऐसा कर सके तो समझना कि आप एक तपस्वी व्यक्ति हैं, परंतु इसके लिये अपने मन के साथ ज़ोर ज़बरदस्ती न करें। स्वाभाविक रूप से प्रयास करें कि प्रसन्नता आपके अन्दर उगे। कितना भी बड़ा दुःख सामने आ जाये, उस समय एक बात ध्यान रखना कि रोने से कभी कोई दुःख दूर नहीं होता। आँसू बहाने से खोई हुई चीज़ वापिस नहीं आती। कितना भी आप तड़पिये, जो खो गया सो खो गया। उससे आपको मुँह मोड़ना ही पड़ेगा।

मुगल शहज़ादी जेबुन्निसा सबकी बहुत लाडली थी। उसे एक चीनी यात्री ने एक दर्पण दिया था जो उसे जान से भी ज़्यादा प्यारा था। एक दिन दासी से वह दर्पण गिरकर टूट गया। दासी थर थर काँपने और रोने लगी। जेबुन्निसा को जब मालूम हुआ तो वह हँस पड़ी और हँसकर बोली, "अच्छा हुआ जो वस्तु मेरे मोह को बढ़ाती जा रही थी, आज उसका अन्त हो गया। उसके अन्त होने का मतलब है कि मेरे अन्दर प्रसन्नता और शांति की शुरुआत हो गई। इसलिए रोने या दुःखी होने की ज़रूरत नहीं है।" परिवार के लोगों पर जेबुन्निसा की इस बात का बड़ा असर पड़ा। उन्होंने सोचा कि बात बात पर रोने और मचलने वाली, परिवार में सबके सिर चढ़ी यह बेटी विचारों में कितनी परिपक्व है। उसकी सबसे प्रिय वस्तु टूटी और वह हँस पड़ी। आदमी के प्राण कहीं भी बस जाएं, चाहे किसी वस्तु में बस जायें, स्थान में बस जायें या किसी व्यक्ति में बस जाएं तो वह उसे छोड़ने को राज़ी नहीं होता। उसे छोड़ने को उसका मन नहीं मानेगा। पर यदि व्यक्ति अपने मन को समझाये, विचारों में परिपक्वता ले आये तो यह बात निश्चित है कि फिर कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा, क्योंकि **गयी हुई वस्तु वापिस नहीं लौटती। बीता हुआ समय वापिस नहीं आता।**

बीती घटनाओं को कुरेद कर अपने को दुःखी करने के सिवाय आप और कुछ नहीं करते। जो बीत गया उसे बीत जाने दो। किसी भी स्थिति में अपनी प्रसन्नता को कम न होने दो। संभव है कई बार आपको लगे कि आपकी यह प्रसन्नता झूठी है। आप झूठमूठ अपने को बहला रहे हैं, बहका

है। मन प्रसन्नता से भरपूर रहना चाहिये। **मन का स्वभाव निराशा, ईर्ष्या और बैर का न बनाएं बल्कि प्रसन्नता वाला बनाइये।** व्यक्ति की जीवन यात्रा जैसे जैसे आगे बढ़ती है समस्याएं आती हैं। किसी न किसी बात को लेकर निराशा आती है। दुनिया में ऐसा कोई आदमी नहीं है जिसके जीवन में निराशा न आई हो। चाहे स्थिति प्रसन्नता की हो तो भी निराशा कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में आती है।

इसलिये वेदों में कहा गया है कि ऐसे विचारों को मन में कभी मत आने दो **ये नयन्ति परावतम्** जो आपको धकेल कर निराशा की गहरी खाईयों में ले जाएं। जिन विचारों के कारण आपके अन्दर निराशा आती है उन विचारों को अपने अन्दर स्थान मत दो। विचार शक्ति इतना कमाल करती है कि एक ओर तो कुछ विचारों के माध्यम से आदमी इतना उत्साही हो जाता है कि वह बड़े से बड़े कठिन दौर के बीच से हँसता हुआ निकल जाता है और वहीं दूसरी ओर समृद्धि, प्रसन्नता की स्थितियां पाकर भी यदि विचारों में कहीं किसी प्रकार की निराशा आ जाती है, तो व्यक्ति इतना हताश हो जाता है कि किसी प्रकार का भी अभाव न होने के बावजूद भी वह दरिद्र दिखाई देता है। निराशा आपको घुन की तरह अन्दर से खोखला बनाने का काम करती है।

याद रखना निराशा आती है चिन्ता से और चिन्ता आती है भविष्य के भय से। भविष्य का भय हर किसी को सताता है। कैसे रहेंगे, कैसे चलेंगे, कैसे जीयेंगे? जीवन कैसे चलेगा? क्या होगा? क्या नहीं होगा? इन प्रश्नों के कारण चिन्ता आती है। चिन्ता आती है तो निराशा आती है। किसी के प्रति क्षोभ है तो किसी के प्रति घृणा। बीते समय की यादों में कोई अच्छा लगता है तो मन में आता है कि बस वही सगा है। किसी दूसरे के प्रति वैर भाव उठने लगता है। मन में शंकाएं जागती हैं। परिणाम यह होता है कि हम लोग अपने जीवन को, जिसे फूलों की बगिया की तरह प्रफुल्लता से युक्त होना चाहिए, उसे रेगिस्तान की तरह बना देते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि **मन का सबसे बड़ा तप हर हाल में, हर स्थिति और परिस्थिति में अपने अन्दर प्रसन्नता का संचार करते रहें,**

रहे हैं। लेकिन जैसे उलटा नाम जपते जपते वाल्मीकि की सद्गति हो गई, उसी प्रकार हो सकता है कि बाहर से नाटक करते करते आपके अन्दर भी वास्तविकता जाग जाए। उसी प्रकार संभव है प्रसन्नता का नाटकीय अभ्यास करते करते आप में वास्तविक प्रसन्नता जाग जाए। हो सकता है कि अभी आप नकली हँसी हँस रहे हों, पर नकली हँसी हँसते हँसते कभी आपके अन्दर स्वाभाविक रूप से झरने की तरह हँसी बहने लग जाए। सबके जीवन में कठिनाईयां आती हैं। कठिनाईयां आदमी को ऊंचा उठने के लिये प्रेरित करती हैं। कष्ट सहकर जो वस्तु प्राप्त होती है उसकी कीमत स्वतः ही ज़्यादा होती जाती है। कोई मूल्यवान चीज़ आपको अनायास मिल जाये तो उसकी गरिमा समझ में नहीं आती। इसलिए जीवन को ऊंचा उठाने के लिए तप करना आवश्यक है।

भागीरथ घोर तप और श्रद्धा के बल पर गंगा को धरती पर ले आये। अगर हृदय में श्रद्धा हो और तप करने के लिये सन्नद्धता हो तो तप के बल पर व्यक्ति असंभव को संभव करके दिखा सकता है।

भगवान कहते हैं कि सदा प्रसन्न रहना तपस्या है। फूल की तरह से खिले रहना तप है। फूल की तरह खिले रहने में ही आप की स्वाभाविक शुद्धता और सौंदर्य है। स्वाभाविक रूप से आप प्रसन्नता से युक्त हैं। बच्चे के अन्दर जो प्रसन्नता है वह बूढ़े में दिखाई नहीं देती। बच्चे की स्थिति ऐसी है जैसे कोई कली अब खिलने वाली हो, जब कि बूढ़ा व्यक्ति ऐसा है जैसे कली से फूल और फूल से फल और फ़ल भी पूरी तरह से पकने की स्थिति में आ गया हो। इसलिए उसमें (बूढें में) ज़्यादा प्रसन्नता होनी चाहिए। परंतु होता ठीक उलटा है, बच्चा प्रसन्न है और वृद्ध दुःखी एवं चिड़चिड़ा। आदमी दुनिया में रोते हुए आता है– बच्चा पहली बार श्वास लेता है तो फेफड़ों पर ऐसा दबाव पड़ता है कि उसका रोना निकल आता है। लेकिन रोना उस समय जीवन का प्रतीक बनता है, इसलिये सब लोग हँसते हैं। बच्चे के रोने का मतलब है कि जीवन उसके अन्दर खिलने लगा है। मां-बाप उसका रोना सुनकर हँसते हैं कि हमारे परिवार में एक नया सदस्य आ गया है। लेकिन दुनिया से जाना, रोने की स्थिति में नहीं होना

चाहिये। जाओ तो हँसते हुए जाओ। ऐसे कर्म करके जाओ कि लोग तुमसे बिछुड़ने के गम में रोने लगें। जाना तो है ही। जब बुढ़ापा आने लगे तो जाने की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए।

पारसी समुदाय के महान धर्मगुरु आदि प्रर्वतक ज़रथ्रूस्त से किसी ने पूछा, "सुना है जब आप धरती पर आये तो आप रोये नहीं? हँसते हुये आये। ऐसा संभव है क्या?" ज़रथ्रूस्त थोड़ी देर के लिये गंभीर हुए और फिर ध्यान मग्न हो गये। बाद में बोले, "मुझे याद है कि पिछले जन्म में मैं योगी था और हर पल प्रसन्नता में, उत्साह में, प्रफुल्लता में जीता था। पिछले जन्म में जब मैं मृत्यु की गोद में सोया था तो हँसता हुआ सोया था इसलिये जब जागा तो हँसता हुआ ही जागा।"

मृत्यु एक जन्म की आखिरी नींद है। जन्म दूसरे जन्म का पहला जागरण। किसी ने कहा है कि **मौत क्या है क्या तुम्हें समझाऊं, एक मुसाफिर था रास्ते में नींद आ गई।** बस इसी का नाम मौत है, पड़ाव पर थककर सो जाना। जागा तो नयी ताज़गी से भरकर आगे चल दिया। संसार से शिकायत तो रहेगी लेकिन शिकायत को बार बार दोहराते रहने से शिकायत कम नहीं होती बल्कि शिकायत का दर्द और बढ़ जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ज़ख्म को कुरेदते रहने से वह नासूर बन जाता है। संसार जैसा है वैसा ही रहेगा। दुनिया को बदलने के रास्तों में कंकर, पत्थर और कांटे बिखरे पड़े हैं, आप सब को हटाना चाहते हैं पर आप कितने कांच चुनेंगे? और कितने पत्थर हटाएंगे, कितनी ऊबड़ खाबड़ ज़मीन को समतल करेंगे? अच्छा यही है कि अपने ही पाँव में जूते पहन लीजिये, सारा झंझट खत्म हो जाएगा। **इसलिए दुनिया को ठीक करने की कोशिश छोड़ कर केवल अपने आप को ही ठीक कर लीजिये। सन्तुष्टि से प्रसन्नता आती है। सन्तोष आपकी प्रसन्नता को बढ़ाता है।** जो आदमी अन्दर से सन्तुष्ट है उसके चेहरे पर प्रसन्नता रहेगी। जो आदमी अन्दर से असंतुष्ट है, व्याकुल है, बेचैन है, और ज्यादा की मांग कर रहा है, उसके चेहरे पर प्रसन्नता कभी नहीं आयेगी। जिसके पास तसल्ली है, सन्तुष्टि है, तृप्ति है वह आदमी प्रसन्न है। परंतु संतुष्टि की सीमा समझ

लेना। कोई दो चार रुपये में सन्तुष्ट हो जायेगा, किसी को दो चार लाख रुपये चाहिए। किसी समय आप १०–२० हजार में सन्तुष्ट थे और अब दस बीस लाख में भी सन्तुष्ट नहीं हैं। किसी समय छोटे से कमरे में रहते थे तब भी आप खुश थे, अब बहुत बड़े मकान में रहते हैं तब भी आपको संतुष्टि नहीं है। तो कितना आपको मिले कि आप संतुष्ट हो जायें, इसकी सीमा रेखा खींच लेना।

व्यास ऋषि ने कहा है कि किसी एक व्यक्ति को दुनिया की सारी धन दौलत दे दें जमीन जायदाद दे दें, भोग के सारे साधन दे दें, सारी सुख सुविधाएं दे दें और सब कुछ दे देने के बाद उससे पूछें, "संतुष्ट हो" तो वह व्यक्ति कहेगा कि थोड़ा और होता तो संतुष्ट हो जाता। **आदमी का मन कभी नहीं भरता और जब तक मन नहीं भरता तब तक प्रसन्नता का फूल नहीं खिलता। सब्र आ जाए तो एक बूंद में आ जाए और न आए तो सागर उड़ेल देने के बाद भी नहीं आता।** फिर क्या करना चाहिए? परमात्मा से जब मांगने बैठते हो तो थोड़ा सब्र भी मांग लिया करो। पर सब्र कोई नहीं मांगेगा। संतोष नहीं मांगेगा। अपने पुरुषार्थ से आपको जितने फल की प्राप्ति हुई, मेहनत करने के बाद जो भी कुछ फल आपको मिला, उस फल से आपको तसल्ली आ जानी चाहिए। अधिक के लिये पुरुषार्थ किया जा सकता है, मेहनत की जा सकती है, लेकिन जो प्राप्त हुआ है उसका आनन्द तो लो, उसमें तसल्ली तो महसूस करो। इससे आप जीवन के हर लम्हे में खुशियाँ महसूस करेंगे और अगर मन में असन्तोष रहा तो कोई खुशी नहीं होगी। सन्तोष से, तृप्ति से, तसल्ली से प्रसन्नता आयेगी। अधिक के चक्कर में व्यक्ति सब कुछ बरबाद कर लेता है। मन को शान्ति दीजिए संतुष्टि से और शांति से प्रसन्नता स्वमेव आयेगी।

निश्चिन्तिता का जीवन जीना चाहिए। आप भयरहित होकर जिएं। जो होगा, देखा जायेगा। घबराएं नहीं, डरें नहीं। निराश न हों। कोई तुम्हारा क्या छीन लेगा? जब आये थे तो दुनिया में क्या लेकर आये थे और जब जाओगे तो क्या लेकर जाओगे? जो आपके पास है उसमें थोड़ा आपका पुरुषार्थ और ज्यादा परमात्मा की कृपा है। तो परमात्मा की कृपा बार बार हो सकती है। अतः अपना ध्यान उसके दर पर लगा देना चाहिए, अपने पुरुषार्थ को बढ़ाने

पर ध्यान होना चाहिए। **प्रार्थना और पुरुषार्थ दोनों का मेल बना दीजिए।** भगवान ने कहा है कि जो मन से प्रसन्न रहे, हर हाल में खुश रहे तो समझो कि वह तप कर रहा है। यह मानसिक तप है।

आपके मन में प्रसन्नता हो तो आप देवता लगते हैं। परंतु जैसे ही प्रसन्नता गई, क्रोध आया, आक्रोश आया, हिंसा आई, बदला लेने की भावना आई तो समझ लेना कि आपके अन्दर के देवता कहीं चले गये हैं, और राक्षस जाग गये हैं। प्रसन्नता की स्थिति में आपका चेहरा कितना अच्छा लगता है। क्रोध में आप कैसे लगते हैं यह दूसरों से पूछ कर देंखे या शीशे में अपना मुंह देखें। मज़े की बात है कि क्रोध में किसी ने कभी अपना फोटो नहीं खिचवाया। नाटक में किसी का फोटो क्रोध वाली स्थिति में खिंचा हो तो उस समय जो व्यक्ति नाटक कर रहा होता है वह यह मानता है कि मैं क्रोध में थोड़े ही हूं, मैंने तो नाटक किया है। पर वास्तव में कोई क्रोध करे और क्रोध करते हुये फोटो खिंचवाये या आईने में जाकर अपनी शक्ल देखे तो इसके लिये कोई तैयार नहीं होगा। अपनी क्रोध वाली शक्ल आप खुद भी बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे, लेकिन दूसरों को देखनी पड़ती है। कोई कितना भी बढ़िया मेकअप करके रहता हो पर जब क्रोध आता है तब कोई उसे देखे या खुद वह अपने आप को देखे, तो लगेगा कि इतना सारा मेकअप भी उसका सौंदर्य नहीं बना पाया क्योंकि क्रोध ने सब कुछ बिगाड़ दिया। किसी मेकअप की आवश्यकता ही नहीं होगी यदि आप अपने चेहरे पर केवल प्रसन्नता ले आएं। उससे आपका सौंदर्य इतना बढ़ेगा, जिसको दुनिया का कोई भी ब्यूटी क्लीनिक झुठला नहीं सकता। प्रसन्नता में सुन्दरता है, प्रसन्नता में शक्ति है। प्रसन्नता में ही आप अपने आप में स्थित हैं। स्वस्थ होने का मतलब है प्रसन्न रहना। इसलिये आप अपने सामने लिखकर लगा लीजिये "कृपया मुस्कुराइये"। स्वभाव ऐसा बनाइये कि सदा हँसिये और हँसाइये। स्वाभाविक रूप से ही अपने जीवन में यह बात अपना लीजिये कि आपको हँसना और गुनगुनाना है।

भगवान कहते हैं प्रसन्न रहने का गुण मानसिक तप है। यह आपको इतनी ऊंचाई तक ले जायेगा कि साथ वाले लोगों को बर्दाश्त नहीं

होगा कि हमारे होते हुए, हमारे देखते देखते कोई व्यक्ति यहां तक पहुंच जाए। **निन्दा में ईर्ष्या में लगा हुआ आदमी वहीं का वहीं खड़ा रह जाता है और जो ईर्ष्या की परवाह न कर अपने कर्त्तव्य पर डटा हुआ है उसे दिव्य शक्तियां आगे बढ़ाने में लगी रहती हैं, वह कभी रुकता नहीं।**

एक महापुरुष बैठे थे। उनका एक सेवक साथ था। लोगों ने उसको महापुरुष के बारे में उलटा सीधा बताया। वह व्यक्ति सुनता रहा, मुस्कुराता रहा, हाथ जोड़ता रहा, कहता रहा, "आपके विचार हैं, जैसे भी विचार हैं आपके सामने हम कुछ नहीं कह सकते।" लेकिन आखिर धैर्य खत्म हो गया। उसने भी उसी भाषा में जवाब देना शुरू कर दिया। तब महापुरुष उठकर चले गये। बाद में वह महापुरुष के पास आया और बोला, "आपके लिये ही तो मैं लड़ रहा था और आप ही मुझे छोड़कर चले गये। अगर वह आदमी मुझे मारने पीटने लगता तो कम से कम छुड़वाने के लिये तो आपको कहां रुके रहना चाहिए था।" महापुरुष ने जवाब दिया, "जब तक तुम शान्त और सहज होकर एक एक बात सुन रहे थे, गुस्से में नहीं आये थे तब तक मैं देख रहा था कि तुम्हारे साथ भगवान के दस दूत चारों तरफ़ खड़े तुम्हारी रक्षा कर रहे थे। पर जैसे ही तुम भी उसी भाषा में बोलने लग गये तो मैंने देखा कि भगवान के दूत साथ छोड़ कर चले गये; तो फिर मैं भी साथ छोड़कर चला गया। फिर गुरु भी साथ रहकर क्या करता।" उत्तर देना चाहिए, ज़रूर देना चाहिए, यह नहीं कि चुप हो जाओ। **बुरा कहने वालों को उत्तर देना ठीक है पर उनसे उलझना ठीक नहीं, झगड़ा कर लेना ठीक नहीं।** बहुत शान्त और सहज भाव से उत्तर दो। इतने प्यारे अंदाज़ से उत्तर दो कि उसके हृदय में आपकी बात बैठ जाए और उसको लगे कि उसके कांटों के बदले आपके यहां से फूल आये हैं।

हँसने और हँसाने का स्वभाव बनाइये। आपने हँसना, मुस्कुराना, गाना और गुनगुनाना है। यह गुण अपने स्वभाव में समाहित करिए। किसी स्थान पर कुछ बच्चे हँस रहे हों तो उस स्थान की रौनक खुशगवार दिखाई देती है। **हँसते हुए के साथ सारा संसार हँसता है, रोते हुए के साथ रोने कोई नहीं जाता।** वैसे शिष्टाचार में ऐसे अवसरों पर लोग इकट्ठा

होते ज़रूर हैं और उस समय उनकी आंखों में आँसू भी आ जाते हैं रोते भी हैं थोड़ी देर के लिए और फिर बातचीत में लग जाते हैं। दुःख के अवसर पर यह चलता है। महिलाएँ ऐसा कर्त्तव्य बहुत अच्छा निभाती हैं। बहुत अच्छी ड्यूटी (कर्त्तव्य) निभाती हैं। किसी के दुःख में सब मिलकर रोना शुरू करती हैं और थोड़ी देर बाद सब चुप हो जाती हैं। जैसे ही फिर कोई रिश्तेदार आ गया, तो वह नया आया है इसलिये रोता हुआ आया है तो फिर सब रोना शुरू कर देती हैं। थोड़ी देर बाद फिर सब चुप और चाय पानी शुरू। पर जैसे ही फिर तीसरा रिश्तेदार आया तो फिर रोने की आवाज़ निकलने लगती है। रोते हुए के प्रति सहानुभूति रखकर भले ही कभी कभी दुनिया साथ दे दे, पर सत्य तो यह है कि हँसने की आवाज़ सुनकर हँसी अपने आप निकल आती है। हम पहले हँसना शुरू कर देते हैं, बाद में हँसने का कारण पूछते हैं। सभी जीव जन्तु, पशु पक्षी, कीट पतंग, फूल, पेड़ पौधे अपनी प्रसन्नता को प्रकट करते हैं प्रसन्नता को व्यक्त करने के उनके अपने तरीके हैं। लेकिन **परमात्मा ने प्रसन्नता की अभिव्यक्ति का सामर्थ्य जिस प्रकार से मनुष्य को दिया है, वैसा और किसी योनि को नहीं दिया।**

सारी सृष्टि में सिर्फ़ फूल हमेशा हँसते दिखाई देते हैं। इसलिए फूलों को प्रसन्नता का प्रतीक मानकर, आप उन्हें अपने गले में सजाते हैं, घरों में सजाते हैं। अपनी उस टेबल (मेज) पर फूलों को सजाते हैं, जहां बैठकर आप काम करते हैं। सारी प्रकृति में प्रसन्नता व्यक्त करने और फैलाने का कार्य फूल करते हैं इसलिये आपने भी इनको सब जगह सजाकर रख लिया है। फूलों में प्रसन्नता। प्रसन्नता के गीत तब भी सुनाई देते हैं जब आकाश में बादल हों, पपीहा बोले, मोर नाचे और फूल खिलें। फूलों का मौसम आया हो और बागों में कोयल कुहुके तो उसके गीत सुनकर आप कितने खुश होते हैं। जब आप छोटे थे तब तो आपको यह सब बहुत अच्छा लगता था लेकिन बड़े होने के बाद कोई यह नहीं सोचता कि फूलों का मौसम आया है तो बाग में जाकर वहाँ बैठें जहाँ कोयल बोल रही हो। अब तो बागों का भी रूप ऐसा हो गया है कि छोटा सा पार्क जो आपके घर

के आस पास है, वहीं आप घूम लेते हैं और अपने कुत्ते को भी घुमा लाते हैं। इन पार्कों में प्रसन्नता कैसे और कहाँ प्रकट हो? वह बाग बहुत याद आते हैं जो पहाड़ी प्रदेश में होते हैं। दोनों तरफ बाग, छोटी सी पगडंडी और बहते हुए झरने या कोई नदी। इन बागों के बीच दोनों तरफ पेड़ों पर कोयलें बैठी होती हैं। एक ओर से एक कोयल 'कुहू' की आवाज निकालती है तो दूसरी ओर की कोयल उससे भी ऊँची आवाज़ निकालती है। इसी प्रकार ऊँचाई तक आवाज़ ले जाकर के फिर वह अवरोह में आती हैं। छोटे छोटे बच्चे भी उनकी नकल उतारते हुए दौड़ते हैं, हँसते हैं, मस्ती में खिलखिलाते हैं। कोयल एक पेड़ से उड़कर दूसरे पेड़ पर जा बैठती है और बच्चों को दिखाई नहीं देती, लेकिन फिर भी उनकी प्रसन्नता देखने लायक होती है।

सब जगह पेड़ों को काट कर जंगलों को उजाड़ते जा रहे हैं। पौधों को बौना बना कर, गमलों में उगा कर अपने घरों में रख लिया है। 'बौनसाई' पद्धति, और भी पता नहीं क्या क्या नाम हमने दे दिये इस बागवानी को। हमारा वश चले तो हम इन्द्रधनुष का भी गला घोंट कर, उसे छोटा करके अपने ड्राइंग रूम (बैठक) में सजा लें। कीट पतंगों को भी कैद करके रख लें। लेकिन मन में प्रसन्नता लाने के लिए हमें प्रकृति के साथ एकरूप होना चाहिए। हम लोगों ने तो जैसे प्रसन्नता का गला घोंटने का ठेका ले रखा है। प्रकृति में प्रसन्नता है और आपको परमात्मा ने प्रसन्नता की अभिव्यक्ति करने के लिए वरदान में "हँसना" दिया है। इसीलिए जब आप हँसते हुए नज़र आते हैं तब बहुत अच्छे लगते हैं। पर किसी पर हँसना, किसी का मज़ाक उड़ाना अच्छी बात नहीं है। हँसना आपके स्वभाव में उतर आए, यह तो बहुत अच्छी बात है पर किसी पर हँसना बुरी बात है। आपका मुख मंडल हर समय मुस्कुराता रहे। कई आदमी नकली हँसी हँसते हैं। कई लोग दो चार महीने या छः महीने के बाद एक बार हँसते हैं। ऐसे लोग जब छः महीने के बाद हँसते हैं तो बहुत डरावने लगते हैं, बहुत भयंकर दिखते हैं। बहुत लोग कहते हैं कि हम तो हँसते ही रहते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। झूठ मूंठ की हँसी हँस लेना एक बात है पर खुलकर जो हँसे तो वह हँसी प्रसन्नता बिखेरती है। ब्याह शादियों के अवसर पर

प्रसन्नताओं को एक जगह समेटने की कोशिश होती है। मन चाहता है कि प्रसन्नता से भरपूर हो कर गाएं, नाचे, झूमें। परंतु हर जगह आदमी स्वयं को मर्यादा में बांधे हुए है। शादियों के मौके पर आपस में कुछ रिश्ते ऐसे भी रखे गए हैं जहां प्रसन्न होने के लिए हल्के–फुल्के शब्द भी बोलने की इजाज़त होती है। ब्याह शादी में लोग एक दूसरे के साथ हल्के फुल्के शब्द भी बोल लेते हैं लेकिन उनका सीधा सा उद्देश्य होता है, एक दूसरे के साथ प्रसन्नता उत्पन्न करना। ढोलक की थाप देकर तरह तरह के दूसरे साज़ बजाकर व्यक्ति अपनी मस्ती को प्रकट करते हैं। यह उत्सव अगर जीवन में प्रसंन्नता बनकर छा जाए तो यह भी तप है।

हमारे देश में वर्ष में एक बार ऐसा उत्सव आता है जब प्रकृति अपने सम्पूर्ण सौंदर्य के साथ प्रकट होती है। तब आप नव वर्ष का आगमन मनाते हैं। हमारे यहां जनवरी की पहली तारीख को वर्ष का शुभारम्भ नहीं माना जाता। चैत्र प्रतिपदा को जब प्रकृति भी उत्सव मना रही होती है, नदियों का जल निर्मल हो गया है, पेड़ों पर पंछी गीत गा रहे हैं, ऐसा दिखाई देता है मानो धरती के रोम रोम से फूल प्रकट हो गए हैं, जब पहाड़ों से लेकर सागर तक, सर्वत्र वातावरण में प्रफुल्लता दिखाई देती है तब इंसान भी प्रकृति की प्रसन्नता के साथ अपने नए वर्ष का शुभारंभ करता है। उस समय मौसम में सन्तुलन का आनंद है। न गर्मी, न सर्दी। इसी तरह जिस आदमी में सन्तुलन है, उसके जीवन में प्रसन्नता होती है। जिस आदमी का चित्त संतुलन में नहीं है, जिसके मन और मस्तिष्क में समन्वय नहीं है, वह आदमी प्रसन्नता से युक्त नहीं हो सकता। **सन्तुलन बनाओ तो प्रसन्नता आएगी, सन्तुष्टि अपनाओ तो प्रसन्नता आएगी और हर बात में सही दृष्टिकोण ले करके सोचो; नकारात्मक दृष्टि से न सोचो, तो भी प्रसन्नता आएगी। जो कुछ परमात्मा ने दिया है उसे परमात्मा की कृपा का फल मानकर स्वीकार करोगे और उसमें प्रसन्नता महसूस करोगे, तो आपके अन्दर प्रसन्नता आएगी। प्रकृति के संग रहने से प्रसन्नता आएगी।** प्रसन्नता तब आएगी जब आप हर किसी छोटी सी उपलब्धि पर भी झूमने लग जाएंगे, गाने लग जाएंगे, गुनगुनाने लग जाएंगे। ऐसे लोगों के संग

बैठने से, जिनका स्वभाव प्रसन्नता से युक्त है; आप में भी प्रसन्नता आएगी। जिन लोगों का स्वभाव जलने और जलाने का हो, खीजने और कुढ़ने का हो, निन्दा और चुगली करने का हो तो ऐसे स्वभाव वाले लोगों के बीच बैठने से आपके अन्दर प्रसन्नता कभी नहीं आ सकती।

प्रसन्नता और उत्सव तप भी हैं, पूजा भी हैं और भक्ति भी। कहते हैं कि अगर भगवान की भक्ति की चरम सीमा तक पहुँचना हो, तो उसका एक ही ढंग है, प्रसन्नता से अपने प्रभु के द्वार जाओ, शुक्र मनाओ, और धन्यवाद दो। उसको धन्यवाद दो और उसकी महानता में मस्त होकर प्रार्थना करो कि "हे प्रभु! मांगने के लिए भिखारी बनकर, तेरे द्वार पर नहीं आया। उलाहना देने के लिए और शिकायत करने के लिए भी नहीं आया। तू जो रात दिन कृपायें बरसाता है, फूलों और फलों के रूप में मुझे उपहार देता है, उनके लिये कृतज्ञता व्यक्त करने आया हूं। अपने पिता को धन्यवाद देने के लिये आया हूँ।" बहुत प्रसन्नता के साथ, ऐसे जैसे कहीं बधाई देने जाना हो, तुम परमात्मा के दरबार में जाना और कृतज्ञता प्रकट करना। ऐसे अहोभाव को लेकर कृतज्ञता प्रकट करना जैसे तुम अत्यन्त खुश एवं विभोर हो गये हो। जब तुम्हारे जीवन में ऐसी स्थिति आ जाये तो समझना कि तुम भक्ति की ऊँचाई पर पहुँच गये हो। प्रसन्नता और उल्लास स्वभाव में उतर आये तो यह जप, तप और साधना है। भगवान कहते हैं कि यह मन का तप है क्योंकि जब मन हार जाता है तो दुःख आ जाता है और जब मन को जीत लिया तो समझो प्रसन्नता आ गई। यदि मन को संभाल लोगे तो प्रसन्न हो जाओगे और जो मन को न संभाल पाये तो फिर तुम दुःखी रहोगे। इसलिये मन को रोकना, मन को समझाना, मन को मनाना और अपने दृष्टिकोण को बदलना। **अपने मन की दिशा ठीक कर लोगे तो दशा स्वयं ही ठीक हो जायेगी।**

पूर्णरूप से प्रसन्नता पाने के लिये अपनी व्यवस्था को सुव्यवस्था में बदलो, अव्यवस्था में नहीं। व्यस्त रहना तो अच्छी बात है पर अस्त व्यस्त रहना अच्छी बात नहीं है। किसी आदमी के घर में प्रवेश करने पर यदि सब सामान बिखरा दिखाई दे, पुस्तकें कहीं पड़ी हों, अन्य चीज़ें भी

अस्त व्यस्त हों, घर का सब सामान बिखरा पड़ा हो और कोई भी चीज़ व्यवस्थित न हो, तो समझना कि उस आदमी के जीवन में प्रसन्नता नहीं आ सकती। स्वाभाविक रूप से हर चीज़ को सही जगह पर रखने का ढंग आपको आता हो, सुव्यवस्था आती हो तो प्रसन्नता आएगी। आप योजनाबद्ध तरीके से चलें तो आपके जीवन में प्रसन्नता आयेगी। आप प्रेममय बन के जिएं तो प्रसन्नता आयेगी। जो आदमी प्रेमपूर्ण है वह आदमी सदा खुश रहता है और हँसता रहता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है,

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।१६।।

मधुर और मीठे बने रहना भी तप है। प्रेमपूर्ण बनकर के जिओ। मृदुता, सौम्यता, शिष्टता, शालीनता यह आपके स्वभाव में आये। हमें आईना दिखाने वाला तो कोई मिलेगा नहीं। अगर मिलेगा भी तो हम यही समझेंगे कि वह आदमी हम से द्वेष रखता है, बैर रखता है और आप किसी के द्वारा आईना दिखाना पसन्द भी नहीं करेंगे। अच्छा यह हो कि आप स्वयं ही अपने को आईना दिखाएँ और अपने अपको खुद ही मुँह चिढ़ाएं, यह ज़्यादा अच्छा है। यह आईना कुछ और नहीं, केवल आपका 'आत्मचिन्तन' ही हो सकता है। अपने आत्मचिन्तन को आप अपना दर्पण बनाइये। आप दूसरों के लिए समय निकालते हैं, परिवार के लिए समय निकालते हैं, दुनिया में व्यवहार चलाने के लिए भी आप समय निकालते हैं तो थोड़ा सा समय अपने लिए, खुद के लिए भी निकालिये। अकेले बैठ कर कभी अपने बारे में सोच लिया कीजिये। अकेले बैठकर भी आप दूसरों के बारे में ही सोचते हैं। अपने बारे में सोचो। अकेले बैठना तो अपने बारे में सोचना, अपनी आदतों के बारे में सोचना। दूसरों के बारे में सोचो तो बस इतना ही कि आपने दूसरों के साथ जो व्यवहार किया है वह कैसा किया है? वह व्यवहार यदि दूसरे आपके साथ करते तो आपको कैसा लगता? जो कुछ आप दूसरों को बांट रहे हैं अगर दूसरे भी आपको वही सब देने लग जाएं तो आपको कैसा लगेगा। यह सब सोचना चाहिए, विचार करना चाहिए।

चिन्तन के लिए एक समय रखिए। प्रभात में या रात्रि में एक बेला बनाइये, जिस बेला में बैठकर आप आत्मचिन्तन करें। उस घड़ी में आप काल चिन्तन कीजिए। ऐसा करने से आपके अन्दर मिठास आयेगी। भगवान ने कहा **'मौनं'** मौन रहना। मौन रहना वाणी का तप होना चाहिए मन का तो नहीं। पर भगवान कृष्ण ने इसे मन के साथ जोड़ा है। मौन का सम्बन्ध वाणी से इतना नहीं है जितना मन से है क्योंकि कई लोग मौन के समय वाणी से तो चुप हो गए लेकिन मन से चुप नहीं होते। जो मन से शान्त होकर बैठें, तब 'मौन' मौन हुआ। मन में मौन आ जाए और वह वाणी में उतर आए तो आपका मौन खरा होगा। चुप बैठे बैठे भी यदि आप दूसरों के लिए बुरे बुरे विचार करें तो फिर 'मौन' मौन नहीं है। शान्त और सहज भाव को मन में लेकर आप बैठें तो वह मौन है। इसलिए मौन का सम्बन्ध मन से है वाणी से नहीं। **मन मौन हो जाए तो ध्यान लग गया।** मन मौन नहीं हो पाया तो फिर आपका ध्यान टिकेगा नहीं। नींद में आपका मन मौन होकर खो जाता है। जागते हुए भी आप अपने मन को ऐसा ही बनाइए। अर्थात् मस्तिष्क का व्यापार, मन का विचार, बंद कर आप शान्त होकर बैठ जाएं। यह मानसिक तप है।

भगवान कहते हैं **आत्मविनग्रहः** अर्थात् अपने स्वरूप में नियन्त्रित होकर चलना, अपने को नियन्त्रण में रखना, यह भी तप है। इसका सम्बन्ध भी मन से है। मन को नियंत्रण में कर लिया तो मौन, प्रसन्नता और मृदुता यह सब आप में आ जायेंगे। आपका मन ठीक होगा तो आप मधुर बोल बोलेंगे। आपका मन ठीक नहीं है तो कोशिश करने पर भी आपके अन्दर से मीठे शब्द नहीं निकलेंगे। आदमी का मन परेशान हो, खीजा हुआ हो, उलझा हुआ हो, लोग उसे तंग कर के गये हों और आप उससे यह उम्मीद करें कि वह मीठा बोले तो यह संभव नहीं है। उस समय मीठा बोल उसके अन्दर से निकलेगा ही नहीं क्योंकि उसमें प्रसन्नता नहीं है। प्रसन्नता में ही मधुरता है और मधुरता में ही प्रसन्नता है। प्रसन्नता में ही मौन है और मौन में ही स्वयं पर नियन्त्रण है। प्रसन्न रहोगे तो मीठे भी रहोगे, मीठे रहोगे तो मौन भी सध जाएगा। मौन सधा तो स्वयं पर

नियन्त्रण भी कर लोगे। और फिर **भाव संशुद्धि** विचारों की पवित्रता। आपके विचार भी पवित्र तभी हो सकते है जब आपका मन ठीक रहे।

महात्मा बुद्ध का विनायक नामक एक शिष्य था। महात्मा बुद्ध के ग्रन्थों में 'वाचाल विनायक' के नाम से उसका वर्णन आता है क्योंकि वह बोलता बहुत था। वह हर एक को समझाने लगता था। उसने बुद्ध से उपदेश सुना तो सुनने के बाद वह सब शिष्यों को इकट्ठा करके कहता था, "देखो! क्या कहा गुरु जी ने? कभी समझ आएगी तुम लोगों को? इतना समझाने के बाद भी कोई समझने को तैयार नहीं है। देखो, गुरु जी ने यह भी बताया वह भी बताया। अब इनमें से कोई कुछ समझने वाला नहीं है। अब ये यहां से जाएंगे तो ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे।" इस तरह से एक एक को पकड़ पकड़ कर, हिला हिला कर वह बोलता था। एक बार महात्मा बुद्ध ने देख लिया तो उसका नाम रख दिया 'वाचाल विनायक' और उसको बुलाकर कहा, "विनायक! जंगल में जंगली गौएं दौड़ रही हों, और कोई उनको देख देख कर गिनता रहे, तो क्या गिनने से वह गौएं उसकी हो जायेंगी? तू ज्ञान को गिनता बहुत हैं। गुरुजी ने यह भी बताया, गुरुजी ने वह भी बताया। अपने आप में तू बहुत बड़ा ज्ञानी भी है क्योंकि गिनती कर रहा है। गिनने वाला ज्ञानी। लेकिन गिनने से जैसे गौएं अपनी नहीं होती, उन्हें जो पाले और बांध ले गौएं उसी की हो जाती है तो इसी तरह तू इस ज्ञान को अपने अन्दर पाल। सब गौएं अर्थात् विद्या तेरी हो जायेगी। सारा ज्ञान तेरा हो जायेगा।"

मन का विरोध करोगे तो मन भी तुम्हारे विरोध में खड़ा हो जायेगा। मन को दबाओगे तो मन दबने वाला नहीं, वह तुमको दबाने लगेगा। फिर क्या करना चाहिए? मन को पालिए, पोसिये और बांधिये। उसे उसी तरह बांधना है जैसे किसी पशु को बांध लिया जाता है। फिर उसे पालना भी है और उसका पालन करते करते उसे अपने मोह में ढाल लेना है। जिस दिन आपने अपने मोह में उसे ढाल लिया, अपने प्यार में उसे बांध लिया तो फिर यह होगा कि आप आगे आगे चलेंगे और आपका पशु अर्थात् यह मन, आपके पीछे पीछे आएगा।

कुछ दिन पहले हम लोग मुरादाबाद में सत्संग कर रहे थे। सवेरे जब हम जा रहे थे तो हमने देखा कि एक आदमी, जिसने जंगली तीतर पाले हुए थे, आगे आगे चला जा रहा था और उसके पीछे पीछे उसके तीतर चले आ रहे थे और वह भी सड़क के बीचोंबीच। अगर आप जंगल में तीतर को देखें तो वह इतना शर्मीला पक्षी होता है कि किसी को देखते ही दौड़ कर झाड़ी में छिप जाता है। पकड़ने की तो बात बहुत दूर, आप उसकी एक झलक भी ठीक से नहीं देख पाते और न फोटो उतार पाते हैं। लेकिन न जाने उनको उस आदमी ने क्या प्यार दिया, कैसे पाला कि वह मालिक बना आगे जा रहा था सड़क पर, जहां गाड़ियां भी आ जा रही थीं, और तीतर उसके पीछे पीछे चले जा रहे थे चोंच उठाकर, पंख फड़फड़ाते हुए। बड़ा ही मनमोहक दृश्य था। आपका मन भी ऐसा ही जंगली है। इसे नियंत्रित करना है तो इसे बांधिए और प्यार से पालिए, फिर देखिये कैसे यह आपके पीछे पीछे आएगा। अभी तक तो आप इसके पीछे थे पर बाद में निश्चित रूप से यह आपके पीछे आएगा लेकिन तब जब बहुत जतन और प्यार से आप इसको पाल लेंगे, क्योंकि इसे तो मोती खिलाने पड़ते हैं। यह साधारण दाना तो खाता ही नहीं, और ये मोती हैं धीरज रखना, शान्ति बनाना, प्रसन्न रहना और मन में परमात्मा का प्यार जगाना जिन्हें खिलाकर मन को पालना है। उसके बाद इसे जिधर ले जाना चाहेंगे उधर आप उसे अपने पीछे पीछे लेकर चले जाना। जिधर जाना है उधर का प्यार जगाओ, जिधर से हटाना है उसके प्रति विरक्ति जगाओ। बहुत प्यार से इसे संभालना। कभी इसके लिए लोरी गाना, जैसे बच्चे को सुलाने के लिए मां लोरी गाती है। यह तब बंधेगा भी सही और समझेगा भी सही। इसे दोष देते रहने से यह ठीक नहीं होगा। इसे प्यार दुलार से ठीक करना पड़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह तप है। **जिसने मन को संभाल लिया उसने एक बड़ा तप कर लिया।**

यह मन एक चंचल बच्चे की तरह से ज़िद करेगा। एक ही बात को बार बार दोहराएगा, हज़ार बार कहेगा अपनी बात मनवाने के लिए रोता जाएगा और अपनी बात दोहराता जाएगा कि यही चाहिए, अभी चाहिए। माँ

उसको रोते देखती रहेगी और अपना काम करती रहेगी। डांटेगी भी पर वह भी अपना रोना जारी रखेगा। आखिर में वह अपनी बात मनवा करके ही छोड़ता है। आपका मन भी ऐसा ही करता है। लेकिन जैसे समझदार माँ, बच्चे को प्यार से समझा कर, गोद में लेकर, सजा संवार कर और किसी खेल में बहलाकर उसके मन को बदल देती है, कल का वादा करके टाल देती है, वैसे ही जब आपका मन ज़िद कर रहा हो तो किसी तरह से उसे टाल देना। हो सकता है वह ठीक हो जाए और उसकी ज़िद चली जाए। जैसे जैसे तुम उसे प्यार से टालते जाओगे वैसे वैसे उसमें पवित्रता आएगी। **इसलिए मन को नियन्त्रित करने के लिए ताकत की नहीं प्यार की ज़रूरत है।**

होता यह है कि हम गुस्सा करने लगते हैं। ज़िद्दी बच्चे पर गुस्सा करेंगे तो बात बिगड़ जाती है। अगर उसकी माँग ठीक नहीं है तो उसे मनाने का रंग ढंग बदलिए, उसकी रुचि किसी और तरफ़ लगाइए। इसी तरह जब आपका मन जिद करे तो उसे कहीं और लगा देना। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मौन रहना और अपने ऊपर नियंत्रण रखना तप है। मानसिक तप को आप इस तरह से करें कि यह आपकी मानसिक शक्ति बन जाए। **मन पर निर्भर करता है कि आप कितना जप तप करते हैं। अगर मन पर नियंत्रण कर के आप मानसिक रूप से शक्तिवान बन गये तो ज्ञानी और ध्यानी बन सकते हैं,** सम्राट बन सकते हैं, **परिव्राट** बन सकते हैं।

एक बार कोई साधु महात्मा अपनी कुटिया में बैठे हुए भजन में लीन थे। तब वहां एक व्यक्ति आया और उनसे कुछ मांगने लगा, "मैं भूखा हूँ, मुझे कुछ दीजिए, मुझे कुछ खिलाइये।" बहुत देर बाद जब उनका ध्यान टूटा तो महात्मा ने कहा, "भई, इस वक्त तो खाने को कुछ भी नहीं है। तुम चाहो तो सामने के गाँव में जाकर कुछ भिक्षा मांग लो।" उसने कहा, "नहीं महात्मा जी आप ही कुछ दे दीजिए।" तब महात्मा ने कहा, "ठीक है। ऐसा करो सामने नदी में एक पत्थर पड़ा हुआ है उसे उठाकर ले आओ। वह पत्थर पारसमणि है। तब तक मैं कुटिया में कोई लोहा ढूंढता हूं, उस लोहे को सोना बनाकर तुम्हें दे दूंगा। तुम उसे ले जाना, जिससे तुम्हारी गरीबी और तुम्हारी भूख दोनों मिट जायेंगे।" व्यक्ति जाते हुए पूछने लगा कि

पत्थर किधर की तरफ है। नदी में किस तरफ आपने फेंका था? महात्मा ने कहा, "ध्यान करके तो नहीं फेंका था, पर थोड़ी कोशिश करके देखो मिल जाएगा। पत्थर थोड़ा काला है, उसमें सफेद सफेद धारियां है।" वह व्यक्ति जाकर पत्थर ढूंढने लगा और साथ ही यह सोचने लगा कि महात्मा ने इतनी लापरवाही से पारस पत्थर को फेंक दिया जब कि इसकी कुटिया में खाने पीने तक को भी नहीं है। यह आदमी किस मिट्टी का बना हुआ है? ऐसा मस्त आदमी है कि इतना कीमती पत्थर, जिससे वह दुनिया को सोने से भर सकता है, नदी में फेंक आया है।

वह सोचता रहा और पत्थर ढूंढता रहा और जब पत्थर मिल गया तो उसे उठाकर लाने लगा। रास्ते में लोहे की कोई चीज़ पड़ी हुई थी। उसने उसे उठाकर पारसमणि से छुआया तो वह सोने की बन गई। अब उसने कहा, "ओह! यह तो सचमुच पारसमणि है।" यह सोचकर उसकी आंख में आंसू आने लगे कि यह महात्मा कितना महान है, इसके पास इतनी कीमती चीज़ है जिसे इसने नदी में फेंक रखा है। अब इसने भी पत्थर को वापिस नदी में फेंक दिया और महात्मा के पास आकर बोला, "महात्मा जी! कृपा करके हमारा मन भी ऐसा कर दीजिये कि हम भी ऐसी दो चार पारसमणि उठाकर नदी में फेंक दें? क्योंकि जो आदमी हीरे जवाहरात को नदी में फेंक देता हो तो उससे बड़ा राजा और कोई नहीं हो सकता। हम भी आप जैसा होना चाहते हैं कि दुनिया की दौलत हमारे हाथ में हो और हम उसे उठाकर फेंक दें।" अब महात्मा ने कहा, "एक आसन मेरे पास खाली पड़ा है, यहां आकर बैठ। यहां बैठेगा तो यह खजाना अपने आप मिल जाएगा क्योंकि यह भक्ति से ही आता है।"

मन को भक्ति में लगाने से वह स्थिति आ जाएगी कि आपके अन्दर अमीरी जागेगी और तब फिर आप भी संसार के खजाने को उठाकर फेंक देंगे। आपकी नजर में वह चीज़ें साधारण चीज़ें हो जाएंगी। जैसे मिट्टी के ठीकरों को (टूटा हुआ मिट्टी का बर्तन ठीकरा कहलाता है) कोई संभालता नहीं, उठाकर फेंक देता है, वैसे ही आप भी बहुत सारी चीजों को उठाकर फेंक देंगे। जैसे बचपन में आप जो चीज़ें संभाल कर रखते थे, बड़े

होने पर उनको सहेजना आपको निरर्थक लगने लगता है। बच्चों के पास कैसी कैसी चीज़ें होती हैं, रंगीन कागज, चूड़ियों के टुकड़े, प्लास्टिक, और तो और अगर छोटे छोटे पत्थर भी हों तो वे उन्हें भी उठाकर जेब में डाल लेते हैं। मुझे ध्यान आता है उस समय का जब हम लोग बहुत छोटे थे। रिश्तेदारी पहाड़ों पर थी वहाँ हम गए हुए थे। एक छोटी सी पहाड़ी नदी में छोटे छोटे प्यारे प्यारे पत्थर थे। हम लोगों ने लालच में कितने ही पत्थर बटोर लिये। लेकिन मुसीबत यह थी कि हर पत्थर में बोझ था। अब अपने कपड़ों में, पल्ले में भरते भरते इतना बोझ हो गया कि पल्ला ही फटने लगा। उस पर भी नए नए पत्थरों की तरफ हम देखते और उन्हें उठाने का लालच न रोक पाते। तब पहले वाले पत्थरों में से कुछ को फेंकते जाते और नये वालों को संभालते जाते। तभी घर के लोग वहां आए और हमें बहुत डांटा कि क्या बेकार की चीज़ें इकट्ठा कर रहे हो? और हम सोच रहे थे कि इन लोगों की समझ में क्यों नहीं आता कि ये कितने कीमती और प्यारे पत्थर हैं। बच्चों को जिस चीज़ में रस आ रहा था उसमें बड़ों को व्यर्थ का कूड़ा करकट नज़र आ रहा था। तितली के पंख बिखरे मिल जाएं तो बच्चे उन्हीं को उठा लेंगे। किसी तोते का या मोर का टूट कर गिरा पंख हो और बच्चे उसको पा जाएं तो उन्हें लगता है कि इससे बढ़कर कीमती चीज़ हो ही नहीं सकती। कितनी ही बार जंगलों से हम लोग मोर के ढेरों पंख इकट्ठे करके ले आते थे और समझते थे कि हमारे पास बड़ा भारी खज़ाना हो गया है। तो **बच्चे जिन चीजों से आकर्षित होते हैं, बड़े होने के बाद उनको उन चीजों में कोई आकर्षण दिखाई नहीं देता।** बुद्धि आई तो उन चीजों का आकर्षण जाता रहा।

जैसे जैसे आप बड़े होते जाएंगे, बड़े होने का मतलब उम्र बढ़ने से नहीं बल्कि आपके मन और अन्तःकरण की दशा, आपकी बुद्धि के परिपक्व होने से है, तैसे तैसे आपको ज़मीन, जायदाद, मकान इन सब में आकर्षण नज़र नहीं आएगा। फिर वह भी स्थिति आएगी जब कि पारसमणि आपके पास होगी तो उसे भी आप उठाकर फेंक देंगे। बच्चे के सामने अगर उसके पत्थर फेंके जाएं, उसके कीमती और चिकने पत्थर जिन्हें उसने संभालकर

जमा कर रखा है, तो उसको बड़ों की बुद्धि पर तरस आता है। बड़े जब डांट रहे होते हैं और उसके पत्थर फेंक देते हैं तो बच्चा बड़े ध्यान से देखता है कि पत्थर कहां जाकर पड़ा क्योंकि बाद में वह उसे उठा लाएगा। किंतु उसकी समझ जैसे जैसे विकसित होगी, उसका मन खुद–ब–खुद बदल जाएगा। वह स्वयं ही उन्हें फेंक देगा। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि **आप अपने ज्ञान को बढ़ाकर अपने मन को ऊँचा उठायें जिससे मन नियन्त्रण में आए** और आप संसार से ऊपर उठ कर सांसारिक वस्तुओं को खुद–ब–खुद छोड़ने को तैयार हो जायें। परंतु यह साधारण बात नहीं है। यह मन का तप है जो आपकी अपनी शक्ति बन सकता है।

बहुत से लोग वेश बदल कर कोशिश करते हैं कि शायद इससे मन ठीक हो जाए। कपड़े बदल लिए, साधु वाले वस्त्र पहन लिए, जटाजूट बढ़ा लिए। सोचते हैं कि इससे बात बन जाएगी। अब्बू हसन नाम के एक फकीर हुए हैं। उनके पास किसी व्यक्ति ने आकर कहा, "आपकी शान्ति, आपकी प्रसन्नता, आपका उल्लास, आप जैसा आनन्द और आपकी आँखों की जो पाकीज़गी एवं पवित्रता है, आप में जो सब्र दिखाई देता है, आपके अन्दर जैसी तसल्ली है और आपकी रूह के अन्दर से उठता हुआ यह जो धुआं सा है, खुशबू है जिसके कारण आपके पास आते ही हर आदमी को शान्ति मिलने लगती है, यह सब गुण हमारी भी सम्पत्ति बन जाएं, इसके लिए आप एक कृपा मुझ पर करें कि अपना एक कपड़ा, अपना कोई वस्त्र मुझे पहनने के लिये दे दें जिससे मैं आप जैसा हो जाऊं।" तब अब्बू हसन ने बहुत प्यार से उस व्यक्ति को कहा, "जैसे कोई महिला पुरुष के वस्त्र पहन लेने से पुरुष नहीं हो जाती ऐसे ही कोई आत्मा, कोई रूह या फिर कोई व्यक्ति, किसी और के कपड़े पहन लेने से उसके जैसा नहीं हो सकता। मेरे वस्त्र पहन लेने से तुम्हारे मन की दशा तो नहीं बदल जाएगी, तुम्हारा अन्तःकरण तो परिवर्तित नहीं होगा, तुम्हारा स्वभाव भी वैसा ही रहेगा, क्योंकि केवल वस्त्रों पर ही सब कुछ निर्भर नहीं है।" उन्होंने आगे यह भी कहा, "यहाँ तक कि अगर तुम मेरी चमड़ी भी उतार कर पहन सकते हो, और पहन लो, तो भी कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। मेरी संगत में रहो,

मेरे विचारों को ग्रहण करो तो शायद कुछ फ़र्क पड़े। फिर वेश बदलो या न बदलो, तुम्हारी ज़िन्दगी जरूर बदल जाएगी। तुम्हारे अन्दर परिवर्तन आएगा। तुम्हारे अन्दर बदलाव आएगा।"

आप में भी परिवर्तन आ सकता है। पर इसके लिये अन्दर से विचार ठीक करने होंगे। हम लोगों की कोशिश बाहर से बदलाव लाने तक ही सीमित होती है। हम लोग जगह बदल लेंगे, स्थान बदल लेंगे, कपड़े बदल लेंगे, और सोचेंगे कि परिवर्तन आ जाएगा। घर बदल लेने से शान्ति आ जाएगी। इस जगह को छोड़कर थोड़े दिन दूसरी जगह रहकर आ जाएँगे तो फ़र्क पड़ जाएगा। लोग घर में वास्तु के हिसाब से चीज़ें इधर से उधर बदलने की कोशिश करते हैं। सोचते हैं, कि शायद इस से कोई फर्क पड़ जाए। आप कुछ भी कर लेना पर जब तक सबसे बड़ी चीज़ यानि अपनी मानसिक स्थिति नहीं बदली तो फिर आपने अपना बक्सा, उत्तर से उठाकर दक्षिण दिशा की तरफ रख भी दिया तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कहते और मानते रहें कि दक्षिण दिशा यम का स्थान है, बीच की जगह ब्रह्म का स्थान है, उत्तर दिशा देवताओं का स्थान है इसलिये जल का बहाव भी उधर की तरफ होना चाहिए। कितना भी बोलते रहें कि पूर्व और दक्षिण का जो कोण है अग्नि उधर की तरफ ही जलनी चाहिए, रसोईघर भी इधर ही होना चाहिए आदि और कितना भी बदलते रहिए, कुछ भी करते रहिए, कुछ फ़र्क नहीं पड़ेगा। मैंने देखा है कि बहुत से लोगों ने अपने घर तुड़वाए, दीवारें खराब कर लीं। अगर वास्तु शास्त्र विद्या है तो उस विद्या का थोड़ा बहुत सहारा लिया जा सकता है लेकिन विद्या का सहारा लेने का मतलब यह नहीं है कि अपने मन को तो ठीक करो नहीं और सब कुछ वास्तु विद्या पर डाल कर सोचने लगो कि घर में सुखशांति हो जायेगी, चीज़ें ठीक कर लेने से, दीवार इधर से ऊँची, उधर से नीची कर देने से बात बन जाएगी। **कमाल यह है कि आदमी वस्तुओं को ठीक करने में लगा रहता है लेकिन अपने आप को ठीक करने कोशिश नहीं करता, जबकि तथ्य यह है कि यदि हम अपने आपको ठीक करने की कोशिश जारी रखें तो हमारे लिये किसी वास्तु शास्त्र की आवश्यकता**

हो जायेगी, चीज़ें ठीक कर लेने से, दीवार इधर से ऊँची, उधर से नीची कर देने से बात बन जाएगी। **कमाल यह है कि आदमी वस्तुओं को ठीक करने में लगा रहता है लेकिन अपने आप को ठीक करने कोशिश नहीं करता, जबकि तथ्य यह है कि यदि हम अपने आपको ठीक करने की कोशिश जारी रखें तो हमारे लिये किसी वास्तु शास्त्र की आवश्यकता नहीं पड़ेगी,** क्योंकि हमारा शास्त्र तब हमारे अन्दर से ही बोलना शुरू हो जाएगा। इसलिए आप अपने आपको अन्दर से ठीक कीजिये।

अपनी मानसिक स्थिति हम लोगों ने इतनी ज्यादा खराब कर ली है कि बात बात में हम आशंकित होते हैं, दिशा का ध्यान करने लगते हैं। सामने से बिल्ली चली गई, कुत्ता निकल गया, इन सारी बातों पर ध्यान देते हैं। इन सब बातों को भूलिए। भगवान की इस धरती पर सबको अधिकार है चलने का, सबको जीने का अधिकार है। आपके सामने से बिल्ली चली गई तो क्या उसको हक नहीं है जीने का और सड़क पर चलने का? हो सकता है कि बिल्ली ने आपका रास्ता न काटा हो, आपने बिल्ली का रास्ता काटा हो, या आप उसका रास्ता काटने वाले हों इसलिए वह आपके सामने से पहले ही अपना रास्ता बना कर भाग गई हो। आदमी से बढ़कर ज़हरीला जीव तो दुनिया में दूसरा कोई है नहीं। कितने जीव जन्तु दुःखी होते होंगे कि आदमी उसका रास्ता काट गया या सामने पड़ गया। इसलिए इन आशंकाओ में न पड़िए। अपने मन को ठीक कीजिए। भगवान कहते हैं जो अपने मन को नियन्त्रित रखता है वह व्यक्ति तपस्वी है। भगवान ने कहा **भाव संशुद्धिः** अपने विचारों को पवित्र करो। विचारों में आप पवित्रता लाइए। संभालने वाली चीज़ दुनिया में अगर कोई है तो वह आपके विचार हैं। इन्हें संभालिए, अच्छा बनाइये, तराशिये। इसके लिए आप स्वाध्याय करें, सत्संग करें और महापुरुषों के संग बैठें।

सूचनाएं इकट्ठी करने से आपकी जानकारी तो थोड़ी ज़रूर बढ़ती है। लेकिन जैसे जैसे जानकारी का विस्तार होता जाएगा वैसे वैसे आपको अपने अज्ञानी होने का भी बोध होगा। **आदमी जितना जानता जाता है उतना ही उसे इस बात का भी एहसास होता है कि अभी और कितना**

है जिसे वह नहीं जानता। उसे ज्ञात होता है कि ज्ञान का भंडार कितना विस्तृत है और तब वह सोचता है कि वह कितना अज्ञानी है। पूर्ण ज्ञान का केन्द्र बिन्दु केवल परमात्मा है। हम निरंतर उसके सान्निध्य में रहें। वह हमारे इतना पास है कि हम महसूस नहीं कर पाते। उसको जान लेने का मतलब होगा कि हमने सचमुच सब कुछ जान लिया है।

भारत में जो बहुत अच्छे साधक रहे हैं, उन्होंने अपनी साधना की सिद्धि और शक्ति के बल पर जो भी कहा वह विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरा है। विज्ञान की कसौटी पर ऋषियों की वाणी को कसने के बाद यह तथ्य उजागर हुआ कि साधना कितनी वैज्ञानिक है और ध्यान एक बहुमूल्य वैज्ञानिक उपकरण। यह सोचकर ताज्जुब होता है कि हमारे ऋषियों के ज्ञान की प्रयोगशालाएँ कहाँ थी? उन्होंने अपनी प्रयोगशाला कहाँ लगा रखी थी? परमात्मा की तरफ चलने से बहुत सारी बातें अनायास ही समझ में आती हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं होना चाहिए कि बाहर के ज्ञान के संसाधन हम कम कर दें या वैज्ञानिक खोजें बंद कर दें। सांसारिक ज्ञान प्राप्त करने के जो संसाधन हैं उनका लगातार प्रयोग कीजिए लेकिन आन्तरिक रूप से भी जागृत होने के लिए साधना कीजिए। साधना में रहने का परिणाम यह ज़रूर होगा कि आपके अन्दर श्रद्धा जागेगी। श्रद्धा और विचारों की पवित्रता मिलकर आपके मन की दशा को बदलेंगे।

हमारे ग्रन्थों में एक बात कही गई है :

"मन्त्रे तीर्थे, द्विजे, देवेः देवज्ञ, भेषजे,
गुरौः याहशो भावना यस्य सिद्धिर्भवति ताहशी"

अर्थात् किसी मन्त्र में, किसी तीर्थ में, किसी द्विज ज्ञानी और विद्वान के प्रति किसी देवता के प्रति, किसी देवज्ञ व भाग्य बताने वाले के प्रति, किसी चिकित्सक के प्रति और किसी गुरु के प्रति आपकी जितनी श्रद्धा भावना होगी उतनी ही आपको सिद्धि होगी और उसी के अनुसार आपको सफलता मिलेगी। इसलिए आपकी भावना पर ही आपका लाभ अवलंबित है। चाहे मन्त्र हो, तीर्थ हो, ज्ञानी ब्राह्मण हो, देवता हो, चिकित्सक हो या गुरु हो आप इन सब के प्रति श्रद्धा भावना बना के रहिए। **यादृशी भावना**

भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी, जैसी जिसकी भावना, वैसी उसकी सिद्धि और वैसी उसकी सफलता। इसलिये मन सधा तो श्रद्धा जागी। श्रद्धा जागी तो संसार में सफलता मिली। आपकी सफलता से लोग ईर्ष्या करेंगे और आपको श्रद्धा मार्ग से हटाने की कोशिश करेंगे। आप बहक गये तो वे आपकी निंदा करेंगे। इसलिए अपनी श्रद्धा के पौधे को कटने न दें, बहकें नहीं।

वदनं प्रसाद सदनं सदयं हृदयं।
सुधामुचोवाचः एषां केषां न ते वन्द्याः।।

नीतिकारों ने कहा है कि जिनके **वदन** चेहरे पर प्रसन्नता है और जिनके घर प्रसन्नता से भरपूर हैं, जिनका हृदय दया से युक्त है और जिनकी वाणी में मिठास है, जिनके हाथ परोपकार में सदैव व्यस्त हैं वे व्यक्ति वन्दनीय और पूजनीय है क्योंकि वे परमात्मा के प्यारे और दुलारे हैं।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।।१।।

अर्जुन बोले–हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्र विधि का त्याग करके श्रद्धापूर्वक देवता आदि का पूजन करते हैं, उनकी निष्ठा फिर कौन सी है? सात्त्विकी है अथवा राजसी अथवा तामसी?

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु।।२।।

श्रीभगवान् बोले–मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्त्विकी तथा राजसी और तामसी, ऐसे तीन तरह की ही होती है, उसको तुम मेरे से सुनो।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।३।।

हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह मनुष्य श्रद्धामय है। इसलिये जो जैसी श्रद्धावाला है, वही, उसका स्वरूप है अर्थात् वहीं उसकी निष्ठा–स्थिति है।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः।।४।।

सात्त्विक मनुष्य देवताओं का पूजन करते हैं, राजस मनुष्य यक्षों और राक्षसों का और दूसरे जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेतों और भूतगणों का पूजन करते हैं।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।।५।।
कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्।।६।।

जो मनुष्य शास्त्र विधि से रहित घोर तप करते हैं; जो दम्भ और अहंकार से अच्छी तरह युक्त हैं; जो भोग पदार्थ, आसक्ति और हठ से युक्त हैं; जो शरीर में स्थित पांच भूतों को अर्थात् पाँच भौतिक शरीर को तथा अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करनेवाले हैं उन अज्ञानियों को तू आसुर निश्चयवाले (आसुरी सम्पदा वाले) समझ।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु।।७।।

आहार भी सबको तीन प्रकार का प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात् शास्त्रीय कर्मों में भी तीन प्रकार की रुचि होती है, तू उनके इस भेद को सुन।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः
सात्त्विकप्रियाः।।८।।

आयु, सत्त्वगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ाने वाले, स्थिर रहने वाले, हृदय को शक्ति देनेवाले, रसयुक्त तथा चिकने ऐसे आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्त्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।६।।

अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाहकारक आहार अर्थात् भोजन के पदार्थ राजस मनुष्य को प्रिय होते हैं, जो कि दुःख, शोक और रोगों को देनेवाले हैं।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।१०।।

जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धित, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो महान् अपवित्र भी है, वह तामस मनुष्य को प्रिय होता है।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।।११।।

यज्ञ करना कर्त्तव्य है इस तरह मन को समाधान करके फलेच्छारहित मनुष्यों द्वारा जो शास्त्र विधि से नियत यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक है।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।।१२।।

परन्तु हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! जो यज्ञ फल की इच्छा को लेकर

अथवा दम्भ (दिखावटीपन) के लिये भी किया जाता है, उसको तुम राजस समझो।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।।१३।।

शास्त्रविधि से हीन, अन्न दान से रहित, बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किये जानेवाले यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।१४।।

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुष का पूजन करना, शुद्धि रखना, सरलता, ब्रह्मचर्य का पालन करना और हिंसा न करना, यह शरीर संबंधी तप कहा जाता है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।१५।।

उद्वेग न करनेवाला, सत्य प्रिय, हितकारक भाषण तथा स्वाध्याय और अभ्यास करना यह वाणी संबंधी तप कहा जाता है।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।१६।।

मन की प्रसन्नता, सौम्य भाव, मननशीलता, मन का निग्रह और भावों की शुद्धि इस तरह यह मन संबंधी तप कहा जाता है।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।।१७।।

परम श्रद्धा से युक्त फलिच्छारहित मनुष्यों के द्वारा तीन प्रकार (शरीर, वाणी और मन) का तप किया जाता है, उसको सात्त्विक कहते हैं।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।१८।।

जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिये तथा दिखाने के भाव से किया जाता है, वह इस लोक में अनिश्चित और नाशवान् फल देनेवाला तप राजस कहा गया है।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्।।१९।।

जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से अपने को पीड़ा देकर अथवा दूसरों को कष्ट देने के लिये किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।२०।।

दान देना कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्।।२१।।

किन्तु जो दान प्रत्युपकार के लिये अथवा फल प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर फिर क्लेशपूर्वक दिया जाता है, वह दान राजस कहा जाता है।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभयश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्।।२२।।

जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक आयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह दान तामस कहा गया है।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।२३।।

ॐ, तत् और सत्–इन तीनों नामों से जिस परमात्मा का निर्देश किया गया है, उसी परमात्मा ने सृष्टि के आदि में वेदों, ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना की है।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्।।२४।।

इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को माननेवाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएं सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके ही आरभं होती हैं।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपः क्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।।२५।।

'तत्' नाम से कहे जानेवाले परमात्मा के लिये ही सब कुछ है, ऐसा

मानकर मुक्ति चाहनेवाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर अनेक प्रकार की यज्ञ और तपरूप क्रियाएं तथा दानरूप क्रियाएँ की जाती हैं।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।२६।।

हे पार्थ! परमात्मा के 'सत्' इस नाम का सत्तामात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है ताकि प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।।२७।।

यज्ञ, तप और दानरूप क्रिया में जो स्थिति (निष्ठा) है, वह भी 'सत्' ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जानेवाला कर्म भी 'सत्' ऐसा ही कहा जाता है।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।२८।।

हे पार्थ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान और तपा हुआ तप तथा और भी जो कुछ किया जाय, वह सब 'असत्' ऐसा कहा जाता है। उसका फल न यहाँ होता है, न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता।

अठारहवां अध्याय
मोक्ष
सन्यास
योग

मोक्ष सन्यास योग

सार

गीताकार महर्षि वेदव्यास ने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अंतिम अठाहरवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा पिछले १६ अध्यायों में दिये ज्ञान की पुनरावृत्ति करते हुये संक्षेप में कहा है कि श्रद्धा के बिना आध्यात्मिक उन्नयन संभव नहीं है। जीव में जन्मजात तीन गुण हैं, सात्विक, राजसिक एवं तामसिक। समस्त सृष्टि तीन स्वरूपों में स्थित है। परमात्मा के तीन स्वरूप हैं, ब्रह्मा विष्णु और महेश परंतु परिस्थितियों, भाग्य और कर्मों के अनुरूप तीनों गुण परस्पर परिवर्तनीय हैं। उदाहरणार्थ ब्रह्मा सतोगुणी हैं परंतु उनमें विष्णु के रजोगुण और महेश के तमोगुण की मात्रा भी है। संसार में सर्वत्र तीन का प्रभाव है। गुण, स्वाभाव, दान, तप, श्रद्धा, भोजन, ऋतु, मौसम सब में तीन का तत्व प्रभावी है। यहाँ तक महिलायें जब वेणी बांधती हैं तो पहले बालों को तीन में विभक्त करती हैं। एक जन्म के कर्मों के अनुसार मनुष्य को विधाता से तीन चीजें मिलती हैं, आयु, जाति (योनि या चोला) और भोग। मनुष्य जाति को परमात्मा की अनुपम देन बुद्धि है। मनुष्य अपने कर्मों, परिस्थिति और भाग्य के अनुसार सुमति, सुबुद्धि, विवेक और प्रज्ञा अर्जित करता है। इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने प्रमुख रूप से मनुष्य के कर्मानुसार उसके चार वर्णों का उल्लेख किया है। सामान्य रूप से जो अध्यवसायी हो, शांत हो, पवित्रता और स्वच्छता का ध्यान रखता हो वह ब्राह्मण है (जैसे शरीर में सिर), जो समाज और देश की रक्षा में संलग्न है वह क्षत्रिय (जैसे हाथ) जो वाणिज्य व्यवसाय करता हो और सम्पदा को समाज में बांटता हो वह वैश्य (शरीर में मध्य भाग) और जो व्यक्ति सारे समाज को स्वच्छ रखने के लिये सेवा कार्य में लगा रहता है वह शूद्र। व्यक्ति आवश्यकता और स्वभाव के अनुरूप काम धंधा अपनाता है जिससे उसके अन्दर और बाहर का तालमेल बना रहे। इस वर्गीकरण का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक परिवार में चार पुत्र हैं एक अध्यापक बनता है (ब्राह्मण), एक फौज में दाखिल होता है (क्षत्रिय), एक

व्यापार करता है (वैश्य) और एक कारखाने में नौकरी करता है (शूद्र)। तो जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। एक कारखाने में अपनी योग्यता और निजी आवश्यकतावश सभी वर्गों के पुरुष स्त्रियां साथ साथ काम करते हैं। सेना में भी सभी वर्गों व धर्मों को मानने वाले साथ साथ रहते और दुश्मन से लड़ते हैं। अस्पताल में, कचहरी में, विद्यालय में सभी वर्णों के लोग साथ साथ देखे जा सकते हैं। कर्म, धंधा, पेशा मनुष्य की आवश्यकता से जुड़ा होता है, उसके जन्मजात स्वभाव और परिस्थितियों से जुड़ा होता है न कि माता पिता के वर्ण से। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हर आदमी ब्राह्मण भी है, क्षत्रिय भी है, वैश्य भी है और शूद्र भी है। कोई ऊंचा नीचा नहीं है। शरीर में सिर अगर सबसे ऊंचा है तो प्रणाम करते समय वह शरीर के सबसे निचले भाग पैर पर झुकता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रद्धा के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए यह अनुभूति कराई कि श्रद्धा के बिना आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं है। श्रद्धा और ज्ञान का एक शिखर है। जीवन में ऐसा समय आता है जब व्यक्ति त्यागी बन जाता है। वस्तुएं अनायास बारी बारी से छूटने लग जाती हैं। यह मनःस्थिति ऐसी है जैसे कमल कीचड़ से ऊपर उठकर तालाब के ऊपरी भाग में इस प्रकार स्थिर हो जाए कि उसके पत्तों पर पड़ी पानी की कोई भी बूंद उस पर न ठहरे। कमल पानी में भीगता नहीं, लिप्त नहीं होता। पानी की बूंदें कमल के पत्तों पर ठहरती हैं, लगती हैं जैसे मोती हों। कमल के पत्तों पर मोटे मोटे मोती ठहरे हुए दिखाई देते हैं। जैसे पानी की बूंदें मोती बनकर कमल के पत्तों पर शोभायमान हो गयीं वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति संसार के मन में त्याग की स्थिति बनाकर वैभव को देखता है। संसार का वैभव हालांकि उसके हाथ में मोती की तरह चमकेगा लेकिन उसके लिए पानी के समान है।

अवधूत दत्तात्रेय सहयाद्री की तलहटी में साधना करते करते राजा यदु के प्रश्नों का उत्तर देते समय अपने गुरुओं की जानकारी देते हुए कहते हैं, "मैंने सृष्टि की हर वस्तु से कुछ न कुछ सीखा है। सबसे पहले मैंने सूर्य को अपना गुरु बनाया। सूरज संसार की हर वस्तु पर अपनी किरणें फेंकता है। कीचड़ पर भी, कमल पर भी। सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों पर। लेकिन सूरज की किरणें अपवित्र नहीं होतीं। सूर्य सदा निर्लिप्त रहता है। इसलिए मैंने अनुभूति की कि संसार में अच्छा भी रहेगा और बुरा भी। संसार मे सुगन्ध भी है, दुर्गन्ध भी। **लेकिन सूर्य की तरह जो संसार में अपने आप को प्रकाशित करता रहे और पवित्र बना रहे वही सबके सिर पर चमका करता है और उससे आँख मिलाने की हिम्मत भी कोई नहीं करता।** सूरज से कोई आँख नहीं मिला पाता। **संसार में अनासक्त होकर जियो जैसे सूरज की किरणें।** इस मनःस्थिति का एक नाम है, "सन्यास योग"। मुक्त हुआ या मोक्ष के पथ पर चलता हुआ व्यक्ति संसार के पदार्थों से अनासक्त होकर, श्रद्धा और ज्ञान का सामंजस्य बैठाता हुआ जिस व्यक्तित्व को धारण करता है, वह सन्यास है।

इसलिये भगवान श्रीकृष्ण ने अठारहवें अध्याय को "मोक्ष सन्यास योग" कहा। इस अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा, "मैं त्याग के तत्व और सन्यास के महत्त्व को जानना चाहता हूँ।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया :

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।।२।।

काम्य कर्मों का त्याग ही सन्यास है। अर्थात् कर्मों के फल की इच्छा का त्याग ही त्याग है। मनुष्य संसार में जो भी कर्म करे उसके फल की इच्छा का त्याग कर दे तो वह त्याग है। श्रीकृष्ण कहते हैं, **काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं** जो काम्य कर्म हैं, इच्छाओं की पूर्ति के लिए हम जो कर्म करते हैं उन कर्मों के फल की कामना का परित्याग करते हुए काम्य कर्मों का भी परित्याग कर देना सन्यास है।

सन्यासी के लिये सांसारिक कर्म करना निषिद्ध है। इसलिये सन्यासी संसार में थोड़ा अलग हटकर चलता है। उसके वस्त्र चिता की अग्नि के रंग के हैं। इसका अर्थ है कि वह अपना सब कुछ जला कर चिता पर बैठा है। उसे अब न कोई मोह है, न किसी से रिश्ता है। रिश्ता है तो सबसे है, नहीं तो किसी से नही। चिता की अग्नि के रंग के वस्त्र धारण कर वह मानो कह रहा है कि वह सब कुछ जला बैठा है, सब कुछ त्याग बैठा है। यज्ञ करते हुए जैसे आखिर में बचे हुए घृत को भी आहुत कर दिया जाता है उसी प्रकार सन्यासी व्यक्ति जीवन में जो कुछ बचा है आखिर में वह सब उठा कर परमात्मा को अर्पित कर दे और कह दे कि अब संसार में मेरा कुछ शेष नहीं है। जो तेरा था तेरे अर्पण है प्रभु, तो यह सन्यासी की स्थिति है। सांसारिक व्यक्ति कहेगा 'मान न मान मैं तेरा मेहमान', लेकिन सन्यासी कहेगा "मान न मान मैं तेरा और तू मेरा।" तू माने या न माने, मैंने तो अपने आपको तुझे अर्पित कर दिया है। तेरी तरफ़ से माना जाऊँ या न माना जाऊँ लेकिन मेरी तरफ़ से तो बात पूरी हो गई। कामनाओं को लेकर जो कर्म किये जाते हैं सन्यासी को उन कर्मों से ऊपर उठ जाना होता है।

व्यक्ति संसार में जो भी कर्म करेगा उसके पीछे कुछ न कुछ कामना तो रहेगी ही। बिना कामना के कोई कर्म करना बहुत मुश्किल है। लेकिन

यदि आपके ख्याल में यह हो कि अपने प्रभु के लिये कर्म कर रहा हूँ, उसी की सेवा में हूँ, उसी की गुलामी में हूँ, अपने लिये कुछ नहीं कर रहा तो बात अलग हो जाती है। **कर्म करते समय इस बात का ध्यान रखिये कि वह प्रभु को पसन्द है या नहीं है ?** भोजन बनाते वक्त गृहणी का पूरा ध्यान इस बात पर रहता है कि वह व्यंजन पति को पसन्द आयेगा या नहीं। कृष्ण के प्रति, प्रभु के प्रति, परमेश्वर के प्रति, सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान के प्रति सम्पूर्ण रूप से अपने आप को समर्पित करते हुए कर्म करना शुरू कीजिए, बदले में कुछ नहीं चाहना। अगर कृष्ण भाव में आप भाव विह्वल होकर कर्म करते हैं तो फिर वह बंधन नहीं है।

राष्ट्र के लिये लड़ना हिंसा नहीं है। वह तो धर्मयुद्ध हो गया, राष्ट्रीय धर्म का पालन करना हो गया। लेकिन यदि व्यक्ति अपने स्वार्थों के लिये आपस में लड़ बैठे, किसी को चोट पहुँचा दे और किसी का खून बहा दे तो फिर वह हिंसा है, फिर उसको बांधकर सज़ा दी जायेगी। राष्ट्र के लिये लड़ने वाला जनता के हृदय पर बैठता है। राष्ट्र की तरफ से उसे पुरस्कार दिया जायेगा, सम्मान दिया जायेगा।

अगर भगवान के लिये कर्म करना शुरू कर दिया तो फिर आपको परमात्मा का वरदान और उसका पुरस्कार मिलेगा और अगर अपने स्वार्थों के लिये दूसरे का स्वार्थ हनन करना शुरू कर दिया, दूसरे को दुःख पहुँचाना शुरू कर दिया तो फिर आप कामनाओं में बंध गये। ऐसे कर्म बंधन में डालने वाले हैं। **समस्त काम्य कर्मों का परित्याग करके जीना सन्यास है।** इस प्रकार की भावना बनाईये कि यह जीवन स्वयं का नहीं है, उसका है जिसने इस जीवन को दिया था। मेरा प्रत्येक कर्म मेरे परमात्मा के लिये है, जब ऐसा सोचना शुरू किया तो नई जिन्दगी शुरू हो गई। सन्यास की ज़िन्दगी, उसकी चेष्टायें, उसका हाव भाव, सब कुछ प्रभु के लिये हो जाते हैं। घर परिवार के लिये उसने जी कर देख लिया। स्वार्थ की नीतियां लेकर स्वयं के लिए जिए लेकिन अब एक नई ज़िन्दगी शुरू की है। अब परमात्मा के लिये जीना है।

जब व्यक्ति परमात्मा के लिये जीयेगा तो जैसे वह पहले अपने

परिवार को देखकर खुश होता था अब विश्व परिवार को देखकर खुश होगा। सब स्थितियां बदलेंगी। वह खिले हुए फूलों में परमात्मा की रंगत को देखेगा। बहती हुई नदियों के प्रवाह में परमात्मा की कलरव सुनेगा। भगवान की व्यवस्था पर अचम्भित होगा। अनुभूति करेगा कि परमात्मा जल भी है, जल का प्रवाह भी और कलरव भी। जल निर्मल रहे इसकी व्यवस्था भी वही करता है। ज्यों ज्यों परमात्मा की अनुभूतियां होती जाएंगी आप यह अनुभव करते जाएंगे कि प्रत्येक कर्म जो आप कर रहे हैं वह परमात्मा के लिए ही कर रहे हैं और परमात्मा के लिए किया कर्म यज्ञ होता है। इस प्रकार आपका सारा जीवन ही परमात्मा का यज्ञ बन जाता है। यज्ञ की आहुति भी परमात्मा है। यज्ञ से उठती सुगन्ध भी वही है। जैसे यज्ञ के अन्दर सब कुछ 'स्वाहा' किया जाता है आप भी अपने को स्वाहा कर रहे हैं। परमात्मा को अर्पित कर रहे हैं। यज्ञ में जैसे **इदन्नमम** कहा जाता है अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं है, तो अब आप भी यही अनुभूति करेंगे कि आपका कुछ नहीं है। पदार्थों से आपका लगाव खत्म हो गया है। लगाव है तो केवल प्रभु के चरणों से, यह अनुभूति आने लगेगी। आप स्वयं परमात्मा की अनुभूति बन जायेंगे। इस अनुभूति का नाम है 'परित्याग', 'सन्यास'।

जब हम दुनिया में आये, होश संभाला तो स्वाभाविक रूप से हर चीज़ को पकड़ कर अपनी तरफ खींचते रहे। बच्चा हर चीज़ को पकड़ेगा और मुँह में डालेगा। आदमी हर चीज़ पर अपना कब्जा जमाना चाहता है। मुट्ठी बन्द करके आया था, इसलिये शुरू से ही हर चीज़ को मुट्ठी में पकड़ने की कोशिश करता है। हर चीज़ को अपना बना लेना चाहता है। लेकिन दुनिया से जाते समय हमारे हाथ में कुछ भी नहीं होता। कैसा भी व्यक्ति हो प्राण निकलते समय हाथ कुछ इस तरह से खिंचते हैं कि उंगलियाँ फैल जाती हैं, हाथ खुल जाते हैं।

व्यक्ति जब तक जीवन जीता है पहनने के वस्त्रों में ऊपर, सामने और बराबर में भी जेबें लगायेगा। अपने सूट में नीचे से लेकर ऊपर तक जेब ही जेब। पेट से लेकर जेब और तिजोरी तक सबको भरने की कोशिश। लेकिन जब दुनिया से जाने लगता है तो उस समय लोग जो वस्त्र देते हैं वह बिना

सिला होता है, उसमें कोई जेब नहीं होती। कफ़न बिना सिला हुआ कपड़ा होता है, यह बताने के लिये कि आदमी कुछ ले नहीं जा सकता। श्वेत वस्त्र डाला जाता है जो शान्ति का प्रतीक है।

जीवन में शांति तभी मिलेगी जब त्याग को महत्त्व दोगे। कामनाओं को लेकर रात दिन भाग दौड़ जब खत्म हो जाये और काम्य कर्मों का परित्याग करने की मनःस्थिति बने तो सन्यास शुरु होगा और सभी प्रकार के कर्मों के फल का त्याग करने वाला व्यक्ति त्यागी होगा। भगवान श्रीकृष्ण यह समझाना चाहते हैं कि मनुष्य के जीवन में जब त्याग करने वाली मनःस्थिति बनती है तो वह मुख मंडल पर और व्यवहार में प्रकट होना चाहिए। राष्ट्र के लिये कोई माँ अपने बच्चे को तिलक लगाकर युद्ध में भेजे तो उस माँ का त्याग पूज़नीय हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा **सर्व कर्म फल त्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।** स्वार्थपूर्ण इच्छाओं के बिना और लाभ की आशा से रहित, परमात्मा के प्रति शरणागति की भावना को ध्यान में रखकर अगर पूजा भी की जाती है तो उस पूजा का स्वरूप सात्विक नहीं रह जाता। व्यक्ति जब सबके कल्याण के लिये कार्य करता है तो उसका स्थान ऊँचा हो जाता है। वह सब की दृष्टि में माननीय हो जाता है। वह परमात्मा की दृष्टि में भी माननीय होगा। परमात्मा की कृपा उस व्यक्ति को मिलती है जो समस्त प्रकार के कर्मफल का परित्याग कर देता है, लेकिन श्री कृष्ण यह भी कहते हैं कि सन्यासी समस्त प्रकार के कर्म यदि छोड़ भी दे तो भी उसे तीन प्रकार के कर्मों को नहीं छोड़ना चाहिए।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।५।।

सन्यासी को धर्म के तीन स्तम्भ यज्ञ, दान और तप को नहीं छोड़ना चाहिए। मनीषियों और ज्ञानियों को भी ये तीन कर्म पवित्र बनाते हैं, शुद्धता देते हैं। इन तीन कर्मों से ज्ञानी ध्यानी भी पवित्र होता है। जो ज्ञानी काम्य कर्मों के साथ ही दान, यज्ञ और तप आदि कर्मों को भी छोड़ चुके हैं उन्हें भी यज्ञ, दान और तप अपनाना चाहिए। सन्यासी समस्त कार्य छोड़ दे तो भी वह यज्ञ नहीं छोड़े, दान और तपस्या न छोड़े।

भी वह यज्ञ नहीं छोड़े, दान और तपस्या न छोड़े।

एक समय ऐसा आया जब भारत देश की स्वतंत्रता के लिये दक्षिण के सन्यासियों ने संघर्ष किया और राष्ट्र यज्ञ में अपने प्राणों की आहुतियां दी। उनका कार्य किसी समाधि से बढ़कर था। महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं को प्रसारित करने के लिये सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा के साथ १७ भिक्षु और १७ सन्यासी लंका की प्रचार यात्रा पर गये। जिस समय उनका बेड़ा पुस्तकों के भार के कारण ज्यादा भारी हो गया और जहाज के डूबने का अंदेशा हो गया तो १७ भिक्षु और १७ सन्यासी एक साथ समुद्र में कूद गये। अपने प्राणों की आहुती देकर जहाज का बोझ हल्का किया। यह कितना बड़ा यज्ञ था। गृहस्थ का त्याग भी साधारण नहीं होता। गृहस्थी में रहते रहते व्यक्ति अनेक प्रकार के स्वार्थों से ऊपर उठकर कार्य करता है। उसकी स्थिति भी कहीं कहीं सन्यासी जैसी हो जाती है।

जीवन के चार पड़ाव हैं। पहला पड़ाव है ब्रह्मचर्य हैं। इस काल में समस्त ऊर्जाओं का संग्रह करना होता है। शरीर के बल को, प्राणों के बल को, मन के बल को, बुद्धि के बल को और आत्मा के बल को संजोना, संवारना, संभालना और अपनी समस्त शक्तियों को विकसित करना होता है। गृहस्थ जीवन आया तो अपने ज्ञान को अनुभव में उतारिए। गृहस्थ से ऊपर उठे तो मोह ममता के दायरे से ऊपर उठ कर तपस्या की। वानप्रस्थ अपनाया। सन्यास में आकर व्यक्ति अपने संग्रह में जो बाकी रह गया था या संसार से रिश्ता रह गया था उसे भी आहुति में डाल देता है।

भारत में परम्परा रही है कि बड़े से बड़ा राजा भी ऐसा करते रहे। राजपाट छोड़ा अपने बेटों को राज्य दिया तपस्या करने के लिये निकल पड़े। सन्यासी का जीवन जीने लगे। कालिदास ने 'रघुवंशम्' लिखते समय वर्णन किया है कि रघुवंशियों के लिये स्वर्ग से विमान उतरकर के आया करते थे क्योंकि वे जवानी में राज्य करते थे, तो बाद में सब कुछ त्यागकर वनों में रह कर साधना तपस्या करते हुए अपनी समस्त ऊर्जा शक्ति को परमात्मा में लगाते थे। संसार की विषय वासनाओं को समाधि में बैठे बैठे जलाकर अंतःकरण को शुद्ध करते थे। परमात्मा उनको लेने के लिये स्वर्ग

से रथ भेजते थे। वेदों में कहा है कि त्याग की स्थिति इस तरह से आ जाये जैसे **उर्वारूकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।** डाल से पका हुआ खरबूजा अपने आप पककर अलग हो जाता है, छुड़ाना नहीं पड़ता, स्वाभाविक रूप से छूट जाता है। कच्चा हो तो तोड़े से भी न टूटे। संसार में रहते हुए गृहस्थ के कार्य पूरे करने हैं तो कैसी भी समस्या क्यों न आये लेकिन घर छोड़कर भागे नहीं। जो लोग घर गृहस्थी से दुःखी होकर सन्यास की तरफ भागते हैं वह सन्यास पूरा सन्यास नहीं है। पत्नी और पति की लड़ाई हुई तो वैराग्य सूझ गया। ऐसे व्यक्ति का सन्यास सन्यास नहीं है। उसका त्याग त्याग नहीं है। सम्पूर्ण रूप से त्याग तभी संभव है जब व्यक्ति ज्ञान वैराग्य में पक जाये।

यज्ञों की परम्परा हमारे देश में प्राचीन काल से रही है और यज्ञ के माध्यम से हम लोग वायु प्रदूषण का उपचार भी करते हैं। प्रदूषण को मिटाने के साथ साथ जल का प्रदूषण भी मिटता है। वायु शुद्ध होती है तो जल शुद्ध होता है। जल शुद्धि हो तो मन्त्रों की ध्वनियों के माध्यम से ध्वनि प्रदूषण भी नष्ट किया जाता है। किसान लोग कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये आधुनिक कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करने लगे हैं। अब पता लग रहा है कि इन कीटनाशक रसायनों का असर व्यक्ति की सेहत पर पड़ने लगा है। आँखे कमजोर होने लगी हैं, स्मरण शक्ति पर असर आने लगा है और श्वास संबंधी बीमारियाँ दमा, रक्तचाप आदि कीटनाशकों के कारण अधिक फैल गई हैं, गाँव तक पहुँच गई हैं। अब तक हमारे किसान लोग मानते रहे हैं कि यदि नीम की पत्तियों को उबालकर उसके पानी का छिड़काव खेत में कर दें तो फिर किसी कीटनाशक के छिड़काव की आवश्यकता नहीं है। नीम से फसलों और सेहत को नुकसान पहुँचाने वाले कीटाणु नष्ट हो जायेंगे लेकिन स्वास्थ्यवर्द्धक कीटाणु हैं वह नष्ट नहीं होंगे।

कीटनाशक दवाइयों से मित्र और अमित्र कीटाणु दोनों नष्ट हो जाते हैं। प्रकृति का अपना नियम है। जहरीली चीज़ों को नष्ट करने के लिये भगवान ने कुछ खास जीव जन्तु बनाये हैं मनुष्य शरीर से जो दूषित वायु निकलती है वह पेड़ पौधों का भोजन है। पेड़ पौधे जो आक्सीजन छोड़ते

हैं वह मनुष्य का भोजन है। आपके द्वारा जो भी कुछ ज़मीन में कूड़ा करकट डाला जाता है भूमि में पड़कर वह सब पेड़ पौधों की खाद बनती है। पेड़ पौधों के माध्यम से जो कुछ मिलता है खाद्यान्न, सब्जी, फल वह आपका भोजन बनता है। एक क्रम बना हुआ है। जो जल आप प्रदूषित करते हैं वह जल जैसे ही जमीन पर गिरता है पेड़ पौधों की जड़ों के माध्यम से कई परतों से छनता हुआ जमीन में जाता है। ये परतें जल को इतना शुद्ध बनाकर नीचे ले जाती हैं कि वह जल सात्विक और निर्मल हो जाता है। प्रकृति अपने आप धरती की परतों से पानी को फिल्टर करती है। कुएं से इसी शुद्ध जल को खींचकर आप पीते हैं। यह प्रकृति का एक यज्ञ है जो निरन्तर चल रहा है। यह शुद्धिकरण का यज्ञ है। दूसरे के उपकार के कार्य का यही यज्ञ जीवन में निरन्तर होना चाहिए। अगर किसी से लेते हो तो उसे देने की कामना रखो। किसी ने तुम्हारा भला किया तो अनेक गुना बढ़ाकर दूसरों का भला करने की कामना रखो।

एक व्यक्ति गरीब के पास गया और जाकर कहा कि तुम्हारे पास बुद्धि है, बल है, काम कर सकते हो मैं तुम्हें साधन देता हूँ काम करो। लेकिन एक शर्त पर। जब तुम पाँव पर खड़े हो जाओ तो अपने जैसे पाँच गरीबों को स्वरोजगारी दिखाओगे। फिर उनको भी कहो कि तुम लोग भी आगे एक एक व्यक्ति को कहना कि पाँच पाँच को तुमने ऊपर उठाना है। यह दान भी हुआ और यज्ञ भी। एक क्रम चल पड़ा। अगर एक एक व्यक्ति इस तरह का संकल्प ले कर उस पर अमल करे तो संसार के किसी कोने में गरीबी नहीं रहेगी, अभाव नहीं रहेगा। ऐसा कर्म करने वाला व्यक्ति वेष कुछ भी धारण करता हो वह सन्यासी है, वह सन्त है, वह ज्ञानी है और ध्यानी है। वही त्यागी है क्योंकि बदले में उसने कामना भी की तो दूसरों को ऊँचा उठाने के लिए। अपने लिए कुछ नहीं चाहता। वह चाहता है **सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, दुनिया में सब सुखी हों, सब नीरोग हों। सब एक दूसरे का भला देखें और भला सोचें।**

हम सब एक दूसरे का बुरा देख रहे हैं और बुरा सोच रहे हैं क्योंकि हमारे अन्दर ईर्ष्या बसी हुई है। ईर्ष्यालु मन किसी का भला नहीं देखता।

जिससे भी ईर्ष्या हुई, भले ही भाई हो, पहले दोस्त रहा हो, सहपाठी रहा हो अब उसका बुरा करना चाहते हैं क्योंकि मन में ईर्ष्या बसी है। हम एक दूसरे से बढ़कर एक दूसरे की, सबकी, सारे विश्व की मंगलकामना की ईर्ष्या को मन में क्यों नहीं बसाते? क्योंकि **भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाय** कानों से भद्र सुनने की कामना है, भद्र बोलने की कामना है। **अच्छा सुनेंगे, अच्छा बोलेंगे, अच्छा विचारेंगे तो किसी के लिये भी अमंगल की कामना नहीं होगी।** ऐसे जीवन को यज्ञमय जीवन कहेंगे। यह प्रक्रिया याज्ञिक है, यज्ञ से जुड़ी हुई है। अन्त में परोपकार और सब के भले की कामना है। ऐसे व्यक्ति की आँखों में एक बगीचा बसा होता है। वह जहाँ जाता है वहीं फूल खिलता है। मतलब परस्त व्यक्ति जहाँ जायेगा वहीं कांटे बोएगा। आप याज्ञिक बन हर जगह फूल बिखेरो।

हम लिये फिरते हैं आँखों में चमन ऐ बागबाँ।
जिस तरफ भी उठी निगाहें शौक गुलिस्ताँ हो गया।।

यदि आपकी कामना हर तरफ फूल बिखेरने की है तो आप जहाँ भी जायेंगे वहाँ प्रसन्नता प्रफुल्लता दिखाई देगी। इसलिये सन्यासी के लिए भी कहते हैं कि यज्ञ नहीं छोड़ना, दान नहीं छोड़ना, तपस्या नहीं छोड़ना।

तप एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। समाज के कल्याण के लिये जो कष्ट सहता है, आने वाले युगों का कल्याण हो सके आज कष्ट सहना कष्ट सह लिये जायें ऐसा कार्य जो करता है वह व्यक्ति तप कर रहा है। तप का फल साधारण नहीं होता। तप आपको, आपकी आत्मा को निखारता है। आत्मा को बलवान बनाता है। सहनशक्ति को बढ़ाता है। **अच्छे कार्यों के लिये कष्ट सहना तप है।** तप परिवार से शुरू करें बुद्धि को बलवान बनाने के लिए विद्यार्जन तप है। गृहस्थ में रहकर संतान को योग्य बनाने के लिये, परिवार को जोड़ने के लिये आप मेहनत करते हों कष्ट सहते हों, वह भी अपने आप में तप है। लेकिन वह तप विशेष है जिसमें व्यक्ति सबके कल्याण की भावना से कष्ट सहता है। अपनी आग में तो हर कोई जल लेता है लेकिन पराई आग में पड़कर जो कष्ट सहे और मुस्कुराता रहे वह सच्चा तपस्वी है। अपने दुःख को तो सहना ही पड़ेगा, पर दूसरे के दुःख को भी

फर्ज़ समझकर अपने पर ओढ़ लेना तप है। संसार में सभी महापुरुषों ने यही तो किया। सुख में रह सकते थे लेकिन नहीं रहे। वेद व्यास ऋषि ने भगवान से यही तो मांगा

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुर्नभवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम आरतिनाशनम्।।

स्वर्ग नहीं चाहिये, राज्य नहीं चाहिये, मोक्ष नहीं चाहिये। जितने भी दुःखी लोग हैं उन सबका दुःख मिटाने की शक्ति मुझे दो। मैं उनका दुःख हरण कर सकूँ। **दूसरे का दुःख दूर करने के लिये स्वयं भी तो दुःखी होना पड़ेगा, यह तप है।** आप सोच कर देखें कि क्या आपने कोई तप तपा है, कोई यज्ञ किया है, कोई दान किया है? जितना दान और तप किया है उसका हिसाब लगाकर देखिये कि आपने दूसरों के कल्याण के लिए कोई तप तपा है या नहीं? आप याज्ञिक हुए हैं या नहीं? लेकिन उसे तप नहीं कहा जायेगा। समाज की रक्षा के लिए चोर को पकड़ कर कोई कष्ट सहे तो वह जरूर तप हो जायेगा।

संसार में तीन लोग हैं जिनकी संगति करनी चाहिए, **ददता अधन्ता जानता संगमेमहि** दानी लोग, ज्ञानी लोग और जो अन्याय से समाज की रक्षा करते हैं। अहिंसक और बलिष्ठ लोगों की संगति करो, क्योंकि उनके संग रहने से आप का जीवन भी सात्विक रंग पकड़ेगा। दानियों या अहिंसक क्षत्रियों का संग करना जो अन्याय के विरूद्ध खड़े हुए और न्याय के लिये लड़े। तुम्हारा चित्त संघर्षशील है। यदि तुम सबको न्याय दिलाना चाहते हो, न्याय अपने लिये भी और संसार के लिये भी तो ऐसी कामना कामना नहीं है।

बहुत सारे यज्ञ भी कामनाओं की पूर्ति के लिये किये जाते हैं। कोई धन की कामना से, कोई पुत्र की कामना से जिसे पुत्रयेष्टि यज्ञ कहते हैं, या स्वर्गकामोयज्ञेत। किसी भी प्रकार की कामना की पूर्ति के लिए किया गया यज्ञ शुद्ध और सात्विक यज्ञ नहीं है। जिस यज्ञ में सबके लिये मंगलकामना हो, वह यज्ञ यज्ञ है। प्राचीन काल में यज्ञों की परिपाटी थी। ऋषि मुनि यज्ञ करते ही रहते थे। माना जाता था कि कुछ भी सामग्री न हो तो भी यज्ञ करो। आप कुछ नहीं कर सकते तो केवल घी से यज्ञ कर

सकते हो, दूध से कर सकते हो, यह भी नहीं मिले तो सिर्फ समिधाओं से कर सकते हो। यह भी नहीं मिले तो पानी से करो। अब पानी से कैसे यज्ञ होगा। **पानी लेकर आप पौधों में डालते जायें और उसी तरह से मंत्र बोलते जायें तो आपकी आहुति जैसे अग्नि में पड़कर एक विशेष कार्य करती है उसी तरह से पौधों में पड़ी हुई जल की बूंदे आहुति का कार्य करेंगी।** अगर आपके पास जल भी नहीं है तो याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं कि हृदय की वेदी बनाकर, उसमें ज्ञान की अग्नि जलाना और श्रद्धा की आहुतियां देना। हृदय से निकली प्रार्थना यज्ञ बन जायेगी। प्रभु से कहना मैंने जो जाना, मैंने जो पाया, जो कुछ अब तक इकट्ठा किया वह तुम्हें अर्पित है। मेरे परमात्मा मुझ पर एक कृपा करना, तुम पर मेरी श्रद्धा बनी रहे। तुम पर मेरा विश्वास टिके। मेरा जीवन यज्ञमय बन जाये।

ज्ञान हो तो उसमें श्रद्धा की आहुति जरूर देना। ज्ञान को श्रद्धा की आहुति दी तो वह ज्ञान श्रद्धा से जुड़ जाएगा। उस ज्ञान को फिर अपनाने की, अपने जीवन में ढालने की, इच्छा होगी। फिर वह यज्ञ इतना सुन्दर यज्ञ बनेगा कि आपका जीवन ही यज्ञमय हो जायेगा। जहाँ आप और यज्ञ करते हो तो कभी कभी एकान्त में बैठकर यह यज्ञ भी किया करें। चिन्तन करें कि जीवन से मैंने क्या सीखा? जीवन में मैंने क्या पढ़ा? जीवन में मैंने क्या सुना? वह सब आपका ज्ञान है। उसे हृदय में रखना, दिमाग में नहीं। हृदय की वेदी बनाकर श्रद्धा की सामग्री से उसमें आहुति देना। ज्ञान की अग्नि जलाओ, श्रद्धा की आहुतियाँ दो तो सुगन्ध उठेगी। वह सत्य की सुगन्ध होगी। यही फिर आपकी भक्ति बनेगा। **एकान्त में कभी कभी बैठकर अपने जाने हुए, सुने हुए, पढ़े हुए और तजुर्बे को विकसित किया करो। अपने अर्जित ज्ञान के प्रति अगर आपको ही श्रद्धा नहीं है तो वह ज्ञान बेकार का है।** उसके प्रति श्रद्धा जगाओ; श्रद्धा जाग गई फिर तो वह ज्ञान आपके जीवन में उतर आयेगा।

प्राय: बहुत पढ़े लिखे लोगों के जीवन में भी उनका ज्ञान नहीं झलकता। किसी ने स्वास्थ्य विज्ञान पर बहुत किताबें पढ़ीं और डाक्टर बन गया लेकिन खुद बीमार रहता है क्योंकि वह अपने बनाए नियमों का पालन

नहीं करता। रोज नियम तोड़ेगा, चटपटी चीजें खायेगा तो सेहत बिगड़ेगी ही। उसने ज्ञान की अग्नि तो जरूर जलाई परन्तु उसमें श्रद्धा की आहुति नहीं डाली। यदि उसे अपने ज्ञान पर श्रद्धा होती तो सबसे पहले खुद उस पर आचरण करता। **डाक्टर को देखते ही महसूस होने लग जाना चाहिए कि व्यक्ति सेहत का जीता जागता पुतला है। उसके पास बैठते ही सेहत ठीक होती लगे। रोगी पर हाथ रखा तो रोगी को चैन मिलना शुरु हो जाए।** ज्ञान की अग्नि में श्रद्धा की आहुति जब तक नहीं डालोगे तब तक यज्ञ पूरा नहीं होगा। **ज्यादातर लोग सूचनाओं और जानकारी का संग्रह कर ज्ञानी होने का ढोंग करने लग जाते हैं।** अगर इस देश में प्रतिस्पर्धा के कारण किसी की नहीं चल पायी क्योंकि यहाँ एक से एक ज्ञानी बैठे हुए हैं, तो वह विदेश में रंग जमाने की कोशिश करता है। विदेश में गए तो जो भी अधकचरा ज्ञान है उसको दूसरी भाषा में सुना सुना कर कह दिया कि हम भारत का ज्ञान दे रहे हैं। यह ज्ञानी होने का ढोंग है। विवेकानन्द गये, रामतीर्थ गये उन्होंने ज्ञान की अग्नि में श्रद्धा की आहुतियाँ दीं थी, उनके व्यक्तित्व और वाणी से सत्य की सुगन्ध फैली। वे सत्य का सहारा लेकर जहाँ गए देश में या विदेश में सबको भारतीय संस्कृति के रंग में रंगते चले गये।

एतान्यपि तु कर्माणि संग त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।६।।

जब यज्ञ, दान और तप करना तो कर्मफल का भाव त्याग कर करना। अगर धर्मशाला इस नीयत से बनवाते हो कि तुम समाज पर एहसान कर रहे हो और तुम्हारे नाम का बोर्ड लगना चाहिए, और सबको तुम्हारे आने पर खड़ा हो जाना चाहिए क्योंकि तुम बड़े भारी दाता आये हो जिन्होंने धर्मशाला बनवाई है, तुम्हारे गले में फूलों की मालाएं पड़नी चाहिएं, लोग स्टेज पर बैठाकर माइक पर तुम्हारा नाम बोलकर बताएं कि दाता आए हैं जिन्होंने इतनी बड़ी धर्मशाला बनवाई है, तो फिर धर्मशाला बनवाने का उतना ही फल होगा जितना आपने वहां सुन लिया। परन्तु यदि फल की कामना ही नहीं हो, सब कुछ बनाने के बाद भी जो सबसे पीछे बैठा रहे तो

फिर आपका दिया हुआ वह दान आपको स्वर्ग में परमात्मा तक ले जाने वाला रथ बन जाएगा।

स्वामी दर्शनानन्द ज्वालापुर हरिद्वार में एक संस्कृत विद्यालय गुरुकुल की स्थापना करना चाहते थे। गंगा नहर के साथ लगी गुरुकुल कांगडी के पीछे की भूमि उनको श्रेष्ठ लगी। शराबी कबाबी सीताराम बाबू जो उस समय पुलिस में एक बहुत बड़े अधिकारी थे नाच मुजरा देखकर रात को लौटते थे। एक बार रात को तीन चार बजे के लगभग घोड़े पर बैठे हुए आ रहे थे तो देखते हैं कि स्वामी दर्शनानन्द (जिनके लिए वह सवेरा था) उनके खेत में से गाजर उखाड़ कर पानी में धोकर खा रहे हैं। सीताराम बाबू ने घोड़ा रोककर कहा, "बाबा! सवेरे सवेरे भगवान का नाम लेते हैं, आप गाजर खा रहे हैं। लगता है आप कई दिनों से भूखे हो। अगर कृपा हो तो मेरे घर चलिये मैं आपको भोजन कराना चाहता हूँ।" स्वामी जी ने कहा कि तुम जैसे शराबी कबाबी का भोजन ग्रहण करके क्या अपनी बुद्धि बिगाडूँ? सीताराम बाबू हँसे और कहने लगे कि, "मैं तो जैसा हूँ वैसा हूँ पर एक बात बताऊँ? मेरे घर में तपस्या करने वाली एक देवी है। मैं वैसे तो उसे कभी खुश नहीं कर पाया पर आप साथ चलोगे तो वह खुश हो जायेगी। उस भूमि को प्रणाम करेगी जिसपर आपके चरण पड़ेंगे।"

स्वामी जी साथ हो लिए। उस गृहणी की तो जिन्दगी ही सफल हो गयी। शायद भाग्य बदल गए हैं। पतिदेव साधु महात्मा को लेकर आए हैं। उसने मन ही मन भगवान से प्रार्थना की कि उसके पति की ऐसी भावना बनी रहे। सीताराम बाबू ने भी अर्जे की, बताएं आपकी क्या सेवा करें? स्वामी जी ने कहा, "पुश्तों को सुधारने का कुछ कार्य कर लो। नहर के निकट आपकी वह जमीन जिसकी गाजरें मैंने सुबह सवेरे खाई थीं अगर उस पर संस्कृति और धर्म का संदेश देने वाला एक संस्कृत विद्यालय बन जाए तो बड़ा शुभ हो। अगर वह भूमि तुम विद्यार्थियों के लिये दे दो, तब तो मैं तुम्हारे घर भोजन ग्रहण कर संतोष अनुभव करूंगा।" सीता राम बाबू बोले, "वह जमीन मेरी नहीं है इस भागवान (पत्नी) की हैं क्योंकि वह जमीन मैंने इसके नाम कर दी है। यह देना चाहे तो दे दे, मेरा क्या जाता है।"

गृहिणी हाथ जोड़ती आगे आई और कहने लगी कि सारी जमीन तो गलत कार्यों में उड़ती जा रही है। यह थोड़ी सी जमीन अच्छे कार्य में लग जाये तो इससे बढ़िया और कुछ हो ही नहीं सकता। आप इसे ले लीजिये और जो करना चाहें कीजिये। उसी जमीन पर एक विद्यालय बना, गुरुकुल विद्यालय। अपने समय के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू वहाँ के एक समारोह में पहुँचे थे। वातावरण देखा, विद्यार्थियों को देखा और प्रसन्न हुए। उस भूमि पर बने विद्यालय से देश के बहुत सारे क्रांतिकारी ओर देशभक्त पैदा हुए। समारोह में लोगों ने सब से पीछे बैठे पति पत्नी की ओर इशारा किया जिनकी जमीन पर गुरुकुल महाविद्यालय बना था। गुरुकुल में विद्यार्थी जब भोजन करें तो विद्यार्थियों को भोजन कराने के बाद जो भोजन बचता था उसमें से थोड़ा भोजन लेकर बाहर बैठकर खाते थे। आते जाते लोग उनके चरणों की धूल माथे से लगा कर धन्य होते थे।

जीवन में अंधेरा बहुत ज्यादा है लेकिन एक ओर उजाला भी इतना है कि उस उजाले से आँख भी न मिलाई जा सके। एक सेठ है जो दान देकर पत्थर पर नाम लिखवा कर, अकड़ कर खड़ा है, और एक वह है जो सबकुछ करके भी सबसे पीछे जाकर बैठ गया। जताया नहीं कि इसने कुछ किया। यही जीवन की ऊँचाई है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कर्म करना, परोपकार करना लेकिन कार्य को करने के बाद फल की कामना नहीं रखना, नाम की कामना भी नहीं रखना। अपने कर्म को पूरी तरह से विस्मृत कर देना, लेकिन कर्म करते जाना।

भगवान श्रीकृष्ण ने काम्य कर्मों के परित्याग को सन्यास कहा है। कर्मों के फल का त्याग ही त्याग माना गया। जीवन में त्याग पहले आता है और सन्यास बाद में। सन्यास जीवन की वह उपलब्धि है जब इस संसार के समस्त पदार्थों के मोह को, संग्रह करने की प्रवृत्ति को, संसार में आसक्ति को तथा मोह को त्याग कर व्यक्ति परम वैराग्य में समाहित होता है। फिर न वह किसी के पक्ष में होता है न किसी के विपक्ष में। उसे फिर न किसी हानि से दुःख होता है न लाभ से प्रसन्नता। जो दोनों के बीच स्थित हो गया, द्वन्दों के बीच स्थिर हो गया वह आनन्दित हो गया। यद्यपि जब तक

देह रहेगी, तो शरीर में अनुभूतियां होंगी, गर्मी, सर्दी लगेगी। अनुकूल और प्रतिकूल संवेदनायें प्रभावित करेंगी। लेकिन ज्ञान, अभ्यास और वैराग्य भाव व्यक्ति को इतना ऊँचा उठा देते हैं कि उस पर इन द्वन्द्वों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सन्यासी समस्त कर्म और क्रियाओं से रहित होकर जीता है लेकिन फिर भी उसके लिए कुछ विशिष्ट कर्त्तव्य करने के निर्देश हैं। उसे याज्ञिक कर्त्तव्य करने हैं, तप करना है। अपने जीवन से वह विश्व तथा मानवता को जो भी प्रदान कर सकता है उसे देना चाहिए। लेकिन संसार में जीना उसे निर्लिप्त भाव से है। जीवन के इस अंतिम पड़ाव (सन्यास) में पहुँचकर व्यक्ति इतनी ऊँचाई को छू लेता है कि कोई स्पर्धा नहीं रहती। देखा जाए तो इच्छायें मनुष्य को लगातार नचाती हैं। कामनायें व्यक्ति को संसार में दौड़ाती हैं। संसार के पदार्थों का संग्रह करने के लिये व्यक्ति उनके पीछे दौड़ता है। लेकिन व्यक्ति को ऐसी स्थिति लानी है कि वह तो चल पड़े प्रकाश की ओर और छाया उसके पीछे आये। समृद्धि उसके पीछे पीछे भागे, और उसे इन सबकी परवाह न हो।

कबीर के सामने काशी नरेश ने हीरे जवाहरात से भरा एक थाल प्रस्तुत किया जिसे कबीर ने देखा अनदेखा कर दिया! राजा यह देखकर हैरान हुए कि जिसकी झोपड़ी में कोई साधन है ही नहीं, वह धन दौलत को ठुकरा रहा है। उस राजा की समझ में बात नहीं आई लेकिन कबीर ने अपनी मस्ती में भजन गाना शुरू किया **माया महा ठगनी हम जानी।** माया को हमने समझ लिया कि यह बहुत बड़ी ठगनी है। फिर उन्होंने गीत गाया, **“ठगनी क्या नैना झमकावे, तेरे हाथ कबीर न आवे”** कि तू चाहे कितने भी नैना मटकाए कबीर तेरे हाथ में आने वाला नहीं है। तूने संसार को बांधा लेकिन मुझे नहीं बांध सकती। इसलिये कबीर ने यह कह दिया :

साधु गांठ न बाँधते, उदर समाता लेय।
आगे पीछे हरि हैं जब मांगे तब देय।।

यानि साधु गांठ में बांधकर नहीं रखता, जितना पेट में समाता है उतना लेता है। उसे पता है कि उसके आगे पीछे परमात्मा है जब भी वह

माँगेगा तब ही वह दे देगा। एक साधु वन में बैठकर साधना में मस्त होकर परमात्मा के प्रेम में गीत गाते थे। परमात्मा की महिमा का गान करते हुये अभयता अनुभव करते थे। एक दिन उनका शिष्य शहर से किसी से दान में मिले सोने का कीमती हार झोली में डाल कर लाया था। सांध्य बेला में गुरु ने कहा "आओ, परमात्मा के गीत गाएं। पूर्णिमा का चन्द्र निकलने को है। प्रकृति शांत हो गई है। आओ अब वन के इस आनन्ददायक प्रागंण में बैठकर भगवान के गीत गायें।" लेकिन शिष्य को घबराहट हो रही थी। वह कहता है "महाराज! क्या वन में ही बैठे रहेंगे? शहर में नहीं चलेंगे? मुझे तो यहां डर लग रहा है।" गुरु ने कहा "यहां डरने की तो कोई बात नहीं है। आंखे बंद करो और ध्यान करो।" शिष्य आंखे बंद करता है तो उसे ऐसा लगता है जैसे कोई उससे वह सोने का हार छीनने के लिये आ रहा है। गुरु आंखे बंद करके ध्यान में डूब गये। शिष्य ने गुरु को हिलाया, "गुरुदेव! लगता है कि कोई हमें लूटने आ रहा है। मुझे डर लग रहा है।" गुरु जी ने पूछा, "क्या तेरे पास कोई ऐसी चीज़ है जिसे कोई लूटना चाहेगा?" शिष्य इंकार करता है। लेकिन महाराज ने कहा, "नहीं, तेरी झोली में ज़रूर कोई चीज़ है जो तेरे अंदर डर पैदा कर रही है।" गुरु ने उसकी झोली पकड़ी और झोली में जो सोने का हार था उसे उठाकर पानी में फेंक दिया और शिष्य से बोले, "अब डर नहीं लगेगा। आंखे बंद कर और भगवान में ध्यान लगा।"

आप जितना संग्रह करेंगे उतना संसार के मोह में बंधेंगे। संग्रह करते करते ज़िन्दगी बीत जाती है। इससे मोह बढ़ता जाता है जो व्यक्ति को संसार में बांधता है। बाद में उसे छोडना मुश्किल हो जाता है। फिर संग्रह के भोग का लालच आ जाता है। आप सोचेंगे अभी भोग नहीं पाया, पूरा सुख नहीं उठा पाया। लेकिन जो अपने संग्रह की उपेक्षा कर परमात्मा के आनन्द में डूब जाता है उसकी स्थिति विशिष्ट होती है। वैराग्य जब भी जाग जाये तभी मनोभाव अलग हो जाते हैं।

अकबर के दरबार में वलीराम दीवान था। एक दिन उसने तीन चार बार बादशाह के हुजूर में कोर्निश की, सिर झुका झुकाकर सलाम किया, लेकिन बादशाह ने देखा ही नहीं। वे काम में व्यस्त थे। वलीराम सोचने

लगा कि उसने इतनी देर तक बादशाह के सामने बन्दगी की और उन्होंने देखा भी नहीं। अगर इतनी देर वलीराम दुनिया के मालिक के सामने सलाम करता और उसकी नजर पड़ जाती तो उसका सदा के लिये कल्याण हो जाता। अब बादशाह के चक्कर को छोड़ो। **जीवन में जब ऐसी कोई घटना हो जाये जो झटका देकर जगा दे तो वैराग्य जागता है। सब कुछ छोड़ने की इच्छा हो जाती है। त्याग की भावना पहले आती है, सन्यास बाद में।** वलीराम सब कुछ छोड़कर चल दिया। सब कुछ त्याग दिया उसने। अपनी सारी चीज़ें गरीबों में बांट दीं। यमुना के तट पर एक पेड़ की छाया में अपनी टांग के ऊपर टांग रखकर लेट गया और आँखे बंद कर लीं। वलीराम मन ही मन कहता है कि ऐसा सुकून और ऐसा आराम आज तक नहीं मिला। हर समय घबराहट रहती थी कि बादशाह रूठ न जायें। अब किसी को मनाने की फ़िक्र नहीं है। अब किसी के पीछे भागने की ज़रूरत नहीं है।

पेट भरना इतनी बड़ी बात नहीं है, पर मन की वासनायें भरती ही नहीं हैं। पेट इतना बड़ा गड्ढा नहीं है जितना बड़ा गड्ढा मन है। आज वलीराम का मन संतुष्ट हो गया था। अब उसे कुछ नहीं चाहिये था। इधर बादशाह को पता लगा कि वलीराम आया था पर हमने उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया इसलिये चला गया और यह भी पता लगा कि वह अपना सब कुछ दान कर वैरागी हो गया है। सब त्याग कर चला गया है। बादशाह ने सोचा कि वलीराम काम का आदमी है, ऐसे आदमी को हाथ से जाने नहीं देना चाहिये; यह सोचकर वे हाथी पर बैठकर वहां गए जहां वलीराम लेटा हुआ था। आवाज़ दी "वलीराम हम आये हैं"। वलीराम आँखें बंद करके लेटा रहा, ध्यान नहीं दिया। बादशाह हाथी से नीचे उतर कर आये और बोले "यह इस तरह से टांग पर टांग रखकर लेटना कब से सीख लिया? पूरे हाथ फैलाकर लेटा पड़ा है। शिष्टाचार भूल गया? यह सब कब से सीख लिया?" वलीराम आँखे बंद किए किए बोला, "जब से हाथ फैलाना, हाथ पसारना छोड़ दिया तब से टांग पर टांग रखकर आराम से लेटना आ गया। कितनी बार आपके आगे हाथ फैलाकर खड़ा होना पड़ता था। आज

से हाथ फैलाने की आदत छोड़ दी, अब पांव फैलाकर सोने का समय आ गया है। अब जीवन में आनन्द आ गया है। वैराग्य जाग गया है, संसार की कामनाओं को त्याग दिया है।"

वैराग्य बोध के साथ साथ अन्दर मस्ती आ जाती है। यह मस्ती बड़ी विचित्र होती है। राजा भर्तृहरि राजपाट छोड़ साधु होकर जाने लगे तो गोपीचन्द उनके साथ हो लिए। दोनो परमात्मा का आनन्द लूटते पेड़ के नीचे भक्ति में बैठे जंगल में आनन्द मना रहे थे। पास से गुजरते हुए लोगों ने आपस में इशारे से कहा कि यह तो राजा भर्तृहरि लगते हैं और वह जो उनके साथ बैठा हुआ है वह उनका भांजा गोपीचन्द हो सकता है। धीरे धीरे बस्ती वाले सब इकट्ठा हो गये। आपस में बातें करने लगे। कोई कहता वे राजा और उनका भांजा हैं और कोई कहता नहीं हैं। अब राजा भर्तृहरि ने गोपीचन्द से कहा, "तुमने सुनी इनकी बातें? यह हमको राजा कह रहे हैं। **हमारी आत्मा मनुष्य के चोले में आकर कभी राजा बनी, कभी रंक बनी, कभी उसने भिखारियों का रूप धारण किया। कभी अत्याचारी तो कभी ज्ञानी का रूप धारण किया। न हम ज्ञानी हैं न अज्ञानी।** परमतत्व का आनन्द लूटने वाले हैं। लेकिन संसार के सामने नाटक करना पड़ेगा नहीं तो संसार हमें नचाएगा।" अब दोनों नाटक करने बैठे। झोली में पड़ी सूखी रोटियों को बाहर निकाला और झगड़ा करने लगे। देखने वालों ने उन्हें कहते सुना, "तू बड़ा गलत आदमी है। कल मेरी सारी रोटियां खा गया। आज यह रोटियां मै खाऊंगा।" गांव के लोग यह देखकर कहते हैं कि जो सूखी रोटियों के टुकड़ों के लिये लड़ रहे हों वह बादशाह नहीं हो सकते। ये तो कोई साधारण भिखारी हैं। तब वे लोग वहां से चले गये। जैसे ही वे लोग गये, ये दोनों बहुत हँसे। अच्छा हुआ बला टल गई। आए थे दुनिया का मान सम्मान देने, संसार में बांधने। उनको हमसे घृणा हो गई, बहुत अच्छा हुआ। **हमें संसार का प्यार और मान नहीं चाहिये। हमें केवल ऊपर वाले का मान और प्यार चाहिये। उसी को मनाना है।**

कुछ लोग साधुता में शरीर पर राख रगड़ रगड़ कर यह समझाते हैं कि शरीर आखिर में राख होना है। हम मान लेते हैं इस बात को कि शरीर

को राख होना है, लेकिन शरीर के जीते जी उस पर राख मलने में क्या शोभा है? शरीर के राख में मिलने के बाद जो रह जायेगा, जिसको आग नहीं जलायेगी, हवा नहीं सुखायेगी पानी नहीं भिगोएगा, हमने तो उसी के लिये काम करना है और वह है हमारा आत्मस्वरूप, जिसका संबंध परमात्मा से है। उस आत्मस्वरूप को परमात्मा की ओर ले चलना है। यह ज्ञानी, साधु, सन्यासी संसार के पदार्थों और रिश्तों से ऊपर उठकर जीते हैं। उनका मूल भाव त्याग होता है जो जीवन का अंतिम पड़ाव है।

आयु का वह चरण जब शरीर शिथिल होने लगता है, रिश्ते ढीले पड़ने लगते हैं तब संसार के लोग अपने आप दूर हटने लगते हैं, बूढ़ों के साथ न कोई बैठना चाहता है, न बात करना, क्योंकि उनके शरीर को देखकर विकर्षण पैदा होता है आकर्षण नहीं। वह कितना भी शुद्धि का ख्याल रखें, लेकिन फिर भी पूर्ण शुद्धि नहीं रहती। **शरीर जब पूर्ण रूप से शिथिल है, मुख में दांत नहीं हैं, आँखें देख नहीं पातीं, कानों से ठीक से सुनाई नहीं पड़ता, ठीक से चला भी नहीं जाता तो यह जीवन का अंतिम पड़ाव है। यह जीवन का वह समय है जब सारा संसार विपरीत हो जाता है, आपकी तरफ पीठ कर लेता है।** लेकिन मन की खराब आदतें पीछा नहीं छोड़तीं। संसार के प्रति अभी भी आसक्ति जागती है। ऐसे समय में व्यक्ति को बीती बातें भी याद आती हैं। उसे नहीं लगता कि इतना समय बीत चुका है। उसे तो यही लगता है कि अभी भी मकान दुकान में उसका अधिकार चलना चाहिये, उसकी आज्ञा का पालन होना चाहिये, बच्चे उसके सामने हाथ बांधकर खड़े होने चाहिए।

शरीर बूढ़ा हो गया पर मन बूढ़ा नहीं हुआ। मोह जवान होता जा रहा है। ममता बढ़ती जा रही है। वंश बेल को फलता फूलता देखकर वह खुश होता है। बच्चे अपमान कर जाते हैं, कड़वा बोल जाते हैं। कभी तो बुरा लगता है पर कभी सोचता है, कोई बात नहीं "मेरे हैं।" कभी सोचता है कि "इनकी हिम्मत कैसे हुई मेरे सामने ऐसा बोलने की। मेरा पैसा खा रहे हैं। यह सब मैने ही तो कमाया था।" यह सारी बातें मन के अन्दर सोती जागती रहती हैं। लेकिन होना यह चाहिए कि बच्चे जब काम संभालने लग

जायें और आपकी पदोन्नति हो जाये, अर्थात् दादा दादी, नाना नानी बन जाएं, घर गृहस्थी के कर्त्तव्य पूरे हो जायें, तब धीरे धीरे वैराग्य बोध होना चाहिए। ज्ञान इस रूप में मन में प्रवेश करे कि अब संसार के कार्यों में उलझना नहीं है, दखलअंदाजी नहीं करनी। मन को पूरी तरह से घर गृहस्थी, व्यापार व संसार से हटा लेना है। इन सबको संभालने के लिए आपके पुत्र पुत्रियां जो संसार में अपने क्षेत्र में कदम रख रहे हैं उनको अपना अनुभव करने के लिये पूरी तरह से छोड़ देना ही समझदारी है।

गृहस्थी में रहते हुए जब एक पांव सन्यास की तरफ बढ़ा लिया जाये तो वह वानप्रस्थ है। ज़रूरत पड़े और बच्चे मांगे तो उन्हें शिक्षा और सलाह दें, समझा दें, नसीहत दे दें। बस इतना सहयोग काफ़ी है। बिजनेस (व्यापार) के बारे में भी बता दें, लेकिन हानि लाभ की तरफ ध्यान नहीं देना सेवा, तपश्चर्या और सिमरन में वक्त लगाना है। वानप्रस्थ रहते जब वैराग्य जाग जाए, घर गृहस्थी पूरी तरह छूट जाए, सेवा और मान की कामना भी छूट जाये, केवल परमात्मा ही रह जाए जिसके प्रति अर्पित होने को मन करे, तो कार्य करते हुए भी आसक्ति नहीं रहती। भगवान श्रीकृष्ण समझाते हैं कि यह मनःस्थित सन्यास की है।

एतान्यपि तु कर्माणि संग त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।६।।

जो सन्यासी यज्ञ, दान और तप जैसे कर्म करे वह उसमें भी फल की कामना न रखे। यज्ञ किसी विजय की कामना से या मान पाने के लिये नहीं होना चाहिये। **मनःस्थिति ऐसी बने कि मन में फल की कामना ही न बने।** अच्छाई और अच्छा करना जीवन का अंग बन जाये, जिसे हम निरंतर करते जायें। सन्यास की स्थिति में फल की कामना नहीं रहती, संग और आसक्ति नहीं रहती। सन्यासी इस तरह से अपने आपको पवित्र करे जैसे सूर्य अपनी किरणों से सारे संसार को स्पर्श करता है, कीचड़ को भी, दुर्गंध को भी और सुगंध को भी, लेकिन सूर्य की किरणें कभी भी अपवित्र नहीं होतीं। संसार के समस्त कार्यों के बीच जो निर्लिप्त रह कर पवित्र बना हुआ है उस मनःस्थिति का नाम सन्यास है। जो इस बात को समझ जाए

और उसके व्यवहार में यह दृष्टिगोचर होने लगे कि अब वह किसी चीज़ से प्रभावित नहीं होता, उसे मान सम्मान से खुशी नहीं होती, अपमान उसे कुंठित नहीं करता, तो वह सन्यासी है।

सिकन्दर को अरस्तु ने कहा कि भारत पर विजय करने के बाद जब तुम भारत भ्रमण से वापिस लौटोगे तो मेरे लिये कुछ न कुछ लाओगे ही। उन्होंने कहा तुम गौ, गीता, गायत्री, गंगा ये सब मेरे लिये लाना और साथ में मेरे लिये एक गुरु लाना। अब सिकन्दर भारत में गुरु ढूंढने के लिये प्रयास करता है। एक छोटी सी पहाड़ी के पास उसने एक साधक को बैठे हुए देखा। उस व्यक्ति के शरीर पर वस्त्र नहीं थे। सिकन्दर का स्वभाव एक विजेता की तरह था। जिसने इतना बड़ा भू भाग जीता हो, जिसके भय से त्राहि त्राहि मची हो, जिसके पीछे फौज चल रही हो, घुड़सवार हथियार ले कर पीछे चल रहे हों, ऐसा व्यक्ति अचानक कहीं आकर रुके, तो दिशायें कांपने लगती हैं। सिकन्दर उस साधु के सामने जाकर खड़ा हो जाता है और उससे पूछता है, "मैं तुम्हें अपने देश ले जाना चाहता हूँ, अपने गुरु का गुरु बनाने के लिये।" सिकन्दर की दृष्टि में इससे बढ़कर सम्मान और क्या हो सकता था? एक विजेता इतना मान दे रहा था और अगर वह साधक चला जाता तो सारे भारत में चर्चा होती कि जिसने इस भूमि को जीता उस व्यक्ति के गुरु का गुरु बनकर कोई भारत से गया है। लेकिन जो दुनिया की चर्चा से ऊपर उठ कर जीना चाहता है, जिसको केवल परमात्मा की चर्चा ही पसन्द है, उस पर सिकन्दर की बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हर क्रिया की प्रतिक्रिया जरूर होती है। लेकिन यहाँ एक निर्वेद, वेदना संवेदना से रहित, प्रतिक्रिया से अनभिज्ञ साधक, पूर्णतया निश्चल बना रहा।

लोग गाली क्यों देते हैं? अगला व्यक्ति उत्तेजित हो, उसका रोम रोम हिल जाये, वह भी उसी कीचड़ में उतर आये इसलिये लोग गाली देते हैं लेकिन यदि कोई आदमी गाली देने वाले को पागल समझ, मुस्कराकर आगे बढ़ जाए तो गाली देने वाले व्यक्ति को बहुत झुंझलाहट होती है कि उसकी सारी मेहनत बेकार गई। जो प्रतिक्रियाओं

के चक्र में न फंस कर, उन्हें तोड़ कर आगे निकल जाये उसे भगवान श्रीकृष्ण सन्यासी कहते हैं। उस साधु को भी सिकन्दर की बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ा। विजेता सिकन्दर सामने खड़ा रहा, साधु न हँसे न मुस्कुराये। सिकन्दर ने तब सोचा वह साधु को प्रसन्न करने का कोई दूसरा तरीका ढूंढे। उसने कहा, "अच्छा बताइये क्या मैं आपकी कोई सेवा कर सकता हूं?" सर्दियों के दिन थे। सिकन्दर सामने खड़ा था। साधु ने कहा, "मेरे लिये सिर्फ़ इतना ही कर सकते हो कि सामने से धूप छोड़ कर दूर खड़े हो जाओ। बस इतनी कृपा करो और कुछ नहीं चाहिये।"

विजेता सिकन्दर बाद में लोगों से पूछता है कि आखिर इन लोगों के पास ऐसी क्या चीज़ है कि किसी भी बात से प्रभावित नहीं होते। इनके पास धन नहीं है, सेना नहीं है, राजपाट नहीं है, आखिर है क्या? किसी व्यक्ति ने समझाया कि आप जय जयकार के पीछे घूम रहे हैं। हर जगह 'जय हो' 'जय हो' यही सुनना चाहते हैं। 'जय' में जब 'वि' उपसर्ग लग जाये तो 'विजय' बनता है और साधक अपने आपको, अपने स्वरूप को, अपने अंतस्थ को जीत कर विजय हुआ है और वास्तविक जीत, वास्तविक विजय खुद को जीतने में है न कि भूमि को जीतने में। राजा को 'सम्राट' कहते हैं लेकिन अपने को जीतने वाले को 'परिव्राट' कहते हैं। इससे बड़ा कोई दूसरा राजा नहीं होता।

पता नहीं सिकन्दर को कितना समझ में आया। लेकिन यूनान के इतिहास में या संस्मरणों में दैंडियस नाम के साधू का ज़िक्र ज़रूर आया है। मालूम पड़ता है उच्चारण में दोष के कारण दंडी स्वामी का दैंडियस बन गया। भारत में इस घटना को कोई महत्त्व नहीं दिया गया क्योंकि इस समय भारत में यह आम बात थी। आज अगर कोई साधु वैसा कुछ करे तो देश में चर्चा जरूर हो। लेकिन अब तो विजेता (विदेशी) के पीछे लोग भाग कर जायेंगे कि आज जिसको भारत में कोई नहीं पूछता, भारत से बाहर जाकर, अधकचरा ज्ञान बांट कर और फिर "फॉरन रिटर्न' बन कर भारत में आकर दर्शाने की कोशिश करते हैं कि हम इतने बड़े ज्ञानी हैं, इतने बड़े वक्ता हैं, इतने बड़े साधु, इतने बड़े सन्त हो गये हैं। जिसे दूसरे

प्रमाणित करते हों, दूसरों के प्रमाणपत्रों से जो प्रमाणित होता हो उसकी कोई कीमत नहीं है। लेकिन जो स्वयं प्रमाणित हैं वास्तव में वही साधु है, वही सन्यासी है।

भगवान श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं कि बिना कर्म के एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता। कुछ न कुछ कर्म तो करना ही पड़ेगा, लेकिन जो कर्मफल और आसक्ति के बिना कर्म कर सके, केवल कर्त्तव्य भावना से जो काम कर सके कर्मयोगी सन्यासी वही है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं:

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथवचेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।१४।।

अर्जुन ने जानना चाहा था कि कर्ता क्या है, कर्म क्या है, ज्ञान क्या है? भगवान श्रीकृष्ण ने इन सबके संबंध में चर्चा करते हुए कहा कि कर्म के पांच कारण होते हैं। कर्म का अधिष्ठान, कर्ता, करण, अनेक प्रकार की चेष्टायें और दैव। कुछ लोगों ने दैव का अर्थ किया है परमात्मा लेकिन सामान्यतया संस्कृत में दैव का अर्थ होता हैं 'भाग्य'। इसलिए हमारा भाग्य भी हमारे कर्मों का कारण बनता है।

हर व्यक्ति का एक जन्मजात स्वभाव होता है। किसी का गर्म स्वभाव है, किसी का नर्म स्वभाव है, कोई बहुत कर्मठ है, कोई बहुत आलसी है, कोई व्यक्ति ज्ञान की तरफ़ ज़्यादा रुचि रखता है, कोई मूढ़ होता है, किसी में स्वच्छता है, तो किसी आदमी को गन्दगी अरुचिकर नहीं लगती। उसमें पवित्रता है ही नहीं? कोई बात बात में झूठ बोलेगा, किसी को झूठ से परहेज है। किसी व्यक्ति का स्वभाव शील और संतोष का है, जितना मिल गया उतना ही पाकर संतुष्ट रहता है, मस्त रहता है। कोई बैसब्र होता है उसको कितना भी मिल जाए पर उसे चैन नहीं मिलेगा। सब का छीन कर अपने पास रखना चाहता है। यह तरह तरह के स्वभाव जन्म से ही आदमी में होते हैं। कोई आदमी ऐसा मिलेगा कि उसका क्रोध एक सेकेंड में उबाल पर आ जायेगा। उसमें बर्दाश्त की मात्रा बिलकुल नहीं है? और किसी आदमी के अन्दर इतनी सहनशीलता है कि बात को हँसकर टाल देता है।

यह स्वभाव की विभिन्नतायें हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के स्वभाव हैं। किसी में ज्ञान की लालसा है किसी में बिल्कुल नहीं। किसी आदमी में स्वभावगत भक्ति है। कोई कहता है कि भक्ति करने में कुछ नहीं रखा। सेवा कर्म करो उसी में सब कुछ है। कोई पैसा दान करने को ही सबसे बड़ी सेवा मानता है क्योंकि इससे अगला व्यक्ति तुरंत प्रसन्न होता है। कोई आदमी अपने हाथों से दूसरे की सेवा करने को ही सर्वोपरि मानता है। इन्सान में अलग अलग रुचियाँ अलग अलग स्वभाव, अलग अलग चेष्टायें होती हैं। अपने अपने स्वभाव के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कर्म करता है। भगवान श्रीकृष्ण यह समझाना चाहते हैं कि चूंकि आप अपने स्वभाव के अनुरूप कर्म करते हैं इसलिए 'स्वभाव' भी एक कारण बनता है। कोई आदमी बहुत गुस्सैल है। गुस्सा करने में वह स्वतंत्र है। हर आदमी अपने स्वभाव के अनुसार क्रिया करने के लिए स्वतंत्र है क्योंकि भगवान ने सबको कर्म करने की आज़ादी दी है। परंतु दूसरी ओर भगवान ने सबको गुलाम बनाया हुआ है। अपने कर्म का फल भोगने की बारी सब गुलाम हैं। जब कर्म का फल भोगने की बारी आयेगी तब आप पूरी तरह से भगवान के गुलाम हो। अगर कोई कोई बच्चा गलती से आग में हाथ डाल दे और वह जल जाए और तब कहे कि भगवान छोटे से बच्चे को क्यों कष्ट देते हैं तो यह समझना पड़ेगा कि उस छोटे से बच्चे ने आग में हाथ क्यों डाला?

आग में बूढ़ा हाथ डाले, या बच्चा या जवान, ज्ञानी या अज्ञानी, आग ने अपने स्वभाव के अनुसार काम करना है। कर्म का फल अपने आप सामने आयेगा। पर आग में हाथ डालने या न डालने में आप आज़ाद हैं। आपकी मर्ज़ी आये तो आग में हाथ डालो, या न डालो। आप अपने चंचल स्वभाव के चलते आग में हाथ डालने के लिये आज़ाद हैं तो आग भी अपने स्वभाव के अनुसार जलाने के लिए स्वतंत्र है। कर्म करने की स्वतंत्रता आपको है लेकिन आपको फल भोगने की स्वतंत्रता नहीं है। क्या ऐसी स्थिति संभव है कि फल भोगना ही न पड़े? ऐसी कौन सी चीज़ हैं जो हमें दुःख देती है और दुःख भोगने के लिये मजबूर करती है?

हमारे चित्त में हमारे समस्त कर्मों के संस्कार समाहित हैं और जो

प्रतिक्षण एवं निरंतर हमारे चित्त पर अंकित होते रहते हैं। यह संस्कार तीन प्रकार के होते हैं-सात्विक, राजसिक और तामसिक। सात्विक कर्मों के बीजों का अलग फल है, राजसिक का अलग है, और तामसिक का अलग। लेकिन वह बीज फल देते ज़रूर हैं। ज़मीन में पड़े हुये कुछ बीज साल भर पड़े रहेंगे, उगेंगे नहीं, बरसात आयेगी तो उगने शुरू हो जाएंगे। कई बीज ऐसे होते हैं जो बरसात में भी नहीं उगते, सर्दियां आएंगी तब उगेंगे और कुछ सारा साल नहीं उगेंगे। जब गर्मियां आयेंगी तो उगेंगे जैसे कंटकारी, जिसका बीज गर्मियों में अंकुरित होता है। कांटे उगेंगे, पीला पीला फूल निकलेगा। सामान्य लोग देखकर दुःखी होंगे किसान उखाड़कर फेंक देगा लेकिन वैद्य देखकर प्रसन्न होगा। वैद्य को कंटकारी में दमे की बीमारी की दवा नजर आती है। वैद्य कंटकारी को जड़ से उखाडेगा क्योंकि उसको पंचांग चाहिये। एक वर्ष तक उसका बीज ज़मीन में था, बरसात होती रही, वह नहीं उगा। गर्मी आई तो उगना शुरू हो गया। आपके अन्दर भी तरह तरह के कर्मों के बीज पड़े हुए हैं, परिस्थितियों रूपी। मौसम जैसे ही उस बीज के अंकुरित होने के अनुकूल होगा उसके अनुरूप वे अपना फल देंगे जिन्हें आपको भोगना होगा। संभव है किसी कर्म का फल आप अगले जन्म में भोगें।

कर्म के फल की गतियां भी विचित्र होती हैं। एक ही तरह का बिजनेस (व्यापार) करने वाले चार भाईयों की अलग अलग दुकाने हैं। सब की एक जैसी दुकानें हैं, एक जैसा माल है, चारों एक जैसा परिश्रम कर रहे हैं लेकिन आपस में कम्पीटीशन है, होड़ है, प्रतिस्पर्धा है और फल अलग अलग मिल रहा है। **बहुत लोग एक ही तरह का कर्म करते हैं। लेकिन फल सब को अलग अलग मिल रहे हैं क्योंकि सबकी परिस्थितियाँ और भाग्य अलग अलग हैं।**

इसलिए भाग्य भी एक कारक है जो अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ देता है। एक कारण है शरीर का अधिष्ठान। कर्म का अधिष्ठाता शरीर को ही माना गया है। शरीर के अंदर आत्मा कर्ता है और इन्द्रियाँ करण हैं। यह दोनों कारक कर्ता और करण कर्मों को विविध प्रकार की चेष्टाओं द्वारा

करने को प्रेरित करते हैं। सरल शब्दों में काम को करने के लिये आपका शरीर, आपकी आत्मा आपकी इन्द्रियां, आपकी चेष्टायें तत्पर होती हैं लेकिन यह सारा प्रयास भी भाग्य पर निर्भर करता है। इतने सारे कारक आपसे कर्म कराते हैं। इन कर्मों के माध्यम से मनुष्य संसार में बंधता है। लेकिन अगर हम सोचें कि कर्म करने वाले हम ही हैं, तो ऐसा सोचना हमारी मूर्खता है।

हमारा ज्ञान हमें यह समझाने में सक्षम होना चाहिये कि प्रत्येक कर्म के लिये बहुत सारे कारक हैं। अगर हमसे कोई अच्छा कर्म हुआ है तो निश्चय ही उसमें हमारे पितरों का आशीर्वाद सर्वोपरि था। हमारे दिव्य संस्कार भी उस कर्म में कारण बने हैं।ज्ञान की वह धाराएं जो आपने श्रवण की हैं, वे भी प्रेरणा बनकर इस कार्य का कारण बनीं। फिर भी सब बातों का, कार्यों और कारकों का सारा श्रेय अपने परमात्मा को दो। **ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता,** कर्म को प्रेरणा देने वाले तीन कारण मुख्य हैं इन्द्रियां, कर्म और कर्ता, जो कर्म के तीन घटक हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि ज्ञान के भी तीन प्रकार है:

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।।२०।।

प्राणी मात्र में जो व्यक्ति एक ही आत्मतत्व को देखता है, सबमें एक ही सार्वभौम चेतना का स्वरूप देखता है, सबके अंदर विद्यमान उसी एक अविनाशी तत्व का दर्शन पाता है, वह व्यक्ति सात्विक ज्ञान से भरपूर है। देखने में सब विभक्तेषु, विभक्त, दिखाई दे रहे हैं, अलग अलग दिखाई दे रहे हैं लेकिन है सब में एक ही अविभक्त तत्व। अर्थात् एक ही तत्व, एक ही ऊर्जा सब में विद्यमान है, जिसको ऐसा ज्ञान हो गया उसका ज्ञान सात्विक ज्ञान है। प्राणी मात्र में एक ही चेतन तत्व का अनुभव करने वाली दृष्टि जिसने पाली उसकी ज्ञान दृष्टि सात्विक है। **संसार में कहीं भी कोई तड़पे तो उसका दर्द अपना दर्द बन जाये, सारी दुनियां के दर्द को जो अपना मान ले, जो सारे संसार के लिये मांगलिक कामना करता हो, जो सारे संसार के मंगल के लिये योजना बना कर उन्हें कार्यान्वित करने की चेष्टा करे, ऐसे दृष्टिकोण वाले व्यक्ति को परम ज्ञानी माना जायेगा।**

परमात्मा की कृपा से किसी किसी व्यक्ति को यह गुण जीवन के प्रारंभिक चरण से ही प्राप्त होता है। ऐसे लोग संसार में संसार से ऊपर उठ कर रहते हैं। उनके जीने का ढंग ही अलग होता है। उनकी एक अलग तरह की पहचान बनती है।

सुभाष चन्द्र बोस जब किशोरावस्था में थे तो एक बार चार दिन तक घर नहीं गये। उनकी माँ को न नींद आए, न भोजन खाया जाए। वह रो रो कर बेहाल हो गयी। चौथे दिन बेटा घर आया तो माँ के पीछे दबे पाँव आया और आकर माँ की आंखें बंद कर ली। फिर ज़ोर से बोला ''माँ''। उसने आँखें इतनी ज़ोर से बंद की हुई थीं कि माँ गर्दन घुमा नहीं सकी। हाथ पीछे ले जाकर उसको थप्पड़ लगाया ज़ोर से और डाँट कर बोली, "कहां चला गया था?'' सुभाष कहता है, ''मेरी माँ को बहुत गुस्सा आया है न?'' और माँ कहती है ''तीन चार दिन से माँ का ख्याल नहीं आया। कहां गया था तू? बिना बताये चला गया। माँ को छोड़कर के चला गया।'' माँ को रोता देखकर सुभाष ने कहा है कि "नहीं माँ! अब तुझे छोड़कर नहीं जाऊंगा। लेकिन बताऊं? चारों तरफ हैजा फैला हुआ है। माँ, मैं गरीब बस्ती में गया था। क्योंकि मैं उनका दुःख बर्दाश्त नहीं कर पाया। चार दिन तक उनकी सेवा करते करते फिर तेरा ख्याल आया तो मैं आ गया। अब कभी तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगा।"

एक दिन जब सुभाष को देश के लिये देश के बाहर जाना पड़ा तो माँ का ख्याल आया, जिसे छोड़कर न जाने का वचन दिया था। लेकिन सोचा कि आज 'जननी माँ', से भी बड़ी माँ 'जन्म भूमि माँ' 'मेरी भारत माँ', के काम से जाना है। उसके लिए मुझे 'जननी मां' को छोड़कर जाना पड़ेगा और गया तो ऐसा गया कि फिर लौट कर उस घर में नहीं आया। लेकिन भारत के हर कोने से हर माँ ने यह कहा कि भगवान अगर मुझे बेटा दे तो सुभाष चन्द्र बोस जैसा बेटा दे। लोगों ने सुभाष से इतना प्यार किया कि उसे नेताजी नाम दिया। सुभाष हमेशा के लिए सारे देश का नेता बन गये। विचारें तो स्पष्ट समझ में आएगा कि सुभाष में यह संस्कार बचपन में ही जाग गये थे। कहाँ तो व्यक्ति अपना ही सुख चाहते हैं पर यह व्यक्ति

सारे देश का सुख चाहता था। यह भक्ति किसी सन्यास से, किसी ज्ञानी से कम नहीं हैं। यह स्थिति ज्ञानियों में ज्ञान और सन्यासियों में सन्यास, त्याग वाली मनोदशा है। ज्ञान सर्वोत्कृष्ट वही है जहां व्यक्ति सब की मंगल कामना के लिये संकल्प लेकर चल पड़े। राष्ट्र का चिन्तन करे परंतु इससे भी अधिक उत्कृष्टता तब होती हैं जब सारी धरती को परमात्मा का स्वरूप मान कर प्राणी मात्र के प्रति अपने मन और कर्म को जोड़ ले। ऐसा व्यक्ति परम ज्ञानी है। भगवान आगे फिर कहते हैं:

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम।। २१।।

अपने अन्तस्थ में जो व्यक्ति दूसरों को पृथकता के भाव से देखता और अनुभूत करता है और सोचता है कि सब चीज़ें अलग अलग हैं, सब भिन्न भिन्न हैं, सबको अलग अलग रूप में देखे, अर्थात् समस्त प्राणी मात्र की चेतना में व्याप्त एकात्मता को न माने, न समझे और किसी से कोई लेना देना न रखे, तो समझना चाहिये कि उसका ज्ञान राजसिक है, जिसका फल दुःख है। जबकि तामसिक स्थिति वह मानी जायेगी जहां आदमी बिना विचारे, बिना किसी कारण के काम करे और उसमें पूरा आसक्त हो जाए। बुद्धि और होश को खो बैठे और अनेक दुःखों को बुला बैठे; तो इस तरह से बिना विचारे कार्य में लग जाने वाले व्यक्ति की दशा तामसिक ज्ञान की दशा है।

तामसिक अवस्था में दुःख की बहुलता होती हैं। सात्विक स्थिति शांति देने वाली होती है। अतः आपकी सारी चेष्टायें अपने ज्ञान को सात्विक बनाने का प्रयास करने की होनी चाहिए। आपका अंतःकरण, आपकी बुद्धि, इतनी परिष्कृत हो जाये कि समस्त प्राणी मात्र में आप एक ही चेतन तत्व को अनुभव करें। चींटी को केवल चींटी या कीड़ी, इतना ही मत देखना। उसके अन्दर के जीवन तत्व की अनुभूति करना। उसकी भी अपनी दुनिया है, परिवार है, इसकी अनुभूति कीजिये। ऐसा करने से जीवन के प्रति आपका आदर भाव जायेगा, फिर हिंसा नहीं जायेगी। अहिंसक, जीवन के प्रति आदर रखता है। अपनी आदर की वस्तु को आप सुरक्षित

रखते हैं, उसे आप बचाते हैं। **जीवन के प्रति आदर, सम्मान और प्रेम जुड़ जाये तो श्रद्धा के भाव आ जाते हैं। इंगित श्रद्धेय बन जाता है।**

नन्हीं चींटी से लेकर विशाल जीव जन्तुओं तक सब में एक जैसी चेतना का अनुभव करना और सब में एक जैसे जीवन की अनुभूति रखना वास्तविक ज्ञान है, सात्त्विक ज्ञान है। तब आप वाणी से भी किसी को कष्ट नहीं पहुंचाएंगे। इसलिये **'आत्मतः प्रतिकूलानि परेषां समाचरेत्'** जैसा व्यवहार अपनी आत्मा के प्रति करोगे उससे विपरीत व्यवहार किसी के प्रति नहीं करो, **'इति धर्मः'**, यही धर्म है। इसी का मतलब धार्मिक होना है। अपनी जैसी आत्मा सब में महसूस करो और फिर सब के प्रति वैसा व्यवहार करो जैसा आप अपने साथ करवाना चाहते हैं। यह ज्ञान सात्विक ज्ञान है। भगवान ने फिर कहा कि कर्म भी तीन प्रकार के हैं सात्विक, राजसिक और तामसिक :

नियतं संगरहितम रागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते।।२३।।

आपके लिये जो कर्म नियत हैं, उनमें जो कर्म आसक्ति से रहित हैं, जिसमें राग और द्वेष नहीं है, फल की कामना भी नहीं है, ऐसे कार्य सात्विक कर्म हैं और उनको करणीय, अर्थात् करने योग्य कहा गया है। राग और द्वेष की वृत्तियों तथा फल की आकांक्षा त्याग कर जो कर्म किये जायें तो ऐसे कर्म सात्विक होते हैं। इसी प्रकार तीन बातें महत्त्वपूर्ण हुई, कर्म करते समय कर्म के साथ (आसक्ति) पैदा न हो, राग या द्वेष पैदा न हो, फल की कामना पैदा नहीं हो, परन्तु जो कर्म आपके लिए नियत कर दिए गये हैं उन्हें आप अवश्य करें।

आप अपने स्वभाव के अनुसार कर्म करने को स्वतंत्र हैं, क्रोध करने में भी आप आज़ाद हैं लेकिन एक बात ध्यान में रखनी पड़ेगी कि क्रोध किस पर किया गया है तो उसका क्या फल आपको ज़रूर मिलेगा। लेकिन स्वभाव को ध्यान में रखते हुये अगर आपकी दृष्टि थोड़ी सी बदल दी जाये तो शायद आपका क्रोध भी उपयोगी सिद्ध हो जाये। यदि आपका क्रोध अन्यायी, अत्याचारी और दृष्टि व्यक्तियों के विरोध में करते हुए

उनको दंडित करके समाज में मर्यादाओं की स्थापना हेतु प्रकट हुआ है, तो फिर वह क्रोध भी पुण्य का कार्य होगा।

यह लालच कि ज्ञानी ज़्यादा समय तक इस धरती पर रहें, इस दुनिया को उनका ज्ञान मिलता रहे, पुण्यवान लालच है। जो ज्ञान और सेवा का लालच करता रहे, चाहे कि उसे और ज्ञान मिल जाये, और सेवा तथा दान करने के अवसर मिल जाएं, तो वह लालच व्यक्ति को परमात्मा के चरणों तक ले जाता है, तो आपकी दृष्टि बदल गई। **स्वभाव लालची है तो दृष्टि बदल दो। अगर मन में कामना ही है तो सर्वांग सुन्दर परमात्मा को पाने की कामना करो।** मीरा ने कहा था "ऐसे वर को क्या वरूं, जन्मे ते मर जाये" वह ऐसे वर का वरण नहीं करना चाहती थी जो जन्मे और मर जाये। यदि वरना ही है तो ऐसे वर को वरो कि सुहाग सदा के लिये अमर हो जाये। **कामना करनी ही है तो दृष्टि बदल लो। स्वाभाविक वृत्तियों को सही दिशा देना शुरू कर दें तो यह स्वाभाविक वृत्तियां आपका कल्याण करेंगी।**

आप कोई भी कर्म करेंगे तो उससे संग (लगाव) पैदा होता है। राग भी पैदा होगा, द्वेष भी पैदा होगा। फल की कामनायें भी जागेंगी। आसक्ति, राग, द्वेष, और फल की कामना से प्रेरित होकर व्यक्ति कर्म करता है। फल की कामना न हो तो आदमी कोई कर्म करना नहीं चाहेगा। संभावित फल दूर से ही दिखाई देता है। बहरे को कुछ सुनाई दे या न दे लेकिन मतलब की बात न जाने कैसे सुन लेता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय में कहा है :

ध्यायतो विष्यान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कार्मात्क्रोधोऽभिजायते।।२/६२।।
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।२/६३।।

एक मनोविज्ञान यह है कि किसी चीज़ के बारे में ज़्यादा सोचोगे या ज़्यादा देखोगे, ज्यादा नजदीक होकर चलोगे, तो निश्चित बात है कि मन के अन्दर उसके लिए संग और लगाव पैदा होगा। **'संगात्संजायते कामः'**—संग

पैदा होगा तो कामनायें जागेंगी। प्राप्त करने की कामना जब जागेगी तो मन में आयेगा कि वह वस्तु मुझे मिलनी ही चाहिये। उसकी प्राप्ति में अगर कोई बाधक बन रहा हो, अड़चन डाल रहा हो, **कामात्क्रोधाऽभिजायते** तो फिर उसके प्रति गुस्सा आता है। गुस्सा आया तो सम्मोहन जागता है। उचित अनुचित का ध्यान नहीं रहता। **'स्मृति भ्रंशः',** और यादाश्त, व्यक्ति होश खो बैठता है। **स्मृति भ्रंश** हुई ' बुद्धि नाशा' तो अच्छे बुरे का विवेक जाता रहा। विवेक जाता रहा **प्रणश्यति** तो पतन निश्चित है। फिर व्यक्ति चोट खाता है।

पहले **'संग'** को समझो। सरोवर में आपने कंकड़ फेंका। जल मे कंकड़ के संग से एक लहर पैदा होगी। कंकड़ गिरा, लहर ने जन्म लिया, जो मिटने से पहले दूसरी लहर को जन्म देकर जाती हैं। लहर पर लहर शुरू हो जायेगी। ऐसे ही अगर आप किसी चीज़ का बहुत ख्याल करते हैं तो आपके चित्त के ऊपर इच्छा का कंकड़ पड़ या तब इच्छा की लहरें जन्म लेंगी। पहली इच्छा, दूसरी इच्छा को जन्म देगी। एक इच्छा पूरी होने के साथ दूसरी इच्छा जन्म ले लेगी। इच्छाओं के खिलौने से खेलते खेलते ज़िन्दगी बीत जायेगी लेकिन इच्छा का खिलौना टूटने वाला नहीं है। पता नहीं भगवान ने इच्छा को किस धातु का बनाया है। इच्छा पर जंग नहीं लगता। अंत तक कोई न कोई इच्छा पूरी होनी बाकी रह जाती है। फक्कड़ साधुओं की भाषा याद कर लीजिये :

"देखो भालो तको मत, बोलो चालो बको मत,
खाओ पीओ छको मत, हँसो बोलो फंसो मत।"

यह बात ध्यान में रख लेना। देखना भालना ठीक है तकना ठीक नहीं है। बोलना ठीक है, बकना ठीक नहीं है। खाना पीना ठीक है लेकिन छकना (पेट ठूंसना) ठीक नहीं है। ज्यादा पेट भरने से बीमारी शुरू हो जाएगी। हँसना बोलना ठीक है, मज़ाक उड़ाना ठीक नहीं है। बातचीत करना, हँसना बोलना ज़रूर लेकिन उसमें फंसने फंसाने वाली बात ठीक नहीं। इसको कहा जाता हैं संग। संसार को उपेक्षा से देखो, अपेक्षा से नहीं, कामना से नहीं। आपने कहीं कीचड़ पड़ा, देखा, तो याद नहीं रखा। कहां कहां

कितना कीचड़ है इसका हिसाब आप नहीं रखते। कहीं कूड़ा पड़ा है तो इसका हिसाब आप नहीं रखोगे। लेकिन दूकान में रखी कोई सुन्दर वस्तु अगर मन को भा गयी। तो पैसे हों, मौका हो, खरीदने का समय हो, तो आप जरूर खरीदेंगे। तो यह संग पैदा हो गया। लगाव हो गया। कूड़े को देखा तो कभी संग पैदा नहीं होगा। कितना अच्छा कूड़ा है। भर कर घर ले जायेंगे, ऐसा विचार कभी नहीं आएगा। कूड़े को आपने उपेक्षा की दृष्टि से देखा है और दूकान की चीज़ों को अपेक्षा की दृष्टि से। जब आप अपेक्षा (चाहत) की दृष्टि से किसी वस्तु को देखते हैं तो संग, लगाव, आसक्ति, चाहत, लालसा पैदा होती है। पाने की कामना जागती है। उन्हें पाने की राह में जो बाधक बनेगा, उस पर गुस्सा आयेगा। राग, द्वेष, लड़ाई झगड़ा, पक्ष विपक्ष सब होगा और आप बंधन में बँधते जायेंगे।

भगवान कहते हैं सात्विक कर्म वही है जहां फल की कामना के बंधन में व्यक्ति नहीं बंधता। संग से रहित, राग द्वेष के बिना, जिस कर्म को किया जाये वह कर्म सात्विक कर्म है। राजसिक कर्म के बारे में भगवान कहते हैं :

यत्तु कामेप्सुंना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।। २४।।

जो कर्म कामनाओं के कारण किये जायें, जिस कर्म में इन्सान का अहंकार बोलता हो, जिन कर्मों के जाल में व्यक्ति रात दिन उलझा रहे, इच्छाओं पर इच्छायें जन्म लें, तो ऐसे कर्म राजसिक कर्म हैं। जिन कर्मों में कर्म करने की इच्छायें और अहंकार अधिक हो वह राजसिक कर्म है। ज़्यादातर लोग राजसिक कर्म ही करते हैं। राजसिक कर्म बंधन में डालते हैं, क्योंकि हर व्यक्ति को कर्म के साथ साथ इस बात का अहंकार भी होता है कि वह कर्म पूरा (और ठीक) कर रहा है। इस अहंकार में वह बड़ी बड़ी कामनायें संजो लेता है। यह आदर्श नहीं है। सम्मान के योग्य नहीं है।

भारत में सात्विकता के अनेक उदाहरण हैं, लेकिन कर्मठता का सुन्दर रूप जापान में देखने को मिलता है। एक अमरीकन कम्पनी की शाखा जब जापान में खुली तो उसके मैनेजर ने अमेरिका की तर्ज पर वहां भी सप्ताह

में दो छुट्टियां कर दीं। पांच दिन काम, दो दिन छुट्टी का नियम चालू किया गया। हमारे देश में छुट्टी सुन कर हर आदमी खुश होता है, लेकिन जापान में उस कंपनी के कर्मचारियों ने एक महीने बाद शिकायत करनी शुरू कर दी। सब कर्मचारियों ने इकट्ठे होकर मैनेजर के पास जाकर प्रार्थना की "दो दिन की छुट्टी हमें नहीं चाहिए क्योंकि इससे आप हमें आलसी बना रहे हैं, आप हमें फिजूल खर्च बना रहे हैं, और हमारे घर में अशांति पैदा कर रहे हैं। हम काम से जी नहीं चुराना चाहते। बल्कि आपके साथ बैठकर मेहनत से काम करना चाहते हैं। आपका उत्पादन बढ़े और आपको पता लगे कि आपने जापान में कंपनी खोली है। ज़्यादा छुट्टी होगी तो हम आलसी बनेंगे, फिजूलखर्ची करेंगे।" उनके सामने मैनेजर का सिर झुक गया। सारी दुनिया में कर्मठता का कहीं और ऐसा उदाहरण देखने को नहीं मिलता।

ऐसे लोग भी हैं जो चाहते हैं कि काम करना ही न पड़े। वही नौकरी अच्छी है जहां कुछ करना नहीं पड़ता। सारा दिन गप्प लड़ाने का मौका मिलता है। लेकिन यह कर्म की चोरी है और फिर इस चोरी में कहीं अहंकार आ मिले और ऊपर से फल भी ज़्यादा चाहें तो यह राजसिकता है, जो दुखदायी भी है। भगवान कहते हैं :

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।।२५।।

वह कर्म तामसिक है जो बंधन में डाले, विनाश की तरफ ले जाये। जिस कर्म में हिंसा हो, जिसमें बहुत सारी अपेक्षायें हों, अनुपात से ज़्यादा मेहनत करनी पड़े और कर्म के प्रति मोह होने लगे तो ऐसे कर्म तामसिक हैं। वह नहीं करना।

वैसे भी यह कलियुग है। कलियुग में तामसिकता का प्रभाव बहुत ज़्यादा है। कलियुग में तामसिक प्रवृत्तियों वाले कर्म आपके अंदर हिंसा पैदा कर आपको विनाश की ओर ले जा सकते हैं। अगर एक बार ईर्ष्या मन में घर कर गई तो फिर एक मकड़जाल शुरू हो गया। ईर्ष्या आयेगी तो विरोधी की निन्दा करने की इच्छा भी पैदा होगी। आपको जिससे ईर्ष्या

होगी उसकी निन्दा भी करोगे। जिस आदमी के साथ उसका लगाव है उसके पास जाकर उसकी चुगली भी करोगे ताकि अपने मित्र की तरफ़ से इसका ध्यान हट जाये।

निन्दा और चुगली शुरू हो जाए तो फिर ईर्ष्या का परिवार पूरा हो जाना चाहिये। ईर्ष्या का परिवार बहुत बड़ा है। निंदा, चुगली, डाह, आलोचना, गाली जैसी प्रवृतियाँ ईर्ष्या के पास इकट्ठी हो गई हैं। डाकनी पिशाचिनी, भूतनी आदि सारे विशेषण भी यहीं लागू होते हैं। यह तो हुआ परिवार की महिलाओं का आगमन। उसके बाद शुरू होगा ईर्ष्या परिवार के पुरुषों का आगमन। महिलायें इकट्ठी होकर जब लड़ाई झगड़ा कर चुंकती हैं तो अपने पुरुषों को बुला लाती हैं और आदमी जब लड़ने पर आ जायें तो फिर लाठी डंडा भी ले आते हैं। बैर, क्रोध, बदला लेने की भावनायें, प्रतिशोध सब खुला खेल खेलते है। एक युद्ध जैसा माहौल बन जाता है।

सारी दुनिया इस युद्ध में जलती हुई नज़र आती है। ईर्ष्या द्वेष में जलती नज़र आती है। सारे संसार में कितने ही प्रकार की लड़ाईयां चल रही हैं। अगर आप जेलों में जाकर कभी निरीक्षण करें तो आपको बहुत हैरानी होगी। ज़्यादातर लोग ईर्ष्या द्वेष के कारण कलह क्लेश में फंसे हुये नज़र आयेंगे। वे आपसे कहेंगे कि काश वे उस समय थोड़ा सा नियंत्रण कर पाते, थोड़ी देर शांत हो जाते, तो इतना बड़ा झंझट न होता। गाली देती हुई जीभ रुक जाती, ईर्ष्या से देखती हुई आंख झपक जाती, दुश्मन की निंदा सुनने के लिये उत्सुक कान बहरे हो जाते, हिंसा के लिये उठे हुये हाथ रुक जाते, गलत मार्ग पर चलते हुये पांव थम जाते, और बुद्धि बुरा नहीं सोचती तो हम आज जेल के सींखचों कें पीछे न होते। आदमी अपने आपको रोक नहीं पाता। **बुरी घड़ी को टालना आसान तो नहीं होता लेकिन अगर उस क्षण को टाल सको फिर दुःख न हो।**

गुरजीब ने लिखा है कि उनकी जिन्दगी में दो ही लोग ऐसे आए जिन्होंने उनके जीवन को प्रभावित किया। एक तो चोर था जिसने उन्हें भगवान की तरफ़ जाने का रास्ता दिखाया, दूसरा उनके पिता जिन्होंने मरने से पहले उनसे वचन लिया और कहा तू बहुत क्रोधी है और तेरी शिकायतें

सुनते सुनते मेरा आखिरी वक्त आ पहुंचा। तो अब जाते समय एक कृपा कर, एक वचन दे। उन्होंने यह नहीं कहा कि मैं गुस्सा करना छोड़ दूं क्योंकि वह मेरी आदत बन गया था। उन्होंने कहा कि मैं एक काम किया करूँ बदला अगर लेना ही है तो चौबीस घंटे के बाद लूं। गुस्से का जवाब चौबीस घंटे के बाद दूँ। गुरजीब ने बाप के सामने सिर झुकाकर वचन दिया कि कोई कितना ही बुरा कर जाये, गाली दे जाये, वह चौबीस घंटों से पहले उससे नहीं निपटेगा। गुरजीब कहता है कि सुनने में तो बात आसान थी लेकिन बाद में मुश्किल पड़ गई। कोई गाली देता तो उबाल आता है कि इसी समय जाकर हिसाब पूरा कर दूं। लेकिन चौबीस घंटे बीतते बीतते मन की दशा बदलती गई। गाली सुनकर उबलता हुआ घर गया, जाकर पानी पीया, खाना खाया थोड़ी देर आराम किया, गुस्सा आधा तो ऐसे ही भर गया। फिर सारा दिन काम में लगे रह गये। ध्यान बंट गया तो एक चौथाई गुस्सा और खतम हो गया। रात को सो कर सवेरे जब उठे तो समझ में आया कि किस सनकी पागल के मुंह लगते हो। मन की दशा बदल गई।

गुरजीब कहता है, "मेरा गुस्सा प्रसिद्ध था लेकिन जब मैंने बहुत से लोगों को हँस कर माफ़ कर दिया तो इन्हीं लोगों ने मुझे महात्मा कहना शुरू कर दिया। लोगों ने मुझे जबरदस्ती महात्मा बना दिया। अब मेरा व्यक्तित्व बदल गया है।" बुरी घड़ी को टालना आसान तो नहीं होता लेकिन अगर आप टाल जाओ, तो वह पहला क्षण जब आपके अन्दर क्रोध की भावनायें जागीं, चिंगारियां उठीं, उस समय यदि आप अपने ऊपर नियंत्रण कर सके तो फिर आप क्रोध के बंधन में गिरफ़्त नहीं होंगे।

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं, "**हिंसा-क्षय,** अर्थात् हिंसा द्वारा होने वाले नाश को ध्यान में रखकर ऐसे कर्मों से बचें। बहुत लोग जीवन में अनेक ऐसे कर्म करते हैं जिनकी ज़रूरत नहीं होती। जबरदस्ती ऐसी चीज़ें जोड़ेंगे जिनकी ज़रूरत भी नहीं पड़ेगी। बेकार में समय गंवाएंगे। जीवन का कीमती समय और यौवन की ऊर्जा शक्ति को संसार की वासनाओं और कलह क्लेश में, झगड़ों में, विवाद में, फसाद में गंवा देंगे। यह ऐसा ही है जैसे आप अपनी कीमती लकड़ी को घुन (दीमक) लगाने के लिये, छोड़ दें

तो वह नष्ट होती जायेगी। बाद में वह किसी काम की नहीं रहेगी। ठीक रहती तो कुछ निर्माण होता। भवन का आधार बनती या उससे कोई फर्नीचर बनता। आपकी ऊर्जा शक्ति भी किसी निर्माण में लगनी चाहिए। इसलिए कर्म को सात्विक बनाएंगे तो कल्याण होगा और अगर तामसिक बनायेंगे तो स्वयं दुःखी होंगे और समाज को भी दुःखी करेंगे।

मनुष्य में जो स्वाभाविक वृत्तियां सात्विक, राजसिक तथा तामसिक हैं उनका मनुष्य की चेष्टाओं तथा कार्यकलापों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कोई व्यक्ति हठी है, दुराग्रही है या क्रोधी है तो यह उसकी राजसिक वृत्ति के प्रभाव के कारण है। कोई व्यक्ति अच्छी संगति में थोड़ी देर तक तो शांत बैठता है परन्तु फिर उसका मूल स्वभाव जागृत हो जाता है। कोई व्यक्ति हर काम को लंबा खींचता है, आलस में पड़ा रहता है, नींद में डूबा रहता है। न किसी की बात मानता है, न सुनता है। उसे नसीहत वाली बात अच्छी नहीं लगती। ठोकर खाकर भी कुछ नहीं सीखता है और न ही कुछ समझता। उसे तामसिक वृत्ति वाला कहते हैं। एक वृत्ति वह होती है जिसमें व्यक्ति संतुलित रहता है; सहज रूप से, शान्त रूप से अपने कार्य में लगा रहता है। नियम से कार्य करता है। ज़्यादा बात नहीं करता। आलस नहीं करता। उस वृत्ति को सात्विक वृत्ति कहते हैं।

इस प्रकार जीवन में तीन प्रकार की वृत्तियाँ हैं जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। स्वभाव बनाने तथा कर्मों के क्रियान्वयन में यह तीन प्रकार की वृत्तियां काम करती हैं। इसलिये तीन प्रकार के कर्ता, तीन प्रकार की बुद्धि तथा तीन ही प्रकार का सुख होता है।

भगवान श्रीकृष्ण इन तीन गुणों, सत्व, रज और तम के संबंध में कहते हैः

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्यो निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।।२६।।

'मुक्तसंगा', संग की आसक्ति से जो मुक्त हो गया हो; जो संसार में आसक्ति को अपने जीवन का अंग नही बनाता, जहाँ रहेगा वह स्थान छोड़ते समय उस स्थान के प्रति मोह नहीं सताता, अपनी वस्तुओं का वह

साज संभाल कर प्रयोग करेगा, उनकी देखभाल भी अच्छी तरह से करेगा लेकिन उनके प्रति मोह नहीं पैदा होने देगा, उन वस्तुओं की देखभाल वह इस ढंग से करेगा कि मानों दूसरों की धरोहर जिस समय आने पर उसे उन्हें सौंपना है, वापिस करना है, छोड़ देना है, त्यागना है वस्तुओं के खो जाने से वह दुःखी नहीं होगा तथा मिल जाने से अधिक प्रसन्न नहीं होगा, ऐसे अनासक्त भाव से जो व्यक्ति जीवन जीता हैं वह सात्विक कर्ता है।

संसार में जो कर्म करता है वह कर्ता कहलाता है। इसलिये हम सब कर्ता हैं। हमारे शरीर का कर्ता हमारी आत्मा है तथा इन्द्रियाँ कर्ण हैं। कर्म इन्द्रियों के माध्यम से किया जाता है इसलिये इन्हें कर्ण कहा जाता हैं। जो हम करते है वह हमारा कर्म हुआ। सबसे बड़ा कर्ता परमात्मा है। हमारे इस शरीर में जो कर्ता आत्मा है यदि वह आसक्ति लगाव से रहित होकर, संग से मुक्त होकर कर्म करता है तो वह सात्विक कर्ता कहलायेगा।

'अहंवादी', जो अहंकार से रहित होकर अपने कार्यों को, कर्त्तव्यों को पूरा करे। जो अहंकार में पड़ कर बढ़चढ़ कर बोलते हैं, उनको बड़बोला या अहम्वादी कहा जाता है। परन्तु सात्विक कर्ता अहंकार के बिना शान्त सहज भाव से अपने कर्म करता है। हर एक लब पर जिसकी कहानी हो पर वह स्वयं शांत हो ऐसा सहज और शांत व्यक्ति सात्विक कर्ता कहलाता है। **'धृति'** अर्थात् जिसका स्वभाव स्थिरता का धैर्य, का होता है ऐसा व्यक्ति कार्य के प्रति उत्साह तो रखता है परन्तु अधीर नहीं होता। कार्य पूरा करने में जो यथाशक्ति जुटता तो है परन्तु मार्ग के अवरोधों से, मार्ग के कंटको से, मार्ग के रोड़ो से घबराता नहीं है, आवेश में नहीं आता, शांत सहज रूप से कार्य करता रहता है ऐसी **"धृति"** (धैर्य) वाला व्यक्ति, सात्विक कर्ता होता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर यह तीनों ही गुण–सात्विक, राजसिक व तामसिक विद्यमान होते हैं। दिन के समय भी तीन प्रकार के होते हैं। प्रभात की बेला में व्यक्ति सात्विक गुणों का अधिक प्रदर्शन करता है, दिन में उसके राजसिक गुण उजागर होते हैं जब कि रात्रि में उसमें तामसिक वृत्तियों की प्रधानता रहती है। व्यक्ति के वातावरण, संगति, वस्त्र, चेष्टायें

और यहाँ तक कि उसके हाव भाव में भी इन्हीं तीन गुणों का मेल दिखाई देता है। आप पर वातावरण का प्रभाव भी पड़ता है। भोजन भी सात्विक, राजसिक व तामसिक होता है। संगति तथा वस्त्र भी सात्विक, राजसिक व तामसिक होते है। **कुछ वस्त्र ऐसे होते हैं जिनको पहनते ही चित्त में भड़कीलापन जागृत हो जाता है, वासनायें उमड़ पड़ती हैं। कुछ वस्त्र ऐसे होते हैं जिनको पहनने से आदमी कर्मठ व चुस्त लगता है। ढीले ढाले वस्त्रों में आदमी शान्त और सहज होता है। साधना करने वाले लोग अधिकतर बिना सिला हुआ वस्त्र पहन कर बैठते हैं।** वे शरीर को मौसम के अनुसार सूती या ऊनी शाल, कम्बल या चादर से ढककर बैठते हैं। उस स्थिति में उनके दोनों हाथ बंध जाते हैं। लेकिन यूरोपियन लोग इन वस्त्रों को पसन्द नहीं करते। उनकी दृष्टि में ये वस्त्र आलसियों की वेशभूषा है क्योंकि जिस पोशाक में हाथ बंध गये तो व्यक्ति कुछ करेगा ही नहीं, सारा दिन हाथ बांधे बैठा रहेगा। वे लोग कहते हैं कि शरीर के अंगों के साथ कसे हुए वस्त्र पहन कर आदमी सक्रिय और कर्मठ रहता है। इसलिये उन्होंने वैसे ही वस्त्रों का आविष्कार किया।

परन्तु यदि शान्त और सहज होना है तो वस्त्र भी सहज होने चाहिए। कर्मरत रहना है, युद्ध में जाना है तो अलग तरह के वस्त्र होंगे। वस्त्र भी राजसिक, तामसिक और सात्विक होते हैं। रंग भी सात्विक, राजसिक और तामसिक होते हैं। यहाँ तक कि व्यक्ति की चेष्टायें भी इन्हीं तीन गुणों से आच्छादित होती हैं। राजसिक व्यक्ति की चेष्टायें तामसिक व्यक्ति की चेष्टाओं से अलग तरह की होती हैं, और सात्विक व्यक्ति के हावभाव अलग तरह से दिखाई देते हैं। हमारा सारा व्यक्तित्व इन तीन गुणों के मेल से बना है।

महिलायें वेणी बांधती हैं तो बालों के तीन भाग करती हैं। रस्सी बनाने वाला सुतली के तीन भाग करके, रस्सी बंटता है। यह तीन गुण रस्सी में भी हैं, हर चीज में हैं। विद्युत धारा में भी यही तीन हैं। यज्ञ करने बैठें तो यज्ञ प्रारम्भ करने के लिये भी तीन समिधायें लेते हैं, तीन समिधाओं से आप हवन शुरू करते हैं। हर जगह त्रायत्व का रूप दिखाई देता है। भगवान

तीन हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश। शरीर में भी वात, पित और कफ इन तीन का समावेश है। इसी तरह प्रकृति में भी तीन गुण हैं। आपके स्वभाव में भी तीन गुण हैं। कर्ता में भी तीन गुण हैं। तीन तरह के कर्ता हैं–सात्विक, राजसिक और तामसिक। **सात्विक व्यक्ति संसार में अनासक्त होकर जीयेगा। बहुत बोलेगा नहीं, सहज रूप में चलेगा, धैर्यवान होगा। व्यक्ति के जीवन में व्याकुलता और बेचैनी संसर्ग से आती है। परिस्थितियाँ व्यक्ति को व्याकुल करती हैं लेकिन सात्विक व्यक्ति व्याकुल नहीं होता।**

'उत्साह समन्वितः', उम्र के हिसाब से भी उत्साह हुआ करता है। एक उम्र तक ज़्यादा उत्साह होता है। एक उम्र होती है जब आदमी समझौतावादी हो जाता है; तब वह खतरे नहीं मोल लेता। रोमांचकारी कार्य नहीं कर सकते। पैंतालीस पचास वर्ष की आयु तक पहुँचते पहुँचते व्यक्ति के अन्दर उत्साह मरने लगता है और उसके अन्दर खतरे लेने वाला स्वभाव नहीं रह जाता। लेकिन एक स्थिति होती है जब व्यक्ति का उत्साह लगातार एक जैसा रहता है। शरीर बूढ़ा हो जाये लेकिन उम्र का पड़ाव आने के बाद भी उत्साह निरन्तर कायम है। थिरकन है, मस्ती है, प्रसन्नता है, उल्लास है, तरंग है, उमंग है और संगीत की धारायें हैं। वह एक अलग तरह का व्यक्ति होता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति सात्विक व्यक्ति है। वह लगातार एक रस में, एक धारा में बह रहा है। जमाने की हवाओं से उसे फ़र्क नहीं पड़ता। संसार के विचारों से, वस्तुओं के कम और ज़्यादा हो जाने से, उन्नति या अवनति से जिस व्यक्ति को कोई फ़र्क नहीं पड़ता और वह शान्त, सहज, नदी की निर्झर धारा की तरह बहता हैः उसमें कभी कहीं कोई कमी नहीं आती। उत्साह तो निर्झर है। इसलिये कहते है :

जीवन क्या है निर्झर है, मस्ती ही इसका पानी है।
सुख दुःख के दो किनारों से, चल रहा राह मनमानी है।।

बीस साल पहले जो इस झरने को देखने के लिये आये थे वे बूढ़े हो गये लेकिन झरना बूढ़ा नहीं हुआ। उत्साह का अर्थ है निर्झर, जो जीवन में निरन्तर बना रहे अर्थात् लगातार प्रवाहित होते रहना। धारा जो ऊपर से

नीचे की ओर गिर रही है; जिसके सौन्दर्य में कमी नहीं आई; जिसके उल्लास में कमी नहीं आई; जिसकी मस्ती में कमी नहीं आई; जो हमेशा उसी तरह से मुस्कुराता हुआ, इठलाता हुआ, पग रखता हुआ चल रहा है, उसे सात्विक कर्ता कहेंगे।

लगातार ध्यान में रखना है कि कहीं हमारी गति जीवन के प्रवाह में मन्द तो नहीं हो गई है, बंद तो नहीं हो गई है, शिथिल तो नहीं पड़ गई है? चीज़ें आयेंगी और जायेंगी, संग्रह कम ज्यादा होता रहेगा लेकिन अपनी मस्ती को कम नहीं होने देना? भोग की वस्तुओं के अनुपात में आपके पगों में गति आये तो फिर तो वह गति उधार की है। मस्ती भी उधार की है, क्योंकि संसार की चीज़ों के कारण आई है। आदमी तभी तक उछल कूद मचाता दिखाई देता है जब तक उसके पास दो पैसे होते हैं। पैसे नहीं रहे तो सिर पकड़ कर बैठ जाता है। यूनान में एक बार आक्रामकों ने नगर को लूट लिया। लोग अपना अपना सामान सिर पर उठाये नगर छोड़कर भागने लगे। एक पड़ाव पर रुके तो देखा कि एक आदमी बिना किसी सामान के उत्साह से चला आ रहा था। वह उस समय का माना हुआ दार्शनिक वायस था। कुछ महिलाओं ने हँसकर कहा, "देखो बेचारा गरीब है। तन पर जो वस्त्र पहने हैं इसने बस इतनी ही सम्पत्ति है इसकी।" वायस ने उनकी तरफ देखकर कहा, "एक आक्रमण में ही जो गरीब कर दे वह सम्पत्ति मेरे पास नहीं है। एक झटके में ही जो इन्सान को नीचे गिरा दे वह सम्पत्ति मेरे पास नहीं है। लेकिन विचारों की और ज्ञान की वह सम्पत्ति मेरे पास है जिसके कारण आक्रमण होने के बाद भी मेरी मस्ती में कमी नहीं आई है। मैं उसी सम्पत्ति को साथ रखकर चल रहा हूँ।" आप इस प्रकार की सम्पत्ति बनाएं जिसे अपने मन और मस्तिष्क में धारण करके चल सको। जहाँ भी जाओ अमीरी साथ चलेगी। क्योंकि विचार और ज्ञान ही आपकी अमीरी है, सम्पत्ति है। जहाँ बैठ जाएं वहीं महल है। वहीं संगी साथी और दोस्त आ जायें। न आपको किसी के मिलने और न बिछड़ने का दुःख होगा। **आप अपनी मस्ती में जिएं। विचारों का प्रवाह जीवन में रहेगा तो उत्साह कायम रहेगा। जहाँ जायेंगे वहीं मस्ती भी आपके साथ चलेगी।**

इसलिए धन दौलत वह नहीं दे सकती जो विचार की शक्ति आपको दे सकती है। उन महापुरुषों का साथ कभी नहीं छोड़ना जिनके विचारों के कारण आपकी जिन्दगी में एक तरंग पैदा होती है। प्राणों को जो नई प्राण शक्ति दे देते हैं। हृदय को जो ठीक से धड़कना सिखा देते हैं। बुद्धि को जो ठीक से विचार करना सिखा देते हैं। आपके पगों में और हाथों में जो बल दे देते है। विचार शक्ति मिलती रहती है तो अन्दर एक वैभव पैदा होता है, एक समृद्धि आती है।

भगवान श्रीकृष्ण आगे फिर समझाते हैः **'सिद्धि असिद्धियों निर्विकारः'** सिद्धि और असिद्धि के बीच सफलता और असफलता के कारण अन्दर विकार नहीं होना चाहिए। आदमी का चेहरा बिगड़ने में ज़्यादा देर नहीं लगती। क्योंकि थोड़ी सी सफलता और थोड़ी सी विफलता से आदमी की मनःस्थिति बदल जाती है। सफलता में चेहरे पर प्रसन्नता के भाव आ जाते हैं, एक उन्माद दिखाई देने लगता है, दीवानगी दिखाई देने लगती है और जो सफलता नहीं मिल पाई तो चेहरा लटक जाता है। आदमी बदल जाता है। वह रातों रात एकदम बूढ़ा लगने लगता है। **अन्दर का उत्साह मर जाये और जीने का अंदाज खत्म हो जाये तो ठीक होने और जीने की चाह ही नहीं रहती।**

बच्चों की बीमारी जल्दी ठीक होती है। बूढ़े को ठीक होने में अधिक समय लगता है, उसका ठीक होना मुश्किल होता है। अगर डाक्टरों को यह बता दो कि मरीज की उम्र ७०–७५ साल की है तो अस्पताल वाले डाक्टर तो हाथ जोड़ देते हैं परन्तु नर्सिंग होम वाले ज़्यादा कमाने के लालच में खुश होते हैं क्योंकि मरीज़ जल्दी या कभी भी ठीक होने वाला नहीं है। परिवार वाले भी आकर दिलासा दे जाते हैं कि आप जब ठीक होंगे तो घर ले जाकर खूब सेवा करेंगे। लेकिन आपको विरक्ति होने लगती है। लेकिन जो परमात्मा के दिए कर्त्तव्य कर्म करने के लिए जीते हैं उसके लिये जीना भार नहीं होता। **शरीर परमात्मा का दिया हुआ मंदिर है। इसको सुन्दर रखना, सजाकर रखना, संवार कर रखना, सबल बनाकर रखना है क्योंकि उसकी अमानत उसको लौटानी है।** उस समय हम कह सकें कि

तेरे दीये में तेल और बत्ती हमने ठीक रखी है। इस प्रकार परमात्मा के साथ जुड़ने के कारण आपके अन्दर जो उत्साह आता है इससे आपके अन्दर एक सात्विक प्रक्रिया प्रवाहित होती है। अगर आप अच्छे विचारों से युक्त हैं तो आपके अन्दर सात्विकता बनी रहेगी। यह सात्विकता कर्ता की पहचान है। आगे भगवान श्रीकृष्ण ने राजसिक कर्ता की पहचान बताई:

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।।२६।।

ऐसा व्यक्ति जो हर समय राग अनुराग में, पक्ष विपक्ष में उलझा रहता है, बिना स्वार्थ के कोई काम नहीं करता। मतलब वाली बात हो तो सुनता है लेकिन उसका प्रणाम भी स्वीकार नहीं करता जिससे कोई स्वार्थ पूरा नहीं होने वाला। उसके लालच की कोई सीमा नहीं होती। उसका व्यवहार हिंसात्मक हो जाया करता है। बात बात पर लड़ने मरने पर उतर आता है। किसी का देना हो तो झगड़ने लगे और किसी से लेना हो तो उसके सामने हाथ जोड़े, पाँव छुए और उसके पीछे दुम हिलाता चले।

'अशुचि' भगवान कहते हैं कि पवित्रता का जहाँ नामोनिशान न हो; मन गंदा, वाणी गंदी; मीठा बोले तो बहुत मीठा और गंदगी पर उतर आये तो बहुत गंदे शब्दों का प्रयोग करे, यह पहचान है राजसिक व्यक्तियों की।

'हर्षशोकान्वितः' हर्ष और शोक से भरा हुआ आदमी, **'क्षणे रुष्टाः, क्षणे तुष्टाः प्रसादो अहंकारा'** एक क्षण में बहुत खुश होता दिखाई दे, दूसरे क्षण में आँखें तरेरने लगे। एक मिनट बहुत खुश नज़र आए और दूसरे मिनट गला पकड़ ले। कब प्रणाम करे और कब गाली देने लग जाए, ऐसे लोगों को राजसिक व्यक्ति कहा गया है। संसार में ऐसे लोगों की संख्या अधिक है। इन्हीं लोगों के कारण संसार में कलह क्लेश, अशांति, असंतुलन ज़्यादा है। इनके साथ किसी को निभाने में बहुत मुश्किल होती है। कब किसी से दोस्ती कर लें और कब झगड़ा कर के सब तोड़ दें कुछ पता नहीं। उन्हें रिश्तेदारी बनाने में केवल एक पल लगता है और बिगाड़ने में भी एक पल। राजसिक व्यक्ति रात दिन राजनीति की बातें करता नज़र आयेगा। उसे भले लोग बेकार लगते हैं। उसकी संगति अपने जैसे विचार

वालों के साथ ठीक बैठती है। सारा दिन अखबार पढ़ना, किसी आदमी के साथ सीधे ढंग से बात नहीं करना, हमेशा टेढ़े ढंग से बात करना। ऐसा आदमी राजसिक वृत्ति वाला है।

राजसिक लोगों के भोजन की पसन्द भी अलग होती है। उन्हें बहुत गर्म भोजन पसन्द है। भोजन चटपटा चाहिए, मिर्च मसाले वाला होना चाहिए। उनकी गति भी तेज़ होती है। गाड़ी चलायेंगे तो बहुत तेज़ गति से। यदि सरकारी नियम साठ किलोमीटर की रफ़्तार से कार चलाने का है तो उनकी रफ़्तार शुरू ही अस्सी किलोमीटर से होती है। टेढ़े मेढ़े, इधर से काट उधर से काट, इसको ओवरटेक करना, उसके आगे निकलना, और फिर आगे निकलने के बाद पीछे मुड़कर पीछे वाले को गाली देना, यह सब प्रवृत्तियाँ राजसिक व्यक्तियों की हैं।

प्राचीन मनोविज्ञानवेत्ताओं ने खोज करके समझाया है कि बहुत से लोगों की शक्लें और स्वभाव जीव जन्तुओं से मिलती हैं। कईयों की तो स्पष्ट रूप से किसी विशेष जीव जन्तु से समानता होती है। इस आधार पर यह भी मानते हैं कि पिछले जन्म में कौन सा चोला छोड़कर उन्होंने मनुष्य का चोला धारण किया है।

टेढ़ा होकर चलना और थोड़ा सा छेड़ने पर ही काटने को दौड़ना सांप का स्वभाव है। हर बात में चालाकी तो लोमड़ी वाली बात है। बहुत तेज़ दौड़ना और जल्दी लेट जाना खरगोश का स्वभाव है। वैर पाल लिया तो ऐसा कि उसे ज़िन्दगी भर नहीं भूलना ऊँट का स्वभाव है। हर समय चालाकी की नज़र से देखता रहे और मुँह से गंदी बातें ही निकाले तो समझना कौवे का शरीर छोड़ कर आया है।

सात्विक व्यक्ति के शरीर से अलग तरह की किरणें निकलती हैं। व्यक्ति का प्रभामंडल और देखने से पता चलता है कि किसी के अन्दर से सफ़ेद किरणें निकलती हैं तो किसी के शरीर से गुलाबी और किसी के शरीर से एकदम बैंगनी रंग की। इन रंगों से भी व्यक्ति के स्वभाव का पता चलता है। प्रभामंडल के रंग के चित्र लेने वाले कैमरे बन चुके हैं। ऐसे उपकरण, कलमें और घड़ियाँ निकल आई हैं जिनके प्रयोग के समय मनुष्य

के स्वभाव सात्विक, राजसिक या तामसिक के अनुसार रंग बदलने लग जायेंगे। सात्विक लोगों को सफेद रंग ज़्यादा पसन्द आता है। तामसिक को काला रंग पसंद होता है। राजसिक व्यक्ति को लाल रंग पसन्द आता है। तो रंगों से भी आदमी की पहचान होती है। भगवान श्रीकृष्ण अंत में तामसिक व्यक्ति की पहचान बताते हैं :

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।।२८।।

तामसिक कर्ता वे हैं जो आयुक्तः अर्थात् व्यवस्थित हैं ही नहीं। उनमें संतुलन है ही नहीं। उनका हर समय संतुलन बिगड़ा रहता है। अच्छे भले वातावरण को भी दो मिनट में बिगाड़ देंगे; रंग में भंग डाल देंगे। **'प्राकृतः'** जंगलियों जैसा व्यवहार करेंगे। जहाँ इन्सान रहता है उसके आसपास जंगल जैसी हरियाली होनी चाहिए। लेकिन तामसिक व्यक्ति का स्वभाव जंगली होगा। उसके अन्दर क्रूरता, कठोरता, निर्दयता दिखाई देगी।

'स्तब्धः' बहुत ज़्यादा हठी और जिद्दी व्यक्ति, सारी दुनिया मनाकर थक जाये पर वह न माने। लोग मनाने आयें पर वह टस से मस न हो। किसी आदमी को तो सिर्फ़ इतना ही कहना काफ़ी होता है कि "अच्छा नहीं लग रहा कि आपको यहाँ बुलाकर समझाना पड़ रहा है।" किसी को बाप दादाओं का, कुल खानदान का नाम लेकर समझाना पड़ता है कि उनकी संतान होकर आपको ऐसे कर्म शोभा नहीं देते। बस इतना काफ़ी है। कुछ लोग इतने से ही सुधर जायेंगे। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उन्हें यदि डंडे से पीटा जाये, रस्सी से बांध कर रखा जाये, जेल के अन्दर ठूंस कर रखा जाये उसके बाद भी उनकी वही चाल होती है जैसे नलकी के अन्दर रखी कुत्ते की पूंछ बारह साल के बाद भी टेढ़ी की टेढ़ी रहती हैं। ऐसे लोग सदा ही टेढ़े रहते है। सींग और पूंछ न होते हुए भी ये लोग नर पशु होते हैं। शक्ल पशुओं जैसी न होते हुए भी उनका व्यक्तित्व पशुओं जैसा होता है। इसलिए ऐसे लोगों के गले में जंजीर बांधकर रखनी पड़ेगी। ऐसे लोगों को बेड़ियां बांध कर जेल में रखा जाता है तथा डंडे का डर दिखाया जाता है क्योंकि उनको और किसी तरीके से समझाया नहीं जा सकता।

जो ज़िद्दी है, स्वभाव से असभ्य है, असंस्कृत व्यक्ति है और जिस के अन्दर संतुलन नहीं है, और जो **शठो,** धूर्त आदमी है, छली, कपटी, बेईमान है और **नैष्कृतिको,** ईर्ष्या वश जिसके अन्दर बदला लेने की भावनायें रात दिन जन्म लेती हैं ऐसे स्वभाव का व्यक्ति तामसिक होता है। भगवान फिर आगे कहते है, **विषादी**, झगड़ालू स्वभाव वाला आदमी, **दीर्घसूत्री,** काम को बहुत लम्बा खींचने वाला, **अलसः** बहुत आलसी आदमी, दुष्ट या तामसिक होगा। ऐसे आदमी के अन्दर एक खास बात दिखाई देगी कि वह या तो सोयेगा, झगड़ा करेगा या फिर खाली समय में कोई बुरा काम करेगा। वैसे ही मित्र ढूंढेगा, वैसे ही लोगों के पास जा कर बैठेगा।

बुरे लोगों का भी अपना समाज है। उनकी अपनी पहचान है। उनकी अपनी भाषा है। उनके अपने अलग तरह के इशारे हैं। उनके परिचय की कोई **डायरैक्टरी** नहीं होती कि वे कहाँ रहते हैं। लेकिन बुरे लोग अपनी बिरादरी वालों का परिचय खूब जानते है। वे अपने साथी को ढूंढ लेंगे और वहाँ पहुँच जायेंगे। **भले लोगों को अपनी संगति ढूंढने में देर लगती है, पहचानने में भी समय लग जाता है लेकिन बुरे लोगों का संगठन बनने में देर नहीं लगती। वे बहुत जल्दी जुड़ जाते हैं।**

महापुरुषों की जीवन गाथायें लोगों ने लिखी हैं। दुष्ट लोगों ने जीवन कथायें स्वयं लिखी हैं। तो ऐसा क्यों? उन्होंने स्वयं लिखा है कि बचपन में वे लोग कैसे थे? किन परिस्थितियों में बड़े हुए। बिगड़े तो कैसे बिगड़े? दूसरी ओर जो भला आदमी बना तो कैसे बना? **आदमी बचपन से ही भले काम करने लग जाये तो उसे बहुत से लोगों से आशीर्वाद, दुआयें और प्रशंसा मिलने लगती हैं। उनका उत्साह बढ़ने लगता है।**

किसी बच्चे को अगर कोई अच्छा काम करते देखो तो उसको उत्साहित करो। चार आदमियों के बीच उसकी प्रशंसा करो। तब उसकी कोशिश होगी कि वह अच्छे काम और किया करे।

पानी का तेज़ बहाव था, उफ़नती हुई नदी थी। एक महिला का बच्चा उस के हाथ से छूटकर नदी में गिर गया। सब चीखने चिल्लाने लगे पर

अपनी ज़िन्दगी खतरे में डालने को कोई तैयार नहीं हुआ। दूसरे किनारे पर एक बारह साल का लड़का जा रहा था। उसने दूसरे किनारे से सब कुछ देखा। उसने पानी के अन्दर छलांग लगा दी। डूबते बच्चे को पकड़ा और किनारे तक ले आया। लाते लाते वह थकान के कारण हाँफने लगा। उसने किसी तरह से बच्चे को तो उछाल कर ऊपर फेंक दिया लेकिन खुद उसके हाथ किनारे पर से फिसल गये। वह पानी में बहने लगा। पर उसने किनारे की तरफ़ आने की फिर हिम्मत की। उसका हाथ फिर फिसल गया। लोग उसे बचाने के लिये किनारे के साथ साथ दौड़ने लगे। कई बार ऐसा हुआ कि वह किनारे तक पहुँचा परन्तु बाहर नहीं निकल पाया। पर अन्त में उसने बहुत हिम्मत करके अपना हाथ इतना ऊँचा किया कि किनारे के लोगों की पकड़ में आ गया और उन्होंने उसे खींचकर बाहर निकाल लिया। लड़के को डाक्टर के पास ले गये और वह ठीक हो गया।

उसने जिस महिला का बच्चा बचाया था, वह माँ अपने बच्चे को लेकर वहीं डाक्टर के पास उससे मिलने आई। बालक के सामने खड़े होकर उसने कहा, " तुझे क्या कहूँ मैं? तूने जो काम किया है उसे कहने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।" उस माँ ने आसमान की तरफ हाथ उठाकर कहा, ''इसका फल तो तुझे भगवान ही देगा, और कोई नहीं दे सकता।'' इतना कहते कहते माँ की आंखों से आँसू बहने लगें। भगवान ने उस बालक जार्ज वाशिंगटन को इसका फल दिया। वह अमरीका का राष्ट्रपति बना और उसने बड़ा यश कमाया। अमरीका की राजधानी उसी के नाम से है। जार्ज वाशिंगटन ने बचपन में इतना बड़ा साहसिक कार्य किया, उसे दुआयें मिलीं, आशीर्वाद मिले, चर्चा हुई तो उसमें बड़े बड़े कार्य करने की भावनायें जागती रहीं, बढ़ती गयीं।

हमारे जीवन में सात्विक, राजसिक और तामसिक गुणों का कहाँ और किस तरह का प्रभाव है, उसका विश्लेषण हमें स्वयं करना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि इन तीन गुणों से प्रभावित तीन तरह के कर्ता हैं। पिछले जन्म के कर्मों के अनुसार व्यक्ति को तीन चीज़ें मिलती हैं-आयु, जाति और भोग। जाति से मतलब है चोला या योनि। मनुष्य

की योनि मिलेगी या पशु की योनि, यह पिछले जन्म के कर्म के आधार पर होता है। दूसरी चीज़ उम्र और तीसरी चीज़ है भोग, जो पिछले जन्म के आधार पर मिलता है। यानी सुख सुविधायें, अनुकूल परिस्थितियाँ। लेकिन कुछ चिंतको ने **'भोगो वै बुद्धि'** का यह अर्थ किया है कि पिछले जन्म के अनुसार बुद्धि मिलती है। कुछ लोग शुरुआत से ही बहुत तेज बुद्धि वाले होते हैं। किसी आदमी की बुद्धि शुरू से ही कुशाग्र होती है। वह थोड़ा पढ़ेगा और उसकी समझ में आ जायेगा। कई आदमी शुरू से ही कर्मशील होते हैं। किसी आदमी का स्वभाव व्यवस्थित रहने का होता है। किसी किसी आदमी का कंठ स्वर बचपन से ही बहुत सुरीला होता है। कोई बिना सीखे बांसुरी अच्छी बजा लेता है। यह सब चीज़ें कहाँ से आई हैं? ऐसा लगता है कि इन बातों में पिछले जन्म का बहुत बड़ा हाथ होता है।

जन्मजात कोई कलाकार है तो कोई चिंतक और लेखक होता है। जन्म से ही उनमें ऐसी प्रतिभाएं प्रकट होने लगती हैं। कोई पढ़े लिखे बिना ही कबीर बन जाता है। पिछले जीवन की बहुत सारी चीज़ें हमारे जीवन पर प्रभाव डालती है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयामये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।।३०।।

भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि जो प्रवृत्ति और निवृत्ति का निर्णय करे, कार्य और अकार्य, भय और अभय, बन्धन और मोक्ष दोनों को यथावत जाने, ठीक ढंग से पहचाने, ऐसी बुद्धि सात्विक बुद्धि है। प्रवृत्ति का मतलब है संसार में रमे रहना और निवृत्ति का मतलब है संसार की चीज़ों से आसक्ति का हट जाना। जो दोनों का भेद कर सके वह सात्विक बुद्धि है। गृहस्थ का समय पूरा हो रहा है, व्यक्ति घर गृहस्थी छोड़ने की सोचता है, बच्चों को सब काम सौंप कर उनको संभलवाना है। इनको अपनी कमाई ही नहीं देकर है कमाने का तरीका भी बताना है। दोनों में अन्तर है। अपनी कमाई देकर बच्चों को एक बार अमीर बनाना होता है। कमाई करने का ढंग सिखाकर उन्हें सदा के लिये अमीर बनाना होता है। ऐसे लोग ज़्यादा बुद्धिमान हैं। जो बाप की सम्पत्ति पर अमीर बनेगा वह उसे जल्दी उड़ायेगा,

जीवन में ऐब लगायेगा, रोगी भोगी और दु:खी आत्मा बनकर जीयेगा। बच्चों को लायक बनायें, काम करने योग्य बनायें, तजुर्बा सिखायें, स्वावलम्बी बनना सिखाएं।

प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का विवेक रखने वाला व्यक्ति, रमण करने और त्याग करने में भेद समझने वाला व्यक्ति, जब उम्र हो जाती है तो त्यागने और छोड़ने के लिये एकदम तैयार हो जाता है। ऐसे समय बहुत विचारणीय यह बात है कि किस चीज़ को पकड़ना है और किसे नहीं, किसके प्रति आकर्षित होना है और किसके प्रति नहीं, यह समझ में आ जाये। इस बुद्धि से यह निर्णय लेना चाहिये कि किस चीज़ में प्रवृत्त होना है और किसमें नहीं। इस बात की समझ आ जाये तो आप अपना स्वर्ग स्वयं निर्मित कर लेंगे। आप भगवान से ऐसी बुद्धि मांगिये। नीर क्षीर विवेक करने की बुद्धि मांगिये। कार्य और अकार्य में भेद करने वाली बुद्धि मांगिये। जब आपकी बुद्धि ऐसी बन जायेगी तब वह सात्विक बुद्धि कहलायेगी।

परमात्मा की देन में सबसे प्यारी देन बुद्धि है। सुमति मिल जाये, सुबुद्धि मिल जाये, प्रज्ञा बुद्धि मिल जाये, तो इससे बढ़कर और कोई बात हो ही नहीं सकती। पुराने किस्म के लोग जिन्हें मन्त्र नहीं आते, प्रार्थना नहीं आती, आरती नहीं आती वे भगवान के आगे हाथ जोड़ कर कहते हैं–"सुमति बख्शो, सुमति बख्शो, सुमति बख्शो।"

भगवान हमें उत्तम बुद्धि प्रदान करो, अच्छी मति प्रदान करो, भक्ति दो भगवान। शक्ल अच्छी हो न हो अक्ल अवश्य अच्छी दे देना। चाणक्य अपनी प्रार्थना में हमेशा बुद्धि की कामना करता था, "हे भगवान सब छीनना पर बुद्धि न छीनना, सुमति प्रदान करना। विपत्ति के समय भगवान बुद्धि को अपने से विपरीत मत करना।" **विनाश काले विपरीत बुद्धिः।** बुरा वक्त आयेगा तो बुद्धि खराब हो जायेगी, अक्ल काम नहीं करेगी। भगवान जिस किसी को दंड देते हैं तो उसे डंडा लेकर मारने नहीं आते, उसकी बुद्धि में फर्क डाल देते हैं। बुद्धि हर लेते है।

दुष्ट और अन्यायी सामने हो तो वहाँ वीर बनो। डरो नहीं, दबो नहीं। अपनी सारी शक्ति से विरोध प्रकट करो। रावण के सामने और कोई नहीं

बोल पाया पर विभीषण बोला। भले ही उसने लात खाई लेकिन कम से कम वहाँ का वातावरण एक बार बदल तो दिया। **हम लोग तो ऐसे गुलाम और कायर हो गये हैं कि मुँह से आवाज़ ही नहीं निकलती।** दुर्योधन की सभा में जब कोई नहीं बोला तो उस समय दुष्टता और अन्याय के सामने विकर्मा बोला था। **दुष्कर्म से डरो। बुरी आदतों और बुरी संगति से डरो।** सज्जनों और भले लोगों से कभी न डरना। उनके सान्निध्य में रहना और अगर उनसे डरो तो इस बात से कि उनकी नाराज़गी कभी मोल न लेना। हालांकि सज्जन किसी का कुछ नहीं बिगाड़ता। लेकिन सज्जन की संगति छूट जाना ही उसकी कृपा का हट जाना घाटे का सौदा है। सबसे बड़ा बल संत, ज्ञानी और गुरु का, परमात्मा का होता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने जब अपनी लीला समाप्त की, अपने धाम पधारे तो अर्जुन को कहकर गये कि लीला संवरण करने का समय है, तुम इन महिलाओं को इनके घर छोड़कर आना तथा इनका सामान सुरक्षित पहुँचा कर आना। बलशाली धनुर्धर अर्जुन जब उन्हें अपने संरक्षण में ले कर जा रहा था तो रास्ते में भील मिल गये जिन्होंने सारा सामान लूट लिया और अर्जुन कुछ नहीं कर पाया। तब यह बात कही गई कि:

समय समय की बात है, समय बड़ा बलवान।
गोपी लूटी भील ने, वही अर्जुन वही बाण।।

वही अर्जुन है, वही धनुष बाण है पर बात नहीं बन पाई। तब अर्जुन को समझ में आया कि उसके पास उसका अपना बल नहीं था। उसके पीछे कृष्ण की कृपा का बल था। इसलिये कृपा और आशीर्वाद का बल बहुत बड़ा बल होता है। महापुरुषों के आशीर्वाद किसी भी रूप में जीवन भर साथ देते हैं। आपको बलशाली बनाते हैं, सफल बनाते हैं। कई लोगों को सब कामों में अनायास सफलता मिलती चली जाती है। उन्हें कुछ ढूंढना नहीं पड़ता। उनके लिये अपने आप संयोग बन जाते हैं। व्यापार में अपने आप कोई बात ऐसी बन जायेगी कि लाभ हो जायेगा। ऐसा परमात्मा की कृपा से ही होता है। कृपा न रहे तो बना बनाया काम बिगड़ जाता है। महापुरुषों की कृपा बहुत बड़ा काम करती है। आप उनके चरणों में बैठना,

उनके सान्निध्य में बैठना, उनका संग करना, अपने जीवन में उनसे कभी दूर न होना।

'बन्धं मोक्षं च' अर्थात् कौन सी चीज़ें हमें बंधन में डालने वाली हैं और कौन सी नहीं। उम्र के साथ कुछ बातें समझ में आने लगती हैं। क्या खाने से शरीर बीमार होता है, कितना खाना है, कितना नहीं खाना। अब **बुद्धि काम करने लगी और खाने पर नियन्त्रण होने लगा। तजुर्बे और ठोकरों ने सिखा दिया। बुद्धि ऐसी हो जाए कि अपने आप सही निर्णय ले सके तो समझ लेना चाहिए कि यह परमात्मा की कृपा है।** कौन सी चीज़ बंधन में डालेगी और कौन सी चीज़ हमें बंधन से मुक्त करेगी, इसका निर्णय करने की बुद्धि आ जाये तो वह बुद्धि सात्विक होगी। भगवान राजसिक बुद्धि के बारे में कहते हैं :

यथा धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।।३१।।

अर्थात् जिस बुद्धि के द्वारा धर्म अधर्म का, कार्य अकार्य का ज्ञान ठीक से न होता हो, यही समझ में न आता हो कि क्या धर्म है और क्या अधर्म वह राजसिक बुद्धि है। बहुत से लोग धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य में अन्तर नहीं समझ पाते। पाप और पुण्य की अलग अलग परिभाषा नहीं कर पाते।

वह बुद्धि जो धर्म अधर्म में भेद को जानती है, उनमें भेद करने में सक्षम है, सात्विक बुद्धि है। उलटी बुद्धि वालों को धर्म समझ में नहीं आयेगा, उन्हें सत्संग पसन्द नहीं आयेगा, उन्हें परोपकार के कार्य करने को कहें तो वे ऐसे लोगों की चर्चा करनी शुरू कर देंगे जो सेवा के नाम पर ठगते हैं। यह भी सत्य है कि बहुत लोगों ने, पापी लोगों ने पुण्य के वस्त्र पहन कर कुकर्म किये हैं। रावण भी जब सीता को चुराने के लिये आया तो साधु के वस्त्र पहनकर आया। वस्त्र वह पुण्य वाले ही पहन कर आया। तो राम जी के समय से लेकर अब तक ऐसा तो होता रहा है कि लोगों ने धोखा देने के लिये तरह तरह के रूप बनाए। पर क्या एक रावण की बात लेकर या कुछ दुष्टों का उदाहरण देकर हम सदा यही चर्चा करते रहें कि सब ऐसा ही

करते हैं। यह बात वैसी हो गई जैसे भजन गाते समय संत तुकाराम की सफेद चादर पर एक दाग लग गया। **हर आदमी उनसे कहने लगा, "महात्मा जी, यह देखो कपड़े पर दाग है।" संत तुकाराम बोले, ''इतनी लम्बी चौड़ी सफेद चादर नहीं दिखाई दी, बस एक यह छोटा सा काला दाग ही दिखाई देता है"।**

साधु वेशधारी रावण के कारण क्या यह कहना ठीक है कि साधु के वस्त्र पहन कर लोग ऐसा करते हैं वैसा करते हैं। जिन साधुओं और सज्जनों के कारण यह संसार टिका हुआ है, उसकी चर्चा नहीं करते। जिसकी बुद्धि सिर्फ़ एक दृष्टिकोण लेकर ही सोचती है, उसकी बुद्धि राजसिक बुद्धि होती है।

अमृतसर में एक बार ऐसा हुआ कि धर्मस्थल में एक सन्यासी और एक पंडित दोनों में झगड़ा होने लगा। सन्यासी ने कहा, "देखो पंडित होने से, ज्ञानी होने से कोई बात नहीं बनती। पंडित तो रावण भी था। उस रावण ने क्या किया?" अब जब पंडित जी की बारी आई तब उन्होंने कहा, "माना कि रावण पंडित था लेकिन उसने बुरा कर्म तभी किया जब उसने साधु के कपड़े पहने।" जो बुद्धि अपनी बात रखने के लिए गलत तरीके से तर्क देती है ऐसी बुद्धि के बारे में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

अधर्मं धर्ममति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।।३२।।

वह बुद्धि जो जड़ है, जिसमें अनिश्चय का अंधेरा है, जिसमें धर्म अधर्म का ज्ञान नहीं है और जो समझने की कोशिश ही नहीं करती, वह तामसिक बुद्धि है। राजसिक व्यक्ति समझता है और अपने ढंग से व्याख्या करता है जो प्रायः उलटी होती है। लेकिन तामसिक व्यक्ति तो धर्म अधर्म, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को समझना ही नहीं चाहता, तामसिक बुद्धि वाले व्यक्ति अंधेरे और अज्ञान में डूबे रहते हैं। समझाया जाये तो समझते नहीं, और विचारने को तैयार नहीं। वे दुर्गन्ध में जीना पसन्द करते हैं। मछली बाजार में रहने वालों को मछली की दुर्गन्ध नहीं आती। मिर्च मसालों के थोक बाजार में यदि कोई नया आदमी चला जाए तो सारा दिन छींकते

परेशान हो जायेगा लेकिन कुछ लोग वे भी हैं जो लगातार बीस साल से वहाँ बैठकर व्यापार कर रहे हैं। उनको फ़र्क नहीं पड़ता। उन्हें तो वही हवा सही लगती है, जिसमें मिर्च मसालों की गंध आती है। उनको वही पसन्द है। ऐसा व्यक्ति जिसे अपना अंधेरा, अपना अज्ञान, अपनी वासना, अपना गंदा वातावरण पसन्द आने लग गया है उसे तामसिक बुद्धि वाला कहा गया है।

भगवान कृष्ण आगे फिर समझाते हैं कि जैसे बुद्धि तीन तरह की है, कर्ता तीन तरह के हैं तो मनुष्य के पास जो एक और गुण है '**धृति**', वह भी तीन तरह की है। **विपरीत स्थितियों में टिके रहने, स्थिर बने रहने का जो गुण है वही धृति अर्थात् धैर्य है। धृति गुण है, धैर्य उसकी अभिव्यक्ति।**

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाथभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।।३३।।

मन, प्राण, इन्द्रियाँ और क्रियायें, इनमें जो व्यक्ति संतुलन और धीरज रख सकता हो, जिसकी निष्ठा में कमी नहीं आये ऐसे व्यक्ति के इस गुण का नाम धृति है और वह सात्विक धृति कहलायेगी। यह महत्त्वपूर्ण है कि **जब मन की चंचलता विचलन की स्थिति तक पहुँच जाये तो उस समय** व्यक्ति को संभालने का कार्य कौन करेगा? भगवान कहते हैं कि **मनुष्य के पास एक गुण है जो उसको संभाले रखेगा, पाँव फिसलने नहीं देगा, अंगद वाला पाँव।** जब रावण के दरबार में अंगद अपना पाँव जमाकर खड़ा हो गया तो बड़े बड़े बहादुर उसे हिला नहीं सके। **महापुरुष का महान होना धृति के कारण ही संभव होता है।** महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सरदार पटेल या चाणक्य के विरोध में सारा जमाना हो गया। लेकिन कोई उन्हें अपने विचारों और आदर्शों से विचलित नहीं कर सका।

समाज में ज़्यादातर लोग हवा के साथ बहते हैं परन्तु कुछ लोग चाहे जैसी भी हवा हो स्थिर रहते हैं। उनके पास धृति गुण है। जो स्थिर मन से विपरीत स्थितियाँ भोगे, विपरीत वातावरण का सामना करे और कहें, **''अगर बुरा बुराई छोड़ने को तैयार नहीं तो हम भी भलाई छोड़ने के लिए तैयार नहीं है''** तो उसके इस गुण का नाम है धृति। लेकिन ऐसे लोग

भी है जो विरोधियों का विरोध तो सहन कर जाते हैं उनके पत्थर की मार भी सह जाते हैं परन्तु अपनो की छोटी सी बात सहन नहीं कर पाते। ज्ञानी महापुरुष मनसूध को फांसी की सजा सुनाई गई थी। उसे जब सूली पर चढ़ाया जा रहा था तो हुक्म हुआ कि लोग पत्थर मार मार कर उसका तिरस्कार क़रें। सबने उस पर पत्थर बरसाये। वह सह गया। लेकिन उसके प्रिय मित्र जिमनैध ने एक कागज़ में फूल लपेट कर उसे मारा, तो मनसूध फूट फूट कर रो पड़ा। वह मनसूध जो भीड़ के पत्थरों की चोटों को धैर्यपूर्वक सहन कर रहा था, मित्र के फेंके एक फूल की मार से तड़प उठा और बोला, "गैर के तो पत्थर भी मुझे बर्दाश्त हैं क्योंकि वे नादान हैं। पर तू तो ज्ञानी है, मेरी बात समझता है। तूने भी मुझे मारा है। भले ही फूल से मारा लेकिन मारा तो सही। यह मैं नहीं सह सकता।" भगवान श्री कृष्ण ने आगे फिर कहाः

ययातु धर्मकामार्धान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसंगेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।।३४।।

हे पृथापुत्र अर्जुन! जो व्यक्ति किसी कामना की पूर्ति की इच्छा से धीरजपूर्वक किसी कार्य को निरन्तर करता रहता है तो उसका धैर्य राजसिक कहलाता है क्योंकि उस कार्य के फल में उसकी आसक्ति होती है। जो व्यक्ति किसी अच्छे कार्य के लिए धन इकट्ठा करने निकले तो कभी मान तो कभी अपमान मिलेगा। परन्तु अपना कार्य सिद्ध करने के लिए जिसे धन की आवश्यकता है उसकी मांग लगातार धैर्यपूर्वक करता रहे तो यह धृति का ही गुण है। पर चूंकि इसमें फल की कामना है इसलिये यह धैर्य राजसिक है। इसके बाद भगवान ने एक तीसरे प्रकार की धृति का वर्णन किया जो तामसिक धृति है।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।।३५।।

भगवान ने कहा कि, "हे अर्जुन, जब कोई व्यक्ति हठ द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख और उन्मत्ता को छोड़ने को तैयार नहीं होता तो अपने हठ को कायम रखना ऐसी धारण शक्ति को तामसिक धृति का नाम दिया गया है।

ऐसे व्यक्तियों को अपनी बुराइयों का दोषों का अहसास भी नहीं होता।

भगवान कहते हैं कि सुख भी तीन प्रकार के सात्विक, राजसिक और तामसिक होते हैं। मनुष्य जीवन में सुख चाहता है, सुखी होना चाहता है। दुःखी होना कोई नहीं चाहता। वह सदा सुख की कामना करता है। सवेरे से लेकर शाम तक आदमी की सारी भागदौड़, सारे क्रियाकलाप और सारे कार्यक्रम सुख की इच्छा की पूर्ति के लिए होते हैं। हमारी सारी यात्रायें केवल सुख पाने के लिए ही होती हैं। भगवान ने कहा है:

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।।३७।।

अर्थात् जिस सुख को प्राप्त करने के लिए प्रारम्भ में विष के समान कड़वा घूंट पीना पड़े, जिस सुख को पाने के लिये अरुचिकर काम करना पड़े परन्तु जिसका परिणाम आनन्ददायक हो, जिस सुख को पाने के लिये कष्ट सहने पड़ें लेकिन अन्त सुखदायी हो, ऐसा सुख सात्विक सुख है। **'आत्म बुद्धि प्रसादजम्'** अपने चेतन स्वरूप को जान लेने और आत्म जागृति हो जाने के बाद आनन्द के रूप में सुख स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के अन्दर जागता है। यह सच्चा सुख है भले ही इसका आरम्भ काल कष्टप्रद रहा हो।

चेतन स्वरूप का ज्ञान और आत्मजागृति, सच्चाई, भक्ति और सेवा का मार्ग तथा कर्त्तव्यपरायणता की मनःस्थिति के प्रक्षापण प्रारम्भ में व्यक्ति को कष्टकारी प्रतीत होते हैं। जैसे प्रारम्भ में विद्यार्थी को अध्ययन कष्टकारी लगता है, उसे भोजन योग भी करना पड़ता है क्योंकि अगर ज़ायकेदार भोजन ज्यादा कर लेगा तो पढ़ते समय नींद आयेगी। कहा जाता है–**काकचेष्टा, बकोध्यानं, श्वाननिद्रा, अल्पहारी, ब्रह्मचारी विद्यार्थिनं पंचलक्षणम्।** अर्थात् कौए जैसी तुरती फुरती, चेष्टा चुस्ती फुर्ती, बगुले जैसा ध्यान और एकाग्रता, कुत्ते के समान थोड़ी तथा हल्की नींद, कम भोजन तथा संयमी, ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन जिसमें वृत्ति इधर उधर न जाने पाये, विद्यार्थी के पांच लक्षण होते हैं। शुरू में विद्यार्थी को विद्या अर्जन के

लिये कष्ट सहने पड़ते हैं। माँ बाप समझाते हैं कि अभी तप कर लो, आगे चलकर सुख पाओगे। अब उसने आगे की बात तो देखी नहीं है पर अभी उसके सामने टेलीविजन है, फिल्में हैं, पत्र पत्रिकायें हैं, रेडियो है, वीडियो है, म्यूजिक सिस्टम है तथा मनोरंजन के और न जाने कितने साधन बिखरे पड़े हैं जिनमें उसका मन अटका है। माँ बाप समझाते हैं कि इन सब को बंद करके पढ़ने में मन लगाओ तो पढ़ना एक मजबूरी बन जाती है। जो कार्य मजबूरी में करना पड़े वह कष्टकर भी लगता है और अरुचिकर भी। बच्चे कहते हैं कि अगर पढ़ना ज़रूरी है तो ट्रांजिस्टर साथ में चलाओ तब पढ़ेंगे। गानों का कैसेट लगाकर पढ़ने बैठते हैं। ऐसे विद्यार्थी का ध्यान संगीत में होगा या पढ़ने में? परन्तु **जो विद्यार्थी मनोरंजन के इन साधनों से मन को हटाकर, कष्ट सहकर, मेहनत करता है और अपना पूरा ध्यान पढ़ने में लगाता है निश्चित बात है कि जब परीक्षा का परिणाम आयेगा तो उसका नाम पहली पंक्ति में होगा** और उसके आधार पर वह किसी ऊँचे पद पर पहुँचेगा। उस समय उसे कितना सुख होगा। लेकिन पढ़ाई की शुरुआत में इस सुख की कल्पना आसान नहीं। **जो सुख प्रारम्भ में कष्टकारी लगता है, बाद में आनन्द देता है वह सुख सच्चा सुख है।**

एक सुख वह है जो उसी समय मिल जाता है, तुरन्त मिल रहा है। जैसे पढ़ना छोड़कर पिक्चर देखने बैठ गये, संगीत सुनने लगे, डांस पार्टी में चले गये तो उसका सुख उसी समय मिल गया। लेकिन बाद में जब परीक्षाफल आया तो पीछे रह गये। जीवन में कुछ नहीं बन पाये; सारी जिन्दगी दुःख भोगते रहे। **जो पढ़ने का समय है, पढ़ने की आयु है, उसे गंवा कर कोई सफल नहीं हो सकता।** पढ़ने का समय जीवन में केवल एक बार आता है। जीवन में किसी ऊँचे पद तक पहुँचने के लिये व्यक्ति यदि उस समय विद्यार्थी का रूप धारण करके तपस्या कर ले तो वह अपने जीवन में कुछ हासिल कर लेता है। लेकिन जिसने यह समय एक बार हाथ से निकल जाने दिया तो उसके लिए पछताने के सिवाय कुछ बचने वाला नहीं। यह बात अगर समझ में आ गई तो व्यक्ति सहज रूप से कष्ट सहने के लिए तैयार हो जाता है।

उपर्युक्त उदाहरण हर क्षेत्र पर लागू करके आज़माया जा सकता है। संसार में बहुत सारे आकर्षण ऐसे हैं जो शुरू में बहुत अच्छे लगते हैं परन्तु उनका परिणाम दुःखदायी होता है। दूसरी ओर बहुत सारी चीज़ें ऐसी हैं जो शुरू में तो अरुचिकर प्रतीत होती हैं पर उनका परिणाम सुखमय होता है। पुराने लोग कहते हैं कि आँवला खाना स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक है। लेकिन खाने में आँवला स्वादिष्ट नहीं लगता।

एक बार एक सज्जन मुझे मिले थे। अस्सी वर्ष की आयु थी उनकी। अपनी कुटिया में आने का निमन्त्रण देने आये थे। जब मैं उनके घर गया तो मेरे पास बैठकर उन्होंने अपने स्वास्थ्य और लम्बी उम्र के बारे में बताया कि वे सब काम और साधना भी अत्यन्त नियम से करते हैं लेकिन स्वास्थ्य का असली रहस्य नियमपूर्वक आँवले का सेवन है। बारहों महीने हर रोज़ ये आँवले का रस पीते हैं और घर में आँवले की सब्जी बनती है। अस्सी साल की उम्र में भी वे पचास पचपन के लग रहे थे।

कोई माँ जब बच्चे को समझाती है कि पालक और मेथी की पत्तेदार सब्जियाँ खाया करो क्योंकि इनमें आयरन लौह धातु होता है, विटामिन्स होते हैं, दूध दही लिया करो क्योंकि प्रोटीन्स और कैल्शियम होता है जो शरीर के लिए बहुत ज़रूरी हैं, तो बच्चा कहता है कि भगवान ने सारे विटामिन और प्रोटीन ऐसी चीज़ों में क्यों डाल दिये हैं जो खाने में स्वादिष्ट नहीं हैं। भगवान को चाहिए था कि यह सब वह चाकलेट में डालता, आइसक्रीम में डालता या चाट पापड़ी में डालता। अब यहीं आकर बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। भगवान कृष्ण कहते हैं **'आत्मबुद्धि प्रसादजम्'** सात्विक सुख तभी मिलते हैं जब किसी की आत्मबुद्धि जागृत हो जाती है। **जब बुद्धि उत्तम हो जाये, पहचानने वाली, विवेक वाली बुद्धि हो जाये तब उसका परिणाम सुखकारी होता है।** ऐसी बुद्धि, ऐसी अक्ल और ऐसी समझ मिल जाये जिससे वह सही और गलत के बीच चुनाव कर सके, जिससे वह स्वाद या सेहत में से एक को चुन सके तो वह सात्विक हो जाता है। स्वाद भी अभ्यास की चीज़ है। शुरू शुरू में जो औषध या पथ्य स्वादिष्ट नहीं लगते पर फिर भी व्यक्ति उनका लगातार सेवन करता है तो

धीरे धीरे उसकी जिव्हा उस स्वाद की अभ्यस्त हो जाती है। उसके बाद उसे चटपटी, मिर्च मसालेदार चीजों का स्वाद उतना पसन्द नहीं आता। इस प्रकार शुरू में जो चीज़ें खाने में स्वाद नहीं लगती पर चूंकि वह स्वास्थ्यवर्धक हैं इसलिये यदि व्यक्ति मन को संभाल कर थोड़े दिन उनका सेवन जारी रखे तो उसे उनका स्वाद भी अच्छा लगने लगता है। आपको चाहिए कि स्वास्थ्यवर्धक पत्तेदार सब्जियों वाले भोजन का सेवन किया करें। नज़ाकत या नखरे दिखाने से आप दूसरों की नज़रों में बेशक फैशनेबल सिद्ध हो सकते हैं लेकिन स्वास्थ्य की हानि तो आप स्वयं अपनी करेंगे।

कागज़ के फूलों को आप कितना भी सजाकर रखें, रहेंगे वे कागज के फूल ही। पर जो फूल परमात्मा खिलाता है, उनकी उम्र भले ही कम हो, पर सुंगध वही फैलाते हैं।

जीवन का वन नहीं सजाया जाता कभी कागज़ के फूलों से।
है अच्छा दो पाट उसे जीवित बलवान् बबूलों से।।

आदमी के पास अगर सौ गज़ जमीन है तो वह उसमें कागज़ के फूलों का बगीचा नहीं उगाएगा। दीवार से दीवार तक कालीन बिछा लेते हैं लेकिन उस पर बैठते नहीं। आसमान जैसी ऊँची इमारतों और मकानों में जो लोहा, प्लास्टिक आदि लगा होता है उसका क्षरण आपके भोजन, बर्तनों आदि द्वारा आपके शरीर के अन्दर रोग पैदा करते हैं। अब तो परदे भी रासायनिक कपड़ों के लगते हैं। ये भी आपकी ऊर्जा शक्ति और आयु को कम करने का काम करते हैं। अब तो स्वास्थ्य वैज्ञानिक कहने लगे हैं कि व्यक्ति को ज़मीन पर चलना चाहिए क्योंकि ज़मीन की चुम्बकीय शक्तियाँ मनुष्य को ऊर्जा प्रदान करती हैं। आदमी अब पुराने चिरपरिचित सिद्धान्तों की बातें करने लगा है कि आदमी को ज़मीन से जुड़ा होना चाहिए। मोटा खाना, मोटा पहनना, सादे ढंग से रहना और जीना। यह सब शुरू में शायद सुखदायी नहीं लगे लेकिन असली सुख इन्हीं में निहित है।

जो लोग बहुत मोटे गद्दों पर लेटते हैं और गद्दा भी ऐसा कि लेटें तो धंसते चले जायें तो जिस समय उनकी रीढ़ की हड्डी की बीमारियाँ

उमड़नी शुरू हो गयीं और लम्बर सरवाइकल स्पौंडिलायटिस आदि की समस्याएं आ जाती हैं तो गलती समझ में आती है। डाक्टर ने भी कह दिया कि गद्दा हटाकर तख्त के ऊपर सीधा लेटना है। तकिया छोड़ देना है। पहले का आराम अब कितना दुःख दे रहा है। अगर शुरुआत से जीवन को व्यवस्थित करके चलते तो इतनी परेशानियाँ और कष्ट न आते। अतः प्रारम्भ में जो वस्तु सुख जैसी नहीं लगती लेकिन परिणाम में सुख की अनुभूति दे, वही परमसुख और सात्विक सुख है। इसे समझने और पाने के लिए सही अक्ल, सही समझ और सही सूझबूझ होनी चाहिए और इसके लिए बुद्धि जागृत होनी चाहिए।

व्यक्ति सारी ज़िन्दगी पैसा कमा कर समझता है कि वह अपने आपको सुख़ी करने के मार्ग पर चल रहा है। पैसा कमाया, सेहत गंवायी परिवार का सुख गंवाया, बच्चे बिगड़ गये, खुद की स्थितियाँ बिगड़ गयीं, आत्मा कलुषित हुई, बुद्धि खराब हुई, अन्तःकरण कलुषित हो गया, आदतें खराब पड़ गयीं और मिला क्या? पैसा। व्यक्ति सोचता है कि पैसे से सब सुख ले लूंगा। लेकिन अपना शरीर ही इस लायक नहीं रहा कि सुख ले सके। अब सुख केवल इतना ही है कि अस्पताल और कचहरी जाने के लिए गाड़ियां हैं। धन की बदौलत डाक्टर घर में चेकअप करने के लिए आ सकता है लेकिन सीधी सी बात यह है कि आप बीमार हैं। अब अगर आप यह सोचते हैं कि आपको सुख नहीं मिला, लेकिन हमारे बच्चों को सुख मिलेगा तो यह भी आपकी खाम ख्याली है। आप क्या उनके भाग्य विधाता हैं? क्या उनका भाग्य लिखने वाले आप हैं? आप अपनी सीढ़ी पर चढ़ाकर अपने बच्चों को संसार दिखाना चाहते हैं। आपकी सीढ़ी जब आपके लिए मजबूत नहीं पड़ी तो बच्चों के लिए कितनी देर टिकेगी। आप क्या अपनी अमरता का प्रमाणपत्र लिखवाकर आये हैं? आप उन्हें अपने पाँव पर चलना सिखाइए, उन्हें जीना सिखाइए। उन्हें सुखी करने के लिए आप अपनी आत्मा को कलुषित करते रहे, धन कमाने के चक्कर में गलत कार्य किये, सोचा कि हमारा जो होगा सो होगा, बच्चे तो सुखी हो जायेंगे। यह आपकी भारी भूल है।

सांसारिक पदार्थों के माध्यम से जो लोग सुख की तलाश करते हैं उनका सुख अधूरा है। बाह्य पदार्थों का संग्रह व्यक्ति के अन्दर बड़प्पन नहीं लाता। सच्चा बड़प्पन वह है जब व्यक्ति अपने अन्तर को जीत कर आत्मा को पवित्र कर ले, मन को शांत कर ले और अपने बच्चों को कह सके, " मैं तुम्हें बहुत धन तो नहीं दे सका लेकिन मैंने कोशिश की कि तुम्हें अच्छा इन्सान बना सकूँ। तुम्हारे सिर पर कर्ज छोड़कर नहीं जा रहा। तुम भी जितना कमाना उससे कम ही खर्च करना।"

जो बहुत समृद्धि में चले, सुख सुविधाओं में रहे और गलत तरीके से पैसा कमाते रहे उनका अन्त समय बहुत दुःखदायी दिखायी देता है। जीवन में चैन और शान्ति नहीं होती। इसलिए चुनाव करते समय इस बात का पूरा ख्याल रखना चाहिए कि सुख की तलाश में कहीं हम दुःख तो नहीं खरीद रहे। भगवान श्रीकृष्ण ने कहाः

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।। ३८।।

वह सुख राजसिक है जो इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होता है और सांसारिक पदार्थों के संयोग से कुछ देर के लिए अच्छा लगता है। जिसका प्रारम्भ अमृतकारी लगता है लेकिन परिणाम विष जैसा है, वह सुख राजसिक सुख है। यदि मन क्षणिक सुख के बाद ज्यादा देर तक किसी भी चीज़ पर नहीं टिके और बार बार ऊबने लगे तो वह राजसिक सुख है। वह चैन नहीं दे सकता। उससे शांति नहीं मिलती।

ययाति ३०० वर्ष भोग विलास में जीया। अंत में इसने एक श्लोक लिखा कि, "चाहे कितना भी इन्द्रिय सुख मिल जाए, और पाने की व्याकुलता हमेशा बनी रहती है। इसलिये क्षणिक सुख कभी आनन्द नहीं देता! मन किसी प्रकार कभी भी तृप्त नहीं होता।" ज्ञान और संतुष्टि केवल अन्दर से आती है। इन्सान जैसे ही भोग में डूबने लगता है वैसे ही विरक्ति आ जाती है। **समझदार आदमी आग में हाथ डालकर प्रतीक्षा नहीं करता कि आग जलाएगी या नहीं। बड़ों द्वारा किए परीक्षणों से सबक लेता है।** राजा भर्तृहरि विषय भोगों में थे, पर जब जागे तो वैरागी साधू होकर वनों में चले गए।

राजा का भांजा गोपीचन्द बड़ा सुन्दर था। बलिष्ठ शरीर गोपीचंद एक दिन खुले में बैठा नहा रहा था। ऊपर बैठी उसकी माँ ने महल के झरोखे से बेटे को देखा तो उसकी आँख से आँसू गिरकर नीचे स्नान कर रहे बेटे पर गिरे। बेटा दौड़कर माँ के पास गया। रोने का कारण पूछा तो माँ ने बताया कि गोपीचंद का पिता उससे भी अधिक सुंदर और बलिष्ठ था, लेकिन विषय वासनाओं ने उसे ऐसा जकड़ लिया कि वह दुनिया से जाता रहा। माँ ने कहा, दुनिया से जो लेते हो (विषय भोग) उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। परमात्मा से जो सौंदर्य और बल मिलता है वह बिना मूल्य मिलता है।

हम दुनिया में अपूर्ण हैं। पूरे होने के लिए यात्रा पर निकलना पड़ेगा। पूर्ण केवल परमात्मा है। हर खाली चीज़ अपने को भरना चाहती है। **तू खाली है। अपने को भरने के लिए अपने पूर्ण परब्रह्म की ओर चल।** तेरे अन्दर की रिक्तता जब पूर्ण हो जायेगी; तेरा खालीपन जब भर जायेगा उस समय तुझे चैन मिलेगा। भगवान का मार्ग है साधना, नियम, व्यवस्था। तू व्यवस्थित हो जा। अपने अन्दर के आनन्द में डूब। उसकी तरफ दौड़।" गोपीचंद को माँ की शिक्षा मिली और वह दुनिया के वैभव को छोड़कर सच्चे वैभव को पाने के लिए निकल पड़ा।

अंटलांटा यूनान की एक रानी थी। जब वह राजकुमारी थी तो उसने स्वंयवर कराने की सोची। जिन युवकों ने प्रस्ताव भेजा था उसने उनकी परीक्षा लेनी चाही। उसने कहा कि दौड़ में जो उसे हरा देगा वह उसके गले में वरमाला डालेगी। यह घोषणा भी करायी कि उसके मुकुट में कीमती हीरा है और गले में कीमती मोती हैं। बाजूबंद रत्न जड़ित है और उसने दौड़ लगानी शुरू की। दौड़ते हुए उसने मुकुट का हीरा निकालकर ज़मीन पर फेंक दिया। वह इसी तरह रत्न बिखेरती दौड़ती चली गयी। पीछे दौड़ने वाले उन रत्नों को इकट्ठा करने में लग गये। सबने सोचा कि तेज़ दौड़ लगाकर आगे बढ़ जायेंगे। अभी तो जो कुछ मिलता है वह ले लें। शुरु में वह भी धीरे धीरे दौड़ती रही परन्तु आखिर में इतनी तेज़ दौड़कर अपने लक्ष्य पर पहुँची कि सब हार गये। उसने सबको बुलाकर

कहा, "मुझे देखना था कि कौन कितना लालची है। थोड़ा सा देखकर जिसकी लार टपकने लग जाये वह मेरा वर नहीं हो सकता।"

परमात्मा भी तो उसी को परमसुख, सच्चे मोती देना चाहते हैं जो संसार के लालच को तोड़कर उस तक पहुँच जाये। नकली सुख की चमक दमक तो भगवान ने इसीलिए संसार में बिखेरी हुई है कि सब उसमें उलझ कर रह जाएं। जिसे बुद्धि आ जाये, जो इसको तोड़कर वहाँ तक पहुँचने का सामर्थ्य रखे वह पहुँच जाये। ऐसी घटनाएँ अखबारों में भी पढ़ने को मिलती हैं कि डाकुओं ने बैंक पर डाका डाला तो लोगों ने घेर लिया। पकड़े जाने की संभावना है देखकर डाकुओं ने नोटो का बैग जो हाथ में था उसमें से नोटों के बंडल सड़क पर फेंकने शुरु कर दिये। लोग नोट उठाने में लग गये और डाकू भाग गये। भगवान् कहते हैं कि जो लालच को ठोकर मारकर आगे आ जाये उसको मैं परमसुख देने को तैयार हूँ।

भगवान ने कहा है कि सत, रज और तम तीन गुण तीनों लोकों, देवलोक स्वर्ग लोक और संसार के सब प्राणियों में होते हैं। इनमें बंधकर इन्सान इनके अनुरूप कर्म करता है। कोशिश करनी चाहिए कि अपने अन्दर की तामसिकता है तो शनैः शनैः उसे राजसिकता की तरफ और राजसिकता से सात्विकता की तरफ ले आएं और बाद में इन तीनों से भी ऊपर उठ कर, निर्गुण बन कर, पूर्ण दिव्यता प्राप्त कर लें।

इस जीवन में ही आप अपना विकास करें। आने वाले युग के सभ्य समाज में शांति, सहजता, परहित चिंतन एवं परोपकार की भावनाएं प्रवाहित होगीं तो आप अभी से ऐसे समाज की रचना करनी शुरू कर दें।

कैकेच देश के राजा अश्वपति ने एक बार पदयात्री ऋषियों से कहा "मेरे महल में चलकर भोजन ग्रहण कीजिए।" ऋषियों ने मना कर दिया। राजा ने कहा कि उसके राज्य में कोई चोर नहीं है। कोई शराब नहीं पीता, अश्लील हरकत नहीं करता। सब दानी हैं, कोई कंजूस नहीं है। उसके विचार पवित्र हैं, कमाई पवित्र है तो ऋषिगण उसका अन्न क्यों नहीं ग्रहण करना चाहते? ऋषियों ने कहा कि राजन आपकी यह उपलब्धि स्तुत्य है परंतु यह राजसिक है। हम केवल सात्त्विक वृत्तिवालों का ही आतिथ्य स्वीकार कर सकते हैं।

भगवान ने आगे कहाः

'यदग्रे चनुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रा आलस्य प्रमादोत्थं तद् तामसं उदाहृतम्।।३६।।

जो व्यक्ति खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ, बाकी किसने देखा कि बाद में क्या होने वाला है और भविष्य पर दृष्टि नहीं डाले तो वह मूढ़ है। **आज को उत्सव बनाकर जीना अच्छी बात है, मगर आज का उत्सव मनाने के लिए यदि नशा करना ज़रूरी समझे तो यह मूढ़ता होगी।**

यदि कोई आदमी यह सोचे कि आज कर्ज़ लेकर अपने को सुखी कर लें तो यह मूढ़ता होगी। वह तामसिक व्यक्ति है। कर्ज़ लेकर मकान, कार टी.वी., फ्रिज लेकर सुख भोगने वाले व्यक्ति को अगर कर्ज वापिस न कर पाने के लिए जेल का दुःख भोगना पड़े तो बेइज्ज़ती होगी। ऐसा क्षणिक सुख तामसिक सुख है।

आज हमारा समाज पतनोन्मुख है। हम उस राजा अश्वपति की तरह दावा नहीं कर सकते कि समाज पवित्र है। आज समाज कलुषित और घिनौने विचारों से ग्रस्त हो गया है। व्यक्ति को अपना धन संभालने के लिए सुरक्षा के प्रबन्ध करने पड़ते है। बहू बेटियों को घर से बाहर निकलने से पहले सोचना पड़ता है। भय और आतंक के कारण व्यक्ति बाहर सो नहीं सकता। प्राचीन काल में राजा कहां तो भेष बदलकर नगर में आया करते थे। अब शासन करने वाले घर के अन्दर भी अपनी निज की सुरक्षा का प्रबंध करके रहते हैं। उसके बाद भी सुरक्षित नहीं है। पतन हो रहा हैं, परन्तु समाज की शक्ल वही है। देखने में लोग बड़े सुन्दर हैं। सजावट का सामान पहले से ज़्यादा बढ़िया बनने लगा है। व्यक्ति इतना श्रृंगारिक पहले नहीं था जितना आज है। लेकिन क्या वस्त्रों से, आभूषणों से, श्रृंगार करने से व्यक्ति सुन्दर हो जायेगा? जब तक व्यक्ति के विचार सुन्दर नहीं होंगे तब तक व्यक्ति वास्तव में सुन्दर नहीं होगा। **समाज को सुन्दर बनाने के लिए एक ही उपाय है, वैचारिक क्रान्ति।** प्रचार साधनों के माध्यम से जितनी बुराई फैल रही है, उससे ज़्यादा बड़ी ताकत से भलाई को फैलाना चाहिए।

लगभग १०–१२ साल पहले मैं थाई देश गया था। वहाँ स्कूल में मैंने भारतीय मूल के बच्चों से पूछा कि क्या वे दूध पीते हैं? एक बच्चे ने बताया कि वे दूध पी कर स्कूल नहीं आते क्योंकि यहाँ के बच्चों को दूध पीने वालों के शरीर से खराब गंध आती है। वहाँ भोजन में लोग कीड़े मकोड़े तक खा जाते हैं। उनको अपने शरीर से कीड़ों की दुर्गन्ध नहीं आती। उनको तो वह सुगंध लगती है। परन्तु दूध पीने वाले के शरीर से उनको खराब गंध आती है।

कोई व्यक्ति पूर्णरूप से तामसिकता में पड़ा हुआ हो तो उसे अपनी गन्दगी ही अच्छी लगने लगती है, अपनी दुर्गन्ध भी सुगंध लगने लगती है। इसलिए विचारों का शुद्धिकरण हो जाये तो पूरे समाज का शुद्धिकरण हो सकता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि समाज में कई वर्ग हैं। कुछ लोग ब्राह्मण हैं, कुछ क्षत्रिय, कुछ वैश्य और कुछ शूद्र। इनका वर्गीकरण आप कैसे मानेंगे? जाति से मानेंगे या जन्म से? भगवान श्रीकृष्ण एक अलग दृष्टि देते हैं। कहते हैं कि **आदमी को उसके विशिष्ट गुणों से नाप कर उसकी श्रेणी तय करना।** भगवान कहते हैं:

शमोः दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।४२।।

स्वभाविक रूप से जो व्यक्ति शांत हो, अपने **मन पर नियन्त्रण रखता हो, तप करता हो, पवित्रता का ध्यान रखता हो, धैर्यवान हो, सरल स्वभाव का हो, ज्ञान विज्ञान से युक्त हो, आस्तिक्य और ईश्वरभक्त हो, ऐसा ब्रह्म कर्म करने वाला ब्राह्मण है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ब्राह्मण के घर जन्म लेकर कुछ बच्चे फौज में चले गये, शर्मा जी कर्नल बन गये, ब्रिगेडियर बन गये, जिन्हें कहा तो जा रहा है कर्नल शर्मा लेकिन कर्म से हैं वह क्षत्रिय। जो व्यक्ति सोने का काम करेगा वह स्वर्णकार कहलायेगा। व्यक्ति जिस भी कार्य को करे भगवान ने उसके अनुरूप उसको नाम दिया, न कि जन्म के आधार पर।**

भगवान समझाना चाहते हैं कि हर व्यक्ति आवश्यकता और स्वभाव के अनुरूप काम धंधे को अपनाता है जिससे उसके अन्दर और बाहर का

तालमेल बने। वैसे ही स्वाभाविक रूप से कार्य करते आप सिद्धि, विशेषज्ञता प्राप्त करेंगे। स्वभाव और चित्त कुछ हो और कार्य कुछ दे दिया जाये तो तालमेल नहीं बैठेगा। शांत स्वभाव वाला व्यक्ति विवेक से काम करता है। जिसकी रुचि ज्ञान विज्ञान में हो, खोज करता हो, रिसर्च करता हो, पठन पाठन का काम करता हो, वह ब्राह्मण है। जितने भी वैज्ञानिक हैं सब ब्राह्मण कहलायेंगे। जितने भी बुद्धिजीवी हैं वह सब ब्राह्मण कहलायेंगे। **भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि स्वाभाविक रूप से आपके अन्दर जो गुण हैं उनके अनुरूप आप जो काम करते हैं उसके अनुसार आपको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कहा जाना चाहिए।**

जिनके स्वभाव में क्षत्रिय धर्म है शासन करने का अधिकार उन्हें ही होना चाहिए। वे शासन कर भी सकते हैं क्योंकि उन्हें उद्दण्डता को दबाना आता है।

जो स्वभाव से क्षत्रिय हैं वे युद्ध की बात सुनते ही जोश में आ जाते हैं। जन्म से बहुत से क्षत्रिय युद्ध का नाम सुनते ही कांपने लग जाते हैं। एक क्षत्रिय वे हैं जो अपनी या देश की ज़रूरत देखकर या कानून लागू होने पर फौज में भरती हो जाते हैं। **ज्ञान विज्ञान, अध्ययन अध्यापन में जो डूब जाए वह ब्राह्मण, अन्याय से जूझते हुए जो अपने को कुर्बान कर दे वह क्षत्रिय, समाज का अभाव मिटाने के लिए जो उत्पादक और वितरण में ज़िन्दगी लगा दे वह वैश्य और जो पूरे समाज के अन्दर आलस्य को मिटाकर कर्मठता पैदा कर दे वह शूद्र। इसलिए न कोई छोटा है न कोई बड़ा।** हाथों की पाँच अँगुलियों में अंगूठा ब्राह्मण है, ज्ञानी है, समझदार है, धर्मात्मा है। अंगूठे की ज़रूरत सबको पड़ती है, सब अंगुलियों के साथ जुड़ता है। शरीर में जैसे सिर है ऐसे पूरे समाज में बुद्धिजीवी हैं, ब्राह्मण वृत्ति के लोग हैं। उनका स्थान सिर जैसा माना गया है। अँगुलियों में तर्जना करने वाली, डांटडपट करने वाली, फटकार देने वाली तर्जनी अँगुली क्षत्रिय है। किसी को कहना हो उठ, किसी को कहना हो चल, या किसी को कहना हो बैठ तो इसी अँगुली से इशारा किया जाता है। नियम लिखना और निर्देश पढ़ना यही अँगुली करती है। बीच वाली अँगुली लालची है। बीच में है इसलिए देखने में मोटी लगती है। समाज में

एक वर्ग को शूद्र नाम दिया जाता था लेकिन मध्यकाल में गन्दी परम्पराओं के कारण इस शब्द का बहुत दुरुपयोग हुआ जबकि इसका मतलब समाज का स्तम्भ है। जैसे शरीर का स्तम्भ पाँव है उसी तरह पूरे समाज को शूद्र संभालते हैं। सर्दी लगेगी तो सोते समय आप सबसे पहले मुँह नहीं ढकते, ब्राह्मण (सिर) को नहीं ढकते। सबसे पहले पाँव पर रजाई डालते हैं। सिर बिना ढके रहता है। सलाम करते हैं तो पहले सिर को किया जाता है लेकिन प्रणाम करना हो तो चरण को छूते है। सिर का सम्मान भी उस पाँव पर सिर झुकाकर करते हैं।

जिस समाज में सबसे पीछे बैठे हुए गरीब आदमी को सबसे पहले इज्ज़त मिलेगी वह समाज सबसे ऊँचा समाज होगा। मैंने यह पेन पकड़ा है। कैसे पकड़ पाया हूँ? हाथ की जो अँगुलियां बड़ी थीं उन्होंने झुककर छोटे अंगूठे को छुआ। जब बड़ी अँगुली झुक कर छोटी को सहयोग देती है तो हाथ से कलम पकड़ी जाती है और सफाई करने वाला झाड़ू भी। सब अँगुलियाँ मिल जायें तो शक्ति बन जाती हैं। **पूरा समाज शक्तिवान तभी बनेगा जब बड़ा झुकना सीख जाये और जो छोटा है वह मिलना सीख जाये,** और ब्राह्मण अंगूठा ज्ञानी इनका साथ देना सीख जाये। तो फिर ऐसे समाज में ताकत आ जायेगी।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति ने जन्म भले ही किसी परिवार में लिया हो परन्तु यदि वह स्वाभाविक रूप से शांत, तपस्वी, ज्ञानी, आस्तिक, उपासक, और धैर्यवान हो तो वह ब्राह्मण है।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।४३।।

क्षत्रिय में शूरवीरता, शौर्य, तेजस्विता, धीरज, वीरता, सूझबूझ, युद्ध कौशल, रक्षक आदि गुण स्वभाव से ही होते हैं। समाज में यदि ब्राह्मण का स्थान ऊँचा है तो क्षत्रिय का स्थान भी कम ऊँचा नहीं है। सभी वर्ग अपनी अपनी जगह ऊँचे हैं। ब्राह्मण ध्यान साधना करता हुआ ब्रह्मगति को प्राप्त करता है तो क्षत्रिय मानवता, धर्म, समाज और राष्ट्र के लिए बलिदान देकर वही गति प्राप्त करता है। ब्राह्मण समाज के ऐश्वर्य को देखकर प्रभावित

नहीं होता और क्षत्रिय कुर्बानी देने का समय आये तो प्राणों का मोह नहीं करता।

जापान में एक राजा थे मिकाडो। दुर्भाग्य से जापान का रूस के साथ युद्ध छिड़ गया। जापान के समुद्र में रूस के जलपोत खड़े थे जिन्होंने जापान को चारों तरफ से घेर लिया था। ऐसा लगने लगा था कि थोड़े समय में जापान तबाह हो जायेगा। राजा मिकाडो ने घोषणा की कि मशीन के बल पर एक देश हमें जीतना चाह रहा है, जवाब देने के लिए आत्मबलिदानी लोगों की ज़रूरत है। हज़ारों अर्जियां आयीं। खून से लिखे प्रार्थनापत्र आए। अब मशीनों का, जलपोतों का, सामना करने के लिए इन्सान चले थोड़े से चुनिंदा नौजवानों ने अपने शरीर पर विस्फोटक बम बांधे और किसी तरह से जलपोतों की चिमनियों तक पहुँच उनके अन्दर कूद पड़े। उनके चिथड़े तो उड़ ही गये लेकिन युद्धपोत भी नष्ट हो गये। आत्मबलिदानियों ने जापान को जिता दिया। रूसी हार गये।

क्षत्रिय कुल में पैदा हुआ कायर और कमज़ोर व्यक्ति क्षत्रिय नहीं होता। एक भाई कई परिवारों में पढ़ाने का काम कर रहा है, एक फौज में है, एक व्यापारी है, एक भाई सेवा में लगा है। एक ही परिवार में चारों वर्ण पैदा हो गये। किसको छोटा कहोगे, किसको बड़ा। इसलिए भगवान कृष्ण ने वर्ण की व्यवस्था को केवल गुणों और स्वभाव के आधार पर माना है। यदि तुम ब्राह्मण के घर पैदा हुए हो और ब्राह्मण कहलाना चाहते हो तो ब्राह्मण के गुण भी अपनाओ। क्षत्रिय कुल में पैदा हुए हो तो अपने अन्दर क्षत्रिय धर्म ज़िन्दा करो और यदि वैश्य कुल में पैदा हुए हो तो वैश्य का कर्त्तव्य है वाणिज्य करना।

"कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्:"
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।४४।।

कृषि करना, ख़ेती करना, गौ रक्षा करना, वाणिज्य व्यापार बढ़ाना और समाज में ईमानदारी से वितरण करना, वैश्य धर्म है। वैश्य के कुल में क्षत्रिय स्वभाव वाला पैदा हो गया या क्षत्रिय के घर में ज्ञानी ध्यानी ब्राह्मण पैदा हो गया उसका स्वभाव उसका वर्ण है।

आज बिजनेस में ही बहुत सारी चीजें आ जाती हैं जैसे नाई धोबी वाले धंधे। अब ब्राह्मण और क्षत्रिय का भी ब्यूटी सैलून है या वह ड्राइक्लीनर है और फौज के अन्दर भी कुछ लोग इंजीनियर हैं, कुछ लोग कम्प्यूटर पर बैठे वैज्ञानिक हैं कुछ लोग उड़ान भरने के लिए प्रशिक्षण देने वाले लोग हैं। कर्म स्वभाव के अनुरूप हो या परिस्थितिजनक, मन में जब संतुलन बनेगा तभी जीवन में सफलता और शान्ति आयेगी। व्यक्ति का संतुलन बनेगा तो समाज का संतुलन बनेगा। समाज के अन्दर प्रत्येक वर्ग अपने स्वभाव और कर्म की कुशलता के अनुरूप मान और सम्मान पायेगा। फिर भेद नहीं होंगे। वर्ण व्यवस्था के कारण भारत में दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियां रहीं। हम लोग बहुत बंटे। जातियों के कारण बंटे। बहुत भाग हो गये। यद्यपि दूसरे मजहबों और पंथों में भी यह बातें हैं, उनमें भी अलग अलग कारणों से समाज को बंटते हुए देखा गया है। अच्छा हो अगर हम इस बात को सही ढंग से समझ लें।

आप अपने से प्रश्न करें। आप पढ़ते हैं और बच्चों को पढ़ाते हैं तो उस समय आप ब्राह्मण हुए। जब आप परिवार और बच्चों की रक्षा करते हैं, कभी उनकी खातिर भिड़ने की भी नौबत आ जाती है तो आप उस समय क्षत्रीय धर्म निभाते हैं। आप परिवार का भरण पोषण करने के लिए पैसा कमाते हैं, घर में लाते हैं तो उस समय आप वैश्य हुए और जरूरत पड़ने पर घर की सफाई के लिए झाडू भी लगानी पड़ती है, या रोज़ अपने शरीर तथा छोटे बच्चों या बूढ़े माँ बाप की शुद्धि करते समय आप शूद्र नहीं तो क्या हुए? आपको समझ आयेगा कि **हर आदमी ब्राह्मण भी है, क्षत्रिय भी है, वैश्य भी है और शूद्र भी है। तो फिर भेद क्यों? अजीब बात है कि जो गंदगी करे वह ऊँचा और जो गन्दगी को साफ़ करे वह नीचा।** भगवान कृष्ण ने अगर झूठी पत्तलें उठाई और ब्राह्मणों के चरण धोये तो क्या उनका स्थान नीचा हो गया?

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि यदि परब्रह्म को प्राप्त करने की कामना है तो आत्मसाक्षात्कार करना होगा। तामसिकता का प्रभाव हो तो व्यक्ति का व्यवहार समग्रता से कठोर होगा, वह निर्दयी, आलसी, जिद्दी

नहीं होता और क्षत्रिय कुर्बानी देने का समय आये तो प्राणों का मोह नहीं करता।

जापान में एक राजा थे मिकाडो। दुर्भाग्य से जापान का रूस के साथ युद्ध छिड़ गया। जापान के समुद्र में रूस के जलपोत खड़े थे जिन्होंने जापान को चारों तरफ से घेर लिया था। ऐसा लगने लगा था कि थोड़े समय में जापान तबाह हो जायेगा। राजा मिकाडो ने घोषणा की कि मशीन के बल पर एक देश हमें जीतना चाह रहा है, जवाब देने के लिए आत्मबलिदानी लोगों की ज़रूरत है। हज़ारों अर्जियां आयीं। खून से लिखे प्रार्थनापत्र आए। अब मशीनों का, जलपोतों का, सामना करने के लिए इन्सान चले थोड़े से चुनिंदा नौजवानों ने अपने शरीर पर विस्फोटक बम बांधे और किसी तरह से जलपोतों की चिमनियों तक पहुँच उनके अन्दर कूद पड़े। उनके चिथड़े तो उड़ ही गये लेकिन युद्धपोत भी नष्ट हो गये। आत्मबलिदानियों ने जापान को जिता दिया। रूसी हार गये।

क्षत्रिय कुल में पैदा हुआ कायर और कमज़ोर व्यक्ति क्षत्रिय नहीं होता। एक भाई कई परिवारों में पढ़ाने का काम कर रहा है, एक फौज में है, एक व्यापारी है, एक भाई सेवा में लगा है। एक ही परिवार में चारों वर्ण पैदा हो गये। किसको छोटा कहोगे, किसको बड़ा। इसलिए भगवान कृष्ण ने वर्ण की व्यवस्था को केवल गुणों और स्वभाव के आधार पर माना है। यदि तुम ब्राह्मण के घर पैदा हुए हो और ब्राह्मण कहलाना चाहते हो तो ब्राह्मण के गुण भी अपनाओ। क्षत्रिय कुल में पैदा हुए हो तो अपने अन्दर क्षत्रिय धर्म ज़िन्दा करो और यदि वैश्य कुल में पैदा हुए हो तो वैश्य का कर्त्तव्य है वाणिज्य करना।

"कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्:"
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।४४।।

कृषि करना, ख़ेती करना, गौ रक्षा करना, वाणिज्य व्यापार बढ़ाना और समाज में ईमानदारी से वितरण करना, वैश्य धर्म है। वैश्य के कुल में क्षत्रिय स्वभाव वाला पैदा हो गया या क्षत्रिय के घर में ज्ञानी ध्यानी ब्राह्मण पैदा हो गया उसका स्वभाव उसका वर्ण है।

आज बिजनेस में ही बहुत सारी चीजें आ जाती हैं जैसे नाई धोबी वाले धंधे। अब ब्राह्मण और क्षत्रिय का भी ब्यूटी सैलून है या वह ड्राइक्लीनर है और फौज के अन्दर भी कुछ लोग इंजीनियर हैं, कुछ लोग कम्प्यूटर पर बैठे वैज्ञानिक हैं कुछ लोग उड़ान भरने के लिए प्रशिक्षण देने वाले लोग हैं। कर्म स्वभाव के अनुरूप हो या परिस्थितिजनक, मन में जब संतुलन बनेगा तभी जीवन में सफलता और शान्ति आयेगी। व्यक्ति का संतुलन बनेगा तो समाज का संतुलन बनेगा। समाज के अन्दर प्रत्येक वर्ग अपने स्वभाव और कर्म की कुशलता के अनुरूप मान और सम्मान पायेगा। फिर भेद नहीं होंगे। वर्ण व्यवस्था के कारण भारत में दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियां रहीं। हम लोग बहुत बंटे। जातियों के कारण बंटे। बहुत भाग हो गये। यद्यपि दूसरे मजहबों और पंथों में भी यह बातें हैं, उनमें भी अलग अलग कारणों से समाज को बंटते हुए देखा गया है। अच्छा हो अगर हम इस बात को सही ढंग से समझ लें।

आप अपने से प्रश्न करें। आप पढ़ते हैं और बच्चों को पढ़ाते हैं तो उस समय आप ब्राह्मण हुए। जब आप परिवार और बच्चों की रक्षा करते हैं, कभी उनकी खातिर भिड़ने की भी नौबत आ जाती है तो आप उस समय क्षत्रीय धर्म निभाते हैं। आप परिवार का भरण पोषण करने के लिए पैसा कमाते हैं, घर में लाते हैं तो उस समय आप वैश्य हुए और जरूरत पड़ने पर घर की सफाई के लिए झाड़ू भी लगानी पड़ती है, या रोज़ अपने शरीर तथा छोटे बच्चों या बूढ़े माँ बाप की शुद्धि करते समय आप शूद्र नहीं तो क्या हुए? आपको समझ आयेगा कि **हर आदमी ब्राह्मण भी है, क्षत्रिय भी है, वैश्य भी है और शूद्र भी है। तो फिर भेद क्यों? अजीब बात है कि जो गंदगी करे वह ऊँचा और जो गन्दगी को साफ़ करे वह नीचा।** भगवान कृष्ण ने अगर झूठी पत्तलें उठाई और ब्राह्मणों के चरण धोये तो क्या उनका स्थान नीचा हो गया?

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि यदि परब्रह्म को प्राप्त करने की कामना है तो आत्मसाक्षात्कार करना होगा। तामसिकता का प्रभाव हो तो व्यक्ति का व्यवहार समग्रता से कठोर होगा, वह निर्दयी, आलसी, जिद्दी

और हठीले स्वभाव का होगा। वह कुछ भी सुनना और समझना नहीं चाहेगा। जिन्हें किसी की नसीहत अच्छी नहीं लगती, जिन्हें धर्म सेवा और परोपकार के कार्य पसन्द नहीं आते, जिनका भोजन चटपटा और नशे वाला हो। जिसे अपने दुर्गुणों से भी प्यार हो।

जो लोग विचार तो करते हैं पर स्वभाव के कारण संभल नहीं पाते, जिनमें जोश ज्यादा है और होश कम है, जिनमें गति अधिक है और संतुलन कम है, जिनमें सहनशीलता कम, व्यग्रता अधिक है, जो काम को बिना सोचे समझे तीव्रता से कर देते हैं, जिनमें राजनीति, कुटिलता, वक्रता दिखाई देती हो वे लोग राजसिक प्रवृत्ति से युक्त हैं। जो शांत, सहज, सरल, उदार, सहयोगी भावना वाले, दयालु स्वभाव के हैं, जल्दी संतुष्ट हो जायें, थोड़ा पाकर भी प्रसन्न बने रहें, परोपकारी हैं, प्रेम युक्त हैं, मन में सेवा भाव रखें, जिनमें धार्मिक भाव अधिक हों, वे सात्विकता से युक्त हैं। जो परम ब्रह्म की तरह चलना चाहते हैं उन्हें सबसे पहले अपना स्वभाव तथा रहन–सहन सात्विक बनाना चाहिये। सात्विक भोजन खायें। सात्विक लोगों की संगति में बैठना शुरू करें। उनके कमाने का ढंग भी गलत नहीं होना चाहिये। कमाई का कुछ भाग जन सेवा में अर्थात् परमात्मा को भोग लगाने के लिए खर्च करना चाहिए। **आत्मा को प्रार्थना का भोग लगाएं और बुद्धि को शुद्ध बनाने के लिये बुद्धि को ज्ञान का भोजन दें, मन को सत्संग का स्वाद चखायें। प्राणों को ठीक रखने के लिये रोग, भोग, भय, चिंता और क्रोध में ऊर्जा न जलायें।** शरीर को ठीक रखने के लिये उससे आसन, नियम, अनुशासन और व्यवस्थित जीवन का पालन कराएं। भगवान श्रीकृष्ण ने फिर कहा :

बुद्धया विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा राग द्वेषौ व्युदस्य च।।५१।।

बुद्धि को शुद्ध बनाओ। **धृत्यात्मानम् नियम्य च** अनुशासन बनाये रखने के लिये अपने अन्दर दृढ़ता पैदा करो। विषयों का त्याग करो और राग द्वेष से रहित होकर इस मार्ग में पग रखो। भगवान कहते हैं कि सबसे पहले बुद्धि को शुद्ध करें। **समस्त प्राणी जगत में परमात्मा ने केवल मनुष्य को**

बुद्धि दी है। इस बुद्धि के बल पर ही इन्सान दूसरे प्राणियों को नचाता है, वश में रखता है। शेर जैसे बलशाली और खूंखार पशुओं को भी इन्सान अपनी बुद्धि की शक्ति से नचाता है। कितनी बड़ी शक्ति है आपके पास। लेकिन बुद्धि के इस बल को शुद्ध बनाओगे तो यह आपका कल्याण करेगी, नहीं तो चतुर, चालाक दुष्ट और धूर्त लोगों की बुद्धि उन्हें रसातल तक ले जायेगी।

बुद्धि आपको परमात्मा की तरफ भी ले जा सकती है और कुटिल, दुष्ट और धृष्ट भी बना सकती है। इसलिये सज्जन लोग यही कामना करते हैं कि भगवान ने जो बुद्धि सूरदास को दी, जिसकी खड़ताल की ताल में बंधकर भगवान आ गये, जो बुद्धि तुलसी के दोहों में प्रदान की कि उसकी दृढ़ता के चलते स्वयं राम दर्शन देने आ गये, भक्ति का जो बल ऋषियों को दिया कि उन्हें आत्मसाक्षात्कार हो गया, जो प्रभु ने मीरा को दिया कि वह जीवित आप में समा गयी, परमात्मा वैसी बुद्धि, वैसी शक्ति, वैसा प्रभु हमें भी प्रदान करें।

अतः परमात्मा से मांगना तो यह मांगना कि जो बुद्धि उसने दी है उसे अपनी कृपा से शुद्ध रखें। **परमात्मा ने आपको बुद्धि देने के बाद भी उसकी शुद्धता अपनी कृपा पर रखी है। परमात्मा की कृपा न हो तो बुद्धिमान लोग मूर्ख लोगों के घरों में नौकरी चाकरी करते देखे जाते हैं।** बुद्धिमान मुनीम निरक्षर सेठ के सेवक है। सेठ का एकाउंटेंट भी बुद्धिमान, चतुर चालाक और होशियार है। लेकिन सेठ के घर में नौकरी कर रहा है। सेठ बुद्धिमान नहीं है। अपना नाम नहीं लिख सकता, उसका शरीर भी ठीक नहीं है। बोलता है तो जीभ लड़खड़ाती है। अब ये बुद्धिमान उसके घर में नौकर क्यों है ? पिछले जन्म के कर्म और परमात्मा की कृपा में कमी ने इस जन्म में ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि सेठ के घर में बुद्धिमान आदमी नौकर बना बैठा है। इसलिये परमात्मा से यह दो चीजें मांगो कहना कि शुद्ध बुद्धि देना और अपनी कृपा देना।

अर्जुन ने कृष्ण से अस्त्र शस्त्र और सैन्य बल नहीं मांगा। उसने तो भगवान से भगवान मांगा। उनकी कृपा मांगी। अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा कि वे उसके रथ को हांकने वाले सारथी बन जायें। रथ को जिधर जाना

चाहिये उधर ले चलें। अर्जुन ने किसी साधरण रथ को ले चलने की बात नहीं कही। अर्जुन के कहने का तात्पर्य, उसकी बुद्धि ओर भक्ति रूपी रथ को उचित दिशा में ले चलने से था। बस इतनी कृपा करने की मांग की थी अर्जुन ने। **यदि इंसान अपने अंदर उठती आवाज का आदर करना सीख जाये तो वह कभी पाप नहीं कर सकता।**

विशुद्ध बुद्धि से युक्त होकर नियमों को दृढ़ता से अपनायें। नियम और सिद्धांत बना लेना आसान है पर उनका पालन करना मुश्किल। नियम बनाओ सिद्धांत अपनाओ और उसके बाद दृढ़ बन जाओ। जीवन में जो आदमी बहुत लचीला है, बात बात में समझौतावादी है, या थाली के बैंगन की तरह जिधर ढाल देखा उधर लुढक गया, या ऐसा बन जाय कि गंगा गये तो गंगादास, जमना गये तो जमनादास; तो ऐसे लोग भगवान की तरफ नहीं चल सकते। परमात्मा की तरफ़ आने के लिये बहुत दृढ़ता चाहिये।

जिस बात को मानो, उसे पहले जानो और जानकर उसे **मान लो; जिसको मान लो उसके ऊपर अपने आप को कुर्बान कर दो। अपने को पूरी तरह अर्पित कर दो।** मानना महत्त्वपूर्ण नहीं, **मानने से पहले जानना महत्त्वपूर्ण है, जान लिया तो मानिये और मान लिया तो दृढ़तापूर्वक अपनाइये।** फिर कुछ भी हो जाये एक राह पकड़ कर उस पर चलते चले जाना। जिन्होंने दृढ़ता से अपनाया वे तो पहुंच गये। जिनके मन में शंका आई कि बात बनेगी या नहीं, सच भी है या नहीं, कहीं ऐसा तो नहीं कि हम गलत ही चल रहे हों, वे वहीं के वहीं रह जाते हैं। आपको शंकाओं को तोड़ना है। **आदमी के अन्दर सबसे ज्यादा तोड़ने वाली चीज़ शंका है।** संदेह और मन का डावांडोल होना, व्यक्ति को कहीं भी नहीं पहुंचने देता।

हम लोग जब साधना में थे तो हमने देखा कि स्वामी सदानन्द जी महाराज सारा कार्य अपने हाथ से करते थे। कभी किसी आदमी से कोई सहायता या सेवा नहीं ली। गांव का एक आदमी आया और उसने महाराज जी से पूछा कि गांव से कोई सामान लेकर आऊं। उन्होंने कहा "थोड़ा कपड़ा फटा हुआ है, कुछ काम करना पड़ेगा इसलिये गांव से थोड़ी श्रद्धा और तर्क दोनों साथ ले आना और थोड़ा सा विश्वास भी ले आना।" बात

भगवान श्रीकृष्ण ने **'दर्प'** अर्थात् घमंड का प्रदर्शन भी अकल्याणकारी बताया है। किसी भी रूप में परमात्मा को प्रदर्शन पसंद नहीं। सहज, सरल भाव से परमात्मा की भक्ति करें । उसी भाव से संसार के बीच विचरण करें। परमात्मा से जुड़े महानुभाव लोगों के बीच, भीड़ में, प्रतीत तो साधारण होते हैं लेकिन उनकी बातें संसार से उलट एवं असाधारण होती हैं।

यूनानी दार्शनिक सुकरात, दोपहर को मशाल जलाकर भीड़ में से चले जा रहे थे। लोग पूछते हैं, "मशाल किसलिये जलाई है?" बोले, "प्रकाश के लिये।" 'पूछा", "धूप खिली हुई है।" बोले, "यह दुनिया सोई पड़ी है। मैं देखना चाहता हूं कि कोई जागा हुआ इन्सान है या नहीं? इन्हें हिलाओ तो हिलते नहीं, जगाओ तो जागते नहीं। भीड़ के पीछे भीड़ भाग रही है। आगे कोई एक भाग रहा है तो सब पीछे भाग रहे हैं। लेकिन उनको यह नहीं मालूम कि किस दिशा में और क्यों जा रहे हैं। सोचने समझने की शक्ति किसी के पास नहीं है। एक दूसरे की नकल कर सब अपने अपने अहंकार का प्रदर्शन करने में लगे हुए हैं। कुछ लोग संग्रह में लगे हैं तो बहुत सारे और लोग भी उनको देखकर तरह तरह की चीजें इकट्ठा करने में लग गए हैं। ये सब लोग एक तरह की नींद में हैं। वे एक तरह की मूर्खता, मूढ़ता और अहंकार में जी रहे हैं। इसलिए मशाल जलाकर देखना चाहता हूं कि क्या कहीं कोई जागा हुआ इन्सान है?" ज़ो लोग धन या सत्ता के नशे में चूर हैं वे यह सोचते हैं कि वे एक बहुत बड़े मुकाम पर पहुंच गये हैं। बहुत ऊंची मंजिल पर पहुंच गए हैं। हमसे बढ़कर कोई नहीं। लेकिन उनके बारे में उससे राय पूछना जो उनको ठीक तरह से जानता हो।

अमेरिका में एक बहुत बड़े धनपति थे एन्ड्रयू कारनेगी। वे अंत में लगभग दस अरब डालर की सम्पत्ति छोड़ कर मरे थे। मृत्यु से कुछ दिन पहले उनके मन में आया कि अपने सेक्रेटरी को बुलाकर अपनी आत्मकथा लिखवाऊँ। उन्होंने अपने सेक्रेटरी को बुलाया और कहा, "बैठकर मेरी आत्मकथा लिखो। मैं जैसा बोलता जाऊंगा वैसा तुम लिखते जाना।" उसने अपने बचपन की सारी बातें बताईं कि वह कितना गरीब था, किस तरह से पैसा कमाया। तब उसकी दिनचर्या किस तरह की होती थी। सब कुछ

लिखवाया। लिखवाने के बाद वह अपने सेक्रेटरी से पूछता है, "अब तू बता कि तुझे अगर अगला जन्म मिले और भगवान तेरे सम्मुख हों तो तू क्या बनना चाहेगा?" और ऐसा बोल कर वह मुस्कुराया सोचने लगा कि यह ज़रूर यही कहेगा कि मैं सारी ज़िन्दगी यही स्वप्न देखता रहा कि आप जैसा धनपति हो जाऊं। मेरे पास भी गाड़ी हो, कल कारखाने नौकर चाकर हों। इसलिए भगवान से अगर मांगूगा तो यही मांगूगा कि अगले जन्म में मुझे एन्ड्रयू कारनेगी बना दे। उसे विश्वास था कि सेक्रेटरी यही बोलने वाला है।

लेकिन सेक्रेटरी जब बहुत देर तक नहीं बोला तो कारनेगी ने फिर पूछा, "बता तो सही, अगले जन्म में तू क्या बनना चाहेगा? भगवान तेरे सामने हों तो उससे कैसा जन्म मांगेगा?" सेक्रेटरी ने कहा, "साहिब जी, मेरी इच्छा तो सेक्रेटरी बने रहने की है। आप जैसा जीवन मैं नहीं चाहता। जैसे आप रहे हो न, ऐसा नहीं होना चाहता।" कारनेगी को यह सुनकर बड़ा झटका लगा। वह बोला "बहुत लोग मेरे जैसा होने का ख्वाब देखते हैं और तू ऐसी बात कहता है?" उसने कहा, "ऐसा है न कि बहुत लोग बाहर से आपको देख रहे हैं। आपका जीवन कैसे बीता यह तो मैंने देखा और जाना है। फिर आपकी आत्मकथा पढ़ने के बाद और लोग भी जान लेंगे। आप देखिये तो सही कि **आप धन के कितने गुलाम हो गये हैं। कंपनी के दरवाजे खुलने थे तो सबसे पहले आप आते थे, फिर सफाई कर्मचारी। उसके बाद चपरासी, फिर क्लर्क और मैनेजर लोग।** वे सब अपने समय से आते थे और आकर अपनी सीट पर बैठ जाते थे, और टाईम खत्म होने के साथ ही चले जाते थे परन्तु आप सब कुछ बंद करा कर फिर घर जाते थे। ऊपर से कंपनी की सारी चिंता आप करते थे। कंपनी हमेशा आपके साथ साथ रहती थी। घर में भी आप कंपनी का हिसाब करते थे। उधर आप के कर्मचारी घर पहुंचने के बाद बच्चों के साथ खेलते थे और खुश होते थे। लेकिन आपको घर आकर भी अपने बच्चों के साथ खेलने का वक्त नहीं होता था क्योंकि आपके साथ आपकी कंपनी दिमाग में बसी होती थी उसका घाटा मुनाफा बसा होता था। आगे की योजनायें बसी होती थी। **क्या आपने अपनी जैसी गुलामी करने वाला और कोई आदमी देखा है? आप धन**

की सच्ची गुलामी कर रहे हैं। आप के पास अपने लिये कभी समय नहीं रहता। क्या आप कभी अपने को अपनी कंपनी से अलग हटाकर देख पाये? कंपनी आपके लिए है। आपका धन आपके लिए है पर आप अपने लिये कभी नहीं जी पाये। जिस तरह के लाचार इंसान आप रहे हैं वैसी जिंदगी मैं नहीं जीना चाहता। मैं तो अपने आप में बहुत खुश हूं। समय से आता हूं, समय से जाता हूं। निश्चिंत आता हूं और निश्चिंत घर जाता हूं। यह ज़िन्दगी चिंताओं से खोखली करने के लिए नहीं है। **यह जीवन इसलिये तो नहीं है कि मुस्कुराने के लिये भी समय न हो। गाने और गुनगुनाने के लिये भी समय न हो। ऐसी गुलामी मैंने कभी नहीं देखी।** इसलिये अगले जन्म में क्या, इस जन्म में भी मैं आप जैसा नहीं बनना चाहता।"

यह सुनने के बाद कारनेगी अपने को दुनिया का सबसे गरीब आदमी महसूस करता है। सोचता है कि वह तो जीवन को समझ ही नहीं पाया। एक होड़ में शामिल हो गया था। एक झूठे दिखावे में जी रहा था। न सेहत का ध्यान, न नींद का, न परिवार का, न स्वयं का। न खुशियां, न उमंग, न उल्लास। यह कैसी दिखावे की ज़िन्दगी है। दूसरों की नज़र में मैं अमीर हूँ, लेकिन यह अमीरी नहीं है। यह गरीबी, लाचारी और मजबूरी है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि किसी झूठे दिखावे में मत पड़ना क्योंकि तब तुम अपने परमात्मा से और अपने आप से भी दूर हो जाओगे। फिर तुम्हारे जीवन में कोई आनन्द, कोई रस नहीं रह जायेगा। ज़िंदगी को नीरस मत बनाओ। संसार के साधन कमाना लेकिन साधनों को बोझ मत बनाना। यह मानकर रोज़ काम करना कि तुम परमात्मा की नौकरी में हो। उसने जो काम कराने हैं, कराये। **भाग्य से ज्यादा उसने देना नहीं और भाग्य कोई किसी का छीन नहीं सकता।** परमात्मा की नौकरी करते हमारा जो कर्त्तव्य बनता हैं उसे पूरा करना है। मजबूरी में नहीं, प्रसन्नता से क्योंकि यहां आप स्वयं ही नौकर हो और स्वयं ही मालिक। परमात्मा ने इतनी छूट दी है।

इंसान बहुत सी बातें चोट खाने के बाद समझता है, पहले नहीं।

लिखवाया। लिखवाने के बाद वह अपने सेक्रेटरी से पूछता है, ''अब तू बता कि तुझे अगर अगला जन्म मिले और भगवान तेरे सम्मुख हों तो तू क्या बनना चाहेगा?'' और ऐसा बोल कर वह मुस्कुराया सोचने लगा कि यह ज़रूर यही कहेगा कि मैं सारी ज़िन्दगी यही स्वप्न देखता रहा कि आप जैसा धनपति हो जाऊं। मेरे पास भी गाड़ी हो, कल कारखाने नौकर चाकर हों। इसलिए भगवान से अगर मांगूगा तो यही मांगूगा कि अगले जन्म में मुझे एन्ड्रयू कारनेगी बना दे। उसे विश्वास था कि सेक्रेटरी यही बोलने वाला है।

लेकिन सेक्रेटरी जब बहुत देर तक नहीं बोला तो कारनेगी ने फिर पूछा, "बता तो सही, अगले जन्म में तू क्या बनना चाहेगा? भगवान तेरे सामने हों तो उससे कैसा जन्म मांगेगा?" सेक्रेटरी ने कहा, "साहिब जी, मेरी इच्छा तो सेक्रेटरी बने रहने की है। आप जैसा जीवन मैं नहीं चाहता। जैसे आप रहे हो न, ऐसा नहीं होना चाहता।" कारनेगी को यह सुनकर बड़ा झटका लगा। वह बोला ''बहुत लोग मेरे जैसा होने का ख्वाब देखते हैं और तू ऐसी बात कहता है?" उसने कहा, "ऐसा है न कि बहुत लोग बाहर से आपको देख रहे हैं। आपका जीवन कैसे बीता यह तो मैंने देखा और जाना है। फिर आपकी आत्मकथा पढ़ने के बाद और लोग भी जान लेंगे। आप देखिये तो सही कि **आप धन के कितने गुलाम हो गये हैं। कंपनी के दरवाजे खुलने थे तो सबसे पहले आप आते थे, फिर सफाई कर्मचारी। उसके बाद चपरासी, फिर क्लर्क और मैनेजर लोग।** वे सब अपने समय से आते थे और आकर अपनी सीट पर बैठ जाते थे, और टाईम खत्म होने के साथ ही चले जाते थे परन्तु आप सब कुछ बंद करा कर फिर घर जाते थे। ऊपर से कंपनी की सारी चिंता आप करते थे। कंपनी हमेशा आपके साथ साथ रहती थी। घर में भी आप कंपनी का हिसाब करते थे। उधर आप के कर्मचारी घर पहुंचने के बाद बच्चों के साथ खेलते थे और खुश होते थे। लेकिन आपको घर आकर भी अपने बच्चों के साथ खेलने का वक्त नहीं होता था क्योंकि आपके साथ आपकी कंपनी दिमाग में बसी होती थी उसका घाटा मुनाफा बसा होता था। आगे की योजनायें बसी होती थी। **क्या आपने अपनी जैसी गुलामी करने वाला और कोई आदमी देखा है? आप धन**

की सच्ची गुलामी कर रहे हैं। आप के पास अपने लिये कभी समय नहीं रहता। क्या आप कभी अपने को अपनी कंपनी से अलग हटाकर देख पाये? कंपनी आपके लिए है। आपका धन आपके लिए है पर आप अपने लिये कभी नहीं जी पाये। जिस तरह के लाचार इंसान आप रहे हैं वैसी जिंदगी मैं नहीं जीना चाहता। मैं तो अपने आप में बहुत खुश हूं। समय से आता हूं, समय से जाता हूं। निश्चिंत आता हूं और निश्चिंत घर जाता हूं। यह ज़िन्दगी चिंताओं से खोखली करने के लिए नहीं है। **यह जीवन इसलिये तो नहीं है कि मुस्कुराने के लिये भी समय न हो। गाने और गुनगुनाने के लिये भी समय न हो। ऐसी गुलामी मैंने कभी नहीं देखी।** इसलिये अग़ले जन्म में क्या, इस जन्म में भी मैं आप जैसा नहीं बनना चाहता।"

यह सुनने के बाद कारनेगी अपने को दुनिया का सबसे गरीब आदमी महसूस करता है। सोचता है कि वह तो जीवन को समझ ही नहीं पाया। एक होड़ में शामिल हो गया था। एक झूठे दिखावे में जी रहा था। न सेहत का ध्यान, न नींद का, न परिवार का, न स्वयं का। न खुशियां, न उमंग, न उल्लास। यह कैसी दिखावे की ज़िन्दगी है। दूसरों की नज़र में मैं अमीर हूँ, लेकिन यह अमीरी नहीं है। यह गरीबी, लाचारी और मजबूरी है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि किसी झूठे दिखावे में मत पड़ना क्योंकि तब तुम अपने परमात्मा से और अपने आप से भी दूर हो जाओगे। फिर तुम्हारे जीवन में कोई आनन्द, कोई रस नहीं रह जायेगा। ज़िंदगी को नीरस मत बनाओ। संसार के साधन कमाना लेकिन साधनों को बोझ मत बनाना। यह मानकर रोज़ काम करना कि तुम परमात्मा की नौकरी में हो। उसने जो काम कराने हैं, कराये। **भाग्य से ज्यादा उसने देना नहीं और भाग्य कोई किसी का छीन नहीं सकता।** परमात्मा की नौकरी करते हमारा जो कर्त्तव्य बनता हैं उसे पूरा करना है। मजबूरी में नहीं, प्रसन्नता से क्योंकि यहां आप स्वयं ही नौकर हो और स्वयं ही मालिक। परमात्मा ने इतनी छूट दी है।

इंसान बहुत सी बातें चोट खाने के बाद समझता है, पहले नहीं।

बहुत सारे लोगों को आग में अपना हाथ डालकर समझ में आता है कि आग से हाथ जलेगा। सुना भी होता हैं और पढ़ा हुआ भी है लेकिन समझा हुआ अनुभव किया हुआ नहीं है। समझेगा तब जब खुद का हाथ जलायेगा। फिर कहेगा कि आग में हाथ नहीं डालना चाहिये। चोट खाये बिना लोग नहीं समझते। **'अहंकार बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं'** भगवान कहते हैं, काम, क्रोध परिग्रह और संग्रह करने की वृत्ति रोग हैं। घर गृहस्थी चलानी है तो संतान भी होगी। दुष्टों को दबाना या विषात वातावरण का विरोध भी करना पड़ेगा। ऐसा करने में काम और क्रोध दोनों का प्रयोग करना पड़ता हैं पर मर्यादा में। इसलिये घर गृहस्थी में काम को कामदेव कहा है, लेकिन क्रोध को क्रोध देव नहीं कहा। घर गृहस्थी में आदमी फिर भी एक मर्यादा में बंधा हुआ है। लेकिन जैसे ही व्यक्ति मर्यादा से बाहर जाता है उसका पतन शुरू हो जाता है। मर्यादा का हनन कर आदमी अपने आप को नीचा कर लेता है। आवेश में आ जाना दौर्बल्य है। दूसरे को दबाने के लिए क्रोध का प्रयोग अनुचित है लेकिन दुष्टता को दबाने के लिए क्रोध का प्रयोग सही है।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि **परिग्रह को छोड़ अपरिग्रह को अपनाना है। परिग्रह रोग है।** आपकी अँगुली अगर सूज जाये, फूल जाए, बढ़ जाए तो वह रोग हैं। आंख जैसी है वैसी ही सुन्दर हैं। थोड़ी टेढ़ी हो जाए या भैंगापन आ जाये तो सौंदर्य बिगड़ जाएगा। आप स्थिर रहें तो वह मर्यादा है। इधर उधर भटकना अमर्यादित होगा। आप स्वस्थ रहना चाहते हैं। मोटे ताजे भागते दौड़ते नजर आयें, लेकिन यदि सिर्फ़ आपका पांव ही मोटा हो जाये तो? इसे हाथी पांव (फाइलेरिया या एलिफैंटाइटिस) कहते हैं जो एक खराब बीमारी है। तब आप डॉक्टर के सामने हाथ जोडेंगे कि मेरा पांव जल्दी ठीक करो। **क्रोध का आवेश दुष्ट को दबाने के लिए है तो वह पवित्र है, परंतु क्रोध अगर अनियंत्रित होकर आपको ही दबाने लग जाये आप पर हावी हो जाए तो फिर वह अपवित्र है,** तब उसको रोकना है, नियंत्रण में लाना है। अमर्यादित क्रोध समाज में हिंसा का वातावरण पैदा कर देगा परिवार में एक व्यक्ति भी क्रोधी हो जाये तो घर की शांति भंग

हो जाएगी। **घर में एक व्यक्ति ज़िद्दी हो जाये तो सारे लोग दुखी हो जाते हैं।** खानदान में एक लालची आदमी पूरे खानदान की हालत खराब कर देता है क्योंकि वह हमेशा ही किसी न किसी चीज़ पर हक जमाता रहेगा। किसी की सुनेगा नहीं, लड़ेगा, मरने की धमकी देगा। अपनी ज़िद मनवाने के लिए घर की शांति छिन्न–भिन्न कर देगा। कभी पंडित के पास आप उसका पत्रा दिखाने जायेंगे तो कभी किसी गुरु के पास आशीर्वाद लेने। सिर्फ इसलिए कि घर परिवार में कोई मर्यादा से अधिक लालची हो गया है।

मर्यादाओं से जीवन का सौंदर्य बनता है। मर्यादाओं से रहित जीवन में असंतोष, अशांति, दुख, कलह, क्लेश, पीड़ा संताप, घर कर लेते हैं। पूरे समाज का वातावरण बिगड़ने लगता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मर्यादा और सीमा के अन्दर संग्रह करना परिग्रह नहीं होगा। केवल अति आवश्यक वस्तुओं को साथ रखो और अनावश्यक को छोड़ दो। जीवन एक यात्रा है। यात्रा में जो ज्यादा सामान लेकर चलते हैं उनकी यात्रा दूभर हो जाती है। यात्रा में कम से कम सामान लेकर चलना चाहिए। केवल आवश्यक चीजें ही पास में होनी चाहिये जिन्हें लेकर आदमी आसानी से चले। हवाई अड्डे पर जिनके पास कम सामान होता है उनके लिये हरा मार्ग (Green Channel) है। न कोई आपत्तिजनक वस्तु है, न ज़्यादा भार इसलिये उनके लिए रोक टोक नहीं है। जिसके पास ज़्यादा सामान है उसके लिये हर जगह रोक टोक है। अनेक बंधन हैं। कम ये कम सामान और जहां पहुंचना है उस मंजिल का ध्यान। लेकिन हम लोग बटोरने में ही अपनी शक्ति लगा रहे हैं।

मधुमक्खियों ने शहद एकत्र कर लिया पर उसका प्रयोग नहीं कर सकीं। कोई और छीन कर ले गया। क्या हमने कभी सोचा कि जितना हम जोड़ते जा रहे हैं क्या हम इतने का प्रयोग कर पाएंगे? अगर आप कहते हैं कि आप संतान के लिये जोड़ रहे हैं तो क्या आप उनके भाग्यविधाता हैं? संतान का भाग्य तो भगवान के हाथ में है और अगर आप अपने कंधों की सीढ़ियों पर चढ़ाकर उन्हें संसार दिखाना चाहते हैं तो आपको क्या मालूम

है कि यह सीढ़ी कब हट जाये, खिसक जाए। अमरता का प्रमाणपत्र लेकर तो आप दुनिया में आये नहीं हैं।

परिग्रह, अत्याधिक एवं अनावश्यक संग्रह परमात्मा के मार्ग में बाधक है। ज्ञानी ध्यानी लोगों के सामने हमेशा से लोग पैसे का आकर्षण लेकर आते रहे लेकिन उन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ा। कबीर के सामने लोदी नरेश धन लेकर आया लेकिन कबीर ने उस धन की तरफ देखा भी नहीं और यह कहा कि यह खेलने की चीज़ें हैं, आप इनसे खेलो, मेरे किस काम की। हमें जितने की ज़रूरत है उतना मिल जाता है। बेकार की चीज़ें इकट्ठी कर लेने से क्या फ़ायदा।

नागार्जुन को किसी रानी ने रत्नों से जड़ा सोने का एक पात्र देकर कहा, "महाराज आप भिक्षा का भोजन इस पात्र में ग्रहण किया करें।" नागार्जुन के पास अब तक मिट्टी का एक पात्र था। संत नागार्जुन को जैसे ही रानी ने हीरों से जड़ा सोने का पात्र दिया, उन्होंने कहा, "हाँ यह पात्र थोड़े दिन ज़्यादा टिक जायेगा। मिट्टी वाला जल्दी टूट जाता है। चलो यह ले लेते हैं। लापरवाही से उसको पकड़ा और लेकर चल दिए। एक चोर ने देख लिया। साधु के पास इतना कीमती पात्र? चोर पीछे पीछे चल पड़ा। बस्ती से बाहर एक खंडहर था। रात में नागार्जुन वहां सोते थे। प्रकृति के सौंदर्य से पूर्ण शांत एकान्त स्थान था। वे अभी ध्यान में मन टिकाने लगे ही थे, कि सरसराहट सुनाई पड़ी। उन्हें लगा कि कोई है। पीछे मुड़ के देखा तो कोई दिखाई नहीं पड़ा। दाएं बाएं देखा, कोई भी नहीं था।

फिर बैठे। आंखें बंद करने ही लगे थे कि लगा जैसे दीवार से कोई कूदा है, खंडहर की तरफ से कूद कर कोई अन्दर आया है। इधर उधर देखा पर कोई नज़र नहीं आया। तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ। अब इनकी समझ में आया कि आज तक तो किसी ने ध्यान में बाधा नहीं डाली। आज ही कोई बाधा डालने क्यों आया? ध्यान में आया कि यह जो नया बर्तन है इसी कारण बाधा पड़ रही है। जो आया है तो इसके पीछे आया है मेरे पीछे तो कोई आज तक आया नहीं। उन्होंने सोने के उस पात्र को हाथ में पकड़ा और ज़ोर से दीवार के उस पार फेंक कर कहा, "ले भई ! संभाल और

कूदना फांदना बंद कर। मैं भी भगवान के ध्यान में बैठूं। इस बर्तन के कारण तूने मेरा कितना समय खराब किया है। ले जा इसे।"

चोर बर्तन ले कर चल पड़ा। रास्ते में वह सोचता है कि इस साधु के पास ज़रूर इससे भी ज़्यादा कीमती खजाना है जो वह ऐसे कीमती बर्तन फेंकता फिर रहा है। फिर सोचने लगा कि बड़े बड़े सेठ देखे, राजा देखे। आज तक किसी को इतनी कीमती चीज़ फेंकते नहीं देखा। बात कुछ और है। चोर सारी रात वहीं खंडहर के बाहर बैठा ध्यान मग्न महात्मा जी को देखता रहा। महात्मा जी की जब आंख खुली तो उन्होंने दोनों हाथ आसमान की तरफ फैलाकर कहा, "हे प्रभु! जो दौलत तूने आज बरसाई है कृपा करके रोज़ बरसाया करो। जो आनन्द तूने आज दिया, परमात्मा रोज़ वैसा दिया करो। तेरी बड़ी कृपा होगी।" अब चोर को पक्का विश्वास हो गया कि इसके ऊपर कोई दौलत बरसती ज़रूर है। अब चोर यह सोच कर कि इससे कुछ ज़्यादा वसूलना चाहिये, पास में आया और बोला, "महात्मा जी मैं वही हूं जो रात में कूदा था और आपका बर्तन ले गया था। यह रहा आप का बर्तन संभालो इसको।" महात्मा ने कहा, "यह बर्तन न तेरा है, न मेरा है, पर तू आया किसलिए है?" वह कहने लगा, "आपके पास कोई बहुत बड़ी दौलत है क्योंकि जिसके पास बहुत ज़्यादा कीमती चीजें हों वही छोटी चीज़ की परवाह नहीं करता। आप हमें वह दौलत दे दो कि हम भी लोगों के बीच ऐसे बर्तन उठाकर फेंक दिया करें। या फिर हमें समझाओ कि बात क्या है।" महात्मा जी ने उसे बैठाया और कहा, "हम लोगों के पास एक ही दौलत है और'वह है परमात्मा की कृपा। इसको ऐसे नहीं समझ सकेगा। कुछ दिन ध्यान कर और जब इस खजाने का थोड़ा सा पता पड़ जाये, तब बात करना।"

चोर वहीं टिक गया। महात्मा लोग जब कृपा करते हैं तो चोर पर भी कर देते हैं और न करें तो बादशाह पर भी न करें। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखा। उसका ध्यान टिक गया। जब उसको ध्यान का आनन्द मिलने लगा तो एक दिन कहता है, "महात्मा जी, आज मेरी इच्छा है कि मैं भी वैसा ही खेल खेलूं। लोगों के बीच जाकर ऐसा कटोरा ले जाकर फेंकूं और कहूं

कि इन चीज़ों को पकड़ने में वह आनन्द नहीं है जितना इनको फेंकने में है।'' भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, **परिग्रहम् विमुच्य'** परिग्रह को छोड़ो। संग्रह एक रोग है। शुरू शुरू में हर कोई कामना करता है कि भगवान लाख दो लाख दे दोगे तो मेरा काम चल जायेगा। फिर कभी नहीं मागूंगा। लेकिन जब लाख दो लाख आ जाते हैं तो यह कम लगता है। फिर इस चक्कर में पड़ते हैं कि इसको कई गुना कैसे करें? यह क्रम फिर रुकता नहीं। किसी का भी नहीं रुकता। वह दो लाख दो करोड़ भी हो जाये तो भी कम लगता है। जब करोड़पतियों के बीच बैठने का मौका मिलता है तो देखता हूँ कि उनकी गरीबी भी कभी नहीं जाती। अभाव सदा बना रहता है। उनका कटोरा खाली ही रहता है। किन्तु जिनके कटोरे में परमात्मा की कृपा की एक बूंद पड़ जाती है उनका कटोरा भर जाया करता है।

एक बार जोड़ने का रोग लगा लो तो फिर रात दिन जोड़ने की ही धुन रहेगी। माला फेरते समय मन इधर उधर हो जाता है पर माल गिनते समय मन इधर उधर नहीं होता। बड़ी एकाग्रता होती है उस समय। अपने नोट गिनने में ध्यान इधर उधर नहीं जाता। बैंक में कैशियर नोट गिनता है तो मुसीबत लगती है लेकिन घर में आकर अपने नोट गिनने का मौका मिले तो भोजन छोड़कर भी गिनेगा। सोने को भी मन नहीं करेगा। एक के बाद दो, दो के बाद दस, दस के बाद बीस, व्यक्ति इस चक्र में लग जाता है।

भगवान कहते हैं कि जो इस रोग को छोड़ कर मेरी तरफ आने का प्रयास करता है उसके समक्ष समस्त संभावनायें जाग उठती हैं। भगवान श्री कृष्ण ने एक शब्द और कहा, **'निर्ममः'** अर्थात् **'मेरेपन'** का प्रभाव शरीर मन और बुद्धि पर पड़ता है। पदार्थों के साथ मोह पैदा होता है। **जिस व्यक्ति का संग्रह जितना बड़ा होता है उतना ही बड़ा उसका मोह होता है।** पुराने समय में त्याग और तप का नियम और समय होता था। जो कुछ पास है उसके त्यागने का समय होता था। जीवन के अंतिम समय व्यक्ति सर्वमेध यज्ञ करता था। बच्चों को देने वाली चीज़ें बच्चों को दे देता था, जो बांटनी हैं वह बांट देता था, जो दान करनी हैं वह दान कर देता था और स्वयं पदार्थों की आसक्ति और स्वामित्व से परे हो जाता था। अपने को

'भूतपूर्व' लिखना छोड़ कर हो जाता था अकिंचन, नाचीज़, परमात्मा का दास, दासों का भी दास।

पुराने लोग सर्वमेध यज्ञ करते थे और फिर वन में बैठकर साधना करते थे। सब कुछ त्याग कर परमात्मा की ओर चलने में ज़्यादा रुचि होती थी। हालांकि माया भी परमात्मा की दी हुई है, धन भी और उपयोग की सब चीज़ें भी। परमात्मा ने यह सब उपयोग के लिये दी हैं लेकिन एक समय तक यह उपयोग के लिये हैं, उसके बाद त्यागने के लिये हैं। **जीवन में शरीर को जब जब जितने की आवश्यकता है उतना ही पास रखिए।** यात्रा में जितना चाहिये उतना आपके पास होना चाहिये। पुराने समय में परंपरा थी कि व्यक्ति यात्रा में भिक्षाटन करता था। अलख लगाता हुआ चलता था। लोग भी दर पर आए व्यक्ति को त्यागी वैरागी समझ कर भिक्षा देकर आशीर्वाद लेते थे। उस समय गृहस्थ और साधु दोनों का नैतिक आचरण ऊंचा होता था।

आज युग की धारायें बदल गई हैं। न मांगने वाले लोग उस तरह से मांग सकते हैं और न देने वाले लोग उस तरह से दे सकते हैं। इसलिए इतना अपने पास रख लो जिससे कार्य चल सके। साधक के लिये माना गया है वह दोपहर का भोजन थोड़ा ले, बाकी फल और दुग्ध आदि का सेवन करके रहे। नाप तोल करके भोजन ग्रहण करे। नाप तोल कर अपनी दिनचर्या चलाये। शरीर को जितने वस्त्र की जरूरत हो उतने ही वस्त्र रखने चाहिये। अपने शरीर के नाप के हिसाब से ही आदमी कपड़े पहनता है। अमीर आदमी पचास गज का कपड़ा तो पहनेगा नहीं। आप शरीर के नाप के हिसाब से वस्त्र पहनोगे और जितना पेट में आ सकता है उतना ही खाओगे। जितनी जगह में आपका शरीर लेट सकता है चारपाई भर की उतनी ही जगह आपके प्रयोग में आयेगी। बाकी अगर मन की वासनाओं का हिसाब देखना हो तो उसका आदि अंत नहीं है।

जिस समय व्यक्ति अपने मोह को छोटा कर केवल आवश्यकताएं पूरी करने की व्यवस्था रखे तो फिर साधना होती है। ज्यादा संग्रह के चक्कर में लोग कितने गुनाह कर गलत चीजें इकट्ठी करते हैं। अपनी

आत्मा को कलुषित करते हैं। **इस समय पूरे समाज का वातावरण दूषित हो गया है। इसके परिणामस्वरूप सारी दुनिया में अफ़रा तफ़री दिखाई देती है। इन्सान इन्सान को मिटाने में लगा हुआ है, तबाह करने में लगा हुआ है।** भगवान कृष्ण यहां समझाते हैं कि अगर मेरी तरफ आने की चाह है तो **पदार्थों में आसक्ति को दूर करो,** 'मेरा' वाला भाव तोड़ो। **'शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते'** और संतुष्टि अपनाओ। शांति को जीवन का आधार बनाओ। बिजनेस करो लेकिन शांति भंग नहीं हो। रोजी रोटी कमाओ लेकिन अपनी शांति भंग न होने दो। शांति आपकी सम्पत्ति है उसे खोना नहीं। जो व्यक्ति शांति को महत्त्व देगा वह हड़बड़ाहट में दौड़ेगा नहीं। ज़्यादा के चक्कर में नहीं पड़ेगा। लालच में गलत काम नहीं करेगा। यह एक मीटर (नाप तौल मापक) सामने रख लीजिये कि **जिस काम को करते समय शांति भंग होने लगे, उस काम को तुरंत रोक लें** और विचारें कि कहीं गलत तो नहीं कर रहे थे। बस इतना ध्यान रख कर यदि आप चलें तो आपको भगवान का साक्षात्कार पाने के लिये सीढ़ियों पर चढ़ना आ जायेगा।

परमात्मा की भक्ति और साधना में तल्लीन व्यक्ति का स्वयं का जीवन पारदर्शी बन जाता है जिसमें एक निर्दोष, निष्पाप, निर्मल, शुद्ध और स्वच्छ अन्तःकरण दिखाई पड़ने लगता है। उसकी पारदर्शिता में परमात्मा का नूर और परमात्मा का प्रकाश प्रकट होता है। तब परमात्मा उसका चुनाव कर उसे अपने कार्य करने के लिये नियुक्त करते हैं। भगवान हर किसी का चुनाव नहीं करते। परमात्मा का कार्य करने का पात्र बनिए क्योंकि भगवान सेवा कार्य का अधिकार उन्हीं को देते हैं जो सेवा करने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। **जैसे बादल से ढक जाने से सूर्य का प्रकाश और उसका स्वरूप ओझल हो जाता है वैसे ही हमारे अंतःकरण पर संसार की माया का आवरण आ जाने के कारण परमात्मा का प्रकाश प्रतिबिंबित नहीं हो पाता,** परमात्मा की झलक नहीं मिल पाती। इसलिये बुद्धि का शुद्ध एवं परिष्कृत होना नितांत आवश्यक है। जीवन में नियमों की दृढ़ता आवश्यक है। इन्द्रियों की विषय वासनाएं व्यक्ति को आकर्षित करती हैं उन पर

नियंत्रण रखना आवश्यक है। संसार में उलझाने वाले राग द्वेष पर नियंत्रण रखते हुए अपने को स्थिर करना अत्यन्त आवश्यक है।

एकांत साधना द्वारा आत्मिक शक्तियों को जागृत करना, भोजन को नियंत्रित करना, आसन की सिद्धि बनाना तथा काम, क्रोध, संग्रह की वृत्तियां, संसार के आकर्षण और माया जो हमें संसार से बांधती है, इन सबसे मुक्ति पाते हुए हमें ऊपर उठना चाहिये। भगवान कहते हैः

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्.क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।। ५४।।

जो ब्रह्मभूत हो गया, परमात्मा में जो तल्लीन हो गया, **'न शोचति न काङ्.क्षति',** वह न फिर किसी चीज़ का शोक करता है और न किसी चीज़ को पाने की कामना। वह इन सबसे परे हो जाता है। उसमें किसी चीज़ की चाह नहीं रह जाती। **समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्** प्राणी मात्र से सम व्यवहार करते हुए और संतुलन की स्थिति बनाते हुए वह मेरी परमभक्ति को प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी में भक्ति तो रखता ही है। कोई सत्ता की भक्ति करता है, कोई धन की भक्ति करता है, कोई उन लोगों की भक्ति करता है जिनसे कुछ पाना होता है। व्यक्ति किसी न किसी रूप में भक्ति करता है जिसमें उसका मन टिकता ही है। जिसके इर्द गिर्द आपका मन परिक्रमा करता है वहीं आपकी भक्ति टिक गई जानो। लेकिन यहां भगवान श्रीकृष्ण समझाते हैं, **'मद्भक्तिं लभते पराम्'** शुद्ध बुद्धि वाला व्यक्ति मेरी भक्ति करता है। **'ध्यानयोग परो नित्यम्'** जो व्यक्ति ध्यान योग के नियमों में नित्यप्रति संलग्न रहता है वह मेरी भक्ति का सुपात्र है। कर्मकांडों में शुचिता, देवी देवताओं की आराधना आदि, वाह्य चरण होते हुए भी भक्ति के ही रूप हैं।

ऋषि लोगों ने इसलिये कहा **'सावित्रीं अप्यधीयित गत्वा अरण्यं समाहित'** अरण्य के एकांत में जाकर गुरुमंत्र का या इष्ट देव के मंत्र का ध्यान करना चाहिये। एकांत स्थान, जहां कोलाहल न हो, संसार का व्यापार न चलता हो, जहां किसी प्रकार की विघ्न बाधा न पड़े, ऐसा स्थान चुनकर, वहां

जाकर नित्य नियम से बैठना चाहिये। दुःस्वप्न आयें, कुविचार आयें तो मानना चाहिये कि अंतःकरण दूषित होने लगा है। जैसे आप अपने वस्त्रों की स्वच्छता पर ध्यान देते हैं उसी प्रकार मन की सफ़ाई पर भी ध्यान देना चाहिए। मन को मैला होने से बचाइए। मन में किसी के प्रति वैर भाव जागा तो समझो मन में मैल आई है।

आश्रमों में एक परम्परा चलती है। सभी साधक लोग शाम को भ्रमण करने के लिये निकलते हैं। निर्देशक उनके साथ होते हैं। सभी कीर्तन करते हुए, मंत्र का जाप करते हुए साथ साथ चलते हैं। थक जाने पर थोड़ी देर बैठ कर उस दिन की दिनचर्या की समीक्षा होती है कि कहां दोष रह गये, कहां चूक हुई। प्रत्येक व्यक्ति अपने अंतःकरण का परिचय देकर अपने मन में उठे विकारों, किसी के प्रति उत्पन्न वैर भाव को व्यक्त करता है। यदि किसी ने किसी की निंदा की तो उसका अंतःकरण कलुषित हुआ है। अतः सब के सम्मुख वह अपने दोष और कलुषित को स्वीकार कर अपनी त्रुटियों के लिए परम सत्ता से क्षमा याचना करता है। अंतःकरण को शुद्ध करने का यह एक प्रभावी तरीका है। इसके बाद दूसरे व्यक्तियों से पूछा जाता है कि साधक ने अपनी स्वीकरोक्ति में जिन व्यक्तियों का नाम लिया और परमात्मा से क्षमा मांग ली, क्या वे व्यक्ति भी उसको माफ़ करते हैं?। ये दूसरे व्यक्ति भी मन में सोचते हैं कि यह बात वहीं समाप्त हो जानी चाहिये। **नागफनी अन्दर नहीं जागनी चाहिये। उसके कांटे नहीं उगने चाहिये। मन के ऊपर जो भी धूल गिरी रोज़ की रोज़ धुलती जाये तो अच्छा है। अगर आपने अपने को रोज़ निर्मल कर लिया तो मन स्वच्छ रहेगा।** आपका मन पारदर्शी बनेगा। पारदर्शी मन द्वारा की गई साधना खरी होगी। मन पारदर्शी बनता है तो परमात्मा की अनुभूतियां, उसका प्रकाश आपके अंतःकरण को पार कर आपके व्यक्तित्व में, आपके चेहरे पर प्रकट होता है। वाणी में मुखरित हो जाता है। कर्मों और कृत्यों में दिखाई देने लगता है। आपकी कृतियों और रचनाओं में प्रकट होने लगता है।

व्यक्ति जैसी उपासना करता है, जैसे लोगों के निकट बैठता है वही अनुभूतियां उसके चेहरे पर दिखाई देती हैं। जो जैसा है उसकी छाया

उसके हावभाव में प्रकट होने लगती है। दलालों की भाषा, व्यवहार, क्रिया कलाप अलग ही होते हैं, चाहे कोई शेयर बाजार का दलाल हो या फिर ज़मीन जायदाद खरीदने बेचने का काम करता हो। किसान का हावभाव अलग होगा। ज्ञानियों की पहचान अलग दिखाई देगी, भक्तों की अलग। सब की हरकतें अलग किस्म की होती हैं। हमारा अंतःकरण हमारे क्रिया कलापों और जीवन प्रणाली का परिचायक बनता है क्योंकि चेष्टायें चेहरे पर प्रकट होने लगती हैं। **परमात्मा ने हमारा चेहरा ऐसा बनाया है कि हम न भी बोलें तो भी हमारी आंखों से ही हमारी प्रसन्नता, हमारी बेईमानी, ईमानदारी, हमारा छल और कपट सब प्रकट हो जाता है। आपका प्रेम आपकी आंखों से झलकता है।** आपके अंतःकरण की शुद्धता (या कुटिलता) चेहरे पर प्रकट हो जाती है। कई लोग अत्यन्त प्रेमपूर्ण होते हैं और कई लोग ऐसे होते हैं कि जहां वे जायेंगे वहीं कलह क्लेश हो जाती है। वे इसे अपनी किस्मत का दोष कहते हैं, अपने दोष को नहीं देखते। अतः अपने अंतःकरण को ऐसा बनाइए जिसमें प्रसन्नता हो, उल्लास हो, उमंग हो और पूर्णरूप से शांति हो। शांति आपके चेहरे और हाव भाव से प्रकट होनी चाहिये। केवल दिखाने के लिए नहीं वरन् आपके जीवन का आधार ही शांति होनी चाहिए।

रामकृष्ण परमहंस ने लड़ते हुए अपने दो शिष्यों से पूछा कि झगड़ा किस बात का है? दोनों अपने को दूसरे से बड़ा बता रहे थे। रामकृष्ण परमहंस ने कहा, "इसका निर्णय मैं कर देता हूं। तुममें से जो दूसरे को बड़ा मान ले वह बड़ा है।" दोनों शिष्य जो अभी तक एक दूसरे को छोटा दिखाने में लगे थे, अब एक दूसरे को बड़ा बताने में लगा गए। बड़प्पन यही है कि आप दूसरे को बड़ा बनाने, करने और मानने लग जाएं, दूसरे को मान देने लगें। ऐसा करने में आप जो अपने को झुकाते हैं वह झुकाना नहीं वरन् अपने आपको बड़ा कर लेने की स्थितियां हैं। यह भावना आपके अन्दर हमेशा उजागर रहनी चाहिये। इसलिये **'समः सर्वभूतेषु'** हमें समस्त प्राणी मात्र में समानता और संतुलन का भाव रखकर चलना चाहिए। सबके प्रति एक जैसा भाव। **चींटी और हाथी में एक जैसा जीवन है, चैतन्य है। हमें उस जीवन, उस चैतन्य के प्रति आदर भाव रखना है।** जब व्यक्ति सबके

प्रति एक स्वभाव रखने लग जाये तो उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है कि न काहू की दोस्ती न काहू से बैर'।

भगवान कहते हैं **'मद्भक्तिं लभते पराम्'** ऐसा व्यक्ति तब मेरी भक्ति को प्राप्त करता है। बात बड़ी गहरी है। सबके प्रति समभाव रख लीजिये। किसी के प्रति कोई वैर, निंदा, आलोचना, चुगली, कटुता, धृष्टता नहीं। केवल सहज रूप से जीवन चलाते रहिए। क्योंकि वैर या लड़ाई, कटुता या आलोचना कभी खत्म नहीं होतीं। एक बार शुरू हो गई तो चलती चली जायेंगी। भगवान कहते हैं:

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवान्पोति शाश्वतं पदमव्ययम्।। ५६।।

सर्व कर्माणि, समस्त कर्मों को **अपि सदा कुर्वाणो**, सदैव करते हुए, **मद्व्यपाश्रयः** मेरे आश्रय को संपूर्ण रूप से प्राप्त कर लो। अर्थात् कर्मों को करो तो उन्हें भी यह मानकर करो कि वह सब मेरे लिये कर रहे हो। जैसे आप अपने बच्चों के लिये काम करते हैं, अपने परिवार के लिये, वैसे ही मेरे लिए कर्म करो। प्रायः आदमी बच्चों के बहाने अपने अहंकार का प्रदर्शन कर रहा होता है। बच्चों का नाम तुम इसलिये भी लेते हो कि बच्चों और पत्नी पर रोब डाल सको कि उन्हीं के लिये ही तो तुम मेहनत कर रहे हो। तुम्हें न अपने खाने का ध्यान है, न पहनने का, न सोने का, सब उनके लिए ही करते हो। **भगवान कहते हैं कि जिसे अहंकार नचाये वह संसारी है और जो मेरे प्रेम में नाच कर संसार के कर्म करे वह मेरा प्यारा भक्त है।** आदमी की आवश्यकताएं बहुत नपी तुली हैं। अगर आवश्यकताओं को बढ़ाने लग जाओ तो उनकी कोई सीमा नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं **मत्प्रसादादवान्पोति शाश्वतं पदमव्ययम्** जो व्यक्ति मेरे लिये कर्म करे वह मेरी कृपा से शाश्वत, अविनाशी पद को प्राप्त करेगा। मीरा ने कहा, **'म्हानै चाकर राखो जी। चाकर रहसूं बाग लगासूं'** कि "हे कृष्ण ! मुझे अपनी नौकरी में रख लो। मैं तेरी नौकरी में रहूँ , बाग लगाऊं, सवेरे उठूं तेरे सारे काम करू। तुझे मनाऊं, तुझे रिझाऊं, तेरे लिये गाऊं। तेरे लिये नाचूं, तेरे लिये जीऊं, सब कुछ तेरे लिये ही करूँ।

इसलिये मुझे अपनी नौकरी में रख लो।" भगवान के सम्मुख संपूर्ण समर्पण। परमात्मा के लिये कर्म करना है उसका चाकर बनकर। मीरा ने अपने आपको उसके हवाले कर दिया। जैसे नौका पर बैठने के बाद आप चलाने वाले मल्लाह के ऊपर सब कुछ छोड़ देते हैं वैसे ही जीवन नैया को परमात्मा के सहारे छोड़ दीजिये।

ब्राउन बहुत अच्छे लेखक हुए हैं। उन्होंने एक ग्रंथ लिखा A Literary History of Persia (ईरान का साहित्यिक इतिहास) जिसमें अत्तार नाम के एक चिंतक के उदाहरण दिये हैं। एक व्यक्ति जब परमात्मा की ओर जाना चाहे तो उसे तीन सावधानियां बरतनी चाहिये। पहली, अगर परमात्मा खुश होकर दोनों लोकों का साम्राज्य भी दे तो भी आंनदित नहीं होना क्योंकि यह भौतिक वस्तु के प्रति लोभ का द्योतक होगा। दूसरी, अगर परमात्मा उसे वापिस ले ले तो फिर दुःखी नहीं होना, निराश नहीं हो जाना। क्योंकि इससे यह प्रकट होगा कि तुम्हारे अन्दर कहीं परमात्मा के प्रति इस बात का क्रोध है कि उसने वापिस क्यों ले लिया और चूंकि वश नहीं चलता इसलिये दुःखी हो रहे हो। दोनों बातों में तुम्हारे अंतःकरण की स्थितियों का पता चलता है। पहली से लालच और दूसरी में क्रोध। सावधानी वाली तीसरी बात है कि **'स्तुति' यानि तारीफ़ और निंदा, पक्षपात दोनों से प्रभावित नहीं होना। अगर हो गये तो लगेगा कि तुम्हारी आत्मा में कहीं क्षुद्रता है, इसीलिए तुम बहक गये।** उसके दरबार में जाकर उसके साथ बैठने का अधिकार पाने के लिए अपने अन्दर कुछ बड़प्पन लाओ। महापुरुषों की विशेषताओं की नकल करो। उनका अनुकरण करो, अनुसरण करो, उनके पीछे चलो।

वेद मंत्रों में कहा गया हैः **'स्वस्ति पन्था मनुचरेम्'** अर्थात् हम कल्याण का मार्ग अपनायें। सूर्य और चन्द्र का मार्ग कल्याण का मार्ग है। ज्ञानी, दानी और अहिंसक क्षत्रियों की संगति से अपने जीवन को सुन्दर बनायें। महापुरुषों की नकल करना ठीक है परंतु अपने अन्दर असली बड़प्पन पैदा करना। विवेकानंद बनना आसान है पर रामकृष्ण परमहंस बनना कठिन है। जो पहला दीया जला है उससे अनेक दीये जल सकते हैं लेकिन पहला

दीया जलना आसान नहीं होता। गुरु पहला दीया है जिससे अनेक दीयों में, ज्योति आयेगी। यह संभव है कि नकल करने वाला इन्सान असल से भी ज़्यादा अच्छा दिखाई देने लगे।

अमेरिका की एक संस्था ने हास्य अभिनेता चार्ली चैपलिन के समकक्ष एक अभिनेता चुनने के लिये एक प्रतियोगिता आयोजित की। निश्चित तिथि पर बहुत सारे कलाकार चार्ली चैपलिन का भेष बनाकर पहुंचे। उन्होंने चार्ली जैसा ही नाटक करना शुरू किया। मज़े की बात यह थी कि स्वयं चार्ली चैपलिन भी प्रतियोगिता में भाग लेने पहुंच गये। लोग उसे पहचान नहीं पाये, लेकिन जब रिजल्ट (परिणाम) सामने आया तो पहले स्थान पर एक नकल करने वाला आया और चार्ली चैपलिन नम्बर दो पर आया। नकल करने वाला प्रतियोगिता में प्रथम श्रेणी में जीत गया। कहावत भी हैं 'गुरु गुड़ और चेला चीनी।' देखने में रामकृष्ण परमहंस इतने ऊंचे पहुंचे हुए नहीं लगते जितने विवेकानन्द लगते हैं। लेकिन विवेकानन्द असल की केवल झलक हैं। असल तो हैं रामकृष्ण परमहंस जो गुरु हैं। लेकिन विवेकानंद नकल करते करते ऐसी ऊंचाई पर पहुंचे कि कहा जाने लगा कि विवेकान्द के गुरु रामकृष्ण हैं, न कि रामकृष्ण का शिष्य विवेकानन्द है। गुरु रामकृष्ण परमहंस शिष्य विवेकानंद के कारण पहचाने जाने लगे। अनुकरण ही करना है, क्योंकि **सारा संसार नकलची बंदर है, तो परमात्मा के प्यारों की नकल करना।** भक्तों की मंडली में बैठना शुरू कीजिये। उनकी नकल करते हुए उनका स्वरूप अपने अन्दर बसाने की कोशिश कीजिये और फिर देखिये कि आपके अन्दर परमात्मा की झलक दिखाई देने लग जायेगी। आपने अपने को परमात्मा से जोड़ा तो आपके अन्दर भगवत्ता की शक्तियां प्रकट होने लगेंगी। अब जो व्यक्ति आपसे जुड़ेंगे उनके अन्दर भी आपके माध्यम से वह शक्ति आनी शुरू हो जाएगी। भगवान श्रीकृष्ण अगले श्लोक में फिर समझाते हैं:

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। ६१।।

हे अर्जुन! परमसत्ता समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित है। **'सर्वभूतानां**

प्राणीमात्र के हृदय प्रदेश में, हृदय के स्थान में भगवान स्थित है। **भ्रामयन्सर्वभूतानि** वह समस्त प्राणी मात्र को घुमाता है। **यन्त्ररूढानि मायया** जैसे किसी यंत्र पर किसी को बैठा दिया जाये और फिर उसे घुमा दिया जाये, ऐसे ही, परमात्मा अपनी माया से सारे संसार को, प्राणी मात्र को घुमा रहा है। सारे संसार को नाच नचा रहा है और साथ साथ हमारे भाग्य की रचना भी करता चल रहा है। वह हमारे भाग्य को इतना प्रबल बना देता है कि फिर इस यंत्र के माध्यम से हम स्वतः ही नाचना शुरू कर देते हैं। हम कितना ज़ोर लगा लें, भाग्य के आगे कोई बस नहीं चलता। हम सभी कठपुतलियों की तरह परमात्मा के इशारे पर नाच रहे हैं। इस खिलौने की चाबी जब खत्म होती है, हाथ जहां होता है वहीं रुका रह जाता है। ताली बजाने वाले का हाथ बीच में ही रुक गया। नाचते हुए की टांग ऊपर की तरफ उठी हुई थी, हाथ कमर की तरफ था, दोनों वहीं के वहीं रह गये क्योंकि चाबी खत्म हो गई। आपके काम पूरे हों न हों, अगर चाबी खत्म हो गई तो काम वहीं छूटेंगे, हाथ वहीं रह जायेंगे, मुंह खुला रह जायेगा, आंखें फटी रह जायेंगी। हमारा कोई बस नहीं चलता। जीवन और मरण के सवाल हमारी पहुंच से बाहर हैं।

मान सम्मान से लेकर हानि लाभ, उन्नति अवनति सबमें कहीं न कहीं हमारा भाग्य और भाग्य से मिलने वाली अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियां हमें नचाती हैं। यह भाग्य है जो आपको अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियां देता है। भाग्य अनुकुल है तो परिस्थतियां अनुकूल मिलेंगी। हवा का रुख आपकी सहायता करेगा। अन्यथा हवा का रुख बदल जाएगा। आपको आगे बढ़ने में बाधा पड़ने लगेगी। लेकिन परमात्मा ने हमें कहीं कहीं चुनाव करने का अधिकार भी दिया है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से भी यह कहा कि अब तू जैसा चाहे वैसा कर, मैंने तुझे सब कुछ बता दिया है। क्या करना है इसका चुनाव करने में तू स्वतंत्र है। परमात्मा ने हमें कर्म का चुनाव करने की आज़ादी दी है। हम कर्म का चुनाव करने में आज़ाद हैं। **माना कि भाग्य बहुत प्रबल है लेकिन यह जो कर्म के चुनाव और कर्म करने की स्वतंत्रता भगवान ने हमको दी है यह भी इतनी शक्तिशाली हैं कि अगर हम इसकी**

शक्ति के बल पर चलें तो दुर्भाग्य चाहे कितना भी प्रबल हो हम उसे पराजित कर सकते हैं, यह बात निश्चित है। अपना प्रयास जारी रखो, लगातार जारी रखो। निरन्तर चोट करते रहो, बात बनेगी। निराश होकर बीच में छोड़ना नहीं। थककर बैठना नहीं। बात बनेगी ज़रूर। थक गये तो बात बिगड़ जाएगी। लगातार चलते रहे तो कभी न कभी, परमात्मा, जिसे दीनदयाल कहते हैं, सुनेगा। **'राम नाम रटते रहो, जब तक घट में प्राण।'** दीनदयाल बहरे नहीं हैं। माईक्रोफोन लगा कर, ऊंचा बोल कर परमात्मा को सुनाने की कोशिश करने की अपेक्षा अपने को उसकी कृपा पाने का पात्र बनाओ। अपनी पात्रता सिद्ध करो। आपकी पात्रता सिद्ध होते ही दीनदयाल को भनक मिलनी शुरू हो जाएगी।

एक अत्यन्त रोचक एवं रोमांचकारी तथ्य यह है कि वह जो हमें इतनी शक्ति से नचा रहा है स्वयं गति में नहीं आता। वह गति देता है लेकिन गति में आता नहीं। हँसाता है लेकिन हँसता नहीं। रुला देगा लेकिन स्वयं एक रस है। फूलों को खिलाता है परंतु स्वयं फूलों के अन्दर छिपा है। हवाओं के माध्यम से हमारा स्पर्श करता है। शरीर के माध्यम से हमारे चैतन्य, हमारी आत्मा को स्पर्श करता है जो वह स्वयं ही है क्योंकि हमारे शरीर में वास कर रही हमारी आत्मा समस्त विश्व की आत्मा, विश्वात्मा, परमात्मा का ही अंश है।

वह तारों के माध्यम से चमकता है। चांद के माध्यम से अपनी चांदनी को संसार में बरसाता है। जल के अन्दर की तृप्ति वही है। प्रदार्थों में रस वहीं है। **ओषधयः शांतिः वनस्पतयः शांतिः** औषधियों और वनस्पतियों में हमें जो शांति मिलती है वह शांति वही है। भोजन कर लेने के बाद शांति मिलती है। बच्चा कितना भी रोता हो दूध पिलाया और रोना बंद हो गया। बच्चा शांत हो कर सो गया, क्योंकि भोजन ने शांति दी। भूखे को भोजन मिल जाये तो शांति आ जाये। प्यासे को जल मिल जाये तो शांति आ जाये। सर्दियों में सूरज न निकले तो लोग अशांत हो जाते हैं। इसलिए कहते हैं **द्यौः शांतिः अंतरिक्षं शांतिः** द्यौ लोक के कारण शांति है, अंतरिक्ष के कारण शांति है, पृथिवी हमको धारण करती है, उसके कारण शांति है।

ये सब शांति देने वाले कारक हैं। परमात्मा शांति बनकर इनमें बसा हुआ है। परमात्मा रस बन कर पदार्थों में समाया हुआ है। मनुष्य एक वस्तु से ऊब जाता है परंतु परमात्मा के सौंदर्य में कहीं कमी नहीं है। फूल रोज़ रोज़ खिलेंगे। गुलाब के बागीचे में गुलाब के फूल उगे हैं, गेंदे के बागीचे में गेंदे के, लेकिन कहीं कोई उबाऊपन नहीं है। कहते हैं कि हर रोज़ की नवीनता में सुन्दरता होती है। परमात्मा वही फूल रोज़ खिलाता है लेकिन उनमें रोज़ नई ताज़गी होती है।

परमात्मा का वही संसार रोज़ नया बनकर आता है, ताज़ा बनकर आता है। शाश्वत परमात्मा रोज़ नया और ताज़ा है। जो स्वयं चमत्कृत है उसके बनाये संसार में चमत्कार ही चमत्कार है। सबकी शक्लें एक दूसरे से भिन्न हैं परंतु सबकी दो आंखें, दो कान, एक नाक, एक मुख है। किसी की आँख दूसरे की आंख से या नाक और कान किसी दूसरे के नाक, कान से नहीं मिलते। फिर भी सबकी आंख को आंख, कान को कान और नाक को नाक ही कहा जाता है। विभिन्नता के बावजूद नाम वही है। इन्सान का जन्म माता और पिता के मिलन से होता है इसलिये हर व्यक्ति के अन्दर कहीं एक तरफ माता का अंश है तो दूसरी तरफ पिता का। जो आपका कोमल भाग है वह माता का अंश है। आपका कठोर भाग पिता का अंश है। यह जो आपका बांया हाथ है यहां समझ लेना मां बैठी हुई है। दायां हाथ पिता का है। मां की ममता हृदय के रूप में विराजमान है। पिता की गुणवत्ता और दक्षता दृढ़ता का रूप धारण करके आपके मस्तिष्क में है। आपके दोनों हाथों की अँगुलियां एक जैसी लगती हैं, लेकिन एक जैसी हैं नहीं। बारीकी से जांच करके देखना आंखों का डाक्टर जानता है कि दोनों तरफ़ की आंखें भिन्न हैं। बांहों की कलाइयाँ फरक फरक हैं। महिलायें चूड़ियां पहनती हैं न, बाएं हाथ में बड़ी आसानी से पहनी जाएंगी लेकिन दाएं हाथ में मुश्किल पड़ेगी। दायां हाथ भारी होता है। पांवों के दोनों तलवों में भी अन्तर है। यदि विश्वास नहीं होता तो एक प्रयोग बताता हूं।

अपने एक जैसे दो पारदर्शी चित्र लीजिये। फुटा लेकर चित्रों को बीचों बीच से लाइन खींचकर कैंची से काट लीजिये। अब एक चित्र के दांये भाग

को दूसरे चित्र के बाएं भाग वाले टुकड़े के साथ मिला कर देखें। बांये भाग से दूसरे दाँये भाग को जोड़ लीजिए। दोनों में आपको अपनी शक्ल बदली हुई नज़र आएगी। चूंकि आपके दायें और बाएं हिस्सों में थोड़ा अन्तर होता है।

भगवान शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप में आधा भाग स्त्री का और आधा भाग पुरुष का है। **आपके अन्दर भी भगवान ने स्त्री और पुरुष दोनों के स्वरूप दिए हुए हैं क्योंकि आप माता और पिता से जन्म लेकर दुनिया में आये हैं।** परमात्मा ने आपको दोनों की पहचान बनाकर दुनिया में भेजा है। भगवान शंकर को श्रद्धा और विश्वास का प्रतीक मानकर प्रणाम करते हैं। **श्रद्धा हैं मां और विश्वास है पिता। दोनों को मिला कर अर्द्धनारीश्वर का रूप बऩा। इंसान भी पूरा तभी बनेगा जब उसके अन्दर एक तरफ श्रद्धा हो, दूसरी तरफ विश्वास हो।** जो दोनों का मेल बैठाकर चले वह भक्ति में भी सफल होता है।

परमात्मा सृजक है, सर्वस्व है और स्वामी है। उसने हमारा सृजन किया और अपनी सृजना के भरण पोषण के लिए भोजन और अन्य पदार्थों का निर्माण किया। एक चौकीदार बनकर हमारी रक्षा भी कर रहा है। भंडारी बनकर हमारा भंडार भरता रहता है। वस्त्र देता है, जीवन देता है, और यह भी उसका कमाल है कि जैसे देता है वैसे ही ले भी लेता है। जब वह दे रहा होता है उस समय भी उसके हाथ दिखाई नहीं देते और लेते समय भी उसके हाथ अदृश्य रहते हैं। आसमान में बादलों में जल भरा हुआ है लेकिन वह दिखाई नहीं देता। बूंदे बरसती हैं तो मालूम पड़ता है कि बादलों में पानी है क्योंकि बरसता हुआ दिखाई देता है। परमात्मा का भंडारा कहां भरा हुआ है यह दिखाई नहीं देता लेकिन खेतों में लहलहाता हुआ और लोगों के घरों में पड़ा हुआ ज़रूर दिखाई देता हैं। घरों में सामान है लेकिन भेजा उसने है, कृपा उसने की है। कहाँ से भेजा है इसका हम अंदाज़ा नहीं लगा सकते। लेकिन मिलता है, यह हमें पता है।

जब वह वापिस लेगा अपना माल वापिस ले जाने के लिये तो किसे भेजेगा कौन सी गाड़ी भेजेगा, और वापिस लेने वाले कौन से लोग आयेंगे

नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह बात सच है कि जब वह वापिस लेने पर आयेगा तो सब कुछ लेगा, गिन गिन कर वापिस लेगा। लेकिन तुम जब पाओ तो भी कह देना "तेरी मर्जी" और जो वापिस ले ले तो भी कह देना "तेरी मर्जी"। और कह देना **"राजी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रजा है।"** यूं भी वाह वाह है और त्यों भी वाह वाह है। यह भाव मन में बसाना सीख जायें तो भगवान की सत्ता के प्रति श्रद्धा रखना सीख जायेंगे। इसलिये भगवान कृष्ण आगे कह रहे हैं:

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। ६२।।

हे भारत! हे अर्जुन! **'तमेव शरणं गच्छ'** तू उसी की शरण में जा। **'सर्वभावेन भारत'** सब प्रकार की सब भावनाओं सहित तू उसकी शरण में जा। उसकी सत्ता को स्वीकार करते हुए उसका हो जा। फिर उसकी कृपा से **परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि** तू परम स्थान को प्राप्त करेगा, परम शांति को प्राप्त करेगा। शरणागति से तेरे अन्दर एक अलग तरह का संगीत ध्वनित होगा। एक मस्ती आयेगी। किसी किसी के बारे में लोग कहते हैं न कि वह अपनी धुन में ही मस्त रहता है। एक उम्र होती है जब आप संगीत से ज़्यादा जुड़े हुए होते हैं, प्रसन्न रहते हैं, मन में उमंग और उल्लास रहता है। हँसने का कोई कारण न भी हो तो भी आपको हँसी आती है और एक उम्र ऐसी आती है कि हँसने के बहुत कारण होते हैं तब भी बहुत मुश्किल से हँसी आती है क्योंकि आपकी भावनाएं सूख गई हैं, जल गई हैं। **परमात्मा की कृपायें बरसती हैं तो अन्दर प्रसन्नता और गीत पैदा होते हैं।**

हमारे देश में संगीत का जन्म देवताओं से हुआ माना जाता है। हमें दिव्य संगीत की अनुभूतियां परमात्मा ने दी हैं। जापानी लोग मानते हैं कि जब सूर्य देवी लोगों से तंग आकर एक गुफा में छिप गई तो उसको मनाने के लिए देवताओं ने जिस आवाज में बोलना शुरू किया, उस आवाज को संगीत कहा गया। अरब देश वाले कहते हैं कि ऊंट पर बैठा हुआ कोई व्यक्ति जब नीचे गिर गया तो हड़बड़ाहट की आवाज हुई जिसे सुनकर ऊंट

भागे। उस समय ऊंट वालों ने ऊंटों को वापस बुलाने के लिए मुंह से जो तरह तरह की आवाज़ें निकालीं, उनसे संगीत प्रकट हुआ। चीन वाले कहते हैं कि एक चिड़िया आकर डालों पर बैठी थी। उसके पंख फड़फड़ाने से पत्ते हिले थे और बांसों से आवाज निकली थी। उस आवाज़ से संगीत प्रकट हुआ था। संगीत जब भी और जैसे भी पैदा हुआ हो, उसमें आदमी के अन्दर एक थिरकन पैदा करने की अपूर्व शक्ति है। उससे एक मस्ती आ जाती है।

लेकिन भारत के लोग कहते हैं कि वह परमात्मा जिसने संगीत दिया था हर समय गाता रहता है। उसका गान नदियों में, झरनों में, पेड़ों के पत्तों में, पंछियों में, सर्वत्र व्याप्त है। मोर में नृत्य भी उसी का दिया हुआ है, उसी के कारण कोयल कूकती है, भौंरे गुंजार पैदा करते हैं। उसका संगीत लगातार प्रवाहित हो रहा है। जो उससे जुड़ जाता है उसके अन्दर भी संगीत प्रकट हो जाता है। बच्चे की किलकारी देखो या हिरनों का कूदना। पंछी उड़ान भर के जायें, आकाश में बादल गरजने लग जायें या फिर ऊपर से ठंडी फुहार पड़ने लग जाये, कहीं छोटा सा कोई झींगुर अपनी आवाज निकाले और इधर से मेंढक टरटराने लग जायें, यह सब परमात्मा का संगीत है। अनाहत नाद व्यक्ति के अन्तरस्थ में गूंज रहा है, जिसे साधक अपने अन्तर की वीणा की झंकार के रूप में अनवरत सुना करता है, मौन में डूबने के बाद यह संगीत अन्दर से प्रकट होता है।

भगवान कहते है **तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत** समस्त भावनाओं के साथ तू उसकी शरण में जा, तुझे परम शांति की उपलब्धि होगी। परमात्मा की अनुकम्पा, और अनुग्रह कई स्वरूपों में प्रकट होता है। दुनिया में कितने लोग कविता लिखते हैं, उनकी कविता नीरस होती है। दो बार सुनी कि आदमी हाथ जोड़ने लग जाता है। उधर जिस आदमी को थोड़ी सी भी तुकबंदी करने की आदत पड़ जाये तो उसे हरदम श्रोता की ही तलाश रहती है। कोई सुने और वाह वाह करे, दाद दे। खुजली वाली नहीं, तारीफ़ वाली।

आपको एक दो मज़ाक सुनाता हूं कोई आदमी आगे भाग रहा था, दूसरा उसके पीछे भाग रहा था। लोगों ने पीछे वाले से पूछा कि क्या वह

तुम्हारा कुछ छीन कर भाग रहा है? वह बोला, "नहीं। वह भी कवि है और हम भी कवि हैं। हम दोनों में तय हुआ था कि आधी देर वह कविता सुनाएगा, आधी देर हम। इसने तो अपनी कविता सुना दी, लेकिन हमारी नहीं सुनीं। इसलिये पीछा कर रहा हूं। इसको सुना कर छोड़ूंगा।" सिपाही एक कवि को पकड़कर जज के सामने ले आए। जज ने पूछा, "इन्हें क्यों पकड़ लाये? यह तो कवि हैं।" सिपाहियों ने बताया, 'हुजूर यह एक आदमी को जबरदस्ती कविता सुना रहा था। वह सुनना नहीं चाहता था, यह उसे जबरदस्ती बैठाकर सुनाने लग गया।" लेकिन परमात्मा से जुड़े हुये कुछ भक्त और गायक कवि हुये हैं जैसे नरसी मेहता, संत तुकाराम, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, दादू दयाल, सहजो बाई, शेखफरीद, बुल्लेशाह स्वामी हरिदास, बैजूबावरा, जिन्होंने परमात्मा के प्यार में जब गाया तो ऐसा गाया, ऐसा गाया कि सदियां बीत गईं पर उनके गान का रस आज तक खत्म नहीं हुआ। हज़ारों बार सुना फिर भी ऊबे नहीं। जितनी बार सुना उतनी बार नया रस मिला। आज के कवि अपनी कविता ज़बरदस्ती सुनाना चाहते हैं। संत कवियों की कविता लोग ज़बरदस्ती और बार बार सुनाना चाहते हैं। उनका श्रवण कर मनन करना चाहते हैं। अपने मन मस्तिष्क में बैठाना चाहते हैं।

परमात्मा ने आपको जो कुछ दिया है उसे प्रकट करना आप सीख जाइये। **भगवान ने आपको अनेक विभूतियां, अनुभूतियां और शक्तियां दी हैं, जिन्हें प्रकट करने का उपाय साधना है।** आपकी शक्तियां अपने आप प्रकट होती रहेंगी। जितने भी साधक, ऋषि, मुनि हुये उन्होंने चमत्कार नहीं किये बल्कि चमत्कार करने की अपनी सिद्धियों को छिपाते रहे। परंतु जिस पर हाथ रख दिया उस पर अपने आप कृपा हुई और चमत्कार घटते चले गये। उन्होंने कुछ करने की कोशिश नहीं की, न बाद में ही बताया या दर्शाया। उनके पास बैठने में और उनके साथ चलने में ही चमत्कार है। जो उनके पास बैठ गये वह सम्पन्न हो गये। उनके साथ प्रसिद्ध हो गये। इसलिये कहता हूं कि अपनी भावनाओं को परमात्मा को अर्पित कर दो। सब कुछ भुलाकर उसके हो जाओ। कोई कसर बाकी मत रखना। **हमारा मन**

जब किसी चीज को पाने का करता है तो हम उसको पाने के लिये कोई कसर बाकी नहीं रखते। क्या भगवान को पाने के लिये हमने कभी कोई ऐसा प्रयास किया है? प्यासा आदमी पानी की तलाश में सर्वत्र तलाशता है, भूखा आदमी भोजन पाने के लिए हर मुमकिन कोशिश करेगा। अतः जब तक आपके अन्दर परमात्मा को पाने की सच्ची भूख नहीं जायेगी तब तक आप परमात्मा की तरफ़ जा भी नहीं सकते। परमात्मा को पाने की हमारी भूख अभी अधूरी है। जब अमृत चखने की भूख प्यास ज्वलंत हो जाएगी तो निश्चित ही मंजिल तक पहुंच जाओगे।

महात्मा बुद्ध से एक बार किसी ने पूछा, "आपने बहुत ज्ञान बांटा लेकिन लोगों की मुक्ति तो हुई नहीं। लोगो को मोक्ष तो मिला नहीं। आपको सुनने के लिये तो बहुत बहुत लोग आये लेकिन उनमें बदलाव नहीं आया।" महात्मा बुद्ध ने कहा, "उनमें नकली भूख वाले लोग बहुत थे। असली भूख वाला जो कोई भी आया, उसको जब भी मैंने भोजन कराया उसको तृप्ति मिली और उसको मोक्ष ज़रूर मिलेगा। उसके ऊपर कृपा होगी ज़रूर।" कोई आये तो सही सच्ची भूख लेकर। कभी यह भी होता है कि अन्दर प्रभुमय होने की अनुभूतियों जागती हैं। उसका आकर्षण खींचता है। लेकिन यह आकर्षण कुछ दिनों या महीनों बाद फिर कोई ऐसी बात हो जाती है कि आकर्षणता खत्म होती नजर आती है। हम रुक कर बैठ जाते हैं। लेकिन मैं यह कहूंगा कि आप अपनी इस आध्यात्मिक भूख को मरने मत दो। इसको जगाए रखो। अपने प्रयास को ढीला मत करो। उसे बढ़ाओ और बढ़ाते जाओ। सफलता अवश्य मिलेगी। इस सीमा तक परमात्मा की भक्ति की आदत बना लो कि उसके बिना रहा न जाये। बिना नाम जपे चैन न आये। जिस दिन किसी भी कारण से नाम न जपा जाये, भक्ति में बैठ न सको, उस दिन ऐसा लगे कि आपका कुछ खो गया है। जब किसी बात की लोग आदत बना लेते हैं तो उसके बिना उनका जीना दूभर हो जाता है। परमात्मा की भक्ति अपनी ऐसी आदत बना लो।

फ्रांस जिस समय गुलामी से मुक्त हुआ वहां के क्रांतिकारियों ने लोगों को कह दिया कि तुम लोग आज़ाद हो। सबको मुक्त कर दिया गया। वह

लोग जेल में गये, अंधेरी कोठरियां तोड़ दीं और कैदियों को रिहा कर दिया। जो थोड़े दिन पहले जेल में आये थे वे खुशी खुशी निकल कर भागे, लेकिन जो उम्र कैदी थे, जो बीस बीस साल से अंधेरी कोठरी में पड़े हुये थे, जिनके पांवों में बेड़ियां पड़ी हुई थी, वे लोग झिझकने लगे। बोले, "हमारा घर तो अब यही है।" क्रांतिकारियों ने धक्के देकर उन्हें बाहर निकाला। बाहर आकर वे लोग रात में पेड़ों के नीचे लेटे, लेकिन उन्हें नींद नहीं आई। अगले दिन वापिस आकर वे जेल के बाहर खड़े हो गये। बोले, "जब तक आप हमारे हाथ में हथकड़ी नहीं लगायेंगे, पाव में बेड़ी नहीं डालेंगे, अंधेरा नहीं करेंगे, तब तक हमें नींद नहीं आयेगी।।" आदत पड़ जाने से अंधेरी जगह और बेड़ियां पसन्द आने लग गईं। आदत बहुत ताकत वाली चीज़ है। अगर आप परमात्मा से प्यार करने की आदत डाल लेंगे तो दुनिया के सारे प्रलोभनों को ठोकर मार कर आप फिर वहीं पहुंच जाएंगे और कहेंगे कि आपको तो परमात्मा के प्यार के बंधन में बंधना ही अच्छा लगता है। परमात्मा के प्यार के पागलपन और दीवानेपन को अपने अन्दर प्रकट कीजिये। कोई कसर बाकी न रखिये। **'सर्वभावेन'** समस्त भावों के साथ, **'तमेव शरणं गच्छ'** उस एक की शरण में जाने की कोशिश करिए।

जप करना हो, स्तुति करनी हो, तप करना हो, उपासना करनी हो, संकीर्तन में बैठना हो, योग साधना करनी हो, व्रत उपवास करने हों, सेवा का कार्य करना पड़ जाये, सम्पत्ति का सहयोग देना पड़े, या अंतःकरण को शुद्ध करते हुये मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि का साथ लेना पड़े, कोई भी प्रयास करो लेकिन पूरी तरह से, समग्रता से परमात्मा की ओर चलने की कोशिश करो। कसर बाकी नहीं रखोगे तो कृपा होगी, प्राप्ति होगी। वह अपनी कृपायें लुटाने के लिये तैयार बैठा है। दोष अगर कहीं होता हैं तो हमारी तरफ़ से ही होता है, कमी हमारी तरफ़ से ही रह जाती है। वह तो अपनी कृपा के बादल आसमान में ले करके आ ही गया है। अहंकार की छतरी तान करके तो हम बैठे हुये हैं? हम ही बाहर निकलने के लिये तैयार नहीं हैं। अपने को तैयार करो और उसकी तरफ बढ़ो तो कृपा होगी, अवश्य होगी।

इति वे ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।। ६३।।

उपरोक्त श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, 'हे पार्थ! इस प्रकार मैंने यह ज्ञान **गुह्याद्गुह्यतरं** जो गुह्य से भी गुह्य अर्थात् रहस्यों से परिपूर्ण है, उसे मैंने तुम्हें श्रवण कराया, **विमृश्यैतदशेषेण** इसे समग्रता से विचार करने के बाद **यथाइच्छसि तथा कुरु** जैसी तुम्हारी इच्छा हो उसके अनुरूप संसार में व्यवहार करने की लिए तुम स्वतंत्र हो। मैंने तुम्हें जो ज्ञान देना था, दिया। अब सब कुछ तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। तुम जो चाहो करो, जिस प्रकार चाहो अपने को ले चलो। **यथेच्छसि तथा कुरु** जैसी इच्छा हो वैसा करो।'

भगवान ने अर्जुन को पूर्णरूप से स्वतंत्रता देते हुए कहा कि जैसी उसकी इच्छा हो वैसा वह कर सकता है। परीक्षा क्षेत्र में परीक्षा लेने वाला शिक्षक विद्यार्थी को यदि पूर्ण स्वतंत्रता न दे तो कोई भी विद्यार्थी ज्ञानवान नहीं हो सकता। पूर्णरूप से स्वतत्रंता देना आवश्यक है। **परमात्मा ने हमें कर्म करने की स्वतंत्रता दी हैं, जीवन चलाने की स्वतंत्रता हमको मिली है; लेकिन अपने कर्मों के फल हम अपनी मर्जी से नहीं भोग सकते। उसमें हम स्वतंत्र नहीं हैं।** चूंकि कर्मों के फल को भोगने के संबंध में हम बंधन में बंधे हुए हैं, हमें मज़बूरन वह फल भोगना ही पड़ेगा। अच्छा या बुरा जैसा भी सामने आएगा उसे चखना पड़ेगा। परमात्मा ने हमें ज्ञान दिया है, अन्दर से समझ दी है, आंखें दी हैं। उसने अपना काम पूरा किया। परमात्मा के दिए ज्ञान और चक्षुओं के इस्तेमाल करने या न करने की आज़ादी हमें दी गई है। हम जिस प्रकार चाहें अपने जीवन को बना सकते हैं। हमारे पास पूरा अवसर है और अनंन्त संभावनाएं हैं।

हम दोराहे पर नहीं बल्कि अनन्त पंथों से युक्त मार्ग के मध्य खड़े हैं, दसों दिशाओं के मार्ग हमारे लिए खुले हुए हैं। यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपनी बुद्धि के अनुसार कौन सा मार्ग चुनते हैं। ध्यान रहे कि हम चाहे जिस मार्ग पर चलें आगे चलकर सभी मार्ग एक दूसरे से दूर हो जाते हैं, और प्रत्येक मार्ग भिन्न भिन्न लक्ष्य पर पहुंचता है। मनुष्य में अनेक प्रकार

की संभावनाएं निहित हैं। वह देवत्व की ऊंचाई भी प्राप्त कर सकता है और अगर नीचे गिरे तो इतना नीचे गिर सकता है कि पाताल की गहराई भी कम पड़ जाए। अगर हम उठना चाहें तो हम जिधर जाना चाहते है उसी बिन्दु पर हमारी ऊर्जा शक्ति केन्द्रित हो जाएगी, टिक जाएगी और फिर उसी में हमारी मानसिकता बस जाएगी। **जीवन का लक्ष्य कभी भी छोटा नहीं बनाना चाहिए। लक्ष्य हमेशा बड़ा रखो।** जिस व्यक्ति को दूर तक की यात्रा पर जाना होता हैं, वह उसी तरह से तैयारी करता हैं। जिस आदमी को बहुत आगे पहुंचना होता है कि वह काफी दिन पहले से ही तैयारी में लग जाता है। उसे अपने समय से लेकर अपनी शक्ति तक, अपने धन, संभावित सहयोग सभी को नापना तोलना होता है। **परीक्षा के लिए तैयारी पहले से कर ली जाए, तो परीक्षा कठिन नहीं होगी।**

जब मां बाप यह कह देते हैं कि बेटा अब तू बड़ा हो गया, अब तेरी जैसी मर्जी वैसा कर, अब तुझे समझाने की जरूरत नहीं हैं, हमने जितना बताना समझाना था, कर दिया, अब अपने पैरों पर खड़ा हो, अपना निर्णय स्वयं कर, तो वहीं से संतान के अन्दर का बड़पन जागना शुरू हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञान दिया; अर्जुन को समझा दिया; अनेक तरह से समझाया और यह भी कह दिया कि उन्होंने जो कहना था, कह दिया। अब अर्जुन का काम है कि श्रीकृष्ण के कहने पर सोचे विचारे और फिर जो मर्जी आए, जैसा चाहे, वैसा करे। **जिस व्यक्ति को कर्म करने की स्वतंत्रता दे दी जाती है तो उसकी ज़िम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है।** जब तक भगवान श्री कृष्ण समझाते रहे कि यह करना, यह नहीं करना, ऐसे चलना, ऐसे नहीं चलना; तब तक अर्जुन की स्थिति और थी। जब यह कह दिया गया कि जैसी मर्जी आए वैसे कर, लेकिन विचार कर लेना, सोच लेना तब स्थिति कुछ और हो गई। परमात्मा ने हमें जो सबसे महत्त्वपूर्ण चीज बुद्धि दी है, उस बुद्धि का प्रयोग और उपयोग कीजिए। मनुष्य और पशु के बीच यही एक अन्तर रेखा है।

गीता में ७०० श्लोक हैं। अर्जुन के माध्यम से भगवान ने सारी सृष्टि के लिए, मानव मात्र के लिए यह ज्ञान दिया। लगभग एक वर्ष से मैंने इन

श्लोकों पर लगातार व्याख्या दी है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि इन श्लोकों पर, जिन पर विभिन्न संतो द्वारा व्याख्यायें लगातार होती रही हैं, व्याख्या पूरी हो गई है। ऐसा शायद कभी नहीं कहा जा सकेगा। **ज्ञान अनन्त है, इसकी कोई सीमा रेखा नहीं है।** लेकिन बताने, समझाने और कहने के बाद, श्रोता को किसी बंधन में न बांध कर यह कह दिया जाए कि तुम अपना निर्णय स्वयं लो; अपना पथ स्वयं चुनो तो उसे यह एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी सौंपना है। अच्छे और बुरे परिणाम की जिम्मेदारी, जो कुछ हम हो सकते थे नहीं हो पाए, उसके उपचार की ज़िम्मेदारी, सफलताओं और असफलताओं की पीड़ा के भोगने की ज़िम्मेदारी सब अपने ऊपर आ पड़ती हैं। ध्यान रहे कि हमें यह कभी नहीं कहना है कि सब भाग्य की बात है। यहीं होना था, ज़िंदगी को यही बनना था यहीं पहुंचना था, शायद इससे आगे हम जा ही नहीं सकते थे। इसका मतलब है कि हमने अपने अन्दर से उमड़ती ऊर्जा को दबा दिया। वह पिता बहुत नाराज़ और दुःखी होता है, जिसका बच्चा बहुत कुछ हो सकता था, लेकिन नहीं हुआ। हमारे पिता परमात्मा ने भी, हमारे लिए अनन्त संभावनाएं देकर कहा कि तुम जहां तक पहुंचना चाहते हो पहुंचो और यह कहा कि **"श्रृणवन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः"**, "तुम सब मेरे अमृत पुत्र हो। निराशाएं तुम्हें गिरा न दें चिन्ताएं तुम्हें खा न जाएं, भय तुम्हें लील न ले और बाधाएं तुम्हें रोक न पाएं इसीलिए तुम्हें ऊर्जा, शक्ति, बुद्धि और विवेक दिया है। माया तुम्हारे पांव में बेड़ी न बन सके, इसलिए मैंने तुम्हें इतनी शक्ति दी है कि तुम हर बंधन को तोड़कर मुझ तक पहुंच सकते हो।" परमात्मा ने इतना कुछ हमें यह देखने के लिए दिया है कि हम जीवन में उनका भरपूर उपयोग करके अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए पूरी शक्ति लगाते हैं या नहीं ? जिन लोगों ने यह महसूस किया कि वे कुछ हो सकते हैं पर नहीं हो पा रहे तो उनके अन्तस्थ पर जब चोट पड़ी तो फिर पूरी शक्ति लगाकर वे कुछ न कुछ ज़रूर बने, रुके नहीं।

नैपोलियन के जीवन में बहुत बार, विशेषकर इसके विद्यार्थी काल में, ऐसे प्रसंग आए जब संसार के आकर्षण उसके पथ की बाधा बन रहे थे लेकिन उसकी मां के पत्रों ने सदा उसका पथ उजागर किया, जिनमें लिखा

होता था, तेरी मंज़िल छोटी नहीं है। तेरी मंज़िल बहुत बड़ी है, तेरे जीवन का मक़सद है। तुझे रुक कर बैठ नहीं जाना है। जीवन संघर्ष का नाम है जो तेरे जीवन के अंतिम समय तक जारी रहेगा। **संसार में वहीं जीतता है जो सबल होता है।** सफलता प्राप्त करने के लिए तू अपनी कमज़ोरियों को जीत और इतना महान बन जा कि सारी दुनिया के लिए तू नमस्करणीय बन जाए। संसार तुझे नमन करने लग जाए, प्रणाम करने लग जाए। कितने प्रेरणादायक शब्द हैं, ''तुझे रुकना नहीं है, तुझे बहुत दूर तक जाना है'' इन शब्दों से अन्तर में चोट पड़ती है कि, "रुक नहीं, आगे बढ़।" ऐसी बहुत सारी आवाजें, हमारे अन्तर्मन में निरन्तर उठती हैं। पर उन्हें श्रवण करने तथा उन पर मनन करने के लिए आवश्यक है कि कभी कभी हम संसार के कोलाहल से दूर एकान्त में बैठकर अपने से बातचीत किया करें। अपने अन्दर की आवाज सुनें और अपने अन्दर निखार पैदा करें। अपने बोलने में, अपने चलने में, अपने व्यवहार में, अपने कर्म करने में सौंदर्य और माधुर्य लायें। अपने अन्दर शांति बनाए रखें। **जीवन के संघर्ष जितना शांत, शालीन और संतुलित हो कर करेंगे, उतना ही सफल होंगे। जहां बैलेंस (संतुलन) बिगड़ता है, वहीं हम हार जाते हैं।**

आदि शंकराचार्य एक बार मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ करने के लिए काशी पहुंचे। उनकी परीक्षा लेने के लिए ज्ञानवती नामक एक महिला ने दोनों को एक एक माला पहनवाई और कहा कि किसकी माला के फूल कितनी जल्दी मुरझा जाते हैं, निर्णय इसी से हो जाएगा। जिसकी माला के फूल जल्दी मुरझा जाएंगे, समझ लेना कि वह हार गया। लोगों ने पूछा, ''इससे कैसे निर्णय होगा? समय पाकर स्वभावतः फूल सूख जाएंगे।'' उस महिला ने कहा, ''नहीं, जिस आदमी का संतुलन और आंतरिक शांति बनी रहेगी, जिसके श्वास सहज भाव से चलेंगे, उसके फूल देर तक ताज़े बने रहेंगे। जो व्यक्ति जल्दी जोश में आ जाएगा और जिसकी श्वासों में अधिक गर्मी आ जाएगी, जिसका संतुलन बिगड़ जाएगा; उसके फूल जल्दी मुरझा जाएंगे। संतुलन खोने वाला, व्यक्ति अपने आप ही हार जाया करता है। गर्मी में आकर अपनी बात को वाजिब तर्क द्वारा नहीं वरन् ज़ोर ज़ोर

से बोलकर मनवाने की कोशिश करते हैं। ऐसे में आप के गले में पड़ी माला मुरझाने लगती है। अपना संतुलन बनाएं रखकर अगर आप खिले रहेंगे, फूल भी ताज़े रहेंगे। खिले हुए फूल सफलता के चिन्ह हैं। संतुलन बनाने के लिए एकान्त सेवन, शांत और प्रसन्नचित्त रहना, परमात्मा से उसकी कृपा को मांगना, विचारों में शुद्धता और पवित्रता बनाए रखना, सात्त्विक संगति रखना और सत्संग करना महत्त्वपूर्ण हैं। भगवान ने बुद्धि तो दे दी लेकिन यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम इसका कितना ओर कैसा उपयोग करते हैं। भगवान इसलिए कहते हैं, **यथेच्छसि तथा कुरू** जैसा तुम चाहो वैसा करो।

जीवन के पथ पर चलने को हम स्वतंत्र हैं, अनवरत चलें या आलस्य करें। हिम्मत से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते चलें या रास्ते की कठिनाईयों को दुर्भाग्य मानकर यह सोचें कि हम लक्ष्य तक पहुंच नहीं पाएंगे। प्रेरणा लेने के लिए हमें महापुरुषों की जीवन गाथाएं पढ़नी चाहिएं। इससे हमें पता लगेगा कि कौन महापुरुष कितनी विघ्न बाधाओं के बीच संघर्ष करके सफल हुआ और तब हमारी हिम्मत बढ़ेगी। विद्यार्थी जब परीक्षा की तैयारी करते हैं तो वे भी पांच दस साल की परीक्षा में आए प्रश्नपत्रों को पढ़ कर तैयारी करते हैं। **अपनी चुनौतियों का समाधान निकालना, उत्तर देना आसान नहीं होता।** महापुरुषों की जीवन गाथाओं को पढ़ने के बाद, आप उनके द्वारा झेली कठिनाइयों को इस तरह से देखें कि जैसे वह आपकी परीक्षा के लिए प्रश्न पत्र हों और आपको उत्तर ढूंढना है। उन्होंने उन कठिनाईयों का जिस तरह से मुकाबला किया और समाधान निकाला वह समझ कर जब आप अपने आपसे पूछेंगे कि अपनी वर्तमान स्थिति में वे क्या करते, तो आपकी अपनी समस्या का समाधान मिल जाएगा। अपने बच्चों को विद्यार्थी काल से ही आप इस तरह से प्रेरणा देनी शुरु कीजिए। उन्हें अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय तथा सत्संग करवाइए। **यदि सधे और सुलझे हुए विचारों का साथ बच्चों और युवकों को मिल जाए तो उनके जीवन का फूल पूरी तरह से विकसित हो सकता है।**

कलकत्ता में एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ है, जिसके नीचे पांच सौ आदमी एक साथ बैठ सकते हैं। बरगद के साधारण पेड़ के नीचे दस बीस

लोग बैठ सकेंगे। वह बड़ा पेड़ इस बात की संभावना है कि बरगद का पेड़ कितना फैल सकता है। किसी महापुरुष का जीवन देखने और पढ़ने के बाद यह अनुभूति होती है कि यदि हम चाहें और चेष्टा करें तो अपने जीवन को कितनी ऊंचाई तक ले जा सकते हैं। संभावना वहां से भी और आगे जाने की होती है।

गुरु सबसे पहले अपने शिष्य को **'अनुंशासन'** देता हैं। ऋषि ने योग दर्शन के प्रारंभ में सूत्र लिखा,' **अथ योगानुशासनम्** योग अनुशासन से प्रारंभ होता है। **आध्यात्मिक सीढ़ियों पर पग रखने के लिए सबसे पहले अनुशासन आवश्यक हैं।** सबसे बड़ा बल भी अनुशासन ही है। फौज के लोग भी तो आपके समाज से गए हुए लोग हैं। उनके पास भी सबसे बड़ी चीज 'अनुशासन' है। जो फ़ौज जितनी ज़्यादा अनुशासित होती है, उतनी ही ज़्यादा मज़बूत फौज कहलाती है। जिस सेनापति के सैनिक उसके एक आह्वान पर जान कुर्बान करने के लिए तैयार हो जाएं, जिधर आदेश दिया जाए उधर मुड़ने के लिए तैयार हों तो वह सेनापति अपने को बलशाली मानता है। फ़ौज की ट्रेनिंग भी तो यही है; दाएं धूम, बाएं धूम, आगे चल, पीछे चल। इसका मतलब है कि व्यक्ति फ़ौजी आदेशों में पूरी तरह से बंध जाए। अनुशासित हो जाए, स्वचालित रूप से निर्देशों का पालन करने लग जाए। परमात्मा की तरफ चलने के लिए भी आवश्यक है कि गुरु के निर्देशों में नियमित होकर चलते रहें। **अपने को ऐसा अनुशासित कर लें कि निर्मल मन से आदेश का पालन करने के लिए सदा तत्पर रहें।** हृदय से जब परमात्मा की आवाज़ आए तो व्यक्ति उसके अनुसार कर्म करने के लिए फौरन तैयार हो जाए तो निश्चय ही वह परमात्मा तक पहुंचने में सफल हो जाएगा। अनुशासन सबसे बड़ा बल है। कोई गुरु अपने शिष्य को कमजोर नहीं बनाना चाहता। वह शिष्य को बलवान बनाने के लिए उसे नियम देता है और योजनाबद्ध तरीके से चलना सिखाता है, अनुशासित होना, नियमित होना और आगे तक की योजना बनाकर स्थिरता से जीवन को व्यवस्थित करना सिखाता है। इसलिए दीक्षा से पहले गुरु जो उपदेश देता है, वह बड़ा मार्मिक और महत्त्वपूर्ण होता है। उस पर निरन्तर विचार

करते रहने से मानस पटल पर भूमिका तैयार होती है जिसके अन्दर गुरु द्वारा दिए गए मंत्र का बीज आरोपित किया जाए, रोप दिया जाए, तो वह अंकुरित होता है, बढ़ता है, फलता और फूलता है। भूमिका जितनी ही उपजाऊ तैयार होती है, बीज उतना ही बढ़िया अंकुरित होता है। **वस्त्र निर्मल बना लिया जाएं तो उस पर रंग भी गहरा चढ़ता है। वस्त्र निर्मल नहीं है तो उस पर रंग अच्छा नहीं चढ़ेगा।**

'अर्जुन' का अर्थ है 'सरल', अर्जुन का अर्थ है 'सीधा', 'सहज' जिसमें वक्रता नहीं है। निर्माण से पूर्व हर चीज़ को सीधा करना होता है। उसके बल (ऐंठन) निकालना बहुत जरूरी होता है। 'अर्जुन' का अर्थ 'सफेद' या 'श्वेत' भी होता है। 'श्वेत' के ऊपर जो भी रंग चढ़ाना चाहें, चढ़ा सकते हैं। उस पर रंग चढ़ाने की अनन्त संभावनाएं हैं। शिष्य के अन्दर श्वेतता, निर्मलता होनी ही चाहिए, तब गुरु उस पर अपना रंग भर सकता है। उसमें सीधापन होना ही चाहिए, तब गुरु उसे जैसा चाहे वैसा आकार दे सकता है। आभूषण बनाने के लिए भी पहले सोने की तार को मशीन से खिंचाई करके सीधा करते हैं, उसके बाद जैसी आवश्यकता हो, कुंडल, कंगन, या हार, वैसा बनाया जाता है।

इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को हर प्रकार से निर्मल करने के बाद रंग भरे और फिर उसे स्वतंत्र छोड़ दिया और कहा "अब तू निश्चित रूप से अपना निर्णय लेने के लिए सक्षम है। जैसा चाहे वैसा कर।" **परमात्मा ने हम सबको इसी तरह से संसार के कर्म करने के लिए छोड़ रखा है। हम जैसा चाहें वैसा निर्णय लें। इसलिए अगर हम सुख या दुःख भोगते हैं तो फिर उसके जिम्मेदार भगवान नहीं हो सकते, हम स्वयं होंगे** क्योंकि निर्णय की क्षमता और अधिकार तो हमको दे दिया गया है। दो मार्ग सामने रखकर हमें अपनी योग्यतानुसार निर्णय करना है कि आगे जायें या पीछे। हम चाहे भगवान की भक्ति अपनाएं, चाहे माया में फंसें। संसार को चुनें, या कर्तार को। श्रेय मार्ग, उन्नति के मार्ग को चुनें या अवनति के मार्ग को। हमें भगवान से योग (मिलन) चाहिए या संसार से। हम तो योग मार्ग की ओर चलें या भोग मार्ग की ओर। इतना समझाने के बाद, भगवान को

अपने 'अर्जुन' पर 'बहुत प्यार' आया और प्यार में आकर, प्रेमवश होकर सोचा कि कहीं अर्जुन चोट न खा जाए इसलिए उन्होंने उसे फिर समझाना शुरू किया, "अर्जुन, सुन मैंने सब कुछ तुझपर छोड़ दिया है, लेकिन फिर भी तुझसे एक बात कहता हूं:

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।६५।।

अर्जुन! तू मेरा प्रिय है इसलिए तेरे लिए एक वचन कहता हूं। यदि तू मुझे प्राप्त करना चाहता है, तेरे जीवन का लक्ष्य परमधाम तक पहुंचना है, वैसे ही जैसे नदी की सारी दौड़ सागर से मिलने के लिए है, हर अग्नि शिखा और दीपक की लौ सदा ऊपर की ओर उठती है क्योंकि उसका लक्ष्य सूर्य होता है, अर्जुन! अगर तू मेरी तरफ आना चाहता है और मुझ तक पहुंचना चाहता है तो **मन्मना भव** मेरे मन वाला बन। अपना मन मुझे अर्पित कर **मद्भक्तो** मेरी भक्ति में डूब। **मद्याजी** मेरे लिए भजन करने वाला याज्ञिक बन। **मामं नमस्कुरू** तेरे प्रणाम मुझ तक पहुंचने वाले हों। **जो श्रद्धेय हैं, आदरणीय हैं, पूजनीय हैं, उनको नमन किया जाना चाहिए;** उन्हें प्रणाम करने की परंपरा है। तेरी श्रद्धा मुझ तक पहुंचे, तेरी भक्ति मेरे लिए हो और तेरा मन मेरा चिन्तन करने वाला बन जाए। जैसे कोई शिक्षक परीक्षा से ठीक पहले अपने छात्र से कहे कि वैसे तो उसनें सब पढ़ा ही दिया है लेकिन अब वह उसे कुछ खास बातें बताएगा जिससे परीक्षा में मदद मिलेगी, वैसे ही भगवान भी अर्जुन कहते हैं कि सब तुझे बता दिया है पर अब जो तुझे विशेष रूप से करना है, वह मैं कहता हूं। तू मेरे मन वाला बन। अपना मन मुझे अर्पित कर दे। तेरे हृदय की कल्पनाएं और भावनाएं, मन की इच्छाएं और कामनाएं, अन्तर में उठते हुए विचार और उनकी प्रतिबद्धता सब मेरे परायण हो जाएं। समर्पण पूरा हो, कुछ भी बाकी नहीं बचना चाहिये। तब तू मुझे पा सकेगा।

ईसाई धर्म की एक प्रार्थना है। सभी ग्रंथों में बहुत प्यारी प्यारी प्रार्थनाएं हैं। प्रार्थना है कि हे प्रिय! मैं अपने आप को तेरे हाथों में सौंपता हूं। सदा के लिए तेरा, केवल तेरा बनने के लिए। सदा के लिए तेरा होने के लिए और

तेरा बनने के लिए मैं अपने आपको तेरे हाथों में सौंपता हूं। अब मेरे ऊपर मेरा कोई ज़ोर नहीं है। मेरे अन्दर अब अपने लिए कोई कल्पना नहीं है तेरा ही होना चाहता हूं, तेरा ही बनना चाहता हूं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "अर्जुन तू मेरा प्रिय है, इसलिए तू मेरे मन वाला बन। मन परमात्मा का, भक्ति उसी की, उसी के लिए याज्ञिक कर्म और उसी को श्रद्धापूर्वक नमन, उसीको समर्पण।" रवीन्द्र नाथ टैगोर ने एक कविता लिखी है, "तुमने उस निःशब्द की पद चाप सुनी है कि वह आता है, नित्य आता है, हमारे हृदय के द्वार पर दस्तक देने के लिए।"

जिस समय श्रीराम अयोध्या में आए और राज तिलक की तैयारियां शुरू हुई उस समय राम जी गुरु वशिष्ठ से आशीर्वाद लेने के लिए गए। गुरु वशिष्ठ ने कहा, "हे राम! यदि रामराज्य स्थापित करना चाहते हो तो राम को विष्णु बनना चाहिए। विष्णु बनकर चार चीज़ें हाथ में ले लेनी चाहिए। शंख, चक्र, गदा और पद्म। शंख इस बात का प्रतीक है कि ज्ञान की ध्वनि दूर तक जानी चाहिए। **ज्ञान और अच्छाई का प्रसार दूर तक होना चाहिए। बुराई तो अपना प्रचार स्वयं कर लेती है। भलाई के लिए शंखध्वनि चाहिए।** चक्र हाथ में धारण करना इस बात का प्रतीक है कि गतिशीलता रहे। राज्य में परिवहन निगम चक्का चलाए रखने के लिए ज़िम्मेदार है। राम राज्य में चक्र अनवरत चलता रहना चाहिए। हाथ में गदा रखनी है। गदा शक्ति का प्रतीक है, शस्त्र है। दुष्टता के दमन के लिए, उछृंखलता को दंडित करने के लिए, गदा होनी चाहिए। राज्य में अगर कहीं से कोई आततायी पहुंच गए हों, तो उन्हें बाहर निकालने की कोशिश करना। कमल भी तुम्हारे हाथ में होना चाहिए। कमल खिले रहने, प्रसन्न रहने, कीचड़ से ऊपर उठे रहने का प्रतीक है और कमल से कमला यानी लक्ष्मी पैदा हुई है। अनासक्त होकर चलना और लक्ष्मी की वृद्धि करना। राजतंत्र सुचारू रूप से तभी चलता है, जब अर्थ की स्थिति सुदृढ़ हो। राजा को राज्य की आर्थिक स्थिति का ध्यान रखना चाहिये और इसका भी कि वह कमल बनकर खिला रहे। धन लक्ष्मी आपके चारों तरफ हो लेकिन आप स्वयं लालच में न आयें। गुरु वशिष्ठ कहते हैं कि राम तुम विष्णु का रूप

धारण करो तो रामराज्य स्थापित हो जायेगा। संसार में जो शासक अच्छा शासन स्थापित करना चाहता है, वह विष्णु के चार चिन्ह धारण करे तो निश्चित रूप से अच्छा शासक बन सकता है। तब उसका यश और कीर्ति दूर तक फैलेगी। आपमें गतिशीलता रहेगी, उन्नति होगी, और समृद्धि बढ़ेगी। अतः अपने अन्दर नारायण को प्रकट करो।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को भगवत् कृपा का पात्र बनाना चाहते हैं। लोग अपनी कंपनी के लिये जिम्मेदार आदमियों की तलाश करते हैं। डिग्री वाले भी मांगते हैं और ज़िम्मेदार भी। डिग्रियों में उसकी लियाकत ढूंढते हैं और अनुभवों में उसकी योग्यता। कभी लाल बुझक्कड़ भी पहुंच गया इंटरव्यू देने। मैनेजर ने उसको देखते ही कह दिया, "तुम ज़िम्मेदार नहीं लगते। तुम्हें नौकरी का कोई तजुर्बा है?" अब इसने बोलना शुरू कर दिया, ज़िम्मेदार तो मैं पूरा पूरा हूं। रही बात नौकरी की तो अब तक बीस नौकरियां कर चुका हूं। इतनी सारी नौकरियां की हैं तो सबका तजुर्बा है।" मैनेजर ने कहा, "फिर जिम्मेदार कैसे हो?"

लाल बुझक्कड़ बोले, "ज़िम्मेदार इस तरह से हूं कि जहां से भी निकाला हूं, सबने यही कहा कि हर गलती का ज़िम्मेदार तू ही है। परिवार के लोगों ने भी अपनी मुसीबत का ज़िम्मेदार मुझे ठहराया। मोहल्ले के लोगों ने कहा कि मोहल्ले की हर मुसीबत के लिए मैं ही ज़िम्मेदार हूं तो मुझ से बढ़कर ज़िम्मेदार व्यक्ति कहां मिल सकता है आपको?"

क्रोध में हर आदमी दूसरे को हर बात के लिए ज़िम्मेदार ठहराता है; यहां तक कि अपने को गुस्सा दिलाने के लिए भी दूसरा ज़िम्मेदार है। जब तक आदमी दूसरे को ज़िम्मेदार ठहराता रहता है तब तक वह क्रोधी बना रहता है, परंतु जिस दिन वह कहने लगता है कि दूसरा कोई नहीं, मैं जिम्मेदार हूं उस दिन उसके अन्दर से क्रोध निकल कर भाग जायेगा। उसी दिन सुधार की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। जिस दिन यह अँगुली उठकर अपनी तरफ आ गई और कहा कि सच में मैं ज़िम्मेदार हूं, उस दिन प्रक्रिया शुरू हो गई परमात्मा की तरफ़ आने की। परमात्मा का होना चाहते हो तो उसके मन वाला बनो, उसके भक्त बनो। फिर हर बात

के लिए ज़िम्मेदार कोई और नहीं, आप स्वयं होंगे और भगवान से कहेंगे कि, "जैसा हूँ, तू मुझे स्वीकार कर।"

गीता में भगवान श्रीकृष्ण की यह घोषणा कि **'सर्वधर्मान्परित्ज्य मामेकं शरणं व्रज'** सब कुछ छोड़ कर तू मेरी शरण में आ, तू मेरा हो, सब बंधनो से छूट कर तू मेरी तरफ आ" बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

जिसे आप बहुत प्यार करते हैं उसके लिए मन इतना आसक्त हो जाता है कि हर समय उसी का विचार रहेगा। स्वयं खाने से पहले उसको खिलाएगा। भगवान का भक्त पहले भगवान को भोग लगायेगा, तब स्वयं खायेगा। पहले भगवान को वस्त्र पहनाएगा फिर स्वयं पहनेगा। प्यार की गहराई ज़्यादा हो गयी तो पूछने पर अपना नाम न बोलकर परमात्मा का नाम बोलेगा क्योंकि दिल और दिमाग तो परमात्मा में लगा है। नाम न बोलकर अपना नाम परमात्मा बोल दिया। बांके बिहारी लाल का नाम बोल दिया। पता पूछा तो मथुरा का पता लिखवा दिया।

यदि मन के अंदर धन बसा हुआ है तो सपने भी रुपये पैसे के देखेगा। बिक्री बढ़ रही है, ग्राहक आ गया है, दूकान पर ग्राहकों की भीड़ लगी हुई है, माल बेचा जा रहा है। सपना देखते देखते सेठ ने दोनों हाथों से चादर पकड़कर बहुत ज़ोर से खींची। खींचते खींचते चादर फट गई। पत्नी आई तो उसने डांटकर पूछा, "सपना देख रहे हो और अपनी ही चादर फाड़ रहे हो।"

सेठ एकदम ज़ोर से बोला, "कमबख्त बीच में बोलती है। चुप रह ग्राहक आया हुआ है। कपड़ा फाड़ फाड़ कर दे रहा हूं।"

हृदय में धन बसा हुआ है इसलिये रात में सपना भी उसी का देखता है। यदि परमात्मा हृदय में बसा हुआ होता तो रात में सपना भी उसी का देखता। यदि परमात्मा हृदय में बसा है तो सवेरे से लेकर शाम तक, रात में सोने से लेकर सुबह जागने तक, विचार आयेंगे तो उसके और सपने आयेंगे तो उसके। इसी का श्रवण, उसी का चिंतन और उसी का मनन। भगवान कहते हैं, **मद्याजी मां नमस्कुरु,** मेरे लिये भजन करने वाला बन।

जिनके हृदय में परमात्मा बसे हो, उनके सांसारिक कर्म भी यज्ञ होते हैं। उनका प्रत्येक कर्म यज्ञ बन जाता है।" **यज्ञोर्माय श्रेष्ठतम् कर्म** यज्ञ श्रेष्ठ कर्म हैं। तब फिर आपके अन्दर से एक सुबास उठती है, सुगन्ध उठती है, यज्ञ की सुबास। साधारण से लोग जिनके पास अपना कोई रुपया पैसा नहीं था, बड़े बड़े कार्य कर गये। पंडित मदन मोहन मालवीय ने बनारस में इतना बड़ा हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित कर एक अकेले आदमी ने, फक्कड़ आदमी ने जिसके पास अपनी धन सम्पदा नहीं थी, इतना बड़ा यज्ञ कैसे पूरा किया होगा? अमीर से अमीर आदमी भी जब अपना मकान बनवाता है तो उसे मुश्किल पड़ती है। लेकिन माालवीय जी ने इतना बड़ा कार्य कर दिया, क्योंकि उन्होंने कहा कि वे अपने लिये नहीं बना रहे, उनकी 'मैं' वहां नहीं आई। उन्होंने अपने को भगवान को अर्पित कर दिया और इतना बड़ा कार्य किया। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। हरिद्वार में एक बड़ा भारी विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। घर से निकले थे तो उनके पास कोई सम्पत्ति नहीं थी, लेकिन वे भगवान के प्रति अर्पित थे। जब व्यक्ति परमात्मा का होकर चलता है तो फिर बात **'त्वमग्ने यज्ञानां' होता-देवे भिर्मानुषे जने,** हो जाती है। चाहे देवता करा रहे हों या मननशील लोग या साधारण इन्सान करा रहे हों, सभी के उपदेष्टा भगवान ही हैं। उसी की प्रेरणा से व्यक्ति महान बन जाता है। उसके द्वारा बड़े बड़े कार्य सम्पन्न होने लगते हैं। भागीरथ ने गंगा को पृथिवी पर लाने के लिए कितना बड़ा प्रयास किया। तपस्या के माध्यम से इस पुण्य कार्य के लिए अपने आपको सुपात्र बनाया। भगवान को अर्पित कर दिया। प्रभु की कृपा हुई और गंगा धरती पर पधारीं।

महात्मा गांधी ने राष्ट्र यज्ञ किया। सारी दुनिया का विरोध सहा लेकिन राष्ट्र यज्ञ को पूरा करने के लिए गांधी हर रोज़ प्रार्थना में बैठते थे। एक व्यक्ति ने उनसे पूछा कि इतनी देर तक आप रामधुन **रघुपति राघव राजाराम** गाते हैं, आंखें बंद करके ध्यान लगाते हैं, अगर इतना समय परमात्मा की भक्ति को छोड़कर राष्ट्र की सेवा में लगाते तो कितना भला होता।

गांधी ने पूछा "तुम भोजन में कितना समय लगाते हो?"

उसने कहा, "बीस मिनट !" गांधी ने उससे फिर पूछा, "तुम वकील हो, अपना बीस मिनट का समय भोजन करने में खराब करते हो। अगर यही बीस मिनट किताबें पढ़कर तैयारी करने में लगाओ तो ज़्यादा तैयारी कर सकोगे?"

वकील कहने लगा, "गांधी जी, आप कैसी बात कर रहे हैं? भोजन नहीं करूंगा तो अन्दर शक्ति कैसे आयेगी? शक्ति नहीं आयेगी तो फिर वकालत कैसे होगी? कर्म का आधार तो भोजन ही है न? इसलिये वह बीस मिनट का समय मेरा बेकार नहीं जाता। बहुत महत्त्वपूर्ण काम में लगता है।"

महात्मा गांधी बोले, "मेरा जो बीस मिनट प्रार्थना में लगता है वह भी बेकार नहीं जाता। वह मुझे ऐसी शक्ति देता है जिस आधार पर मैं राष्ट्र की सेवा का प्रयास पर पाता हूं। तेरा भोजन शरीर की शक्ति है, मेरी प्रार्थना आत्मा की शक्ति है।"

परमात्मा के प्रति अपने को अर्पित करने के बाद एक अन्तर्शक्ति जागृत होती है। उस शक्ति के आधार पर कोई बड़ा से बड़ा यज्ञ करने में सफल हो सकता है। प्रार्थना आपके लिये एक भोजन है, शक्ति है। परमात्मा की की प्रार्थना में बैठने से आपके अन्दर नई शक्ति का उदय होता है। **भगवान अगर पावर हाउस है तो हम उपकरण हैं। हमें उससे जुड़े हुए ही रहना चाहिये। जैसे पावर हाउस से जो उपकरण जुड़ा होगा उसमें पावर हाउस की ऊर्जा आ जाती है।** वही बल्ब में प्रकाश बनती है तो कहीं पंखे में हवा बनती है। आप भी अपने को भगवान से जोड़े रखिये तो भगवान की ऊर्जा आप में प्रवाहित होने लगेगी और आप सब तरह के कार्य कर सकेंगे। भगवान श्रीकृष्ण ने आगे कहा, **'मामनमस्कुरु'** मुझे प्रणाम करने वाले बनो। भगवान को हमारे प्रणामों की आवश्यकता नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि भगवान केवल हमारी खुशामद से खुश होंगे। प्रणाम तो हमारी श्रद्धा का प्रकटीकरण है, द्योतक है। जिसमें श्रद्धा से युक्त विनम्रता, झुकाव और लचीलापन है वह कुछ भी बन सकता है। लोहार अगर कोई चीज बनाना चाहता है तो पहले उसे आग में तपा कर लचीला बनाता है। श्रद्धा से प्रणाम

करना आपको लोचपूर्ण बनाता है। परमात्मा के प्रति श्रद्धा रखने का मतलब है परमात्मा के सारे गुणों को, सुन्दरता को, विशेषता को अपने अन्दर धारण करना, अर्थात् परमात्मा जैसे हो जाना।

हमारे अन्दर भय का और बहादुरी का अलग अलग अंश विद्यमान है। कभी हम लोग बहुत डर रहे होते हैं और कभी अपनी बहादुरी की डींग मार रहे होते हैं। कोई आदमी इतना निडर होता है कि शेर से भी नहीं डरता और अगर डर जाये तो चींटी से भी डर जाये। कल्लन पहलवान एक दिन अपने बच्चे से बात कर रहा था। बच्चा "बाबू किसी से डरते हो?" पहलवान कहता है, "किसी से नहीं डरता।" बच्चा पूछता है, "शेर से? पहलवान बोला," नहीं डरता।" पूछा "हाथी से?" बोला, "नहीं डरता", पूछा 'सांप से?" बोला, "नहीं डरता।" बच्चे ने कहा, "किसी से नहीं डरते। डरते हो तो सिर्फ़ मां से।"

पहलवान किसी और से नहीं डरता, शेर से नहीं डरता, पर पत्नी से जरूर डरता है और पत्नी? वह पहलवान से नहीं डरती लेकिन काकरोच से डरती है। अगर रसोईघर में काकरोच सामने आ जाये तो पहलवान की बीबी कांपने लगती है। हम कब बहादुर हो जाते हैं और कब कायर यह हमें खुद ही पता नहीं होता।

जो व्यक्ति परमात्मा का भक्त होता है, भक्ति मार्ग में चलते ही उसमें सबसे पहले निडरता आती है। परंतु साथ में विनम्रता भी आती है **अन्दर से झुकने वाला होना पर डरने वाला नहीं। न दबने वाला, न दबाने वाला। परमात्मा का भक्त न किसी को डराता है न किसी से डरता है।** लेकिन लोचपूर्ण इतना होता है कि अन्तर से उठती हुई परमात्मा की प्रत्येक आवाज़ के अनुरूप कार्य करना चाहता है। किसी के आंसू देखे तो पिघल जाये, लेकिन किसी दुष्ट के क्रोध के सामने डरे नहीं। दुष्टता को दबाने के लिए तैयार हो जाये। सच्चे भक्त की यह पहचान है। भक्त वह नहीं होते जो बेपेंदी के लोटे की तरह लुढ़क जायें, कमजोरी दिखायें', दुष्टों से दबें और कोई डराए तो भाग जायें। इसका नाम भक्ति नहीं है। **भक्ति तो बहादुरी का नाम है।** अपने को परमात्मा के ढांचे में ढाल लो, प्रभु को हृदय

में उतार लो, उसको अपना लो।

भगवान श्रीकृष्ण ने अगले श्लोकों में कहा **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज** सब धर्मों को छोड़ कर, सारी चीज़ों को त्यागकर, **'मामेकं शरणं व्रज'**, तू मेरी शरण में आ और सारे कर्म कर्त्तव्य याद रहें न रहें, लेकिन एक बात याद रहनी चाहिये कि तुझे मेरा होना है, अतः तू पूर्ण रूप से मेरा बन। **अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः** मैं तुझे सब दुःखों और पापों से छुड़ाऊंगा। परमात्मा को संपूर्ण समर्पण करने का इनका यह आमंत्रण स्वीकार करने के लिये बहुत हिम्मत चाहिये, क्योंकि व्यक्ति किसी न किसी का पक्षधर होता है। कोई किसी परिवार का पक्षधर है, किसी बिरादरी का सदस्य है, किसी वर्ग के साथ जुड़ा बैठा है यह सब त्याग कर केवल परमात्मा का हो जाए और ऐसा ही घोषित कर दे यह आसान नहीं होता। आप जब ज़िन्दगी में कुछ होने की ठान लेते हैं तो वह होने के लिए अपने को पूरी तरह उस कार्य को अर्पित कर देते हैं। इसलिए यदि भगवान का होना चाहते हैं तो भगवान के प्रति अपने को अर्पित कर दीजिए। गुरु का होना चाहते हैं तो अपने को गुरु को अर्पित कर दीजिए।

अच्छा चित्रकार अपने चित्र का ही हो जाता है। वह जितना उसमें डूब कर काम करता है उसका चित्र उतना ही बढ़िया बनता है। परमात्मा में यदि तुम पूरी तरह डूब सको तो अन्तर में परमात्मा की अनुभूतियां जागने लग जायेंगी। चेहरे से लेकर कर्मों तक, प्रत्येक क्षेत्र में परमात्मा की अनुभूतियां दिखने लग जायेंगी। फिर बात बनते देर नहीं लगेगी। पर समर्पित होने में वर्षों भी लग सकते है और क्षणों में भी कायापलट हो जा सकती है। सेकेंड के एक लाखवें हिस्से में चमत्कार घट सकता है। बुद्ध को किस क्षण बोध हुआ? बुद्ध को ज्ञान प्राप्त होने की घटना कब घटी? रामकृष्ण परमहंस को "दर्शन" की प्रतीति कब हुई? यह अनुभूतियां अपने आप होती हैं। प्रत्येक महापुरुष के जीवन में ऐसी चमत्कारिक घटनायें घटी हैं। युगों तक रहता है उस चमत्कारी क्षण का इंतजार। लेकिन इस इन्तजार में कोई तड़प नहीं है। बस बैठ गये परमात्मा के दर पर। कभी तो द्वार खुलेंगे, कभी तो कृपा होगी। कब, किस क्षण नूर अन्दर से प्रकाशित होने लगे कुछ पता नहीं।

सूफी संत राबिया बसरी किसी के घर में दासी बन कर सेवा करती थी। एक दिन खुदा की इबादत में बैठी खुदा का शुक्र मनाती हुई हाथों को फैला कर कह रही थी, "या खुदा ! तेरा नूर मेरे अन्दर झांकने लगा है। मैं चाहती हूं कि तेरी इबादत में मेरे दोनों हाथ हमेशा उठते रहें। लेकिन मेरे रब, मुझे दिन भर काम करना पड़ता है। उस काम से शिकायत तो नहीं है, लेकिन उसकी वजह से मैं सारा दिन तेरे नाम की माला नहीं फेर सकती। तेरे लिये ही सज़दा नहीं कर सकती। मैं तो चाहती हूं कि तेरे लिये कर्म करती रहूं। लब जब भी खुले, तेरे ही नाम के लिये खुलें। आंखें देखे तो तेरी कायनात को देखकर, तेरी रहमत को देखकर, खुश होती रहें।'' मालिक ने छुपकर राबिया की बातें सुन लीं। उसने खिड़की से देखा कि राबिया बसरी के चेहरे पर एक अलग तरह का नूर उतरा हुआ है। घर का मालिक वहीं घुटनों के बल बैठ गया और सोचने लगा, "ओ रब ! ओ अल्लाह ! यह मैं क्या गुनाह कर रहा हूं। तेरी राह में चलने वालों से नौकरी करा रहा हूं? जो तेरी राह में चलता है उसकी राह में मैं बाधक बन रहा हूं।" राबिया बसरी जब उठकर आई तो मालिक ने कहा, "आज से तू आज़ाद है। तुझे किसी की नौकरी में नहीं रहना है। तू अब दासी नहीं है।'' राबिया गई और जंगल में बैठ कर परमात्मा के गीत गाने लगी। लोग उसको धन दौलत आराम देने की बात कहते तो वह कहती कि उसको उसके रब ने सब कुछ दे रखा है।

लेकिन संसार का ढंग विचित्र है। कोई भगवान की तरफ चलने लगे तो घर के लोग खिलाफ़ हो जाते हैं। कहते हैं इसकी बुद्धि खराब हो गई है। यह कोई उम्र है इधर चलने की। आप सत्संग करने लग जाएं तो भी धर के लोग रोकने लग जायेंगे। सब लोग रोकेंगे। सब कुछ छोड़कर भगवान की तरफ चलना आसान नहीं है। यदि पत्थर को पूरी ताकत से आसमान की तरफ फेंकोगे, तो धरती की शक्तियां उसे नीचे की तरफ खींच लेंगी। आपको पीछे की तरफ खींचने के लिये हज़ार बहाने हैं संसार में। अगर गुरु के नजदीक भी जाकर बैठ जाओ और कहो कि मैं सब कुछ छोड़कर आया हूं तो गुरु भी कई बार पास बैठाकर वापिस भेज देता है, बहाना कर देता है। आसानी से तो वह भी स्वीकार नहीं करता, क्योंकि वह

भी आपको पहले परखना चाहता है। लेकिन जब कोई समग्रता से उसकी शरण में आ जाये तब प्रभु का मार्ग बताता है। गुरु फिर भी सिर्फ मार्ग बताता है, चलना आपको ही पड़ता है। वह तो केवल परमात्मा का मार्ग बता देता है। गुरु अपना मार्ग आसानी से दूसरे को नहीं देता। इसके लिये गुरु हमेशा यह चाहेगा कि शिष्य भगवान के मार्ग पर चलने के लिए सब कुछ छोड़कर के आये।

गुरु किसी शिष्य को अपना नहीं बनाना चाहता। वह उसे अपने माध्यम से परमात्मा का बनाना चाहता है। परमात्मा की मंजिल तक पहुंचाना चाहता है। गुरु को शिष्य के अन्दर आग जलाते रहना चाहिये। जब कभी अंदर की आग बुझने लगे, फिर गुरु दर्शन करो, फिर गुरुवचन सुनो, फिर गुरु की आवाज को हृदय में गूंजने दो। अन्दर की आग फिर जिंदा होगी और उस प्रकाश के माध्यम से आप परमात्मा का मार्ग खोज पाओगे।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समस्त गुह्यतम ज्ञान प्रदान करने के बाद घोषणा करते हैं, उससे कहते हैं : **"यथेच्छसि तथा कुरु** जैसी तुम्हारी इच्छा हो तुम वैसा व्यवहार करो।" उसके बाद भगवान अतिशय प्रेम में आकर अर्जुन से कहते हैं तू मेरे मन वाला बन, मेरा भक्त हो, तेरी समस्त श्रद्धा तथा प्रणाम मुझ तक पहुँचें। भगवान श्रीकृष्ण आगे फिर कहते हैं **"मामेकं शरणं व्रज"** समस्त भावनाओं के साथ तू एकमात्र मेरी शरण को ग्रहण कर। यह भगवान की तरफ से एक आमंत्रण है। भगवान तो अपनी तरफ़ आने के लिये निरन्तर सबको आमंत्रित करता है। जैसे सागर और उसकी लहर निरन्तर नदियों को आमंत्रित करती रहती हैं कि आओ, अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त करने के लिये मेरी शरण ग्रहण करो। सागर पानी की एक एक बूंद को आमंत्रित करता है। पानी जहाँ भी ढलान देखता है, गड्ढा देखता है, उधर की ओर लुढ़कने लगता है, क्योंकि उसे लगता है कि शायद मेरा समुद्र इधर ही है। **हम कितनी भी दौड़ भाग क्यों न करें, आखिर में हमें वहीं पहुँचना है जहाँ परम आनन्द है, परमात्मा है और जिसकी शरण में परम सुख है, परम शांति है।** मनुष्य का लक्ष्य भी शांति, आनन्द, प्रसन्नता और सुरक्षा को पाना है। व्यक्ति का लक्ष्य निर्भयता है।

सुरक्षा की भावना प्रबल होने के कारण वह समस्त दुःखों से बचने और छूटने की कामना करता है, भय से बचने की कामना करता है। शांति पाने की कामना हर इंसान करता है। वह चैन से रहना चाहता है, सुकून पाना चाहता है, संतुष्टि चाहता है। व्यक्ति की यह सब इच्छाएँ एक ही जगह आकर जुड़ती हैं और वह है परमात्मा की शरण। इसलिये भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं **मामेकं शरणं व्रज** तू मात्र एक मेरी ही शरण को ग्रहण कर।

अगर हम परमात्मा की परिक्रमा करके अपने आप को उसके अर्पण कर दें तो फिर और कुछ पाना शेष नहीं रह जायेगा। लोग मंदिर में माथा झुका कर प्रणाम करने के बाद परमात्मा की परिक्रमा करते हुए मानों यह कहते है कि हमारे समस्त कार्यकलाप तुम्हारे ही इर्दगिर्द परिभ्रमण का प्रतिरूप हैं। सारी दौड़ धूप, यात्रा केवल तुम्हारे तक ही है। हमारे सब कर्म तुझ तक पहुँचें। भगवान कृष्ण ने यह चेतावनी भी दी :

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।६७।।

भगवान कहते हैं कि मैंने पवित्रज्ञान जो तुम्हें दिया है, इसे किसी आलसी व विलासी व्यक्ति को नहीं दिया जाना चाहिये। जो व्यक्ति तपस्या से रहित है उस के लिय यह ज्ञान नहीं है। अर्थात् इस ज्ञान को पाने के लिये एक योग्यता की आवश्यकता है। पूर्ण मनोयोग के साथ जो सुनना चाहे, जो तप करने के लिये तत्पर हो, आलस्य छोड़कर जो इस ज्ञान को सुनने के लिये आया हो, यह ज्ञान उसके लिये है। **नाभक्ताय** जो भक्त नहीं है उसके लिये यह ज्ञान नहीं है। भगवान कहते हैं जिसमें भक्ति भावना नहीं है उसको यह ज्ञान नहीं दिया जाना चाहिये। पारखी व्यक्ति एक उर्वरा भूमि के समान है, उस व्यक्ति को यदि आप थोड़ा सा भी ज्ञान दें तो वहाँ बीज अंकुरित होंगे पर बंजर भूमि में बीज रोपने से कोई लाभ नहीं होगा। जो लोग वास्तव में अपनी पात्रता बनाकर तैयार होकर बैठे हैं यह ज्ञान उन्हीं के लिये होना चाहिये। यह एक शर्त है।

भगवान श्रीकृष्ण ने यह पवित्र ज्ञान उन सब लोगों के लिये दिया है जो तप और भक्ति भावना से ओत प्रोत हैं, भक्ति जिनके अन्तस्थ में बसी

हुई है और जो पूर्णरूप से जागरूक हैं। भगवान कहते हैं कि मेरी यह वाणी उनके लिये है। **न च मां योऽभ्यसूयति** जो परमात्मा के निन्दक हैं, नास्तिक, कठोर और निर्दय है, उन लोगों को यह ज्ञान नहीं दिया जाये। एक व्यक्ति तो वह होता है जो सोया पड़ा है। उसके जागने की संभावनाएं बहुत अधिक हैं। सोए को जगाया जा सकता है, लेकिन जो सोया नहीं है जाग रहा है परन्तु आंखें बंद कर के लेटा हुआ है, ऐसी तंन्द्रा में पड़े व्यक्ति को आप कितनी भी आवाज़ देते रहिये, वह उठेगा नहीं। सोये हुए को तो अलार्म की आवाज भी जगा देगी पर जो जानबूझ कर तन्द्रा में पड़ा हुआ है उसे आप पकड़ कर हिलायेंगे भी तो वह लड़ने मरने को तैयार हो जायेगा लेकिन उठने को तैयार नहीं होगा। तो **भगवान कहते हैं कि सोते को जगाने के लिये गीता का ज्ञान है लेकिन तन्द्रा में पड़े व्यक्ति के लिये इस ज्ञान को देकर ज्ञान का अपमान न किया जाये।**

मूल्यवान मोती को उसे पहचानने वाले पारखी के सामने रखा जाना चाहिये। जो आदमी मोती को पहचानता ही न हो, वह उसकी कीमत कैसे आँक सकता है। भेड़ बकरियाँ चराने वाले के पास इत्र बेचने वाले ने जाकर कहा, "मैं एक बहुत अच्छा व्यापारी (बिजनेस मैन) हूँ। यह बहुत कीमती चीज़ है, मेरे कहने से तुम इसे खरीद लो।" उसने पूछा, "यह क्या है?" तो बताया, "यह इत्र है" गडरिया कहता है, "ज़रा दिखाना यह है क्या चीज़?" इत्र बेचने वाला चाहता था कि उस की उंगली पर थोड़ा सा इत्र लगाकर उसे उसकी खुशबू सुंघाये लेकिन गडरिये ने पूरा हाथ आगे कर दिया और कहा, "हाथ पर डाल दो। घर जाकर रोटी के साथ लगाकर खाकर देखेंगे, तब पता लगेगा कि क्या चीज़ है।" उसको यह आभास ही नहीं हो सकता कि कोई ऐसी चीज़ भी हो सकती है जिसको लोग सिर्फ सूँघते हैं और सूँघने के लिए इतने पैसे देते हैं। **जो लोग यह भी नहीं जानते कि ज्ञान क्या होता है तो ऐसे लोगों को अगर यह ज्ञान दिया भी जाये तो वे इसका सत्कार नहीं कर पायेंगे।**

सत्य बात तो यही है कि हम दुनिया के बड़े से बड़े महापुरुष का सत्कार नहीं कर पाये। हमेशा यही होता रहा कि जब वह व्यक्ति संसार

में नहीं रहा तब उसके कार्यों और विचारों की ओर हमारा ध्यान गया। तब उनके कार्यों का लेखा जोखा एक जगह तैयार किया गया। उनके बारे में सारी कहानियां और किवदंतियाँ जोड़कर उनका जीवन चरित्र लिखा गया। उसके बाद लोगों को समझ में आया कि वे कितने बड़े व्यक्ति थे। फिर पश्चाताप, रोना और उन्हें पूजना शुरू हो जाता है।

वाल्टेयर फ्रांस का एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी चिंतक और लेखक हुआ है। अगर वह फ्रांस में कहीं से भी निकल जाता तो उसकी एक झलक पाने के लिये लोग पागलों की तरह भागते थे। फिर एक समय ऐसा भी आया कि उसके साथ कोई खड़ा भी नहीं होता था। उसके अंतिम समय में तो सरकार के दबाव के कारण कोई व्यक्ति उसके अंतिम संस्कार तक में शामिल नहीं हुआ। केवल तीन व्यक्ति गये। उसके जीवनकाल में एक व्यक्ति वाल्टेयर का तीव्र विरोधी था। जीवन भर उसका विरोधी रहा। किसी ने जाकर उसे खबर दी कि तेरा दुश्मन वाल्टेयर आज मर गया। साथ ही यह भी कहा कि उसके बारे में आप एक टिप्पणी लिखिये कि वह कैसा व्यक्ति था। वाल्टेयर के विरोधी ने वाल्टेयर के लिये एक पंक्ति लिखी, **"वह आदमी बहुत महान था, बड़ा भला आदमी था, बहुत अच्छा था, लेकिन तब जब अगर सच में ही वह मर गया हो तो। अगर वह ज़िंदा है तो फिर यह बयान मैं बिल्कुल नहीं दे सकता।"** उसने यह मज़ाक दुनिया का ढंग समझाने के लिए किया। कोई आदमी अगर मर गया है तो अच्छा था और अगर अभी वह ज़िंदा है तो फिर वह आदमी अच्छा नहीं है। दुनिया किसी जीवित व्यक्ति का सम्मान नहीं कर सकती। दुनिया की चाल समझाने के लिये यह एक बहुत प्यारा व्यंग्य है। जो न रहे, जो मर चुका हो उसकी स्टेचू (मूर्ति) लगाने से लेकर, जीवनगाथा छापने तक, गीत लिखकर गाने तक और जहां उस व्यक्ति का स्मारक बना है वहाँ मेले लगाने तक सब काम हम करेंगे लेकिन जीते जी उस का सत्कार हम नहीं कर सकते। प्रश्न यह नहीं हैं कि उसको सत्कार चाहिये, प्रश्न यह है कि हीरे मोती पहचानने वाला कोई तो होना चाहिए। इतनी बड़ी दुनिया है, एक कद्रदान तो पारखी मिले।

मोती जिस समय सीप में हो उस समय उसको पहचाना जाये और उसकी कीमत को समझा जाए तो उसका एक अलग लाभ होता है। महापुरुष जिस समय हमारे समक्ष हो उस समय उनको पहचान कर, उनकी ज्ञान धारा का लाभ उठाया जाये तो बहुत बड़ी बात होगी। पर भगवान कृष्ण ने यह घोषणा कर दी कि अर्जुन! मैंने जो ज्ञान तुम्हें दिया है, यह ज्ञान आलसी, विलासी, प्रमादी लोगों के लिये नहीं है जो इतना भी नहीं समझते कि ज्ञान क्या है ? तू तप से पवित्र है इसलिये मैंने तुझे यह ज्ञान दिया है। तू भक्त है और सेवा में संलग्न है इसलिये मैंने तुझे यह ज्ञान दिया है। यह ज्ञान तुझे इसलिये दिया है कि हर स्थिति में तेरी वाणी से तेरे मन से मेरी स्तुति में शब्द निकलते हैं। तू इस ज्ञान को और इसकी महिमा को समझता है, इसलिये यह ज्ञान तेरे लिये है। किसी महापुरुष के या किसी गुरु के अनेकों ही शिष्य बने। कभी कभी एक गुरु के दस, बीस, हजार या लाख शिष्य भी थे, लेकिन यह विचित्र बात है कि ऐसा कोई विरला ही शिष्य हो पाया है जिसमें गुरु ने अपना प्रतिबिम्ब देखा हो। गुरु ने उसमें अपने प्राण बसाए हों, अपनी आत्मा, अपनी ऊर्जा और अपनी शक्ति पूरी तरह से डाल दी हो। ऐसा बहुत कम होता है कि पूरी योग्यता लेकर कोई तैयार हो गया हो। कभी कोई एक या दो सुपात्र मिल जायें तो बहुत बड़ी बात है। बहुत सारे ऐसे गुरु भी हुए जिनको एक भी ऐसा शिष्य नहीं मिल पाया हालांकि उसके चारों तरफ भीड़ बहुत लम्बी रही।

रामकृष्ण परमहंस के बहुत शिष्य थे लेकिन विवेकानन्द को ढूंढने में उनको कितना समय लग गया और जब नरेन्द्र मिल गया तो फिर उन्होंने उसे बहुत प्यार से संभाला और ऐसा जगाया कि विवेकानंद एक अलग ही तरह का फूल बनकर संसार में खिला जिसकी खुशबू से केवल स्वदेश ही नहीं, विदेश तक सुवासित हो गया। चाणक्य के पास भी बहुत सारे शिष्य थे लेकिन चन्द्रगुप्त एक ही था। कोई एक ऐसा शिष्य, केवल एक ही मिल जाये तो गुरु का संसार में आना सफल हो जाता है। परन्तु इसके लिये कुछ खालिस, कुछ विशुद्ध लोगों की आवश्यकता पड़ती है। गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज, दशम गुरु, दसवीं बादशाही ने दस हजार की भीड़ में

से सिर्फ पाँच प्यारे ढूँढे। पाँच प्यारे ऐसे जो तन, मन, धन सब कुछ न्यौछावर कर दें। उन्हीं से खालसा सजाने की परम्परा शुरू हुई। पंथ ज्ञान, धारा, शक्ति, साम्राज्य सब का शुभारम्भ हुआ। लेकिन कोई विशुद्ध व्यक्ति, खालिस व्यक्ति सामने आये तो सही कुर्बानी देने के लिये। एक भी सही व्यक्ति सामने आ जाये तो फिर गुरु उसके अन्दर उतरता है। इसलिये भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति आलसी और विलासी है उसके लिये यह ज्ञान नहीं है। हर चीज़ हर किसी को नहीं दी जा सकती, न दी जानी चाहिये।

भगवान यह भी कहते हैं कि इस परम गुह्य ज्ञान को जो किसी और को सिखायेगा, वह व्यक्ति जो इसका व्याख्यान करेगा, इसकी व्याख्याएं लोगों तक पहुँचायेगा, निश्चित बात है कि वह मेरा प्रिय होगा और वह मुझ तक अवश्य पहुँचेगा। वह मुझे ज़रूर प्राप्त कर लेगा। जो इस ज्ञान को समझे और समझकर प्रेमपूर्वक संसार तक पहुँचाये, निश्चित बात है कि वह मुझ तक पहुंचेगा। अर्थात् ज्ञान प्राप्त कर आगे बांटना चाहिये। मन में भाव होने चाहिये कि **'दुर्जनः सज्जनो भूयात्'** दुर्जन सज्जन बन जायें, **'सज्जनः शान्तिम् आप्नुयात्'** सज्जन लोग शांति को प्राप्त करें **शांतो मुच्येत** शांत लोग मुक्ति को प्राप्त करें, **बन्धेभ्यो मुक्तस्य अन्यान् विमोचियेत्** और जो बन्धन से मुक्त हो गये हैं वे दूसरों को बन्धनों से बाहर निकालें। अर्थात् ज्ञानी दुर्जनों को सज्जन बनाने के लिये लगातार प्रयत्नशील रहें। भगवान श्रीकृष्ण ने घोषणा भी की कि **'परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्' सज्जनों की रक्षा और दुष्टों का दलन होना चाहिये।**

भगवान कृष्ण ने अहिंसा को सर्वोपरि बताते हुए कहा कि **अहिंसा जीवन का कर्त्तव्य है।** लेकिन आप अहिंसक बनकर जीना भी चाहें तो भी आप जो कर्म करेंगे उसमें कहीं न कहीं, थोड़ी बहुत हिंसा ज़रूर होगी। इसका अर्थ यह नहीं कि अकर्मण्य होकर जीना और हाथ पर हाथ रख लेना, मुँह पर पट्टी बाँध लेना। भगवान ने यह भी कहा कि आप दुनिया में कभी भी सब को खुश नहीं कर सकते। आप जो भी कर्म करेंगे तो उसके द्वारा कुछ न कुछ किसी न किसी को हानि अवश्य होगी। आप गाड़ी चला

मोती जिस समय सीप में हो उस समय उसको पहचाना जाये और उसकी कीमत को समझा जाए तो उसका एक अलग लाभ होता है। महापुरुष जिस समय हमारे समक्ष हो उस समय उनको पहचान कर, उनकी ज्ञान धारा का लाभ उठाया जाये तो बहुत बड़ी बात होगी। पर भगवान कृष्ण ने यह घोषणा कर दी कि अर्जुन! मैंने जो ज्ञान तुम्हें दिया है, यह ज्ञान आलसी, विलासी, प्रमादी लोगों के लिये नहीं है जो इतना भी नहीं समझते कि ज्ञान क्या है ? तू तप से पवित्र है इसलिये मैंने तुझे यह ज्ञान दिया है। तू भक्त है और सेवा में संलग्न है इसलिये मैंने तुझे यह ज्ञान दिया है। यह ज्ञान तुझे इसलिये दिया है कि हर स्थिति में तेरी वाणी से तेरे मन से मेरी स्तुति में शब्द निकलते हैं। तू इस ज्ञान को और इसकी महिमा को समझता है, इसलिये यह ज्ञान तेरे लिये है। किसी महापुरुष के या किसी गुरु के अनेकों ही शिष्य बने। कभी कभी एक गुरु के दस, बीस, हजार या लाख शिष्य भी थे, लेकिन यह विचित्र बात है कि ऐसा कोई विरला ही शिष्य हो पाया है जिसमें गुरु ने अपना प्रतिबिम्ब देखा हो। गुरु ने उसमें अपने प्राण बसाए हों, अपनी आत्मा, अपनी ऊर्जा और अपनी शक्ति पूरी तरह से डाल दी हो। ऐसा बहुत कम होता है कि पूरी योग्यता लेकर कोई तैयार हो गया हो। कभी कोई एक या दो सुपात्र मिल जायें तो बहुत बड़ी बात है। बहुत सारे ऐसे गुरु भी हुए जिनको एक भी ऐसा शिष्य नहीं मिल पाया हालांकि उसके चारों तरफ भीड़ बहुत लम्बी रही।

रामकृष्ण परमहंस के बहुत शिष्य थे लेकिन विवेकानन्द को ढूंढने में उनको कितना समय लग गया और जब नरेन्द्र मिल गया तो फिर उन्होंने उसे बहुत प्यार से संभाला और ऐसा जगाया कि विवेकानंद एक अलग ही तरह का फूल बनकर संसार में खिला जिसकी खुशबू से केवल स्वदेश ही नहीं, विदेश तक सुवासित हो गया। चाणक्य के पास भी बहुत सारे शिष्य थे लेकिन चन्द्रगुप्त एक ही था। कोई एक ऐसा शिष्य, केवल एक ही मिल जाये तो गुरु का संसार में आना सफल हो जाता है। परन्तु इसके लिये कुछ खालिस, कुछ विशुद्ध लोगों की आवश्यकता पड़ती है। गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज, दशम गुरु, दसवीं पादशाही ने दस हजार की भीड़ में

से सिर्फ पाँच प्यारे ढूँढे। पाँच प्यारे ऐसे जो तन, मन, धन सब कुछ न्यौछावर कर दें। उन्हीं से खालसा सजाने की परम्परा शुरू हुई। पंथ ज्ञान, धारा, शक्ति, साम्राज्य सब का शुभारम्भ हुआ। लेकिन कोई विशुद्ध व्यक्ति, खालिस व्यक्ति सामने आये तो सही कुर्बानी देने के लिये। एक भी सही व्यक्ति सामने आ जाये तो फिर गुरु उसके अन्दर उतरता है। इसलिये भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति आलसी और विलासी है उसके लिये यह ज्ञान नहीं है। हर चीज़ हर किसी को नहीं दी जा सकती, न दी जानी चाहिये।

भगवान यह भी कहते हैं कि इस परम गुह्य ज्ञान को जो किसी और को सिखायेगा, वह व्यक्ति जो इसका व्याख्यान करेगा, इसकी व्याख्याएं लोगों तक पहुँचायेगा, निश्चित बात है कि वह मेरा प्रिय होगा और वह मुझ तक अवश्य पहुँचेगा। वह मुझे ज़रूर प्राप्त कर लेगा। जो इस ज्ञान को समझे और समझकर प्रेमपूर्वक संसार तक पहुँचाये, निश्चित बात है कि वह मुझ तक पहुंचेगा। अर्थात् ज्ञान प्राप्त कर आगे बांटना चाहिये। मन में भाव होने चाहिये कि **'दुर्जनः सज्जनो भूयात्'** दुर्जन सज्जन बन जायें, **'सज्जनः शान्तिम् आप्नुयात्'** सज्जन लोग शांति को प्राप्त करें **शांतो मुच्येत** शांत लोग मुक्ति को प्राप्त करें, **बन्धेभ्यो मुक्तस्य अन्यान् विमोचियेत्** और जो बन्धन से मुक्त हो गये हैं वे दूसरों को बन्धनों से बाहर निकालें। अर्थात् ज्ञानी दुर्जनों को सज्जन बनाने के लिये लगातार प्रयत्नशील रहें। भगवान श्रीकृष्ण ने घोषणा भी की कि **'परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्' सज्जनों की रक्षा और दुष्टों का दलन होना चाहिये।**

भगवान कृष्ण ने अहिंसा को सर्वोपरि बताते हुए कहा कि **अहिंसा जीवन का कर्त्तव्य है।** लेकिन आप अहिंसक बनकर जीना भी चाहें तो भी आप जो कर्म करेंगे उसमें कहीं न कहीं, थोड़ी बहुत हिंसा ज़रूर होगी। इसका अर्थ यह नहीं कि अकर्मण्य होकर जीना और हाथ पर हाथ रख लेना, मुँह पर पट्टी बाँध लेना। भगवान ने यह भी कहा कि आप दुनिया में कभी भी सब को खुश नहीं कर सकते। आप जो भी कर्म करेंगे तो उसके द्वारा कुछ न कुछ किसी न किसी को हानि अवश्य होगी। आप गाड़ी चला

रहे हैं या पैदल चल रहे हैं तो बहुत सारे कीड़े मकौड़े आपकी गाड़ी या पैर के नीचे आकर मर जायेंगे। किसान खेत में हल चलाएगा तो कितने सारे कीटाणु नष्ट होंगे। कीटाणुनाशक रसायन तो कीटाणुओं को मारने के लिए ही डाले जाते हैं। इस स्थिति के बारे में कहा गया कि **'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति'** अर्थात् शास्त्रोक्त ढंग से चलने में जो हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है। बीमारी से लड़ने के लिये डाक्टर की दवाई से शरीर के अन्दर के विषाणु नष्ट होते हैं, तभी मरीज़ स्वस्थ होता है। डाक्टर कहते हैं मलेरिया फैल रहा है, मच्छरों को मारो, तो क्या मच्छरों को मारना हिंसा है? खाट में खटमल हो गए हों और कोई व्यक्ति कहे कि खटमलों को मारना हिंसा है इसलिये उन्हें मत मारो। बस यहाँ आकर बात समझने की है कि अहिंसा क्या है ? अहिंसा का अर्थ है कि जीवन के प्रति आदर भाव रखा जाये। जीवन की सुरक्षा की जाये। लेकिन साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि **जो समस्त जीवन को हानि पहुँचा रहे हैं उनके प्रति हिंसा ही जीवन के प्रति आदर है। इस बात को ठीक से समझा जाना चाहिये। यदि इसको हम समझ लेते हैं तो फिर अनजाने में की गई हिंसा या हानिकारक विषैले कीटों की हत्या, हिंसा नहीं है, यह हम जान जायेंगे।**

इस प्रकार **भगवान श्रीकृष्ण ने जो दुष्टों के दलन की बात कही है वह भी अहिंसक भाव है।** अंगुली अगर अपनी सही स्थिति से थोड़ी आगे बढ़ जाए, थोड़ी मोटी हो जाये, थोड़ी फूल जाये, सूज जाये, पक जाये तो फिर तो डाक्टर उसमें चीरा लगाकर फालतू हिस्सा निकाल देगा। तो क्या डाक्टर को हिंसक कहा जाएगा? अंगुली को सही दिशा में लाने के लिये, स्वस्थ करने के लिये चीर फाड़ आवश्यक हो गई थी। माली अपने बगीचे के पौधों को तराशता है तो वह उनके प्रति हिंसा नहीं कर रहा होता; वह उन्हें हानि नहीं पहुँचा रहा है, उन्हें काट नहीं रहा है। वह तो उनको और सुन्दर बनाने के लिये, और ऊँचाई तक ले जाने के लिए ऐसा कर रहा है; इसलिये उसका कैंची से पौधों को काटना व तराशना हिंसा नहीं है। वह तो उन्हें एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था के अंतर्गत सुन्दर बना रहा है। इसलिये यह बात ध्यान रखिये कि कुछ लोग आप की ज्ञान धारा को नहीं समझेंगे

आपके समझाने पर भी नहीं समझेंगे आपके डांटने फटकारने को भी नहीं समझें। ऐसे लोगों को खूंटे से बाँध कर भी रखा जाये तो भी वे ठीक न हो पायें तो दंड की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। **दंड आपद् धर्म है। जब किसी तरह बात नहीं बनें तो कठोरता का प्रयोग किया जाये। जब सारे प्रयोग निष्फल हो जायें तो वृहद् समाज की सुरक्षा के लिये दंड हाथ में लिया जाता है।**

हमारे जितने भी देवी देवता हैं सभी के हाथ में कुछ न कुछ दंड प्रक्रिया का प्रतीक अस्त्र है। भगवान शंकर तो भोलेनाथ हैं लेकिन वह भी त्रिशूल लिये खड़े हैं। भगवान कृष्ण के हाथ में बाँसुरी है लेकिन छिपा हुआ सुदर्शन चक्र भी तो है जो समय पर प्रकट हो जाता है। भगवान राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं लेकिन उनके कंधे पर धनुष बाण लटका हुआ है, और तुलसी तो सीधे सीधे कृष्ण भगवान के मंदिर में खड़े होकर बोलते हैं कि आपका यह रूप समझ में नहीं आया हे कृष्ण! **'तुलसी मस्तक तब नमे जब धनुष बाण लो हाथ'** – तुलसी का माथा तो तब झुकेगा जब आपके हाथ में धनुष बाण हों क्योंकि हे कृष्ण ! मैं ऐसा भक्त हूँ जिसके हृदय के अन्दर पापों के बहुत सारे अंकुर उग आये हैं। तो उनके लिये तो कोई तीखी नोक वाला तीर ही चाहिये जो उनको निकाल कर बाहर कर दे। **विष्णु भगवान के हाथ में भी चक्र और गदा हैं। दुर्गा माता आठ हाथों में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लिये खड़ी हैं।** सब के पास कुछ न कुछ अस्त्र–शस्त्र हैं। **हनुमान जी सेवक हैं लेकिन गदा लिए रहते हैं। दुष्टों का दलन करने के लिये सभी देवी देवता शक्ति का सहयोग लेते हैं।** 'मीरी और पीरी' की दो तलवारें रखने का मतलब भी यही है कि धर्म की रक्षा और दुष्टता का दलन हो। अस्त्र–शस्त्र इसलिये नहीं है कि उनको धारण करने वाला व्यक्ति उद्दंड हो जाये। यह आपद् धर्म है। जीवन में कहीं कहीं इसका प्रयोग भी करना पड़ सकता है।

दुर्जन को सज्जन बनाने के लिये पवित्र विचारों का होना आवश्यक है। विचार कार्य करेंगे। **वैचारिक क्रांति से बढ़कर कुछ नहीं है लेकिन फिर भी खर पतवार को तो निकालना ही पड़ेगा, तभी तो कीमती**

पौधे ऊपर उठ पायेंगे। दुष्टों को दबाना पड़ेगा तब ही तो सज्जन उभर पायेंगे, जी पायेंगे। अन्यथा समाज की स्थिति यह हो जायेगी कि हमें तीन दुष्ट लोगों में से दो बुरों को और उनमें से जो एक कम दुष्ट होगा उसका चुनाव कर सत्ता में पहुँचाना पड़ेगा। **वह एक दुःखद स्थिति होगी जब चुनाव करने के लिये हमारे पास तीन बहुत अच्छों में से एक सबसे अच्छे के चुनाव का विकल्प न हो वरन् तीन बुरों में से एक कम बुरे का हमें चुनाव करना पड़े और अब सचमुच में यही हो रहा है। तीन बुरों में से जो कम बुरा हो उसका चुनाव करके हम उसे सिंहासन पर बैठा रहे हैं। मति होते हुये भी मति वाले अपना मत देकर मतिहीनों को सिंहासनों पर बैठाते हैं,** और बाद में अपनी मति पर पश्चाताप करते हैं कि हम क्यों सताये गये हैं? गलती हम से ही हुई है। **दुर्जनः सज्जनो भूयात्** दुर्जन सज्जन हो, **सज्जनः शांतिम् आप्नुयात्** सज्जनों को शांति मिले, उनको दुःख न पहुँचे। **शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो** शांति पसंद बंधनों से मुक्त हो जायें, **मुक्तस्यः अन्यान् विमोचिये** और मुक्त ज्ञानी लोग दूसरों को भी बंधनों से छुड़ायें।

इस ज्ञान के माध्यम से न जाने कितने लोग बन्धनों से छूटे हैं, बंधनों से मुक्त हुये हैं, कष्ट से बाहर निकले हैं क्योंकि ज्ञान से बढ़कर परम औषध दुनिया में कुछ नहीं हो सकती। बिना ज्ञान के बंधनों से मुक्ति संभव नहीं। **ह्लतेज्ञानं न मुक्ति** बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं है। **नहिं ज्ञानेन सदृशं पवित्रं इह विद्यते** ज्ञान के सदृश इस संसार में पवित्र करने वाली कोई दूसरी चीज़ है भी नहीं। **ज्ञान पवित्रतम है, इसलिये योगी ज्ञान को ही भोजन मानते हैं। ज्ञानामृतं भोजनम्** ज्ञानियों के लिये तो ज्ञान भोजन है। वे खाना खाने के बिना रह सकते हैं लेकिन ज्ञानार्जन के बिना नहीं। इसलिए व्यक्ति को जीवन में एक संकल्प लेना चाहिये कि भोजन करने से पहले भले ही एक पृष्ठ सही, हम किसी ग्रंथ को ज़रूर पढ़ेंगे। जिस दिन न पढ़ पायें उस दिन एक समय का भोजन त्याग देंगे। तब जीवन में स्वाध्याय चलता रहेगा। ज्ञान के प्रति इतना सत्कार तो होना ही चाहिये।

गंगा प्रसाद बहुत अच्छे लेखक हुये हैं। उन्होंने संकल्प किया था

कि जब तक मैं नित्य एक पृष्ठ लिख नहीं लूँगा तब तक भोजन नहीं करूँगा। इसलिये उन्होंने रोज़ लिखा और महत्त्वपूर्ण लिखा। **आपके जीवन में ज्ञान की धारा प्रवाहित करने के लिये कोई संकल्प तो होना ही चाहिए।** भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि ज्ञानार्जन और उसका प्रसार एक यज्ञ है **ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः** ज्ञान यज्ञ के द्वारा व्यक्ति मुझे प्राप्त हो जायेगा, मेरा प्रिय बन जायेगा। **आदमी बड़े बड़े यज्ञ करता है लेकिन सभी यज्ञों में महत्त्वपूर्ण यज्ञ ज्ञान को आगे बांटने का कार्य उसका प्रचार प्रसार करने का कार्य करना है। यह सब से पवित्र यज्ञ है।** यह ज्ञान यज्ञ है। इसमें जो सहयोगी बने, भगवान कहते हैं वह भी मेरा प्रिय बनेगा और मुझे प्राप्त होगा। प्राचीन काल में राजा जनक ज्ञानयज्ञ के संवाहक बने। अपने दरबार में उन्होंने एक प्रक्रिया रखी थी जिसके द्वारा ज्ञान विज्ञान का विचार विमर्श हुआ करता था। इसलिये वे अनेक विद्वानों और ऋषियों को बुलाते थे। कोई विषय रखते थे जिस पर फिर चर्चा होती थी। सम्राट अशोक ने भी महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं को संसार में प्रसारित करने के लिये ज्ञानयज्ञ को विस्तृत करने के लिये अपनी पूरी शक्ति, अपना धन, वैभव सब लगा दिया। दुनिया में सम्राट बहुत से हुए लेकिन सम्राट अशोक क्यों इतना प्रसिद्ध हो गया? क्योंकि उसने अपने शासन काल में सबसे ज़्यादा ध्यान, बुद्ध की महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं को शिला लेखों पर लिखवाकर, सारे वेश में ज्ञान फैलाने पर दिया। उसने कई अशोक स्तम्भ बनवाये जिन पर अनेक शिक्षाएं तथा प्रतीक अंकित करवाये, ताकि दुनिया को पता चल सके कि इस युग में बुद्ध जैसा व्यक्तित्व आया था जिसने संसार को ज्ञान की पवित्र धारा अर्पित की थी। उस ज्ञान यज्ञ में सम्राट अशोक लगातार आहुति देता चला गया। यहाँ तक कि जब अशोक अपने बच्चों को अपनी विरासत में कुछ सौंपना चाहता था तो उसने अपनी बेटी और बेटे दोनों को बुलाया और कहा कि तुम्हें विरासत में देने के लिये उसके पास केवल बुद्ध की शिक्षाएँ हैं। **जैसे संतान अपने पिता के साम्राज्य को फैलाने का कार्य करता है उसी तरह तुम इस ज्ञान को फैलाने का काम करो?** इस प्रकार सम्राट अशोक ने बुद्ध संघ मित्र की

शिक्षाओं को फैलाने के लिए अपने बच्चों महेन्द्र और संघमित्रा को सौंप कर उन्हें विदेश यात्रा पर भेज दिया। अनेक कठिनाईयां सह कर उन लोगों ने समुद्र पार किया, और उस ज्ञान यज्ञ की अग्नि को प्रज्ज्वलित किया।

हमारे देश में परम्परा थी कि हर परिवार का पहला बच्चा धर्म को सौंपा जाता था। पहली संतान ज्ञान यज्ञ के लिये दी जाती थी। अपने पंथ के लिये, अपने कार्य के लिये यानि ज्ञानयज्ञ के लिये एक बेटा दे दिया। बाकी बच्चे हमारे लिए हैं लेकिन एक बच्चा अच्छाईयों के प्रचार के लिये काम करेगा। धर्म में सहयोग देने के लिये निकलेगा। लोग अपनी संतान को लेकर अर्पण करने के लिये पहुँचते थे गुरु महाराज के पास। हर किसी को अपनी पहली संतान बहुत प्यारी होती है लेकिन फिर भी धर्म के लिये देते थे अपनी संतान को। जिसको धर्म का कार्य महत्त्वपूर्ण समझ में आता है वही अपनी संतान को दे सकता है। आप आज हर कोई अपने बच्चे को डाक्टर बनाना चाहता है, इन्जीनियर बनाना चाहता है, ऊँचे सरकारी पद पर पहुँचा देना चाहता है, पर कोई यह नहीं चाहता कि उसका बच्चा ज्ञान का संवाहक बने। भगवान कहते हैं कि जो ज्ञानयज्ञ को पूरा करने के लिये संकल्पबद्ध होगा वही मेरा प्रिय होगा। वह कुल धन्य हो जायेंगे जिनके बच्चे इस प्रकार के कार्यों के लिये सहयोगी बन जायेंगे। **आप सब भी ज्ञान के लिये सहयोगी बनो, धर्म प्रचार के लिये सहयोगी बनो, नैतिक शिक्षायें संसार में फैलें इसके लिये सहयोगी बनो, इसके लिये अपना तन, मन, धन जो भी कुछ लगा सको दांव पर लगा देना** क्योंकि बाकी सब तो इस दुनिया में छूट जायेगा लेकिन परमात्मा की राह पर जो धन लगा दिया वह छूटेगा नहीं। वह आपके साथ चल पड़ेगा और आपका कल्याण करेगा। भगवान ने गीता में स्वयं कहा है कि जो ज्ञान यज्ञ के लिये तत्पर होगा वह मेरा अपना बन जायेगा, मेरा प्रिय बन जायेगा।

भगवान की राह में अपने जीवन को लगाने के लिये कोई सामने आये तो उसकी प्रशंसा करना, उसकी तारीफ करना। उसका सम्मान करने के लिये आगे पहुंचना। गुजरात में एक करोड़पति का इकलौता लड़का भगवान महावीर की शिक्षाओं से प्रभावित होकर उनके मार्ग का प्रचार प्रसार

करने के लिये निकल पड़ा तो परिवार के लोगों ने पहले समझाकर देखा, लेकिन जब समझा कि वह पूरी तरह से तैयार होकर धर्म का काम करने जाना चाहता है तो परिवार के लोग उसे मुनि बना कर, दीक्षा दिला कर विदा करने आये उस समय उन्होंने एक थाल में हीरे मोती रखकर उसके ऊपर से न्योछावर करने शुरू कर दिये। जिस सड़क से वह गुजरा उसके परिवार के लोग वहाँ हीरे मोती फेंकते गये। लोगों ने कहा कि ऐसी क्या बात हो गई कि हीरे मोती सड़क पर लुटा रहे हैं? तब परिवार के लोगों ने कहा कि लाखों करोड़ों में से कोई एक व्यक्ति किसी परिवार में अपने परिवार का उद्धार करने के लिये जागता है। हमारे कुल में एक ऐसा सपूत पैदा हो गया है जो हमारे कुल का उद्धार करने के लिये निकला है, संसार को ज्ञान बांटने के लिये निकला है। ऐसे व्यक्ति के ऊपर से हीरे मोती कितने भी वारे जायें वह सब कम ही होंगे। इसके ऊपर से दुनिया की सम्पदा भी वार कर फेंक दी जाये तो भी कम है। जहाँ लोगों के हृदय कमज़ोर हों, ज्ञानधारा के लिये कोई चले और लोग उसे रोंकें तो समझ लेना कि वे लोग परमात्मा के मार्ग का अपमान कर रहे हैं। कोई इस राह पर चलता हो तो उसका सत्कार करो। उसे उत्साहित करो, उसे रोको मत। उसका इस तरह से सत्कार करो कि ज्ञान की धारायें सारे विश्व में जागृत हो सकें।

जैसे जैसे संसार में ज्ञान की धारा फैलेगी, ज्ञानियों का सम्मान होगा, सज्जनों का सम्मान होगा, वैसे वैसे संसार में ज्ञान का विस्तार होगा, सज्जनता का विकास होगा, विनम्रता का सत्कार होगा। नहीं तो आज की दुनिया में लोग दुष्टता को अच्छा मानने लगे हैं, बेईमानी और छल कपट को मान देने लगे हैं। परिवार में कोई भोला और सीधा व्यक्ति हो तो लोग उसका मज़ाक उड़ाने लगते हैं। अकबर इलाहाबादी ने यह पंक्तियों यूं ही नहीं लिखी :

"रकीबों ने रपट लिखाई है जा जा के थाने में,
कि अकबर नाम लेता है खुदा का इस जमाने में।"

यह कितना बड़ा व्यंग्य है कि दुश्मनों ने थाने में जाकर रिपोर्ट लिखवाई है कि हमारे परिवार में एक आदमी पागल हो गया है, भगवान का नाम लेता है। **भय लगता है कि आने वाला युग ऐसा न हो जाये कि परमात्मा का नाम लेना गुनाह माना जाने लगे। संसार में पतन की इस प्रक्रिया को रोकने के लिये ज्ञान यज्ञ को संसार में फैलाने का कार्य करो।** ज्ञान दुनिया भर में, पूरे जगत में बांटना चाहिये। यह अमृत एक स्थान पर रुका न रह जाये। यह अमृत सबका है, इसमें सब की हिस्सेदारी हो। इसलिये अगर कहीं सेवा करो तो ऐसे स्थान पर जहाँ ज्ञानयज्ञ होता हो। धन का उपयोग करो तो ऐसे स्थान पर जहाँ ज्ञानयज्ञ होता हो। क्योंकि ज्ञान के द्वारा जो उपकार संसार में हो सकता है वह किसी और माध्यम से नहीं हो सकता। धन किसी को दे दोगे तो खर्च हो जायेगा। आदमी धन खत्म होने के बाद फिर से मांगना शुरू कर देगा लेकिन किसी को अगर आपने ज्ञानवान बना दिया तो उसका अपना ज्ञान भी बढ़ता जाएगा और वह ज्ञान को बांटता भी रहेगा। जितना बांटेगा उतना उसका भी ज्ञान बढ़ता जायेगा।

भगवान श्रीकृष्ण समझाते हैं कि जो गीता के ज्ञान का अध्ययन करेगा और यह संवाद जो मैंने कहा इसको संसार के सामने प्रकट करेगा, इस ज्ञानयज्ञ के अन्दर आहुति देने का कार्य करेगा, निश्चित रूप से वह मेरा प्रिय बनेगा। ज्यादातर लोगों ने ज्ञान की पवित्र पुस्तकों को बड़ी श्रद्धा और सम्मान के साथ संभालकर रखा है। उनके सामने माथा झुकाया है। लेकिन अगर हम वास्तव में किसी पुस्तक की पूजा करना चाहते हैं तो **पूजा नाम सत्कारम्** पूजा नाम है सत्कार का, उसका सत्कार, उसका आदर इसी रूप में होगा कि उसके ज्ञान को फैलाया जाये।

सज्जन व्यक्तियों को एक जगह नहीं बसना चाहिये, संसार में फैल जाना चाहिये। गुरु नानक देव महाराज ने सज्जनों के लिये कहा **'उजड़ जाओ'** और दुर्जनों के लिये कहा **'बसे रहो'**। तो दुष्टों के लिये कहा कि बसे रहो। कूड़ा एक जगह पड़ा रहे तो अच्छा। लेकिन सुगंध देने वालों के लिये आदेश कर दिया "बिखर जाओ, फैल जाओ, दुनिया के कोने कोने

में पहुंच जाओ।" **सज्जनता की सुगंध और अच्छाई दुनिया के कोने कोने तक पहुंचनी चाहिये।** इतने बिखर जाओ कि दुनिया के कोने कोने तक पहुँचो। इसलिये ज्ञान की यात्राएं होनी चाहिये। आदि शंकराचार्य दक्षिण से चले उत्तर तक, गुरु नानक देव की भी चार यात्राएं रहीं। यात्राएं भक्ति और ज्ञान को संसार में फैलाने के लिए होंगी। महापुरुषों ने भी ज्ञान की यात्राएं की थीं। महाराष्ट्र में यात्रा की अनेक परम्पराएं हैं। उनकी तीर्थ यात्राएं होती हैं, ज्ञान और भक्ति की यात्राएं होती हैं। एक स्थान से संत ज्ञानेश्वर की समाधि तक जाने के लिये यात्रा शुरू होती है। उस यात्रा में लोग पालकी लेकर चार सौ किलोमीटर तक चलते हैं। एक रास्ते में जितने गाँव पड़ते हैं वहाँ के लोग पहले ही से पालकी का स्वागत करने के लिये, धर्म यात्रा पर आने वाले यात्रियों का स्वागत करने के लिये, गाँव से बाहर आ कर खड़े होते हैं। उनको बैठाते हैं, भोजन कराते हैं, सम्मान देते हैं और फिर अगले गाँव तक वे लोग भी साथ जाते हैं। अगले गाँव में उस गाँव के लोग स्वागत के लिए खड़े होते हैं। पहले गाँव के लोग वहां से वापिस आ जाते हैं और दूसरे गाँव के लोग अगले गाँव तक यात्रा में साथ जाने की तैयारी करते हैं। यात्रा इसी तरह ज़ारी रहती है, आगे से आगे।

तुकाराम महाराज के यहाँ अभंग गाये जाते हैं। जिस साज को लेकर उन्होंने अभंग गाया, लोगों की कोशिश रहती है कि वह ज़मीन पर न रखा जाये, कीर्तन लगातार चलता है। एक मंडली गा कर जैसे ही हटने लगती है दूसरी मंडली आ जाती है। एक मंडली के हाथ से साज दूसरी मंडली के हाथों ने पकड़ लिया और लगे गाने। तीन सौ सालों से कीर्तन की यह धारा लगातार चल रही है। साज जमीन पर रखा ही नहीं गया है। यह परम्परायें है जो हमें सुरक्षित रखनी हैं। दक्षिण में ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपने परिवारों को वेद–विद् ब्राह्मण, वेद–पाठी ब्राह्मण बनाया है, जो लगातार चारों वेदों को याद करते आ रहे हैं। कोई यजुर्वेद याद कर रहा है तो कोई सामवेद याद कर रहा है। कोई सामवेदी है, कोई यजुर्वेदी है, कोई अथर्वेदी है तो कोई ऋग्वेदी है। कुछ ऐसे भी परिवार हैं जो चतुर्वेदी हैं चारों वेद कंठस्थ किये हैं उन्होंने। सस्वर पाठ भी सीखा है। आगे फिर

अपनी संतान को सिखा दिया यह सोचकर कि यह ज्ञान का यज्ञ प्रचंड रहना चाहिये। यह ज्योति बुझनी नहीं चाहिये। उन लोगों ने ज्ञान की धारा को लगातार सुरक्षित रखा है।

इसलिये वेदों का एक नाम बना, श्रुति, जो सुने गये। जिन्हें सुनाया गया और जिन्हें सुनाकर ही सुरक्षित रखा गया। जिनका श्रवण और श्रावण निरन्तर चलता रहा। अपने देश में एक मास का नाम श्रावण मास है। श्रावण मास का अर्थ है कि जो सुनने और सुनाने का मास है। श्रवण और श्रावण की परम्परा चलती रहे इसलिये चातुर्मास का व्रत करते समय एक महीना, जिसमें बारिश बहुत ज़्यादा होती है इसके लिए नियत कर दिया गया। लोग यही सोचते हैं कि सुनने का महीना आ गया, और सब लोग ऋषियों का ज्ञान सुनने के लिये इकट्ठे बैठते हैं। इसलिये ज्ञानयज्ञ कहीं रुकता नहीं है। **दुर्भाग्यपूर्ण यह स्थिति है कि अब धनवानों का मान है, भले ही वे लोभ से, पाप से, हत्या से कमायें, दुष्टता से कमायें, उनके पैसे का मान होता है।** किसी समय अपने देश में ज्ञान का मान था इसलिये ज्ञान की धारा चारों तरफ बहती थीं। तब यह देश सारे संसार का गुरु कहलाता था। अब इस देश के लोग पढ़ने के लिये दूसरे देशों में जा रहे हैं। नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला जैसे हमारे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे जहाँ संसार भर के लोग विद्या अर्जन करने के लिये आते थे। अब व्यक्ति के साथ विदेश की डिग्री ओर प्रमाणपत्र जुड़ा हो तो माना जाता है कि आदमी सच में पढ़ा लिखा है, योग्य आदमी है। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि हमने ज्ञान का सम्मान करना छोड़ दिया। हजारों सालों से हमारे देश में वेद श्रवण, श्रावण द्वारा सुरक्षित रखे गये, आगे से आगे सुनाकर। हमारे देश के लोगों ने इस ज्ञान की धारा को पवित्र और सुरक्षित रखने के लिये कुर्बानियां दीं। आप इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान करना सीखो।

किसी भी तरह से इसको सुरक्षित करो। इसके लिये यात्राएं करो, इसे विज्ञापित करो। इसकी सेवा करो, ज्ञान का यज्ञ प्रचंड रखो। यह ज्ञान ब्रह्म है, इसे अपनी सिर आँखो पर बैठाओ, पलकों पर बैठाओ। **सम्मान के पात्र वे नहीं हैं जो दुष्टता से, किसी पद या सिंहासन पर बैठ गये हैं,**

कानून बनाने का प्रमाण पत्र जिनके हाथ में आ गया है और कानून का डंडा लेकर वे आपको हाँक रहे हैं, सता रहे हैं। हमारे लिये सम्माननीय वे लोग हैं जो संसार में मानवता का प्रचार प्रसार करें, प्रेम से रहें और प्रेम से रहना सिखायें, संसार में जो 'जियो और जीने दो' की घोषणा करें। उन्हें सम्मान दो, उन्हें सत्कार दो। वे श्रद्धेय हैं, श्लाघनीय हैं, प्रशंसनीय हैं, आदरणीय हैं और नमस्करणीय हैं। हमारा नमन उनके लिये होना चाहिये।

अब अर्जुन ने मुख खोला और वह बोलाः

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।७३।।

हे कृष्ण! **नष्टो मोहः** मेरा मोह नष्ट हो गया है। (ज्ञान मोह को तोड़ता है) **'ज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यं' ज्ञान चरम पर पहुंचेगा तो वैराग्य को जन्म देगा। ज्ञान मोह को तोड़ता है।** अज्ञान मोह को जोड़ता है। आदमी इतना विमोहित हो जाता है कि दुनिया में प्रयोग की वस्तुओं के साथ आसक्ति पैदाकर उनको अपना समझ उनपर स्वामित्व स्थापित करने के लिए लड़ने झगड़ने लगता है। यह मोह है। ज्ञान हो जाये तो वह समझ जायेगा कि ये वस्तुएं प्रयोग करने के लिए दी गयी हैं। बाद में इनको दूसरों को प्रयोग करने के लिये मुझे दे देना है। धर्मशाला में तीन दिन के लिये हम ठहरे थे। धर्मशाला में तीन दिन के लिये ही कमरा मिला था। वहाँ टेबल (मेज) कुर्सी, पंखा आदि सब कुछ मिला, भोजन करने के लिये, पानी पीने के लिये बर्तन भी मिले। दरी गद्दे भी मिले। लेकिन वह सब धर्मशाला के हैं अपने नहीं। लेकिन तीन दिन में ही मोह के कारण आदमी इतना पागल हो गया कि वह उन्हें अपना मानने लगा। इन्हें लौटाना, छोड़ना नहीं चाहता। हमें पकड़े रहना अच्छा लगता है।

गीता का प्रारम्भ एक अंधे व्यक्ति की जिज्ञासा से हुआ। धृतराष्ट्र की जिज्ञासा से। धृतराष्ट्र केवल आँखों से ही नहीं मोह से भी अंधे हैं। अंधा व्यक्ति किसी चीज़ को पकड़ लेता है तो फिर आसानी से छोड़ता नहीं। उसे पकड़ना आता है छोड़ना नहीं। चलने के लिये भी किसी का पकड़ना ज़रूरी है। मोह में अंधा व्यक्ति भी इसी तरह चलता है। हर चीज़

को पकड़ने की कोशिश करता है। उससे छुड़ाना बहुत मुश्किल होता है। **'धृतराष्ट्र' का मतलब ही है - धृत+राष्ट्र - अर्थात् राष्ट्र को जिसने पकड़ लिया है।** कब्जा कर लिया है। मालिक है नहीं, संयोग से मालिक बन गया तो अब मालिक बने रहना चाहता है। आदमी का मन 'धृतराष्ट्र' है। बिलकुल अंधा है और जब मन अंधा हो जाता है तो हर चीज़ को पकड़ता है, क्योंकि इसके अन्दर 'अन्ध' है। अन्धता तब आती है जब वह मोहग्रस्त होता है। इस मोह को तोड़ने का एक ही माध्यम है, ज्ञान हो जाना अर्थात् होश में आना।

अर्जुन कहता है: **नष्टो मोहः** मेरा मोह नष्ट हो गया है। **स्मृतिर्लब्धा** अब मैं अपनी होश (स्मृति) में आ गया हूँ। अपने स्वरूप की याद आ जाये और मोह नष्ट हो जाये यह गीता का संदेश है। आपको आपकी याद करा देना और आपको संसार के मोह से तोड़कर 'परम' के प्रेम में जोड़ देना गीता का लक्ष्य है। 'परम' अर्थात् चलते हैं, परम सत्ता, परमेश्वर, परमचेतना, परम आत्मा। भगवान के प्रति प्रेम जगाना गीता का कार्य है। अर्जुन ने कहा: हे कृष्ण ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआ है।

होश में आकर जीना बहुत महत्त्वपूर्ण है। कई चिन्तक कहते हैं कि जीवन में व्यक्ति एक तरह से रोगी होता है। वह तन से स्वस्थ होता है और मन से बीमार होता है। उसे अपनी होश नहीं होती। बूढ़े आदमी का मन चोट लगते लगते होश में तो आ जाता है लेकिन तन उसका बेहोश (अस्वस्थ) हो जाता है। केवल एक बच्चा ही है, जो अभी जागने की कोशिश में है, जिसका रोम रोम जिज्ञासा से भरा हुआ है। अगर जीवन के अंतिम भाग तक यह जिज्ञासा वाली स्थिति चलती रहे तो व्यक्ति सदा होश में रहे परंतु यह आसान नहीं है।

जो आपको याद करा दे कि आप राजा हैं और जो आप के खजाने से आपका परिचय करा दे वह गुरु है। वह पूजनीय है। खजाने की चाबी तो आपके हाथ में है लेकिन आपको न खजाने का पता है और न चाबी की पहचान। पता लग जाने पर आपको अपनी अमीरी का बोध होगा और आप उस आदमी का मूल्य समझेंगे जिसने आपको खजाने तक

पहुंचाया। ज्ञानयज्ञ को करने वाले लोग वास्तव में यही कार्य कर रहे हैं। आपको होश में लाकर, आपको आपकी याद दिला रहे हैं। उनके आगे माथा झुकाने और गीता को रट लेने से बात नहीं बनेगी। एक एक श्लोक पढ़ कर सुना दिया जाए तो भी कोई बात नहीं बनेगी। **गीता को आत्मसात कर, मथ कर, इसका नवनीत निकाल कर, उसे समाज को अर्पित कर देना आवश्यक है।** जो यह कार्य करे वह पूजनीय है, उसका सम्मान करो क्योंकि उन्हीं के माध्यम से तुम्हारा मोह नष्ट होगा। मोह जल्दी नहीं टूटता। इसलिए महापुरुष तरह तरह के तरीके इस्तेमाल करते हैं जिससे तुम अपने आप को पहचान लो कि तुम क्या हो।

स्वामी रामतीर्थ एक घटना सुनाते थे। एक साधु बाबा ने घोषणा कर दी कि मैंने सारी ज़िन्दगी भिक्षा मांगी है, लोगों ने मुझे बहुत पैसा दिया है इसलिये मेरे पास बहुत पैसा इकट्ठा हो गया है। मेरा बुढ़ापा आ गया है और मैं मृत्यु की तरफ बढ़ रहा हूँ इसलिये मैं यह पैसा बांटना चाहता हूँ। कोई आये और यह पैसा मुझसे ले ले। अब दुनिया भर के लोग पहुंच गये। आज तक जो लोग उस साधु को देखकर उसे भिखारी कह कर दुत्कारते थे वे सारे लोग भी उनके पास पहुंच गये और उनके चारों तरफ खड़े हो गये। अभी तक जो दाता थे वे भी भिखारी बन कर खड़े हो गये। साधु ने गरजती हुई आवाज में कहा, "सच बताओ, तुम गरीब हो? तुम लाचार हो? तुम्हें सहायता की जरूरत है? तुम्हें दान की ज़रूरत है? एक एक के पास जाकर साधु ने गरज कर पूछना शुरू किया। लोग थोड़ा थर थराए और पीछे हटने लगे।

पर एक भिखारी आगे आ गया। उसने कहा, "मै बहुत गरीब हूँ। अगर मुझे आप अपनी सम्पत्ति दे दें तो मेरा बहुत कल्याण होगा।"

साधु बाबा ने कहा, "तेरे पास कुछ सामान है बेचने के लिये? अगर बेचने के लिये हो तो मैं खरीद सकता हूं। अगर सच में तेरे पास बेचने के लिये कुछ भी न हो तो फिर मैं अपनी सारी दौलत तुझे दे दूंगा।"

उस भिखारी ने कहा, "बेचने के लिये तो क्या, मेरे पास अपने लिये भी कुछ नहीं है।"

साधु कहने लगे, "मुझे लगता है कि तेरे पास कुछ चीज़ है जो बेची जा सकती है और उसके दाम भी अच्छे मिल सकते हैं। तेरे पास ऐसी ऐसी चीज़ें हैं जो दस, बीस, पचास हजार में बिक सकती हैं। मैं खरीद लूंगा। अब तू बेचने वाला बना।"

भिखारी बोला, "बाबा, क्यों मज़ाक करते हैं? कुछ देना है तो दीजिये। मेरे पास ऐसी क्या चीज़ है जिसे आप हज़ारों में खरीदना चाहते हैं?"

साधु बाबा ने कहा, "तेरी आंखें। एक एक आंख पचास पचास हज़ार की है। तू अगर इन्हें देना चाहे तो मैं खरीद सकता हूँ। बेचने वाला बन तू। दोनों हाथ हैं, ये पच्चीस पच्चीस हजार के बिक सकते हैं। मैं खरीद लूंगा। दोनों पांवों के बीस हजार दे सकता हूँ। अब बोल। थोड़ी ही देर में तुझे मैं लखपति बना सकता हूँ। क्या तू बेचने को तैयार है?"

भिखारी बोला, "इन्हें क्यों बेचूं? अपनी आंखें क्यों दूं? अपने हाथ पांव क्यों दूं?"

महात्मा कहने लगे, "फिर कैसे कहता है कि तू गरीब है। अरे ! जिसके पास भगवान के दिये काम करने के लिये दो हाथ हैं, चलने के लिये दो पांव हैं और देखने के लिये दो आंखें हैं उससे बढ़कर अमीर दुनिया में कौन होगा?" साधु ने आगे और कहा, "ये हाथ भीख मांगने को फैलाने के लिये नहीं हैं, काम करने के लिये हैं। आंखें अपना लक्ष्य पहचानने के लिये हैं, रोने के लिये नहीं हैं और पांव राह पर चलने के लिये हैं। तू अपनी राह पर चल तो सही। अगर तुझे होश (समझ) आ जाये तो तुझसे बढ़कर अमीर कोई नहीं।"

संत भीखा ने कहा था

भीखा, भूखा कोई नहीं सबकी गठरीलाल
आंख खोल देखत नहीं यह किस विध भए कंगाल

सब की गठरी में लाल अर्थात् हीरे जवाहरात भरे हुए हैं। आंख खोल के देखते नहीं। यह किस प्रकार के कंगाल हैं। हम आंख खोलकर अपनी गठरी के अंदर देखें तो सही कि भगवान ने हमें कितने हीरे जवाहरात, रत्न मोती भर कर दे रखे हैं। हम परमात्मा जैसे अमीर बाप की संतान हैं। हम क्यों अपने को दीन

हीन मानते हैं? जिस कौम के पास गीता जैसा ज्ञान है उसे अपने को दीन हीन नहीं मानना चाहिये। जब तक यह ज्ञान है तब तक संभावनाएं हैं। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, हमें होश आयेगी, हम जागेंगे और हम उस उपलब्धि को प्राप्त होंगे जिसके आधार पर हमारी अमीरी सारे संसार में प्रकट होगी। इसीलिये गीता को इतना पूजनीय माना गया है कि कचहरी में खड़ा होकर व्यक्ति इस पर हाथ रखकर कहता है, "जो कुछ कहूंगा, सच कहूंगा सच के अलावा कुछ नहीं कहूंगा।" इतनी महत्त्वपूर्ण है यह गीता।

अर्जुन ने कहा हे कृष्ण ! आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआ, मैं अपनी स्मृति में आ गया हूं, मुझे अपनी याद आ गई है। "**स्थितोऽस्मिः**'- मैं स्थित हो गया हूं; ठहर गया हूं मेरे अन्दर अब विचलन नहीं है। ज्ञान आपके अन्दर स्थिरता पैदा करता है। ज्ञान जब परिपक्व होता है तो इन्सान अपने सिद्धांतों में पक्का होता है। ज्ञान को पकाओ अपने में परिपक्वता लाओ। अर्जुन कहता है, **' स्थितोऽस्मिः गतसन्देहः'** मेरा सन्देह अब जाता रहा हैं, मैं स्थिर हो गया हूं। **करिष्ये वचनं तव**– "हे कृष्ण, अब मैं आपके वचनों का, आपके आदेश का पालन करने के लिये तत्पर हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये तैयार हूँ।" परमात्मा की आज्ञा का पालन करने के लिये आप तभी तत्पर होंगे जब आपका सन्देह मिटे, मन में स्थिरता आये, आप होश में पहुंच जायें और आपका मोह नष्ट हो जाये। तत्पश्चात अन्तर से उठती हुई परमात्मा की आवाज़ को आप सुनेंगे और उसके अनुसार व्यवहार करना शुरू करेंगे। **गीता का लक्ष्य है, मोह को नष्ट करना, होश को उपलब्ध करा देना, व्यक्ति के अन्दर स्थिरता प्रदान करना, संदेह को मिटा देना तथा उसे आज्ञाकारी बनाकर 'परम' के कार्यों को पूरा करने के लिये तत्पर कर देना।** यह गीता का उद्देश्य है। यह उद्देश्य हमारे जीवन में घटित होना चाहिये क्योंकि इसके आने के बाद निर्भयता आती है। कर्त्तव्य के रथ से उतर कर भागने की स्थिति वाले अर्जुन को जब भगवान कृष्ण ने अपने ज्ञान से स्थिरता प्रदान की तो उसके अन्दर अभयता आई। यदि व्यक्ति के सामने मौत हो, जो उसे डरा रही हो

तब वह उसके सामने यदि निडर होकर खड़ा हो जाये तो फिर स्थिरता आती है। आदमी के अन्दर एक बार बहादुरी जाग जाये तो कोई बाधा व्यक्ति को बाँध नहीं सकती।

जापान में समुराई नाम की एक बहादुर जाति है। इसी प्रकार से जैसे भारत में राजपूत। एक बार बादशाह अकबर ने दो राजपूत सैनिकों को देखकर कहा "तुम बहादुर हो इसका प्रमाणपत्र कहां है?" उन दोनों ने तलवारें निकालीं, एक दूसरे के ऊपर चलाईं और दोनों ने एक दूसरे की गर्दनें काट दीं। अकबर दंग रह गया। बादशाह अकबर ने आगे आकर, सिर झुका कर कहा, "इस बहादुरी को मैं प्रणाम करता हूँ। राजपूतों से वीरता का प्रमाण कभी नहीं मांगना चाहिये।" जापान में तलवार के धनी समुराई नाम की जाति भी ऐसी ही प्रसिद्ध है। जापान की दो जातियों के लोग बहुत प्रसिद्ध रहे। एक सूमो पहलवान और दूसरी समुराई। समुराई लोगों को अपनी तलवार के प्रति गर्व था। हवा में लहराते हुए वे व्यक्ति के शरीर पर तलवार ऐसे चलाते थे कि पहने हुए पूरे वस्त्र कट कर गिर जाएं पर चमड़ी पर खरोंच भी न आए। इतना अच्छा अभ्यास है उनका। अब ऐसे एक समुराई का अपने रसोईये के साथ किसी कारण युद्ध शुरू हो गया। समुराई ने रसोईये को बुलाकर कहा "तूने इतना बड़ा अपराध किया है कि मैं तुझे मौत की सजा देना चाहता हूं। लेकिन एक बात है कि तुझे तलवार चलानी नहीं आती, इसलिये तू तलवार चलाना सीख। तुझे महीने, दो महीने या छः महीने का समय देता हूं, उसके बाद मेरे साथ तू लड़ना।"

वह रसोईया बोला, "साहब आपने मुझे मारना है तो मार दीजिये। छः महीने तक जो मैं डर डर के जिऊं वह ठीक नहीं है क्योंकि मैं तो इतना सीख नहीं पाऊंगा कि आपका मुकाबला कर सकूँ। यूं भी आपकी तलवार का डर मुझे कुछ सीखने नहीं देगा।" समुराई ने कहा "अगर मैं तुझे ऐसे मारता हूँ तब तो मेरी बहादुरी कलंकित होगी। हम तो बहादुर लोग हैं। यह तलवार तू पकड़ और जैसे भी तू लड़ सकता है लड़।" उस रसोइये ने सोचा कि तलवार से लड़ना तो हमें आता नहीं लेकिन अब बात जान बचाने

पर आ गई है तो कुछ तो करना ही पड़ेगा। तो उसने तलवार पकड़ी। समुराई नियमों के अनुसार दांव पेंच से लड़ रहा था। रसोईये को न नियम मालूम थे न तलवार घुमानी आती थी। उसने कैसे भी तलवार चलानी शुरू कर दी। उसने तलवार ऐसी घुमाई, ऐसी घुमाई कि समुराई का कोई दांव पेंच नहीं चला। थोड़ी देर में उसकी तलवार नीचे गिर गई और उस रसोईये ने उस योद्धा को नीचे गिरा दिया और अपनी तलवार उसकी छाती पर रखकर कहा, ''अब तुझे मार दूँ" समुराई कहता है, "मुझे नहीं पता था कि तू इतना बड़ा बहादुर है। ''रसोईया बोला,'' मौत को ललकारने के कारण मैं बहादुर हो गया हूं, नहीं तो मैं कहां बहादुर था?'' तो **जो मौत को सामने देख मुकाबले के लिए खड़ा हो जाये वह सच में बहादुर है।**

भगवान श्रीकृष्ण ने ऐसी ही बहादुरी को जन्म दिया। उन्होंने अर्जुन से कहा कि **कायरता और क्षुद्रता से दूर हट और वीरता की ओर अपने पग रख। गीता इन्सान को क्षुद्रता से विराट की ओर और कायरता से वीरता की ओर ले जाने का कार्य करती है। मरणधर्मा के लिए यह अमरता का संदेश है।** विषाद से प्रसाद की ओर ले जाने के लिये भगवान कृष्ण ने गीता का अमृत बांटा। इस अमृत को पाने के बाद हमें भगवान कृष्ण के सम्मुख हाथ जोड़कर कहना चाहिये, **''करिष्ये वचनं तव''** हे **कृष्ण!** हम आपके वचन के पालन हेतु तत्पर हैं, तैयार हैं।

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव।। ७३।।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा, हे कृष्ण ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। मेरे अन्दर की जड़ता मिट गयी है। जन्म जन्मान्तरों से, युगयुगान्तरों से अन्तःकरण पर छाई हुई मलिनता मिटी है। **'स्मृतिर्लब्धा'**—मैं अपनी स्मृति में, अपनी होश में, अपनी याद में आ गया हूं। आपने याद तो करा दिया मुझे कि मैं क्या हूँ, किस तरह का हूँ। मुझे अब अपनी पहचान ध्यान में आ गई है और यह सब आपकी कृपा से हुआ है। हे कृष्ण ! **स्थितोऽस्मि** अब मैं अपने में स्थित हो गया हूं। अब मुझमें सन्तुलन आ गया है। लड़खड़ाते हुए पांवों में शक्ति आ गई हैं बुद्धि जो निर्णय नहीं

ले पाती थी, उसमें निर्णय लेने की क्षमता जाग गई है। मुझे अपना कर्त्तव्य दिखाई देने लगा है। मैं दुनिया में किस लिये आया हूँ, यह जान गया हूँ। अपने कर्त्तव्य की आवाज़ मुझे सुनाई देने लगी है। कल्याणकारी ध्वनियां सुनाई पड़ने लगी हैं। हे कृष्ण ! वह ध्वनि कुछ और नहीं बल्कि आपकी ही वाणी है। आपने मेरे मोह को मिटाया। **"गतसन्देहः"** अब मुझे किसी तरह का संदेह नहीं रहा। मन में अब कोई तर्क नहीं उठता, अब कोई जिज्ञासा नहीं रही। अब और प्रश्न जन्म नहीं ले रहे। सब प्रश्नों का समाधान हो गया है। शंकायें निर्मूल हो गई हैं। तर्क के तीर कुंठित हो गये हैं। अब केवल समाधान है, शांति है।

"करिष्ये वचनं तव" मैं अब आपके वचनों का, आदेशों का पालन करने के लिये तैयार हो गया हूं। मैं अब आपका उपकरण हूं। अब आप इस उपकरण से जो कराना चाहें, कराएं। इस रथ को जिधर ले चलना चाहें, ले चलें। इस साज़ से जो संगीत प्रकट करना चाहें, प्रकट करें। मैंने अपने जीवन का साज़ आपके हाथ में दे दिया है। अपने जीवन की नैया आपको सौंप दी है। अब आप जो आदेश करो, मैं पालन करने के लिये नियुक्त हो गया हूं। अर्जुन ने अत्यन्त भाव विभोर हो कर यह वचन कहें। यह मस्तिष्क में सोची हुई कोई शब्दावली नहीं है। **इसमें हृदय से प्रकट हुई कृतज्ञता है, और मस्तिष्क में जागती बुद्धिकता।** अर्जुन के अन्तस्थ में श्रद्धा और ज्ञान का दीया एक साथ जगमगाया।

अर्जुन को उसी प्रकार अपने स्वरूप का ध्यान आ गया जैसे भेड़ बकरियों के बीच पलता कोई सिंह शावक, कोई शेर का बच्चा अचानक यह अहसास कर बैठा हो कि वह 'बकरी' नहीं है और तब वह दहाड़ता हुआ सिंहत्व को प्राप्त हो जाये। उसके अन्दर शेरपन जाग उठे। भिखारियों के बीच बैठा हुआ कोई राजा का बेटा भिखारियों का कटोरा हाथ में लिये हुये था। अचानक उसे होश आई और कटोरा फेंक दिया उसने, जब उसे अपने राजापन का अहसास हो गया। कायरों की टोली में बैठे हुए किसी बहादुर के अन्दर उसकी वीरता ललकारने लग गई और वह अन्याय से जूझने के लिये तत्पर हो गया। इसे कहते हैं होश आ जाना। सिंहल द्वीप में बैठे हुए

भत्सयेन्द्र नाथ को जैसे **गोरख ने गीत गा कर जगाया, कि ''जाग मछन्दर जाग, गोरख आया''** आज तेरा शिष्य ही तुझे जगाने के लिये, तुझे आवाज़ देने के लिए आया है।

जब ऐसी ध्वनियां गूंजती हैं तो व्यक्ति के अन्दर जागृति आती है। व्यक्ति अपने होश में आता है। अपने स्वरूप में स्थित होता है। जड़ता मिट जाती है। संसार का बंधन फिर बांध नहीं पाता। राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में बुद्ध जब अपने महल को छोड़कर चले आये तो उनका सारथी, जो रथ चला रहा था पूछता है कि उनकी यात्रा कहां तक है? कहां जाना चाहते हैं वे? बुद्ध कहते हैं, ''वहां, जहां कोई बंधन न हो। दुःख, पीड़ा और संताप न हो। परिवर्तन का सिद्धांत जहां पीड़ा न दे। उस दुनिया तक जाना चाहता हूँ।'' सारथी कहता है, ''राजकुमार, पीछे इतने सुन्दर महल हैं जिनका वारिस और स्वामी आप ही है। सुख सुविधाएं हैं, भोगने के लिये सब तरह के साधन हैं। महल को छोड़ने के लिये आप क्यों तत्पर हो गये हो?'' राजकुमार सिद्धार्थ कहते हैं, ''पीछे मुड़ कर देखता हूं तो मुझे महल दिखाई नहीं देते। महलों से उठती हुई भोग विलास की लपट दिखाई देती है और वह लपट मुझे चिता की आग दिखाई देती है। मैं इस सबसे दूर जाना चाहता हूं।'' बात सारथी की समझ में नहीं आती। मोह में पड़े हुये इन्सान को तो संसार में आकर्षण दिखाई देता है लेकिन जागे हुए इन्सान को वे कागज के ऐसे टुकड़े लगते हैं जिन्हें रुपया मान कर बच्चे खेलते हैं।

ज्ञान हो जाए तो एक अलग ही प्रकार का होश आता है। इसलिये अर्जुन ने कहा, ''अब मैं तत्पर हूं आपके आदेश का पालन करने के लिये।'' अर्जुन कृष्ण के साँचे में ढलने के लिये तत्पर हो गया है। कृष्ण गुरु हैं और अर्जुन शिष्य। **जब शिष्य पूरी तरह से समर्पण करने के लिये तैयार हो जाये, उसका ''मैं'' कहीं बाकी न रह जाये, और वह गुरु के आदेश का पालन करने के लिये पूर्ण रूप से तत्पर हो जाये तब स्वाति नक्षत्र में गिरती हुई बूंद के किसी सीप के अन्दर पहुंच कर मोती बनने की स्थिति जागृत होती है।** वर्षों से प्रतीक्षारत सीप का सम्पुट खुला हुआ है। गुरु की कृपा स्वाति की बूंद है और शिष्य की योग्यता सम्पुट है। गुरु के घर से,

गुरु की कृपाओं को प्राप्त करके शिष्य जब बाहर आता है तो फिर वह बूंद, बूंद नहीं रह जाती। वह मोती बनकर बाहर आया करता है। गीताकार ने अपनी वाणी शांत की, अर्जुन ने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की, व्यास ने लेखनी को चलाया और संजय ने अंत में यह कहा, "मैं साक्षी हूं उन वचनों का, उन संवादों का जो कृष्ण और अर्जुन, के बीच हुये और मैं रोमांचित तथा आह्लादित हूं कि मैंने दुनिया में घटती हुई एक बहुत बड़ी घटना देखी है। यह प्रवाह युगयुगान्तरों तक चलेगा। व्यास जी की कृपा से मैं भी साक्षी बना।" तब संजय अपनी सम्मति देता हुआ कहता है:

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।। ७८।।

अर्थात् जहां योग के ईश्वर (योगेश्वर) कृष्ण हैं, जहां धनुर्धारी पार्थ हैं, वहां निश्चित रूप से विजयश्री होगी, सफलता होगी। यहां धनु का तात्पर्य केवल धनुष बाण से ही नहीं है वरन् अर्जुन के रोम रोम में पुलकित होती हुई ऊर्जा शक्ति से है। जहां ब्रह्म तथा शस्त्र दोनों का सही मेल हो जाये वहीं बात बनती है। ब्रह्म तथा ऊर्जा, दोनों का वास हृदय में होना चाहिये। दोनों अहम् बन कर हमारे अन्दर बैठ जायें और साथ ही हमारा ऐसा समर्पण भाव बने कि हमारा रोम रोम कह उठे, **करिष्ये वचनं तव',** तब हम उस परम की गोद में बैठने की पात्रता को प्राप्त करने में सफल होंगे।

जीसस क्राइस्ट ने भी सूली पर चढ़कर अंत समय में यही कहा था कि मैं अपनी इच्छा नहीं अपितु उसकी इच्छा पूरी कर रहा हूं। उसके आदेशों का पालन कर रहा हूं, जिसने अपना पुत्र बना कर मुझे इस संसार में भेजा है। स्वामी दयानन्द ने भी अंतिम पलों में अपने मुख से यह शब्द कहे, **'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो।''** उस समय उनका ऋषित्व प्रकट हुआ। उन्होंने परमात्मा की मर्जी में अपनी मर्जी को मिला दिया। उन्होंने अंत समय में संसार के किसी भी नियम के प्रति कोई शिकायत नहीं की। उनके शरीर के रोम रोम में जहर फैला हुआ था, दीपावली की सांझ थी और उनके अन्तस की ज्योति परम ज्योति से मिलने को व्याकुल थी। तब उनके मुख

से पीड़ा की आंधी के बीच भी मुस्कुराहट का दीया जला और तब उनके मुंह से यह वचन निकले **'तेरी इच्छा पूर्ण हो'** ऐसा लगा मानो एक साधारण मनुष्य एक ऋषित्व की ऊंचाई तक पहुंचा गया।

संसार के अनेक महापुरुष अपनी मृत्यु की घड़ी तक भी पीड़ा को भूल कर मुस्कुराते हुये परमात्मा के सम्मुख यह कह बैठे कि **तेरी इच्छा में मेरी इच्छा है** तब उनका महान स्वरूप बुलंदियों तक पहुंचा हुआ दिखाई दिया। ज्ञान से या ठोकर से या अनुभव से, कहीं न कहीं वह जागृति आनी चाहिये कि हम अपनी 'इच्छाओं में परमात्मा की इच्छा को मिला दें या परमात्मा की इच्छाओं में हमारी इच्छाएं मिल जायें। **हमारे अन्दर ऊर्जा का एक महान स्रोत है। ऊर्जा के इस स्रोत के साथ परब्रह्म की प्रेरणायें मिलनी चाहिये।** उसके बाद जो कुछ आप करेंगे वह अद्भुत होगा, बड़ा महत्त्वपूर्ण होगा। **जीवन में सफलता के लिये शास्त्र, शस्त्र, ऊर्जा और प्रेरणा का साथ और समन्वय चाहिये।** युवाओं के रोम रोम में ऊर्जा बह रही होती है इसलिये उनमें चंचलता होती है, बूढ़े आदमी के अन्दर ऊर्जा शक्ति समाप्त हो चुकी है, इसलिये लड़खड़ाहट है लेकिन उसकी बुद्धि होश में होती है। जवानी में कुछ और सच लगता है, बुढ़ापे में कुछ और चीज़ें सच लगती हैं। जवानी का सच अलग तरह का सच है, बुढ़ापे का सच अलग तरह का सच है। लेकिन यदि किसी स्थिति में, सही में ज्ञान आ जाये, सही में होश आ जाये, एक तरफ ऊर्जा हो और दूसरी तरफ होश तो दोनों के मेल से एक नया जन्म होता है, किसी महापुरुष का जन्म होता है, किसी ज्ञानी का जन्म होता है, किसी उद्धारक का जन्म होता है। फिर संसार में कल्याण हुआ करता है। ऊर्जा और बुद्धि दोनों का मेल बहुत ज़रूरी है।

आशीर्वाद दिये जाते हैं न **"आयुष्मान, वर्चस्वी,. तेजस्वी, विद्वान धीमान भूया''**- मतलब क्या है इसका? आयु भी हो, ऊर्जा भी हो, तेज भी हो, वर्चस्व भी हो, समृद्धि भी हो, ज्ञान भी हो। ब्रह्म और शास्त्र का मेल हो जाये। तब कहा जाता है **''जीव शरदां शतं वर्धमान, भूयश्च शरदा शतात्,** सैंकड़ों वर्षों तक जीओ और इससे भी आगे की आयु को पार कर जाओ। धनुर्धर होओ, ऊर्जावान होओ। **ऊर्जावान होना एक सौभाग्य है लेकिन**

उसको दुर्भाग्य में बदलते देर नहीं लगती। ऊर्जावान, शक्तिवान, सत्तावान और धनवान व्यक्ति जब अन्यायी हो जाते हैं तब मनावता का ध्वंस हुआ करता है। हमारी ऊर्जा अत्याचारी न बन जाये-नादिरशाह, तैमूरलंग, चंगेज, हलाकू जैसी न बन जाए। हमारी ऊर्जा शक्ति संसार के कल्याण में लगे। वह वीर अर्जुन बने और ब्रह्म की संवाहक कृष्ण की शक्तियों को, नीतियों को संसार में फैलाने वाली बने। एक तरफ चाणक्य होने चाहियें और दूसरी तरफ उनके कदमों में झुका हुआ चन्द्रगुप्त होना चाहिये। तब एक नये साम्राज्य की स्थापना होगी। एक तरफ गुरु वशिष्ठ हों, निर्देश देने के लिये और दूसरी तरफ राम खड़े हों। संदीपनी की शिक्षाओं और कृष्ण की शक्ति का मेल होना चाहिये। रामकृष्ण परमहंस की ज्ञान धारा और विवेकानन्द की ऊर्जा शक्ति का मेल होना चाहिये तब संसार में, समाज में एक नई शक्ति वैचारिक क्रांति होती है। युग करवट लेता है और नया इतिहास भी रचा जाता हैं। संसार के अन्दर जब बड़े परिवर्तन आया करते हैं, सदियां जागा करती हैं, उस समय जो साक्षी बनता है वह सौभाग्यशाली होता है। ऊर्जा के साथ ज्ञान की धारा का जुड़ना बहुत ज़रूरी है। दोनों एक दूसरे को ढूंढने के लिये घूम रहे होते हैं। कहीं गुरु शिष्य को ढूंढ रहा है, कहीं शिष्य गुरु को ढूंढ रहा है। कभी कभी ऐसा होता है कि दोनों अचानक मिलते हैं। चाणक्य ने नहीं ढूँढा, न चन्द्रगुप्त ने ढूँढा, अचानक दोनों मिले। पर रामकृष्ण परमहंस को ढूँढना पड़ा नरेंद्र को। फिर प्यार से बुलाकर के बैठाया, सिखाया। अनेक बार परिस्थितियों का संयोग बनता है तो किसी मत्स्येन्द्रनाथ को कोई गोरख मिल जाता है और नई धाराओं का, नए गीतों का, नई शिक्षाओं का जन्म होता है। कभी गुरु ठुकरा रहा है, रामानन्द ठुकरा रहे हैं लेकिन कबीर पीछे लगे रहते है। गुरु नहीं अपनाता तो शिष्य चालाकी करता है। गंगा के घाट पर सीढ़ियों के बीच, प्रभात बेला के अंधेरे झुरमुट में कबीर लेट गए। रामानन्द स्नान कर के घाट की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए आए तो कबीर के वक्ष पर पांव पड़ा। रामानन्द के मुंह से निकला, "राम राम, राम राम"। कबीर भी बोल उठे 'राम राम, राम राम'। रामानन्द कहते हैं,

"कबीर यहां कैसे?" कबीर कहते हैं, "गुरुदेव के चरणों का स्पर्श और उनके मुख से भगवान का नाम, गुरु मंत्र का उच्चारण चाहता था। आपने कृपापूर्वक दोनों पूर्ण कर दिए। आपके सामने समाज का संकोच था इसलिए थोड़ी चालाकी करनी पड़ी।" परिस्थितियों ने रामानन्द को भाव विभोर कर दिया। अब रामानन्द ध्यान करते तो कबीर चौकादारी। एक दिन रामानन्द को भी कहना पड़ा, "मेरे मन में उठते हुए भावों को, कबीर ! तू पहले ही पहचान जाता है। कबीर मैं तेरे कारण भी जाना जाऊंगा। मेरा एक परिचय तेरे कारण भी होगा।"

पिता जब यह कहे कि मैं फलां का बाप हूं तो पता लगता है कि बेटा बड़ा हो गया है, महान हो गया है। बेटे के नाम से पिता का परिचय हो रहा है। एक स्थिति वह है जब लोग कहें कि वह फलां गुरु का शिष्य है और एक स्थिति वह है जब लोग कहें कि यह फलां शिष्य का गुरु है। शिष्य की ऊंचाई से गुरु की महिमा नपे तो चमत्कार घटता है। जहां ब्रह्म और छत्र का मेल हो वहां चमत्कार घटा करते हैं। **संतों ने ब्रह्म के गीत गाने के लिये साज़ लिए थे। मीरा पग में घुंघरू (साज) बांध कर नाची। सूरदास के पास खड़ताल हैं, तुलसी के पास मंजीरा है, गुरु नानक देव बाला और मरदाना के साथ बैठकर रुबाब के ऊपर गीत छेड़ते हैं। ज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती के पास वीणा है। कृष्ण के हाथ में बांसुरी है, तो शंकर हाथ में डमरू लिये हैं। संगीत को प्रकट करने के लिये साज सबके पास हैं। लेकिन दूसरे हाथ में अन्याय से जूझने के लिये अस्त्र-शस्त्र हैं।**

बांस से ही लाठी भी तैयार होती है और बांसुरी भी। आपद्धर्म सामने आ जाये तो बांस को डंडा बनाना पड़ेगा। सामान्य स्थिति में बांस से प्रेम और सौहार्द की प्रतीक–बांसुरी, बनाने में ही आनंद है। बांसुरी जीवन की और भक्त के हृदय की प्रतीक है। बांसुरी को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि इसके अन्दर इतना संगीत भरा है, क्योंकि वह अंदर से खोखली होती है। कोई आदमी बांसुरी को खोले और अच्छी तरह देखे तो अंदर कुछ भी नहीं पाएगा। संगीत कहां से आता होगा?

किसी के होंठ बांसुरी के साथ लगते हैं तो क्या संगीत वहां से आता है? बोलती तो बांसुरी है न? तो प्रेरणा किसी और की होती है। इसी प्रकार यदि मनुष्य का शरीर भी पूरा खोलकर, छील कर देखा जाये तो इसमें भी कोई खास बात नहीं मिलेगी। **सब का शरीर एक जैसा है। लेकिन कोई इतना महान कैसे हो जाता है?** महापुरूष के शरीर के अन्दर भी आप कुछ नहीं देख पायेंगे। बांसुरी को तोड़कर संगीत को कैसे जान पायेंगे? वीणा के तारों को अलग अलग करके आप कैसे जान पायेंगे कि संगीत कहां भरा पड़ा है। लेकिन जब कोई अपने के हृदय के भाव से वाणी के तार छेड़ता है तब संगीत बहा करता है और तब पता लगता है कि वीणा के अन्दर इतना जो संगीत भरा पड़ा है वह कहाँ से आता है। **भक्त के हृदय की श्रद्धा और उसके हाथ के साज़ का जब मेल होता है तब चमत्कार घटता है, संगीत बहता है, आनन्द की सुगंध फैलती है।**

दुनिया में जितना संगीत है, होगा और था, वह सारा का सारा किसी भी बांसुरी से, किसी वीणा से प्रकट हो सकता है। मनुष्य का शरीर भी बांसुरी की तरह हैं। आपके अन्दर वह सब कुछ करने की क्षमता है, जो आज तक महापुरुषों ने किया या आने वाले समय में महापुरुष करेंगे आवश्यकता इस बात की है कि कोई इस साज को छेड़ने वाला मिल जाये। इसमें प्यार से फूंक मारने वाला मिल जाये। **गुरु कान में फूंक मारता है, उस फूंक मारने का मतलब क्या है? वह शरीर के साज को बजाने की ही तो कोशिश करता है।** वह मंत्र देकर यही तो कोशिश करता है कि अन्दर से संगीत प्रकट हो जाये। कोशिश कीजिए अपने आपको अपने भगवान का उपकरण बनाने की। इस स्थिति में आइये कि हम भी अपने परमात्मा के सामने कह सकें, **''करिष्ये वचनं तव''** हम आपके आदेशों का पालन करने के लिये तत्पर हैं। जब भी कभी ऐसी स्थितियां पैदा कर पाओगे तब आपके अन्दर नई धारायें जन्म लेंगी और आपका मानव शरीर धारण करना सफल हो जाएगा। नहीं तो अपनी चारदीवारी के इर्दगिर्द चक्कर काटते हुए सारी ज़िन्दगी बीत जायेगी।

रोज वही समस्याएं रहेंगी, राशन की, नमक की, ईंधन की। वही रिश्ते नाते, वहीं संबंध। कभी कड़वाहट, कभी मिठास, कभी शिकायत। इसी में जीवन बीत जायेगा। अच्छा हो आप अपने जीवन को नये आयाम दें, उसमें नये रंग और नई शक्ति भरें। गीता की वाणी परावाणी है। वक्त की सीमा हो सकती है लेकिन कृष्ण के गीत, कृष्ण की गीता, उसका संगीत चतुर्दिक मधुरता बिखेरता हुआ अनन्त हैं। भगवान कृष्ण की कृपा सदा बनी रहेगी।

अथाष्टोदशोऽध्यायः

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन।। १।।

अर्जुन बोले –हे महाबाहो, हे हृषीकेश! हे केशिनिषूदन! मैं संन्यास और त्याग का तत्त्व अलग–अलग जानना चाहता हूँ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुत्यागं विचक्षणाः।। २।।
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे।। ३।।

श्रीभगवान् बोले–कई विद्वान् काम्य–कर्मों के त्याग को संन्यास कहते हैं और कई विद्वान् सम्पूर्ण कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। कई विद्वान् कहते हैं कि कर्मों को दोष की तरह छोड़ देना चाहिये और कई विद्वान् कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप–रूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः।। ४।।

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! तू संन्यास और त्याग–इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन; क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ! त्याग तीन प्रकार का कहा गया है।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।। ५।।

यज्ञ, दान और तप रूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये, प्रत्युत उनको तो करना ही चाहिये; क्योंकि यज्ञ, दान और तप–ये तीनों ही कर्म मनीषियों को पवित्र करनेवाले हैं।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।। ६।।

हे पार्थ! (पूर्वोक्त यज्ञ, दान और तप) इन कर्मों को तथा दूसरे भी कर्मों को आसक्ति और फलों का त्याग करके करना चाहिये, यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः।। ७।।

नियत कर्म का तो त्याग करना उचित नहीं है। उसका मोहपूर्वक त्याग करना तामस कहा गया है।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।। ८।।

जो कुछ कर्म है, वह दुःखरूप ही है–ऐसा समझकर कोई शारीरिक क्लेश के भय से उसका त्याग कर दे, तो वह राजस त्याग करके भी त्याग के फल को नहीं पाता।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्ग त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।। ९।।

हे अर्जुन! 'केवल कर्तव्यमात्र करना है'—ऐसा समझकर जो नियत कर्म आसक्ति और फल का त्याग करके किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

न द्वेष्टयकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
तयागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।। १०।।

जो अकुशल कर्म से द्वेष नहीं करता और कुशल कर्म में आसक्त नहीं होता, वह त्यागी, बुद्धिमान, सन्देह रहित और अपने स्वरूप में स्थित है।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।। ११।।

कारण कि देहधारी मनुष्य के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करना सम्भव नहीं हैं इसलिये जो कर्मफल का त्यागी है, वही त्यागी है ऐसा कहा जाता है।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित्।। १२।।

कर्मफल का त्याग न करनेवाले मनुष्यों को कर्मों का इष्ट, अनिष्ट और मिश्रित—ऐसे तीन प्रकार का फल मरने के बाद भी होता है; परंतु कर्मफल का त्याग करनेवालों को कहीं भी नहीं होता।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।। १३।।

हे महाबाहो! कर्मोंका अन्त करनेवाले सांख्यसिद्धान्त में सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि के लिये ये पाँच कारण बताये गये हैं, इनको तू मेरे से समझ।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।। १४।।

इसमें (कर्मों की सिद्धि में) अधिष्ठान तथा कर्ता और अनेक प्रकारके करण एवं विविध प्रकार की अलग–अलग चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ कारण दैव (संस्कार) हैं।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।। १५।।

मनुष्य शरीर, वाणी और मन के द्वारा शास्त्र विहित अथवा शास्त्र विरुद्ध जो कुछ भी कर्म आरंभ करता है, उसके ये (पूर्वोक्त) पाँचों हेतु होते हैं।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।। १६।।

परंतु ऐसे पाँच हेतुओं के होने पर भी जो उस (कर्मोंके) विषय में केवल (शुद्ध) आत्मा को कर्ता मानता है, वह दुर्मति ठीक नहीं समझता; क्योंकि उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है।

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।। १७।।

जिसका अहंकृतभाव नहीं है और जिस की बुद्धि लिप्त नहीं होती, वह इन सम्पूर्ण प्राणियों को मारकर भी न मारता है और न बँधता है।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।। १८।।

ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता–इन तीनों से कर्मप्रेरणा होती है तथा करण, कर्म और कर्ता–इन तीनों से कर्मसंग्रह होता है।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि।। १९।।

गुण संख्यान (गुणों के सम्बन्ध से प्रत्येक पदार्थ के भिन्न–भिन्न भेदों की गणना करनेवाले) शास्त्र में गुणों के भेद से ज्ञान और कर्म तथा कर्ता तीन–तीन प्रकार से ही कहे जाते हैं, उनको भी तुम यथार्थ रूप से सुनो।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।। २०।।

जिस ज्ञान के द्वारा साधक सम्पूर्ण विभक्त प्राणियों में विभाग रहित एक अविनाशी भाव(सत्ता) को देखता है, उस ज्ञान को तुम सात्त्विक समझो।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।। २१।।

परंतु जो ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों में अलग–अलग अनेक भावों को अलग–अलग रूप से जानता है, उस ज्ञान को तुम राजस समझो।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्।। २२।।

किंतु जो (ज्ञान) एक कार्यरूप शरीर में ही सम्पूर्ण के तरह आसक्त है तथा जो युक्तिरहित, वास्तविक ज्ञान से रहित और तुच्छ है, वह तामस कहा गया है।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते।। २३।।

जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया हुआ और कर्तृत्वाभिमान से रहित हो तथा फलेच्छारहित मनुष्य के द्वारा बिना राग द्वेष के किया हुआ हो, वह सात्त्विक कहा जाता है।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।। २४।।

परंतु जो कर्म भोगों को चाहनेवाले मनुष्य के द्वारा अहंकार अथवा परिश्रम पूर्वक किया जाता है, वह राजस कहा गया है।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।। २५।।

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न देखकर मोहपूर्वक आरंभ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।। २६।।

जो कर्ता राग रहित, अनहंवादी, धैर्य और उत्साहयुक्त तथा सिद्धि और असिद्धि में निर्विकार है, वह सात्त्विक कहा जाता है।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।। २७।।

जो कर्ता रागी, कर्मफल की इच्छावाला, लोभी, हिंसा के स्वभाव वाला, अशुद्ध और हर्ष शोक से युक्त है, वह राजस कहा गया है।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोऽनैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।। २८।।

जो कर्ता असावधान, अशिक्षित, ऐंठ–अकड़वाला, जिद्दी, उपकारी का अपकार करनेवाला, आलसी, विषादी और दीर्घसूत्री है, वह तामस कहा जाता है।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय।। २९।।

हे धनंजय ! अब तू गुणों के अुनसार बुद्धि और धृति के भी तीन प्रकार के भेद अलग–अलग रूप से सुन, जो कि मेरे द्वारा पूर्ण रूपसे कहे जा रहे हैं।

प्रवृत्तिं व निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।। ३०।।

हे पृथानन्दन! जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति को, कर्त्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।। ३१।।

हे पार्थ! मनुष्य जिसके द्वारा धर्म और अधर्म को, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को भी ठीक तरह से नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।। ३२।।

हे पृथानन्दन! तमोगुण से घिरी हुई जो बुद्धि अधर्म को धर्म और सम्पूर्ण चीजों को उलटा मान लेती है, वह तामसी है।

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।। ३३।।

हे पार्थ! समतासे युक्त जिस अव्यभिचारिणी धृति के द्वारा मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओं को धारण करता है, वह धृति सात्त्विकी है।

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।। ३४।।

हे पृथानन्दन अर्जुन! फलकी, इच्छावाला मनुष्य जिस धृतिके द्वारा धर्म, काम (भोग) और अर्थ को अत्यन्त आसक्तिपूर्वक धारण करता है, वह धृति राजसी है।

यथा स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।। ३५।।

हे पार्थ! दृष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धृतिके द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख और घमण्डको भी नहीं छोड़ता, वह धृति तामसी है।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।। ३६।।
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।। ३७।।

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! अब तीन प्रकारके सुखको भी तुम मेरेसे सुनो। जिसमें अभ्याससे रमण होता है और जिससे दुःखोंका अन्त हो जाता है, ऐसा वह परमात्मविषयक बुद्धिकी प्रसन्नतासे पैदा होनेवाला जो सुख

(सांसारिक आसक्ति के कारण) आरम्भमें विषकी तरह और परिणामों में अमृतकी तरह होता है, वह सुख सात्त्विक कहा गया है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।। ३८।।

जो सुख इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे आरम्भमें अमृतकी तरह और परिणाममें विषकी तरह होता है, वह सुख राजस कहा गया है।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।। ३९।।

निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न होनेवाला जो सुख आरंभमें और परिणाममें अपनेको मोहित करनेवाला है, वह सुख तामस कहा गया है।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः।। ४०।।

पृथ्वीमें या स्वर्ग में अथवा देवताओं में तथा इनके सिवाय और कहीं भी वह ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो प्रकृतिसे उत्पन्न इन तीनों गुणों से रहित हो।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। ४१।।

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म स्वभावसे उत्पन्न हुए तीनों गुणोंके द्वारा विभक्त किये गये हैं।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। ४२।।

मनका निग्रह करना; इन्द्रियोंको वशमें करना; धर्मपालनके लिये कष्ट सहना; बाहर भीतरसे शुद्ध रहना; दूसरोंके अपराधको क्षमा करना; शरीर, मन आदिमें सरलता रखना; वेद, शास्त्र आदिका ज्ञान होना; यज्ञविधिको अनुभवमें लगाना; और परमात्मा, वेद आदिमें आस्तिक भाव रखना, ये ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। ४३।।

शूरवीरता, तेज, धैर्य, प्रजाके संचालन आदिकी विशेष चतुरता, युद्धमें कभी पीठ न दिखाना, दान करना और शासन करनेका भाव, ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।। ४४।।

खेती करना, गायोंकी रक्षा करना और शुद्ध व्यापार करना, ये सब वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं, तथा चारों वर्णोंकी सेवा करना शुद्रका भी स्वाभाविक कर्म है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।। ४५।।

अपने अपने कर्ममें तत्परतापूर्वक लगा हुआ मनुष्य सम्यक् सिद्धि (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्ममें लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धिको प्राप्त होता है, उस प्रकार को तू मेरे से सुन।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।४६।।

जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों उत्पत्ति होती है और जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्माका अपने कर्मके द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।। ४७।।

अच्छी तरह से अनुष्ठान किये हुए परधर्म से गुणरहित अपना धर्म श्रेष्ठ है। कारण कि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।। ४८।।

हे कुन्तीनन्दन! दोषयुक्त होने पर भी सहज कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण कर्म धुएँसे अग्नि की तरह किसी–न–किसी दोषसे युक्त हैं।

असक्तबुद्धि सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति।। ४६।।

जिसकी बुद्धि सब ज़गह आसक्तिरहित है, जिसने शरीरको वशमें कर रखा है, जो स्पृहारहित है, वह मनुष्य सांख्ययोगके द्वारा नैष्कर्म्य–सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।। ५०।।

हे कौन्तेय! सिद्धि–(अन्तःकरणकी शुद्धि) को प्राप्त हुआ साधक ब्रह्मको, जो कि ज्ञानकी परा निष्ठा है, जिस प्रकारसे प्राप्त होता है, उस प्रकारको तुम मुझसे संक्षेप में ही समझो।

बुद्धय्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।। ५१।।
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।। ५२।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। ५३।।

जो विशुद्ध (सात्त्विकी) बुद्धिसे युक्त, वैराग्यके आश्रित, एकान्तका सेवन करनेवाला और नियमित भोजन करनेवाला साधक धैर्यपूर्वक इन्द्रियोंका नियमन करके, शरीर–वाणी–मनको वशमें करके, शब्दादि विषयोंका त्याग करके और राग–द्वेषको छोड़कर निरन्तर ध्यानयोगके परायण हो जाता है, वह अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करके एवं निर्मम तथा शांत होकर ब्रह्मप्राप्तिका पात्र हो जाता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्‌भक्तिं लभते पराम्।। ५४।।

वह ब्रह्मभूत अवस्थाको प्राप्त प्रसन्न मनवाला साधक न तो किसी के लिये शोक करता है और न किसी की इच्छा करता है। ऐसा सम्पूर्ण प्राणियों में समभाववाला साधक मेरी पराभक्तिको प्राप्त हो जाता है।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। ५५।।

उस पराभक्ति से मेरेको, मैं जितना हूं और जो हूँ इसको तत्त्वसे जान लेता है तथा मेरेको तत्त्वसे जानकर फिर तत्काल मेरेमें प्रविष्ट हो जाता है।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।। ५६।।

मेरा आश्रय लेनेवाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी मेरी कृपासे शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।। ५७।।

चित्तसे सम्पूर्ण कर्म मुझमें अर्पण करके, मेरे परायण होकर तथा समताका आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो जा।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।।। ५८।।

मेरेमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे सम्पूर्ण विघ्नों को तर जायगा और यदि तू अहङ्कारके कारण मेरी बात नहीं सुनेगा तो तेरा पतन हो जायेगा।

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।। ५९।।

अहङ्कार का आश्रय लेकर तू जो ऐसा मान रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या (झूठा) है; क्योंकि तेरी क्षात्र प्रकृति तेरेको युद्धमें लगा देगी।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्।। ६०।।

हे कुन्तीनन्दन! अपने स्वभावजन्य कर्मसे बँधा हुआ तू मोह के कारण जो नहीं करना चाहता, उसको तू (क्षात्र–प्रकृतिके) परवश होकर करेगा।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। ६१।।

हे अर्जुन! ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें रहता है और अपनी मायासे शरीररूपी यन्त्रपर आरूढ़ हुई सम्पूर्ण प्राणियोंको (उनके स्वभावके अनुसार) भ्रमण कराता रहता है।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। ६२।।

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! तू सर्वभावसे उस ईश्वरकी ही शरणमें चला जा। उसकी कृपासे तू परमशांति–(संसारसे सर्वथा उपरति) को और अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाएगा।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।। ६३।।

यह गुह्यसे भी गुह्यतर (शरणागतिरूप) ज्ञान मैंने तुझे कह दिया। अब तू इसपर अच्छी तरह से विचार करके जैसा चाहता है, वैसा कर।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु में परमं वचः।
इष्टोऽसि में दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।। ६४।।

सबसे अत्यन्त गोपनीय वचन तू फिर मेरेसे सुन। तू मेरा अत्यन्त प्रिय है, इसलिये में तेरे हित की बात कहूँगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। ६५।।

तू मेरा भक्त हो जा, मेरेमें मनवाला हो जा, मेरा पूजन करनेवाला हो जा और मेरेको नमस्कार कर। ऐसा करनेसे तू मेरेको ही प्राप्त हो जायगा, यह मैं तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। ६६।।

सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिंता मत कर।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।। ६७।।

यह सर्वगुह्यतम वचन अतपस्वीको मत कहना; अभक्तको कभी मत कहना; जो सुनना नहीं चाहता, उसको मत कहना; और जो मेरेमें दोषदृष्टि करता है, उससे भी मत कहना।

य इदं परमं गुह्यं मभ्दक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। ६८।।

मेरेमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद–(गीता ग्रन्थ) को मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।। ६९।।

उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है, और इस भूमण्डलपर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।

अध्येष्ते च य इमं धर्म्यं सम्वादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।। ७०।।

जो मनुष्य हम दोनोंके इस धर्ममय संवादका अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा, ऐसा मेरा मत है।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।। ७१।।

श्रद्धावान् और दोषदृष्टि से रहित जो मनुष्य इस गीता, ग्रन्थको सुन भी लेगा, वह भी सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर पुण्यकारियों के शुभ लोकोंको प्राप्त हो जायगा।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय।। ७२।।

हे पृथानन्दन! क्या तुमने एकाग्र, चित्तसे इसको सुना? और हे धनञ्जय! क्या तुम्हारा अज्ञानसे उत्पन्न मोह नष्ट हुआ?

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। ७३।।

अर्जुन बोले–हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और स्मृति प्राप्त हो गयी है। मैं सन्देहरहित होकर स्थित हूँ। अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। ६६।।

सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिंता मत कर।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।। ६७।।

यह सर्वगुह्यतम वचन अतपस्वीको मत कहना; अभक्तको कभी मत कहना; जो सुनना नहीं चाहता, उसको मत कहना; और जो मेरेमें दोषदृष्टि करता है, उससे भी मत कहना।

य इदं परमं गुह्यं मभ्दक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। ६८।।

मेरेमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद–(गीता ग्रन्थ) को मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।। ६९।।

उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है, और इस भूमण्डलपर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।

अध्येष्ते च य इमं धर्म्यं सम्वादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।। ७०।।

जो मनुष्य हम दोनोंके इस धर्ममय संवादका अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा, ऐसा मेरा मत है।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।। ७१।।

श्रद्धावान् और दोषदृष्टि से रहित जो मनुष्य इस गीता, ग्रन्थको सुन भी लेगा, वह भी सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर पुण्यकारियों के शुभ लोकोंको प्राप्त हो जायगा।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय।। ७२।।

हे पृथानन्दन! क्या तुमने एकाग्र, चित्तसे इसको सुना? और हे धनञ्जय! क्या तुम्हारा अज्ञानसे उत्पन्न मोह नष्ट हुआ?

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। ७३।।

अर्जुन बोले–हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और स्मृति प्राप्त हो गयी है। मैं सन्देहरहित होकर स्थित हूँ। अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्च च महात्मनः।
सम्वादमिममंश्रौषमद्‌भुतं रोमहर्षणम्।। ७४।।

संजय बोले इस प्रकार मैंने भगवान् वासुदेव और महात्मा पृथानन्दन अर्जुन का यह रोमांचित करनेवाला अद्‌भुत संवाद सुना।

व्यासप्रसादाच्छुतवानेतद्‌गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।। ७५।।

व्यासजीकी कृपासे मैंने स्वयं इस परम गोपनीय योग (गीता ग्रन्थ) को कहते हुए साक्षात् योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे सुना है।

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य सम्वादमिममद्‌भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।। ७६।।

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस पवित्र और अद्‌भुत संवादको याद कर करके मैं बार बार हर्षित हो रहा हूं।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्‌भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः।। ७७।।

हे राजन्! भगवान श्रीकृष्णाके उस अत्यन्त अभ्दुत विराट्‌रूपको याद कर करके मेरेको बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है और मैं बार बार हर्षित हो रहा हूं।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।। ७८।।

जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है ऐसा मेरा मत है।